G20
भारत 2023 INDIA

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

१२ वां

विश्व हिंदी सम्मेलन

फ़िजी, 2023

स्मारिका

१२ वां

विश्व हिंदी सम्मेलन

फ़िजी, 2023

'शुभंकर' (लोगो) - संकल्पना

यह शुभंकर भारतीय और फ़िजी क्षेत्रों के एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें दोनों देशों के तत्त्व सम्मिलित हैं। शुभंकर की दोनों ओर भारत और फ़िजी के राष्ट्रीय ध्वज के रंगों को प्रदर्शित किया है। कमल भारत का राष्ट्रीय पुष्प है, जो पवित्रता को प्रकट करता है। यह एक ऐसा फूल है जिसकी जड़ें भारतीय भाषाओं और देवनागरी लिपि की तरह ही गहरी हैं; अपनी जड़ों से जुड़े रहना हमारी महान संस्कृति का अभिन्न अंग है। चूँकि यह कार्यक्रम फ़िजी के शांत द्वीपों पर हो रहा है, अस्तु इस क्षेत्र के प्रतीक के रूप में नीली लहरें व नारियल के पेड़ दिखाए हैं।

स्मारिका

12वां विश्व हिंदी सम्मेलन

प्रधान संपादक

रजनीश कुमार शुक्ल

संपादक मंडल

कुमुद शर्मा • विनोद कुमार मिश्र • प्रेमलता चुटैल • पद्मावती
सुभाषिनी लता कुमार • बालेंदु शर्मा 'दाधीच' • प्रभात कुमार

सत्यमेव जयते

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार

प्रस्तुत स्मारिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित सम्मानित लेखकों के हैं। विदेश मंत्रालय, भारत सरकार तथा स्मारिका संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

१२ वां

विश्व हिंदी सम्मेलन

फ़िजी, 2023

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के लिए
हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली-2 द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार एवं वितरण

अनुक्रम

पत्रकारिता, जनसंचार एवं सिनेमा

1. लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया का अवदान —डॉ. नरेंद्र मिश्र 3
2. काशी की हिंदी पत्रकारिता : अतीत से अनागत तक —प्रो. राम मोहन पाठक 12
3. हिंदी की अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाएँ —पूर्णिमा वर्मन 18
4. हिंदी पत्रकारिता में संवाद की आवश्यकता —रामबहादुर राय 24
5. हिंदी पत्रकारिता का नैतिक दायित्व —हितेश शंकर 31
6. सोशल मीडिया : संप्रेषण के नए आयाम और हिंदी —प्रो. कुमुद शर्मा 34
7. टी.वी. की भाषा —हेमंत शर्मा 40
8. समर्थ भाषा हिंदी —प्रसून जोशी 44
9. हिंदी पत्रकारिता में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा —प्रो. अरुण कुमार भगत 46
10. पूर्वोत्तर के जनजातीय क्षेत्रों की संचार प्रणाली में हिंदी —डॉ. तारो सिंदिक 51
11. हिंदी के प्रचार-प्रसार में मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन का योगदान —डॉ. शशि दूकन 56
12. हिंदी के हाथों सँवरते आधुनिक संचार माध्यम —इंदुशेखर तत्पुरुष 59
13. विश्व सिनेमा और हिंदी की भूमिका —डॉ. कृपाशंकर चौबे 63

पारंपरिक ज्ञान से अद्यतन प्रौद्यौगिकी

14. डिजिटल क्रांति से हिंदी को मिली नई पहचान —प्रो. संजय द्विवेदी 69
15. नए भारत में बदलती सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी का विकास —प्रो. हरीश अरोड़ा 73

16. भारतीय परंपरा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी —बालेंदु शर्मा 'दाधीच' 77
17. भाषा प्रौद्योगिकी में कृत्रिम मेधा की बढ़ती भूमिका —महेश कुलकर्णी 81
18. भारतीय ज्ञान परंपरा : वैश्विक संदर्भ और हिंदी —प्रो. सरोज शर्मा 86
19. भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी —प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा 90
20. परंपरागत ज्ञान को कृत्रिम मेधा और संचार क्रांति की चुनौतियाँ —अच्युतानंद मिश्र 94
21. हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक —प्रो. सुधीर प्रताप सिंह 97
22. पांडुलिपि-विज्ञान तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा की प्रासंगिकता —प्रो. दीप्ति शर्मा त्रिपाठी 102
23. ट्विटर की हिंदी : भाषिक-विश्लेषण —डॉ. विजया सिंह 110
24. कृत्रिम मेधा के द्वारा भाषाओं का संवाद —प्रो. योगेंद्र प्रताप सिंह 115
25. वैश्विक हिंदी के विस्तार में कृत्रिम मेधा की भूमिका —डॉ. आनंद कुमार सिंह 118
26. भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम बुद्धि —ओम विकास 121

अनुवाद एवं हिंदी शिक्षण

27. मरुबिंदु से मरु उद्यान में पनपती हिंदी —डॉ. आरती 'लोकेश' 129
28. तेलुगु और हिंदी का अनुवाद के माध्यम से सह-संबंध : एक परिचय —प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू 134
29. तमिलनाडु में हिंदी : भारतीय एकसूत्रात्मकता की ओर अग्रसर तमिल समाज —डॉ. आनंद पाटील 139
30. हिंदी भाषा शिक्षण और अनुवाद : केरल के संदर्भ में —प्रो. प्रमोद कोवप्रत 143
31. हिंदी भाषा में अनूदित ओड़िया साहित्य : उपलब्धियाँ एवं संभावनाएँ —डॉ. अभिषेक शर्मा 148
32. हिंदी और तमिल के बीच साहित्यिक अनुवाद परंपरा —डॉ. सी. जयशंकर बाबू 154
33. कोंकणी-हिंदी भाषाओं का संगम —प्रो. वृषाली सुभाष मांद्रेकर 160
34. तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान —प्रो. एम. ज्ञानम 164

35. हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य —डॉ. विमलेश कांति वर्मा 172
36. भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित समानताओं के आधार पर भाषा-शिक्षण, परस्पर अनुवाद और लिप्यंतरण की संभावनाएँ —डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा 177
37. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में हिंदी और भारतीय भाषाएँ —अनिल शर्मा 'जोशी' 185
38. अनुवाद के माध्यम से कन्नड़-हिंदी में आदान-प्रदान —प्रो. टी.आर. भट्ट 190

वैश्विक हिंदी

39. विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में विदेश मंत्रालय की भूमिका —सौरभ कुमार 197
40. विश्व हिंदी सम्मेलन : नागपुर से नादी —रवींद्र प्रसाद जायसवाल 201
41. न्यूजीलैंड में हिंदी की विकास यात्रा —रोहित कुमार 'हैप्पी' 207
42. बुल्गारिया और हिंदी —आनंद वर्धन 211
43. यूरोप में हिंदी की स्थिति एवं उपस्थिति —विश्वास दुबे 216
44. चीन में हिंदी शिक्षण —प्रो. ज्यांग जिंगकुई 219
45. थाईलैंड में हिंदी —शिखा रस्तोगी 226
46. दक्षिण अफ्रीका में हिंदी : कल, आज और कल —सुनंदा वर्मा 229
47. श्रीलंका में हिंदी की दशा और दिशा —अतिला कोतालावाल 234
48. उज्बेकिस्तान में हिंदी : प्रचार-प्रसार और शिक्षण —डॉ. सिरोजिद्दीन नुर्मातोव 237
49. सूरीनाम सहित कैरेबियाई देशों में हिंदी भाषा का प्रभुत्व —प्रो. पुष्पिता अवस्थी 241
50. इथियोपिया एवं चेक गणराज्य में हिंदी अध्यापन के संस्मरण —आशुतोष द्विवेदी 246
51. अमेरिका में हिंदी : कल, आज और कल —डॉ. सुरेंद्र गंभीर 250
52. फिजी में हिंदी संघर्ष, समाज और साहित्य —मनीषा रामरक्खा 254
53. ऑस्ट्रेलिया में हिंदी : प्रचार-प्रसार —रीता कौशल 259
54. सिंगापुर में हिंदी शिक्षण की स्थिति —डॉ. संध्या सिंह 264
55. पोलैंड में हिंदी —मोनिका ब्रोवार्चिक 270
56. दक्षिण कोरिया में हिंदी —प्रो. प्रतिभा मुदलियार 276

57. विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा : भारत से मॉरीशस तक —प्रीति सागर 282
58. रूस में हिंदी —प्रगति टिपणीस 295
59. फिजी में 'हिंदी बात' —पद्मजा 299
60. फिजी और मॉरीशस : औपनिवेशिक, ऐतिहासिक एवं हिंदी पत्रकारिता से जुड़े संबंध —डॉ. बीरसेन जागा सिंह 303
61. हिंदी का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ : जर्मन में हिंदी —डॉ. राम प्रसाद भट्ट 307
62. त्रिनिदाद के हिंदी साधक : प्रो. हरिशंकर आदेश —डॉ. दीपक पांडेय 312
63. वैश्विक परिदृश्य में हिंदी —प्रो. खेमसिंह डहेरिया 316
64. भारत-चीन साहित्यिक संबंध में हिंदी का योगदान —डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी 323
65. फिजी हिंदी भाषा, साहित्य और सामाजिक सरोकार —डॉ. सुभाषिनी कुमार/खमेंद्रा कमल कुमार 328
66. विश्व-भाषा की ओर अग्रसर हिंदी —अतुल कोठारी 333
67. विश्व हिंदी सचिवालय : बीज से वृक्ष तक —प्रो. विनोद कुमार मिश्र 337
68. प्रवासी चेतना बनाम राष्ट्रीय चेतना —आचार्य हरमहेंद्र सिंह बेदी 342
69. हिंदी का विश्व और विश्व की हिंदी —गिरीश्वर मिश्र 346

रामकथा भारत एवं विश्व

70. श्रीराम की करुणा के दो मधुर प्रसंग —चंद्रभूषण पांडेय 353
71. राम और राष्ट्र की अवधारणा —प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल 358
72. रामकथा के प्रसार में गीता प्रेस की भूमिका —डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त 364
73. मॉरीशस में श्रीराम और रामचरितमानस —डॉ. विनोद बाला अरुण 368
74. रामकथा के साथ हिंदी की पताका — डॉ. राजेश श्रीवास्तव 374
75. फिजी में रामकथा का स्वरूप और साहित्यिक प्रभाव —डॉ. सुभाषिनी लता कुमार 378
76. विश्व में सबके अपने-अपने राम —डॉ. राकेश पांडेय 383
77. रामकथा का यथार्थ —डॉ. सीतेश आलोक 388

78. मैथिलीशरण गुप्त के राम और भारत-राष्ट्र की अभिकल्पना —**प्रियंका मिश्र** 394

79. विश्व हिंदी साहित्य तथा संस्कृति के आलोक में, विश्वात्मा श्रीराम और विश्वमंगल की अक्षय निधि गोस्वामी तुलसीदास —**योगेंद्र मिश्र** 398

विविध

80. सिंधी एवं हिंदी अंतर्संबंध —**डॉ. रवि प्रकाश टेकचंदानी** 407

81. हिंदी की व्याप्ति बढ़ाते मनोरंजन के नए माध्यम —**अनंत विजय** 410

82. राष्ट्रीयता के शिखर कवि : मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारतियार —**डॉ. वी. पद्मावती** 415

83. पंडित विद्यानिवास मिश्र का हिंदी मन —**प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी** 421

84. हिंदी में विज्ञान लेखन की परंपरा : स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् —**डॉ. राकेश कुमार दूबे** 425

85. एक अमूल्य धरोहर छोड़कर गए हैं नरेंद्र कोहली —**प्रेम जनमेजय** 432

86. माधवराव सप्रे : हिंदी के अनन्य साधक —**सच्चिदानंद जोशी** 439

87. राष्ट्र संवाद के लिए हो सर्वमान्य भाषा —**प्रो. बृज किशोर कुठियाला** 443

88. हिंदी की सामर्थ्य अतुलनीय है —**डॉ. हिमांशु द्विवेदी** 449

89. देश के सांस्कृतिक विस्तार में हिंदी की भूमिका —**डॉ. कुंदन यादव** 451

90. एक भारत-श्रेष्ठ भारत : हिंदी की बिंदी —**डॉ. सोनल मानसिंह** 455

91. सिक्किम में हिंदी की स्थिति : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ —**डॉ. प्रदीप त्रिपाठी** 458

92. सामासिक-सांस्कृतिक एकता में हिंदी की भूमिका/योगदान —**डॉ. चक्रधर त्रिपाठी** 461

93. हिंदी प्रकाशन के समक्ष चुनौतियाँ एवं अवसर —**प्रभात कुमार** 464

94. भारत की स्वतंत्रता का 'अमृत महोत्सव' एवं हिंदी की स्थिति —**डॉ. प्रकाश सी. बरतूनिया** 469

95. हिंदी नई चाल में ऐसे ढली —**विजयदत्त श्रीधर** 475

मृदुला सिन्हा, सिम्मी हर्षिता, हिमांशु जोशी, मन्नू भंडारी, गंगा प्रसाद विमल, गिरिराज किशोर, विष्णु चंद्र शर्मा, विष्णु खरे, बाबा योगेंद्र, पद्मा सचदेव, स्वयं प्रकाश, पंडित सत्यव्रत शास्त्री, नंदकिशोर नवल, अमीरचंद, बदरीनाथ कपूर, प्रोफेसर देवेंद्र स्वरूप, अटल बिहारी वाजपेयी, डॉ. नरेंद्र कोहली, गिरीश कर्नाड, प्रो. मैनेजर पांडेय, प्रो. नामवर सिंह, राजनाथ सिंह 'सूर्य', कपिला वात्स्यायन, गोपीचंद नारंग, गोपालदास 'नीरज', त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, प्रदीप चौबे, बलवंत मोरेश्वर पुरंदरे, राजनारायण बिसारिया, प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल, आचार्य सोहनलाल रामरंग

१२ वां

विश्व हिंदी सम्मेलन

फ़िजी, 2023

स्मारिका

सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

हर्ष का विषय है कि भारत सरकार द्वारा 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 15 से 17 फरवरी, 2023 को फिजी में किया जा रहा है। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन से दुनियाभर के हिंदी प्रेमियों, हिंदी सेवियों और हिंदी विद्वानों और लेखकों को हिंदी की दशा-दिशा पर एक मंच प्राप्त होता है।

हिंदी न सिर्फ भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण संपर्क भाषा है बल्कि विदेशों में भारतीयों की पहचान से भी जुड़ी हुई है। हिंदी भारत की महान संस्कृति की संवाहिका है। हिंदी भाषा न केवल दुनिया के अलग-अलग देशों में जा बसे भारतवंशियों को अपनी संस्कृति और परंपरा से जोड़े हुए है बल्कि सकल जगत को भारतीय जीवन दर्शन के अनुरूप जीने की प्रेरणा भी देती है।

कोविड और जलवायु परिवर्तन जैसी प्राकृतिक आपदाओं तथा वैश्विक मंदी के दौर में आज विश्वबंधुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे भारतीय दर्शन के सूत्रवाक्यों को विश्व द्वारा अपनाए जाने की सबसे ज्यादा जरूरत है।

स्मारिका के प्रकाशन से हिंदी भाषा, भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवन दर्शन, तकनीक के क्षेत्रों में हिंदी की प्रगति और भारतीय ज्ञान परंपराओं के संबंध में बहुमूल्य जानकारी मिलेगी।

मैं इस अवसर पर संपादक मंडल के सदस्यों और देश एवं विदेश के लेखकों को शुभकामनाएँ देती हूँ और 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन की सफलता की कामना करती हूँ।

द्रौपदी

(द्रौपदी मुर्मु)

नई दिल्ली
13 जनवरी, 2023

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

विदेश मंत्रालय द्वारा फिजी में आयोजित किए जा रहे 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई। इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन सराहनीय है।

विविधता से परिपूर्ण हमारे देश में लोगों के बीच आपसी संवाद स्थापित करने में हिंदी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। हिंदी की इसी विशेषता के कारण महात्मा गांधी जी का मानना था कि यह राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने में अहम सिद्ध होगी।

हिंदी की उन्नत, भारत के मूल्यों के प्रसार के साथ-साथ विश्वबंधुत्व के भाव से भी जुड़ी है। हमारी गौरवशाली संस्कृति व संस्कारों को तकनीक के इस दौर में विभिन्न माध्यमों से दुनिया के हर हिस्से में पहुँचाने में हिंदी का अहम योगदान रहा है।

आजादी के अमृतकाल में देश पंचप्राणों में शामिल 'विरासत पर गर्व' और 'गुलामी की मानसिकता से मुक्ति' के भाव के साथ विकास के पथ पर अग्रसर है। हमारा देश अनेक भाषाओं व संस्कृतियों की जननी है और यह समृद्ध विरासत हमें सतत प्रेरणा देती है। ऐसे ही गुलामी की मानसिकता से मुक्ति के लिए आपसी संवाद और परस्पर समन्वय को सशक्त करने में, अमृतकाल में भारतीय भाषाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहनेवाली है।

मुझे विश्वास है कि सम्मेलन में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ाने, इसे समृद्ध करने और अधिक-से-अधिक लोगों को इससे जोड़ने पर विचारपूर्ण चर्चा होगी। सम्मेलन का विषय 'हिंदी-पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' अत्यंत प्रासंगिक है।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजकों, प्रतिभागियों व सभी हिंदी-प्रेमियों को भावी प्रयासों के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

(नरेंद्र मोदी)

नई दिल्ली
पौष 27, शक संवत् 1944
17 जनवरी, 2023

विदेश मंत्री
भारत

सत्यमेव जयते

Minister of External Affairs
India

संदेश

हिंदी के वैश्विक स्वरूप व प्रसार की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की यात्रा फिजी में अपने बारहवें पड़ाव पर पहुँच रही है। लाखों प्रवासी भारतीयों और भारतवंशियों से भारत के जनमानस का भावनात्मक संबंध स्थापित करनेवाले इस विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन में फिजी देश की सहभागिता से इतिहास का एक नया अध्याय रचा जा रहा है।

भाषा केवल संपर्क और संचार का माध्यम नहीं होती, न केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन होती है। भाषा किसी सभ्यता की अस्मिता और उसकी संस्कृति की वाहक होती है। फिजी में हिंदी की स्थिति इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है। 1879 में भारतीय श्रमिकों के साथ फिजी पहुँची हिंदी आज वहाँ की आधिकारिक भाषाओं में शामिल है। इसके लिए फिजी बधाई का पात्र है।

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी के प्रति हमारी साझी प्रतिबद्धताओं को दोहराने का समय है। इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन औपचारिकता भर नहीं है। यह प्रयास है हिंदी की वैश्विक स्थिति का जायजा लेने का, देश-विदेश में हिंदी के विशेषज्ञों व हिंदी प्रेमियों के विचारों को उनकी लेखनी के माध्यम से जानने

172, South Block, New Delhi-110011, Tel : +91-11-23011127, 23011165, Fax : +91-11-23011463
E-mail : dream@mea.gov.in

का। इस अवसर पर यह स्मारिका सम्मेलन में प्रतिभागिता कर रहे हिंदी के सभी कर्मवीरों को समर्पित करते हुए मुझे बेहद प्रसन्नता हो रही है।

अपनी भाषा से भावनात्मक संबंध स्थापित करने की यह यात्रा अविराम चलती रहे और आनेवाले समय में अधिकाधिक जनमानस को अपने साथ जोड़े और संपूर्ण विश्व समुदाय को प्रेरित करे, ऐसी मेरी कामना है।

सम्मेलन को सार्थक व सफल बनाने में जुटे सभी अधिकारियों, कर्मियों, प्रतिभागियों व हिंदी-प्रेमियों को मेरी अनंत शुभकामनाएँ। आप सभी अपने पथ पर प्रशस्त हों।

(सु. जयशंकर)

नई दिल्ली
08 फरवरी, 2023

वी. मुरलीधरन
V. MURALEEDHARAN

सत्यमेव जयते

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

राज्य मंत्री
विदेश एवं संसदीय कार्य मंत्रालय
भारत सरकार
MINISTER OF STATE FOR
EXTERNAL AFFAIRS &
PARLIAMENTARY AFFAIRS
GOVERNMENT OF INDIA

अध्यक्ष की कलम से

विश्व हिंदी सम्मेलन प्रशांत क्षेत्र में स्थित सुरम्य द्वीप फिजी में पहली बार आयोजित किया जा रहा है। 1975 में नागपुर से आरंभ हुए इस उत्सव ने 48 वर्ष की यात्रा में ग्यारह पड़ाव पार किए हैं। 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन को फिजी में आयोजित करने का प्रस्ताव 18-20 अगस्त, 2018 को पोर्ट लुई, मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में रखा गया था। हमारी सरकार तथा फिजी सरकार ने इसके लिए सहमति प्रदान की, यह खुशी की बात है। वैश्विक महामारी के कारण कुछ समय के लिए इसके आयोजन संबंधी काररवाई की गति मंथर अवश्य पड़ी, लेकिन हिंदी के प्रति हमारी प्रतिबद्धता ने इस संकल्प की सिद्धि के लिए आधिकारिक काररवाई को जारी रखा।

इस संबंध में ठोस कदम उठाए जाने के लिए पहली बैठक 27 अक्तूबर, 2022 को आयोजित हुई, जिसमें व्यवस्थित एवं निर्बाध रूप से सम्मेलन के आयोजन के लिए तीन उप-समितियाँ गठित की गईं और उनके कार्य निर्धारित किए गए। इस बार सम्मेलन का मुख्य विषय 'हिंदी-पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' रखा गया है। साहित्य और भाषा पर चर्चा से आगे बढ़कर आधुनिकता की पैठ से सामंजस्य बिठाने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी के सामर्थ्य को दर्शाया जाए। यही कारण था कि सम्मेलन के लिए यह अनूठा विषय निर्धारित किया गया।

हम चाहते हैं, हमारी युवा और आगे आनेवाली पीढ़ी यह जानें व समझें कि हिंदी एक सशक्त भाषा है और कृत्रिम मेधा के साथ कदमताल करने में समर्थ है। एक सामंजस्य की भाषा है, जो न सिर्फ अन्य भाषाओं के साथ सामंजस्य बिठाती है, उन्हें हृदय से लगाती है बल्कि ज्ञान-विज्ञान के सभी नए पहलुओं पर कार्य करने का माध्यम भी। हिंदी किसी की राह में बाधा नहीं है, यह तो प्रगति-पथ पर अग्रसर करनेवाली शक्ति है। आज हमारे पास हिंदी से संचालित एलेक्सा है, अन्य स्वचालित मशीनें हैं, रोबोट हैं, चैटबॉट हैं,

जो हिंदी भाषा समझते हैं। वर्तमान समय में भाषाओं के विकास, उसके संचार के लिए कृत्रिम मेधा का साथ समय की माँग है। किसी भी भाषा को जीवित रखने के लिए उसे भावी पीढ़ी को सौंपना सबसे ज्यादा जरूरी है। यह तभी संभव है, जब हम उसे तकनीक व प्रौद्योगिकी के साथ कदमताल करने में सक्षम बनाएँ। इस सम्मेलन का विषय उसी दिशा में एक कदम है। 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन इस शक्ति को सही रूप में विश्व पटल पर रेखांकित करे, ऐसी मेरी कामना है।

सम्मेलन स्मारिका एक ऐसा दस्तावेज है, जो सम्मेलन के विषय, उसके विचार और हिंदी के प्रसार को उपस्थित-अनुपस्थित सभी तक पहुँचाती है। विश्व में हिंदी की स्थिति और उसकी व्याप्ति का आकलन करती है। इसी विचार से प्रस्तुत इस स्मारिका में भारतीय ज्ञान परंपरा, हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति, सूचना प्रौद्योगिकी, अनुवाद, हिंदी शिक्षण, पत्रकारिता, भारतीय सिनेमा और वैश्विक हिंदी पर प्रबुद्ध विद्वानों और संबंधित क्षेत्र में अनुभव रखनेवाले व्यक्तियों के आलेखों को शामिल किया जा रहा है।

स्मारिका के समयानुसार प्रकाशन के लिए किए जा रहे श्रम की मैं प्रशंसा करता हूँ। इस कार्य में रत सभी कर्मियों को साधुवाद देता हूँ। सभी हिंदी-प्रेमियों को मेरी शुभकामनाएँ।

(वी. मुरलीधरन)

नादी से हिंदी निनाद

फिजी के नादी नगर में आयोजित हो रहे 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन की स्मारिका हिंदी विश्व के सुधी जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए इस स्मारिका के संपादक मंडल के साथ स्वयं भी गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन जो 2021 में संपन्न होना था, कोरोना की वैश्विक महामारी के चलते वर्ष 2023 में आयोजित हो रहा है। यह 12वाँ सम्मेलन है और इस 12वें सम्मेलन के साथ हिंदी की वैश्विक यात्रा ने धरती की 360 अंशों की परिक्रमा पूरी कर ली है। नागपुर से प्रारंभ हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से भाषा का वैश्विक स्वरूप व मानकीकरण विश्व के विविध देशों में हिंदी के माध्यम से संवाद-संपर्क को बढ़ावा देने जैसे अनेक प्रयास अभियान के रूप में चले हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की वेबसाइट एवं विज्ञप्तियों का हिंदी में आना प्रारंभ होना हो या भारत में चिकित्सा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उच्चतर शिक्षा का हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के माध्यम से पठन-पाठन, ये सब विगत 2 वर्षों में घटित महत्त्वपूर्ण उपक्रम हैं। ये सभी कार्य ऐसे हैं जिनसे भारत में तथा भारत के बाहर सर्वत्र हिंदी का महत्त्व बढ़ा है। भाषा के ये महत्त्वपूर्ण कार्य हैं; उनमें प्रथमतः यह है कि भाषा के माध्यम से ज्ञान को नवोन्मेषित किया जाए तथा ज्ञान का समकाल के समाज और काल के साथ सातत्य भी निर्मित किया जा सके। इसी क्रम में आँगनवाड़ी से लेकर अनुसंधान तक सर्वत्र हिंदी के शिक्षण की भाषा होने का शुभारंभ एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। विश्व हिंदी सम्मेलन के सभी संस्करणों में यह मुखरित होता रहा है और यह सम्मेलन इसके साकार होने के कालखंड में आयोजित हो रहा है। इस महनीय उपलब्धि में निश्चित ही विश्व हिंदी सम्मेलन की अनुशंसाओं का योगदान है।

दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के साथ ही हिंदी को ज्ञान, विज्ञान, तकनीक और संचार की जनभाषा के रूप में गति प्रदान करने, अध्येताओं व अध्यापकों के लिए उच्चस्तरीय ज्ञान सामग्री का निर्माण करने आदि के जो भगीरथ प्रयास हुए, उन सब में निश्चित ही भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी के द्वारा सकल विश्व में हिंदी में व्याख्यान करने और संयुक्त राष्ट्र संघ से लेकर विश्व की अनेक सरकारों से वार्त्ता-संवाद के लिए विशिष्ट गरिमाबोध के साथ हिंदी का उपयोग करना एक बड़ा कारण है। विश्व मंच पर सर्वत्र हिंदी में बोलनेवाले भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी को जो वैश्विक सम्मान और स्वीकार्यता मिली है, उससे हिंदी भाषियों में

भी भाषा को लेकर गौरवबोध तथा स्व की पहचान बनी है। दुनिया के लगभग दर्जनों देशों में हिंदी एक लोकप्रिय भाषा है किंतु भारत के शीर्ष नेतृत्व के द्वारा उन देशों के प्रवास में भी हिंदी का प्रयोग न के बराबर होता रहा है। भारत के प्रधानमंत्री के नेतृत्व में दो विदेश मंत्रियों स्व. श्रीमती सुषमा स्वराज एवं डॉ. एस. जयशंकर ने हिंदी के प्रयोग के द्वारा परिदृश्य में चूड़ांत परिवर्तन कर दिया है। इस सकारात्मक नाद की प्रतिध्वनि स्मारिका के आलेखों में भी निनादित हो रही है।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आने के बाद ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्त्व बढ़ा है। भारतीय ज्ञान परंपरा की श्रेष्ठ एवं समकाल में उपयोगी ज्ञानराशि हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में संरक्षित है। इसको अवगाहित करने के लिए अनुकूल वातावरण भारत के अंदर निर्मित हुआ है और भारतीय विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय महत्त्व के शिक्षा, शोध संस्थानों में इनको संरक्षित करने व प्रकाशित करने का कार्य भी अत्यंत तीव्र गति से प्रारंभ हुआ है। इनको आकलित करके भारतीय ज्ञान परंपरा और उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य को हिंदी में प्रस्तुत करने की गतिविधियों का एक सामान्य विवरण भी इस स्मारिका का भाग है। इस विषय पर व्यापक चर्चा 12वें सम्मेलन में होनी प्रस्तावित है।

इस सम्मेलन का मुख्य विचार विषय **'हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक'** एक नवीन वातायन खोलनेवाला विषय है। कृत्रिम मेधा (Artificial Intelligence) आज विश्व में भाषा, शिक्षा, तकनीक और नवीन अनुसंधान के अपरिहार्य साधन के रूप में स्वीकृत हो गई है। यह हिंदी में भी साध्य है, इसको स्थापित एवं प्रकाशित करना इस सम्मेलन का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। स्मारिका में इसका एक संक्षिप्त किंतु सम्यक् समाकलन देखा जा सकता है।

भारत की स्वतंत्रता का अमृत पर्व और भारत को जी20 की अध्यक्षता मिलने के दुर्लभ स्वर्ण सुरभि संयोग के बीच संपूर्ण विश्व के हिंदी अध्येता जब हिंदी विश्व यात्रा की 360 अंशों की संपूर्ति 12वें सम्मेलन के रूप में कर रहे हैं, तो स्वाभाविक है कि भारत सहित दुनिया के विविध देशों में हिंदी भाषा की स्थिति उसकी विविध क्षेत्रीय बोलियों, तमाम देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की स्थिति का समाकलन किया जाए। साथ-ही-साथ विविध देशों में जन भाषा, संवाद भाषा व संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति को आकलित करते हुए, विश्व के लिए उपादेय पारंपरिक मूल्यों के साथ अधुनातन संपोष्य विश्व-व्यवस्था की निर्मिति हेतु हिंदी भाषा के योगदान पर गहन मंथन भी संभावित है।

हिंदी मात्र विश्व के सभ्यतामूलक विषयों के विवेचन मात्र की ही भाषा नहीं है अपितु यह एक विशिष्ट मानव संस्कृति की भाषा है, जिसकी निर्मिति इसके महान साहित्यिक वाङ्मय के द्वारा हुई है। इसकी चर्चा के बिना न तो सम्मेलन पूर्णता को प्राप्त कर सकता है और न ही 21वीं शताब्दी की सांस्कृतिक चुनौतियों और वैश्विक बहुलतावादी समाज के प्रश्नों का समाधान ही होगा। इसलिए आवश्यक है कि साहित्य सृजन के विविध प्रारूपों पर भी गंभीर चर्चा हो। संस्कृति की निर्मिति में साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। स्मारिका में इसका खयाल रखा ही गया है। मनोरंजन, कला और जनसंचार के अनेक माध्यमों में आ रहे भाषिक परिवर्तन तथा उनके प्रभावों का भी उचित आकलन करने का यत्न इस स्मारिका में किया गया है जो 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के

चर्चा-सत्रों में परिपूर्णता को प्राप्त करेगा। स्मारिका में स्थान की सीमितता के कारण पाँच सौ के आस-पास प्राप्त आलेखों में से चुनकर सभी विषयों का समायोजन करना एक कठिन कार्य था और इस कार्य को संपन्न करते हुए संपादक मंडल के मन में यह विश्वास था कि स्मारिका और विश्व हिंदी सम्मेलन दोनों ही विश्व के समस्त हिंदी जगत का अपना आयोजन है। अतः जिनके आलेख स्थान नहीं प्राप्त कर सके हैं, वे विद्वज्जन संपादकों पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखेंगे।

यह सम्मेलन फिजी में हो रहा है, अतः स्वाभाविक है कि 'फिजीयन हिंदी' का भी सिंहावलोकन हो। इसको दृष्टि में रखते हुए फिजी की हिंदी को स्मारिका में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस आदि देशों में प्रचलित अथवा यूँ कहें कि हिंदी को जीवंत और निरंतर बनाए रखनेवाली रामकथा को भी उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है। साथ-ही-साथ हिंदी बहुभाषिकता की सभ्यता को ताकतवर बनाने में सक्षम भाषा है। इसको दिग्दर्शित करने के लिए विश्व भाषाओं सहित भारतीय भाषाओं के साथ पारस्परिक अनुवाद से बने संबंध सेतु को भी यत्किंचित् रूप में प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है।

यह अत्यंत महनीय और महत्त्वपूर्ण कार्य जिनके मार्गदर्शन और संरक्षण में संपन्न हुआ है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के क्रम में मैं भारत के विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर, विदेश राज्यमंत्री श्री वी. मुरधीधरनजी का आभारी हूँ, कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ कि आपने मुझे और मेरे सहयोगी संपादकों को इसके योग्य समझा और यह कार्य सौंपा। धन्यवाद देता हूँ श्री सौरभ कुमारजी, विदेश सचिव (पूर्व एवं प्रशांत क्षेत्र) को जिनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण हमें इस कार्य को करने में आनंदानुभूति हुई। इसके साथ ही विदेश मंत्रालय, भारत सरकार तथा फिजी सरकार एवं उनके अधिकारियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

—रजनीश कुमार शुक्ल
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

पत्रकारिता, जनसंचार
एवं सिनेमा

लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया का अवदान

—डॉ. नरेंद्र मिश्र

यदि लॉर्ड मैकाले ने मीडिया को चौथी सत्ता का नाम दिया है और अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्र को जनता के लिए, जनता द्वारा और जनता की सरकार बताया है तो यह जानना आवश्यक है कि ये चार खंभे कौन से हैं? लोकतंत्र के चार स्तंभ—न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका तथा खबरपालिका हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक राष्ट्र है—जहाँ हर 18 वर्षीय पुरुष और महिला को निर्वाचन में वोट देने का अधिकार है। निर्वाचन के पश्चात् निर्मित संसद् यानी पार्लियामेंट के बारे में आमजन का क्या विचार है? यह जानने के लिए हम धूमिल के शब्दों को उधार लें तो··· ''एक आदमी रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है, जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है, वह सिर्फ रोटी से खेलता है। मैं पूछता हूँ···/यह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देश की संसद् मौन है।'' इस मौन को मुखर अभिव्यक्ति देने का कार्य निस्संदेह मीडिया ने किया है और आशा है, आगे भी अपने दायित्व का निर्वहन कर जनतांत्रिक व्यवस्था में अपनी भूमिका को और भी प्रभावी बनाने का कार्य करेगी।

प्रेस को राष्ट्र का चौथा खंभा कहा जाता है। वस्तुतः किसी देश को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए जहाँ कार्यपालिका, न्यायपालिका व विधायिका रूपी तीन खंभों की आवश्यकता होती है, वहीं इन तीनों से आम आदमी को जोड़े रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रेस/समाचार/मीडिया के अन्य साधन करते हैं। मीडिया की आवश्यकता पर टिप्पणी करते हुए अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री जैफर्सन ने कहा था···"यदि उन्हें यह निर्णय लेने के लिए कहा जाए कि वह एक ऐसी सरकार को पसंद करेंगे, जिसमें प्रेस का कोई स्थान न हो या फिर समाचार-पत्र हो? किंतु कोई सरकार न हो तो उन्हें यह निर्णय लेने में एक पल भी संकोच नहीं होगा कि वे सरकार नहीं समाचार-पत्रों को स्वीकारेंगे।"

अमेरिका के राष्ट्रपति कनेडी ने कहा था—जनतंत्र में एक मतदाता का अज्ञान सबकी सुरक्षा को संकट में डाल देता है। भारत में 40 प्रतिशत से ज्यादा मतदाता वोट के महत्त्व से अपरिचित हैं, ऐसी स्थिति में लोकतंत्र की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। यह प्रश्नचिह्न तब और भी गहरा जाता है जब प्लेटो के अनुसार—जहाँ मतदाता मूर्ख है, वहाँ उसके प्रतिनिधि धूर्त होंगे। ऐसे धूर्त प्रतिनिधियों के कारण ही बर्नाड शॉ को कहना पड़ा, "सच्चा देशभक्त और त्यागी नेता चुनाव के रेगिस्तान में निरर्थकता की फसल बोते-बोते दम तोड़ देता है और धूर्त एवं छली व्यक्ति मैदान मार लेता है।" अज्ञेयजी का कथन है, "जनतंत्र व्यवहारतः विश्वास

---

* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में प्रोफेसर।

या आस्था के ही सहारे चलता है और भारत में शीर्ष नेताओं के जनतंत्र के प्रति विश्वास और आस्था का हाल यह है कि उनके 'राजनीति-शास्त्र कोश' में ये दोनों शब्द हैं ही नहीं।" चौधरी चरण सिंह तथा श्री चंद्रशेखर का प्रधानमंत्री बनना आस्था या विश्वास की गला-घोंटू प्रवृत्ति का ही प्रतीक है। इनको प्रधानमंत्री बनानेवाली तथा इनकी सरकारों की शैशवकाल में 'जघन्य हत्या' करनेवाली कांग्रेस है। ···जहाँ व्यक्ति तथा पार्टी स्वार्थ से राष्ट्र का लोकतंत्र चलता हो वहाँ लोकतंत्र की सार्थकता कैसी?

लोकतंत्र में न्यायपालिका की स्वतंत्रता अनिवार्य है, किंतु भारतीय केंद्रीय सत्ता 'कमिटेड ज्यूडिशियरी' (प्रतिबद्ध न्यायपालिका) की हिमायती रही है। न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनीतिक रुचि निर्णय लेती है। सरकारी निर्णय या नीति के विरुद्ध निर्णय देनेवाले न्यायाधीशों की पदोन्नति रोककर या स्थानांतरित करके उन्हें सबक सिखाया जाता है। संसद् में न्यायपालिका को हद में रहने की ताकीद की जाती है, उनके चरित्र पर लांछन लगाए जाते हैं, तब न्यायपालिका की स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। ग्लेडस्टन का कथन है—'जस्टिस डिलेड इज जस्टिस डिनाइड' अर्थात्, विलंबित न्याय, न्याय से वंचित करना है। जहाँ जनता को न्याय न मिले, वहाँ कैसा लोकतंत्र?

भारत की कार्यपालिका लोकतंत्र की जड़ खोदने में लगी है—प्रशासन की सुस्ती, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, देश में बढ़ती अराजकता, आतंकवाद तथा स्वच्छंद प्रवृत्ति प्रशासन की असफलता का द्योतक है। जब प्रशासन लूला-लँगड़ा हो तो लोकतंत्र की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है। थलसेनाध्यक्ष जनरल वी.के. सिंह का उम्र विवाद एक उदाहरण है। सेना का मनोबल गिराने के लिए एक बड़ा षड्यंत्र है। अन्ना आंदोलन की अनुमति न देना तथा बाबा रामदेव के साथ रामलीला मैदान में अमानवीय कार्य करना कार्यपालिका की निरंकुशता का प्रमाण है। इन निरंकुश तंत्रों को सबक सिखाने में मीडिया एक अस्त्र के रूप में हमारे सामने आती है।

अमेरिका के समाचार-पत्रों ने अपने राष्ट्रपति के विरुद्ध वाटरगेट काण्ड का भंडाफोड़ करके देश के इतिहास को ही बदल दिया जैक एंडरसन जैसे निर्भीक और आदर्श पत्रकार जनशक्ति को जाग्रत् कर निक्सन जैसे सर्वशक्ति संपन्न राष्ट्रपति को भी सत्ता छोड़ने के लिए विवश कर देते हैं। लोकतंत्र के सजग प्रहरी समाचार-पत्र हैं। विचारों की अभिव्यक्ति लोकतंत्र की रीढ़ है। यहाँ सत्ता के विरुद्ध समाचार-पत्रों को विचार-अभिव्यक्ति का दंड भुगतना पड़ता है। इनकम टैक्स के छापों से तंग किया जाता है। सरकारी विज्ञापन न देकर आर्थिक कमर तोड़ी जाती है। प्रतियाँ जब्त करना, मुकदमे ठोककर परेशानी पैदा करना, कार्यालयों में प्रदर्शन करके तोड़-फोड़ करना, संवाददाताओं को पिटवाना, जेल भेजकर तथा मरवाकर उनका मनोबल तोड़ना। सोशल नेटवर्किंग साइट पर प्रतिबंध लगाने की साजिश रचना आदि लोकतांत्रिक व्यवस्था को धूल में मिलाने का षड्यंत्र है। आजादी से पहले और आजादी के बाद मीडिया को नियंत्रित करने के लिए कई कदम उठाए गए। आजादी से पहले अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के तहत प्रेस पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए गए तो आजादी के बाद भी हमारी सरकार ने समय-समय पर मीडिया को प्रतिबंधित किया। 25 जून, 1975 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के शासनकाल में लोकतांत्रिक शक्तियों को बुरी तरह कुचलकर आपातकाल घोषित कर दिया गया। सन् 1975-1977 तक आपातकाल के दो वर्ष भारतीय लोकतांत्रिक इतिहास के सबसे बुरे अध्याय थे। इन दो वर्षों में लोकतंत्र पर बुरी तरह अंधकार छाया रहा, क्योंकि सरकार ने अपनी सुरक्षा बनाए रखने के लिए अभिव्यक्ति की आजादी की पर्याय शक्तियों को भी प्रतिबंधित कर दिया। टाइम्स आफ इंडिया, जनसत्ता सहित अन्य कई छोटे-बड़े

अखबारों के मालिकों को अखबारों के दफ्तरों पर भारी ताले लगाने पड़े, क्योंकि सरकारी दबाव और अशांति की वजह से आम आदमी से सरकार के नकारात्मक पक्ष की पोल खोलने का अधिकार छीन लिया गया। मीडिया का सबसे बड़ा काम है—सूचना देना, परंतु उस वक्त रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से सत्ता-पक्ष की सूचनाएँ प्रचारित-प्रसारित की जाती थीं। मीडिया से उसका सबसे बड़ा अधिकार सूचना देना छीन लिया गया था। लगभग इसी आपातकाल की तर्ज पर पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ ने सितंबर 2007 में पाकिस्तान में आपातकाल घोषित कर दिया। मुशर्रफ के विरुद्ध प्रदर्शनों को बुरी तरह कुचलना शुरू कर दिया। उसकी कारगुजारियों का बाकी दुनिया को पता न चले, इसी के मद्देनजर राष्ट्रपति मुशर्रफ ने मीडिया पर पाबंदी लगा दी। सरकार ने सरकारी और निजी चैनलों पर पाबंदी लगा दी। साइबर कैफे बंद करवा दिए और इसके साथ ही सैटेलाइट से जुड़े मोबाइल फोन तक को प्रतिबंधित कर दिया गया। वहाँ चैनलों के टॉक शो आज की तारीख तक भी प्रतिबंधित हैं। 3 नवंबर, 2007 को लाए गए पाकिस्तान इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रेगुलेटरी अथॉरिटी अध्यादेश के तहत अब टी.वी. चैनल राजनीतिक रैलियों का प्रसारण नहीं कर सकेंगे और वे तब तक चुनाव नतीजों का ऐलान नहीं कर सकते, जब तक सरकारी इजाजत न हो। चैनलों के एंकर कोई विचार प्रकट नहीं कर सकते और चुनावों से पहले एक्जिट पोल भी नहीं कराया जा सकता।...तमाम नेटवर्कों को लाइव कवरेज रोकने के लिए 'टाइम डिले' उपकरण लगाने को कहा गया है, ताकि अवांछित टिप्पणियों को काटकर पेश किया जाए।

दरअसल रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, इंटरनेट, वीडियो कैसेट, सी.डी. के अलावा समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पंफलेट, इत्यादि मीडिया के माध्यम हैं और सच्चाई यह है कि विश्वग्राम की संकल्पना का आधार ही सैटेलाइट क्रांति है। मीडिया ने संपूर्ण विश्व के लोगों को गाँव के लोगों की तरह करीब लाने और जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में दूरस्थ देशों में होनेवाली घटनाओं की जानकारी पल भर में ही प्राप्त कर सकते हैं, या यूँ कहा जाए कि हम दुनिया को अपनी मुट्ठी में कैद कर सकते हैं। किसी समय ज्ञान को सबसे बड़ी शक्ति माना जाता था। ज्ञानी व्यक्ति का समाज में सर्वोत्तम स्थान होता था, लेकिन आज सूचना ही सबसे बड़ी शक्ति है। जिस व्यक्ति के पास सूचनाओं का जितना बड़ा भंडार है, वह उतना ही ताकतवर है। अंग्रेजी में एक कहावत है—'one who knows more, he earns more' जापान में सूचनाओं के बारे में कहा जाता है कि यदि आपका सूचना पर अधिकार है, तब आप दुनिया के किसी भी राष्ट्र को कब्जे में कर सकते हैं।

मीडिया की पहुँच

	शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी-ग्रामीण क्षेत्र
सिनेमा	35.3	21.6	25.6
रेडियो	25.7	29.2	28.2
प्रिंट	62.0	28.8	38.6
टेलीविजन	80.3	41.6	52.6

स्रोत : एन.आर.एस.-99

आजादी के बाद समाचार-पत्रों के रूप के साथ-साथ उद्देश्य भी बदलते गए। आजादी से पहले विदेशी राज से निरंतर संघर्ष करते रहना ही उसका मिशन था। उस समय राष्ट्र-उत्थान, समाज-उत्थान और मानव-उत्थान एकमात्र लक्ष्य था, किंतु आज वह आदर्श लुप्त होता जा रहा है। वैसे पत्रकारिता के समग्र विकास की दृष्टि से उसका

व्यवसाय बन जाना उज्ज्वल भविष्य का संकेत भी है।

जागरूक करने में मीडिया का अहम रोल है। प्रजातांत्रिक देश में जनसंचार माध्यम आम आदमी को जागरूक करने की बात भी करते हैं। मसलन—अगला पोलियो दिवस कब आनेवाला है? देश में कौन से नए कानून लागू होनेवाले हैं? दैनिक उपयोग के किस सामान की कीमतें बढ़नेवाला हैं या घटनेवाली हैं? संकटकाल और आपदा प्रबंधन में सहायता देना मीडिया कभी नहीं भूलता। गढ़वाल के भूकंप, सुनामी, भुज क्षेत्र के भूकंप, भोपाल गैस त्रासदी के शिकार हुए लोगों की सहायता, राहत और बचाव कार्यों में मीडिया की भूमिका के कारण ही तेजी आई थी और न केवल हमारे देश, बल्कि पूरे विश्व का ध्यान इस ओर गया था। प्राकृतिक आपदा (बाढ़, तूफान, भूचाल आदि) के रूप में जब अचानक महाविनाश का 'तांडव नृत्य' शुरू हो जाता है तब जनसंचार की भूमिका उस विनाश में घिरे लोगों के लिए भगवान् से कम नहीं होती। जब आपदाग्रस्त लोगों का संपर्क दूर बैठे अपने रिश्तेदारों से भी टूट जाता है, तो ऐसे समय में मीडिया में कार्यरत रिपोर्टर अपनी जान जोखिम में डालकर उन्हें रिश्तेदारों से जोड़ने का काम करते हैं।

26 नवंबर, 2008 को मुंबई के ताज होटल, ओबेराय और नरीमन हाउस को आतंकवादियों ने अपना निशाना बनाया तो मीडिया ने पूरे 60 घंटे तक के खौफनाक मंजर की पल-पल की ताजा खबर पूरे विश्व के सामने पेश की। इतना ही नहीं, मीडिया ने पूरी तरह खोजकर सबूत पेश किए जिससे पूरे विश्व को पता चल गया कि 'इन आतंकवादी हमलों में पाकिस्तानी आतंकवादी संगठन लश्करे तैयबा का हाथ है जिसे आई.एस. आई. का आशीर्वाद मिला हुआ है। इन धमाकों से जुड़े हर पहलू कब, कहाँ, क्यों, कौन और कैसे को सामने लाने में मीडिया ने कोई कसर नहीं छोड़ी।'

1990 में सैटेलाइट से जुड़ने के बाद सी.एन.एन. ने अमेरिका द्वारा कुवैत पर किए गए हमले का सीधा प्रसारण करके पहली बार युद्ध काल की रिपोर्टिंग के मायने ही बदल दिए। उसके बाद अमेरिका में 11 सितंबर, 2001 को विश्व व्यापार केंद्र पर हवाई हमले और उसके बाद उन दोनों भवनों को धराशायी होते देखा। अमेरिका द्वारा 1990 में इराक पर हमला और उसके पश्चात् जवाबी काररवाई के रूप में ओसामा बिन लादेन का व्यापार केंद्र पर हवाई हमला दिखाकर युद्ध की निस्सारता को भी दिखाने का काम किया। मीडिया के माध्यम से इस युद्ध को लेकर यह सच निकलकर सामने आया कि तेल के कुओं पर कब्जा करके इराक को कमजोर बनाने के लिए अमेरिका ने यह युद्ध इराक पर थोपा था। मीडिया ने तटस्थ होकर इस संदर्भ में अपनी भूमिका निभाई और अमेरिका के नापाक इरादों की पोल संसार के सामने खोल दी।

जनसंचार के विभिन्न माध्यम देश की जनता और सरकार के बीच कड़ी का काम करते हैं। एक ओर ये माध्यम देश की जनता को देश के घोषित राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति सजग करते हुए उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तो दूसरी ओर इन उद्देश्यों के कार्यान्वयन में कदाचार की ओर अधिकारियों का ध्यान भी खींचते हैं। 'मिले सुर मेरा तुम्हारा, बिजली है शक्ति इसे व्यर्थ न गँवाओ', 'ऊर्जा की बचत, ऊर्जा की बढ़त', 'हम दो हमारे दो', 'बेटी बचाओ', 'चलो पढ़ाएँ कुछ कर दिखाएँ', 'जल ही जीवन है', 'इको फ्रेंडली' आदि विविध नारे राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्भाव, जनसंख्या नियंत्रण, साक्षरता, पर्यावरण और बाल विकास से संबंधित हैं। ये राष्ट्र की प्रगति में सहायक सिद्ध होते हैं। जनसंचार के माध्यम आम जनता को सरकार की नीतियों से अवगत कराते हैं और उन्हें देश के पुनर्निर्माण में भागीदार बनने के लिए प्रेरित करते हैं। कृषि, स्वास्थ्य, परिवार-

कल्याण, पिछड़ी जातियों के उत्थान, छुआछूत, राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्भाव आदि में संचार माध्यम बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

जनसंचार विशेषज्ञ विल्बर श्रेम ने अपनी पुस्तक 'मास इंडिया एंड नेशनल डेवलपमेंट' में लिखा है कि जनसंचार के साधन दुनिया का नक्शा बदल सकते हैं। साठ के दशक में प्रसिद्ध जनसंचार विशेषज्ञ डॉ. वाई.वी. लक्ष्मण भी यह सिद्ध कर चुके हैं कि देश के सामाजिक आर्थिक विकास में जनसंचार माध्यमों का सीधा हाथ है। डॉ. राव ने आंध्र प्रदेश के दो गाँवों का अध्ययन कर यह जानने की कोशिश की थी। एक गाँव सड़क से जुड़ा हुआ, विकासशील अवस्था में, दूसरा सड़क से दूर, पिछड़ा हुआ। डॉ. राव ने निष्कर्ष निकाला कि पहले गाँव में सड़क, अखबार और रेडियो जैसे जनसंचार के माध्यम हैं। इन माध्यमों के जरिए नए विचार इस गाँव में पहुँचे। लोगों ने इन्हें अपनाया और तरक्की की। दूसरे गाँव में सूचनाएँ नहीं फैलीं, वहाँ नव विचार नहीं पहुँचे, गाँव पिछड़ता रहा।

आज के वैश्वीकरण के युग में, जबकि सारी दुनिया एक विशाल मंडी बन चुकी है, विज्ञापन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। विज्ञापनों ने एक नई हिंदी गढ़ी, जो किताबी न होकर आम बोलचाल की भाषा थी। हाल के विज्ञापनों में 'ठंडा मतलब कोका-कोला' और 'ये दिल माँगे मोर' को अल्टीमेट माना गया। 'फेविकोल का जोड़ है, टूटेगा नहीं', 'कर लो दुनिया मुट्ठी में', 'तूफानी ठंडा', 'चुटकी में चिपकाए फेविक्विक' और 'सर्फ एक्सेल है ना' जैसे विज्ञापनों ने हिंदी की कम्युनिकेशन स्किल को बढ़ाया है। एड गुरु प्रहलाद कक्कड़ का मानना है—"विज्ञापनों ने हिंदी को आज के युग में एक मॉडर्न लैग्वेंज के रूप में पेश किया है।" अब आप समझे, 'खरीददारी में ही समझदारी है', 'पहले इस्तेमाल करो फिर विश्वास करो', 'खास लोगों की खास पसंद' आदि स्लोगनों के जरिए उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

विकास का मायाजाल और मीडिया

पिछले एक दशक से अखबार पाठकों के लिए नहीं, बल्कि विज्ञापनदाताओं के लिए छप रहे हैं। आठवें दशक तक महँगाई, बेरोजगारी और जनता से जुड़े मामले समाचार-पत्रों में प्रमुखता से जगह पा रहे थे, परंतु 1991 में केंद्र में नरसिम्हा राव की सरकार के सत्ता में आने के बाद से देश की अर्थव्यवस्था में खुलेपन का दौर आया। आर्थिक खुलेपन और बाजारवादी ताकतों का वर्चस्व बढ़ने से मीडिया मालिकों का नजरिया भी बदलने लगा। मीडिया के जरिए टी.आर.पी. (टारगेट रेटिंग पॉइंट) बढ़ाकर मुनाफा कमाने की होड़ के कारण धीरे-धीरे विकास के जुड़े मुद्दे पीछे छूटते चले गए। आम आदमी का संघर्षमय जीवन उसमें से गायब होने लगा। फिल्मी हस्तियों एवं लंदन के राज परिवार चाहे प्रिंस चार्ल्स और डायना हो या फिर प्रिंस हैरी कैट मिडिंटन की शादियों की हर गतिविधि को दिखाना महत्त्वपूर्ण हो गया। अब तो जिंदगी के एजेंडे तक टी.वी. से तय होते हैं। कौन सा टूथपेस्ट करना है, यह टी.वी. तय करता है, कौन सा साबुन चाहिए, कौन सा तेल चाहिए, कौन हीरो क्या पहनता है—यह सब टी.वी. से ही आम घरों में आ रहा है। सुदूर गाँवों में भी टी.वी. कल्चर ने अपने पाँव पसार लिये हैं। खासकर मध्यम वर्ग में तो टी.वी. का नशा अफीम की तरह है। कृषि प्रधान देश में सामूहिक आत्महत्या करनेवाले किसानों के मुद्दे कहीं खेत-खलिहानों में ही दबकर रह गए। आज जनसंचार माध्यमों में ग्रामीण और मेहनतकश समाज की उपेक्षा हो रही है। निजी चैनलों पर शैक्षिक कार्यक्रमों का अभाव है, मनोरंजन के नाम पर फूहड़ता है, विज्ञापन अनैतिक हो रहे हैं—इस सबके पीछे आज भूमंडलीकृत बाजार व्यवस्था और अंधी प्रतिस्पर्धा है। एक ओर निजी चैनलों के प्रसारण से भारतीय संस्कृति पर जहाँ पाश्चात्य संस्कृति का हमला हो रहा है, वहीं दूसरी ओर वटवृक्ष के समान गहरी और विस्तृत जड़ोंवाली

भारतीय संस्कृति का प्रसार भी पूरे विश्व में हो रहा है। टेलीविजन पर केबल नेटवर्क से जुड़े निजी चैनलों के कार्यक्रमों में उपर्युक्त थीम गायब है। इसका कारण यह है कि वर्तमान दौर में विकासशील देशों पर विकसित देशों का वर्चस्व है। अमेरिका जैसे विकसित देश विकासशील देशों के लिए जिन नीतियों का निर्धारण करते हैं, उन्हीं नीतियों का पालन करने के लिए विकासशील देश अभिशप्त हैं। वे अपनी जिस सड़ी-गली संस्कृति, ध्वस्त हो रही मान्यताओं से उबरना चाहते हैं, उसे विकासशील देशों के मत्थे मढ़ देते हैं और विकासशील देश उसे हँसी-खुशी स्वीकार कर लेते हैं और कदाचित् गर्व का अनुभव भी करते हैं।

विकसित और विकासशील देशों की तर्ज पर हिंदुस्तान में भी दो तरह के लोग हैं। एक मुट्ठी भर वे लोग हैं, जो इंडिया का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरी तरफ मरने-खपनेवाले वे लोग हैं, जो भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं और उससे भी बड़ी सच्चाई यह है कि इनमें 40 फीसदी गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं, जिन्हें दो जून की रोटी, सिर पर छत और बदन पर कपड़े मयस्सर नहीं हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि निजी चैनलों पर चंद खाए-पिए लोगों का कब्जा है। वे जो चाहते हैं, वैसे कार्यक्रम ही टेलीविजन के लिए बनवाते हैं। मशहूर पत्रकार श्री प्रभाष जोशी कहते हैं कि टेलीविजन को देखने से लगता ही नहीं कि इस देश में कहीं गरीबी है। जिस चैनल पर देखो, लोग नाचते-गाते दिख जाते हैं। सवाल है, वे नाचने-गानेवाले कौन लोग हैं? क्या वे दो जून की रोटी के लिए जद्दोजहद करनेवाले लोग हैं, राशन की लाइनों में खड़े लोग हैं, रोजगार कार्यालयों में रोजगार पाने की हसरत लिये बेरोजगार नवयुवक हैं, कुँवारी लड़की के लिए कम दहेज देकर एक अच्छा दूल्हा खोजनेवाले बाप हैं, लोगों के लिए अनाज पैदा करके खुद आत्महत्या करनेवाले किसान हैं, ये कौन लोग हैं? बीस फीसदी शहरों की जिंदगी से जुड़े समाचारों में 80 फीसदी गाँवों की समस्याएँ कहाँ हैं? कहाँ है वह किसान, मजदूर और अपने अस्तित्व के लिए जूझता ग्रामवासी? टेलीविजन पर खाना-खजाना दिखाना आसान है, लेकिन किसके लिए? जिसके पास चिकन होगा, उसमें डालने के लिए मेवे-मसाले होंगे, वही तो चिकन हाँड़ी खाएगा। जिसको दाल-रोटी तक मयस्सर नहीं, उसके लिए किस काम का है यह कार्यक्रम।

मीडिया के मालिक अपने चैनल की टी.आर.पी. बढ़ाने के चक्कर में आज अपराध संबंधी खबरों को ग्लैमरस ढंग से पेश करने में अधिक रुचि लेते हैं। ग्रामीण विकास से जुड़ी खबरों को प्राथमिकता नहीं देते। हमारे देश की 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है, लेकिन देश के अधिकतर समाचार-पत्र नगरों से निकलते हैं। इससे भी अधिक दुःखद बात यह है कि समाचार-पत्रों का चरित्र नगरीय या नगरोन्मुखी है। समाचार-पत्रों में वही लिखा जाता है कि जो आसानी से हाथोहाथ बेचा जा सके। अपराध और सेक्स से जुड़े समाचार हाथोहाथ बिकते हैं, लेकिन इनसे समाज को कुछ नहीं मिलता, बल्कि कुछ जाता ही है। मीडिया का मानना है कि गरीबी से जुड़ी समस्याओं की चर्चा से विज्ञापनों को बटोरा नहीं जा सकता। किसी दूर-दराज गाँव में क्या हो रहा है, इसमें कारपोरेट जगत् की कोई दिलचस्पी नहीं होती। विकास का मुद्दा पाखंड की तरह दिखाई देने लगा है।

जिन माध्यमों का उद्देश्य कभी जनता को शिक्षित करना हुआ करता था, वही माध्यम आज लोगों का कोरा मनोरंजन कर रहे हैं। वे समाज के प्रति अपने दायित्वों से दूर होते जा रहे हैं। आज मीडिया काल्पनिक और लुभावनी कथाओं के जरिए लोगों को नकली दुनिया में पहुँचा रहा है। 'शक्तिमान' धारावाहिक को देखकर काल्पनिक दृश्यों को असली समझकर छह मासूम बच्चे मौत की नींद में सो गए। विदेशी तर्ज पर बने तारा, रीमिक्स आदि धारावाहिकों का असर हमारी

भारतीय संस्कृति पर सीधे चोट करके पाश्चात्य संस्कृति को स्थापित करने में है। फलतः समाज में हिंसा, अश्लीलता और असामाजिक अव्यवहार को बढ़ावा मिल रहा है। टेलीविजन के विज्ञापन में स्टंट करता हुआ हीरो देखकर आज के युवा भी दिल्ली की सड़कों पर बाइक के स्टंट करने के लिए रात को निकल पड़े और सड़क हादसों का शिकार हुए।

विज्ञापनों के जरिए लोगों में उपभोक्तावाद, अर्थात् किसी चीज का उपभोग करके उसे फेंक देना और दूसरी चीज को खरीद लेना को बढ़ावा मिला है। पहले यह होता था कि लोग एक घड़ी से सारी जिंदगी गुजार देते थे। उस घड़ी के साथ उनका भावनात्मक संबंध स्थापित हो जाता था और यही संबंध रिश्तों में भी बरकरार था, इसी कारण घर-परिवारों में प्रेम और आपसी सद्भाव था, परंतु आज न वस्तुओं के साथ भावनात्मक संबंध है, और न रिश्तों में पहले जैसी मिठास है। रिश्तों को भी तुरंत तोड़कर नया रिश्ता बनाने की ललक भी इसी उपभोक्तावाद की ही देन है, जिसके कारण शादी के बाद कुछ ही महीनों या दिनों में तलाक हो रहे हैं। हिंसा और क्रूरता को आधुनिक मुहावरों के साथ मजबूत करने में टेलीविजन की बहुत बड़ी भूमिका है। चार वर्ष के दो बच्चे मिलकर तीन वर्ष की एक लड़की की पत्थर मार-मारकर हत्या करके उसकी लाश नाले में डाल देते हैं। एक नौकर ने मालिक की हत्या करने के बाद स्वयं कबूल किया कि एक सच्ची घटना पर आधारित एक टी.वी. कार्यक्रम ने उसे मालकिन की हत्या करने की प्रेरणा दी। टेलीविजन का सबसे बड़ा दर्शन है—खाओ, पियो, मौज करो। विज्ञापनों ने हमारी आत्मवादी संस्कृति को भोगवादी संस्कृति में तब्दील करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

इतना ही नहीं, पुरुषों से संबंधित चीजों (परफ्यूम, सूटिंग-शर्टिंग, शेविंग-क्रीम आदि के विज्ञापन में महिलाओं को सेक्स आइटम के रूप में पेश किया जाता है। अर्द्धनग्न लड़कियों की सेक्सी अदाएँ युवाओं को कैसे भ्रमित कर रही हैं और वे उसी परफ्यूम को लगाना पसंद करते हैं। एक्स परफ्यूम के विज्ञापन में लड़का-लड़की आपस में टकराते हैं, लड़की के हाथ से पूजा की थाली गिर जाती है, पर परफ्यूम की स्मैल (खुशबू) से वह भूल जाती है और कल्पनालोक में लड़के की बाँहों में झूलने लगती है। लड़का पूजा की थाली लड़की को पकड़ाता है और लड़की मुसकराती है। परफ्यूम के इस विज्ञापन ने तो पूजा की पवित्र थाली की भी परवाह नहीं की। ऐसे विज्ञापनों में नारी को उपभोग की वस्तु के रूप में दिखाया जाता है। अर्थात्, भौतिक वस्तुओं का अधिक-से-अधिक भोग करके सुख प्राप्त करना ही पाश्चात्य दर्शन का लक्ष्य है। खाओ-पियो, मौज करो, कल किसने देखा है—पाश्चात्य दर्शन का मूलमंत्र है। फलतः जिस प्रकार वस्तुओं को 'यूज' करके तुरंत फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार रिश्तों को भी तुरंत 'यूज' करके फेंक दिया जाता है, अर्थात्, 'यूज एंड थ्रो' की यह वृत्ति रिश्तों पर हावी है। आज उपभोक्तावाद का दायरा इतना व्यापक होता जा रहा है कि सांस्कृतिक और आदर्श की बात करनेवाले लोग हास्यास्पद और अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। विज्ञापनों को यदि जनसंचार माध्यमों की 'बैकबोन' कहा जाए तो गलत न होगा।

मीडिया का सामाजिक सरोकार

समाज और मीडिया एक ही सिक्के के दो पहलू नजर आते हैं। मीडिया के बिना आज समाज की कल्पना भी करना कठिन है। समाज में परिवर्तन लाने में मीडिया ने अंग्रेजी राज से लेकर अब तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अंग्रेजी राज की मुखालफत करते हुए जन-जागरण को सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों की बंद गलियों से निकालकर विवेक के खुले उजले चौराहे तक लाने में जनसंचार माध्यमों ने क्रांतिकारी भूमिका निभाई है। तीन-चार दशक पहले तक किसी नव-

विवाहिता को आशीष देते हुए कहा जाता था, 'दूधो नहाओ पूतो फलो'। सात बेटों की माँ होना सौभाग्य का सूचक होता था। पर आज वह बात नहीं है। सीमित परिवार और 'हम दो हमारे दो' का नारा और इस थीम पर बने अनेक कार्यक्रम अब न तो किसी को चौंकाते हैं और न ही यह अब मजाक का विषय हैं। अब चेचक के बारे में बहुत हद तक यह माना जाने लगा है कि वहाँ चेचक शीतला माता के नाखुश होने जैसे दैवी प्रकोप के कारण नहीं, बल्कि कुछ रोगाणुओं के कारण होती है। इसी प्रकार कुष्ठ रोग अब पूर्वजन्म के पापों का फल नहीं, बल्कि इसी जीवन में लगनेवाला एक रोग है, जिसका उपचार भी संभव है। समाज को अधोगति की ओर ले जानेवाले ऐसे अनेक अंधविश्वासों और रूढ़ियों को जनसंचार की सहायता से बदला जा चुका है।

जनसंचार माध्यमों के द्वारा समाज में व्यापक परिवर्तन संभव है। ब्रिटेन के मध्ययुगीन समाज में हजारों स्त्रियों को चुड़ैल समझकर मौत के घाट उतार देने की परंपरा रही हो या भारत में बाल-विवाह और सती-प्रथा, उन सबको समाज द्वारा नकारे जाने के पीछे मीडिया की ही देन है। दृष्टिकोण, आस्था और सामाजिक मूल्यों को बदलने और शिक्षित करने के लिए जनसंचार माध्यमों ने उदारीकरण के दौर में सन् 1990 तक कारगर भूमिका निभाई। किंतु 90 के दशक के बाद मीडिया की भूमिका समाज के लिए कतई नहीं है। आज समूची दुनिया में परिवर्तन का दौर पूरी तरह अर्थ पर केंद्रित है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभावों के चलते मीडिया की भूमिका भी प्रभावित हुई है। यह प्रश्न विचारणीय है कि उदारीकरण के बाद से ऐसा क्या हुआ कि मीडिया की भूमिका ठीक विपरीत नजर आने लगी?

इसमें संदेह नहीं कि भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर तक पहुँचते ही पूरी दुनिया में चमत्कारिक परिवर्तन हुए हैं। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में भयंकर बदलाव वर्तमान समाज में जनसंचार माध्यमों के बिना हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे रहन-सहन के ढंग पर जनसंचार माध्यमों का जबरदस्त असर है। समाचार-पत्रों के बिना सुबह का नाश्ता बेस्वाद हो जाता है, जो समाचार नहीं पढ़ पाते वे ताजातरीन खबरें जानने के लिए टी.वी. खोल लेते हैं। महानगरों में युवा पीढ़ी विश्व भर की ताजातरीन जानकारियों के लिए इंटरनेट का उपयोग कर रही है और शादी-ब्याह के लिए रिश्ते ढूँढ़ने का जो काम पहले नाई करता था, वही काम आज समाचार-पत्रों में मैट्रिमोनियल और इंटरनेट पर शादी डॉट कॉम और जीवनसाथी डॉट कॉम जैसी साइट्स के जरिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। रेलवे में आरक्षण कराने से लेकर मोबाइल, बिजली आदि का बिल जमा करवाने के लिए अब लंबी-लंबी कतारों में नहीं खड़ा होना पड़ता। घर या कहीं भी इंटरनेट के जरिए ये काम कुछ ही मिनटों में तुरंत हो जाते हैं। मीडिया ने इस प्रकार हमारी जिंदगी को और ज्यादा आरामदेह और ज्यादा समर्थ बनाया है। हमारे सामाजिक जीवन को और अधिक क्षमतावान और सक्रिय बना दिया है।

राजनेता मीडिया से अभिव्यक्ति की आजादी छीन लेना चाहते हैं। इन राजनेताओं से पूछना चाहिए कि क्या पैसे लेकर संसद् में सवाल पूछनेवाले सांसदों को बेनकाब करनेवाला ऑपरेशन दुर्योधन जनहित में नहीं था? क्या सांसद विकास निधि में फंड रिलीज करने के बदले कमीशनखोरी करनेवाले सांसदों के चेहरे उजागर करना जनहित के खिलाफ था? क्या फर्जी मुठभेड़ के नाम पर किसी बेकसूर को मार गिरानेवाली पुलिस के खिलाफ ऑपरेशन जनहित में नहीं था? क्या धूसखोरों के घोंसलों में तब्दली हो चुके आयकर विभाग, सेल टैक्स विभाग, तिहाड़ जेल और नासिक जेल की असली तसवीर खुफिया कैमरे में कैद करना जनहित में नहीं

था? या फिर जेसिका लाल के मामले में गवाही से पलट जानेवालों का स्टिंग ऑपरेशन करना गलत था? ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं, जो स्टिंग ऑपरेशन को जनहित में साबित करनेवाले सुबूत पेश करते हैं। सूचना और प्रसारण मंत्री तो डंके की चोट पर कह रहे हैं कि स्टिंग ऑपरेशन बंद होने चाहिए। सच तो यह है कि स्टिंग ऑपरेशन के खिलाफ नेतागण उसी दिन से हो गए, जिस दिन उनकी बिरादरी पर भी न्यूज चैनलों ने हाथ डाल दिया था। मीडिया लोकतंत्र में जनहित की रक्षा करता है, अगर रक्षा करने के लिए वह खुफिया कैमरों का इस्तेमाल करता है तो बुरा क्या है?

धूमिल कहते हैं—"अपने यहाँ संसद्/ तेल की वह घानी है, जिसमें आधा तेल है और आधा पानी है।" ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि लोकतंत्र भारत का सुहाग-चिह्न है, ठीक उसी प्रकार से जैसे मंगलसूत्र, बिछिया या सिंदूर धारण किए हुए स्त्री को देखकर पता चलता है कि उसका पति जिंदा है। पति गूँगा, बहरा, अपाहिज हो, क्षय रोग से ग्रस्त हो, उससे हर तरह का संवाद खत्म हो चुका हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। औरत है तो सधवा ही। ठीक उसी प्रकार संविधान को स्थगित करके, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को हरकर, आपातकाल लगाकर तथा लोकतंत्र के चारों स्तंभों को कमजोर करके, उनका मनोबल तोड़कर भी भारत में लोकतंत्र है तो जीवित। आज जिस उद्देश्य को लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया शुरू हुआ था, वह अब कोसों पीछे चला गया है। बच्चों के हाथों में पेन की जगह रिमोट आ गया है। वह किताबों के पन्ने पलटने के बजाय टेलीविजन पर बार-बार चैनल बदलते रहते हैं। सामाजिक सरोकार उसके लिए गौण हो गए हैं। इसीलिए मीडिया पर प्रतिबंध लगाने की माँग भी जोर पकड़ रही है। वहीं दूसरी ओर मीडिया की वकालत करनेवाले लोग भी कम नहीं हैं, उनका मानना है, तब जब विधायिका, कार्यपालिका निष्पक्ष न हों और जनप्रतिनिधि भी अपने कर्तव्यों से मुँह मोड़कर भ्रष्टाचार और तानाशाही में लिप्त हो जाएँ, ऐसे समय में आम जनता का कोई प्रतिनिधित्व कर सकता है तो वह मीडिया का अद्यतन रूप ही है। हम आशा कर सकते हैं कि—"अब आजाद होगी भूमि, अब आजाद होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव अब आजाद होंगे खेत, अब आजाद होंगे कारखाने···नागार्जुन की ये पंक्तियाँ मीडिया से समाज की अपेक्षाओं को रेखांकित करती हैं। समाज मीडिया से अपेक्षा करता है कि वह अपने कारपोरेट चरित्र से ऊपर उठकर समाज हित में कार्य करेगी।

मीडिया को यदि समाज के वातावरण को मापनेवाला तापमापक या समाज का दूरबीन कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मीडिया समाज का आईना है, मीडिया जनता की संसद् है, जिसका अधिवेशन सदा चलता रहा है। इस मीडियारूपी संसद् का कभी सत्रावसान नहीं होता। जिस प्रकार संसद् में विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर चर्चा की जाती है, विचार-विमर्श किया जाता है, सरकार का ध्यान आकृष्ट किया जाता है, ठीक उसी प्रकार मीडिया का स्वरूप भी व्यापक तथा बहुआयामी होता है। नेपोलियन चार विरोधी अखबारों से जितना भयभीत रहता था, उतना चार बटालियनों से भी नहीं। इससे मीडिया की महिमा व महत्त्व प्रतिपादित होता है। मीडिया की शक्ति के विषय में अकबर इलाहाबादी का यह कथन सटीक ही है—

"खींचों न कमान को,
न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो
अखबार निकालो।"

□

npmishrajnvu@gmail.com

काशी की हिंदी पत्रकारिता : अतीत से अनागत तक

—प्रो. राम मोहन पाठक

हिंदी को सँवारने-सँजोने में पत्रकारिता की भूमिका एतिहासिक रही है। तकनीकी दृष्टि से हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि भले ही कलकत्ता (अब कोलकाता) रही हो, पर हिंदी पत्रकारिता को विकसित, पुष्पित, पल्लवित करने और इसके विकास का सुपुष्ट आधार तैयार करने का श्रेय काशी की पत्रकारिता को है। हिंदी के पहले पत्र 'उदंत्त मार्तंड' के सुधी संपादक पंडित युगल किशोर सुकुल ने कलकत्ता की आमड़ातल्ला गली के छोटे से कमरे से पत्रकारिता का जो बीज बोया, वह काशी की ऊर्जा से अनुप्राणित होकर ही हिंदी पत्रकारिता के वर्तमान वटवृक्ष का रूप ले सका।

भारतीय पत्रकारिता का इतिहास साक्षी है कि हिंदी पत्रकारिता को भाषा, कथ्य, समाचार-शैली, विचार प्रस्तुति और पत्रों के कलेवर (दृश्य स्वरूप) के परिमार्जन और अभिनवीकरण की दृष्टि से काशी ने लगभग दो शताब्दी (197 वर्ष) की अवधि में सतत् योगदान किया। काशी के हिंदी पत्रों, संपादकों और पत्रकारों ने पत्रकारिता के सार्वदेशिक मानदंड स्थापित और प्रस्तुत किए। भारतीय पत्रकारिता के विकासक्रम के इतिहास में काशी की पत्रकारिता के इन आयामों के दृष्टिगत ही 'काशी स्कूल ऑफ जर्नलिज्म' की मान्यता मिली। देश की राजनीतिक राजधानी दिल्ली भले ही रही हो, पर हिंदी पत्रकारिता की राजधानी, साहित्य की राजधानी सहित सांस्कृतिक राजधानी का गौरव काशी को प्राप्त है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का अवदान साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में युगांतरकारी था। ब्रजभाषा मिश्रित बोलियों के स्थान पर व्याकरणसम्मत खड़ी बोली हिंदी को भारतेंदु ने हिंदी गद्य के परिष्कार का माध्यम बनाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यता है—'हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी चंद्रिका में प्रकट हुआ।' भारतेंदु की पत्रिका 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' को हिंदी के परिष्कार का यह ऐतिहासिक श्रेय प्राप्त है। उर्दू को संचार और पत्र-पत्रिकाओं यानी पत्रकारिता की भाषा प्रचलित उर्दू के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी को स्थापित करने का श्रेय भारतेंदु मंडल द्वारा सूत्रपात की गई गद्य लेखकों की परंपरा को जाता है। अतः स्पष्ट है कि काशी की पत्रकारिता ने हिंदी गद्य का आमूल परिष्कार करते हुए गद्य साहित्य में खड़ी बोली हिंदी को प्रतिष्ठित किया और भाषिक शुद्धता के नए आयाम और प्रतिमान स्थापित किए, जो आज भी प्रासंगिक हैं तथा व्यवहार में प्रचलित भी हैं।

---

* दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई के पूर्व कुलपति।

काशी की पत्रकारिता का गौरवशाली इतिहास केवल काशी ही नहीं, समस्त भारतीय हिंदी पत्रों का उज्ज्वल इतिहास है। तब अन्य माध्यम नहीं थे। पत्र-पत्रिकाएँ ही सूचना, शिक्षा, मनोरंजन और विचार-व्यवहार का माध्यम थीं। काशी से प्रकाशित कई सौ पत्र-पत्रिकाओं की लंबी सूची में धर्म और जाति आधारित, साहित्य केंद्रित, महिलाओं, बच्चों के विषय पर केंद्रित, समाचार-विचार केंद्रित तथा विशेष रूप से भारत की अंग्रेजी दासता की मुक्ति के संकल्प पर आधारित 'मिशनरी' पत्र-पत्रिकाओं की परंपरा इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण हैं कि काशी की पत्रकारिता की मूल आत्मा 'मिशन' या संकल्प-समर्पण थी।

काशी के भारतेंदु की संपादकीय दृष्टि तत्कालीन परिवेश में अद्यतन, नवीन एवं प्रयोगधर्मी थी। भारत की स्वाधीनता के संकल्प को 'सत्व निज भारत गहै' कहकर उन्होंने अपनी पत्रकारिता का मूलमंत्र माना। 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (बाद में- हरिश्चंद्र चंद्रिका) को उन्होंने सामाजिक, वैचारिक तथा राजनीतिक परिवर्तन का हथियार बनाया। उनकी दूरदृष्टि ही थी कि उन्होंने स्त्रियों के सर्वांगीण विकास और शिक्षण हेतु 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका प्रकाशित की। वस्तुतः काशी से प्रकाशित भारतेंदु की इन पत्र-पत्रिकाओं की गूँज संपूर्ण हिंदी जगत् की प्रेरणा बनी। भारतेंदु लोकशिक्षक संपादक-पत्रकार थे। वे प्रयोजनमूलक पत्रकारिता (एक्शन जर्नलिज्म) के प्रयोगधर्मी संपादक और संचारक थे।

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के शीर्ष अध्येता विद्वान् पंडित श्री नारायण चतुर्वेदी ने हिंदी पत्रकारिता के इतिहास का पाँच सोपानों में काल विभाजन किया—1826 से 1870, 1870 से 1900, 1900 से 1920, 1920 से 1948 तथा 1948 से 1974। इस काल विभाजन का क्रम भले ही 'उदंत्त मार्तंड' (1926) से प्रारंभ होता है, पर अगले तीन कालखंडों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि काशी की पत्रकारिता इन तीन कालखंडों का मूल आधार रही। काशी का इन कालखंडों में योगदान ऐतिहासिक और अविस्मरणीय रहा। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध में काशी की पत्रकारिता यात्रा प्रारंभ हुई। 1845 में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने 'बनारस' अखबार यदुनाथ थत्ते के संपादन में, काशी के प्रथम समाचार-पत्र के रूप में प्रारंभ कराया। उसी समय से प्रारंभ काशी के संपादकों-पत्रकारों की एक यशस्वी, दीर्घ परंपरा स्थापित हुई। इन संपादकों-पत्रकारों का कृतित्व इस तथ्य का साक्षी है कि प्रारंभिक दौर में प्रायः सभी साहित्यकारों ने आनुषंगिक ही नहीं, मूल कार्य के रूप में पत्रकारिता का भी वरण किया। काशी की पत्रकारिता परंपरा साहित्य और पत्रकारिता के दीर्घकालीन अन्योन्याश्रित संबंधों का जीवंत उदाहरण है। पत्रकारिता और पत्र-पत्रिकाओं को साहित्य के संचार के माध्यम के रूप में स्थापित कर काशी की पत्रकारिता ने जो मार्ग प्रशस्त किया, वह हिंदी ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के लिए आदर्श और अनुकरणीय है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक बाबू श्यामसुंदर दास की प्रेरणा से प्रकाशित 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका, 'इंदु' (अंबिका प्रसाद गुप्त) 'भारत जीवन' तथा प्रेमचंद की पत्रिका 'हंस' ने हिंदी में नई लेखन शैली और हिंदी-उर्दू अनुवाद की नवीन परंपरा कायम की। 'सुदर्शन' पत्र भाषा के संदर्भ में हिंदी की नई यात्रा में नया मील का पत्थर था। काशी से प्रकाशित प्रमुख पत्रों में 'जनवार्त्ता', 'गांडीव', 'सन्मार्ग', 'खबर' और

'संसार' सदृश दो सौ से अधिक पत्र-पत्रिकाओं ने परंपरा को अपने योगदान से समृद्ध किया है। भाषा और मुद्रण में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग भारतेंदु मंडल के लेखकों-पत्रकारों ने किया। यह प्रयोग था पूर्ण विराम (।) की जगह बिंदु (.) का प्रचलन-प्रयोग। आगे 20वीं शती में प्रकाशित हो रही 'टाइम्स' समूह की विश्रुत पत्रिकाओं 'धर्मयुग', 'सारिका', 'दिनमान' आदि में विराम की जगह बिंदु का प्रयोग किया जाता रहा। 'आज' का बहुविध योगदान इतिहास में दर्ज है। इसका 'काशी अंक', 'प्रेमचंद अंक', 'स्वर्ण और रजत जयंती अंक', 'आज सायं समाचार' दैनिक और इसका साप्ताहिक विशेषांक पत्रकारिता की धरोहर हैं। काशी के पत्रों ने समाचार-विचार रिपोर्टिंग, संपादकीय अग्रलेखों, टिप्पणियों की एक विशिष्ट परंपरा कायम की। 'आज' ने हिंदी पत्रकारिता में कार्टूनों की विशेष परंपरा को जन्म दिया। इसके कार्टूनिस्ट श्री केदार, श्री कंठाले, श्री कांजिलाल भारतीय पत्रकारिता में कार्टून क्षेत्र के इतिहास पुरुष हैं। 'आज' ने श्री, सर्वश्री, राष्ट्रपति, काररवाई, मुद्रास्फीति, लालटेन, लोकतंत्र, नौकरशाही जैसे अनेकानेक शब्द पत्रकारिता को दिए। संपादक पराड़कर की लेखनी इन शब्दों के प्रणयन-प्रचलन का सूत्र बनी। 'आज' ने समाचार-पत्रों के लेखकों को पुरस्कार देने का क्रम स्थापित और अग्रसर किया।

काशी की पत्रकारिता में 'संसार' (संपादक-पराड़करजी) और 'हंस' (प्रेमचंद) का स्थान अमिट है। 'हंस' के परामर्शमंडल में गांधीजी, मैथिली शरण गुप्त सहित 11 भाषाओं के सलाहकार थे। आचार्य शिवपूजन सहाय के संपादन में प्रकाशित जागरण, महामना मालवीय का पत्र 'सनातन धर्म' और बौद्ध भिक्षु धर्मरक्षित की पत्रिका 'धर्मदूत' का काशी की हिंदी पत्रकारिता के श्रीवर्धन में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास एवं समृद्धि के लिए 'आज' के संपादक पंडित बाबूराम विष्णु पराड़कर ने बहुमुखी प्रयास किया था। नई प्रतिभाओं की खोज और उनकी रचनाधर्मिता की निष्पक्ष परख उनकी खास विशेषता थी। हिंदी के प्रतिनिधि लेखकों से उनका घनिष्ठ संपर्क रहता था। वे उनसे प्राय: विभिन्न समसामयिक विषयों पर विचार-विमर्श किया करते थे। पराड़करजी ने 'आज' के माध्यम से स्वयं साहित्यिक विषयों पर समर्थ लेखन प्रस्तुत किया और अपनी लेखनी से दिवंगत हिंदी साहित्यकारों की स्मृति रक्षा का प्रयास किया। पराड़करजी के प्रोत्साहन और प्रयास से ही 'उग्रजी' जैसे दुर्धर्ष हिंदी लेखक का साहित्य श्रेत्र मे पदार्पण हुआ। पराड़करजी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पुरुषोत्तम दास टंडन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, नंददुलारे वाजपेयी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त, गोविंद नारायण मिश्र, पद्म सिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, रामचंद्र वर्मा, श्यामसुंदर दास, आचार्य नरेंद्र देव, संपूर्णानंद, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि हिंदी साहित्य के महारथियों से निकट संपर्क रखते थे और 'आज' के लिए उनको सेवाएँ प्राप्त करने का प्रयास करते थे। भारतेंदुजी की कृतियों तथा मुंशी प्रेमचंद की प्रतिभा का सही मूल्यांकन करने में पराड़करजी को काफी सफलता मिली थी। उन्होंने काशी में प्रेमचंद का स्मारक बनाने के लिए सदाकत आश्रम में जाकर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद से व्यक्तिगत बातचीत की थी।

जिन दिनों भाषा का परिमार्जन हो रहा था, उन्हीं दिनों काशी में 'माधुरी और हंस' के द्वारा नई संचेतना तथा गद्य का नया रूप प्रकाश में आ रहा था। उन दिनों के पत्रकार अपना सर्वस्व बलिदान कर हिंदी भाषा साहित्य और हिंदू संस्कृति का

उत्थान चाहते थे। वे अपने सिद्धांतों के प्रति इतने निष्ठावान होते थे कि प्रतिकूल परिस्थितियों के भयंकर आघात से भी अपने आदर्श से विचलित नहीं होते थे।

गांधी युग के मूर्धन्य पत्रकार थे आचार्य शिवपूजन सहाय। आचार्य शिवजी ने 'आज' के माध्यम से भी हिंदी की बड़ी सेवा की। वे कोरे पत्रकार ही नहीं, श्रेष्ठ साहित्यकार भी थे और उन्होंने अपने संपादकीय जीवन में अनेक साहित्यकारों का निर्माण किया। समलोचकों के अनुसार वे हिंदी के अप्रतिम उन्नायक थे। जीवन भर संपादन करते रहने पर भी उनकी सृजनशक्ति अकुंठित थी। हिंदी से उन्हें अनन्य प्रेम था और इसकी उन्नति की संभावना के प्रति वे पूर्ण आश्वस्त थे। वे हिंदी को 'विश्वव्यापिनी भाषा' देखना चाहते थे। उनका विश्वास था कि संसार के सभी प्रख्यात विश्वविद्यालयों में हिंदी की शिक्षा दी जाएगी और एक दिन राष्ट्रसंघ की भी भाषा हिंदी होकर रहेगी। वे खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, सदा-सर्वदा हिंदी के उन्नयन और विकास की चिंता किया करते थे।

काशी से भी अनेक गैर-व्यावसायिक लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इनमें 'परिक्षेत्र', 'अवांतर', 'अभियान', 'पारपथ' आदि प्रमुख हैं। बहुत सी लघु पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। कुछ दिन तक चलीं, फिर बंद हो गईं। ये पत्रिकाएँ जनवादी या जन-पत्रिकाओं के रूप में प्रचारित की जाती हैं, किंतु इनका संबंध आम आदमी से कम और लेखकों तथा बुद्धिजीवियों से अधिक रहा। यही कारण है कि ये सीधे संवाद का माध्यम नहीं बन सकीं। सच्चाई यह है कि ये लघु पत्रिकाएँ अवसरवादी तथा सुविधाभोगी लेखकों के लिए उपयोग की चीज बन गई। वे, जो सिर्फ छपना चाहते थे, वे जो कवि और कहानीकार बनना चाहते थे और वे, जो शोहरत हासिल करना चाहते थे। उन सबके लिए ये पत्रिकाएँ खिलौना बन गईं और अपने-अपने ढंग से अपने अहं की तुष्टि का साधन बन गईं।

बनारस हास्य-रस के पत्रों का केंद्र रहा है। बेढब बनारसी के संपादन में 'तरंग' नामक पाक्षिक कई वर्ष निकला। 'अजगर', 'करेला', 'भूत', 'बेडब' नामक हास्य-रस के पत्र एवं पत्रिकाएँ निकलीं और बंद हुईं। 'करेला' हास्य-व्यंग्य प्रधान पाक्षिक पत्र था। इसके संपादक थे श्री बेढब बनारसी और गोविंद प्रसाद केजरीवाल। इसके मुखपृष्ठ पर एक बड़ा सा व्यंग्य चित्र छपा करता था। 'खुदा की राह पर' शीर्षक हास्य-व्यंग्य मासिक बहुत समय तक बनारस से निकला। इसके मुखपृष्ठ पर एक व्यंग्य चित्र निकला था। 'खैराती खाँ की झोली से' शीर्षक हास्य रस की टिप्पणियाँ इसमें बराबर निकलती थीं। 'बनारसी बैठक' शीर्षक स्तंभ में हास्य-व्यंग्य की कविताएँ प्रकाशित होती थीं। 'बिखरे हुए फूल' स्तंभ में उर्दू की हास्य रस की कविताएँ प्रकाशित होती थीं। 15 जुलाई 1940 के अंक के मुखपृष्ठ पर एक नवाब साहब का चित्र छपा था, जो काफी सजीव था।

1920-21 में प्रसिद्ध हिंदी दैनिक 'आज' में हास्य-व्यंग्य के दो स्तंभ थे। एक था 'मस्तराम का मंतव्य' तथा दूसरा था 'ऊटपटाँग'। 'भारतीय' उपनाम से बेचन शर्मा 'उग्र' लिखा करते थे। 1925 में 'आज' में हास्य स्तंभ का शीर्षक 'भंग की तरंग' हो गया। 'भंग की तरंग' के बाद 'आज' में हास्य व्यंग्य का स्तंभ 'अरबी न फारसी' शीर्षक से निकलने लगा। इसको लिखते थे प्रसिद्ध हास्य-व्यग्यकार श्री बेढब बनारसी।

बनारस के प्रसिद्ध दैनिक 'संसार' का हास्य स्तंभ 'छरहरे' नाम से भी बेढबजी लिखते थे। 'लस्टम-पस्टम' रुद्रजी तथा 'स्वतंत्र भारत'

लखनऊ में 'काँव-काँव' शीर्षक से हास्य स्तंभ बलदेव प्रसाद मिश्र लिखते थे। वाराणसी और दिल्ली से प्रकाशित 'भूदान पत्र' में हास्य-व्यंग्य का भी मजेदार स्तंभ रहता था। कलकत्ता से काशी आने पर पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'उग्र' नामक पॉकेट-पत्र निकाला था, जो अपनी सूझ-बूझ और साहित्यिक छटा के लिए स्मरणीय रहेगा।

जयशंकर प्रसाद परम रसिक थे, अत: हास्य से दूर रह पाना उनके वश की बात नहीं थी, किंतु प्रसादजी जिस वातावरण में पैदा हुए और रह रहे थे, वहाँ हास्य को अश्लील और व्यर्थ की हा-हा-ठी-ठी समझा जाता था। यही कारण था कि मिजाज से रसिक और विनोदप्रिय होने के बावजूद प्रसाद की अधिकांश रचनाओं में हास्य का अभाव दिखाई देता है। जहाँ कहीं उन्होंने आवश्यकतावश हास्य लाने की कोशिश भी की है, तो वह नीरस हो गया है।

काशी से प्रकाशित 'हंस' और 'जागरण' में भी स्तंभ लेखन के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। ज्यों-ज्यों गद्य का विकास होता गया, इस विधा में स्कैच, डायरी, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि भी शामिल होते गए। 'आज' के अरबी ना फारसी, 'बनारस' में 'गहरेबाजी' स्तंभ अपने समय में बहुपठित और काफी चर्चित थे। श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब' भी अच्छे स्तंभकार थे।

पत्रकारिता के क्षेत्र में व्यंग्य-विनोद और छींटाकशी की शैली पर लंबी अवधि काशी का एकाधिकार रहा है। काशी के पत्रकारों की इस विशिष्ट शैली से लोहा लेना किसी के वश की बात नहीं थी। 'आज' में 'चलती चक्की', 'गहरे पानी पैठ' और 'जनवार्त्ता' दैनिक में 'आठवाँ कॉलम' चर्चित स्तंभ रहे हैं।

काशी के पत्रों में नियमित स्तंभ के रूप में दैनिक रूप से लघु कविता के प्रकाशन की परंपरा की नींव पड़ी। कार्टून की ही तरह अनेक पत्रों की लोकप्रियता उनके स्तंभ लेखन के कारण स्थापित हुई। काशी के पत्रों में 'चिट्ठी' के प्रकाशन की परंपरा प्रारंभ हुई। 'गाँव की चिट्ठी', विभिन्न प्रदेशों की 'चिट्ठी' प्रकाशित होती रही। 'आज' में 'चंदामामा' के संपादक बालशौरि रेड्डी की दक्षिण भारत की 'चिट्ठी' काफी चर्चित थी।

आजादी के संघर्ष में अंग्रेजों द्वारा दमन की क्रूरता भी काशी की पत्रकारिता के अदम्य साहस, पराक्रम को डिगा न सकी। अनेक गुप्त समाचार-पत्र—'रणभेरी', 'रणडंका', 'शंखनाद', 'क्रांति', 'चिनगारी' आदि का प्रकाशन और परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रेरणा काशी की पत्रकारिता के स्वाधीनता संग्राम में योगदान की प्रेरक गाथा है। आपातकाल के दौरान 1975-76 में 'आज', 'जनवार्त्ता', 'गांडीव' आदि पत्रों को सेंसर का सामना करना पड़ा। भगवानदास अरोड़ा (गांडीव), श्यामा प्रसाद प्रदीप (जनवार्ता) को जेलयात्रा भुगतनी पड़ी, फिर भी अत्याचार के विरोध का पत्रों का स्वर मुखर रहा।

काशी की प्रायः दो सौ साल प्राचीन हिंदी पत्रकारिता की परंपरा के संवर्धन में हिंदीतर भाषी संपादकों का योगदान ऐतिहासिक रहा है। हिंदी पत्रकारिता की बृहत्त्रयी पराड़करजी, गर्देजी, खाडिलकरजी (सभी हिंदीतर भाषी-मराठी भाषी) की परंपरा से आगे अंबिका प्रसाद वाजपेयी का कृतित्व हिंदी पत्रकारिता के संवर्धन में ऐतिहासिक था। 1920 में (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, 5 सितंबर) 'आज' के प्रकाशन से पूर्व 'आज' की संपादकीय नीति के निर्धारण हेतु विमर्श के लिए पराड़करजी ने पूना (पुणे) जाकर 'मराठा' और 'केसरी' के संपादक बाल गंगाधर तिलक से मार्गदर्शन प्राप्त किया। लगभग आठ दशकों तक उत्तर प्रदेश

के बड़े भूभाग में 'आज' तो समाचार-पत्र का पर्याय था। प्रथम संपादक श्री श्रीप्रकाशजी के बाद पराड़करजी के संपादन में 'आज' स्वाधीनता संग्राम का मुख्य अस्त्र था। आगे चलकर पंडित कमलापति त्रिपाठी ने संपादन का भार सँभाला। 'आज' को 'लंदन टाइम्स' की तरह 'अंतरराष्ट्रीय स्तर का प्रभावशाली पत्र' बनाने के संकल्प के साथ राष्ट्ररत्न शिव प्रसाद गुप्त ने इसे प्रकाशित कराया। 'आज' सरकारी दमन का सामना करते हुए प्रकाशित होता रहा। पराड़करजी जेल गए। अखबार अंग्रेजों के दमनचक्र के कारण बार-बार बंद हुआ। संपादकीय विभाग में वरिष्ठतम श्री विद्याभास्करजी को भी गिरफ्तार किया गया। किंतु 'आज' स्वाधीनता प्राप्ति हेतु संघर्ष की अपनी नीति पर अडिग रहा।

काशी की वर्तमान पत्रकारिता पराड़करजी द्वारा वृंदावन हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए व्याख्यान के उस अंश का ही प्रतिरूप है, जिसमें उन्होंने चेतावनी दी थी कि भविष्य में पत्र 'सर्वांग सुंदर'—रंगीन होंगे, अर्थात् कलेवर विकसित होगा, परंतु पत्रकारिता और पत्रों की आत्मा या इसका मूल कमजोर होगा। उनका आशय पत्रों या मीडिया की अंतर्वस्तु की साख-सरोकार या इसके प्रभावोत्पादक सामर्थ्य के क्षरण से था। पराड़करजी की भविष्यवाणी सच साबित होती दिखाई पड़ रही है। आज काशी से 8 दैनिक पत्र, दर्जनों साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं, किंतु 'जनता का मुखर स्वर' बनने का पत्रों या मीडिया का सामर्थ्य क्षीण होता जा रहा है। 'मीडिया' की 'एजेंडा सेटिंग' (मार्गदर्शक-नियामक) भूमिकावाले पत्रों का प्रभाव क्षीण होता जा रहा है। विज्ञापन—और व्यवसायीकरण के सिद्धांतों, दबावों तथा अन्य कारकों का निर्वाह पत्रों का मुख्य और स्पष्ट उद्देश्य बन गया है। पत्रों के निरंतर बढ़ते मूल्य सामान्य पाठक की जेब पर बड़ा भार हैं। काशी की पत्रकारिता विचारों की संवाहक रही है, किंतु अब यह तत्त्व क्षीण होता जा रहा है। विचारशून्यता अंतर्वस्तु की विशेषता-सी बन गई है। केवल सूचना और मनोरंजन से सराबोर अंतर्वस्तु में 'विचार' तत्त्व ढूँढ़ना मुश्किल है। भाषा और वर्तनी की शुद्धता (एकरूपता) की चिंता समाप्त-सी हो गई है। तथ्यों को ठोंक-बजाकर देखने (चेक, रीचेक, क्रॉस चेक) की प्रक्रिया प्रायः शून्य-सी हो गई है, जिसके परिणामस्वरूप 'भूल सुधार' प्रायः पत्रों में दिखाई पड़ना स्वाभाविक है।

काशी की पत्रकारिता का लंबा, गौरवशाली इतिहास गौरवशाली रहा और यह इसकी पूँजी भी है। हिंदी पत्रकारिता की परंपरा 'काशी-परंपरा' के रूप में प्रतिष्ठित है। काशी की पत्रकारिता, पत्रकारों-संपादकों ने हिंदी पत्रकारिता के विकास की जो आधारभूमि तैयार की, समूची हिंदी पत्रकारिता उसकी ऋणी रहेगी।

□

rammohanpathak@gmail.com

भारतीय साहित्य और संस्कृति को हिंदी की देन बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

—संपूर्णानंद

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाएँ

—पूर्णिमा वर्मन

जब हम अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं की बात करते हैं तो भारत सहित अनेक देशों में प्रकाशित बहुत सी विधाओं में रची गई कई प्रकार की पत्रिकाएँ ध्यान में आती हैं। इनमें से कुछ का वितरण सीमित क्षेत्र में होता है और कुछ का एक से अधिक देशों में। इनमें बहुत सी पत्रिकाएँ कागज पर प्रकाशित होती हैं और बहुत सी पत्रिकाएँ वेब पर। अनेक पत्रिकाएँ ऐसी भी हैं, जो कागज और वेब दोनों पर प्रकाशित होती हैं। ऐसा भी है कि किसी पत्रिका का कागज पर प्रकाशित संस्करण देश में पढ़ा जाता है जबकि वेब पर प्रकाशित संस्करण विदेशों में। यह लेख उन पत्रिकाओं के विषय में है जिनका प्रकाशन और प्रसारण एक से अधिक देशों में है।

वेब पर प्रकाशित पत्रिकाओं की बहुविध तकनीकी-शैलियाँ हैं जैसे पी.डी.एफ. पत्रिकाएँ, फिल्पबुक पत्रिकाएँ, इंटरनेट पर पढ़ी जानेवाली पत्रिकाएँ और वेब पोर्टल। कुछ पत्रिकाएँ ऐसी हैं जिन्हें केवल ऑनलाइन पढ़ा जा सकता है और कुछ ऐसी जिन्हें डाउनलोड करके ऑफलाइन भी पढ़ा जा सकता है। अनेक वेबसाइटें ऐसी भी हैं जिनमें सामग्री को बिना किसी तिथि के जोड़ दिया जाता है, जिनमें पाठक को यह नहीं पता चलता कि कितने अंक प्रकाशित हुए और कब प्रकाशित हुए। इन वेब साइटों में यह भी पता नहीं चलता कि पत्रिका के प्रकाशन की अवधि साप्ताहिक है, पाक्षिक है, मासिक है, वार्षिक है या अनियतकालीन है। इन्हें पत्रिकाएँ माना जाए या केवल वेब पोर्टल, यह संवाद और विवाद का विषय हो सकता है। बहुत सी भारतीय पत्रिकाएँ, जो भारत में कागज पर प्रकाशित होती हैं, उनके वेब संस्करण भी मुफ्त उपलब्ध कराए जाते हैं उदाहरण के लिए वागर्थ, अमृत प्रभात, हरिगंधा, मधुमती आदि। निश्चय ही ये अंक विदेशों में भी पढ़े जाते हैं और डाउनलोड करके पाठक उन्हें अपने पास सुरक्षित भी रखते हैं।

अनेक पत्रिकाएँ ब्लॉगर और वर्डप्रेस पर भी प्रकाशित होती हैं और इनके पाठक भी हजारों की संख्या में हैं। बहुत से लोग समझते हैं कि ब्लॉगर वेब पर पहले होस्ट हैं और इससे पहले वेब पर आम आदमी के लिए कोई ठिकाना नहीं था, लेकिन 1995 में जब मैंने दिन में लगभग 6-8 घंटे वेब सर्फिंग शुरू की तब पाया कि वेब पर अनेक हिंदी साइट थीं। कुछ अलग-अलग हिंदी फॉण्टों में बने थे तो कुछ में लिपि को इमेज बनाकर अपलोड किया गया था। उस समय इन्हें वेब होम कहा जाता था। हम मित्र इन्हें हिंदी में जालघर कहते थे। प्रमुख वेब होस्ट थे—जियोसिटीज और

---

* अभिव्यक्ति और अनुभूति वेब पत्रिका, संयुक्त अरब अमीरात की संपादिका।

एंजिलफायर। ब्लॉगर का उस समय जन्म भी नहीं हुआ था। इसलिए इन जाल स्थलों का नाम ब्लॉग होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ब्लॉगर का जन्म इसके 4 साल बाद 1999 में हुआ। 1995 से पहले भी कुछ हिंदी साइट जरूर बनी होंगी लेकिन या तो मेरा उनसे परिचय स्थापित नहीं हो पाया। मुझे देशभक्ति की कविताओं और अन्य कविताओं की कुछ हिंदी साइटों का ध्यान आता है, जो पारिजात आदि फॉण्टों में बनी थीं, लेकिन इस समय वे वेब पर नहीं हैं।

इनमें से जो मुझे बिल्कुल ठीक से याद हैं, उनमें पहला जालघर था डॉ. विनोद तिवारी का, जो जियोसिटीज में इस पते पर था—www.geocities.com/athens/forum/1179. इस जालघर पर उनकी कविताएँ पढ़ी जा सकती थीं। डॉ. तिवारी कोलोराडो, अमरीका में रहते हैं और एक राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थान में वैज्ञानिक के रूप में कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त हैं। वे संप्रति वाणी मुरारका के काव्यालय में संपादक हैं।

1995-96 में निर्मित एक और जालघर था, जो बेंगलुरु के राज जैन ने एंजिलफायर पर बनाया था। वे मूल रूप से राजस्थान के थे और बेंगलुरु से एम.बी.ए. करने के बाद अपने व्यवसाय में वहीं स्थापित हो गए थे। उनकी कविताएँ सरल शब्दों और सुंदर कल्पनाओं के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ करती थीं। 'राज जैंस पोइट्री' नामक उनके इस जालघर पर उनके गीत, गजल और कुछ अंग्रेजी रचनाओं का संग्रह किया गया था। यह जालघर अभी भी देखा जा सकता है और इसका पता है—http://www.angelfire.com/ab/rajji/index.html 'आहट' नाम से उनकी गजलों का एक और जालघर जियोसिटीज पर था, जिसका पता था—

http://www.geocities.com/Paris/Boutique/3908/index.html पर वे अपने गीत और गजल अंग्रेजी लिपि में लिखा करते थे। उन्होंने 'आखर' नामक अपना एक और जालघर भी बनाया था, लेकिन अब मुझे यह याद नहीं है कि इसे कहाँ होस्ट किया गया था। राजजी नाम से लोकप्रिय ये रचनाकार साउथ एशियन वुमेन फोरम के भी नियमित रचनाकार थे। उनके एक गीत—'ये कैसी मीठी उलझन है' को अमेरिका के शेखर फाटक और तेजस्विनी फाटक ने अपनी धुन और आवाज से सजाया था। 2001 में अनुभूति के जन्म के बाद वे हमारे नियमित रचनाकारों में से एक बने रहे। दुर्भाग्य से राज जैन अब हमारे बीच नहीं हैं। हृदयाघात से असमय ही (अपने जीवन के चालीसवें दशक में) उनका देहांत हो गया।

'काव्यालय' नाम से एक और महत्त्वपूर्ण जालघर था, जो 1997 में वाणी मुरारका ने बनाया था। इसका पता था—(www.geocities.com/Tokyo/9785/) वाणी मुरारका कोलकाता में पली-बढ़ी हैं। वहीं स्नातक शिक्षा पूरी करने के बाद, उन्होंने कुछ समय तक अपना सॉफ्टवेयर का व्यवसाय किया। इसके बाद वे अमरीका के एक विश्वविद्यालय में कंप्यूटर विज्ञान में पी-एच.डी. करने चली गईं। वे कवि और चित्रकार भी हैं। उनकी कविताओं और चित्रों में मानवीय भावनाओं की कोमल अभिव्यक्ति है। 'काव्यालय' उनकी मौलिक वैचारिकता और हिंदी काव्य में उनकी रचनात्मक रुचि का प्रतिबिंब है। उन दिनों विश्व में अंतरजाल अधिक प्रचलित नहीं था। भारत में तो इसका आरंभ हुआ ही था और अधिकांश लोग अंतरजाल से बिल्कुल अपरिचित थे। उस समय, विशेष रूप से भारत में, यह कल्पना ही कठिन थी कि एक ऐसी सुविधा उपलब्ध की जा सकती है, जिससे घर बैठे पाठकों को निःशुल्क हिंदी काव्य की झलक मिल सके।

1997 के आसपास अमेरिका से अंशु श्रीवास्तव और लोकेश जौहरी ने 'उद्गम' नामक एक वेब पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह सही अर्थों में वेब पत्रिका थी, क्योंकि इसकी अवधि निश्चित थी। यह प्रतिमाह प्रकाशित होती थी।

शेरो-शायरी और 'रामचरितमानस' का एक और विशाल जालस्थल सुमन कुमार घई ने जियो सिटीज पर बनाया था, जिसके शायरी जालघर का पता था— www.geocities.com/sumankghai और रामचरितमानस वाले जालघर का पता था— www.geocities.com/sumankghai कनाडा से हिंदी के विकास में सुमन कुमार घई का विशेष योगदान है। वे लंबे समय तक अभिव्यक्ति में कनाडा के सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर आधारित स्तंभ 'कनाडा कमान' भी लिख चुके हैं। कनाडा से प्रकाशित होनेवाली त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी चेतना' के सह-संपादन और हिंदी साहित्य सभा, कनाडा के महासचिव का दायित्व सँभालने के बाद अंतरजाल पर साहित्य कुंज के प्रकाशन और संपादन में व्यस्त हैं। 'हिंदी राइटर्स गिल्ड' का संस्थापक सदस्य होने के साथ वे शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली व्यावसायिक पारिवारिक पत्रिका 'कैनेडियन पत्रिका' के मुख्य संपादक भी हैं। इसके साथ ही वे संवेदनशील कवि और अद्भुत कहानीकार हैं।

1995 में मुझे पता चला कि बिना खर्च के वेब पर अपनी पसंद से कुछ भी लिखा जा सकता है। उस समय वेब पर अनेक फोरम थे, जिसके सदस्य वेब होम बनाने पर सहयोग करते थे। उनके सहयोग से मैंने मेरा अपना जालघर जियोसिटीज पर 1996 में बनाया था, जिसका पता था—http://www.geocities.com/SoHo/Village/8682/ मेरी विशेष रुचि जावा स्क्रिप्ट के द्वारा कविता को सजीव करने में थी। लेकिन बाद में मैंने अपनी कविताएँ, भारतीय संस्कृति से संबंधित चित्रमय जानकारी तथा पेंसिल स्केच, वाटरकलर पेंटिंग्स और पसंद की दूसरी चीजें इस साइट पर अपलोड की थीं। मेरी कविताओं के साथ त्योहारों पर शुभकामनाएँ भेजनेवाले पृष्ठ इस साइट पर इमेज रूप में थे, जिन्हें जावा स्क्रिप्ट से सजीव किया गया था। कालांतर में यही साइट अभिव्यक्ति और अनुभूति नामक दो पत्रिकाओं में रूपांतरित हुईं और 15 अगस्त, 2000 को इसे एक नियमित मासिक पत्रिका का रूप मिला। वर्ष 2001 से ये पाक्षिक हो गईं। मई 2002 से ये माह में चार बार प्रकाशित होती थीं। पहली, 8वीं, 16वीं और 24वीं तारीख को। 1 जनवरी, 2008 से ये साप्ताहिक पत्रिका के रूप प्रति सोमवार प्रकाशित होने लगीं। 1 सितंबर, 2015 से ये पुनः पाक्षिक हुईं और 1 अप्रैल, 2017 से ये मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगीं। इन दोनों पत्रिकाओं के सभी अंक पुरालेख में व्यवस्थित किए गए हैं। इसमें भारतीय साहित्य, संस्कृति, कला, परिवार और भारतीय दर्शन के अनेक विषयों को स्थान दिया गया है।

1996 में हिंदी वेब फॉण्ट के जनक हर्ष कुमार ने भी जियोसिटीज पर एक वेबसाइट बनाई थी जिसका पता था—http://www.geocities.com/SiliconValley/Lab/9988/faq.htm. इस पर सुशा का बीटा संस्करण जारी किया गया था। यह अपने आप में एक ऐतिहासिक कार्य था। इसी फॉण्ट में अभिव्यक्ति तथा अनुभूति की रचना की गई थी। इसी तरह मुझे याद पड़ता है कि आज हिंदी के क्षेत्र में तकनीकी क्रांति के लिए सुप्रसिद्ध रवि रतलामी का भी जियोसिटीज पर एक जालघर था और वे मेरे साथ किसी वेबरिंग में भी जुड़े हुए थे। वेबरिंग एक प्रकार के लिंक होते थे जिनके द्वारा पाठक एक जाल स्थल से दूसरे जाल स्थल तक पहुँच जाता था।

1997 में भारत दर्शन का पहला वेब संस्करण जारी हुआ। न्यूजीलैंड से प्रकाशित इस वेबसाइट का संचालन रोहित कुमार हैप्पी कर रहे थे। बहुत सालों तक कुछ ही पृष्ठों तक सीमित यह वेबसाइट 2020 के आसपास सक्रिय हो उठी और कुछ नवीन सामग्री इसमें दिखाई देने लगी। इस पत्रिका के विषय मूल रूप से साहित्यिक हैं। रोहित कुमार हैप्पी न्यूजीलैंड में हिंदी के पठन-पाठन, विकास कार्यक्रमों को आयोजित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। कोविड के दिनों में साथ जुड़कर कुछ महत्त्वपूर्ण ऑनलाइन कार्यक्रम और वेबिनार भी उन्होंने आयोजित किए हैं।

जियोसिटीज के बंद हो जाने से इनमें से बहुत से जालघर आज वेब पर नहीं हैं। लेकिन इनके कुछ-न-कुछ हिस्से 'वे बैक मशीन' पर देखे जा सकते हैं। दुर्भाग्य से इन सभी साइटों के प्रारंभिक अंक 'वे बैक मशीन' में सेव नहीं किए गए हैं। सबसे पुराना अंक 15 जनवरी, 1999 का राज जैन की साइट का सेव किया हुआ, मुझे मिला है। लेकिन आशा है, किसी-न-किसी वेबसाइट ने कहीं-न-कहीं इन्हें इतिहास में कैद किया होगा जिससे इनकी प्रामाणिकता सिद्ध हो सकेगी।

इसी समय के आसपास 1997 में 'दैनिक जागरण' और 1998 में वेब दुनिया ने भी अपने वेब संस्करण जारी किए, जिससे भारतीय समाचारों को हिंदी भाषा में पढ़ने की पहल हुई। इन दोनों पत्रिकाओं के अपने फॉण्ट थे और वेब दुनिया ने फॉण्ट को डायनेमिक बनाकर सबसे पहले अपनी साइट को ऐसा बनाया जिसके लिए फॉण्ट डाउनलोड नहीं करना पड़ता था।

कागज पर प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं की बात करें तो इनका इतिहास वेब से पुराना है। फिजी के पूर्व युवा तथा क्रीड़ा मंत्री, संसद सदस्य डॉ. विवेकानंद शर्मा का हिंदी के प्रति गहरा लगाव था। फिजी में हिंदी के विकास के लिए वे निरंतर प्रयत्नशील रहे। 1982 के आसपास 'उदयाचल' नामक एक पत्रिका और 'प्रशांत समाचार' नामक समाचार-पत्र प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ। 90 के दशक में डॉ. विवेकानंद शर्मा द्वारा फिजी में प्रकाशित संस्कृति नाम की एक पत्रिका के कई अंक मुझे नियमित रूप से शारजाह में प्राप्त होते रहे थे। अनेक विदेशी पत्रिकाओं की तरह यह भी एक व्यावसायिक पत्रिका नहीं थी। डॉ. विवेकानंद शर्मा के अनुसार संस्कृति के साथ-साथ हिंदी महापरिषद् द्वारा एक और मासिक बुलेटिन 'लहर' प्रकाशित कर नि:शुल्क वितरित किया जाता था।

1997 में ब्रिटेन से 'पुरवाई' नामक पत्रिका का प्रकाशन होने लगा। इसका संपादक मंडल ब्रिटेन में है और प्रकाशकों की टीम भारत में। पद्मेश गुप्त के संपादन में यह त्रैमासिक पत्रिका कागज पर प्रकाशित की जाती थी। 2019 से यह कथाकार तेजेंद्र शर्मा के संपादन में वेब पर साप्ताहिक रूप से प्रकाशित की जाने लगी। लंदन की ही एक और साहित्यकार शैल अग्रवाल वर्ष 2007 से 'लेखनी' नामक वेब पत्रिका प्रकाशित कर रही हैं। यह पत्रिका दो माह में एक बार प्रकाशित होती है।यूरोप के अन्य देशों की बात करें तो नॉर्वे से भी कई हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें 'शांतिदूत' (द्विमासिक 1990), 'त्रिवेणी' (संपादक : कैलाश राय, द्विमासिक, 1993), 'स्पाइल' (सुरेश चंद्र शुक्ल, तीन भाषाओं में हिंदी, अंग्रेजी और नॉर्वेजियन 1988) परिचय, 'पहचान' आदि इनमें प्रमुख हैं।

15 जनवरी, 1999 के आसपास अंशु श्रीवास्तव और लोकेश जौहरी ने 'उद्गम' नामक एक वेब पत्रिका यू.एस.ए. से प्रकाशित करना आरंभ किया था। यह एक संपूर्ण आकार-प्रकारवाली,

विधिवत् अंकों और स्तंभों में विभाजित सही अर्थों में वेब पत्रिका थी। इसके प्रमुख स्तंभों में कहानी, कविता, लेख, भाषा, कला के नए पहलू, फोटो, चित्रकारी और चुटकुले थे। विशेष बात यह थी कि इन्होंने अपनी पत्रिका के लिए हिंदी फॉण्ट भी बनाया था। यह उस समय की बात है जब यूनिकोड नहीं था और वेब पर हिंदी में वेब पर कुछ भी प्रकाशित करना आसान नहीं होता था। लगता है कि यह पत्रिका 2005 के आसपास किसी समय बंद हो गई।

इसके आसपास ही 'बोलोजी' नामक एक वेब पत्रिका आई, जो बाद में 'हिंदी नेस्ट' के नाम से परिवर्तित हो गई। यह पत्रिका यू.एस.ए. से राजेंद्र चौधरी प्रकाशित करते हैं।

वर्ष 2003 में यूनिकोड आया और धीरे-धीरे वेब पर हिंदी प्रकाशित करना आसान होने लगा।

2005 से कनाडा से सुमन कुमार घई ने 'साहित्य कुंज' नामक एक वेब पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्रिका भी साहित्यिक है। इसमें गद्य और पद्य की अनेक विधाएँ शामिल हैं और इसमें भारत सहित प्रवासी देशों के अनेक रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं।

वर्ष 2008 से संयुक्त अरब अमीरात की राजधानी आबूधाबी में रहनेवाले कथाकार कृष्ण बिहारी के संपादन में प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'निकट' अर्धवार्षिक है। यह पत्रिका मूल रूप से साहित्यिक अभिरुचि की है जिसमें कहानी कविता, संस्मरण लेख आदि प्रकाशित होते हैं।

यू.एस.ए. से प्रकाशित होनेवाली वेब पत्रिकाओं की बात करें तो वैश्विक पहुँचवाली, हिंदी की अग्रणी मासिक पत्रिका 'सेतु' अमेरिका के पिट्सबर्ग नगर से 2016 से प्रकाशित होती है। अन्य हिंदी पत्रिकाओं से अलग 'सेतु' के हिंदी संस्करण के साथ-साथ उसका स्वतंत्र अंग्रेजी संस्करण भी हर महीने आता है। सेतु के अतिरिक्त विश्व हिंदी न्यास की पत्रिका 'हिंदी जगत्', विश्व हिंदी ज्योति की पत्रिका 'हिंदी कौस्तुभ', विश्व हिंदी समिति की पत्रिका 'सौरभ', अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की पत्रिका 'विश्वा' व हिंदी क्लब ऑफ इलिनॉय की पत्रिका 'दृष्टि' सहित कई हिंदी पत्रिकाएँ इस समय अमेरिका की भूमि से प्रकाशित हो रही हैं।

साहित्यिक अभिरुचिवाली पत्रिकाओं के अलावा संयुक्त राष्ट्र समाचार, अमेरिका की धरती से हिंदी में प्रकाशित होनेवाला एक प्रमुख हस्ताक्षर है। अमेरिका से प्रकाशित पत्रिकाओं में प्रसिद्ध हिंदी व अंग्रेजी लेखिका मुक्ता सिंह जॉक्की द्वारा संपादित 'ई-कल्पना' अकेली ऐसी पत्रिका है, जो अपने लेखकों को मानदेय देती रही है। कथाकार सुधा धींगड़ा द्वारा 2015 में स्थापित 'विभोम-स्वर' और श्री आत्माराम शर्मा के संपादन में 2006 से प्रकाशित 'गर्भनाल' यू.एस.ए. की महत्त्वपूर्ण मासिक पत्रिकाएँ हैं। इन पत्रिकाओं के मूल स्वर साहित्यिक हैं, लेकिन इसमें सामाजिक और राजनीतिक विषयों के लेख भी रहते हैं। 'हिंदी जगत्', 'हिंदी बालजगत्' एवं 'विज्ञान प्रकाश' विश्व हिंदी न्यास समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएँ हैं जिनका वितरण अनेक देशों में किया जाता है। 2008 से प्रकाशित अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, सेलम की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'इ-विश्वा' अनेक वर्षों तक प्रकाशित होने के बाद संभवतः 2011 में बंद हो गई।

'अन्यथा' नामक एक और वेब पत्रिका यू.एस.ए. से कृष्ण किशोर के संपादन में प्रकाशित होती थी, जिसका पहला अंक अक्तूबर 2004 में प्रकाशित हुआ था। अपनी तरह की यह पहली पत्रिका थी, जो हिंदी, अंग्रेजी, फ्रेंच और स्पैनिश चार भाषाओं में प्रकाशित होती थी। यह पत्रिका लगभग 2008 के आसपास बंद हो गई।

रूस में अन्य भारतेतर देशों की अपेक्षा हिंदी का अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार अधिक है। रूस ही ऐसा पहला देश है जिसने राजभाषा हिंदी को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। कागज पर प्रकाशन की बात करें तो रूस से हिंदी के स्तरीय प्रकाशन हुए हैं तथा मास्को में एक हिंदी प्रकाशन गृह भी स्थापित है। यहीं से 'सोवियत संघ' नाम का एक हिंदी मासिक पत्र 1972 से प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ था। यह सचित्र पत्र था तथा सोवियत विषयों पर आधारित अनेक लेख इसमें प्रकाशित होते रहते थे। यह पत्र हिंदी के अतिरिक्त संसार की अन्य 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता था। इसके प्रधान संपादक थे श्री निकोलाई ग्रिवाचोव। मास्को से दूसरी हिंदी पत्रिका थी—सोवियत नारी। यह मासिक पत्रिका थी तथा इसकी प्रधान संपादिका थी—व.ई. फेदोतोवा तथा हिंदी संस्करण के संपादक थे—श्री ई.पा. गोलुबेन। यह भी संसार की लगभग 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होती थी। इसमें सोवियत महिलाओं के जीवन का सचित्र चित्रण होता है। ये पत्रिकाएँ किसी समय में भारत में बहुत लोकप्रिय थीं। मुझे ठीक से पता नहीं है कि वे अभी भी भारत में मिलती हैं या नहीं। वी.एफ. शकाल्याबिन के संपादन में 'सोवियत संघ' के भारत में स्थित दूतावास के सूचना विभाग द्वारा 'सोवियत दर्पण' का प्रकाशन दिल्ली से हो रहा है। यह पत्रिका सोवियत और भारत की मित्रता के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण कड़ी है। तजाकिस्तान के राजदूत द्वारा 'आईनन हिंद' नाम से मासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। डॉ. राजाबौव हबीबुल्लौ इस पत्रिका का संपादन कर रहे हैं।

अमेरिका से 2022 में न्यूयॉर्क स्थित भारतीय कौंसलावास के सहयोग से निकलनेवाली वैश्विक हिंदी पत्रिका 'अनन्य' अनूप भार्गव ने अपने संयोजन और निरीक्षण में फ्लिप बुक्स शैली में आरंभ की है। इसमें बहुत से देश शामिल हुए हैं और हर देश से एक अलग 'अनन्य' पत्रिका वेब पर प्रकाशित होती है। इसमें अनन्य सिंगापुर, अनन्य यू.ए.ई., अनन्य ब्रिटेन, अनन्य तंजानिया, अनन्य ऑस्ट्रेलिया, अनन्य रूस, अनन्य जर्मनी, अनन्य कनाडा, अनन्य चीन, अनन्य तंजानिया, अनन्य कीनिया आदि लगभग 12 देश शामिल हैं।

चीन संसार में सर्वाधिक आबादीवाला राष्ट्र है। यहाँ हिंदी का प्रचार-प्रसार तो नहीं किंतु चीन संबंधी जानकारी विभिन्न देशों को देने के लिए वहाँ से 'चीन सचित्र' नामक एक हिंदी मासिक पत्र निकलता है। यह विश्व की 19 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। हिंदी में इसके 326 से अधिक अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसका मुद्रण एवं प्रकाशन बीजिंग से होता है।

बहुत सी वेब पत्रिकाएँ समय-समय पर प्रकाशित हुईं और ज्यादा आगे नहीं चल सकीं, जिसमें भारत में 'अक्षरम' नामक अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था की पत्रिका 'प्रवासी टुडे', बेंगलुरु से प्रकाशित 'कलायन' पत्रिका, 'हिंदी परिचय' पत्रिका, 'लिटरेचर वर्ल्ड डॉट कॉम', 'नया ज्ञानोदय' और 'तद्भव' आदि प्रमुख हैं। हो सकता है कि ये पत्रिकाएँ कागज पर प्रकाशित हो रही हों, लेकिन इनके वेब संस्करण अब उपस्थित नहीं हैं।

□

purnima.varman@gmail.com

भाषा राष्ट्रीय शरीर की आत्मा है।

—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

हिंदी पत्रकारिता में संवाद की आवश्यकता

—रामबहादुर राय

यह न्यू मीडिया का दौर है। इसे अपनी शब्दावली में हम निराकार ब्रह्म कह सकते हैं। जो हर जगह है। प्रचलित शब्दावली में इसे एक नाम और उसके साथ एक पहचान मिली है, जिसे सोशल मीडिया कहा जा रहा है। यह नई तकनीक का कमाल है। ऐसे दौर में हिंदी पत्रकारिता ने अपने लिए किस स्थान को चुना है, उसकी भूमिका क्या है, क्या उसका विस्तार हुआ है, अगर हाँ, तो कितना हुआ है? इसे जाँचने और जानने से पहले हिंदी पत्रकारिता तथा भाषाई पत्रकारिता के लंबे इतिहास पर एक नजर डालनी चाहिए।

भारत में भाषाई पत्रकारिता का एक चमकदार इतिहास है। उसमें हिंदी पत्रकारिता को इसका श्रेय है कि वह ज्यादातर समय में भाषाई पत्रकारिता का नेतृत्व करता रहा है। यह परस्परता हमेशा बनी रही है। जिस तरह स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी का उदय एक परिवर्तनकारी घटना थी, ठीक उसी तरह भाषाई पत्रकारिता को महत्त्व उसी दौर में ज्यादा मिलना शुरू हुआ। हालाँकि ऐसे भी उदाहरण हैं, जो इस सिद्धांत से अलग अपवाद के रूप में गिनाए जा सकते हैं। जैसे एक उदाहरण 'मुंबई समाचार' का है। यह अखबार एशिया महाद्वीप का सबसे पुराना जीवित, जीवंत और जाग्रत् अखबार है। इसका इतिहास बताने की यहाँ जरूरत नहीं है। लेकिन यह दर्ज करना जरूरी है कि यह 1822 से बिना रुके, बिना थके पत्रकारिता के रास्ते पर जनसेवा, जन-जागरण की मशाल लिये आज भी चल रहा है। यह गुजराती भाषा का अखबार है। इसका उल्लेख यहाँ इसलिए करना जरूरी है, क्योंकि स्वतंत्रता संग्राम के उस दौर में एक प्रश्न भाषा का भी उपस्थित हुआ था।

तब अंग्रेजी शासकों में दो धाराएँ थीं। जिस धारा को याद करना चाहिए, उसके प्रणेता माउंट स्टूअर्ट एलफिंस्टन थे। वे मुंबई के गवर्नर थे। मनस्वी साहित्यकार डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने उनको भारत हितैषी अंग्रेज की श्रेणी में रखा है। इसका कारण यह है कि वे उस समय भी चाहते थे कि भारत में शिक्षा भारतीय भाषाओं में हो। भारत की नई शिक्षा नीति में वही बात अब पहली बार सम्मिलित की गई है। प्रश्न यह है कि क्या हिंदी पत्रकारिता की रीति-नीति का संबंध भाषाई नीति से भी है? इसका उत्तर इस पर निर्भर करता है कि इस दौर को भविष्य के भारत की दृष्टि से किस दृष्टिकोण से कौन और कैसे देखता है। इसका संबंध इससे भी है कि हम विश्व को अपनी सनातन मानवीय दृष्टि से देखना चाहते हैं या उस

---

* वरिष्ठ संपादक एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष।

चश्मे से देखना चाहते हैं, जिसे अंग्रेजियत ने हमें दिया है। हिंदी पत्रकारिता में ये दोनों बातें शुरू से ही हैं, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि अंग्रेजियत के दुष्प्रभाव में पुनः हिंदी पत्रकारिता आ गई दिखती है।

इस पर कुछ लोगों को एतराज हो सकता है। वह अपनी जगह है। लेकिन इस यथार्थ से वे भी परिचित हैं, जो एतराज जताएँगे। उस यथार्थ को अगर चिह्नित कर दिया जाए तो यह जानना अधिक सुगम हो जाएगा कि हिंदी पत्रकारिता पर अंग्रेजियत का दुष्प्रभाव कैसे बना हुआ है और उसका अभी क्षरण होना शेष है। इसके लिए इतिहास के उस दौर में हमें झाँकना होगा, जब अंग्रेजी पत्रकारिता को पंख लग रहे थे। वह दौर साम्राज्यवादी विस्तार का था। उसी दौर ने पत्रकारीय घरानों को एक मनोदशा दी। एक व्यापार का रास्ता दिखाया। यह भी सही है कि उसी दौर में राष्ट्रीयता की भी एक धारा फूटी और उसने साम्राज्यवादी विस्तार को चुनौती दी। हर स्तर पर चुनौती दी। जैसे सखाराम गणेश देउस्कर ने देश की बात लिखकर शोषण की कहानी के प्रति भारतीयों को सचेत किया। यह तो बहुत बाद की बात है। तब महात्मा गांधी स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व सँभालने के लिए आए नहीं थे। देश को एक दशक से ज्यादा तब तक इंतजार करना था। लेकिन स्वदेशी और स्वभाषा की चेतना भारत में हिलोरे लेने लगी थी। उसमें उल्लेखनीय योगदान माधवराव सप्रे जैसे महान् पत्रकारों का है, जिन्होंने गीता और महाभारत को जन-जन तक पहुँचाया। हिंदी भाषा ने ऐसे अनेक पत्रकार दिए।

इस तरह पत्रकारिता में दो समानांतर धाराएँ चलने लगी थीं। एक धारा वह थी, जिसकी भाषा अंग्रेजी थी। उस धारा में अंग्रेज जैसा होने का भाव ज्यादा था। इसके कुछ अपवाद भी थे। लेकिन मुख्यधारा तो वही थी, जिस पर अंग्रेजों जैसा होकर पत्रकारिता करने की धुन सवार थी। इसके अग्रणी लोग थे, वैसे दूरदर्शी और पराक्रमी भी थे। लेकिन उन्हें जो बात नहीं सूझी, उसे ठीक से समझ लेना आज के दौर की सबसे बड़ी जरूरत है। उन्हें नहीं सूझा कि अंग्रेजी के जरिए पत्रकारिता की पहुँच सर्वसाधारण नागरिक तक नहीं हो सकती। अंग्रेजी पत्रकारिता की पहुँच सत्ता के दरबार में तो हो सकती है, लेकिन जिनके लिए सत्ता को काम करना चाहिए, वहाँ अंग्रेजी का स्थान काला अक्षर भैंस बराबर ही था। वह आज भी है। ऐसे में उन अखबारों का महत्त्व बढ़ जाता है, जो अपनी भाषा में देश-दुनिया की बात लोगों तक पहुँचाते हैं। इसीलिए 1947 से बहुत पहले भारत के हर कोने से एक आवाज उठनी शुरू हो गई थी कि संपर्क भाषा हिंदी होनी चाहिए।

इसी पृष्ठभूमि में हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास हुआ है। देश तब इस निर्णय की तरफ बढ़ रहा था कि राष्ट्रीय एकता का बोझ हिंदी के कंधों पर डाला जा सकता है। इसका एक अर्थ यह भी है कि उस समय हमारे दूरदर्शी स्वाधीनता सेनानी मानते थे कि हिंदी का कंधा इतना मजबूत है कि वह संपर्क भाषा के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता की कड़ी भी बन सकता है। हिंदी पत्रकारिता ने इसीलिए बहुआयामी स्वरूप ग्रहण किया, जिसके कई आयाम हमारी स्मृतियों में ताजा है। उनमें स्वतंत्रता है, लोकतंत्र है, राष्ट्रीयता है और सर्वधर्म सद्भाव है। ये कुछ ऐसे आयाम हैं, जो स्थाई महत्त्व के हैं। जिनसे भारत का जन-जीवन अपनी सनातन यात्रा में कभी आत्मपरिचय से विमुख नहीं हुआ। यह तो उसका सहज स्वभाव रहा है। अनुकूल परिस्थितियाँ उसे अभिव्यक्त करती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ मौन हो जाने के लिए संकेत देती हैं। लेकिन अंतर्भाव में कोई विराम नहीं होता,

वैसे ही जैसे मनुष्य के जीवन में साँस चलती रहती है, वह अनुभव करे या न करे।

स्वतंत्र भारत के पहले दशक में हिंदी पत्रकारिता ने अपने लिए एक कर्तव्य-बोध का मार्ग चुना। जो नए अखबार उस समय जनमे, वे भारत के पुनर्निर्माण के लक्ष्य से प्रेरित थे। उनमें से अनेक अखबार आज वटवृक्ष हो गए हैं। यह विकास की यात्रा उनके लिए चमत्कारिक है। कुछ हद तक अकल्पनीय है। हिंदी पत्रकारिता ने इन 75 सालों में शिखर चूमा है। आकाश की ऊँचाई को नापा है। इस पर हर हिंदी प्रेमी को प्रसन्न होना चाहिए। लेकिन वह प्रसन्नता तब क्षणिक सिद्ध होती है, जब यथार्थ पर नजर जाती है। स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी पत्रकारिता जिन ध्येयपूर्ण शब्दों से परिपूरित थी वे शब्द मात्र शब्द नहीं थे बल्कि वे जीवन-मूल्य के पथ-प्रदर्शक तत्त्व थे। विस्तार अपने आप में एक शक्ति का द्योतक होता है। लेकिन उससे अगर वह जीवनीतत्त्व विलुप्त हो जाए या उसका क्षरण होने लगे तो समझना चाहिए कि वास्तविकता से विस्तार का कोई संबंध नहीं रह गया है। वह संबंध टूट गया है। ऐसा ही इस समय का यह दौर है, जो आत्मचिंतन की माँग करता है। इस बात की भी माँग करता है कि हिंदी पत्रकारिता अपना आत्मपरिचय खोजे। यह तो बहुत साफ है कि भारत की वर्तमान सरकार ने भारतीय भाषाओं को उसका गौरव लौटाने की राह खोल दी है। किसी को अगर संदेह है तो कह सकते हैं कि वह अपनी आँखें खोलकर देखे। कान से सुने और उस सुगंध को अनुभव करे, जो भाषाई अस्मिता के वातावरण को स्वास्थ्यकर बनाती है।

कुछ दिन पहले ही एक छोटी सी खबर अखबारों में छपी। वह खबर छोटी है, लेकिन घटना बड़ी है। भारत के विदेश मंत्री एस. जयशंकर की पुस्तक अंग्रेजी में आई है। उसकी चर्चा हो रही है। इस चर्चा के बीच वह खबर छपी कि वे पूने में एक समारोह में उपस्थित हुए, जहाँ उनकी पुस्तक का मराठी में अनुवाद हुआ। उस अनुवादित पुस्तक का लोकार्पण समारोह था। अब जो प्रश्न है, वह यहीं से शुरू होता है या नहीं, इसका निर्धारण कौन करे? लेकिन प्रश्न जो है, उससे विमुख नहीं हुआ जा सकता। हिंदी पत्रकारिता अगर मुख्यधारा है तो भाषाई पत्रकारिता उसके वे स्रोत हैं, जिससे वह एक महानद बन पाता है। इस तरह हिंदी पत्रकारिता एक महानद है। उसमें अगर शाश्वत भारतीय जीवन मूल्यों का क्षरण दिखता है तो प्रश्न खड़े होते हैं कि आखिर ऐसा क्यों है? क्या इसलिए है कि हिंदी पत्रकारिता भी जन-जीवन के यथार्थ से दूर होती जा रही है। इसकी पहचान का आधार क्या है?

इसका संबंध पत्रकारिता के मूल आधार से है। इससे भी है कि हिंदी पत्रकारिता में भारतीय जीवन-मूल्य कितना है और कितना उसमें मिलावट आ गई है। यहाँ जीवन-मूल्य को जानने और फिर मानने का प्रश्न है। भारतीय जीवन-मूल्य से निकली पत्रकारिता इस बात पर अपना ध्यान केंद्रित करती है कि उससे अज्ञान का अंधकार कितना दूर होता है। दूसरी तरफ एक और जीवन-मूल्य है, जो सत्य को गढ़ता है। उसे इस प्रक्रिया में सत्य की खोज की चिंता नहीं रहती। जो उसकी समझ है, उसे सत्य के रूप में स्थापित करने में वह लग जाती है। ऐसी पत्रकारिता सनसनी में यकीन करती है। सच से उसका सरोकार नहीं होता।

सच को गढ़ने में उसकी रुचि होती है। इसमें दो तरह की मनोवृत्ति काम करती है। पहली यह कि उसमें यह अहंकार होता है कि दुनिया उससे ही संचालित होती है। दूसरी यह कि वह खबर की परिभाषा निर्धारित करने में स्वयं समर्थ है। इस मनोवृत्ति से जब पत्रकारिता होती है तो वह अज्ञान

को बढ़ाने में मददगार होती है। उसका प्रयास हमेशा आत्मकेंद्रित और संस्थान केंद्रित होता है। समाज हित उसकी नजरों में नहीं होता। इस तरह की पत्रकारिता का दुष्प्रभाव अकसर भयानक होता है। इसके बारे में समय-समय पर मनस्वी पत्रकारों ने चेतावनी भी दी है। नवभारत टाइम्स के विख्यात संपादक राजेंद्र माथुर अकसर कहते थे कि अगर खबर ही पत्रकारों का लक्ष्य बन जाए तो वे अनर्थ में लीन हो सकते हैं। वे एक उदाहरण दिया करते थे कि कोई व्यक्ति ऊँची इमारत पर खड़ा है और उससे कूदकर वह अपनी जान देना चाहता है। नीचे लोग तमाशा देख रहे हैं। उस समय पत्रकार का क्या फर्ज है? यह प्रश्न वे पूछते थे और उसका उत्तर भी देते थे। कहते थे कि अगर पत्रकार को खबर ही सब कुछ लगता है तो वह उस व्यक्ति को इमारत से कूदने में सहायक होगा। उसके लिए वह उसे प्रेरित करेगा। अगर उसे एक व्यक्ति की जान बचाने की चिंता होगी तो वह कोशिश करेगा कि उसे रोके या वह कूद ही पड़ता है तो नीचे जाल बिछाने का यत्न करेगा, ताकि उसे बहुत कम चोट लगे। इस उदाहरण से एक जीवन-मूल्य निकलता है। इसमें ही सनसनी और सरोकार की दृष्टि भी शामिल है।

यह एक ऐसा आधार है, जो इस बात का निर्धारण करने में सहायक हो सकता है कि हिंदी पत्रकारिता में जीवन-मूल्यों का क्षरण हो रहा है या वे जीवन-मूल्य सशक्त हो रहे हैं, जिसके लिए हिंदी पत्रकारिता जानी जाती है। यहाँ यह याद करना चाहिए कि भारत में हिंदी और भाषाई पत्रकारिता का इतिहास स्वाधीनता संग्राम के वाहक के रूप में है। यहीं पर हिंदी पत्रकारिता का स्थान अंग्रेजी और पश्चिम की दूसरी भाषाओं की पत्रकारिता से भिन्न और श्रेष्ठ हो जाता है। लेकिन कुछ बातें समान भी हैं। जैसे कुछ शब्द हैं, जो पत्रकारिता को अर्थ देते हैं। पहला शब्द है—स्वतंत्रता। दूसरा शब्द है—लोकतंत्र। तीसरा शब्द है—राष्ट्रीयता और चैथा शब्द है—सर्व धर्म सद्भाव। इसमें एक शब्द बिना जोड़े बात पूरी नहीं होती। वह शब्द है—पत्रकारीय संस्कृति। इन शब्दों से एक चक्र निर्मित होता है। वह पत्रकारिता की स्थाई धुरी पर घूमता है। प्रश्न है कि पत्रकारीय संस्कृति कैसे बनती है और विकसित होती है? प्रश्न यह भी है कि हिंदी पत्रकारिता आज क्या विकृति का शिकार नहीं हो गई है?

पत्रकारीय संस्कृति के दो स्तंभ हैं। पहला है, संस्थान। जिसे बोलचाल में मीडिया हाउस कहते हैं। दूसरा है, पत्रकार। जो पत्रकार संस्थान से जुड़कर पत्रकारिता कर रहा है, उसकी पत्रकारिता संस्थान की नीतियों और रीतियों से चलती है। हालाँकि संस्थान की प्रवृत्ति और प्रकृति के विपरीत तो उसका पत्रकार नहीं जा सकता, फिर भी वह अपनी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और समाज के प्रति अपने दायित्व को अनुभव कर संस्थान की ही सीमा में एक अनुकरणीय उदाहरण वह चाहे तो प्रस्तुत कर सकता है। इसमें पत्रकार ही अपना निर्णायक होता है। कबीर के कथन को अगर वह अपने जीवन में उतारे तो वह खुद ही तौलता है और खुद ही तराजू भी होता है। लेकिन संस्थान की नीति अगर पत्रकारिता के ऊँचे मूल्यों से संचालित होती है तो पत्रकार को उसमें अपना काम करने की जहाँ सुविधा मिलती है, अनुकूलता होती है, वहीं उसे सार्थकता का हर क्षण अनुभव भी होता है।

पेड न्यूज की घटना एक ऐसी पत्रकारीय संस्थानगत गिरावट है, जिससे पूरी पत्रकारिता उबरती हुई नजर नहीं आती। इससे बहुत नुकसान हुआ है। पत्रकार अगर कोई बेईमान हो जाता है तो उसे चिह्नित करना आसान है। लेकिन संस्थान में ही गिरावट आ जाए तो वह बहुत खतरनाक स्थिति

होती है। उससे हिंदी पत्रकारिता को गुजरना पड़ा है। यह ऐसा अध्याय है, जिसकी चर्चा जितनी भी करें, कम है। लेकिन इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इससे यह समझा जा सकता है कि जिसे अज्ञान के अंधकार को दूर करना चाहिए, वह अज्ञान के अँधेरे कुएँ में गिर पड़ा है और अज्ञानवश पाप कर्म में लिप्त हैं।

क्या न्यू मीडिया के दौर में इसका प्रायश्चित्त हो रहा है? यही वास्तव में जाँचने की जरूरत है। पहले यह समझें कि न्यू मीडिया है क्या? क्या जो बदलाव टेक्नोलॉजी के कारण हुआ है और वह मीडिया में इस्तेमाल हो रही है, उससे ही न्यू मीडिया का सृजन हुआ है। अगर ऐसा है तो टेक्नोलॉजी मात्र से न्यू मीडिया नहीं पहचानी जा सकती। सच यह है कि पत्रकारिता और तकनीक के मिश्रण से न्यू मीडिया बनी है, जिसके अनेक आयाम हैं। एक आयाम का संबंध गति से है। इंटरनेट ने मीडिया को न केवल तेज गति दी है बल्कि उसने वेब मीडिया को जन्म दिया है, जिसमें अभिव्यक्ति को नए आयाम मिले हैं। किसी बात को पाठक तक पहुँचाना बहुत आसान हो गया है, जिसे पत्रकारिता की बोली में प्रसारण कहते हैं, वह अब कुछ क्षण में ही प्रसारित हो सकता है। यह जो तत्काल संभव होनेवाली तकनीक है, उसने एक मिली-जुली मीडिया को साकार कर दिया है। इससे इस दौर की हिंदी पत्रकारिता में ऐसा बदलाव आया है, जिसके लिए बहुत समय प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यह बदलाव पिछली सदी के आखिरी दशक में अपनी आहट को तेज करता हुआ पहुँचा था। तब उसके लक्षण दिखे थे। अब उसकी पूरी छटा हमारे सामने है।

अगर एक विहंगावलोकन करें, तो पाएँगे कि 1947 से 2023 के कालखंड में हिंदी पत्रकारिता अनेक चरणों से होकर गुजरी है। लेकिन उसका पराक्रमी स्वरूप 7वें दशक में उभरा और निखरता चला गया। यह क्रम एक दशक तक बना रहा। वह पिछली सदी का आखिरी दशक है। इस दशक को दो बातों के लिए भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में याद किया जाएगा। पहली बात जो है, वह है अत्यंत महत्त्वपूर्ण। लेकिन कोई इसे याद नहीं करता। वही दशक था, जिसमें हिंदी और भाषाई पत्रकारिता ने हिमालय की चोटी को नाप लिया। अपने प्रभाव को उसने स्थापित किया। जनमत निर्माण में उसकी भूमिका निर्णायक सिद्ध हुई। यह मिथक टूटा कि अंग्रेजी पत्रकारिता से ही जनमत बनता है।

लेकिन उसी दशक में हिंदी पत्रकारिता को नई तकनीक की चुनौतियों से दो-चार होना पड़ा। इस तरह आज करीब 35 साल हो गए हैं, जब भाषाई और हिंदी पत्रकारिता नई चुनौतियों में से अपना रास्ता बना रही है। जहाँ करीब 35 साल पहले हिंदी पत्रकारिता नेतृत्व की भूमिका में आ गई थी, वहाँ अब उसे नई तकनीक या न्यू मीडिया ने अनुसरण के लिए मजबूर कर दिया। इसे एक उदाहरण से समझना चाहिए।

एक दौर था, जब हिंदी पत्रकार अपनी खबर रोमन में लिखकर अखबार में उसे तार से पहुँचाता था। पहले फैक्स ने उसे वह उपकरण दिया, जिसमें उसे अपनी लिखावट में ही खबर भेजने की सुविधा मिल गई। अब इंटरनेट ने पत्रकारिता की दुनिया को बदल दिया है। इंटरनेट की आहट को भारत में सबसे पहले जिस अखबारी घराने ने पहचाना, वह हिंदू अखबार है। 1995 में हिंदू ने अपना वेब संस्करण निकाला। भारत में वेब पत्रकारिता की तब शुरुआत हुई। इसे समझने और अपनाने में दैनिक जागरण को दो साल लग गए। दैनिक जागरण ने 1997 में अपनी वेबसाइट शुरू की। दैनिक भास्कर ने एक साल बाद अपनी वेबसाइट

शुरू की। यह सिलसिला बढ़ा। नई दुनिया ने 1999 में वेब दुनिया नामक वेबसाइट शुरू की।

आज इस न्यू मीडिया में हिंदी और भारतीय भाषाओं के ज्यादातर समर्थ अखबार अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। कोरोना काल में एक नया आयाम जुड़ा और ऑनलाइन पत्रकारिता से घर बैठे काम किया जाता रहा। इसका अर्थ यह है कि उस महामारी के दौर में वेब मीडिया छा गई। यह वेब मीडिया ही वास्तव में न्यू मीडिया है।

इसके अनेक रूप हैं। आजकल हिंदी के नामी अनेक पत्रकार अपना वेब अखबार निकाल रहे हैं। इसमें से अनेक बहुत बढ़िया काम कर रहे हैं। जैसे प्रदीप सिंह, जो वेब चैनल चला रहे हैं, उसका नाम है, 'आपका अखबार।' इसे सुनें तो पाएँगे कि 'आपका अखबार' पत्रकारिता के ऊँचे मानकों को पूरा कर रहा है। लेकिन यही बात हर वेब चैनल के बारे में नहीं कही जा सकती। वेब पत्रकारिता ने अभिव्यक्ति के प्रयास में पंख जोड़ दिए हैं। इसका पूरा अध्ययन भारत में होना है। इसके बारे में दुनिया के दूसरे देशों में अध्ययन का प्रयास शुरू है और उसके कुछ निष्कर्ष भी सामने आए हैं। बिना हिचक के जो बात कही जा सकती है, वह यह है कि न्यू मीडिया ने हर व्यक्ति को समर्थ बनाया है। वह अपने मोबाइल फोन से खुद को वाणी दे सकता है और उसकी आवाज कुछ दूर तक सुनी जा सकती है।

हिंदी में एक किताब आई है, जिसके लेखक दिलीप मंडल और गीता यादव हैं। किताब है—'अन सोशल नेटवर्क।' इसमें एक सूचना है। वह यह कि 2004 में फेसबुक आया। 2006 में ट्विटर आया और 2009 में व्हाट्सएप आया। इनका विस्तार और प्रभाव व्यापक है। इसमें हिंदी और भाषाई पत्रकारिता के स्थान का पत्रकारीय अध्ययन ठीक-ठीक अभी तक नहीं हुआ है। लेकिन इसके अच्छे और बुरे प्रभाव की चर्चा खूब हो रही है। उसे जानने-समझने की जरूरत है। जिस तरह अन सोशल नेटवर्क नामक किताब आई, उसी तरह एक किताब आई है—'दी क्वाइट विफोर : आन दी अन एक्सपेक्टेड ऑफ रेडिकल आइडियाज।' इसके लेखक हैं—'गेल बेकरमैन।' इन दोनों किताबों में न्यू मीडिया का एक अध्ययन है। इनके अध्ययन का सार यह है कि जिस न्यू मीडिया से पहले बहुत उम्मीदें थीं। अब अनुभव आ रहा है कि यह बहुत खतरनाक भी सिद्ध हो रही है। चिंता इस बात की हर जगह पैदा हुई है कि उसके खतरों को कैसे कम किया जाए। इतना तो स्पष्ट हो गया है कि आत्मनियमन का सिद्धांत इन पर लागू नहीं होता। इसलिए सरकारें और समाज की शक्तियाँ उपाय खोजने में लग गई हैं। इसमें केवल सरकार की सलाह काफी नहीं होगी। लोकतंत्र नियम और नियमन से चलता है। नहीं तो अराजकता की काली छाया मँडराती रहेगी।

इस अध्ययन को जब हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में देखते हैं, तो कुछ जो बड़े बदलाव चिह्नित किए जा सकते हैं, वे जहाँ आशाजनक हैं, वहीं चिंताजनक भी हैं। पहला यह कि हिंदी पत्रकारिता नेतृत्व की भूमिका से अपदस्थ हो गई है। यह कई तरह से दिखाई पड़ रहा है। जब जनसत्ता अखबार निकला तो उसने हिंदी को एक नई भाषा दी। वह जनसाधारण की भाषा थी। हिंदी में खड़ी बोली की शुरुआत बहुत पुरानी है। इसका श्रेय अमीर खुसरो को है।

लेकिन हिंदी को जनसाधारण की भाषा बनाने का श्रेय जनसत्ता के संस्थापक-संपादक प्रभाष जोशी को है। वे अकसर यह कहते थे कि हिंदी बढ़ेगी, अगर वह बोलियों से अपने शब्द चुने और उसे चलाए। इसी सूत्र ने जनसत्ता को लोकप्रिय बनाया। उसी दौर में हिंदी पत्रकारिता नेतृत्व के

स्थान पर आई, जिसका अनुकरण हिंदी अखबारों ने भरपूर किया। अब नेतृत्वकारी भूमिका बदल गई है। कहना चाहिए कि उलट गई है। इस तरह न्यू मीडिया के पीछे चलने की भूमिका को हिंदी पत्रकारिता ने मानो स्वीकार कर लिया है। प्रश्न यह है कि क्या यह उचित है? क्या इस भूमिका को बदला नहीं जा सकता? अवश्य बदला जा सकता है। शर्त एक ही है, वह यह कि हिंदी पत्रकारिता अपने को फिर से खोजे। अभी तो यह हो रहा है कि बहस के एजेंडे को न्यू मीडिया तय कर रहा है। इसमें ही शोर-शराबा तो हो रहा है, लेकिन क्या संवाद भी हो रहा है? यही वह सवाल है, जो हिंदी पत्रकारिता के स्थान को निर्धारित करता है। इसी तरह हिंदी में रोमन और वह भी अंग्रेजी की घुसपैठ बढ़ गई है। खबरों की परिभाषा बदल गई है। जो खबरें चलाई जा रही हैं, उन्हें बिना नापे-जोखे हवा में चला दिया जा रहा है, क्योंकि जल्दी पहुँचना है। जल्दी पहुँचने के लिए जल्दीबाजी की एक नई संस्कृति पत्रकारिता में प्रवेश कर गई है, जिसे पत्रकारीय विकृति कहेंगे। इसकी ओर सुधी जन ध्यान अवश्य देंगे। सुधार की कोई राह जरूर निकलेगी।

कोरोना काल से पहले एक दिन नामी पत्रकार एम.जे. अकबर हिंदुस्थान समाचार न्यूज एजेंसी के दफ्तर आए। वे एजेंसी के अध्यक्ष आर.के. सिन्हा के निमंत्रण पर आए। हिंदुस्थान समाचार के पत्रकारों से उन्होंने बात की। अपने भाषण में उन्होंने खबर की एक सुविचारित परिभाषा दी। वह यहाँ बहुत प्रासंगिक है। उन्होंने कहा कि खबर वह होती है, जिसे कोई संपादित करता है, जिसे जाँचा जाता है; जिसकी परख की जाती है। पत्रकारिता के मानदंडों पर जिसे कसा जाता है और फिर उसे प्रसारित किया जाता है। यह अगर आधार हो तो आज हिंदी में भी चाहे अखबार हों या चैनल या निजी वेब चैनल आदि, कोई भी हों, क्या वे ऐसा कर रहे हैं। नहीं कर रहे हैं, इसीलिए पत्रकारिता चाहे हिंदी की हो या दूसरी भाषाओं की हो, उस पर सवाल खड़े हो रहे हैं। इसका संबंध गहरे में लोकतंत्र से है। उस भारत से है, जो अमृतकाल में प्रवेश कर गया है। इसका समाधान खोजना आवश्यक है। इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि संवाद से लोकतंत्र शक्तिवान होता है। व्यर्थ के विवाद से उलझनें बढ़ती हैं। अमृतकाल की माँग सार्थक संवाद की है, न कि व्यर्थ के विवाद की। व्यर्थ के विवाद का खरपतवार जो हिंदी पत्रकारिता में आ गया है, उसे साफ किया जाना समय की जरूरत है।

□

rbrai118@gmail.com

हिंदी समस्त आर्यावर्त की भाषा है।

—शारदाचरण मित्र

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

—कमलापति त्रिपाठी

हिंदी पत्रकारिता का नैतिक दायित्व

—हितेश शंकर

भारत विश्वशक्ति बनने की ओर निरंतर बढ़ रहा है। आर्थिक, राजनीतिक, कूटनीतिक मोर्चों पर इसका परिमार्जन करना सरकार का दायित्व है। वह इसे भली प्रकार कर रही है। परंतु जब देश आगे बढ़ता है तो बहुत सी बाधाएँ, अवरोध आते हैं, विरोधी, देश के दुश्मन षड्यंत्र करते हैं। ऐसे में देश के लिए एकजुट रहकर संघर्ष करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए देश को षड्यंत्रों के प्रति आगाह करने, सत्य को सामने रखते हुए समय की माँग से जनता को अवगत कराने का दायित्व पत्रकारिता का बनता है।

भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या के 17.5 प्रतिशत से अधिक है। भारत की यह जनसंख्या संपर्क के लिए अलग-अलग भाषाओं और बोलियों का उपयोग करती है। परंतु इस विशाल जनसंख्या को एक सूत्र में बाँधने के लिए कोई एक भाषा चाहिए। हिंदी इस भूमिका में है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतेंदु हरिश्चंद्र जब लिखते हैं कि—निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल—

तो वे निज भाषा के रूप में मातृभाषा की बात करते हैं। भारत में मातृभाषा हिंदी, बाँग्ला, असमिया, बोडो, मणिपुरी, संथाली, उड़िया, गुजराती, मराठी, कोंकणी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयाली, डोगरी, कश्मीरी, पंजाबी, मैथिली, सिंधी, नेपाली, संस्कृत आदि हैं, जो संविधान की आठवीं अनुसूची में दर्ज हैं। परंतु अन्य सभी भारतीय भाषाओं को अपने साथ लेकर हिंदी अगुआ है। इसीलिए संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को राजभाषा बताया गया।

हिंदी संपर्क भाषा कैसे है, इसका उदाहरण महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास से मिलता है। प्रो. महावीर सरन जैन अपने एक आलेख में बताते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में नेटाल के सत्याग्रह आश्रम में हिंदी, बाँग्ला, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं के बोलनेवाले बच्चे रहते थे। गांधीजी ने निरीक्षण किया कि खेलते समय वे भिन्न भाषी बच्चे हिंदी बोलते हैं। इससे उन्होंने यह पहचान लिया कि भिन्न भाषियों की संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है। उन्होंने उन बच्चों को हिंदी के माध्यम से पढ़ाना शुरू कर दिया। भारत लौटने के बाद गांधीजी ने पूरे देश का भ्रमण किया तथा हिंदी की अखिल भारतीय भूमिका को जाना तथा यह भी महसूस किया कि देश के किस-किस भाग में हिंदी को जनता की कामचलाऊ भाषा बनाने के

---

* पाञ्चजन्य तथा panchjanya.com के संपादक।

लिए क्या करणीय है, जिससे पूरा देश हिंदी के द्वारा एकजुट होकर राष्ट्रीय आंदोलन की ज्योति को पूरी आभा के साथ आलोकित कर सके।

सन् 1910 में गांधीजी ने कहा—'हिंदुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है।' सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में 26 दिसंबर को 'आर्य समाज मंडप' में गांधीजी के सभापतित्व में 'एक भाषा एक लिपि' विषयक सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें सर्वसम्मति से संकल्प पारित हुआ कि 'हिंदी भाषा और देवनागरी का प्रचार-प्रसार देशहित एवं ऐक्य स्थापना हेतु करना चाहिए।' तमिलभाषी श्री रामास्वामी अय्यर और श्री रंगस्वामी अय्यर इस प्रस्ताव के समर्थक थे।

यह बड़े सहज तरीके से परीक्षा भी लेती रही, समाज का प्रबोधन भी करती रही। हिंदी का शब्द भंडार भी बहुत बड़ा है। साथ ही संस्कृत उद्गम के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द भी इसमें सहजता से समाहित हो जाते हैं।

हिंदी की शैलियाँ बड़ी मारक और चुटीली भी हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपनी इस मुकरी के माध्यम से तत्कालीन ब्रिटिश सत्ता की अंग्रेज सरकार पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि—

"भीतर-भीतर सब रस चूसै।
हँसि-हँसि कै तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन मै अति तेज।
क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज।"

आनेवाले समय में हिंदी पत्रकारिता फेक न्यूज और अन्य नैरेटिव का इसी चुटीली शैली में अपनी परख के साथ, अपने शब्द भंडार के साथ सच सामने ला सकती है।

हिंदी इस पूरी जनसंख्या को वास्तव में जोड़नेवाली भाषा है। भारत की कई भाषाओं का उद्गम दरअसल संस्कृत से होने से उनके शब्दों के भाव आपस में मिलते हैं और एक-दूसरे को जोड़ते हैं। ऐसे में इस भाषा के संपर्क माध्यम होने से हिंदी पत्रकारिता के जिम्मे कुछ दायित्व आ जाते हैं। निश्चित रूप से हिंदी पत्रकारिता को मात्र लाभोन्मुख व्यवसाय के रूप में व्यवहृत नहीं किया जा सकता। हिंदी पत्रकारिता की महती जिम्मेदारी इस विशाल बहुभाषी जनसंख्या को परस्पर जोड़ने और सांस्कृतिक बहुलता को सहेजने की भी है। तो विभाजन रेखाओं वाली खबरों, नैरेटिव, विचार को ठीक करने का काम हिंदी के पास है।

दूसरा, फेक न्यूज अंग्रेजी और अन्य माध्यमों के जरिए ज्यादा फैलती है। आर्यों के बाहर से आने का सिद्धांत, जिसे डॉ. आंबेडकर ने सबूतों के साथ गलत साबित किया और मैक्समूलर को माफी माँगनी पड़ी, ब्रिटिश अर्थशास्त्री एंगस मैडिसन के अनुसार अंग्रेजों के आने से पूर्व विश्व जी.डी.पी. में 24.5 प्रतिशत हिस्सेदारी रखनेवाले भारतीयों को गरीब के रूप में पेश करना, स्वयं 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्वयं अंग्रेजों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 95 प्रतिशत से अधिक साक्षर भारतीयों को अशिक्षित और अंधविश्वासी के रूप में चित्रित करना और भारत के विरुद्ध इस तरह की तमाम फेक न्यूज और नैरेटिव अंग्रेजी के जरिए ही फैलाए और स्थापित किए गए। आज भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सूचकांकों और अन्य जरियों से भारत के विरुद्ध फेक न्यूज और नैरेटिव फैलाए जाते हैं।

ऐसे में हिंदी पत्रकारिता के जरिए इन्हें उजागर करने और सही नैरेटिव पेश करने का काम बेहतर ढंग से हो सकता है। इसकी वजह यह है कि हिंदी पत्रकारिता के साथ सामाजिक प्रतिक्रिया प्रणाली बहुत अच्छी तरह से जुड़ी हुई है। इसलिए फेक न्यूज का सबसे बड़ा तोड़ हिंदी पत्रकारिता

हो सकती है। कहा जा सकता है कि विभाजक रेखाओं पर राजनीति और षड्यंत्र करनेवाली ताकतों को बेनकाब करने की जिम्मेदारी भी हिंदी पत्रकारिता पर है।

आनेवाले समय में जब अनुवाद की समस्या नहीं रह जाएगी, तब हिंदी पत्रकारिता की असली परख होगी कि वह कैसे दिशा दे सकती है। हिंदी पत्रकारिता नई कल्पनाओं पर काम कर सकती है, जमीनी किस्सों पर काम कर सकती है, उस भारत से विश्व को परिचित करा सकती है, जो भारत दुनिया ने नहीं देखा। जो तकनीकी अंतराल है, जिससे ज्ञान का प्रसार नहीं होता, वह तकनीक पूरा कर देगी। फिर हिंदी पत्रकारिता का असली परचम लहराएगा।

स्पष्ट है कि इस देश की जनता को सही सूचना, सही संदर्भ और सही परिप्रेक्ष्य देने की जो महती जिम्मेदारी एक भाषा पर है, तो वह हिंदी पत्रकारिता है। ऐसे में हिंदी पत्रकारिता का नैतिक दायित्व बन जाता है कि वह अन्य भारतीय भाषायी पत्रकारिता के अगुआ के रूप में देश के सामने सत्य का अनुसंधान करे, सांस्कृतिक बहुलता और अंतर्निहित शक्तियों से विश्व को परिचित कराए, अंतरराष्ट्रीय एवं आंतरिक षड्यंत्रों को ठोस सबूतों के साथ सही परिप्रेक्ष्य में सामने रखे और षड्यंत्रकारी नैरेटिव को बेनकाब करते हुए सही नैरेटिव सामने रखे। हिंदी पत्रकारिता की असल ताकत देखनी अभी बाकी है।

□

hitesh.shankar@gmail.com

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिंदी प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करनेवाले सच्चे भारत-बंधु हैं।

—महर्षि अरविंद घोष

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

—(जस्टिस) कृष्णस्वामी अय्यर

हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

सोशल मीडिया : संप्रेषण के नए आयाम और हिंदी

—प्रो. कुमुद शर्मा

आज उच्च प्रौद्योगिकी से फलीभूत साइबर संसार हमारे दिल-दिमाग को प्रभावित कर रहा है। संचार क्रांति के विस्फोट के बाद आज हम डिजिटल क्रांति का उत्कर्ष देख रहे हैं। डिजिटल क्रांति ने मनुष्य की चेतना के बीच कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सत्ता स्थापित कर दी। इस चेतना-शून्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता को हमारे बारे में इतना कुछ ज्ञात है, जिसका हमें एहसास तक नहीं है।

इस नई परिस्थिति में कुछ ऐसे मौलिक प्रश्न उठाए जा रहे हैं, जिनका संबंध मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ा है। प्रश्न यह है कि 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' और 'मनुष्य की चेतना' में ज्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है? प्रश्न यह भी है कि डिजिटल क्रांति का हमारी भाषा और संस्कृति में कैसा हस्तक्षेप होगा ? क्या होगा इस डिजिटल संसार में हमारी संवेदना का, हमारी भाषा का, हमारे बिंबों का, प्रतीकों का और हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का? टोनी फैल्डमैन ने कुछ वर्ष पहले कहा था कि "डिजिटल क्रांति की अवधारणा मनुष्य के प्रतिरूप को दरवाजे से बाहर निकालकर एक अनजान तथा मौलिक रूप से परिवर्तित भविष्य में स्थापित करना है। यह एक ऐसे इकतरफा दरवाजे से की गई यात्रा है, जिससे हम अतीत के आरामदेह प्रचार-माध्यमों की निश्चितताओं की ओर वापस नहीं लौट सकते।"

डिजिटल क्रांति के समर्थकों ने वर्चस्विता की भाषा में यह बयान भी दिया कि 'जब एक नई टेक्नोलॉजी प्रयोग में आती है तो यदि आप स्टीमरोलर का भाग नहीं हैं तो आप सड़क का भाग बन जाएँगे।' बात बहुत सही थी, अगर आप नई टेक्नॉलोजी का पुर्जा नहीं हैं तो आप जीवन की दौड़ में कुचल दिए जाएँगे, दौड़ना तो दूर की बात है। इसलिए आज हर कोई टेक्नो फ्रैंडली बन रहा है। 'डिजिटल नेबरहुड' अब नई पीढ़ी की जिंदगी का अहम हिस्सा है।

इक्कीसवीं सदी में मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी से प्रादुर्भूत सोशल मीडिया ने संप्रेषण के तौर-तरीकों को ही बदल दिया। सोशल मीडिया की संस्कृति ने इलेक्ट्रॉनिक कम्यूनिकेशन, टेलीविजन तथा रेडियो की दुनिया को भी बदला है। हम डॉटकॉम क्रांति के कई चरण देख चुके हैं। वर्ल्ड वाइड वेब, ब्लॉग, ट्विटर, फेसबुक, यूट्यूब, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम के साथ-साथ सेल फोन, आई फोन ने संप्रेषण की दुनिया को बिल्कुल अलग, नए रूप में परिवर्तित कर दिया है।

---

* आलोचक, मीडिया विशेषज्ञ और स्त्री विमर्शकार।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसका जीवन सामाजिक अभिवृत्तियों, सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक विनिमयों से चलता है। वह अकेला नहीं रह सकता। अकेलेपन को वह अभिशाप समझता है। सामूहिकता की भावना उसे सुरक्षा और आनंद की अनुभूति कराती है। बिना संवाद के जीवन संभव ही नहीं है। समाजशास्त्र में 'पारस्परिक उत्तेजना और प्रत्युत्तर को सामाजिक अंतर्क्रिया का मूल तत्त्व' माना गया है। सोशल मीडिया संवाद का, सामाजिक अंतर्क्रिया का डिजिटल प्लेटफॉर्म है। यह भावों, विचारों, आस्थाओं, विश्वासों, मान्यताओं, मूल्यों के आदान-प्रदान का एक ऐसा मंच बन चुका है, जिसमें हम परस्पर एक-दूसरे व्यक्तियों और समूहों के हाव-भाव, व्यवहार से प्रभावित भी होते हैं और कई बार निर्देशित भी। एक-दूसरे की अभिप्रेरणा हमारे सामाजिक व्यवहार को, हमारी मन:स्थिति को कई बार परिवर्तित करने लगती है। सोशल मीडिया पर बन रहे पारस्परिक संबंधों के लिए भौतिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है।

आज ऐसी अनेक वेबसाइट हैं, जो समूह-निर्माण के लिए मंच प्रदान करती हैं, जहाँ हम अपनी प्रकृति, अपने स्वभाव और अपने विचारों वाले लोगों के साथ एक प्लेटफॉर्म पर जुड़कर संवाद की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। एलूल ने अपनी पुस्तक 'The Technological society' में लिखा है कि टेक्नीक हैज बिकम द बॉण्ड बिटवीन मेन (Technique has become the bond between men, page-132)। तकनीक की अतिविशिष्टता ने मनुष्य को विवश कर दिया है कि वह एक बंद संसार में रहे। बंद कमरे में बैठकर आप विश्व के किसी भी कोने में बैठे समूह से संवाद कर सकते हैं। इंटरनेट से उपलब्ध सामूहिक संवाद का मंच हमारी पूर्व प्रचलित सामूहिक संवाद-परंपरा से अलग है। यह किसी गाँव की चौपाल पर सामूहिक संवाद की परंपरा से भिन्न है।

उच्च प्रौद्योगिकी और डिजिटल क्रांति तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में जब तकनीक हमें एक-दूसरे से जोड़ रही है, तब जुड़ने और जोड़ने की प्रक्रिया एवं उससे परिवर्तित होती स्थितियों पर बहस हो सकती है, मतभिन्नता भी हो सकती है, लेकिन इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि इस जुड़ाव में भी भाषा की ताकत बची हुई है। सोशल मीडिया प्रेमचंद के इस कथन को प्रमाणित कर रहा है कि 'मनुष्य में मेल-मिलाप के जितने साधन हैं, उनमें सबसे मजबूत, असर डालनेवाला रिश्ता भाषा का है।' आज श्रव्य-दृश्य के मायावी संजाल के बावजूद सोशल मीडिया का प्रयोक्ता शब्द की ताकत को अच्छी तरह से जानता है। कुछ समय पहले सोशल मीडिया पर ही यह पोस्ट देखी और पढ़ी गई थी—'शब्दों का भी तापमान होता है, ये सुकून भी देते हैं और जला भी देते हैं।'

जब कंप्यूटर आया तो हिंदी भाषियों के लिए यह डर भी साथ लाया कि कंप्यूटर की भाषा तो अंग्रेजी है, हिंदी और हिंदी भाषी पिछड़ जाएँगे। यह हिंदी की शक्ति और सामर्थ्य ही थी कि उसने उच्च प्रौद्योगिकी से उपलब्ध नए यांत्रिक उपकरणों के साथ अपना तालमेल बिठा लिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अपनी माँग को बढ़ाया।

सोशल मीडिया पर हिंदी की शक्ति और सामर्थ्य नए तरीके से दर्ज हो रही है। हिंदी की शक्ति ने सोशल मीडिया के मंच पर व्यक्ति की रचनात्मकता और सर्जनात्मकता को नए पंख दिए हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने निबंध 'शब्दों का देश' में लिखा है कि 'अर्थ की महिमा से शब्द को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और शब्द अपने-अपने युग के प्रतिनिधि बनकर उस काल की गाथा हमें सुनाते हैं।' आज सोशल मीडिया हिंदी संसार के लिए सर्जनात्मक अनुचिंतन का निर्माण करनेवाली अनंत क्रियाओं और छवियों का साक्ष्य है। उस

पर सर्जित शब्दों का संसार अपने तरीके से इस युग की गाथा सुना रहा है, जिसका विधेयात्मक पक्ष यह है कि इसने सबकी सर्जनशीलता को मुक्त भाव से स्वीकार करने का वैश्विक मंच प्रदान किया है। सर्जनात्मकता के दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ता है तो दूसरा पक्ष मनुष्य के अंतर्मन के प्रसार से। आज सामयिक जीवन की सच्चाइयों से टकराता-जूझता व्यक्ति अपने मन की छटपटाहट, दु:ख-दर्द की अभिव्यक्ति के लिए सोशल मीडिया को अंतर्मन के प्रसार का जरिया बना रहा है। अब हर व्यक्ति अखबारनवीस की भूमिका में है। सोशल मीडिया ने अनेक कहानीकार और कवि पैदा किए हैं। आज अगर कोई कविता, कहानी, लघुकथा लिखता है तो उसे किसी संपादक या प्रकाशक का मुखापेक्षी होने की जरूरत नहीं है। सोशल मीडिया एक ऐसा राजमार्ग है, जहाँ कोई टोल नहीं है, कोई भी अपनी गाड़ी ले जा सकता है। छोटी-बड़ी कैसी भी। सोशल मीडिया सूर्य की किरणों या धूप की तरह है, जिसमें कई तरह के रंग हैं। सोशल मीडिया सर्जन का, आलोचना का, साहित्य का, पत्रकारिता का ऐसा उदार मंच है, जो भिन्न-भिन्न किस्म की आवाजें दर्ज करने से इनकार नहीं करता। सहमति की आवाजें, असहमति की आवाजें, व्यवस्था समर्थन की आवाजें, व्यवस्था असमर्थन की आवाजें। यहाँ रचना के लोकतंत्र का आभास है। तुरंत लिखे को सोशल मीडिया पर डालकर लोग लाइक बटोर रहे हैं। अपना उत्साह बढ़ा रहे हैं, अपना हौसला बढ़ा रहे हैं और इसी हौसले की उड़ान से हिंदी को भी पंख मिल रहे हैं।

हिंदी ब्लॉग की दुनिया ने सशक्त उपस्थिति महसूस कराई है। हिंदी भाषा में ब्लॉग लेखन की शुरुआत सन् 2003 में हुई थी। आज एक अनुमान के अनुसार, कई लाख हिंदी के ब्लॉग हैं। कुछ तो केवल सूचनाएँ देने का काम करते हैं। लोकप्रिय हिंदी ब्लॉग पोर्टल इंडिब्लॉगर पर 2010 तक 350 हिंदी ब्लॉग हुआ करते थे, अब यहाँ कई हजार की संख्या में हिंदी ब्लॉग हैं। पर कुछ मुख्यधारा के पूरक की भूमिका में साहित्य, संस्कृति, दर्शन और चिंतन के मुद्दों को उठा रहे हैं। साहित्य, संस्कृति और समाज से जुड़े मुद्दों को जनता के बीच ला रहे हैं। विमर्श के लिए मंच उपलब्ध करा रहे हैं। हिंदी के सामान्य ब्लॉग भी हैं। हिंदी ब्लॉग की दुनिया अनेक विधाओं में समृद्ध हो रही है।

'मुसाफिर हूँ यारो', 'जाट देवता का सफर' जैसे यात्रा ब्लॉग हैं। सिनेमा, विज्ञान, मीडिया और भाषा पर केंद्रित ब्लॉग भी हैं।

सन् 1996 में एक सर्च इंजन के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करानेवाले गूगल के पिटारे में आज वेबसाइटों का अभूतपूर्व भंडार है। इसके कुछ वर्षों के पश्चात् ही इंटरनेट की दुनिया में 'ब्रॉडकास्ट योरसेल्फ' के नारे के साथ शब्द, दृश्य और श्रव्य के समन्वित रूप में यूट्यूब लोगों का प्रिय सर्च इंजन बन गया। यह ऐसा लोकप्रिय 'ऑनलाइन वीडियो साझाकरण मंच' है, जिसने व्यक्ति की दृश्यमानता को बढ़ा दिया। जिसने दृश्यमानता की आकांक्षा को नई उड़ान दी है। इसने सिद्ध कर दिया कि साधारण व्यक्ति की भी दृश्यमानता हो सकती है। यूट्यूब कहने को तो गूगल के बाद एक दूसरा बेहद लोकप्रिय सर्च इंजन है, किंतु यह आज वीडियो सामग्री प्रचारित-प्रसारित करने का लोकप्रिय फॉर्मेट है। एक बड़े व्यापक जनसमुदाय तक अपनी आवाज पहुँचाने का बहुत सशक्त माध्यम बन गया है। आज यूट्यूब की भरी-पूरी दुनिया में हिंदी के साथ-साथ हमारी क्षेत्रीय भाषाओं की भी भरपूर उपस्थिति मौजूद है।

21 फरवरी, 2017 को 'बिजनेस स्टैंडर्ड' में आई.ए.एन.एस. के हवाले से एक खबर प्रकाशित हुई थी, जिसमें कहा गया था कि 2017 में हिंदी भारत में सोशल मीडिया पर सबसे लोकप्रिय भाषा

के रूप में अंग्रेजी को पछाड़ने के लिए तैयार है। स्टोरी नॉमिक्स द्वारा सोशल मीडिया पर '2016 में भारत में सर्वाधिक साझा 5000 समाचार कहानियाँ' पर किए गए अध्ययन के आधार पर पाया गया है कि पिछले छह महीनों में अंग्रेजी समाचारों की तुलना में हिंदी समाचारों को सोशल मीडिया में अधिक शेयर किया गया। स्थानीय भाषाओं के पाठक वेब पर सामग्री के भूखे हैं।

'बिजनेस स्टैंडर्ड' में 8 सितंबर, 2021 को प्रकाशित एक खबर के अनुसार, भारत स्थित माइक्रो ब्लॉगिंग और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म कू ने कहा है कि इसके 1 करोड़ उपयोगकर्ताओं में से पचास प्रतिशत हिंदी में बातचीत करते हैं। यह क्षेत्रीय भाषा के उपयोगकर्ताओं का पसंदीदा मंच है। मंच पर मौजूद 5.2 करोड़ से अधिक कू में से लगभग आधे हिंदी के हैं। इसी खबर के अनुसार, अधिकतर भारतीय लोग देशी भाषा में संवाद करते हैं और उन्हें सोशल मीडिया की चर्चा से बाहर कर देते हैं, जो काफी हद तक अंग्रेजी में है। कू ने एक ऐसा स्थान बनाया है, जहाँ भारतीय अपने विचारों को अपनी मातृभाषा में सहजतापूर्वक, स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकते हैं।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर पॉडकास्ट का संसार भी हिंदी के विस्तार की अपार संभावनाओं का साक्षी है। 'दैनिक भास्कर' ने दो वर्ष पहले न्यूयॉर्क एनालिटिक्स एंड अटेंशन कंपनी चैरिटेबल के हवाले से एक खबर प्रकाशित की थी, जिसमें कहा गया था कि 2020 में 9 लाख पॉडकास्ट शुरू हुए। हिंदी भाषा के पॉडकास्ट में सबसे ज्यादा 14.1 गुना की ग्रोथ रही। वहीं, सबसे कम ग्रोथ 1.9 गुना अंग्रेजी भाषा के पॉडकास्ट में रही।

डिजिटल संसार में व्यावसायिक कंपनियाँ नए उत्पाद या सेवा की जानकारी लक्ष्य समूह तक पहुँचाने के लिए 'सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर' की ताकत का इस्तेमाल कर रही हैं। यह बाजार द्वारा व्यक्ति की शक्ति, ज्ञान और प्रभाव का अपने हक में इस्तेमाल का नया तरीका है। 'सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर' की संज्ञा ऐसे व्यक्ति को दी जाती है, जिसके सोशल मीडिया पर बहुत ज्यादा फॉलोअर होते हैं। सोशल मीडिया 'सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर' के लिए विभिन्न ब्रैंड के उत्पादों के प्रचार का प्रभावशाली मंच बन गया है। युवा पीढ़ी टेलीविजन छोड़कर सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म पर अधिक समय व्यतीत करती है। एक राष्ट्रीय अखबार में प्रकाशित खबर के अनुसार, सन् 2022 में भारत में सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स का बाजार 1,275 करोड़ रुपए का था, जिसके 2025 तक 2,800 करोड़ रुपए होने का अनुमान है। (नवभारत टाइम्स, 23 जनवरी, 2023) अनेक सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स ऐसे भी हैं, जिनके फॉलोअर्स की संख्या एक लाख से ऊपर है। इस पूरे खेल में हिंदी की ताकत बढ़ रही है। ज्ञान को शक्ति कहा गया है। मगर आज इस शक्ति का मानक बाजार है। भाषा और बाजार के अंतर्संबंध के वर्तमान परिदृश्य में 'भाषा का खेल समृद्धि का खेल है।' आज इस मीडिया मंडी के सूत्रधार ही भाषा की दशा-दिशा के नियामक हैं। जहाँ 'भाषा के चिह्नों की तरह सब कुछ काम करता है। बॉडी लैंग्वेज, गारमेंट लैंग्वेज, मौन अभिव्यक्ति, फैशन मैग्जीन का कवर, जहाँ सब कुछ जटिल है, लेकिन अभिप्राय भी है।'

भाषा के विकास की कहानी इस तथ्य का प्रमाण है कि शब्द-सृष्टि का व्यापार अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण है। डिजिटल क्रांति ने संप्रेषण की दृष्टि से अभिव्यक्ति-कौशल के एकदम पृथक् रास्ते भी खोले हैं। सोशल मीडिया के फलक पर हिंदी को व्यापक बनाने में मीम की भूमिका को आप अनदेखा नहीं कर सकते। इसमें फिल्मी जगत् से जुड़ी हस्तियों के मीम हों या चुनावी

माहौल में राजनेताओं पर बने मीम हों। मीम की परिभाषा इस तरह की जाती है—"मीम एक विचार, व्यवहार या शैली है, जो किसी संस्कृति के भीतर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अंतरित होती है।" दरअसल "मीम विचारों और मान्यताओं की जानकारी को संचारित करने का काम करता है।" "मीम एक सैद्धांतिक इकाई है, जो सांस्कृतिक विचारों, प्रतीकों या मान्यताओं आदि को लेखन, भाषण, रिवाजों या किसी अन्य अनुकरण योग्य घटना के माध्यम से एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक पहुँचाने का काम करता है।"

सोशल मीडिया पर हिंदी में बनाए गए मीम हिंदी भाषा के वैविध्य की तसवीर उजागर कर रहे हैं। हिंदी में वीडियो-ऑडियो के हिस्से से निर्मित मीम खास तौर पर हास्यास्पद होते हैं। लोग इसे साझा करते चलते हैं। अगला व्यक्ति इसमें कुछ और जोड़कर इसे और मजाकिया तथा हास्यपूर्ण बना देता है। सोशल मीडिया पर हिंदी मीम्स हिंदी हास्य और व्यंग्य को नया तेवर दे रहे हैं। ये हास्य-व्यंग्य से हिंदी मनोरंजन की दुनिया को समृद्ध कर रहे हैं।

बिंबों और प्रतीकों के सहारे भी भाषा की विकास यात्रा आगे बढ़ती है, जहाँ संकेतकों के जरिए गंभीर अर्थवत्ता को संकेतित किया जाता रहा है। सोशल मीडिया की भाषा में इमोजी और हिमोजी ने भी चिह्नशास्त्र की दृष्टि से नया आयाम जोड़ा है। जुलाई 2022 में प्रसारित एक खबर के अनुसार, यूनिकोड स्टैंडर्ड में लगभग साढ़े तीन हजार से ज्यादा इमोजी हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर हर रोज करीब 7 अरब से भी अधिक ज्यादा बार अपनी बात संप्रेषित करने के लिए इमोजी का इस्तेमाल किया जाता है। इससे पता चलता है कि भावों की सांकेतिक अभिव्यक्ति को लोग पसंद कर रहे हैं। भावों की व्यंजनाओं की सृष्टि के लिए प्रोफेशनल ढंग से निर्मित किए गए तरह-तरह के संकेतक प्रयोक्ताओं की भाषा बनकर, उनकी जुबान बनकर, उनके अनकहे को कह सकने में सक्षम हैं। मानवीय अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए लगभग 136 लोकप्रिय इमोजी हैं, जिनका लोग खूब इस्तेमाल करते हैं। ये आपको हँसा भी सकते हैं, रूठे हुए को मना भी सकते हैं। इनके जरिए भावों की साझेदारी के व्यवहार का निर्वाह बखूबी किया जा रहा है। डिजिटल युग के अनुरूप अभिव्यक्ति और संप्रेषण की संभावनाओं का यह एक नया आयाम है। इसने सर्जनात्मकता को यांत्रिक उपकरण के अनुकूल नए रूप-रंग में ढाला है। संवेदना भले ही एक यंत्र की कैद में है। संवेदना के वास्तविक विस्तार की संभावनाएँ कुंद हैं। लेकिन इमोजी की उपलब्धि यह है कि यंत्र कौशल से जनमे सोशल मीडिया के इमोजी प्रयोक्ता को सुविधा प्रदान करते हैं। प्रेम, भय, दु:ख, आश्चर्य, घृणा जैसे तमाम संवेगों के लिए इमोजी हैं। प्रयोक्ता यहाँ संदेश गढ़ता नहीं, केवल अपनी भावनाओं के अनुकूल इमोजी या हिमोजी का चयन करता है। संवेदना के विस्तार और गांभीर्य से संपन्न संदेश को शाब्दिक स्वरूप में ढालने में समय लगता है। मन की गहराइयों से सर्जित भावों को शाब्दिक सौंदर्य में ढालना बहुत से लोगों के लिए आसान भी नहीं होता। इमोजी या हिमोजी प्रयोक्ताओं में 'तुरंत सोचो और त्वरित अभिव्यक्त करो' का उत्साह जगाते हैं।

सोशल मीडिया ने हमारे सोशल फैब्रिक्स को बदला है। हमारी सामूहिक संवाद परंपरा का ढाँचा बदल दिया है। संवाद की शैली को बदला है। हमारी भाषा, हमारी बोली, हमारा खान-पान, हमारे सैर-सपाटे, सब इससे प्रभावित हो रहे हैं। सोशल मीडिया में हिंदी की स्वीकार्यता बहुत बढ़ी है।

इसने हिंदी को विस्तार और व्यापकता दी,

लेकिन साथ ही हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं।

सोशल मीडिया पर डिजिटल क्रांति से प्रादुर्भूत संप्रेषण के नए आयामों ने हिंदी भाषा के स्वरूप और विकास को प्रभावित किया है। आर्थर सी क्लार्क ने भविष्य की तसवीर खींचते हुए कहा था—"सभी मनुष्य एक ही विशाल संप्रेषण के उपयोग का बराबर अवसर प्राप्त कर लेंगे, वे अनिवार्यत: विश्व नागरिक बन जाएँगे और भविष्यत् युग की एक बड़ी समस्या यह होगी कि कैसे मूल्यवान् और रोचक क्षेत्रीय वैशिष्ट्यों की रक्षा की जाए। विश्वस्तरीय सपाटीकरण का बहुत गंभीर संकट हमारे सामने है। ···विश्वस्तरीय संप्रेषण भाषा को बहुत गहरे तौर पर प्रभावित करेगा।"

यह बात एक सीमा तक ही सही मानी जा सकती है। फेसबुक या व्हाट्सएप पर जब हम शोक-संवेदना व्यक्त करते हैं तो 'बहुत दु:खद' या 'विनम्र श्रद्धांजलि' लगभग एक जैसी शब्दावली का प्रयोग करते चले जाते हैं। समूह संस्कृति के माध्यम से संवाद की जो भाषा बन रही है, उसमें एकरूपता के साथ-साथ भाषा वैविध्य और क्षेत्रीय वैशिष्ट्य भी दिखाई देता है। यह बात यूट्यूब, फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम पर हिंदी के संदेश और वीडियो देखकर समझी जा सकती है या सोशल मीडिया पर हिंदी के लोकप्रिय पॉडकास्ट को सुनकर समझी जा सकती है।

ट्विटर ने सर्जन को शब्दसीमा में बाँधकर संक्षिप्तीकरण की कला को प्रयोग की नई भूमि पर ला खड़ा किया है। माइक्रोब्लॉगिंग साइट पर निश्चित शब्दसीमा में कैसे अपनी बात हिंदी में प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित की जा सकती है, इसके लिए प्रयोक्ताओं ने तरह-तरह के प्रयोग किए। आल्विन टॉफलर ने कभी कहा था कि 'भाषा लघु रूप में यानी एब्रीविएशंस में चलेगी।' टॉफलर ने तकनीक से भाषा के परिवर्तन की स्पष्ट तसवीर देख ली थी। संक्षिप्तीकरण के एक-से-एक अद्भुत नमूने सामान्य प्रचलन से हटकर नए शब्द-संसार और वाक्य-विन्यास के साथ सोशल मीडिया की हिंदी को रच रहे हैं।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से अंतप्रेरणाओं संप्रेषण की प्रकृति मनुष्य के कार्यों और अंतप्रेणाओं को समझकर निरंतर विकास करती आई है। आज 'तकनीकी वर्चस्विता' के युग में नई स्थितियों और प्रेरणाओं के अनुसार तकनीक भाषा निर्माण की दिशा और दशा तय कर रही है। सोशल मीडिया पर संप्रेषण के नए आयामों के साथ डिजिटल युग की भाषा का नया मुहावरा रचा जा रहा है। तकनीकी दौर की भाषा के विकास की कहानी गढ़ी जा रही है।

सोशल मीडिया पर बढ़त लेती हिंदी के संख्या-बल पर गर्व करने के साथ-साथ उसके स्वरूप-विकास की दृष्टि से हमें सचेत भी रहना होगा। देखना होगा कि चेतनाशून्य डिजिटलाइज्ड बौद्धिकता हमारी भाषाई चेतना को खत्म न कर दे। हमें इस दृष्टि से भी जागरूक रहना होगा कि हिंदी के साथ-साथ हमारी तमाम भारतीय भाषाओं का वैशिष्ट्य डाटा फ्लो की शिराओं में अदृश्य न हो जाए। हमारी आंतरिक सत्ता में जो हमारी सांस्कृतिक जमीन अवस्थित है, जिससे हम अपने आपको पहचानते हैं, वह बंजर न होने पाए। उसमें फूल और फुनगी पनपते रहें तथा हमें आत्मोल्लास में डुबोते रहें। इसी दायित्व-बोध से हम अपनी भारतीय संस्कृति की मूल्यवान् उपलब्धि को बचाए रख पाएँगे।

□

sharma.kumud9@yahoo.com

टी.वी. की भाषा

—हेमंत शर्मा

'भाषा बहता नीर' यह कबीर ने कहा था यानी भाषा प्रवाहमान है। वक्त और समाज की जरूरत के हिसाब से बदलती रहती है—समाज और माध्यम के बदलाव के साथ। राजनीति और समाज में जो बदलाव आए, उसने संवाद के लिए भाषा को वैसे ही बदल दिया। पौने दो सौ साल पहले जब हिंदी 'भाषा' के तौर पर अस्तित्व में आई तो इसके शब्द पत्रकारिता ने ही गढ़े। बाबू भारतेंदु, हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, रघुवीर सहाय और फिर प्रभाष जोशी—इन सबने अपने-अपने समय की भाषा को गढ़ा और उसकी शब्द संपदा बढ़ाई। सबसे पास इसका जरिया उनके अपने पत्र और पत्रिकाएँ थीं। आज वही जगह टी.वी. ने ले ली है। उसने न सिर्फ भाषा बदली बल्कि हिंदी के मानकीकरण और व्याकरणीय दायरे को भी तोड़ा।

पिछले कुछ वर्षों में टी.वी. उद्योग में असाधारण उन्नति हुई है। यह दुनिया में संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम बना है। टी.वी. ने हमारी दुनिया बदल दी, व्यवहार बदल दिए, खबरों और मनोरंजन का तरीका बदल दिया। फिर भाषा तो बदलनी ही थी। टी.वी. ने अपनी विषय-वस्तु के जरिए एक नया भाषाई परिदृश्य गढ़ लिया। शुरुआत में हिंदी पत्रकारिता की भाषा साहित्य की भाषा ओढ़े थी क्योंकि पत्रकारिता साहित्य के करीब थी। जाहिर है सारे संपादक पहले साहित्यकार थे। 30 मई, 1826 में छपे 'उदंत मार्तंड' के संपादक युगल किशोर शुक्ल से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मदनमोहन मालवीय, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, शिवपूजन सहाय से रामवृक्ष बेनीपुरी तक दर्जनों संपादक ऐसे थे, जो पहले साहित्यकार थे। इसलिए तब साहित्य और पत्रकारिता की भाषा में कोई खास अंतर नहीं था। आज दोनों दो छोर पर हैं।

अब पत्रकारिता की भाषा साहित्य से दूर होकर आमजन की सहज, सरल और बोलचाल की भाषा बन गई है। इस बदलाव और टी.वी. के फैलाव ने पत्रकारिता की भाषा के सामने कठिन चुनौती खड़ी की है। व्याकरण और शब्द रचना तो भ्रष्ट हुई ही है, उस पर बेवजह अंग्रेजी का वर्चस्व भी बड़ा है। खबरों की रफ्तार ने भाषा की गंभीरता घटा दी है। भाषा में एक खास किस्म की जल्दबाजी, शोर, उतावलापन, आक्रामकता और हिंसावृत्ति बढ़ी है। उसने अपनी संवेदना और सौम्यता खो दी है और इस बदलाव की रफ्तार में भाषा व्याकरण के दायरे से बाहर हो गई है, उसने अपना गांभीर्य खो दिया है।

भाषा मनुष्य की अर्जित संपत्ति है। यह समाज की सामूहिक संपत्ति हो जाती है। कोई समाज अपनी

---

* प्रसिद्ध मीडिया विशेषज्ञ एवं लेखक; टी.वी.-9 समूह के निदेशक।

अगली पीढ़ी को इतिहास तो सौंपता है, लेकिन उन्हें बखानने, बताने की भाषा समाज को स्वयं बनानी होती है। भाषा का मामला भी किसी तकनीक या उपकरण जैसा है। जिसका आप जितना प्रयोग करते हैं, वह उतना ही घिसता है या तेजी से बदलता है। भाषा को सँवारने, सहेजने, सार्थक और सौम्य रखने में सबसे बड़ी भूमिका उनकी होती है जो भाषा का सार्थक प्रयोग करते हैं। भाषा के सार्थक प्रयोग में साहित्यकार थोड़े पीछे हैं, क्योंकि उनका प्रयोग धीमा और दीर्घकालिक होता है। भाषा के सबसे बड़े गुनहगार पत्रकारितावाले हैं, उनमें भी टी.वी. पत्रकारिता उसके बाद आते हैं फिल्म के लोग। टी.वी. इस कदर हमारे जीवन में घुस गया है कि उसका असर सबसे ज्यादा है। कमजोर विजुअल स्टोरी को रोचक बनाने के लिए भाषा में कलाकारी जरूरी है। इसलिए दोहराव और शोर के साथ टी.वी. ने एक अनुशासनहीन भाषिक संरचना विकसित कर ली है।

टी.वी. ने देश में एक नए बाजार का सृजन किया है और उस बाजार की माँग है कि उसके उत्पाद का संदेश उसी भाषा में हो, जिसे उपभोक्ता तुरंत समझ ले। उस प्रोडक्ट की विशेषताओं को आत्मसात् कर ले। ऐसे में भाषा के संस्कारों का टूटना या विखंडित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। बेशक इससे हिंदी भाषा की शुचिता और शुद्धता पर घोर संकट आया। विदेशी भाषाओं का हिंदी पर आक्रमण हुआ। हिंदी की पारंपरिक मौलिकता को चुनौती मिली। हिंदी में टी.वी. ने चलताऊ, फूहड़ या अंग्रेजीदां शब्दों की भरमार कर दी। इस कारगुजारी पर वही घिसा-पिटा तर्क की खबर आम जन तक पहुँचानी है, इसलिए ठीक उसी टूटी-फूटी, तोड़ी-मरोड़ी भाषा में ही पहुँचानी होगी, जिसमें लोग चौक-चौराहों पर बात करते हैं।

विश्व में भाषा के क्रमिक विकास में हमारी भूमिका इसलिए प्रभावी है, क्योंकि हम सबसे ज्यादा बोलते हैं। जरूरत से ज्यादा बोलते हैं। समूह में बार-बार समझाते हैं। एक ही बात को सब बोलते हैं। अनेक बार हम वही कहते हैं, जो बार-बार कहा गया है। टी.वी. में तो यही होता है, उसकी भाषा सड़क पर दौड़ती सैकड़ों गाड़ियों जैसी हो गई, जिसमें सड़क भी घिसती है और कार भी। सड़क यानी भाषा की गुणवत्ता और गाड़ी यानी हमारे कथ्य की प्रभावपरकता और विश्सवनीयता। भाषा की इस अहर्निश घिसाई से धीरे-धीरे उसकी सौम्यता चली गई। टी.वी. की भाषा रूखी हो गई। रुखाई तो फिर भी चल जाती मगर उसकी जगह मारकाटवाली भाषा आ गई। टी.वी. कार्यक्रमों के शीर्षक अनजाने ही आक्रमक और उत्तेजक होने लगे।

बहस या विमर्श तो लोकतंत्र का प्राण है। फिर उस बहस में चीखने-चिल्लाने, हाँफने, पैर पटकने, तोड़-फोड़ करने, नेस्तनाबूद करने, ईंट से ईंट बजा देनेवाली भाषा क्यों? इतिहास में इससे भी ज्यादा आक्रमक बहसें हुई हैं, लेकिन उनकी भाषा तो ऐसी नहीं थी। टी.वी. पत्रकारिता की भाषा में आक्रामकता उसे अगंभीर और सतही बनाती है। ऐसा लगता है कि बीते कुछ वर्षों में टी.वी. पत्रकारिता ने हिंदी भाषा को युद्ध के मोर्चे पर भेज दिया है। हर तरफ यलगार है। हम ढूँढ़-ढूँढ़कर ऐसे शब्द लाते हैं, जो लोकतंत्र में संवाद की मूल धारणा के उलट हैं। सौम्यता संवाद की पहली शर्त है। असहमति ही संवाद है। हमें सबसे पहले टी.वी. की भाषा को सौम्य करना होगा। पूरी दुनिया में कहीं भी टी.वी. कार्यक्रमों की भाषा में इतनी आक्रामकता नहीं है।

टी.वी. में कंटेंट को 'किंग' माना जाता है। यहाँ दुःख, त्रासदी, शोषण भी बिकता है। विजुअल सबकुछ कह देता है। रही-सही कसर भाषा पूरी करती है। जटिल मुद्दों को आसानी से समझाने का हुनर टी.वी. ने जरूर विकसित किया है। यह बदली भाषा लोगों की भावनाओं को छूने में भी कामयाब

रही। पर भाषा में घालमेल की कीमत पर। सहज, सरल ढंग से कुछ कहने में हमारे हाथ ज्यादा तंग है। हम टी.वी. में भाषा को नाटकीय आक्रामकता से भर देते हैं। रोमांच पैदा करते हैं। इससे सहजता दुबककर कहीं पीछे चली जाती है। सहजता से यहाँ आशय सुगमता से है। सुगम्य यानी जो तुरंत समझ में आ सके। पत्रकारिता की पहली माँग है—जटिल विषयों को सुगम बनाना। अब तकनीक है, दृश्य है, ग्राफिक्स हैं, लेकिन चुनौती है 'सुगमता'।

सुगमता विषय को गहराई से समझाने का संस्कार है। बहुत से विषयों मसलन आर्थिकी, विज्ञान, शोध, तकनीक में हम उसे नकार देते हैं। पर अकसर सहजता को लेकर हमारे आग्रह, दुराग्रह में बदल जाते हैं। न्यूजरूम यह समझता है कि जो हमें समझ नहीं आ रहा, उसे लोग क्यों समझना चाहेंगे? दूसरी चिंता की बात है, टी.वी. पत्रकारिता की भाषा में सार्थकता का बोध कुछ सिकुड़ सा रहा है। भाषा में सार्थकता का लोप, नाटकीयता और शोर का आकर्षण बड़ा है। भाषा में सार्थकता जरूरी है। भारतीय काव्य और भाषा विज्ञान के महारथियों ने सार्थकता पर गहरा शोध किया है। शब्द के महारथियों ने इसकी बाकायदा नाप-जोख की थी। उन्होंने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना में अर्थ शक्तियाँ नापी थीं।

टी.वी. में भाषा का चौबीस घंटे इस्तेमाल होता है ,सबसे ज्यादा प्रयोग यहीं हैं। भाषा ही हमारा कच्चा माल है। भाषा ही हमारा तैयार उत्पाद है। भाषा ही हमारी 'सर्विस' है। भाषा ही हमारा 'डिस्ट्रीब्यूशन नेटवर्क' है। इसलिए भाषा हमारी पहली जिम्मेदारी है। हमें उसकी सौम्यता, सहजता और सार्थकता पर नियमित बात करनी होगी। कम-से-कम हमें रोज अपनी सुर्खियों को देखना और विचारना होगा। किसी अल्पशिक्षित व्यक्ति से उसका मतलब पूछना होगा। उसके जवाब से हम जान पाएँगे, हम क्या कर रहे हैं? या हमने क्या कर दिया? हमें श्रेष्ठ, सहज, सौम्य, सार्थक, मूल्यवान भाषा विरासत में मिली है। हमें भाषा का सधा रूप सामने लाना होगा। उसकी सार्वभौमिकता का ध्यान रखते हुए। परिवेश की भाषा और शिक्षा की भाषा में जो खाई पैदा हुई है। उससे नई पीढ़ी में भाषाई संजीदगी कम हुई है। हमने एक ऐसी मूक पीढ़ी गढ़ दी, जो किसी भाषा के प्रति सहज ही नहीं है। संचार माध्यम बताते हैं कि भाषा के प्रति हमारा व्यवहार लापरवाही भरा है। हमने उसे कामचलाऊ बना दिया है। भाषा की बुनियादी प्रतिबद्धताएँ हाशिए की ओर खिसक गई हैं।

यह सही है कि बदलता वक्त और संवाद की तात्कालिकता भाषा में बदलाव लाते हैं। आज सबसे ज्यादा ताकतवर सोशल मीडिया और दूसरे संचार माध्यमों को जैसी भाषा चाहिए वे गढ़ रहे हैं। जिसमें कम-से-कम में ज्यादा-से-ज्यादा संप्रेषण हो। गूगल, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और टी.वी., हिंदी की पहचान, गति और उसकी स्वीकार्यता को बढ़ा रहे हैं। लेकिन झंझट भाषा में शोर और शब्दों को लेकर है। किस भाषा से कितने शब्द लिये जाएँ? यह सवाल व्यर्थ है। इससे संप्रेषण या अभिव्यक्ति का दायरा संकुचित होगा। हमें यह देखना होगा कि हम किन शब्दों के जरिए अपनी बात दूसरों तक पहुँचा पा रहे हैं। क्योंकि शब्दों की एक सीमा है, सामर्थ्य है। भवानी प्रसाद मिश्र लिख गए हैं कि 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।'

हिंदी भाषा को व्यापक आधार देने और जनता तक पहुँचाने का काम अखबारों ने ही किया है। आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर आज तक नए शब्दों के साथ हिंदी को विस्तार समाचार माध्यमों से मिला है। पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर ने हिंदी के अनेक शब्द अखबार के जरिए ही दिए। पराड़करजी के बाद हिंदी शब्द संपदा को बढ़ानेवाले संपादक थे प्रभाष जोशी। उन्होंने बोलियों से शब्द उठाकर नई भाषा गढ़ी।

भाषा की जड़ता खत्म कर उसे लोक से जोड़ा। भाषा शब्दकोश से बाहर आई। हिंदी समाज को स्वाभिमान मिला। तब तक हिंदी 'सावधान पुलिया संकीर्ण है' जैसे मुश्किल शब्दों से भरी थी। संकीर्ण पुलिया नहीं विचार होते हैं। पुलिया तो तंग होती है। तब प्रभाषजी की इस भाषाई क्रांति पर उँगली उठी। पर बाद में ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए हर अखबार ने इस भाषा पर मोहर लगाई। भाषा की सरलता और सहजता उसे लोक तक ले गई। जिससे उसका पाठक वर्ग बढ़ा।

टी.वी. पर भी हमें ऐसी ही भाषा चाहिए। ताकि सामने वाला इसे आसानी से समझ भी जाए और यह भाषिक अभिव्यक्ति उसे अंदर तक झकझोर दे। तभी आपका संचार या संवाद कामयाब माना जाएगा। यानी भाषा ऐसी सरल, सहज और बोधगम्य हो, जिसमें श्रोता या पाठक को दिमाग ना लगाना पड़े, क्योंकि भाषा वक्ता और श्रोता के बीच का सेतु है। सेतु में कोई खोट आएगी तो अभिव्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त होगी। भाषा की पहली और अनिवार्य शर्त है—उसकी संप्रेषणीयता। उसे बनाए रखते हुए हमें टी.वी. की भाषा का मानकीकरण करना होगा।

तो भाषा कैसी हो, इसे कैसे बनाया जाए, ताकि आम लोगों तक इसका प्रवाह सहज हो। ऐसी भाषा, जो दर्शकों से सीधा संवाद कायम करे और लोगों का सहज ध्यान आकृष्ट हो कि यहाँ क्या कुछ नया है। इसके लिए हमें भाषाई लीक तोड़नी पड़ेगी। भाषा की जड़ता समाप्त करनी होगी। यानी हमे टकसाली भाषा पर जोर देना होगा। नए शब्द गढ़ने होंगे। भाषा लोक से जुड़ें। सभी को लगे यह तो उसकी भाषा है। भाषा आम फहम और औपचारिक हो। जिस तरह हम बोलते हैं उसी तरह लिखें। अंग्रेजी के शब्दों से परहेज करें। पर उसे बोलचाल की भाषा में सहजता से समेटे। बोलियों के ज्यादा-से-ज्यादा शब्द लिए जाएँ, जिन शब्दों में व्याप्ति का माद्दा हो। भोजपुरी, अवधी, ब्रज में एक खास किस्म की जुड़ाव होता है। इनके शब्द तुरंत निशाने पर लगते हैं। इन्हें आत्मसात् करें।

भाषा का भाव से मेल बिठाना होगा। भाव के अनुसार भाषा बदलनी होगी। यानी खबरों की भावना के अनुसार उसकी भाषा होनी चाहिए। चीखने-चिल्लाने की भाषा से मुक्ति पानी होगी। भाषा के अंदर एक जबर्जस्त किस्म का लोकतंत्र होता है। उम्र, भौगोलिक परिवेश और अर्थव्यवस्था के अनुसार वह खुद बदल जाती है। मोबाइल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप ने बोलचाल की भाषा बदली है। टी.वी. ने अखबारों की आर्यसमाजी भाषा को भी तोड़ा है।

यानी भाषा टकसाली (नए शब्द गढ़े जाएँ), आसान, जड़ता से मुक्त, शालीन, सहज, बोलियों से संचारी शब्दों की ग्रहणशीलता, उर्दू के मेल से बनी हिंदुस्तानी होनी चाहिए। नए शब्दों का धड़ल्ले से चलन यही हमारा मूलमंत्र होना चाहिए। धड़ल्ले से मतलब कोई नया शब्द चलाएँ तो उस पर टिके रहें आलोचनाओं को दरकिनार करके। जनसत्ता के साथ यही हुआ। प्रभाष जोशी ने नए शब्द दिए तो आलोचना हुई कि भाषा बिगाड़ रहे हैं। फिर वही शब्द चलन में आ गए। सामान्य तौर पर तो हम भाषा को इस समझ के साथ बदलें और उसका मानकीकरण करें। टी.वी. की भाषा कैसी हो यह बहस का मुद्दा बना रहेगा। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए की टी.वी. आज भाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषाई परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर रहा है। इसलिए थोड़ा उदार होना होगा। अच्छी भाषा, अच्छे पत्रकार की सबसे बड़ी खूबी है। यह भारतेंदु के युग में जितना सच था, उतना ही आज भी है। इसलिए हमें मीडिया की विश्वसनीयता के लिए प्रामाणिक और निष्पक्ष खबरों के साथ-साथ भाषाई पवित्रता और मर्यादा को बनाए रखना होगा।

□

hemantmanusharma@gmail.com

समर्थ भाषा हिंदी

—प्रसून जोशी

भाषा के बिना मानव सभ्यता की कल्पना कर पाना संभव नहीं लगता, मानव अंतर में जो भी घटित होता है, उसका अभिव्यक्त रूप भाषा ही है, वैसे मुझे यह लगता है कि मानव मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कंपन को भी पूर्णतः अभिव्यक्त कर सकने का सामर्थ्य मानवजन्य किसी भी भाषा में संभवतः नहीं है, इसीलिए आज जब आभासी माध्यम में गोष्ठियाँ इत्यादि होती हैं, तो कहीं एक कमी सी अनुभव होती है। लगता है, जैसे कोई अवकाश सा रह गया, कुछ था, जो नहीं कहा गया, कुछ था, जो नहीं सुना गया, और ऐसा कई लोगों को लगता है। यहाँ कारण स्पष्ट है, जब हम एक-दूसरे के सामने होते हैं तो शारीरिक भाव-भंगिमा और ऊर्जाओं द्वारा बहुत कुछ व्यक्त कर पाते हैं, जो मात्र ध्वनि और शब्दों से संभव नहीं होता।

मुझे तो यहाँ तक लगता है कि मानव जीवन में एक ऐसी स्थिति आती है, जहाँ वह मौन हो जाता है और कुछ न कहकर सबकुछ कह देने की स्थिति हो आती है, मौन की यह भाषा हो सकता है कि अनिवर्चनीय हो, एक आध्यात्मिक स्थिति।

चाहे दैवी सिद्धांत को मानें, संकेत सिद्धांत को या प्लेटो के रूट सिद्धांत को या अन्य किसी भी विचारधारा को, भाषा मानव सभ्यता के मूल में दिखाई देती है, उसके एक-एक अभिन्न अंग के रूप में।

मेरे लिए तो भाषा का अर्थ हिंदी है, जो प्राकृत की अपभ्रंश अवस्था से अवहट्ट की यात्रा करती हुई आज संचार माध्यमों में एक अलग ही रूप में दिखाई देती है।

हिंदी एक अत्यंत ही सरल एवं सहज भाषा है, इसकी वैज्ञानिक लिपि देवनागरी इसके अध्ययन को भी सुगम बनाती है।

एक विशाल शब्दकोश और उदार हृदयता इसे और भी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करती है।

यही है हिंदी भाषा का लचीलापन उसकी सुंदरता। आप किसी भाषा को समृद्ध करने का चाहे कितना भी प्रयास कर लें, पर ऐसी सहजता नहीं पा सकते, इसके पीछे भारतीय सभ्यता का गौरवशाली इतिहास है जो भाषा से भी 'चरैवेति चरैवेति' कहता है और एक सतत प्रवाहित धारा के निर्मल जल को अंजुली में भर कर आचमन कर लेता है।

हिंदी भाषा के साथ इस भव्य अतुलनीय साक्षात्कार के बाद जब मैं जीविकोपार्जन के लिए व्यावसायिक क्षेत्रों में उतरा तो वहाँ एक अलग ही यथार्थ से मेरा सामना हुआ। मीडिया, विज्ञापन और फिल्म इन सभी क्षेत्रों में हिंदी की स्थिति मेरे

---

* प्रसिद्ध गीतकार एवं फिल्म सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष।

बाल्यकाल की हिंदी से सर्वथा भिन्न थी। यहाँ हिंदी अंग्रेजी जाननेवालों के दर्प के सामने जूझती दिखाई देती थी, जिस भाषा की मिट्टी से मैंने बचपन में खिलौने बनाए थे, जिसकी सुवास मेरे नथुनों से मेरे अवचेतन तक में बसी थी, उसे यहाँ सहमकर रहना सिखाया जा रहा था। मेरे आँगन के वृक्ष की मिट्टी को बस बालकनी के गमलों में घुटकर रहने को कहा जा रहा था। यहाँ मैं मूलतः मीडिया और विज्ञापन व्यवसायों से जुड़े अपने व्यक्तिगत अनुभवों की बात कर रहा हूँ।

मैं यह विश्वास करता हूँ कि भाषा एवं विचार आपस में गुँथे हुए होते हैं और किसी भी संस्कृति को जीवित रहने के लिए उसकी भाषा को भी जीवित रहना होता है, उसी भाषा में सोचना होता है, विचार को संस्कृति की धरती से ही जन्म लेना होता है। इसीलिए अंग्रेजी में सोचे गए विचारों का हिंदी में प्रस्तुतीकरण मुझे हास्यास्पद लगता था और मेरा हिंदी प्रेम उठ खड़ा होता था। मुझे हिंदी की गरिमा और उसकी शक्ति को इस व्यावसायिक संसार में प्रगट करना था। यहाँ सतत प्रयास चाहिए थे, एक-एकाग्रता चाहिए थी, जो अव्यवहारिक न हो, जिसमें आदर्श हो पर हठ न हो, मैंने बस इतना ही किया कि हिंदी की उँगली और कस के पकड़ ली और चलने लगा उसकी गति के साथ, बहने लगा उसके ओजपूर्ण प्रवाह के साथ।

हिंदी में सोचना किस तरह प्रभावी होता है, किस तरह प्रभावोत्पादक होता है व्यवसायियों को मैं इसके प्रमाण देता रहा। सौभाग्य से आज इतना तो कह सकता हूँ कि व्यावसायिक क्षेत्रों में हिंदी की पकड़ पहले से बहुत अच्छी है। चाहे लक्ष्य अभी दूर हो, पर इतिहास इसका प्रमाण है कि जब भी हिंदी पर दबाव पड़ता है, वह अधिक शक्तिशाली होकर एक नई त्वरा से खड़ी होती है।

फिल्मों में जब मैंने गीत, संवाद और पटकथा लिखना आरंभ किया और पाठशाला जैसे शब्दों का प्रयोग फिल्मी गीत में किया, तब वहाँ भी यह कार्य सरल नहीं था, पर मुझे विश्वास था कि हिंदी के शब्दों की अनुगूँज मुझे सुनाई देगी, दर्शक एवं श्रोता इन्हें सराहेंगे। मैं अपने अंतःकरण से हिंदी की गूँज सुनते हुए बस लिखता रहा। और कर भी क्या सकता हूँ, मेरे पास कलम ही है और है अपना हिंदी प्रेम!

'तारे जमीं पर' फिल्म के गीत में जब 'तू धूप है झम से बिखर' लिखा तब 'झम' शब्द का प्रयोग कर उत्तराखंड से जुड़े अपने शब्दकोश को प्रणाम किया, जहाँ शब्दों में ध्वनि का प्रयोग बहुत किया जाता है, श्रोताओं ने इसे भी सराहा और मुझे हिंदी के लचीलेपन पर अभिमान हो आया।

हिंदी को एक ओर संस्कृत की शब्दसंपदा एवं नवीन शब्द-रचना-शक्ति मिली है, तो दूसरी ओर देश की भगिनी भाषाओं एवं अपनी बोलियों के शब्द।

हिंदी के प्रति प्रेम चाहे हर समय प्रत्यक्ष न हो पर देश के अंतर्मन से उदित हो, बार-बार परिलक्षित होता है।

दक्षिण के संत वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज हों या महाराष्ट्र के नामदेव तथा संत ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू, रज्जब, मीराबाई, पंजाब के गुरु नानक हों या असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु तथा सूफी संतों में भी हिंदी की छाया और उसकी शीतलता की झलक दिखाई देती है।

मैं स्वयं को हिंदी का एक छोटा सा सेवक मानता हूँ और विशेषकर आनेवाली पीढ़ी से, युवाओं से अपनी रचनाओं से अपनी ही तरह से मैं हिंदी से जोड़ने का प्रयास करता रहता हूँ। हिंदी अत्यंत ही समर्थ भाषा है और हमारा यह सौभाग्य है कि हम हिंदी प्रेमी हैं।

□

prasoonjoshi@gmail.com

हिंदी पत्रकारिता में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा

—प्रो. अरुण कुमार भगत

सूचना प्रौद्योगिकी के आविष्कार के कारण आज घड़ी-पलक में देश-विदेश के समाचार प्राप्त हो जाते हैं। इधर घटना घटी नहीं कि उधर समाचार प्रसारित हो जाता है। सचमुच इस प्रौद्योगिकी को देखकर समाज-जीवन चकित-चमत्कृत है। वर्तमान शताब्दी सूचना और प्रौद्योगिकी के चमत्कार से पल्लवित, पुष्पित और फलित हो रही है। संचार क्रांति ने पत्रकारिता में अनेक आयाम जोड़ दिए हैं। विज्ञान और तकनीकी की प्रगति का जादू पत्रकारिता जगत् पर सिर चढ़कर बोल रहा है। समाचार संकलन, संपादन, पृष्ठ सज्जा और शब्द-संयोजन से लेकर मुद्रण और वितरण तक के हर क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा और उसकी गति ने तिलिस्म पैदा कर दिया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और न्यू मीडिया के द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में मुद्रित माध्यम को प्रौद्योगिकी ने सक्षम बना दिया है। पत्रकारिता के संदर्भ में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा पर अगर हम नजर डालते हैं तो पत्र-पत्रिकाओं की साज-सज्जा और रंग-रूप का आकर्षण ही नहीं, वरन् समाचार संप्रेषण की गति भी बढ़ गई है। अत्याधुनिक आविष्कार के कारण अब प्रकाश की गति से सूचनाओं का संप्रेषण और संप्रसारण संभव हो गया है। आज पत्रकारिता की प्रवृत्ति और प्रकृति के बदलाव केवल तीव्र गति से सूचनाओं के संप्रेषण के कारण ही नहीं अपितु उसकी विविधता तथा लोकरुचि-लोकहित के परिष्कृत-परिवर्तित स्वरूप के कारण ही है।

पत्रकारिता के विश्व इतिहास पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि 1561 ईस्वी में पहली बार ब्रिटेन में 'न्यूज आउट ऑफ केंट' नामक एक पृष्ठीय समाचार-पत्र मुद्रित हुआ था। इसमें काव्यात्मक शैली में खबरें लिखीं गई थीं। इसके बाद 'न्यू न्यूज', 'एविसा' और 'रिलेशन' आदि का प्रकाशन विभिन्न देशों से हुआ। किंतु ब्रिटेन में जॉन गुटेनबर्ग द्वारा 1456 ईस्वी में प्रेस के आविष्कार के फलस्वरूप वहाँ पहला समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। भारत में पहला समाचार-पत्र जैम्स अगस्टस हिक्की ने 19 जनवरी, 1780 ईस्वी को प्रकाशित किया था। इसका नाम था—'बंगाल गजट ऑर कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर।' सामाजिक सरोकार के लिए प्रकाशित पहले समाचार-पत्र से लेकर अब तक के समाचार-पत्रों की विकास-यात्रा को अगर हम देखते हैं तो पाते हैं कि संपादन से लेकर प्रकाशन तक में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी की इस 450 वर्षों की लंबी विकास-

* बिहार लोक सेवा आयोग के सदस्य।

यात्रा में पत्रकारिता ने अनेक सोपान तय किए हैं।

पत्रकारिता के इन पाँचों क्षेत्रों की विकास-यात्रा लगभग वैसी-ही है, जैसी मानव द्वारा धरती से चाँद और अंतरिक्ष के अन्य ग्रहों की यात्रा का कीर्तिमान है। सूचना प्रौद्योगिकी ने वह चमत्कार कर दिखाया है, जिसकी कामना और कल्पना सौ साल पहले नहीं की जाती थी। अब समाचार-कक्ष 'पेन-पेपर लेस' हो गया है। ऑनलाइन संपादन अब संभव है। यह ठीक है कि ब्रिटेन में गुटेनबर्ग द्वारा छापेखाने के आविष्कार से एक नए युग की शुरुआत हुई थी और एक साथ बड़े पाठक समूह तक कोई समाचार आसानी से पहुँचाने की व्यवस्था की जा सकी थी। किंतु आज कंप्यूटर और खासकर उससे जुड़े इंटरनेट की व्यवस्था ने ऐसी क्रांति ला दी है, जिससे 'ग्लोबल विलेज' की परिकल्पना सचमुच साकार हो गई है। निस्संदेह इसका क्रांतिकारी प्रभाव युगांतकारी है। क्या गाँव, क्या शहर, सर्वत्र इसकी उपयोगिता और उपादेयता का करिश्माई प्रभाव दिख रहा है। इंटरनेट की सुविधा ने ही इ-मेल, ऑरकुट, टिवटर, फेसबुक और अब तो व्हॉटस्एप्प जैसे सोशल मीडिया से नित-नूतन नए आविष्कार कर रहा है। सच पूछा जाए तो इसने मीडिया का लोकतांत्रीकरण कर दिया है। इंटरनेट के ही कारण साइबर मीडिया का क्षितिज भी उद्घाटित हो गया है। देश के प्रमुख समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और चैनल ने अपने-अपने नाम से वेब पत्रकारिता (डॉटकाम) शुरू कर दी है। सैनिकों और शासकों के लिए शुरू की गई इंटरनेट की यह व्यवस्था आज जन-जन को सुलभ हो रही है। गूगल पर अब संसार का सारा ज्ञान-विज्ञान प्रायः उपलब्ध हो रहा है और इसको खोजने की प्रक्रिया को भी सूचना प्रौद्योगिकी ने बहुत ही आसान बना दिया है। यह बहुत बड़ी क्रांति है। सूचना प्रौद्योगिकी के कारण पत्रकारों का प्रायः सभी कार्य आसान हो गया है। अब वह न केवल द्रुतगति से समाचारों का संप्रेषण और संपादन करने में सफल हुआ है, अपितु उसकी कार्यकुशलता में भी बेतहाशा वृद्धि हुई। इससे न केवल श्रम की बरबादी रुकी है, अपितु इससे पत्र-पत्रिकाओं की लागत भी कम हो गई है। अब हम पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा का अलग-अलग अध्ययन-अनुशीलन करना चाहते हैं।

1. समाचार संकलन में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा

स्वाधीनता के पहले और बहुत बाद तक समाचार-संकलन के लिए पहले संवाददाता घटना प्रसंग को देखता था। विभिन्न स्रोतों से सूचनाएँ एकत्र करता था और उसे कागज पर हाथ से लिखकर कार्यालय को भेजता था। तब घटनास्थल तक जाने और वहाँ से समाचार संकलन कर पत्र-पत्रिकाओं के कार्यालय तक पहुँचाने में काफी समय लगता था। गाँव-कस्बों के समाचार को तो संवाददाता लिखकर डाक सेवा अथवा बस-ट्रेन आदि के माध्यम से कार्यालय तक पहुँचाता था। कोरियर सेवा और बाद में स्पीड पोस्ट की सेवा होने पर भी गाँव-कस्बों के समाचार कई दिन बाद पत्र-पत्रिकाओं के मुख्यालय में पहुँचते थे। इसमें भी दो-तीन दिन लग जाते थे और संपादक दो-तीन दिन और कभी-कभी तो सप्ताह भरतवासी समाचार को छापकर ही खुश हो जाता था और जंग जीत लेने जैसी सुखानुभूति प्राप्त करता था। बाद में समाचार भेजने का कार्य टेलीफोन, फैक्स, तार, मॉडम इत्यादि द्वारा होने लगा। अब सूचना प्रौद्योगिकी के नए युग ने इसकी गति तीव्र कर दी है। अब कोई भी संपादक बासी समाचार छापना पसंद नहीं करता। प्रतिस्पर्धी समाचार-पत्रों में समाचार पहले छप जाने का भय और आतंक ने

उसे नई-से-नई सूचना प्रौद्योगिकी को किसी भी कीमत पर अपनाने के लिए मजबूर कर दिया है। प्रौद्योगिकी ने संवाददाता की आँखों और कानों को भी पैना कर दिया है। पत्रकारिता की दृष्टि से विचार करें तो संवाददाता नामक प्राणी समाचार-प्रकाशन की व्यवस्था की पहली कड़ी है, किंतु अब सिटीजन जर्नलिज्म ने इसकी अनिवार्यता को भी पूरी तरह खत्म नहीं तो कम-से-कम किसी-न-किसी हद तक न्यून अवश्य किया है। वीडियो क्लिप ने तो इसकी विश्वसनीयता पर उठ रहे सवाल को भी दरकिनार कर दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी के कारण अब पाठकों की जरूरतें भी बढ़ने लगी हैं। यही कारण है कि समाचार की बहुलता के साथ-साथ उसकी विविधता को भी पत्रकारिता ने आत्मसात् कर लिया है। अब संवाददाता के लिए स्रोत से संपर्क की प्रक्रिया पहले की तुलना में सहज और सरल ही नहीं, अपितु कम खर्चीला भी हो गया है। इसका एक दुष्परिणाम यह भी दिखाई पड़ रहा है कि संवाददाता की भूमिका और उनकी अपरिहार्यता कम हो रही है। अब एक ही संवाददाता बड़े मीडिया समूह के मुद्रित माध्यम, रेडियो, टेलीविजन और वेब के लिए समाचार भेजने लगा है। यह 'कनवर्जेंस ऑफ मीडिया' का युग संवाददाताओं की संख्या भी कम कर रहा है।

यह सच है कि इंटरनेट अब पत्रकारिता की पारंपरिक दीवारों को तोड़ रहा है। बस, जरूरत इस बात की है कि इसके उपयोग का कौशल पत्रकार में होना चाहिए।

2. समाचार संपादन में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा

कंप्यूटर और इंटरनेट की सुविधा के कारण संपादकीय कक्ष में समाचारों का प्रवाह न केवल द्रुतगति से होता है, अपितु उनकी गुणवत्ता अक्षुण्ण रहती है। अशुद्धियों की संभावना अब न्यून हो गई है। संपादन अब ऑनलाइन भी संभव हो गया है। अब मीडिया संस्थानों को प्रूफ रीडर रखने की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। संपादन अब द्रुतगति से संभव हो सका है। संपादकीय विभाग को समाचार को टाइप अथवा कंपोज नहीं करना पड़ता है। इससे बड़े पैमाने पर श्रम की बचत हो रही है और संस्थान का लागत मूल्य भी कम हो रहा है। अब तो न्यूज एजेंसी की खबरें भी कंपोज होकर आती है और उसे पुनः कंपोज करने की जरूरत नहीं होती। उसमें मामूली संपादन और संशोधन से संपादकीय टीम का काम चल जाता है। डेडलाइन के बाद आनेवाले महत्त्वपूर्ण समाचारों को भी प्रकाशित करने की संभवना बढ़ गई है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में हर समाचार-पत्र अद्यतन समाचार देने की होड़ में लगा है। इसीलिए न केवल संपादन, अपितु लेआउट और डिजाइन को भी परिवर्तित करने में कुछ मिनटों का समय लगता है और इस तरह कंप्यूटर तथा इंटरनेट ने संपादन को समयसाध्य, परिश्रम मूलक और खर्चीला होने की परिधि से बाहर कर उसे सुगम, सरल और सस्ता बना दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण अद्यतन समाचार छापना आसान हो गया है। फलतः पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार में बेतहाशा वृद्धि हुई है। तकनीकी रूप से संपन्न समाचार-पत्रों की प्रसार संख्या बढ़ने से उनका विज्ञापन भी बढ़ा है। अर्थात् नई प्रौद्योगिकी अपनाकर मीडिया संस्थान अतिरिक्त लाभ ले रहा है।

3. शब्द संयोजन में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा

पत्र-पत्रिकाओं में मुद्रण के लिए शब्द-संयोजन किया जाता है। पहले शब्द-संयोजन के लिए मूवेबल टाइप को पांडुलिपियों के अनुसार

जमाया जाता था। टाइप विशेष धातु से निर्मित अक्षर होते हैं, जो उलटी प्रतिकृति की होती है। धातु से निर्मित इन्हीं टाइप (अक्षर) को एक-एक कर पांडुलिपि के अनुसार जमाया जाता था और इस तरह मुद्रण के लिए संयोजित शब्द तैयार किया जाता था। मुद्रण कला के विकास का श्रेय यद्यपि चीन को जाता है, किंतु सबसे पहली बार मूवेबल टाइप के विकास का श्रेय जर्मनी के गुटेनबर्ग को प्राप्त है। उनके द्वारा 14 अगस्त, 1456 को प्रकाशित प्रथम पुस्तक बाइबिल में पहली बार मूवेबल टाइप का उपयोग हुआ था। लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षों की इस विकास-यात्रा में अनेक परिवर्तन हुए। टाइप के आकार-प्रकार, उसकी बनावट आदि में समय ने अनेक परिवर्तन देखे। टाइप को ढालने की प्रक्रिया में भी अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए। सुंदर और कलात्मक टाइप का निर्माण किया जाने लगा। यह एक कला के रूप में विकसित हुआ, जिसे 'टाइपोग्राफी' कहा जाता है।

कंप्यूटर के आविष्कार के बाद अब कंपोजिग अथवा टाइप सेटिंग की प्रक्रिया बहुत आसान हो गई है। अब कंपोजिटर को धातु के बने टाइप से शब्द-संयोजन नहीं करना पड़ता है। अब कंप्यूटर पर की-बोर्ड की सहायता से शब्द-संयोजन किया जाता है और इसमें अशुद्धियों को दूर करना काफी सरल हो गया है। आज तो कंप्यूटर पर स्पेलिंग चेक करने की भी व्यवस्था है। कंप्यूटर पर ही प्रूफ पढ़कर उसे शुद्ध किया जा सकता है। कंपोजिंग की इस विकास-यात्रा ने पत्रकारिता को आसान बना दिया है। कंप्यूटर के विकास के कारण शब्द-संयोजन की प्रणाली में अब काफी गति आ गई है। सच पूछा जाए तो इससे पत्रकारिता और उसके मुद्रण की व्यवस्था में पंख लग गए हैं। अब लोहे के बने चकोर प्लेट पर रखे मैटर और भारी-भरकम फर्मे को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की नौबत ही नहीं आती। अब तो कंपोज्ड सामग्री को इंटरनेट के माध्यम से हजारों-हजार किलोमीटर दूर घड़ी-पलक में भेजा जा सकता है।

4. लेआउट और डिजाइन में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा

समाचार-पत्र कार्यालयों में मुद्रण के लिए पृष्ठ-निर्माण की प्रक्रिया की दृष्टि से भी काफी बदलाव आया है। समाचार-पत्रों के पृष्ठों को सुंदर और कलात्मक तरीके से विन्यस्त किया जाने लगा है। इसे पृष्ठ-सज्जा अथवा लेआउट और डिजाइन के नाम से जाना जाता है। आज समाचार-पत्र के सौंदर्य का शोधन और कमनीयता की कामना से अनेक उपक्रम किए जा रहे हैं। वस्तुतः पृष्ठ-सज्जा की अवधारणा यहीं से उत्पन्न हुई। समाचार पत्रों की चित्ताकर्षक और मोहक प्रस्तुति समय की माँग हो गई है। कलात्मक और सुंदर पृष्ठ-सज्जा को देखकर पहली ही नजर में पाठक आकर्षित हो जाता है। पृष्ठ-सज्जा के कारण घटिया और कम गुणवत्तावाली सामग्री का भी प्रभाव अच्छा ले-आउट और डिजाइन के कारण पहली नजर में बढ़ जाता है और इसके विपरीत अच्छी सामग्री की प्रस्तुति यदि ठीक नहीं है तो उसका प्रभाव घट जाता है। आकर्षक चीजें हाथोहाथ बिक जाती हैं।

5. पत्र-पत्रिकाओं के मुद्रण में प्रौद्योगिकी की विकास यात्रा

ब्रिटेन में गुटेनबर्ग द्वारा मुद्रण के लिए आविष्कार की गई मशीन की जगह अब ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस ने ले ली है। इस विकास-यात्रा पर अगर नजर डालें तो गुटेनबर्ग ने हाथ से छपाई की व्यवस्था की थी। अब मशीन से छपाई होने लगी। मशीन से छपाई की प्रक्रिया में भी धीरे-धीरे काफी सुधार आया है। ट्रेडल छपाई की मशीन में सपाट

प्लेट की सहायता से चेस पर सेट की गई प्रतिकृति को पूरे कागज पर दबाकर छापा जाता था। इसकी तकनीक भी गुटेनबर्ग के हैंड प्रेस की ही तरह थी। जबकि इसके बाद विकसित सिलेंडर मशीन का सिद्धांत इससे अलग था। इसमें प्लेटन के स्थान पर सिलेंडर का प्रयोग होता था। बाद के दिनों में समचारपत्रों के मुद्रण के लिए रोटरी मशीन का निर्माण हुआ। अब ऑफसेट मशीन से छपाई की जाने लगी है। ऑफसेट छपाई का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे द्रुतगति से छपाई की जा सकती है।

पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा की मीमांसा आवश्यक है। तब से लेकर अब तक समाचार संकलन, संपादन, शब्द-संयोजन, पृष्ठ-सज्जा और मुद्रण के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की विकास-यात्रा को रेखांकित करना इस छोटे से आलेख में कठिन है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने घटना या दुर्घटना के होने और उसे समाचार के रूप में प्रकाशित-प्रसारित होने की अवधि को चमत्कारिक रूप से कम किया है। इस विकास-यात्रा को रेखांकित करना समय की माँग है। अब तक इस विषय पर समग्रता के साथ कोई शोध-कार्य नहीं हुआ। इस दृष्टि से इस विषय पर शोध-कार्य की आवश्यकता महसूस हो रही है। पत्र-पत्रिकाओं के कार्यालयों में कंप्यूटर के आगमन से तो मानो पत्रकारिता में नई ऊर्जा का संचार हुआ है, नए युग का सूत्रपात हुआ है। अगर हम यह कहें कि कंप्यूटर ने पत्रकारिता के क्षेत्र में आमूल-चूल परितर्वन ला दिया है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। मुद्रण की दृष्टि से विचार करें तो जहाँ पहले हजार-दो हजार प्रतियाँ छापने में घंटों लग जाते थे वहाँ अब इतनी अत्याधुनिक तकनीक की मशीन आ गई है कि एक घंटे में समाचार-पत्रों की एक-एक लाख प्रतियाँ छापी जा सकती हैं। इस दृष्टि से प्रौद्योगिकी की इस विकास-यात्रा और उसकी उपलब्धि तथा उपादेयता पर प्रकाश डालना समय की माँग है। इंटरनेट ने तो पत्रकारिता और जनसंचार के नए गवाक्ष खोल दिए हैं।

□

arunkumarbhagat174@gmail.com

सरलता, बोधगम्यता और शैली की दृष्टि से
विश्व की भाषाओं में हिंदी महानतम स्थान रखती है।

—डॉ. अमरनाथ झा

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिंदी प्रचार के द्वारा
एकता स्थापित करनेवाले सच्चे भारत-बंधु हैं।

—महर्षि अरविंद घोष

पूर्वोत्तर के जनजातीय क्षेत्रों की संचार प्रणाली में हिंदी
(अरुणाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में)

—डॉ. तारो सिंदिक

भारत का पूर्वोत्तर प्रांत आठ छोटे-छोटे राज्यों का गढ़ हैं। इनमें असम को छोड़कर अन्य सात राज्यों के विषय में देश के अन्य प्रांत के लोगों के मानस में विभिन्न प्रकार की भ्रांतियाँ हैं। कईयों का तो यहाँ तक मानना है कि पूर्वोत्तर और असम राज्य एक-दूसरे के पर्याय हैं। यह भ्रांतियाँ कुछ उदासीनता के कारण तो कुछ इन राज्यों से संबंधित अल्प ज्ञान के कारण हैं। असम के अतिरिक्त सिक्किम, मेघालय, नागालैंड, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा तथा अरुणाचल प्रदेश से पूर्वोत्तर भारत मुकम्मल होता हैं। संपूर्ण पूर्वोत्तर क्षेत्र जनजातीय बहुल क्षेत्र हैं, जिनकी धर्म, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, जीवन-शैली, रहन-सहन तथा खान-पान देश के अन्य क्षेत्रों से सर्वदा भिन्न हैं। यहीं भिन्नता कई बार अन्य देशवासियों के हृदय में 'भ्रांति' को जन्म देती हैं। यह बात अलग है कि यही विविधताएँ भारत की वास्तविक अस्मिता एवं सौंदर्य का आधार हैं।

जहाँ तक भाषा या बोली का प्रश्न है, पूर्वोत्तर भारत को यदि भाषाओं एवं बोलियों का सघन जंगल कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मधुमिता बारबोरा लिखती हैं कि "भारत की 'सात बहनों वाला भूखंड भाषाई दृष्टि से संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक वैविध्यमय क्षेत्र हैं।" इसका प्रमाण यह है कि इस क्षेत्र में लगभग दो सौ से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें असमियाँ, बंगाली और बोड़ो जैसी आठवीं अनुसूचित में सम्मिलित भाषाएँ भी हैं। अन्य में स्थानीय जनपदों में बोली जानेवाली बोलियाँ आती हैं, जिनमें कुछ विलुप्त हो चुकी हैं, कुछ अब भी अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए जद्दोजहद कर रही हैं। इस भाषाई विविधता में जनजातीय लोगों में सेतु स्थापित करने का कार्य असमियाँ भाषा करती आई है। पूर्वोत्तर के हर प्रांत में असमिया भाषा कम और अधिक बोली और समझी जाती है। शायद सिक्किम राज्य इसका अपवाद हो। "यह एक रोचक तथ्य है कि पिछले कई शताब्दियों से विविध जनजातीय समुदायों के मध्य असमिया संपर्क भाषा की भूमिका अदा करती आई है।" इसका मूल कारण यह है कि असम संपूर्ण पूर्वोत्तर राज्यों के केंद्र में बसा है और प्रत्येक राज्य का बाहरी द्वार असम के रास्ते ही खुलता है। अत: इन राज्यों का असमिया समाज और भाषा के प्रभाव में आना स्वाभाविक है।

---

* सहायक प्रोफेसर, देरानातुंग, सरकारी महाविद्यालय, ईटानगर।

जहाँ तक पूर्वोत्तर में हिंदी की स्थिति का प्रश्न है, यहाँ हिंदी न्यूनाधिक रूप से प्रत्येक राज्य में बोली और समझी जाती है। पूर्वोत्तर के प्रत्येक राज्य में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए गैर सरकारी संस्थानों को स्थापित किया गया है। वे संस्थान हैं—

मणिपुर	–	मणिपुर हिंदी परिषद्, मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
नागालैंड	–	नागालैंड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
मेघालय	–	पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी
मिजोरम	–	मिजोरम हिंदी प्रचार सभा
त्रिपुरा	–	त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
असम	–	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी।

पूर्वोत्तर जैसे अहिंदी भाषी प्रांत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में उपरोक्त संस्थाओं ने विशेष भूमिकाएँ अदा की हैं। इनके अतिरिक्त गुवाहाटी से निकलने वाले दैनिक अखबार जैसे—पूर्वांचल प्रहरी, दैनिक पूर्वोदय, प्रात: खबर तथा दैनिक प्रेरणा भारती इत्यादि भी हिंदी की लोकप्रियता का साक्षात प्रमाण हैं। सिक्किम से डॉ. प्रदीप त्रिपाठी के सम्पादन में निकलनेवाली पत्रिका 'कंचनजंघा', राजीव गांधी विश्वविद्यालय ईटानगर से निकलने वाली पत्रिका 'अरुण प्रभा' तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा प्रकाशित 'समन्वय पूर्वोत्तर' हिंदी साहित्य से संबंधित तीन उत्कृष्ट पत्रिकाएँ भी हिंदी की जमीन को मजबूत करने में अहम भूमिकाओं में हैं। इन पत्रिकाओं में, पूर्वोत्तर में हिंदी के अग्रदूतों द्वारा लिखे जानेवाली शोध आलेख एवं सृजनात्मक रचनाएँ छपती हैं। एक प्रकार से इन्हें 'पूर्वोत्तर की हिंदी की स्थिति का आईना' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ऊपर जिन संस्थानों एवं पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया हैं, वे हिंदी के लिए औपचारिक मंच हैं। जहाँ पर पूर्वोत्तर के हिंदी प्रेमी अपनी रचनात्मकता को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। परंतु जहाँ तक संचार प्रणाली का प्रश्न है, वहाँ स्थिति विपरीत सी जान पड़ती है। पूर्वोत्तर की अकादमिक क्षेत्र में हिंदी की जड़े अवश्य मजबूत हो रही हैं, परंतु जनजातीय क्षेत्रों के संचार प्रणाली में अभी भी हिंदी को वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ, जो असमिया तथा स्थानीय भाषाओं को है। अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में उस राज्य की प्रधान भाषा या कोई अन्य भाषा संपर्क भाषा का कार्य कर रही है। उदाहरण के लिए, असम में असमिया, त्रिपुरा में कोकबोरोक और बंगाली, मणिपुर में मणिपुरी या मैतेई, मिजोरम में मिजो, नागालैंड में नागामिस, मेघालय में अंग्रेजी, खासी और गारो, सिक्किम में नेपाली, भूटिया या लेप्चा इत्यादि। इनमें कहीं भी हिंदी भाषा का प्रयोग संचार प्रणाली में नहीं होता। अरुणाचल प्रदेश अकेला वह राज्य है, जहाँ की संचार प्रणाली में हिंदी पूर्णतया प्रयुक्त होती है।

अरुणाचल प्रदेश के भाषिक परिदृश्य पर बात करना आवश्यक हो जाता है। संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत में अरुणाचल प्रदेश सबसे वृहद राज्य है। केवल भौगोलिक क्षेत्र की हैसियत से, जनसंख्या या अन्य आधारों पर नहीं। परंतु विविधता की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश संपूर्ण पूर्वोत्तर राज्यों में शीर्ष स्थान पर है। भारत के पूर्वी सीमांत पर बसा अरुणाचल प्रदेश बरसों से बाहरी लोगों के लिए कौतुहल और आकर्षण का केंद्र रहा है। इस प्रदेश में लगभग छब्बीस जनजातियाँ एक साथ निवास करती हैं। इन छब्बीस जनजातियों की सौ से भी अधिक उपजनजातियाँ बताई जाती हैं। जब गिनती करने लग जाएँ तो हमें भी नहीं पता होता कि कौन सी जनजाति की उपजनजातियाँ कौन-कौन सी हैं? यह आश्चर्य का विषय हो सकता है

कि एक अरुणाचली को अरुणाचल की जनजाति एवं उपजनजाति विषयक संपूर्ण ज्ञान कैसे नहीं हो सकता? यहीं अरुणाचल की विडंबना है और सौंदर्य भी। जिन छब्बीस जनजातियों का उल्लेख हुआ है, वे सब भाषाई दृष्टि से एक-दूसरे से विषम हैं। अरुणाचल प्रदेश की पूर्वी छोर से पश्चीमी तथा उत्तर से दक्षिणी छोर की यात्रा करेंगे तो ज्ञात होगा कि यह प्रदेश कितनी भाषाई विविधता से सजा हुआ है! यहाँ तक कि एक ही जनजाति में निहित उप-जनजातियाँ भी एक-दूसरे की बोली बोल नहीं पाते और न समझ पाते हैं। उदाहरण के लिए ताङसा एक प्रमुख जनजाति है। कहा जाता है कि इस जनजाति में कुल 17 उप जनजातियाँ हैं, जिनकी बोलियाँ एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उपजनजातियाँ ही क्यूँ, एक ही जनजाति जैसे न्यिशी में क्षेत्र विशेष के आधार पर भाषा का स्वरूप एकदम से भिन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए, ईस्ट कामेंग जिला में बोली जानेवाली न्यिशी भाषा को अन्य जिलों में बसे न्यिशी लोग बोल और समझ नहीं पाते। यह अरुणाचल प्रदेश की भाषाई विविधता की पराकाष्ठा है।

इसी विविधता के कारण ही अरुणाचल प्रदेश में 'स्टेट लेंग्वैज' कहलाने हेतु किसी भी भाषा का चयन नहीं हो पाया। कारण, यहाँ कोई ऐसी स्थानीय भाषा नहीं जो संपूर्ण अरुणाचल प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर सके। अत: यहाँ की संचार प्रणाली में कोई गैर अरुणाचली भाषा ही प्रयोग में लाई जाती रही हैं। पिछले कुछ दशकों से अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय समुदायों में वाचिक सेतु स्थापित करने की जिम्मेदारी हिंदी भाषा बड़ी कुशलता से निभा रही हैं। हिंदी से पहले अरुणाचल की संपर्क भाषा असमिया भाषा थी। आज भी प्रदेश का बुजुर्ग वर्ग बड़ी सरलता से असमिया भाषा का प्रयोग करता है, परंतु भारत की स्वतंत्रता के पश्चात प्रदेश के भाषाई परिदृश्य में भी परिवर्तन आया है। सन् 1962 में चीन ने अरुणाचल की सीमाओं से होते हुए भारत पर हमला किया। उस युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत सरकार का ध्यान इस ओर अधिक बढ़ा और हिंदी भाषा की आवश्यकता को समझते हुए यहाँ स्कूलों में हिंदी को लागू किया गया। सत्तर के दशक में किस प्रकार असमिया की जगह धीरे-धीरे हिंदी ले रही थी, उसका उल्लेख करते हुए डॉ. जमुना बिनी लिखती हैं, "आजादी के पहले से वे लोग पड़ोसी राज्य की भाषा असमिया का प्रयोग संपर्क भाषा के रूप में करते थे, लेकिन सत्तर के दशक में उनका संपर्क एक ऐसे समुदाय से हुआ, जो असमिया नहीं जानता था और वह समुदाय था हिंदी भाषी समुदाय। अरुणाचल के विकास में इस समुदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह समुदाय इस प्रदेश में कई रूपों में आया। भारतीय सेना के जवान, स्कूलों और महाविद्यालयों के शिक्षक, मारवाड़ी और मजदूर, हर रूप में हिंदी भाषी इस प्रदेश में आए और अपने साथ लाए अपनी भाषा। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के प्रचार में इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। चीनी आक्रमण के बाद विकास की गतिविधियों में आई तीव्रता से पैदा हुए रोजगार का लाभ उठाने के लिए अरुणाचल प्रदेश आए हिंदी भाषियों ने यहाँ एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति पैदा कर दी, जिसके कारण धीरे-धीरे प्रदेश की संपर्क भाषा असमिया की जगह हिंदी हो गई।" तब से लेकर अब तक हिंदी अरुणाचल प्रदेश की सरजमीं पर बहुत गहराई तक घर कर चुकी है। हिंदी को हमारे प्रदेश के लोगों ने किसी बाहरी दबाव या लोभ के कारण नहीं, अपितु सहर्ष एवं स्वेच्छा से अपनाया।

अरुणाचली समाज में आज हिंदी एक ताकतवर भाषा के रूप में अपना स्थान बना चुकी

है। प्राय: गैर अरुणाचलियों के लिए अरुणाचली हिंदी आश्चर्य का कारण बन जाती है। उनकी मानें तो अरुणाचल जैसे अहिंदी भाषी प्रांत के लोग इतनी अच्छी हिंदी कैसे बोल पाते हैं? यह हमारे लिए भी आश्चर्य का विषय है कि कैसे हम लोगों ने इस भाषा में स्वयं को इतना ढाल लिया ! जो भी हो, सत्य यह है कि आज अरुणाचली समाज हिंदी भाषा के बिना जिंदा ही नहीं रह सकता। अरुणाचल प्रदेश की भाषाई जंगल में आज हिंदी भाषा वैचारिक आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त कर रही है। निस्संदेह अंग्रेजी यहाँ कि राज-काज की भाषा है, परंतु उसके व्यवहार क्षेत्र की परिधि बहुत संकुचित है। वह केवल दफ्तरों के निर्जीव कागजों तक ही सीमित है। हृदय को हृदय से तथा बुद्धि को बुद्धि से जोड़ने का काम तो हिंदी ही कर रही है। आश्चर्य का सबसे बड़ा कारण यह है कि अरुणाचल प्रदेश में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए किसी भी सरकारी संस्थान या संगठन की व्यवस्था नहीं है। न ही कोई गैर सरकारी संगठन है, जो हिंदी को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत है। संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत में अरुणाचल प्रदेश अकेला राज्य है, जहाँ पर हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए किसी भी प्रकार की मशीनरी सेवारत नहीं है।

अत: यह कहना कतई भी गलत नहीं होगा कि अरुणाचल की जनजातीय समाज की संचार प्रणाली में हिंदी भाषा की भूमिका सर्वोपरि है। कुछ व्यावहारिक तथ्यों के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करते हैं। अरुणाचल प्रदेश की जनता राजनीति में अतिरिक्त रुचि रखती है। यहाँ हर उम्र के लोग राजनीति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। चुनाव के दिन यहाँ उत्सव जैसा माहौल बन जाता है। यहाँ जनप्रतिनिधि और सामान्य जन के बीच का वाचिक सेतु हिंदी ही बनती है। दोनों ही पक्ष हिंदी में अपना मन्तव्य रखते हैं। नेतागण हर राजनीतिक रैली में अपनी नीतियों का प्रचास प्रसार हिंदी में ही करते हैं। विधान सभा में भी सत्रों की कार्यवाही हिंदी में ही संपूर्ण होती है।

मनोरंजन मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग है। हम मनुष्यों ने अपने जीवन को सरस बनाने के लिए मनोरंजन के कई साधन निर्धारित कर रखे हैं। उनमें ललित कलाओं को रखा जा सकता है। ललित कलाओं में गीत-संगीत और नृत्य के साथ चित्रपट को सबसे आगे रखा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश में जब सबसे पहली फिल्म बनी, वह हिंदी में ही बनी। सन् 1977 में बनी 'मेरा धर्म-मेरी माँ' नामक यह फिल्म अरुणाचल में आज भी बहुत पसंद की जाती है। इसकी लोकप्रियता का कारण यही है कि इसकी भाषा हिंदी है। भारतरत्न भुपेन हजारिका द्वारा निर्देशित इस फिल्म में कुल तीन गीत हैं। उनमें से एक गीत है, जिसे स्वयं भुपेन हजारिका ने कलमबद्ध किया, सुरों से सजाया और अपनी जादुई आवाज में गाया। उस गीत के मुखड़े के बोल इस प्रकार हैं—

अरुण किरण शीश भूषण कंठ हिम की धारा
प्रभात सूरज चुंभित देश अरुणाचल हमारा

इस गीत की संपूर्ण अरुणाचलवासियों के हृदय में अमिट छाप है। इसका महत्त्व इस कदर है कि यह अरुणाचल के कुलगीत के समतुल्य है। इसे कई स्थानीय भाषाओं में भी अनुवाद कर गाया गया है। यह हिंदी भाषा की लोकप्रियता का साक्षात् प्रमाण है। प्रदेश में कई स्थानीय फनकार भी हैं। प्रकृति प्रदत्त ये फनकार जब अपनी स्थानीय बोलियों में गाते हैं, तो उन्हें वो प्रसिद्धि नहीं मिल पाती, जो एक सिद्ध कलाकार को नसीब होती है। जब वे हिंदी में गाने लगते हैं तो रातोंरात लोकप्रियता की बुलंदियों को छूने लगते हैं। फिल्में भी अब ताबड़तोड़ बनने लगी है हिंदी में। चूँकि फिल्मों का कारोबार दर्शकों पर पूरी तरह

आश्रित होता है, इसलिए विविध भाषा-भाषियों को अपनी फिल्में परोसने के लिए फिल्मकारों को हिंदी का ही सहारा लेना पड़ता है। हिंदी भाषा के बल पर फिल्मकारों का कारोबार जमकर तरक्की करता है।

यदि हम अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न समुदायों की बात करें तो ज्ञात होगा कि इन्हें जोड़े रखने में हिंदी कितना महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। यहाँ एक जनजातीय समुदाय की भाषा दूसरे समुदाय के लिए किसी विदेशी भाषा से कम नहीं है। उदाहरण के लिए तवांग जिला के मोम्पा समुदाय के लोग लोंग्दिङ में रहनेवाले वांचो भाषा का एक शब्द समझ नहीं पाएँगे। विकट भौगोलिक क्षेत्रों में बसे होने के कारण इस प्रदेश के लोगों में आपसी आवागमन बहुत कम हो पाया है, जिसके कारण वे एक-दूसरे से बिल्कुल अंजान हैं। एक-दूसरे से अंजान समुदाय परस्पर भाषा की पेचीदगी को समझ पाएँ, ऐसी अपेक्षा रखना मूर्खता होगी। केवल शिक्षित वर्ग ही विभिन्न जनजातियों के विषय में जानकारी रखने में सक्षम है। ऐसी स्थिति में हिंदी इन अनजान या अपरिचित समुदायों के मध्य अपनत्व की गाँठ बाँधने का जबरदस्त जरिया बन जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी यहाँ घरों में बोली जाती है, बाजारों में भीड की भाषा भी वही है, दुकानों में ग्राहक और व्यापारी के बीच भी हिंदी है, यात्राओं में यात्रियों और ड्राइवरों के साथ-साथ हिंदी सफर करती है। स्कूलों में, दफ्तरों में, मंदिरों में, गिरजाघरों में और संसद् से लेकर सड़क तक हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कर ली है।

अरुणाचली समाज की संचार प्रणाली में अकेली हिंदी भाषा प्रत्येक रिक्त स्थान पर रही है। अरुणाचल का हर समुदाय, हर वर्ग और हर उम्र के लोग इस भाषा में (टूटी-फूटी ही सही) इस कदर रच बस गए हैं कि उनकी अभिव्यक्तियाँ इसी भाषा में 'मुकम्मल' होती हैं।

□

tarosindik@gmail.com

देशभाषा की उन्नति से ही देशोन्नति होती है।

—सुधाकर द्विवेदी

भाषा और राष्ट्र में बड़ा घनिष्ट संबंध है।

—(राजा) राधिकारमण प्रसाद सिंह

तलवार के बल से न कोई भाषा चलाई जा सकती है न मिटाई।

—शिवपूजन सहाय

हिंदी के प्रचार-प्रसार में मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन का योगदान

—डॉ. शशि दूकन

आज मीडिया प्रचार-प्रसार का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त साधन है। मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार में मीडिया की अहम भूमिका रही है, फिर वह चाहे रेडियो हो या दूरदर्शन। आज तो मीडिया के अनेकानेक साधन पाए जाते हैं, जो नई पीढ़ी को बड़ी सहजता से उपलब्ध हैं, जैसे इंटरनेट, वाट्सऐप फेसबुक, यूट्यूब, गूगल आदि। ये सब साधन उनके दाएँ हाथ का खेल हैं, परंतु बहुत से लोगों को आज भी इन नए साधनों के लिए नई पीढ़ी के लोगों का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे में रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से हिंदी कार्यक्रमों ने मॉरीशस में हिंदी को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

आज अगर भारत से बाहर हिंदी को जितनी लोकप्रियता मॉरीशस में प्राप्त है, शायद ही किसी अन्य देश को प्राप्त होगी। इसीलिए मॉरीशस को 'लघु भारत' की संज्ञा देने से नहीं चूकते। मॉरीशस में रेडियो की शुरुआत सन् 1927 में हुई थी और कुछ वर्षों बाद हम मॉरीशस में रेडियो की शताब्दी मनाएँगे। तब से आज तक हिंदी भाषा की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। मॉरीशस भारत की तरह बहुसांस्कृतिक देश है, क्यों न हो, कभी हमारे पूर्वज भारत से ही आए थे। भिन्नता में एकता बनाए रखने में मॉरीशस ने अपनी एक अनोखी पहचान बनाई है।

इसका सुंदर उदाहरण मॉरीशस देश है। हमारे पूर्वज जब मॉरीशस आए थे तब वे शिक्षित तो थे नहीं, पर अपनी मातृभाषा हिंदी व भोजपुरी एवं अपनी संस्कृति अपने साथ लाए थे, जिसे उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। दुर्भाग्यवश अंग्रेजों का कहर उन पर हमेशा बना रहा। ऐसे में उनकी अपनी भाषा बोलचाल का माध्यम बनी रही। कहते हैं न, जब तक व्यक्ति अपनी भाषा और संस्कृति को नहीं त्यागता, तब तक उसके इरादों को भी नहीं हिलाया जा सकता। ठीक यही हुआ, हमारे पूर्वजों के साथ भी, उन्होंने अपनी भाषा व संस्कृति को बड़ी मजबूती के साथ पकड़े रखा, जिसका मीठा फल आज हमें मॉरीशस में देखने को मिलता है। बहुसंख्यक भारतीय मजदूरों को देखकर जब मॉरीशस में रेडियो की शुरुआत हुई तो भारत से ही हिंदी के विभाग को चलाने के लिए कार्यभार सँभालने के लिए पं. गिरजाशंकरजी को बुलवाया गया था। उस समय बीबीसी और रेडियो फ्रांस से खबरें और प्रोग्राम प्राप्त कराए जाते थे। इस तरह

* रेडियो प्रॉडक्शन मैनेजर, मॉरीशस।

भारतीय मजदूरों के मनोरंजन व सूचनाओं के आदान-प्रदान करने का कोई साधन नहीं था, तब रेडियो के माध्यम से रेडियो पर कुछ समय हिंदी भाषा के लिए निर्धारित किया गया, जिसके माध्यम से आवश्यक सूचनाएँ, शोकाकुल परिवारों के लिए शोक समाचारों को एवं मनोरंजन के लिए हिंदी सिनेमा के गीतों को प्रसारित किया जाने लगा। जिसे उस समय के सभी लोगों द्वारा बहुत सराहा गया, क्योंकि दूर-दूर तक उनके मनोरंजन के कोई साधन उपलब्ध नहीं थे। इससे हुआ यूँ कि जो शोक समाचार प्रसारित किए जाने लगे, उनका चलन आज तक परंपरा के रूप में चला आ रहा है। मार्के की बात है कि यह प्रथा बिरले ही किसी अन्य देश में देखने को मिलती होगी। इसके अलावा तूफान संबंधित व अन्य मुख्य जानकारियों को प्रसारित कराया जाने लगा, जो जनता के लिए भी मील का पत्थर साबित हुई।

8 फरवरी, 1965 में टेलीविजन की शुरुआत हुई, तब एक ही चैनल हुआ करता था। इस तरह हिंदी भाषा के प्रसारण को कुछ समय दिया गया, जिसमें मुख्य रूप से समाचार और कुछ समय मनोरंजन के लिए दिया जाता था। इस तरह दूरदर्शन से प्राप्त कार्यक्रम तथा स्थानीय लोगों द्वारा तैयार किया प्रोग्राम (नया देश नई जिंदगी) शुरू किया गया, जिसमें स्थानीय कलाकार ढोल, झाल, हारमोनियम, चिमटे आदि से रामायण गान, चौताल, फिल्मी गीतों पर आधारित कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने लगे। समय के साथ धीरे-धीरे कार्यक्रमों, नाटक, गीतों की प्रतियोगिताएँ, गाँव-गाँव में जाकर नए लाइव प्रोग्राम स्थानीय लोगों की सहायता से दिखाए जाने लगे।

दूसरी तरफ 'बैठकों' में हिंदी की पढ़ाई जोर पकड़ रही थी। इस तरह मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'बैठकों' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। फिर धीरे-धीरे देश की विभिन्न संस्थाएँ हिंदी के प्रति लगाव को देखकर हिंदी को बढ़ावा देने के लिए बड़ी निष्ठा के साथ कार्यरत होने लगीं। जैसे आर्य सभा मॉरीशस, सनातन धर्म मंदिर परिषद्, हिंदू महासभा आदि देश की नामी-गिरामी संस्थाएँ जब भी कोई विशेष कार्यक्रम अपने यहाँ मनाते, उसका भी सीधा प्रसारण दिखाए जाने की सुविधा प्राप्त कराई जाने लगी। ये सिलसिला आज तक भी जारी है, जिसमें जनता कार्यक्रमों को देखने में इनमें भाग लेने में बड़ी दिलचस्पी दिखाती है। इस तरह हिंदी की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। इस तरह समय के साथ नए-नए कार्यक्रमों को शामिल किया जाने लगा। 80 के दशक तक आते-आते रेडियो और टेलीविजन के चैनलों को लोगों की माँग पर बढ़ाया गया। रेडियो को दो विभागों में बाँटा गया। एक बना 'रेडियो ओरिएंटल', तो 'दूसरा रेडियो ऑक्सीडेंटल' यानी यूरोपीय भाषा के लिए। इस चैनल के खुलने से सबसे अधिक फायदा ये हुआ कि सभी भारतीय पूर्वी भाषाओं के प्रसारण भी होने लगे। परिणाम स्वरूप आज नेशनल रेडियो यानी (मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन) के रेडियो और टेलीविजन पर 13 भाषाओं में कार्यक्रम दिखाए व रेडियो पर इन भाषाओं के कार्यक्रम प्रसारित भी किए जाते हैं। जिसमें ज्ञान-विज्ञान, शिक्षाप्रद, कानून संबंधित, खेतीबाड़ी, बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों, युवाओं, गीतों की प्रतियोगिताएँ, प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आदि-आदि सभी तरह के प्रोग्राम दिखाए जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा विषय होगा, जिसमें कार्यक्रम न हों। जहाँ आज मॉरीशस में हिंदी भाषा यूनिवर्सिटी के स्तर तक पढ़ाई जाती है, इसी तरह स्कूलों के लिए एजुकेशनल प्रोग्राम भी दिए जाते हैं, जिसमें महात्मा गांधी संस्थान एवं ओपन यूनिवर्सिटी अपना सहयोग देतीं हैं। इससे उच्च स्तर के कार्यक्रमों को तैयार करने में मदद मिलती है। परिणामस्वरूप आज रेडियो और दूरदर्शन के माध्यम से उच्च स्तरीय कार्यक्रम देश-विदेशों में भी

दिखाए जाते हैं। इस तरह 90 के दशक तक सभी पूर्वी भाषाओं के लिए एक विशेष चैनल निर्धारित है, जिसमें प्रत्येक विशेष भाषा के धार्मिक, सांस्कृतिक सभी तरह के कार्यक्रम दिखाए जाते हैं।

इसके अलावा, समय-समय पर आनेवाले पर्वों जैसे—गणेश चतुर्थी, दीपावली, शिवरात्रि, होली, रामनवमी युगादि काँवडी आदि-आदि पर्वों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक झलकियाँ प्रोग्राम के माध्यम से हमारे रेडियो और टेलीविजन द्वारा जनता तक पहुँचाई जाती हैं। क्यों न हो, ये पर्व ही तो हैं, जो हमारे जीवन में रंग, उमंग, उत्साह, खुशियाँ, एकता, भाईचारे को दरशाते हैं। रामायण, महाभारत, चाणक्य, हमलोग जैसे सीरियलों ने हमारे समाज के लोगों में अपनी धर्म, संस्कृति, भाषा, इतिहास, साहित्य को लेकर अमिट छाप छोड़ी है, जिसने भारतीय सभ्यता को जीवित रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कहते हैं न कि किसी भी देश की भाषा, धर्म, संस्कृति की पहचान उस देश के निवासियों से होती है, जिसके साक्षात् दर्शन रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रमों से होते हैं। एम.वी.सी. ने जनता की माँगों को पूरा करते हुए अपना महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया है। आज हम कह सकते हैं कि आज हमारे प्रोग्राम देश-विदेशों में भी दिखाए जाते हैं। इसका एक सुंदर उदाहरण रेडियो प्रोग्राम से देना चाहूँगी। हाल ही में एक रेडियो प्रोग्राम (दर्शन) चलाया गया, जिसमें एक घंटे के अंदर हमने एक-एक राज्य की संपूर्ण झलक व जानकारी दी, जैसे उस राज्य का इतिहास, भौगोलिक स्थिति, खान-पान, संगीत, वहाँ की महान् हस्तियाँ, पर्यटक स्थलों का आँखों देखा हाल हमारे श्रोताओं तक पहुँचाया। यानी कि घर बैठे उन्हें भारत के विभिन्न राज्यों का दौरा प्रोग्राम के माध्यम से करवाया, जिसे उन्होंने बेहद पसंद किया। इस तरह हम कह सकते हैं कि चाहे आज मीडिया के कितने नए साधन उपलब्ध हैं, पर रेडियो आज भी मॉरीशस में घर-घर की शान बना हुआ है।

लोग चाहे वो घर पर हों या बाजार में हों, खेतों में हों या काम पर जा रहे हों या काम से घर लौट रहे हों रेडियो आज उनके जीवन की जरूरत सा बन चुका है। क्यों न हो, आज रेडियो उनके दैनिक जीवन की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम है। आज रेडियो के माध्यम से उन्हें प्रति घंटा फ्लैश न्यूज, सूचनाएँ, समाचार देखने व सुनने को मिलते हैं। आज मॉरीशस में हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए अफ्रीकी देशों को हिंदी की गतिविधियों में शामिल करने में मॉरीशस में स्थित विश्व हिंदी सचिवालय अपनी अहम् भूमिका निभा रहा है। इस तरह भारत से बाहर मॉरीशस ही वह अकेला देश है, जहाँ तीन बार बड़ी सफलता के साथ विश्व हिंदी सम्मेलन लगाया जा चुका है, जिसका सीधा प्रसारण देश-विदेशों में बड़ी सफलता के साथ पहुँचाया गया है, जिसमें भारतीय उच्चायोग का सराहनीय योगदान हमेशा मॉरीशस देशबंधुओं के लिए गर्व का विषय बना रहेगा।

दूसरी तरफ अप्रवासी घाट ट्रस्ट फंड आज मॉरीशस के विश्व धरोहर की सूची में शामिल किया जाता है, जो अपने आप में मॉरीशस देश के लिए एक बड़े गर्व की बात है। मॉरीशस में भव्य रामायण सेंटर स्थापित है, जहाँ जब तब कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, जो जनता के लिए लाभकारी सिद्ध होते हैं। जो समाज के उत्थान, भाषा, संस्कृति, सभ्यता को मजबूती से पकड़े रखने में सहायक होते हैं। अंत में हम कह सकते हैं कि आज अंतरराष्ट्रीय मंच पर रेडियो चाहे एक बिंदु के रूप में नजर आता है, पर मीडिया के क्षेत्र में वही बिंदु एक शान के रूप में अफ्रीकी कॉटीनेंट में अपनी एक अहम पहचान बनाए हुए हैं, जो हमें आज हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में विश्व पटल पर एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाता है।

□

shashidookun@gmail.com

हिंदी के हाथों सँवरते आधुनिक संचार माध्यम

—इंदुशेखर तत्पुरुष

संसार के किसी एक कोने के किसी दृश्यचित्र का पलभर में हजारों मील तक उड़कर दुनियाँ के दूसरे कोने तक प्रसारित हो जाना, लाखों एस.एम. एस. के जरिए रातोरात किसी अज्ञातकुलशील नवोदित गायक का इंडियन आइडल या ऐसी ही किसी प्रतियोगिता का विजेता बन जाना, कोई अकल्पनीय घटना घट जाने पर उसको सनसनी और उत्तेजना से भरपूर रोमांचक कथा में बदलकर घटना के पात्र को कुछ घंटों के लिए राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय हीरो बना देना और तब तक हीरो बनाए रखना, जब तक कोई और घटना हाथ न लग जाए और जैसे ही कोई दूसरा सनसनीखेज मुद्दा हाथ में आ जाए, तो इसे ऐसे छोड़ देना, जैसे वहाँ कभी कुछ हुआ ही न था; यह सब इस इंद्रजाल सरीखे आधुनिक संचार माध्यमों का ही कमाल है।

जिस भूमंडलीकरण की चर्चा प्रायः होती रहती है, वह आधुनिक संचार माध्यमों के बल पर ही संभव हुआ है। यदि इंटरनेट के जादुई पंख नहीं होते तो संसार को इतना समीप ले आना कभी संभव नहीं था। आज का जैसा सघन भूमंडलीकरण एक स्वप्न ही बना रहता, यदि आधुनिक संचार माध्यमों का अवलंब नहीं मिलता। निस्संदेह भूमंडलीकरण का पथ इन्हीं के सहारे प्रशस्त हुआ है। अब यह कोरी खुशफहमी नहीं वास्तविकता है कि आधुनिक संचार माध्यमों ने हमें 'वैश्विक ग्रामवासी' होने का आभास कराया है।

वस्तुतः हमारे भाव, विचार, संदेश और सूचनाओं को दूसरों तक संप्रेषित करने के सभी साधन संचार माध्यम के अंतर्गत समाविष्ट हैं। कुछ दशकों पूर्व तक जहाँ समाचार, पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो तथा फिल्में संचार माध्यम का प्रमुख साधन थे, वहीं अब टेलीविजन चैनल्स, कंप्यूटर, इंटरनेट एवं मोबाइल आदि अपने सर्वंकष वर्चस्व के साथ इस सूची में अग्रगण्य हो चुके हैं।

बीसवीं सदी के उतरते दशकों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया उसी तरह एक अप्रत्याशित घटना बनकर विश्वव्यापी हो गया, जिस तरह 19वीं सदी में प्रिंट मीडिया का अवतरण हुआ था। प्रिंट मीडिया ने आधुनिकीकरण का पथ प्रशस्त किया तो इन आधुनिक संचार माध्यमों ने वैश्वीकरण का रास्ता खोल दिया। यही वह मुख्य कारक है जिसने विश्व बाजार को निर्मित कर जनजीवन में उपभोक्तावाद और बाजारवाद को प्रतिष्ठित करने में अपनी सशक्त भूमिका निभाई।

हम पाते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी से अधुनातन काल तक नित नई वैज्ञानिक तकनीकों

---

* प्रख्यात कवि, पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान साहित्य अकादमी।

और साधनों-संसाधनों के कारण हमारे जीवन के संस्कृति, नैतिकता, धर्म, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में भरी हलचल देखने को मिली है। सबकुछ ग्रस लेने को मुँह फाड़े खड़ा बाजारवाद और पूँजी का भयानक प्रकोप भी इन संचार माध्यमों की ही देन है।

यह सत्य है कि आधुनिक संचार माध्यमों ने हमारे जीवन में चिंताजनक विचलन तो पैदा किए हैं, किंतु जो आमूल-चूल परिवर्तन किए हैं, उनसे विकास की एक नई दृष्टि और समृद्धि के नए दृश्य भी उत्पन्न हुए हैं। उदाहरण के लिए कुछ वर्षों पहले तक रेलयात्रा का आरक्षण करवाना अपने आप में एक यात्रा जैसा भारी-भरकम काम हुआ करता था। आरक्षण खिड़की पर दो-तीन घंटे लग जाना सामान्य सी बात थी। सुबह 8 बजे खुलनेवाली खिड़की पर लोग सुबह 6 बजे से अपना नंबर लगाते देखे गए हैं, किंतु जब से गाड़ियों का ऑनलाइन आरक्षण प्रारंभ हुआ है, अब याद नहीं पड़ता किसी को आरक्षण के लिए स्टेशन जाना पड़ा हो! यही हाल अनेक जमा-खिड़कियों और बैंकों का रह गया। मोबाइल पर पल भर में लाखों की राशि इधर की उधर की जा सकती है। पत्र लिखना और डाक द्वारा भेजना तो लोग अब भूल ही चले। अंतर्देशीय पत्र और पोस्टकार्ड देखे एक जमाना गुजर गया। कोरोना विभीषिका में जब संसार भर की गतिविधियाँ थम गई, जनता अपने घरों में दुबके पड़े थे, लोगों के उखड़ते प्राणों को इन संचार माध्यमों ने ही बचाया था। दैनिक उपयोगी वस्तुओं से लेकर स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यापार, उद्यमिता आदि सबकुछ इसी के आधीन था।

आधुनिक संचार माध्यम और वर्तमान परिवेश पर विचार करते हुए यह पृष्ठभूमि हमारे ध्यान में रहनी चाहिए। अन्यथा डिजिटल मीडिया जैसे चमत्कारपूर्ण, चमकदार और सर्वंकष माध्यम को लेकर हम भ्रमवश अथवा मोहवश कुछ मिथ्या निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं। भावुकता में भरकर बहुधा हम विस्मयावह स्थितियों को प्रायः भयावह समझ बैठते हैं।

यह एक ज्वलंत सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को प्रकट और प्रकाशित करने का प्रजातांत्रिक अवसर इस संचार माध्यम ने ही उपलब्ध कराया है। अन्यथा भारी-भरकम संस्थानों, प्रतिष्ठानों अथवा अधिष्ठानों के बीच एक साधारण व्यक्ति की पहुँच कितनी दूर तक होती है, कितने दुर्लंघ्य गतिरोधक बीच में पड़ते हैं, यह किसी से छुपा हुआ तथ्य नहीं है।

हजारों कार्मिक जिन संस्थानों से जुड़े होते हैं, वहाँ का कोई कार्मिक जीवनभर प्रयास करके भी शीर्ष पर बैठे नियंत्रक अधिकारियों अथवा संचालकों तक अपनी बात नहीं पहुँचा सकता, किंतु आज एक अदने से कार्मिक का एक ट्वीट या मैसेज या इ-मेल सर्वोच्च शिखर तक दस्तक देकर समूचे तंत्र में हलचल मचा सकता है।

किंतु यहाँ एक शर्त है, यह स्थिति तभी संभव है, जब यह माध्यम उस व्यक्ति की अपनी भाषा में सुलभ हो। यह एक ऐसी महत्त्वपूर्ण शर्त है, जिसको अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह स्मरण कराना इसलिए आवश्यक है कि पश्चिम से आए हर आधुनिक संसाधन प्रथमतः केवल अंग्रेजी माध्यम से संचालित होने की ही अनुकूलता लिये होते हैं। भारत में जब पहली बार कंप्यूटर आया तो इसके सारे प्रकार्य, की-बोर्ड, तकनीक आदि अंग्रेजीविदों के लिए ही थी। हिंदी जाननेवालों के लिए यह तब तक अजूबा ही रहा, जब तक उन्होंने इसके विशेष प्रशिक्षण नहीं लिए।आधुनिक साधनों-संसाधनों को लेकर यह एक वैश्विक समस्या रही है और इस कारण मुट्ठीभर अंग्रेजीदाँ लोग ही उनका उपयोग करने में सक्षम होते हैं।

इनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को भोग सकते हैं। शेष हिंदी और स्थानीय भाषा-भाषियों के लिए यह एक नई चुनौती एवं समस्या की तरह होते हैं। फिर यह केवल भाषिक समस्या नहीं रह जाती। ऐसे नए संसाधन, जो युग परिवर्तनकारी होते हैं, अपने साथ एक समाजिक-तंत्र भी लेकर आते हैं। ये समाज की आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप की भी हैसियत रखते हैं और इस तरह समूची व्यवस्था में बड़ा भरी विचलन उत्पन्न हो जाता है।

ऐसी विचलन भरी स्थिति में जब हमें हमारी धरती छूटती हुई लगती है तो सबसे पहले हमें वही सहारा ढूँढ़ना पड़ता है जो हमारी जड़ों से जुड़ा होता है। वह सहारा है हमारी अपनी भाषा, हमारी मातृभाषा का। हमारी ऐसी व्यापक संपर्क भाषा का, जो हमें एक छोर से दूसरे छोर तक बाँधे रखनेवाली होती है।

हमें यह जान लेना चाहिए कि ये संचार माध्यम जब तक अंग्रेजी भाषा पर निर्भर रहेंगे, तब तक भारतीय लोकचित्त से दूर ही रहेंगे। इतना ही नहीं, जब ये उच्चवर्गीय भाषा में होकर बहुत थोड़े से लोगों के अधिकार तक सीमित रहते हैं तो वर्गभेद और बहुसंख्यक जनता के शोषण का साधन भी बनते हैं। भाषाई दक्षता के कारण इनको बरतनेवाले बहुत थोड़े से लोग इनसे मिलने वाली सुविधाओं का लाभ उठा लेते हैं, किंतु सामान्य जनता पिछड़ी की पिछड़ी रह जाती है।

वास्तव में इनका हिंदी और क्षेत्रीय भाषा से कटा होना लोकतंत्र विरोधी ही है। इससे साधारण जन विकास से दूर रहता हुआ सुविधाविहीनता के गर्त में धकेला जाता है। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि उच्च साधन, शिक्षा और ज्ञानसंपन्न मुट्ठीभर लोगों के लिए हैं अथवा शिक्षित-अशिक्षित संपूर्ण मानव समुदाय के लिए आधुनिक संचार माध्यमों और उनके उपभोक्ताओं को प्रथम तो यह गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि 'आधुनिक' होने का अर्थ अंग्रेजी का प्रयोग करना ही नहीं है। विश्व के अनेक विकसित देश जो आधुनिक संसाधनों की दृष्टि से अग्रणी हैं, इस मानसिकता को झुंठलाते हैं। जापान, जर्मनी आदि देश, तो अंग्रेजी को घास भी नहीं डालते।

दूसरी यह कि 'संचार माध्यम' की वास्तविक अर्थवत्ता अधिकतम जनसमुदाय तक पहुँच रखनेवाली भाषा प्रयोग में है। बहुत थोड़े से मुट्ठीभर लोगों तक पहुँच रखनेवाली भाषा में व्यक्त होने में नहीं। संचार का निर्विघ्न, निरवरोध और नियमित बने रहने में ही उसकी सार्थकता है, न कि मुट्ठीबंद बने रहने में। परितोष की बात है कि पिछले दशक से स्थितियों में सकारात्मक परिवर्तन आने लगा है। आधुनिक संचार माध्यम हिंदी के हाथों सँवरने लगे हैं।

इस दृष्टि से 'दैनिक भास्कर' में अभी हाल प्रकाशित हुई एक ताजा रिपोर्ट (5 जनवरी, 2023 : भास्कर न्यूज, नई दिल्ली) पर दृष्टि डाली जाए तो भाषा को लेकर बहुत सी भ्रांतियाँ और पूर्वग्रह दूर हो जाते हैं। इस महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट के अनुसार देश-दुनिया में अंग्रेजी का तिलिस्म क्षेत्रीय भाषाओं के आगे टूटता जा रहा है। 90 के दशक में इंटरनेट पर 80% कंटेंट अंग्रेजी में था जो अब 53% पर लुढ़क गया है। वहीं, क्षेत्रीय भाषाओं की हिस्सेदारी 20% से बढ़कर 47% हो गई है। इससे 7 साल में अनुवादकों की संख्या भी दोगुनी हो गई है। इस दृष्टि से दुनिया में 2025 तक ट्रांसलेशन इंडस्ट्री 73.6 अरब डॉलर (6 लाख करोड रुपए) तक पहुँच सकती है, जो अभी 51.6 अरब डालर (4.27 लाख करोड़ रुपए) है। देश में इसका आकार करीब 4,139 करोड़ रुपए है। 2016 में ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म की शुरुआत से भी इस उद्योग में डबिंग और सबटाइटल के कार्यों के कारण तेजी

आई है। 'न्यू मॉर्निंग कंसल्ट डाटा' के अनुसार, 83% भारतीय विदेशी भाषाओं की फिल्में डबिंग या सबटाइटल के साथ ही देखना पसंद करते हैं।

समाचार-पत्र की इस रिपोर्ट के अनुसार, खास बात यह है कि भारत में 53 करोड़ लोगों की पहली भाषा हिंदी है, जबकि अंग्रेजी, केवल 2.6 लाख लोगों की पहली भाषा है। यह जानना भी कम रोचक नहीं है कि हमारे देश के 57% (69.15 करोड़) लोगों की पहली, दूसरी व तीसरी भाषा हिंदी है। इनमें 52.5 करोड़ों की तो हिंदी पहली भाषा है। अंग्रेजी बोलनेवाले कुल 11% हैं अर्थात् 12.85 करोड़ लोग। विस्मय की बात तो यह है कि इनमें से मात्र 2.6 लाख लोगों के लिए ही अंग्रेजी उनकी पहली भाषा का दर्जा रखती है। बाकी के लगभग 12.60 करोड़ लोगों के लिए तो पहली भाषा हिंदी या अन्य भारतीय भाषा ही हैं।

यह तो है सामान्य भाषिक व्यवहार का परिदृश्य। उक्त समाचार के अनुसार, इंटरनेट पर भाषा की स्थिति देखें तो परिदृश्य हिंदी के ही पक्ष में दिखाई देता है। के.पी.एम.जी. रिपोर्ट-2021 के अनुसार, क्षेत्रीय भाषा में इंटरनेट इस्तेमाल करनेवाले 53.6 करोड लोगों में से हिंदी का उपयोग करनेवाले सर्वाधिक 21.1 करोड (38%) पाए गए। सन् 2021 में देश में 19.9 करोड लोगों ने अंग्रेजी और 53.6 करोड लोगों ने क्षेत्रीय भाषा में इंटरनेट का प्रयोग किया। गूगल रिपोर्ट के अनुसार तो देश में 90% से ज्यादा लोग क्षेत्रीय भाषा में कंटेंट खोजना और पढ़ना चाहते हैं।

वस्तुत: यह केवल कोई भाषाई-प्रेम की भावुक चिंता भर नहीं है, यह मानव के स्वाभाविक विकास से जुड़ा एक अपरिहार्य मुद्दा है। भाषा का प्रत्येक शब्द मानवीय बुद्धि की ऐसी जीवित कोशिका के समान होता है, जिसमें ज्ञान और अनुभव के गुणसूत्र संपुंजित होते हैं। नवीन ज्ञान और नवीन अनुभव के साथ नए शब्दों को अपनाना भाषिक समृद्धि का सूचक तो है, परंतु उन्हीं ज्ञान और अनुभवों के लिए भाषा में पहले से मौजूद शब्द-संपदा को केवल अंधानुकरण के कारण नकलची मानसिकता के कारण छिटका देना सांस्कृतिक दरिद्रता एवं बौद्धिक विपन्नता का सूचक है। इस सांस्कृतिक दरिद्रता के प्रति समाज को जागरूक करने के लिए आधुनिक संचार माध्यमों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग ही सर्वाधिक सुरक्षित और सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

□

indushekhar.sharma62@gmail.com

पुण्य कर्म से जीवन पवित्र होता है और पाप कर्म से पापात्मा होता है।

—उपनिषद्

मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात् मंदिर है, इसलिए साकार देवता की पूजा करो।

—स्वामी विवेकानंद

विश्व सिनेमा और हिंदी की भूमिका

—डॉ. कृपाशंकर चौबे

विश्व सिनेमा का जन्म 28 दिसंबर, 1895 को पेरिस में हुआ, जब लुमियर बंधुओं की फिल्में वहाँ दिखाई गईं। उन फिल्मों में दिखाया गया था—स्टेशन पर आती रेलगाड़ी, फैक्टरी से बाहर निकलते मजदूर, बगीचे में पानी देता माली, नाश्ता करता बच्चा और ऐसी कुल मिलाकर आठ फिल्में। लुमियर बंधुओं ने उन फिल्मों को बाद में दूसरे देशों में भी प्रदर्शित किया। दुनिया के लोग उन फिल्मों में यथार्थ को दोबारा घटित होते देखकर चकित रह गए, क्योंकि उसके पहले दर्शकों ने स्थिर चित्र देखे थे। उन फिल्मों में दर्शकों ने देखा कि चित्र की स्थिर अवस्था खत्म हो गई है। इसीलिए उसे चलचित्र का नाम दिया गया। चलचित्र के दृश्य दर्शकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते थे। 1903 में आई पोर्टर की फिल्म 'द ग्रेट ट्रेन रॉबरी' में एक दृश्य है कि एक डकैत अपनी बंदूक सीधे कैमरे की तरफ करके गोली चलाता है। उस दृश्य को सिनेमा के इतिहास के सबसे असरकारी क्लोजअप्स में माना गया, क्योंकि वह इतना असरदार था कि हॉल में बैठे दर्शक गोली से बचने के लिए इधर-उधर भागने लगते थे।

पोर्टर का अवदान यह था कि उन्होंने अलग-अलग दृश्यों को जोड़कर कहानी कहने की कला विकसित की। यानी सिनेमा अब केवल यथार्थ को दोबारा घटित होते देखने का विस्मयभर नहीं था, सिनेमा अपनी शक्ति को पहचान रहा था। सिनेमा ने जल्द ही अपने व्याकरण की बुनियाद रखी। रूसी फिल्मकार पुडोवकिन ने गोर्की के उपन्यास 'मदर' पर आधारित फिल्म बनाई तो सर्गेई बोंडाचुर्क ने टालस्टॉय के उपन्यास 'वार एंड पीस' को परदे पर उतारा और सर्गेई मिखाइलोविच आइजेंस्टाइन ने नाविकों के विद्रोह की कथा कहने के लिए 'बैटलशिप पोटेम्किन' नामक फिल्म बनाई। 'बैटलशिप पोटेम्किन' फिल्म में ओडेसा सीक्वेंस दृश्य विश्व सिनेमा की धरोहर बन चुका है। इटली के फिल्मकार विक्टोरिया डि सिका की फिल्म 'बाइसिकिल थीव्स' और रोबर्तो रोसेलिनी की फिल्म 'रोम, ओपेन सिटी' ने नवयथार्थवादी सिनेमा को बल पहुँचाया तो फ्रेंच फिल्मकार गोदार की फिल्म 'ब्रेथलेस' और 'वीक एंड', शाब्रोल की फिल्म 'ले ब्यू सर्ज', फ्रांसुआ त्रुफो की फिल्म '400 ब्लोज' और जर्मन फिल्मकार रोबर्ट वेन की 'द कैबिनेट आफ डाक्टर कैलीगरी', फ्रिट्ज लाँग की फिल्म 'मेट्रोपोलिस' ने विश्व सिनेमा में नई लहर और अभिव्यंजनावाद की अभिव्यक्ति की। ये फिल्में विश्व सिनेमा की धरोहर हैं। प्रथम व द्वितीय विश्व युद्धों की छाया में हॉलीवुड में कई क्लासिक फिल्में बनीं और वह क्रम निरंतर चलता रहा। विश्व

* महात्मा गांधी अंरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पत्रकारिता विभाग के प्रोफेसर।

सिनेमा को समृद्ध करने का काम हिंदी फिल्मों ने भी निरंतर किया।

भारत में पहला चलचित्र 'राजा हरिश्चंद्र' 1913 में बना। निर्माता थे दादा साहब फालके। वह मूक फिल्म थी। 1931 में पहली सवाक् फिल्म 'आलमआरा' बनीं। हालाँकि मूक फिल्में 1934 तक बनती रहीं। भारत में 1913 से 1934 तक कुल 1279 मूक फिल्में बनीं। निर्माण के आरंभिक दशकों में जिन सवाक् फिल्मों ने असर छोड़ा, उनमें 'अछूत कन्या' (1936), 'पड़ोसी' (1941), 'किस्मत' (1943), 'रतन' (1944), 'अनमोल घड़ी' (1947), 'चित्रलेखा' (1948), 'महल' (1949) प्रमुख हैं। 1951 में राजकपूर अभिनीत 'आवारा' आई, जिसकी विश्वभर में चर्चा हुई। रूस के पूर्व राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन का तो पसंदीदा गाना ही था—'आवारा हूँ···।' राजकपूर द्वारा अभिनीत फिल्म के गीत 'मेरा जूता है जापानी' ने मानो हिंदी गीत की ग्लोबल ग्राह्यता की नींव रख दी थी।

पचास के दशक में 'बैजूबावरा', 'दो बीघा जमीन', 'बूट पालिश', 'जागृति', 'नागिन', 'जागते रहो', 'नया दौर', 'दो आँखें बारह हाथ', 'प्यासा', 'मदर इंडिया' और 'कागज के फूल' ने लोकप्रियता के मानदंड स्थापित किए तो साठ के दशक में 'मुगले आजम', 'हम दोनों', 'बंदिनी', 'यादें', 'झनक-झनक पायल बाजे', 'साहब बीवी गुलाम', 'गाइड', 'गीत गाया पत्थरों ने', 'बहारें फिर भी आएँगी', 'उपकार', 'पड़ोसन' ने धूम मचाई। 'प्यासा' फिल्म तो 'टाइम' मैग्जीन के मूल्याँकन में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ सौ फिल्मों में शामिल है। सत्तर के दशक की जी.पी. सिप्पी की जबरदस्त हिट फिल्म थी 'शोले'। सत्तर के दशक में 'मौसम', 'राम तेरी गंगा मैली', 'मुकद्दर का सिकंदर', 'रोटी कपड़ा और मकान', 'दस नंबरी' और 'जय संतोषी माँ' भी हिट रहीं। दिलीप कुमार अभिनीत 'राम और श्याम' और अमिताभ बच्चन अभिनीत 'दीवार', 'जंजीर' एवं 'अमर अकबर एंथोनी' भी बेहद लोकप्रिय रहीं। अस्सी के दशक में 'कुर्बानी', 'राम बलराम', 'इंसाफ का तराजू', 'हम पाँच' और 'दोस्ताना' व्यावसायिक दृष्टि से सफल रहीं तो नब्बे के दशक में 'कयामत से कयामत तक', 'हम आपके हैं कौन', 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे', 'हिना', 'खुदा गवाह', 'करन अर्जुन' और 'मैंने प्यार किया' ने धूम मचाई। इक्कीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में 'लगान', 'देवदास', 'कोई मिल गया', 'कल हो न हो', 'रंग दे बसंती', 'लगे रहो मुन्ना भाई', 'धूम-2', 'चक दे इंडिया', 'गजनी' और 'थ्री इडिएट्स' ने अपार व्यावसायिक सफलता अर्जित की। अकेले जापान में 'धूम-2', 'थ्री इडियट्स' और 'इंग्लिश विंग्लिश' को जबर्दस्त सफलता मिली। पूर्व सोवियत संघ और उसके सहयोगी देश जैसे पोलैंड, हंगरी, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया आदि हिंदी फिल्मों के लंबे समय से प्रशंसक रहे हैं। जापान के टोक्यो यूनिवर्सिटी में हिंदी का अध्यापन साल 1908 से चालू हो गया था, पर अब कुछेक सालों से वहाँ पर हिंदी फिल्मों की लोकप्रियता भी बढ़ती जा रही है। वहाँ तो हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन कर ही हिंदी सिखाई जाती है। विश्व के करीब 192 देशों में हिंदी न केवल पढ़ाई जा रही है, बल्कि शान से बोली भी जा रही है। इस व्यापकता के पीछे अन्य कारकों के अलावा सिनेमा भी एक कारक है, जिसके माध्यम से हिंदी विश्व में सिरमौर बन पाई है। भारतीय प्रवासियों की बढ़ती संख्या की वजह से अब संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन भी भारतीय फिल्मों के लिए एक महत्त्वपूर्ण बाजार बन गए हैं। यही कारण है कि वर्तमान में रिलीज होनेवाली फिल्मों के प्रदर्शन के अधिकार भारत व विदेशों में समान रूप से बेचे जाते हैं। वर्तमान में शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रावधान से 20वीं सेंचुरी,

फॉक्स, सोनी पिक्चर्स, वॉल्ट डिज्नी पिक्चर्स और वार्नर ब्रदर्स आदि विदेशी उद्यमों के लिए भारतीय फिल्म बाजार को आकर्षक बना दिया है। एवीएम प्रोडक्शंस, प्रसाद समूह, सन पिक्चर्स, पीवीपी सिनेमा, जी, यूटीवी, सुरेश प्रोडक्शंस, इरोज फिल्म्स, अयनगर्न इंटरनेशनल, पिरामिड साइमिरा, आस्कर फिलम्स, पीवीआर सिनेमा, यशराज फिल्म्स, धर्मा प्रोडक्शंस और एडलैब्स आदि भारतीय उद्यमों ने भी फिल्म उत्पादन और वितरण में सफलता पाई है। मल्टीप्लेक्स के लिए कर में छूट से भारत में मल्टीप्लेक्सों की संख्या बढ़ी है और फिल्म दर्शकों के लिए सुविधा भी। अब तक धारावाहिकों तथा फिल्म निर्माण, वितरण, प्रदर्शन से संबंधित पचास से अधिक कंपनियाँ भारत के नेशनल स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध की गई हैं, जो फिल्म माध्यम के बढ़ते वाणिज्यिक प्रभाव और व्यासायिकरण का पुख्ता प्रमाण देती हैं।

भारत दुनिया का बहुत बड़ा फिल्म निर्माता देश है। भारत में लगभग तीन हजार फिल्में हर वर्ष बनती हैं, जिनमें आधी से अधिक फीचर फिल्में होती हैं। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारत का फिल्म उद्योग शीर्ष पर आ गया था। हॉलीवुड और चीन दूसरे और तीसरे स्थान पर थे। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय फिल्म उद्योग की कुल आय 93 बिलियन रुपए या 1.86 बिलियन डॉलर थी। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, 2018 में 1813 फीचर फिल्में बनीं और 2017 में भारतीय सिनेमा की कुल बॉक्स ऑफिस आय 158.9 बिलियन रुपए या 2.44 बिलियन डॉलर हो गई। विदेशों में भारतीय फिल्में बहुत लोकप्रिय हैं और फिल्म उद्योग की कुल आमदनी का 12 प्रतिशत वहीं से आता है। सिनेमा संगीत का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, वह कुल आय का चार से पाँच प्रतिशत है। विदेश में भारतीय फिल्मों का बाजार व्यापक है। वह 90 देशों में फैला हुआ है, जिनमें दक्षिण एशिया, मध्य-पूर्व, दक्षिण-पूर्व एशिया और सोवियत संघ के विघटन के बाद मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप के देश प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त करोड़ों प्रवासी भारतीय हैं, जो भारतीय फिल्मों को डी.वी.डी. या सार्वजनिक प्रदर्शन के माध्यम से देखते हैं। वे दिन लद गए, जब टॉकीज में किसी एक फिल्म के चार शो होते थे। पी.वी. आर. अनुपम नई दिल्ली में 1997 में बना और फिर धड़ाधड़ मल्टीप्लेक्स आते गए। अब एक फिल्म के एक दर्जन से ज्यादा शो जहाँ चाहो वहाँ। यह हुई, हिंदी सिनेमा के बाजार की नई परिभाषा! अब तो बॉक्स ऑफिस पर बड़े बजट और बड़े सितारों का एकाधिपत्य हो गया। बड़ा सितारा यानी बड़ा पैसा। 3 इंडियट्स, दबंग और चेन्नई एक्प्रेस जैसी फिल्मों ने रिलीज के पहले हफ्ते में ही 100 करोड़ से ऊपर कमा लिये। आज हॉलीवुड के फिल्म निर्माता भी भारत में अपनी विपणन नीति बदल चुके हैं। वे जानते हैं कि यदि उनकी फिल्में हिंदी में रूपांतरित की जाएँगी तो यहाँ से वे अपनी मूल अंग्रेजी में 'निर्मित चित्रों' के प्रदर्शन से कहीं अधिक मुनाफा कमा सकेंगे।

भारत में विचारवान् फिल्मों की शुरुआत 'पथेर पांचाली' (1955) से मानी जाती है, जिसके निर्देशक सत्यजित राय थे। इसी तरह हिंदी में समानांतर सिनेमा की शुरुआत 'भुवन सोम' (1969) से मानी जाती है, जिसका निर्देशन मृणाल सेन ने किया था। सत्यजित राय की हिंदी फिल्मों 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'सद्गति' को देखकर आज भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। मोहक छायाँकन, विलक्षण रंगबोध और दृश्य संयोजन के मामले में तो राय सदैव अनन्य रहे। राय की हर फिल्म कैसे शाश्वत फिल्म बन गई? शिल्प के कारण या कथ्य के कारण? या दोनों के कारण? कई बार तो राय के यहाँ शिल्प ही कथ्य भी प्रतीत होता है। उनके यहाँ कथ्य के भीतर पैठकर ही शिल्प उभरता

है। कदाचित इसीलिए वे विश्व सिनेमा के जीनियस कहे जाते हैं। वैसे 'पंथेर पांचाली' और 'भुवन सोम' के पहले का भी बाँग्ला सिनेमा और हिंदी सिनेमा का एक लंबा इतिहास रहा है। पर जीवन, संस्कृति और समाज के जटिल यथार्थ को स्पष्ट दृष्टिकोण के साथ परदे पर लाने की गंभीर पहल करने का श्रेय बाँग्ला में 'पंथेर पांचाली' बनानेवाले सत्यजित राय को तथा हिंदी में 'भुवन सोम' बनानेवाले मृणाल सेन को ही है।

'जेनेसिस' मृणाल सेन की एक अन्य सशक्त फिल्म है। दो खुद्दार मित्र सामंती ताकतों के शोषण से ग्रस्त होने और सूखे में सबकुछ लुटाने के बाद एक मनहूस गाँव में पहुँचते हैं। एक है बुनकर (ओमपुरी) और दूसरा किसान (नसीरुद्दीन शाह) मित्र उस मनहूस जगह को कृषियोग्य बनाने के लिए हाड़तोड़ मेहनत करता है और बुनकर कपड़े बुनता है, जिसे शहर का एक व्यापारी (एम.के. रैना) ले जाता है। बदले में इन्हें खाने-पीने की जरूरी चीजें दे जाता है। इसी बीच बाढ़ में पति और बेटे को गँवाने के बाद एक महिला (शबाना आजमी) उस मनहूस जगह में पहुँचती है। दोनों मित्र उसे पनाह दे देते हैं। बाद में दोनों की शारीरिक जरूरतें वह पूरी करती है और गर्भवती हो जाती है। वह किसके बच्चे की माँ बननेवाली है, इसको लेकर दोनों मित्रों में लड़ाई शुरू हो जाती है। इसी बीच शहर का व्यापारी अपने आदमियों के साथ दोनों पर टूट पड़ता है, क्योंकि उस मनहूस जगह पर किसान मित्र की मेहनत की बदौलत खेती लहलहा जाती है। इस तरह सर्वहारा हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी फल प्राप्त करने की जगह मारा जाता है। कुएँ से पानी खींचने के वक्त ओमपुरी की शबाना से ठिठोली और नसीरुद्दीन शाह द्वारा आलते को फेंक दिया जाना बेहद भावनात्मक दृश्य बन पड़े हैं। नसीरुद्दीन शाह गुस्से में शबाना को 'छिनाल' कहता है। जब वह जिद करके पूछता है कि वह किसके बच्चे की माँ बननेवाली है तो शबाना का उत्तर होता है, पेट में जो पल रहा है, वह मेरा बेटा है। इस तरह जेनेसिस में चार चरित्रों में मुख्यत: तीन ही हैं, पर समूची दुनिया का उसमें विस्तार है। फिल्म यह भी बताती है कि सूखा हो या बाढ़, बात एक ही है।

सत्यजित राय, मृणाल सेन की तरह श्याम बेनेगल ने भी उद्देश्यपूर्ण और सार्थक फिल्में बनाईं। उनकी फिल्म 'अंकुर' 1974 में आई, जिसमें जमींदार के शोषण का यथार्थ चित्रण हुआ था। उसके सालभर बाद 1975 में आई 'निशांत' जो जमीन पर अत्याचार के खिलाफ हिंसक प्रतिशोध की कथा कहती है। श्याम बेनेगल ने सहकारिता आंदोलन पर 'मंथन' बनाई तो किसानों के शोषण के खिलाफ 'आरोहण'। उन्होंने धर्मवीर भारती के उपन्यास पर केंद्रित 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास पर केंद्रित 'नौकर की कमीज' भी बनाई। गोविंद निहलानी ने एक सत्य घटना पर आधारित 'आक्रोश' और आपराधिक दुनिया के साथ पुलिस के संबंध पर 'अर्ध सत्य' बनाई। उन्होंने महाश्वेता देवी के उपन्यास पर 'हजार चौरासी की माँ' बनाई। गौतम घोष ने 'पार', 'पतंग', 'गुड़िया' जैसी श्रेष्ठ हिंदी फिल्में बनाईं तो ऋतुपर्ण घोष ने 'रैनकोट' और 'सनग्लास' जैसी विचारवान् हिंदी फिल्में बनाईं। इन फिल्मकारों की फिल्में जीवन, समय और समाज के मूल प्रश्नों की तरफ दर्शक का ध्यान खींचने की सामर्थ्य रखती हैं। इन फिल्मकारों की फिल्मों को अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सवों में पुरस्कार भी मिले। समूची दुनिया में ये फिल्में इसलिए सराही गईं, क्योंकि वे सपनों के जाल में हमें भरमाती नहीं, बल्कि जीवन और समाज की जटिलताओं के यथार्थ का हमें साक्षात्कार कराती हैं।

□

drkschaubey2@gmail.com

पारंपरिक ज्ञान से
अद्यतन प्रौद्यौगिकी

डिजिटल क्रांति से हिंदी को मिली नई पहचान

—प्रो. संजय द्विवेदी

मातृभाषा वैयक्तिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि का बोध कराती है। समाज को स्वदेशी भाव-बोध से सम्मिलित कराते हुए वैश्विक धरातल पर राष्ट्रीय स्वाभिमान की विशिष्ट पहचान दिलाती है। किसी भी देश का विकास तभी संभव है, जब उसके पास एक सशक्त भाषा हो। हिंदी एक सशक्त भाषा है। इसकी ताकत पूरा विश्व मानता है। वर्तमान में 40 से अधिक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी के पाठ्यक्रम के तहत भाषा के अलावा, भारतीय संस्कृति, इतिहास, समाज आदि के बारे में पढ़ाया जाता है। उत्तरी अमेरिका में 125 से ज्यादा हिंदी पढ़ानेवाले केंद्र हैं, जबकि रूस में 7 हिंदी शोध संस्थान हैं। अमेरिका के येन विश्वविद्यालय में वर्ष 1815 से हिंदी पढ़ाई जाती है। इसका मतलब है कि विश्व मंच पर हिंदी सदियों पहले से ही विराजमान है। हिंदी भारत की अत्यंत प्राचीन भाषा 'संस्कृत' की उत्तराधिकारिणी है। विश्व के लगभग सौ से भी ज्यादा देशों में हिंदी का या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयोग होता है अथवा उन देशों में हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन की सम्यक् व्यवस्था है। चीनी भाषा के बाद हिंदी विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाती है और जो भाषा जितने ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाएगी, उसकी जिम्मेदारियाँ भी उतनी ही बढ़ जाती हैं।

हिंदी के महान् साहित्यकार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने वर्ष 1912 में कहा था कि देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उपयोगिता आज भी सिद्ध है और भविष्य में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में ये विश्व की सबसे समृद्ध भाषा होगी। यानी आज से लगभग 110 वर्ष पूर्व हमारे लेखकों को ये पता था कि हिंदी, तकनीक के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने में सक्षम है। वैसे देखा जाए तो सचमुच आज हिंदी के अच्छे दिन हैं, लाल किले की प्राचीर से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक। मगर सही मायनों में तकनीक की ताल पर हिंदी ने अपनी सधी चाल चल दी है। वह आज इतराती हुई चली है, नई पीढ़ी के साथ कदमताल करते हुए। फैशनेबल हिंदी, नई पीढ़ी के पास नए अंदाज में पहुँचती है। उसके अग्रदूत हिंदी की परंपरागत बिरादरी के लोग नहीं हैं। वे भी नहीं हैं, जो हिंदी सेवा के नाम पर अपने अलग टापू बना लेते थे। वे भी नहीं हैं, जो इसके कम पाठक-वाचक होने का रोना रोते रहते हैं। वे तकनीकी संस्थानों, प्रबंधन संस्थानों तथा ऐसे क्षेत्रों से निकले युवा हैं, जिन्होंने तकनीक के साथ आधुनिक सूचना माध्यमों के जरिए हिंदी की लोकप्रियता को नए आयाम दिए हैं।

---

* भारतीय जन संचार संस्थान नई दिल्ली के महानिदेशक।

आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है और सूचना प्रौद्योगिकी का मूल वाहक 'कंप्यूटर' है। कंप्यूटर के बिना सूचना प्रौद्योगिकी के किसी भी रूप की कल्पना अधूरी है। यह सूचना प्रौद्योगिकी की ही देन है कि आज पूरे विश्व में सूचनाओं का संकलन और उनका आदान-प्रदान बेहद आसान हो गया है। भारत के अधिकांश भागों में हिंदी बोली, पढ़ी तथा समझी जाती है, लेकिन कंप्यूटर पर अंग्रेजी भाषा की वजह से उसका उपयोग करना एक बड़ी समस्या है। कंप्यूटर में हिंदी का बेहद कम प्रयोग, अंग्रेजी भाषा की वजह से है, न कि तकनीक की वजह से। कोई भी राष्ट्र अपनी 'मातृ-भाषा' को पूर्णतः सार्वभौमिक बनाए बिना उन्नति नहीं कर सकता। यदि तकनीक को आम नागरिक तक जन उपयोगी बनाना है, तो उसे आम जन की भाषा में ही विकसित करना आवश्यक होगा। आप देखिए कि जिन राष्ट्रों में तकनीक एवं सॉफ्टवेयर का निर्माण उनकी अपनी भाषा में हुआ, आज वही राष्ट्र हमसे कहीं ज्यादा सफल और संपन्न हैं। चीन और जापान इसके सबसे बेहतरीन उदाहरण हैं। शुरुआत में कंप्यूटर और उस पर आधारित तकनीक विदेश से आई थी, इसलिए उस पर कामकाज अंग्रेजी भाषा पर ही आधारित थे और हमें अंग्रेजी भाषा सीखना जरूरी हो गया था। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि सॉफ्टवेयर सिर्फ अंग्रेजी भाषा के ही होते हैं। चूँकि कंप्यूटर की शुरुआत और विकास उन राष्ट्रों से हुआ, जहाँ की प्रचलित लिपि रोमन और भाषा अंग्रेजी थी। इसलिए उन तमाम वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का विकास कार्य अपनी लिपि रोमन एवं अपनी भाषा अंग्रेजी में ही किया। इसके बाद हमारे देश में कंप्यूटर और सॉफ्टवेयर का आयात भी उन्हीं राष्ट्रों से किया गया। इसका परिणाम ये हुआ कि हमें कंप्यूटर एवं सॉफ्टवेयर उन्हीं राष्ट्रों की भाषा और लिपि में ही उपलब्ध हुए, जिसे देश के उच्च शिक्षित वर्ग यानी अंग्रेजी भाषा के जानकार लोगों ने बगैर किसी भाषाई कठिनाई के अपना लिया। उस समय का आम हिंदी भाषी व्यक्ति इसके उपयोग से बहुत दूर था।

कंप्यूटर तंत्र के संदर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास, सैद्धांतिक रूप से लिपि या भाषापरक नहीं है। इसलिए रोमन लिपि यानी अंग्रेजी भाषा में जो संभव है, वह देवनागरी लिपि यानी हिंदी भाषा में भी संभव था और संभव है; क्योंकि कंप्यूटर सिर्फ बाइनरी यानी मशीनी भाषा समझता है। इसलिए कंप्यूटर पर जो काम अंग्रेजी या किसी अन्य दूसरी भाषा में हो सकता है, वही काम हिंदी में भी हो सकता है। वर्ष 1980 में तीसरी तकनीकी क्रांति के बाद इंटरनेट सूचनाओं के आदान-प्रदान का सबसे सुलभ साधन बन चुका है। इसने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ी है। 1 अरब 39 करोड़ की आबादीवाले हमारे देश में हिंदी सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। देश की सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी इसी भाषा में अपने को अभिव्यक्त करती है। जब सन् 1997 में हिंदी का पहला वेबपोर्टल अस्तित्त्व में आया, उसी वक्त से इंटरनेट पर हिंदी ने अपनी छाप छोड़नी प्रारंभ कर दी थी। आज नई पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी ने भी इसकी उपयोगिता समझ ली है। मुक्तिबोध और त्रिलोचन जैसे हिंदी के महत्त्वपूर्ण कवि प्रकाशकों द्वारा उपेक्षित रहे। लेकिन इंटरनेट ने हिंदी को प्रकाशकों के चंगुल से मुक्त कराने का सफल प्रयास किया है।

इंटरनेट पर हिंदी का सफर रोमन लिपि से प्रारंभ होता है और फॉण्ट जैसी समस्याओं से जूझते हुए धीरे-धीरे देवनागरी लिपि तक पहुँच जाता है। आज यूनीकोड, मंगल जैसे यूनीवर्सल फोंट्स ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर पर नया

जीवन प्रदान किया है। आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित लगभग 100 से भी ज्यादा इ-पत्रिकाएँ, देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। आज जितने भी प्रतिष्ठित अखबार हैं, सभी के इ-संस्करण मौजूद हैं। हम दुनिया के किसी भी कोने में रहकर क्षेत्रीय संस्करण के अखबारों को पढ़कर अपने क्षेत्र विशेष की जानकारी हिंदी में ले सकते हैं। इंटरनेट पर हिंदी साहित्यिक सीमाओं को लाँघकर अपना प्रसार कर रही है। वह कहानी, नाटक, उपन्यास से आगे बढ़कर महापुरुषों की जीवनियों, चिकित्सा, विज्ञान के क्षेत्र में विश्व की अन्य भाषाओं से कदमताल कर रही है। इसके साथ ही प्रकाशकों ने अपनी-अपनी वेबसाइट बना रखी हैं, जिन पर अनेक रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पाठकों को घर बैठे मिल जाती हैं। हिंदी पुस्तकों के इ-संस्करण से पाठकों को यह सुविधा उपलब्ध है कि वे अपने काम और रुचि के अनुसार पुस्तकों का चुनाव कर सकते हैं। आज सभी आवश्यक वेबसाइटों के हिंदी संस्करण मौजूद हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन यानी इसरो की वेबसाइट भी हिंदी में है। आज हिंदी के कई सर्च इंजन हैं, जो किसी भी वेबसाइट का चंद मिनटों में हिंदी अनुवाद करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। अब कंप्यूटर से निकलकर हिंदी मोबाइल में न केवल पहुँच चुकी है, बल्कि भारी संख्या में लोग इसका उपयोग भी कर रहे हैं। मोबाइल तक हिंदी की पहुँच ने देश में देवनागरी लिपि के समक्ष खड़ी चुनौती को काफी हद तक मिटा दिया है।

आज से पंद्रह साल पहले जब हम हिंदी के भविष्य पर विचार करते थे, तो अनेक लोग कहते थे कि हिंदी का भविष्य तो उज्ज्वल है, लेकिन हमारी लिपि पर बड़ा संकट मँडरा रहा है, क्योंकि उस वक्त मोबाइल यूजर्स अपने संदेश भेजने के लिए रोमन लिपि पर निर्भर रहते थे, लेकिन आज यह समस्या हल हो चुकी है। हिंदी के लिए सबसे उत्साहजनक बात ट्विटर पर उसका बढ़ता प्रयोग है। आज प्रोफेसर, डॉक्टर, नेता, अभिनेता, सामाजिक कार्यकर्ता, खिलाड़ी सभी हिंदी में भी ट्वीट करते हैं और इनका अनुसरण अन्य लोग करते हैं। यह अनुप्रयोग हिंदी के लिए नई संभावनाएँ पैदा करेगा। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी के इस्तेमाल के दो और नए स्थान देखने को मिले हैं। ये हैं डी.टी.एच. और क्रिकेट के स्कोर बोर्ड। ये दोनों स्थान हमारे सामने हिंदी को नए रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। डी.टी.एच. ने किसी भी चैनल के हिंदी में अनुवाद की सुविधा दे रखी है। पहले क्रिकेट की हिंदी में कमेंट्री निश्चित समय तक ही होती थी, लेकिन अब पूरा खेल हम हिंदी में सुन सकते हैं। इसके साथ ही डिस्कवरी, नेशनल जियोग्राफिक और एनिमल प्लेनेट जैसे चैनल हिंदी के दर्शकों का ज्ञानवर्धन रहे हैं। सर्वे एजेंसी 'स्टैटिस्टा' ने वर्ष 2018 में अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि इंटरनेट की दुनिया में अंग्रेजी का दबदबा है। अंग्रेजी भाषा में 10 मिलियन वेबसाइट्स हैं और 53 प्रतिशत लोग पूरी दुनिया में इंटरनेट पर अंग्रेजी का इस्तेमाल करते हैं। इंटरनेट पर पूरी दुनिया में चाइनीज भाषा की उपस्थिति सिर्फ 16 फीसदी है, जबकि चाइनीज बोलनेवालों की संख्या 1.3 बिलियन है। लेकिन चार वर्षों के बाद आज ये दावा गलत साबित होता दिख रहा है।

अगर हम आँकड़ों में हिंदी की बात करें तो 260 से ज्यादा विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। 64 करोड़ लोगों की हिंदी मातृभाषा है। 24 करोड़ लोगों की दूसरी और 42 करोड़ लोगों की तीसरी भाषा हिंदी है। इस धरती पर 1 अरब 30 करोड़ लोग हिंदी बोलने और समझने में सक्षम हैं। 2030 तक दुनिया का हर

पाँचवा व्यक्ति हिंदी बोलेगा। यूएई और फिजी जैसे देशों में हिंदी को तीसरी राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हिंदी की देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि मानी जाती है, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में 18 हजार शब्द हिंदी के शामिल हुए हैं। गूगल, सेंसस इंडिया और आईआरएस की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार, इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता का अंदाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि भारत में इंटरनेट पर हिंदी पढ़नेवालों की संख्या हर साल 94 फीसदी बढ़ रही है, जबकि अंग्रेजी में 17 फीसदी। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2023 में हिंदी में इंटरनेट उपयोग करनेवाले, अंग्रेजी में इंटरनेट इस्तेमाल करनेवालों से अधिक हो जाएँगे। एक अनुमान के मुताबिक, 2023 तक 24 करोड़ लोग इंटरनेट पर हिंदी का उपयोग करने लगेंगे। 2023 तक 8.7 करोड़ लोग डिजिटल पेमेंट के लिए हिंदी का उपयोग करने लगेंगे, जबकि 2016 में यह संख्या सिर्फ 2.2 करोड़ थी। सरकारी कामकाज के लिए 2016 तक 2.4 करोड़ लोग हिंदी का इस्तेमाल करते थे, जो 2023 में 9.9 करोड़ हो जाएँगे। 2016 में डिजिटल माध्यम में हिंदी समाचार पढ़नेवालों की संख्या 5.5 करोड़ थी, जो 2023 में बढकर 14.9 करोड़ होने का अनुमान है।

तकनीक में हिंदी का प्रसार तेजी से बढ़ा है। साथ ही इंटरनेट के बढ़ते उपयोग की वजह से पूरी दुनिया एक ग्लोबल विलेज में तब्दील हो गई है। डिजिटल तकनीक ने विश्वभर में संचार क्रांति में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया है। ऐसे में हिंदी में विज्ञान संचार की काफी संभावनाएँ हैं, जिससे देश की बहुसंख्य हिंदी आबादी को विज्ञान की समझ उन्हीं की भाषा में दी जा सके। वैज्ञानिक जागरूकता के लिए भी हिंदी काफी प्रभावी रूप में उपयोगी है। ऑनलाइन और डिजिटल संचार माध्यम में निहित अपार संभावनाओं की वजह से यह विज्ञान संचार के किए काफी उपयोगी साबित हो सकती है। डिजिटल माध्यमों के सही उपयोग से युवा वर्ग के बीच विज्ञान का लोकप्रियकरण किया जा सकता है, साथ ही विज्ञान को सरल और सहज तरीके से जनसामान्य तक पहुँचाया जा सकता है।

जब हम अपने देश में विभिन्न भारतीय भाषाओं में विज्ञान, तकनीकी, उद्यमिता आदि क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण डिजिटल सामग्री उपलब्ध करा पाएँगे, उस समय हमारे देश में वास्तविक रूप से ज्ञान और सूचना क्रांति आएगी। ऑनलाइन मीडिया स्पेस बढ़ने से भारतीय भाषाओं में विज्ञापन राजस्व भी बढ़ा है। फिक्की-ईआई की हाल ही में जारी रिपोर्ट से पता चला है कि वर्ष 2022 में डिजिटल मीडिया में भारतीय भाषाओं की भागीदारी 30 प्रतिशत की दर से बढ़ी है और इसके साथ ही विज्ञापन में 28.8 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री तैयार करने के साथ ही बहुत आवश्यक हो जाता है कि यह सर्च इंजन में सर्च के दौरान प्रथम पृष्ठ पर आए, ताकि अधिक-से-अधिक लोगों को इससे लाभान्वित किया जा सके।

□

123dwivedi@gmail.com

हिंदुस्तान की भाषा हिंदी है और उसका दृश्यरूप या उसकी लिपि सर्वगुणकारी नागरी ही है।

—गोपाललाल खत्री

नए भारत में बदलती सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी का विकास

—प्रो. हरीश अरोड़ा

नई सूचना प्रौद्योगिकी को 'मीडिया-विस्फोट' की संज्ञा से अभिहित किया जाए तो निश्चित रूप से कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस विस्फोट ने, जहाँ पत्रकारिता के विभिन्न माध्यमों की तकनीक को ध्वस्त करते हुए नई सूचना तकनीक को प्रस्थापित कर इसे प्रभावशाली बनाया, वहीं इस परिवर्तन के द्वारा सूचना की परंपरागत संरचना को पूरी तरह से बदलकर रख दिया। वैश्वीकरण की अंधी दौड़ में भले ही मीडिया को साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना महत्त्वपूर्ण आधार बनाते हुए समूचे विश्व के बाजार पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की चेष्टा की, लेकिन मीडिया की इस शक्ति ने भारतीय पत्रकारिता में अंग्रेजी के वर्चस्व को पूरी तरह से समाप्त करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पत्रकारिता के क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के आगमन के पश्चात् से ही हिंदी पत्रकारिता के भविष्य पर विचार-विमर्श किया जाने लगा। यह चिंता इस कारण भी स्वाभाविक थी कि इंटरनेट की दुनिया पूरी तरह अंग्रेजी पर निर्भर थी और इसकी पहुँच किसी एक प्रदेश या देश तक ही नहीं थी, बल्कि समूचे विश्व को इसने अपनी चपेट में ले लिया था। कहीं-न-कहीं भारतीय पत्रकारिता एक ऐसा क्षेत्र रहा है, जिसके द्वारा हिंदी भाषा ने आम जनता तक अपनी पहुँच को व्यापक स्तर तक बनाए रखा। लेकिन यह नई सूचना प्रौद्योगिकी एकाएक ही हिंदी के लिए चुनौती बनकर उभरी थी। एक ओर तो इस प्रौद्योगिकी के कारण हिंदी की व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर प्रश्नचिह्न लगने लगा, वहीं दूसरी ओर हिंदी भाषा की व्याकरणिक संरचना भी बिखरने लगी। इंटरनेट और मोबाइल क्रांति ने तीसरी दुनिया के देशों को अपनी भाषा के अस्तित्व के संकट से जूझने को बाध्य किया, लेकिन भारतीय संदर्भ में, वह भी हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में, यह क्रांति उसके लिए वैश्विक स्तर पर सकारात्मक पृष्ठभूमि तैयार करने में सहयोगी रही। हिंदी पत्रकारिता को अपना मिशन स्वीकार करनेवाले पत्रकारों और हिंदी भाषा को अपनी अस्मिता का आधार माननेवाले हिंदी प्रेमियों ने इस नई प्रौद्योगिकी को अपने ऊपर हावी होने देने की बजाय इसे अपनी शक्ति बनाकर विश्व के समक्ष हिंदी भाषियों को एक नया आयाम प्रदान किया।

---

* पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर।

यह सर्वविदित है कि कोई भी व्यक्ति अपनी भावनाओं और विचारों को सर्वश्रेष्ठ रूप में अपनी मातृभाषा में जितनी सहजता से अभिव्यक्त कर सकता है, उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। इसीलिए नई सूचना प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ ही हिंदीभाषियों के लिए इस दुनिया में अपने लिए जगह बनाना इतना आसान नहीं था। लेकिन भारतीय बाजार में हिंदी भाषियों की दुनिया से अंग्रेजी को हटाकर अपना आधिपत्य जमाने के लिए ही इंदौर के विनय छजलानी ने सबसे पहले वर्ष 1999 में हिंदी पोर्टल 'वेबदुनिया' (www.webdunia.com) की शुरुआत की। भले ही आरंभिक दौर में इस पोर्टल में हिंदीभाषी उपभोक्ताओं के लिए अधिक सामग्री नहीं थी, लेकिन यह हिंदी भाषियों के साथ-साथ भारतीय परिवेश और साहित्य को जाननेवालों के लिए भी अपने-आप में एक दुर्लभ पोर्टल बना। इस पोर्टल में, जहाँ हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण सामग्री का प्रकाशन किया जाने लगा, वहीं भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, खेल, राजनीति, ज्योतिष, विज्ञान आदि अनेक विषयों पर सामग्री प्रसारित की जाने लगी। इस पोर्टल के माध्यम से ही हिंदी भाषा भारत से बाहर विश्व में भी प्रतिष्ठा का केंद्र बनी।

किसी ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि इंटरनेट की वह दुनिया, जिस पर कभी अंग्रेजी का एकाधिकार था, एकाएक वह हिंदी और अन्य भाषाओं के लेखकों और पाठकों के लिए अपने द्वार खोल देगी। वेब दुनिया डॉट कॉम की हिंदी भाषा के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार की इस मुहिम ने जल्दी ही इसे एक क्रांति के रूप में परिवर्तित कर दिया और इंटरनेट पर सैंकड़ों की संख्या में हिंदी पोर्टलों और ब्लॉगर्स ने अपना अधिकार जमा लिया। यह हिंदी भाषा के वैश्विक स्तर पर बढ़ते पाठकों की माँग ही थी कि नई सूचना प्रौद्योगिकी के विकास में कार्य करनेवाले विशेषज्ञ इंजीनियर ने इंटरनेट पर हिंदी में लेखन के लिए अनेक फॉन्ट्स उपलब्ध करा दिए। लेकिन हिंदी टाइपिंग न जानने की समस्या के चलते जल्दी ही यूनिकोड प्रणाली का सहारा लिया गया। यह प्रणाली मुख्य रूप से उन लोगों के लिए सबसे अधिक उपयोगी बनी, जिन्हें अंग्रेजी टाइपिंग तो आती थी, लेकिन हिंदी टाइपिंट से वे परिचित नहीं थे।

1981 में हिंदी तकनीकी की यात्रा हुई—जोसेफ डी. बेकर ने यूनिकोड की अवधारणा को जन्म दिया, जिससे विश्व की जितनी भी भाषाएँ हैं उनके लिए मल्टीलिंग्वल स्टेशन की परिकल्पना के चलते भारतीय भाषाओं के लिए रास्ते खुले। दूसरा पड़ाव—हिंदी के लिए सी.एम.सी. ने 'लिपि' नाम से बहुभाषाई वर्ड प्रोसेसर बनाया, जिसके बाद हिंदी भाषा के क्षेत्र में क्रांति हुई। इंडिक लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि से माना जाता है और इसके लिए आवश्यकता थी कि एक ऐसा की बोर्ड हो, जिससे भारतीय भाषाओं के लिए, विशेष रूप से हिंदी के लिए, एक मानक स्वरूप तैयार किया जा सके। उसी को केंद्र में रखकर ही 1983 में इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड बना, जिसने हिंदी के लिए तकनीकी के क्षेत्र में नए द्वार खोल दिए। लेकिन वैश्विक संदर्भों में हिंदी के लिए रोमन लिपि पर केंद्रित यूनिकोड की व्यवस्था ने हिंदी को वैश्विक पहचान तो दी ही, वहीं नागरी लिपि न जाननेवालों के लिए भी हिंदी के प्रति एक रुचि पैदा की।

यूनिकोड प्रणाली के अंतर्गत कुछ मुख्य सॉफ्टवेयरों की मदद से किसी भी शब्द को अंग्रेजी रोमन लिपि में लिखकर उसे हिंदी में परिवर्तित किया जा सकता है। इस तकनीक के विकास के साथ ही अंग्रेजी का मोहताज कंप्यूटर लगभग उससे मुक्त हो गया। खासतौर पर हिंदी के विकास

के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण साधन बना। हिंदी भाषा से इतर अपने विचारों को संप्रेषित करनेवालों के लिए यूनिकोड प्रणाली ने उसे विश्व के प्रत्येक कंप्यूटर के साथ जोड़ दिया। हिंदी जाननेवाला व्यक्ति यूनिकोड आधारित किसी भी कंप्यूटर में हिंदी भाषा में टाइपिंग कर अपने सभी कार्य सुचारु रूप से कर सकता है। अपने निजी कार्यों को हिंदी में टाइप कराने के लिए उसे अब किसी अन्य पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार के सूचना एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा ऐसे अनेक सॉफ्टवेयर तैयार किए गए हैं, जिनकी सहायता से हिंदी में काम करने के लिए रुचिकर अपना कार्य हिंदी में सुचारु रूप से करने के साथ-साथ शब्दकोश, टाइपिंग, वर्तनी संशोधक, एकीकृत शब्द संसाधक आदि जैसी सुविधाओं का लाभ भी उठा सकते हैं।

यूनिकोड वास्तव में हिंदी के लिए एक वरदान की तरह आया। उसके आने से कंप्यूटर पर हिंदी में काम करना उतना ही सहज और सरल हो गया है, जितना अंग्रेजी में। यूनिकोड के द्वारा संचालित होने के कारण अब इंटरनेट पर हिंदी के समाचार-पत्र, पत्रिका के इ-संस्करण भी प्रकाशित होने लगे हैं। इनके साथ-साथ हिंदी में प्रकाशित अनेक पुस्तकों को यूनिकोड फॉन्ट्स द्वारा इंटरनेट पर स्थापित कर दिया गया है। हिंदी की हजारों वेबसाइट (या ठिकाने) इंटरनेट के संसार में अपनी अलग जगह बना चुके हैं। दूसरी ओर हिंदी भाषा में अपनी अभिव्यक्ति को स्वतंत्र रूप से स्थान देने के लिए ब्लॉग की एक छोटी सी दुनिया में हिंदी भाषियों ने अपना कदम रख दिया है। लाखों की संख्या में हिंदी ब्लॉगर्स हिंदी भाषा और साहित्य को एक नए लक्ष्य तक पहुँचाने में अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इन पुस्तकों, लेखकों, ठिकानों, ब्लॉग्स या किसी विशेष प्रकार की रचना को खोजने के लिए हिंदी में भी इ-सर्च इंजन स्थापित किए गए। वेब दुनिया, गूगल हिंदी, याहू और रेडिफ जैसे चर्चित ठिकानों के अलावा गुरु, रफ्तार, गुरुजी आदि के सर्च इंजन भी हिंदी की सामग्री को खोजने के लिए अपनी विशेष भूमिका निभा रहे हैं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में हिंदी भाषा के बाजार को देखते हुए ही माइक्रोसॉफ्ट कंपनी को विंडोज का अपना हिंदी-वर्जन भी निकालना पड़ा।

नई सूचना प्रौद्योगिकी में मोबाइल भी भाषाई क्रांति का एक महत्त्वपूर्ण आधार रहा है। पूरी तरह से अंग्रेजी से संचालित किए जानेवाले मोबाइल बाजार में अंग्रेजी से पूरी तरह से अपरिचित और हिंदी में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के रुचिकर लोगों के लिए ही मोबाइल कंपनियों ने हिंदी फॉन्ट्स की सुविधा देनी आरंभ कर दी। मोबाइल के संदर्भ में खास बात यह है कि यह भी यूनिकोड पद्धति पर ही आधारित है, लेकिन इसकी टाइपिंग की प्रणाली मोबाइल के मॉडल और उसमें विद्यमान तकनीक के आधार पर बदलती रहती है। इन तकनीकों के माध्यम से मोबाइल की सभी क्रियाएँ हिंदी में संचालित की जा सकती हैं और अपने संदेशों को भी हिंदी या अंग्रेजी अथवा दोनों भाषाओं में भेजे जा सकते हैं। इस नए मोबाइल युग में भी 5 जी नाम की एक नई तकनीकी अवधारणा ने अब लगभग सभी मोबाइलों में हिंदी फॉन्ट्स की सुविधा उपलब्ध करा दी है।

जहाँ तक नई सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा हिंदी भाषा के विकास का प्रश्न है तो निश्चित रूप से इस तकनीक ने हिंदी को विकसित करने के साथ-साथ उसके शब्द-भंडार को भी विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वतंत्र और प्रतिष्ठित लेखकों की साँझी विरासत के रूप में हिंदी में लिखे गए विभिन्न विषयों के साहित्य को इंटरनेट की दुनिया ने जगह देकर विश्व को हिंदी भाषा से पूर्णतः

परिचित कराया है। अब हिंदी भाषा इस प्रौद्योगिकी के सहारे रोजगारोन्मुख होकर विश्व समुदाय को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। हिंदी भाषा को आधार बनाकर शोध कार्य करनेवाले शोधार्थियों के लिए तो यह प्रौद्योगिकी वरदान बन गई है। हिंदी के अनेक सर्च-इंजन अब हिंदी भाषा और साहित्य के साथ-साथ अन्य भाषाओं के साहित्य को अनूदित करके भी प्रत्येक सामाजिक को उपलब्ध करा रहे हैं। अब हिंदी उत्तर-भारत या हिंदी पट्टी के राज्यों तक ही सीमित न रहकर विश्व के मानचित्र पर अपना परचम लहरा रही है। चरणबद्ध तरीके से हिंदी नए तकनीकी संसाधनों का उपयोग करके स्वयं को तकनीक की भाषा के रूप में भी स्थापित कर रही है।

वास्तव में बदलते हुए समय के साथ डिजिटल होती दुनिया में हिंदी भी उसी रास्ते अपनी पहचान बनाने लगी। वैश्विक मानचित्र पर अब उसे किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता नहीं रही। उसने अपने लिए खुद ही रास्ते बनाने शुरू किए। अभी हाल ही में विश्व के प्रतिष्ठित संगठन 'संयुक्त राष्ट्र संघ' ने वैश्विक संदर्भों में हिंदी को विशेष रूप में अपनी कार्यप्रणाली में सम्मिलित किया, लेकिन मुख्य भाषा के रूप में अभी उसे स्थान मिलना शेष है। भारत को फिर से विश्व गुरु के स्थान पर स्थापित करने में हिंदी भाषा ने अपना कदम बढ़ा दिया है और जल्दी ही वह नई सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे भारत को विश्व में उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा फिर से दिला देगी।

□

drharisharora@gmail.com

देह एक रथ है, इंद्रियाँ उसमें घोड़े, बुद्धि सारथि और मन लगाम है।

—ज्ञानेश्वरी

❖ ❖ ❖

जिसे सब तरह से संतोष है, वही धनवान् है।

—शंकराचार्य

❖ ❖ ❖

धर्म की क्षति जिस अनुपात में होती है उसी अनुपात में आडंबर की वृद्धि होती है।

—प्रेमचंद

❖ ❖ ❖

हमारा ध्येय सत्य होना चाहिए, न कि सुख।

—सुकरात

भारतीय परंपरा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

—बालेंदु शर्मा 'दाधीच'

शायद आपने कंप्यूटर विज्ञान में प्रयुक्त होनेवाला 'एल्गोरिद्म' शब्द कहीं पढ़ा या सुना होगा। यह शब्द बगदाद के खलीफा अलमौमून के दरबार में काम करनेवाले गणितज्ञ मोहम्मद इब्न मूसा अल-ख्वारिज्मी (780-850 ईस्वी) के नाम से आया है (अल-ख्वारिज्मी->अल-गोरिद्म), जिनकी प्रतिष्ठा विज्ञान की दुनिया में 'बीजगणित के पिता' के रूप में है, जिन्होंने 'अल-किताब अल-मुख्तसरफि हिसाब अल-जब्र' व 'अल-मुकाबला' नामक किताब लिखी, जिसे अनेक विद्वान् बीजगणित पर लिखी गई पहली किताब मानते हैं और इस किताब के शीर्षक से ही अंग्रेजी का अलजेब्रा (बीजगणित) शब्द निकला है। उनका दूसरा बड़ा योगदान हिंदू-अरबी अंकों को दुनिया तक पहुँचाना रहा है, जिन्होंने गणित की तमाम गुत्थियों और जटिलताओं का समाधान प्रस्तुत किया। इससे पहले प्रचलित रोमन अंक-प्रणाली इन अंकों के समक्ष बहुत आदिम प्रतीत होती है।

अल-ख्वारिज्मी की योग्यता, विद्वता, विलक्षणता और आधुनिक गणित के प्रति उनका योगदान वैश्विक स्तर पर सिद्ध तथा असंदिग्ध है, किंतु उनका बहुत सारा महत्त्वपूर्ण कार्य भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त, भास्कर, आर्यभट्ट तथा हिंदू विज्ञान, नक्षत्रशास्त्र तथा गणित के अन्य महान् व्यक्तित्वों द्वारा किए गए काम पर आधारित है, या फिर उसे सहेजकर अपने नजरिए से सहेजने-समेटने-प्रस्तुत करने का उपक्रम है। उनके बताए जिन अंकों को अरबी अंकों (अरेबिक न्यूमेरल्स) के नाम से संबोधित करते हुए दुनिया भर में इस्तेमाल किया जाता है, वास्तव में वे हिंदू अंक हैं। अब उन्हें 'अरेबिक-हिंदू न्यूमेरल्स' या कहीं-कहीं 'हिंदू-अरेबिक न्यूमेरल्स' के नाम से भी संबोधित किया जाने लगा है, लेकिन फिर भी उनकी पहचान में अरेबिक शब्द आता है। इसी तरह से बीजगणित के जिन नियमों का दस्तावेजीकरण उन्होंने किया, उनमें से अधिकांश का उद्भव भी भारतीय है। अल-ख्वारिज्मी के बारे में क्रोसली (Crosseley) की टिप्पणी है, "उनका कार्य संभवतः बहुत मौलिक नहीं है।"

एक बार फिर दोहराना चाहूँगा कि इन टिप्पणियों का अर्थ किसी भी रूप में अल-ख्वारिज्मी की निजी योग्यता को सीमित करके आँकना नहीं है, जो कि असंदिग्ध रूप से उस दौर के विलक्षण गणितज्ञ थे। यदि उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से इस गणितीय कार्य को बाकी दुनिया तक न पहुँचाया होता—अप्रत्यक्ष रूप में ही सही, क्योंकि उनकी किताबें अरबी में

---

* माइक्रोसाफ्ट भारत में निदेशक (स्थानीयकरण एवं सुगम्यता)।

थीं, लेकिन संयोगवश उनका लैटिन मे अनुवाद हुआ और सैकड़ों वर्षों के बाद यह अनुवाद यूरोप में इस्तेमाल किया गया। इसके अतिरिक्त बीजगणित में उनका अपना कार्य भी महत्त्वपूर्ण है। उनकी तीन बड़ी किताबें हैं, जिनमें से एक ('अल-किताब अल-मुख्तसरफि हिसाब अल-जब्र' व 'अल-मुकाबला') बीजगणित पर, एक हिंदू अंक प्रणाली पर (अरबी नाम अज्ञात, लैटिन में अनूदित पुस्तक—Algoritmi de numeroIndorum) और तीसरी ('किताब सुरत अल-अर्द') भूगोल पर आधारित है। उनकी एक अन्य रचना नक्षत्र वैज्ञानिक गणनाओं तथा तालिकाओं पर आधारित है, जिसका नाम है—'जिजअल-सिंदहिंद।' जैसा कि नाम (हिंद) से स्पष्ट है, इसमें भारतीय नक्षत्र विज्ञान की मदद ली गई है।

हम भारतीयों के लिए अल-ख्वारिज्मी की महत्ता को स्वीकार करते हुए यह सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है कि जिन अमर भारतीय व्यक्तित्वों ने मूल रूप से, तथा अल-ख्वारिज्मी के जन्म से भी पहले जो बड़ा कार्य किया था, उसे अरब विश्व के गणितीय योगदान के दस्तावेजीकरण में एक परिशिष्ट के रूप में न देखा जाए। यह न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि होना इसके विपरीत चाहिए। आवश्यक है कि भारत की ज्ञान-विज्ञान परंपरा को उसका उपयुक्त स्थान तथा श्रेय मिले, जिसका एक हिस्सा 'अल-ख्वारिज्मी' के माध्यम से यूरोप तक पहुँचा।

भारत के गणितज्ञ और नक्षत्र विज्ञानी ब्रह्मगुप्त (598-665 ईस्वी), जिन्होंने अल-ख्वारिज्मी के लगभग दो शताब्दियों पूर्व जन्म लिया था, अपने ग्रंथ 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' में पहले ही हिंदू अंक-प्रणाली की व्याख्या कर चुके थे। शून्य से नौ तक के अंक, जिनके जरिए दुनिया की हर संख्या को अभिव्यक्त करना और ऐसी संख्याओं की गणना करना आसानी से संभव था। इसी ग्रंथ में उन्होंने शून्य की परिभाषा इस प्रकार दी कि जब किसी अंक से खुद उस अंक को घटाया जाता है तो परिणाम शून्य आता है। इसके साथ-ही-साथ उन्होंने शून्य के अद्भुत नियम दिए, जैसे किसी अंक में से शून्य को घटाए जाने पर परिणाम वह अंक ही आता है और शून्य को शून्य से विभाजित करने पर भी परिणाम शून्य ही आता है। उनकी पुस्तक के कुछ अध्याय अंकगणित एवं क्षेत्रमिति से संबंधित हैं तो कुछ अध्यायों में बीजगणित का वर्णन किया गया है।

अल-ख्वारिज्मी ने ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' का अध्ययन किया था, जो उनके जन्म से पहले ही बगदाद पहुँच चुका था। इसकी प्रति बगदाद के खलीफा के दरबार तक कैसे और कब पहुँची, इस पर अलग-अलग मत हैं। बगदाद की स्थापना 762 में अलमंसूर नामक खलीफा ने की थी। एक मत है कि उज्जैन के विद्वान् कनक जब बगदाद गए, तब उन्होंने अल-मंसूर के दरबार में इसकी एक प्रति भेंट की थी। बाद में अल-फजारी नामक एक अरबी विद्वान् और एक भारतीय विद्वान् ने मिलकर इसका अरबी में अनुवाद किया। इस अनुवाद ने अरब देशों में गणित और नक्षत्रविज्ञान में आगे होनेवाले अध्ययनों तथा शोध को गहराई से प्रभावित किया। अल-ख्वारिज्मी भी इसका लाभ उठानेवाले विद्वानों में शामिल थे।

ब्रह्मगुप्त का उपरोक्त प्रसंग भारतीय ज्ञान परंपरा में गणित, विज्ञान तथा ऐसे ही अन्य विषयों की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए दिया गया है। हालाँकि ईसा पूर्व और ईसा के पश्चात् भारतीय गणितज्ञों, चिकित्सकों, शल्य चिकित्सकों, नक्षत्र वैज्ञानिकों, रसायनज्ञों आदि की अत्यंत समृद्ध तथा सुदीर्घ परंपरा रही है। आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के संदर्भ में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान

है, भले ही हमारा यह योगदान वैश्विक स्तर पर पर्याप्त प्रचारित नहीं हो सका है।

ब्रह्मगुप्त से पूर्व आर्यभट्ट विश्व को शून्य की अमर सौगात दे चुके थे। सन् 476 ईस्वी में जनमे आर्यभट्ट भारत के महानतम नक्षत्र विज्ञानियों में से एक थे। जहाँ पश्चिम में गैलीलियो ने सन् 1616 ईस्वी में कहा था कि धरती सूर्य के चारों ओर घूमती है (सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं), वहीं आर्यभट्ट ने पाँचवीं शताब्दी में ही अपने ग्रंथ 'आर्यभटीय' में लिख दिया था कि धरती अंतरिक्ष में एक गोले के समान लटकी हुई है। वह अपनी कक्षा में भी घूमती है, जिसकी बदौलत दिन और रात होते हैं। उन्होंने सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण का वैज्ञानिक आधार भी प्रस्तुत किया था। प्रसंशवश, गैलीलियो के कथन को कैथोलिक चर्च ने 'मूर्खतापूर्ण और बकवास दर्शन' कहकर संबोधित किया था। आर्यभट्ट ने पाई का मान चार दशमलव तक निकाल दिया था और धरती की परिधि का माप भी प्रस्तुत किया था। उन्होंने इसे 24,835 मील बताया और आधुनिक विज्ञान इसे 24,902 मील मानता है। एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक आर्यभट्ट द्वारा मापी गई धरती की परिधि सर्वाधिक सटीक मानी जाती रही है।

बीजगणित के क्षेत्र में एक अन्य भारतीय गणितज्ञ, भास्कराचार्य का योगदान अप्रतिम माना जाता है। उनके द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'सिद्धांत शिरोमणि' है, जिसमें लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित तथा गोलाध्याय नामक चार भाग हैं। ये चार भाग क्रमशः अंकगणित, बीजगणित, ग्रहों की गति से संबंधित गणित तथा गोले से संबंधित हैं।

अंकों तथा बीजगणित की चर्चा करते हुए हमने नक्षत्रविज्ञान का भी उल्लेख कर लिया, किंतु विषयांतर न हो, इसलिए विज्ञान, गणित तथा प्रौद्योगिकी की ओर लौटते हैं। यदि भारतीय अंक नहीं होते, शून्य की परिकल्पना न की गई होती, दाशमिक प्रणाली नहीं होती (पुनः यह भी भारत से आई है), तो विज्ञान को आज हम जिस रूप में जानते हैं और जिस सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग दैनंदिन कार्यों के लिए करते हैं, वे दोनों ही संभवतः ऐसे शक्तिशाली रूप में मौजूद न होतीं, जैसी कि वे आज हैं। कंप्यूटर के क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाली बाइनरी अंक प्रणाली का प्रारंभिक रूप भी भारत में ही मिलता है, जब गणितज्ञ ऋषि पिंगल ने तीसरी सदी ईसा पूर्व में दो अंकों पर आधारित गणनाओं का प्रयोग किया। कहा जाता है कि संस्कृत के छंदों का अध्ययन करते हुए उन्होंने इस बाइनरी अंक प्रणाली को विकसित किया। यह बात अलग है कि पश्चिमी दुनिया में बाइनरी अंक प्रणाली के विकास या खोज का श्रेय 17वीं शताब्दी के जर्मन गणितज्ञ और वैज्ञानिक गॉटफ्राइड विलहेम लीबनिज (Gottfried Wilhelm Leibniz) को दिया जाता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी में बाइनरी अंकों का ही प्रयोग होता है और वही कंप्यूटर की भाषा भी है।

बाइनरी प्रणाली की बदौलत ही कहा जाता है कि कंप्यूटर दुनिया की किसी भाषा को नहीं समझता और यदि किसी भाषा को समझता है तो वह दो अंकों की भाषा है, यानी कि बाइनरी अंकों की भाषा। इसमें सिर्फ दो अंकों- शून्य और एक के प्रयोग से बड़ी-से-बड़ी गणनाएँ की जाती हैं और हर किस्म की सूचनाओं को भंडारित तथा प्रसंस्कृत (प्रोसेस) किया जा सकता है।

भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा विविध क्षेत्रों में है, किंतु एक महत्त्वपूर्ण संकेत इससे यह मिलता है कि इस देश में सदियों पहले से लोगों के बीच वैज्ञानिक मानस मौजूद रहा है, जिसे बड़े से बड़े देश अर्जित करना चाहते हैं। लगभग एक हजार

वर्षों की गुलामी का प्रभाव रहा होगा कि आज के भारत में भी वैज्ञानिक मानस के संदर्भ में स्थितियाँ उतनी अच्छी नहीं हैं, जितनी कि होनी चाहिए। भारत का पारंपरिक ज्ञान और वैज्ञानिक मानस वास्तव में अत्यंत जिज्ञासा का विषय है, जिस पर वैश्विक स्तर पर गंभीर शोध की आवश्यकता है। मैं अनेक पश्चिमी विद्वानों की इन टिप्पणियों को पढ़कर आश्चर्यचकित हो जाता हूँ, जब वे कहते हैं कि भारत के अनेक प्राचीन वैज्ञानिकों, गणितज्ञों आदि की रचनाएँ सामान्य हस्तलिखित या मुद्रित दस्तावेजों के रूप में उपलब्ध नहीं है और वह अधिकांशतः संस्कृत के श्लोकों के रूप में है, यहाँ तक कि गणित के सिद्धांत भी संस्कृत श्लोकों के रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। उन्हें अहसास होना चाहिए कि यह ज्ञान उस दौर से चला आया है, जब वह लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होता था और मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित किया जाता था। हमारे विद्वानों ने इसके लिए संस्कृत का प्रयोग किया और अपने सूत्रों को पद्य में निबद्ध किया, क्योंकि पद्य को याद रखना आसान होता है—विज्ञान के प्रमेयों, गणितीय फार्मूलों और गद्य की तुलना में। ज्ञान के आदान-प्रदान तथा हस्तांतरण का वह मार्ग भी अपने दौर के लिहाज से वैज्ञानिक मानस का परिचायक है।

'वैज्ञानिक मानस' शब्द भारत से ही आया है। विश्व में जहाँ 'साइंटिफिक एटीट्यूड' और 'साइंटिफिक मैथड' जैसे शब्दों का प्रयोग होता रहा है। हालाँकि इनकी परिभाषा और अर्थ काफी हद तक वैज्ञानिक मानस से मिलता-जुलता है, किंतु 'वैज्ञानिक मानस' शब्द अधिक गहरे और व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। मेरी दृष्टि में 'साइंटिफिक मैथड' शब्द व्यक्तिगत स्तर पर प्रयुक्त किए जानेवाले तौर-तरीकों की ओर इशारा करता है, जबकि वैज्ञानिक मानस सामूहिकता की ओर इशारा करता है, जैसे एक राष्ट्र या समाज। पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू से लेकर वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी तक ने वैज्ञानिक मानस की महत्ता को रेखांकित किया है। कारण यह कि वैज्ञानिक मानस का प्रसार एक व्यक्ति, समाज और देश के स्तर पर हमारा कायाकल्प करने की क्षमता रखता है। देश पहले ही तेजी से प्रगति कर रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का मार्ग इस प्रगति को और गति देने में सक्षम है।

□

balendu@gmail.com

राष्ट्रभाषा हिंदी का किसी क्षेत्रीय भाषा से कोई संघर्ष नहीं है।

—अनंत गोपाल शेवड़े

जब से हमने अपनी भाषा का समादर करना छोड़ा,
तभी से हमारा अपमान और अवनति होने लगी।

—(राजा) राधिकारमण प्रसाद सिंह

भाषा प्रौद्योगिकी में कृत्रिम मेधा की बढ़ती भूमिका

—महेश कुलकर्णी

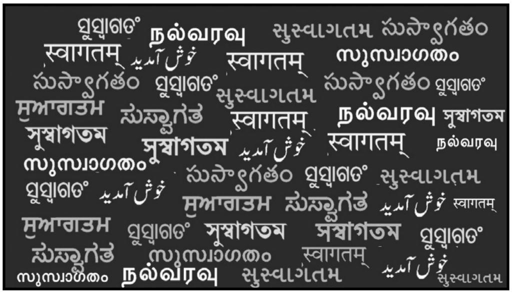

डिजिटल क्रांति ने वास्तव में दुनिया को एक विश्व ग्राम बना दिया है। इसमें कृत्रिम बुद्धि यानी 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' का प्रयोग व्यापक होता जा रहा है और यह हमारे दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग बनता जा रहा है।

आप प्रसिद्ध 'एलन टयूरिंग' टेस्ट के बारे में अवगत होंगे, जिसमें कहा गया है कि –

"एक कंप्यूटर बुद्धिमान कहलाने के योग्य होगा, यदि वह मनुष्य को यह विश्वास करने के लिए धोखा दे सकता है कि वह मानव है।"

कृत्रिम बुद्धि का पूरा सरगम मनुष्यों को 'समझने' और 'प्रतिक्रिया' करने में सक्षम मशीनों पर आधारित है। प्रौद्योगिकी की दुनिया में, मंत्र "नवप्रवर्तन करो या मरो"; संगठनों के लिए पहले से कहीं अधिक सत्य है, और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) उपयोगकर्ताओं को अधिक वैयक्तिकरण प्रदान करके, प्रक्रियाओं को स्वचालित करके और हमारे काम करने के तरीके को बाधित करके उद्योगों को फिर से परिभाषित कर रहा है। सौभाग्य से, कई कंपनियाँ AI तकनीक को अपनाने की महत्ता समझ रही हैं, ऐसा न हो कि वे पीछे रह जाएँ। 'ए.आई. को गले लगाओ या समाप्त हो जाओ', हर संगठन के लिए सच है।

आज, ए.आई. व्यापक है और यह आवाज, छवि पहचान, खोज इंजन, सिफारिश इंजन, स्वचालित इ-मेल और पाठ उत्तर, चैटबॉट और बहुत कुछ को शक्ति प्रदान करता है। ए.आई.-फर्स्ट गूगल का नया मंत्र है।

क्षेत्र, जहाँ ए.आई. का सबसे अधिक प्रभाव हो सकता है—

- स्वास्थ्य देखभाल
- कृषि
- शिक्षा
- स्मार्ट सिटी और इंफ्रास्ट्रक्चर
- स्मार्ट गतिशीलता और परिवहन

नीति आयोग ने 'कृत्रिम बुद्धि' (AI) के लिए एक संपूर्ण राष्ट्रीय रणनीति तैयार की है। विभिन्न क्षेत्रों में ए.आई. के व्यापक अनुकूलन के लिए और

* CTO EVARIS SYSTEMS LLP के संस्थापक।

विशेष रूप से ई-गवर्नेंस डोमेन में निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार करने की आवश्यकता है—

- **प्रौद्योगिकी की तैयारी और इससे जुड़ी चुनौतियों का समाधान :** ए.आई. के अनुसंधान और अनुप्रयोग में व्यापक-आधारित विशेषज्ञता का अभाव।
- **कुशल पेशेवरों का सृजन :** बड़ी कंपनियों के 54% कर्मचारियों को 2025 तक काम पर बने रहने के लिए कौशल (स्किल) बढ़ाने की जरूरत होगी—2018 'फोर्ब्स' की रिपोर्ट में दावा किया गया है।
- **नीति/कानूनी ढाँचा :** "स्पष्टीकरण के अधिकार" के लिए अर्थात, व्याख्या करने योग्य AI, GDPR (सामान्य डेटा संरक्षण व्यवस्था), IPR / पेटेंट व्यवस्था।
- **डेटा उपलब्धता :** (डेटा सुरक्षा, गुमनामी, सत्यापन, सुरक्षित, कानूनी ढाँचा / उल्लंघन के लिए कानून)

डेटा नई अर्थव्यवस्था है और नवाचार को उत्प्रेरित कर रहा है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग वर्ल्ड में व्यवधान लाता है। विभिन्न मिशन मोड परियोजनाओं और यू.पी.आई., जी.एस.टी.एन., जी.ई.एम., ई-कोर्ट, स्वास्थ्य, एम.सी.ए.21 जैसे विभिन्न सार्वजनिक डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से विशाल डेटा उत्पन्न हो रहा है। डेटा की विविधता में शामिल हैं—भाषण, पाठ डेटा, वीडियो, छवि, भाषायी संग्रह। 36% AI एप्लिकेशन छवि आधारित हैं और कुल मिलाकर, 73% AI एप्लिकेशन किसी-न-किसी रूप में छवि, वीडियो, ऑडियो या सेंसर डेटा के साथ काम करते हैं।

सभी रास्ते डेटा की ओर ले जाते हैं—डाटा को उपयोग में लाना, उसे उपयोगी बनाना आसान नहीं है। डेटा उपलब्ध होना चाहिए, इससे ज्ञान निकालने के लिए ड्रिल डाउन किया जाना चाहिए।

- गोपनीयता और सुरक्षा
- डेटा की गुमनामी के बारे में औपचारिक नियम
- बड़े संगठित स्वच्छ डेटा की उपलब्धता, केंद्र राज्य सरकार—डेटा ए.पी.आई. (डेटा एकत्रीकरण मंच)
- डेटा सुरक्षा कानून, डेटा साझाकरण नीति, सुरक्षित डेटा एक्सेस, गुमनामी।

समयरेखा : अब AI क्यों?

1966-1997 को 'ए.आई. शीतकालीन अवधि' कहा जाता है—जिसने ए.आई. अनुसंधान में कम धन और रुचि का अनुभव किया गया। इस क्षेत्र ने प्रचार चक्र और निराशा और आलोचना का अनुभव किया, जिसके बाद धन में कटौती हुई। लेकिन फिर से, इस क्षेत्र में दशकों के बाद नए सिरे से दिलचस्पी दिखाई गई है। कंप्यूटर कुछ संकीर्ण कार्यों में हमसे बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं; हालाँकि, ऐसा महसूस किया जाता है कि मानव-समान A.I. 5 से 10 साल में उभरेगा।

दूसरी ओर, इंटरनेट व्यापक हो गया है और हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। हम सभी ने विशेष रूप से महामारी में इंटरनेट की शक्ति को देखा है, जिसने हमें हमेशा की तरह जुड़े रहने के साथ-साथ व्यापार करने में मदद की। जनवरी 2021 तक, वैश्विक सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ता 4.66 अरब है, जबकि इंटरनेट की 90-95% खपत अकेले सोशल नेटवर्किंग के उपयोग से है।

AI (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) और

IoT के अभिसरण ने उद्योगों, व्यवसाय और अर्थव्यवस्थाओं के कार्य करने के तरीके को फिर से परिभाषित किया है। स्पीच टू स्पीच टेक्नोलॉजी, फेशियल रिकग्निशन, वर्चुअल असिस्टेंट, मशीन ट्रांसलेशन सिस्टम, नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग, नेचुरल लैंग्वेज जेनरेशन और बहुत कुछ अब हमारे जीवन का हिस्सा बन रहे हैं और भाषा की बाधाओं को दूर करने में मदद करते हैं।

2022 में 50 अरब डिवाइस कनेक्ट होने की उम्मीद है, 50 वर्षों के भीतर हमारे पास इंटरनेट ट्रांसीवर को मानव मस्तिष्क में एंबेड करने की तकनीक होगी, और 2069 तक ब्रेन-मशीन इंटरफेस पूरी तरह से विकसित हो जाएगा, जिसमें इंटरनेट इको सिस्टम मानव उन्नति के लिए उत्प्रेरक होगा। आवासीय इंटरनेट की गति 10 गीगाबिट प्रति सेकंड—आज के नेटवर्क की तुलना में 10 गुना तेज होगी।

नेटवर्क पर अगले एक अरब उपयोगकर्ताओं को लाने के लिए बहुभाषावाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू बन गया है। दुनिया भर में 7,000 भाषाओं और बोलियों का इस्तेमाल किया जाता है। भारत में हमारे पास 22 अनुसूचित भाषाएँ हैं और लिपियों और भाषाओं के बीच हमारे पास एक से कई और कई-से-कई संबंध हैं। एक उदाहरण के रूप में, देवनागरी लिपि अकेले 9 अनुसूचित भाषाओं को शामिल करती है, जैसे कि हिंदी, मैथिली, मराठी, कोंकणी, बोरो, नेपाली, संताली, संस्कृत, सिंधी, जबकि सिंधी देवनागरी के साथ-साथ फारसी-अरबी लिपि में भी लिखी जाती है।

अगले अरब इंटरनेट उपयोगकर्ता संभवतः गैर-अंग्रेजी भाषी देशों से आएँगे, इन उपयोगकर्ताओं के लिए पहुँच प्रदान करने के लिए अंतरराष्ट्रीयकृत या बहुभाषी सामग्री का समर्थन करने से अधिक की आवश्यकता होगी। स्थानीयकृत डोमेन नाम और इ-मेल पते आवश्यक हैं।

उपभोग और साथ ही बहुभाषी सामग्री का निर्माण भी बढ़ रहा है, जो मानव प्रेरक प्रणालियों में प्रगति के लिए एक वरदान है। मशीन लर्निंग में प्रगति ने प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एन.एल.पी.), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, जो कंप्यूटर को मानव भाषा को समझने की क्षमता देता है।

क्या बदला है? अब क्यों?

परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण घटक बड़े पैमाने पर लेबल किए गए डेटा सेट और GPU कंप्यूटिंग, बेहतर आर्किटेक्चर/एल्गोरिदम, सॉफ्टवेयर प्लेटफॉर्म- TensorFlow, Theano, Chainer और MXnet जैसे फ्रेमवर्क की उपलब्धता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग करने वाले अधिकांश समाधान प्राकृतिक भाषा समझ (एनएलयू) और इमेज प्रोसेसिंग और कंप्यूटर विजन (IPCV-आई.पी.सी.वी.) पर लागू होते हैं।

भाषा (प्राकृतिक भाषा-समझ और निर्माण)

68% लोग गाँवों में रहते हैं, 22 अनुसूचित भाषाएँ, विभिन्न बोलियाँ, केवल 7-8 प्रतिशत अंग्रेजी समझ सकते हैं, 36.5% लोग अपनी भाषा पढ़/लिख नहीं सकते हैं, लेकिन केवल बोल सकते हैं। हमें 'स्पीच टू स्पीच टेक्नोलॉजीज' (S2S) जैसे ह्यूमन इंस्पायरिंग सिस्टम की आवश्यकता है।

मशीन लर्निंग ने प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एन.एल.पी.), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के क्षेत्र में अनुसंधान को उत्प्रेरित किया है, जो कंप्यूटर को मानवी भाषा को समझने की क्षमता देता है। प्राकृतिक भाषा लोगों द्वारा बोली जानेवाली और लिखित और संचार के लिए उपयोग की जानेवाली भाषा को संदर्भित करती है, जबकि एन.एल.पी. एल्गोरिदम का उपयोग

करके शब्दों और वाक्यों से जानकारी निकालती है। इसके अलावा 'नेचुरल लैंग्वेज जनरेशन' (एन.एल.जी.) मानव जैसे वाक्यांशों को तैयार करने की क्षमता प्रदान करता है, और प्राकृतिक भाषा-समझ (एन.एल.यू.), वाक्यांशों की समझ बनाने की क्षमता प्रदान करता है।

एन.एल.यू. उपकरण प्राकृतिक भाषा में पाठ या आवाज को संसाधित करते हैं और प्रतिक्रियाओं को सारांशित, संपादित बनाकर उपयुक्त करते हैं।

एन.एल.यू. अनुसंधान के कुछ क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

- स्पीच टू स्पीच टेक्नोलॉजी (टी.टी.एस., एम.ए.टी., एस.आर.)।
- प्रश्न-उत्तर प्रणाली, चैटबॉट।
- सूचना निष्कर्षण और सूचना पुनर्प्राप्ति प्रणाली।
- मुद्रित और हस्तलिखित पहचान।
- प्राकृतिक भाषा-समझ—खोज, प्रश्न-उत्तर, चैटबॉट, प्रवचन-विश्लेषण, भावना-विश्लेषण, सोशल मीडिया-विश्लेषण आदि।

डिजिटल माध्यम में भाषा अनुकूलन

भाषाओं के साथ किसी भी उपकरण/प्रणाली को सक्षम करने के लिए मूल रूप से चार घटकों की आवश्यकता होती है—

- डेटा कैसे इनपुट करें?
- डेटा कैसे स्टोर करें?
- डेटा कैसे प्रदर्शित करें?
- और बाहरी दुनिया के साथ संवाद कैसे करें?

प्रमुख रूप से, इन्हें भारतीय मानकीकृत कीबोर्ड लेआउट (उन्नत INSCRIPT), भंडारण के लिए यूनिकोड और प्रदर्शन के लिए ओपन फॉण्ट प्रारूप का उपयोग करके हल किया जा रहा है, फिर भी गहरे स्तर के समर्थन में चुनौतियाँ हैं, जैसे कि डेटाबेस में भाषा समर्थन। हालाँकि सभी डेटाबेस यूनिकोड एंकोडिंग का समर्थन करते हैं, लेकिन भाषा समर्थन से संबंधित गहरे मुद्दे आज भी मौजूद हैं। जैसे कि एकाधिक भाषाओं में डेटाबेस क्वेरी, होमोफोनिक विविधताएँ, वर्तनी भिन्नताएँ, वैकल्पिक वर्तनी, सॉर्ट ऑर्डर और कई अन्य भाषायी विशेषताएँ। कुछ डेटाबेस विक्रेताओं ने भाषायी (भाषा विशिष्ट) कुछ ही विविधताओं (उदाहरण गीता और गिता—Geeta and Gita) के समर्थन के लिए सक्रिय उपाय किए हैं, लेकिन सभी को नहीं। इसलिए, संबंधित डेटाबेस विक्रेताओं द्वारा ऐसी भाषायी विशेषताएँ की चुनौतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

एक और मुद्दा, लैटिन फॉण्ट की प्रचुरता की तुलना में कम अच्छी गुणवत्ता वाले टाइपोग्राफिक विकल्प हैं, विशेष रूप से भारतीय भाषाओं की लिपियों के लिए। हालाँकि, ई-गवर्नेंस अनुप्रयोगों के लिए सरकार टी.डी.आई.एल., एम.ई.आई.टी.वाई., सरकार के तहत विकसित 'सकल भारत' फॉण्ट के उपयोग की सिफारिश करती है। इसके साथ ही, स्टार्टअप, फॉण्ट के विकास के लिए खुद को संलग्न कर सकते हैं और उसी के आस-पास व्यवसाय उत्पन्न कर सकते हैं। फॉण्ट बिजनेस में बहुत बड़ा स्कोप है।

भारतीय भाषाओं के संबंध में अनुवाद और अन्य भाषायी उपकरणों के मुद्दों की एक बड़ी संख्या है। हालाँकि, भाषायी उपकरण जैसे वर्तनी जाँचकर्ता, व्याकरण परीक्षक और मशीनी अनुवाद अत्यधिक शोध उन्मुख हैं और किसी विशेष डोमेन के संदर्भ में ठीक से व्यवहार करेंगे। एक उदाहरण के रूप में, सामान्य शब्दों के लिए वर्तनी जांचकर्ता कानूनी या चिकित्सा डोमेन के लिए काम नहीं

कर सकता है। ऐसा ही मामला मशीनी ट्रांसलेशन सिस्टम का है। तो, सभी के लिए उपयुक्त एक समाधान नहीं होगा। इसलिए, यहाँ भी स्टार्टअप के लिए इन तकनीकों में खुद को शामिल करने और उसी के व्यवसाय पर पनपने का एक जबरदस्त अवसर है। दूसरे, जटिलता के कारण और यहाँ तक कि मानव द्वारा अनुवादित दो वाक्य भी समान नहीं होंगे, Man in loop की आवश्यकता है। इसलिए, स्टार्टअप पोस्ट एडिटिंग के लिए Man in loop के साथ अनुवाद का काम करने के लिए खुद को संलग्न कर सकते हैं। संपूर्ण अनुवाद उद्योग CAT टूल पर फल-फूल रहा है।

सरकारी विभागों को भारतीय स्टार्टअप उत्पादों के पहले उपयोगकर्ता बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, ताकि एक बड़ा इंडिक डाटासेट उपलब्ध/उत्पन्न हो, जो बाद में एक बृहद डेटाबेस की ओर ले जाए।

प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करने की क्षमता भारत में है, इसलिए 'एन.एल.पी. फर्स्ट' हमारा दृष्टिकोण होना चाहिए। हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है—

- ए.आई./एम.एल. अनुसंधान में उपयोग के लिए डेटा सहित भाषायी संसाधनों के सृजन के लिए राज्य सरकार की भूमिका में वृद्धि।
- भारत सरकार की सभी सेवाओं, सूचनाओं (राज्य/केंद्र) को स्थानीय भाषाओं में बनाना।
- अनिवार्य रूप से भारत सरकार की सभी वेबसाइटें सभी 22 भारतीय भाषाओं में होनी चाहिएँ।
- स्थानीय भाषा समर्थन के संबंध में एक नीति होनी चाहिए और डिफॉल्ट रूप से भारत सरकार की सभी/कोई भी वेबसाइट स्थानीय भाषा में होनी चाहिए।
- यदि 22 भाषाओं में नहीं तो कम-से-कम 'त्रिभाषा सूत्र' नीति को अपनाया जा सकता है, अर्थात अंग्रेजी, हिंदी और स्थानीय भाषा।
- अनुवाद/स्थानीयकरण की गतिविधि को चलाने के लिए कुछ प्रतिशत विभागों के आई.टी. बजट को स्थानीयकरण के लिए निर्धारित किया जा सकता है।
- सी.ई.आर.टी.-इन द्वारा पैनल में शामिल सूचना सुरक्षा ऑडिटिंग संगठनों की तर्ज पर पैनल में शामिल अनुवाद एजेंसियों को रखा जा सकता है।

□

maheshdkulkarni@gmail.com

अहंकार को शून्य करने में प्रार्थना मदद दे सकती है।

—विनोबा भावे

❖ ❖ ❖

प्रेम असीम विश्वास है, असीम धैर्य है और असीम बल है।

—प्रेमचंद

भारतीय ज्ञान परंपरा : वैश्विक संदर्भ और हिंदी

—प्रो. सरोज शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित भारतीय संस्कृति जीवन जीने की कला है। इसमें वह सब सम्मिलित है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें उत्तराधिकार में मिला है। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के पक्ष हैं। इसके साथ संस्कृति में रीति-रिवाज, परंपराएँ, विभिन्न पर्व, जीवन की विविध शैलियाँ और अनेक पक्ष भी सम्मिलित हैं। इसमें सभी भौतिक और अभौतिक चीजें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान की जाती हैं। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। आज हम जिन प्रथाओं, विश्वासों और रीति-रिवाजों का पालन करते हैं, वह सब हजारों साल से चली आ रही हमारी 'भारतीय ज्ञान परंपरा' पर ही आधारित हैं। भारतीय संस्कृति का मूल भारतीय ज्ञान परंपरा ही रही है तथा भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार वेद हैं। स्मृतिकार ने भी कहा है, 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' तथा 'वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।'

भारतीय संस्कृति में ज्ञान को उच्च स्थान दिया गया है और कहा गया है कि-'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' अर्थात् इहलोक में जिस प्रकार ज्ञान पवित्रता का कारण है, वैसा अन्य कोई नहीं है। ज्ञान लौकिक एवं अलौकिक-दो प्रकार का होता है। लौकिक ज्ञान से जीवन का निर्वाह होता है, परंतु मोक्ष सिद्धि नहीं होती है। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'—यहाँ उक्त विद्या अलौकिक ज्ञान है। लौकिक ज्ञान को 'अपरा विद्या' कहते हैं। मोक्ष की उपायभूता विद्या 'परा विद्या' कहलाती है—'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते'। भारतभूमि पर उद्भूत विद्याओं में जो विद्यमान हैं, वे सभी साक्षात् परंपरा से अथवा वेद से समुद्भूत हैं। उनका कोई भी रचयिता अथवा कर्ता नहीं है। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण के कारण पेड़ से फल भूमि पर नीचे ही गिरता है। इस नियम को पहली बार देखनेवाला व्यक्ति केवल दृष्टा ही था, इस नियम का सृष्टा नहीं। इसी प्रकार जगत् के सृष्टि, प्रलय आदि विषयक अनेक प्रकार के ज्ञान हमारे ऋषियों, मुनियों ने द्रष्टा के रूप में प्राप्त किए हैं। उसी ज्ञान को 'वेद' कहते हैं, वेदोक्त ज्ञान नित्य है। अतः वेद नित्य हैं। इस प्रकार महर्षि व्यास का वचन है—

"युगान्तेऽर्हिमान् वेदान् सेतिहसान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥"

भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार विद्याएँ

---

* राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, उत्तर प्रदेश।

बहुत हैं। उनके अनेक नाम हैं। जैसे—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छंद, ज्योतिष, कल्प, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, अर्थवेद (अर्थशास्त्र), पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत, इतिहास, स्मृति, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्यशास्त्र, अवसरोक्ति (शास्त्रीय संकेत आदि), बौद्ध दर्शन, जैनदर्शन, चार्वाक दर्शन, तंत्र, तथा चौंसठ कलाएँ इत्यादि प्रमुख हैं। इस विद्या के अट्ठारह स्थान भी सुप्रसिद्ध हैं। चार वेद हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। छ:वेदांग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद, ज्योतिष। चार उपांग हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र। चार उपवेद हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, अर्थवेद (अर्थशास्त्र)। यहाँ लिखित विद्याओं के उप-विभाग भी हैं। यहाँ उप-पुराणों का अंतर्भाव पुराण में हो गया है। वैशेषिक शास्त्र का न्याय में, वेदांत शास्त्र का मीमांसा में, महाभारत और रामायण, सांख्य, पातञ्जल, पाशुपत, वैष्णव आदि का धर्मशास्त्र में। सब मिलकर चौदह विद्याएँ हैं। ये भी चार उप-वेदों के साथ अठारह विद्या होती हैं। इस ज्ञान की धारा के बल पर भारत विश्वगुरु रहा है और पुन: आज इस ज्ञान प्रवाह से विश्व में एक 'ज्ञानशक्ति' के रूप में उभर रहा है।

भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में विश्व में मनुष्य बहुत ही अशांत है। यही वजह है कि वर्तमान में हिंसा, आतंकवाद, देशों का आपसी टकराव और अशांति का वातावरण बढ़ा है। ऐसे समय में विश्व को भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित भारतीय संस्कृति के वैश्विक मूल्यों को अपनाने की अत्यधिक आवश्यकता है। संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में जोड़नेवाली भारतीय ज्ञान परंपरा में माना गया है कि—

"अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु, वसुधैवकुटुम्बकम्॥"

अर्थात् भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार, यह उसका है, यह मेरा है, इस तरह की दृष्टि संकुचित मानी गई है। और कहा गया है कि उदार चरित रखनेवाले लोगों के लिए तो यह संपूर्ण धरती एक परिवार ही है। भारतीय संस्कृति में न केवल भारतीयों के लिए, अपितु पृथ्वी पर रहनेवाले समस्त प्राणियों के हितसाधन हेतु मंगल कामना की गई है—

"ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः।सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥"

अर्थात् विश्व के सभी लोग सुखी रहें, निरोगी रहें, सभी का जीवन मंगलमय रहे और कोई भी दु:ख का भागी न बने। विश्व में शांति की स्थापना हो।

भारत देश विभिन्न विचारों और विचारधाराओं का संगम है। ज्ञान, भक्ति कर्मों और भावनाओं से समृद्ध यह एक बहुत विशाल और संस्कृतिपरक देश है। यह भारतीय संस्कृति की व्यापक सोच ही है कि जहाँ कहीं से भी ज्ञान को ग्रहण किया जा सकता है, उसे आत्मसात् कर भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपनी परंपरा में जोड़ लिया जाता है। इस विषय में ऋग्वैदिक ऋषि कहता है—'आ नो भद्रा: क्रतवों यंतु विश्वत:' अर्थात् विश्व के सभी कल्याणकारी विचार हमारी तरफ आएँ।

हमारी संस्कृति और सनातन परंपरा अपने प्रचार-प्रसार के लिए कभी भी आक्रमण, युद्ध या कोई अनुचित साधनों में विश्वास नहीं करती है। विश्व-शांति का संदेश हमारी ज्ञान परंपरा का मूल रहा है। इस ज्ञान परंपरा के अंतर्गत समानता, करुणा और प्रबुद्धता का संदेश सदैव ही समाहित रहा है। यहीं कारण है कि भारतीय संस्कृति और ज्ञान की यह अविरल धारा दीर्घायु और निरंतरता लिये हुए है। अनेकता में एकता, विश्व-कल्याण की कामना, सहनशीलता, अध्यात्म और भौतिकवाद का मिलन हमारी ज्ञानपरंपरा को वैश्विक परिदृश्य प्रदान करता है। वैश्वीकरण के

उदय के साथ विभिन्न देशों की परंपराओं और रीति-रिवाजों का प्रभाव कम हो रहा है, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा की एक समृद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है और हमारी संस्कृति का गौरव पूरे विश्व में आज भी प्रासंगिक और प्रसिद्ध है। हालाँकि आधुनिक समय में कुछ क्षेत्रों में पाश्चात्य देशों के अनुकरण की परिपाटी भी रही है, परंतु भारतीय संस्कृति ने भी विश्व स्तर पर अपना विस्तृत प्रभाव फैलाया है। भारतीय संस्कृति अपनी विरासत और संसाधनों के मामले में काफी समृद्ध रही है। भारत देशभक्ति और एकता की एक इकाई में बँधा हुआ विभिन्न धर्म और संप्रदाय, भाषा और बोलियाँ, विभिन्न परम्पराएँ और रीति-रिवाज, संगीत तथा कला और वास्तुकला आदि का एक सुंदर गुलदस्ता है। यह भारतीय संस्कृति ही है, जिसने अपनी विशेषताओं के बल पर सदैव ही विदेशियों को भारत में रहने और यहाँ की संस्कृति की शाश्वत् सुगंध में घुलने-मिलने के लिए आकर्षित किया है।

भारत में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी)-2020 ने प्राचीन और शाश्वत् भारतीय ज्ञान की समृद्ध विरासत को इसके निर्माण में मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में वर्णित किया है। यह नीति भारतीय शिक्षा प्रणाली की चारित्रिक विशेषता पर ध्यान केंद्रित करती है। अर्थात् पूर्ण बोध और स्वयं की मुक्ति, जो स्कूली शिक्षा से परे है। एनईपी-2020, पैरा 4.27, भारतीय ज्ञान परंपरा के अर्थ की विस्तृत व्याख्या करता है, जिसमे प्राचीन भारत के ज्ञान का आधुनिक भारत में इसके योगदान और इसकी सफलताओं, चुनौतियों और शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के संबंध में भविष्य के भारत की आकांक्षाओं की स्पष्ट समझ शामिल है।

भारत में एनईपी-2020 के आलोक में वर्तमान शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण को विकसित करने तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा को देश-विदेश तक पहुँचाने, वैदिक शिक्षा, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य, दर्शन तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को पुनर्जीवित करने के लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एन.आई.ओ.एस.) द्वारा एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए 'भारतीय ज्ञान परंपरा' पाठ्यक्रमों की शुरुआत की गई है। इन पाठ्यक्रमों में माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वेद अध्ययन, भारतीय दर्शन, संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य आदि विषयों का निर्माण किया जा चुका है। इनके अत्यधिक प्रचार-प्रसार हेतु इन विषयों का हिंदी और अंग्रेजी भाषा में भी अनुवाद किया जा चुका है। विदेशों तक भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु एन.आई.ओ.एस. द्वारा इन विषयों का पाँच विदेशी भाषाओं—मंदारिन, इंडोनेशियाई, सिंहली, बर्मीज और नेपाली भाषा में भी अनुवाद किया जा रहा है। साथ ही एन.आई.ओ.एस. द्वारा प्रारंभिक स्तर पर 'मुक्त बेसिक शिक्षा कार्यक्रम' के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा के 15 विषयों को तीन माध्यमों (हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी) में उपलब्ध कराया गया है। इसी क्रम में सात नए पाठ्यक्रमों जैसे आयुर्वेद, योग, वेद पाठ, न्याय शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, अनुप्रयुक्त संस्कृत व्याकरण और नाट्यकला का विकास दोनों ही माध्यमों (हिंदी और अंग्रेजी) में किया जा रहा है। भविष्य में इनका अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी किए जाने की योजना है। इस प्रकार से एन.आई.ओ.एस. विश्व स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभा रहा है।

हिंदी आज धीरे-धीरे विश्व भाषा हो रही है। यह यूनेस्को की सात भाषाओं में से एक भाषा है। विश्व के लगभग दो दर्जन से अधिक देशों में हिंदी पढ़ी, लिखी, बोली और समझी जाती है। भूटान, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, मालदीव, म्याँमार, इंडोनेशिया, सिंगापूर, थाईलैंड, चीन, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, मॉरिशस, यमन, युगांडा, त्रिनाड एवं

टोबॉगो, इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा, मध्य एशिया के अनेक देशों में हिंदी बोलने और समझनेवालों की बहुत बड़ी संख्या है। भारत की विकसित होती अर्थव्यवस्था, वैश्विक व्यापार और राजनीति में भारत की बढ़ती भागीदारी ने हिंदी भाषा को भी वैश्विक स्तर पर काफी आगे बढ़ाया है। अगर हम देखें तो आज विश्व के 150 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन करवाया जाता है तथा कई विश्वविद्यालयों में 'हिंदी चेयर' स्थापित हैं। हिंदी भाषा के मनोरंजन कार्यक्रम-चलचित्र, गाने आदि विश्व स्तर पर अत्यधिक लोकप्रिय हैं। सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है।

ऐसे परिदृश्य में आज अगर विदेशों में हम 'भारतीय ज्ञान परंपरा'का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं, तो हिंदी भाषा के बिना यह असंभव प्रतीत होता है। चूँकि भाषा अपने प्रदेश की संस्कृति की वाहक होती है, इसलिए हिंदी भाषा के माध्यम से हम भारतीय संस्कृति और मूल्यों का भी विदेशों में प्रसार कर सकते हैं। आज हिंदी भाषा के प्रति विश्व की रुचि के अनेक कारण हैं। विदेशी नागरिक भारत में काम करना चाहते हैं, अध्ययन करना चाहते हैं, नए कौशल सीखना चाहते हैं या फिर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यहाँ व्यापार करना चाहती हैं, तो हिंदी जानना उनके लिए आवश्यक है। यदि वे हिंदी जानते हैं तो उनके लिए किसी अन्य भाषा की भाँति एक पूर्णतया नई दुनिया के द्वार खुल जाते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य से समृद्ध भारत को देखने की उत्कंठा से बहुत बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक भारत आते हैं। आज विदेशी नागरिक भारतीय समाज और संस्कृति का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं। भारतीय रीति-रिवाजों और शांतिपूर्ण जीवन शैली को जानना चाहते हैं। परंतु हिंदी सीखे बगैर भारत की धड़कन को पूर्णतया समझना संभव नहीं है। विदेशों में भारतीय संस्कृति को और अधिक लोकप्रिय बनाने के प्रयोजन से हिंदी का पठन-पाठन अत्यंत आवश्यक है। कोई भाषा सीखना केवल शब्दों को जानना, व्याकरणिक अभ्यास करना मात्र नहीं है, अपितु भाषा में सोचने और व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करना भी है। अतः भाषा के रूप में हिंदी सीखनेवाले शिक्षार्थी को हिंदी भाषा का वास्तविक स्थितियों में प्रयोग करना आना चाहिए।

विदेशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों को भारतीय संस्कृति से जोड़ने हेतु उन्हें हिंदी का आरंभिक ज्ञान और हिंदी में व्यवहार करने की दृष्टि देना आवश्यक है। हिंदी भाषा के माध्यम से न केवल देश में रह रहे लोग, बल्कि मुख्य तौर पर प्रवासी भारतीय परिवारों के साथ-साथ विदेशियों में भी पारंपरिक भारतीय सांस्कृतिक विरासत, मानव-मूल्यों, जैसे—सेवा, अहिंसा, स्वच्छता, सत्य, निष्काम कर्म, शांति, त्याग, सहिष्णुता, नैतिक आचरण, बुजुर्गों का सम्मान, परोपकार, शिष्टाचार, धैर्य, क्षमा, सहानुभूति, करुणा, न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का भी प्रसार संभव है। हिंदी भाषा के माध्यम से हम भारतीय संस्कृति, विरासत, दर्शन तथा प्राचीन ज्ञान को आधुनिक संदर्भों के साथ विदेशों में प्रचारित कर सकते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्य के साथ प्रवासी भारतीयों में भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव बढ़ाने तथा हिंदी भाषा सीखने के लिए एन.आई.ओ.एस. द्वारा एक नई पहल करते हुए 'आरंभिका' नामक एक पाठ्यक्रम का निर्माण भी किया जा रहा है।

इस प्रकार से हम 'भारतीय ज्ञान परंपरा' से विश्व को परिचित करवाकर न केवल विश्व शांति में योगदान दे सकतें हैं, बल्कि भारत को 'ज्ञान-शक्ति' का आधार देते हुए 21वीं सदी की विश्व 'महाशक्ति' बनाने के इस यज्ञ में आहुति भी दे सकते हैं।

□

cm@nios.ac.in

भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी

—प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

ज्ञान आत्म तत्त्व का अंतर्निहित स्वभाव है जिसकी प्रकृति जानना है। यह जानना सत्य और असत्य दोनों का होता है। भारतीय चिंतन में असत्य का ज्ञान माया के भ्रमात्मक, मिथ्या और असत्य के प्रभाव से युक्त होता है। इसके विपरीत, परम और उच्च ज्ञान जिसे शुद्ध और पूर्ण ज्ञान कहते हैं, अनुभवात्मक, समाधिजन्य और अध्यात्म से प्राप्त होता है। यह तप, इंद्रिय संयम और उपाधि रहित बुद्धि से प्राप्त किया जाता है। यही निर्विकल्प ज्ञान भी है।

ज्ञान हमारे मन, विचारों, भावनाओं और संकल्पों को पवित्र करता है। गीता में कहा गया है, ''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिहि विद्यते।'' (4/38) अर्थात् ''ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला इस लोक में दूसरा कोई नहीं है।'' यह ज्ञान का सात्त्विक पक्ष है।

ज्ञान का दूसरा पक्ष भी है। ज्ञान हमारे विकास का आधार है। आज के वैश्वीकरण के युग में ज्ञान एक शस्त्र है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रघुनाथ माशेलकर का कहना है कि, ''ज्ञान नामक नए ताप नाभिकीय हथियारों से ज्ञान बाजार में भविष्य का युद्ध लड़ा जाएगा।''

भारतीय ज्ञान परंपरा शताब्दियों से समृद्ध रही है। मानव सभ्यता के विकास का इतिहास यह बतलाता है कि तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, सोमपुरा, बल्लभी, ओदंतपुरी, उदयगिरि आदि विश्व इतिहास में प्राचीनतम् विश्वविद्यालय रहे हैं। अनेक विदेशी यात्रियों, जिन्होंने शताब्दियों पूर्व समय-समय पर भारत की यात्राएँ की हैं, ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारत में ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध परंपरा रही है। कई विदेशी यात्रियों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन भी किया था। ह्वेनसांग (चीन) ने नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म के साथ ही चिकित्सा शास्त्र, दर्शन शास्त्र, तर्क शास्त्र, गणित, ज्योतिर्विज्ञान और व्याकरण का अध्ययन किया। इसी प्रकार अलबरुनी ने भारत में संस्कृत, विज्ञान, साहित्य, दर्शन और धर्म का अध्ययन किया (अमर्त्य सेन : भारतीय अर्थतंत्र, इतिहास और संस्कृति, पृष्ठ : 139 व 160)

भारत में ज्ञान परंपरा का प्रारंभ वेदों से माना जाता है। वेद को 'शब्द ब्रह्म' माना गया है। (अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्व यदक्षिरम्) वेद ब्रह्मांडीय ज्ञान का मूल स्रोत है। 'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'विद्' धातु से हुई है, जिसका एक अर्थ 'ज्ञान' भी है, अर्थात् वेद ज्ञान हैं। वेदों में निहित ज्ञान को आगे बढ़ाने का कार्य श्रुति परंपरा से किया गया। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने वेदों की

* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, शिक्षा मंत्रालय, भारत के अध्यक्ष।

प्रकृति आदि को देखते हुए अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद, वैशंपायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमंतु को अथर्ववेद को संरक्षित रखने और उसे आगे बढ़ाने का दायित्व दिया। इन चारों शिष्यों ने अपने-अपने शिष्यों के माध्यम से वेद ज्ञान को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इसी क्रम में श्रुति परंपरा विकसित हुई तथा भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास हुआ।

कालांतर में वेदों की अनेक शाखाएँ बनीं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में वेदों के ज्ञान का विस्तार है। ब्राह्मण ग्रंथों में वेदों की गद्य में व्याख्या है। आरण्यक ग्रंथों में वेद के उन भागों की, जिनमें यज्ञ, अनुष्ठान आदि का उल्लेख है, के आध्यात्मिक पक्ष को समझाया गया है तथा उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि के संबंध में दार्शनिक और ज्ञान से पूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

भारतीय चिंतन परंपरा सदैव वैज्ञानिक सोच पर आधारित रही है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए भावात्मक के साथ ज्ञानयुक्त और तार्किक चिंतन भी किया है, यही वैज्ञानिक सोच है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का कथन है कि, ''ऋग्वेद के सूक्त इस अंश में दार्शनिक हैं कि वे संसार के रहस्य की व्याख्या किसी अति मानवीय अंतर्दृष्टि अथवा असाधारण दैवीय प्रेरणा द्वारा नहीं, किंतु स्वतंत्र तर्क द्वारा करने का प्रयत्न है।'' (भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ. सं. 55)

उपनिषदों का भी केंद्रीय विषय 'सत्य की खोज' रहा है। वृहदारण्य उपनिषद् में कहा गया है, ''असतो मा सद्गमय। तमसो का ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।'' अर्थात् असत से सत की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।'' उपनिषदों में व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य क्या है? आदर्श क्या है? मुक्ति क्या है? जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म आदि पर विचार है।

ज्ञान परंपरा के प्रवाह की व्यापकता पुराणों, महाकाव्यों, धर्मग्रंथों, स्मृतियों और दार्शनिक चिंतन में व्याप्त है। इससे विशाल भारतीय बौद्धिक संपदा आज भी प्रभावी है। इस विचार संपदा में अध्यात्म के अतिरिक्त साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, भूविज्ञान, ज्योतिष, स्थापत्य, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद आदि भी सम्मिलित हैं।

ज्ञान मनुष्य में सोचने, विचार करने और जगत् के साथ अपने संबंधों को बनाने की दृष्टि विकसित करता है। यही दृष्टि संस्कृतियों और सभ्यताओं के विकास का आधार बनती है। प्रसिद्ध चिंतक धर्मपाल का कहना है कि, 'प्रत्येक सभ्यता की अपनी ज्ञान परंपरा, चित्त परंपरा होती है।' (धर्मपाल : समग्र लेखन, भाग-एक, पृ.सं. 109) विश्व में विभिन्न सभ्यताओं के बीच कई समानताओं के बावजूद जो कई विशिष्टिताएँ पाई जाती हैं तथा जो उन सभ्यताओं की विशेषताएँ कहलाती हैं, ज्ञान परंपरा का ही परिणाम होती हैं। उदाहरण के लिए, जीव और जगत् को तथा समूचे ब्रह्मांड को देखने की हमारी दृष्टि अन्य सभ्यताओं से भिन्न है। इसका मूल कारण हमारी ज्ञान परंपरा है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल साहित्य या दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, वह वास्तुशास्त्र, मूर्तिकला, शैलचित्र, चित्रकला, संगीत, नृत्य, वाद्ययंत्रों के रूप में हमें प्राप्त हुई है। सभी कलाएँ अपनी प्राचीनता और निरंतरता का अद्भुत उदाहरण हैं।

जो ज्ञान परंपरा प्राचीन काल से आज तक अनवरत गति से प्रवहमान है, हिंदी उसकी स्वाभाविक उत्तराधिकारी है। वेदों और उपनिषदों में व्यक्त ज्ञान और विचार, पुराणों की कथाएँ, बौद्ध दर्शन का सम्यक् जीवन का विचार, जैन धर्म में व्यक्त अहिंसा का दर्शन तथा आत्मसंयम का

पाठ षड्दर्शन (सांख्य वेदांत, पूर्व मीमांसा, न्याय, वैशेषिक और योग) का संपूर्ण दार्शनिक चिंतन, रामायण का पावन संदेश और आदर्श, महाभारत में न्याय के लिए संघर्ष, गीता का कर्मयोग भारतीय ज्ञान परंपरा का भाग है, जो सहज ही हिंदी में व्यक्त होता रहा है।

हिंदी ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध भी किया है और आगे भी बढ़ाया है। जायसी और कबीर से लेकर वर्तमान समय तक, भारतीय ज्ञान, मूल्य, संस्कृति और संस्कारों का संवर्धन हिंदी के माध्यम से हुआ है। तुलसीदास की रामायण या सूरदास के पद, मीरा के भक्ति से पूर्ण गीत हों या रहीम के दोहे, सभी ज्ञान से परिपूर्ण हैं। कबीर की प्रत्येक साखी ज्ञानपूर्ण है।

तुलसीदास कृत रामायण ने समूचे देश के अंदर भक्ति, अध्यात्म और ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित की है। वर्तमान में हिंदी की सभी विधाओं में ज्ञानयुक्त लेखन हो रहा है। वस्तुतः जब लेखन ज्ञान रहित होता है, तब वह स्वतः सूख जाता है।

हिंदी के मुहावरे/कहावतें भी ज्ञानवर्धक हैं। उदाहरण के लिए, कुछ कहावतों को लीजिए, ''कुआँ, कुआँ से नहीं मिलता; नदी, नदी से मिल जाती है।'' कहावत में ज्ञान की बात समाई हुई है, अर्थ गहरा है। जो अपने तक सीमित है, जिसमें प्रवाह नहीं है, गति नहीं है, स्वयं केंद्रित है, स्वार्थी है, वह अपने तक ही सीमित रहता है। ऐसे लोग दूसरों से मिल-जुल नहीं पाते। इसके विपरीत जो गतिशील हैं, जिसकी सोच व्यापक है, उदार हैं, वे समाज के अन्य लोगों से मिलते-जुलते हैं तथा समाज से शक्ति लेते हैं और समाज को शक्ति देते हैं। अतः प्रवहमान रहिए, सीमित मत रहिए। एक कहावत है 'नदी के दोनों किनारे आपस में नहीं मिलते। स्पष्ट है कि जिनकी जीवन दृष्टि पृथक् है, सोच अलग है, संस्कार और संस्कृति अलग है, वे समान जीवन दृष्टि नहीं अपना सकते। एक और कहावत है ''एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं'', जाहिर है, दो अभिरुचियोंवाले लोग एक साथ नहीं रह सकते। ऐसी अनेक कहावतें/मुहावरे हैं, जो ज्ञानवर्धक हैं।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी की बहुत बड़ी भूमिका है। हिंदी ज्ञान का वाहक रही है। उसका साहित्य विशाल है। वह विश्व की प्रथम पाँच भाषाओं में सम्मिलित है। हिंदी विश्व में लगभग पंद्रह देशों में बोली जाती है तथा उर्दू और हिंदुस्तानी सहित लगभग एक अरब लोग हिंदी बोलते हैं। विश्व में हिंदी का इतना व्यापक फलक होने के बावजूद हिंदी के संबंध में एक प्रश्न विचारणीय है कि क्या हिंदी ज्ञान-विज्ञान के सृजन की भाषा है? यद्यपि यह प्रश्न हिंदी भाषियों और विश्व में हिंदी के समर्थकों को असहज लग सकता है, पर हिंदी भाषा को लेकर जो स्थिति अकादमिक क्षेत्र में निर्मित हुई है, उसे देखते हुए इस पर विचार किया जाना चाहिए। हिंदी में कई विधाओं में लिखे गए विपुल साहित्य और व्यवहार को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिंदी ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। पर किसी भाषा को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिए सर्वाधिक महत्त्व की बात यह है कि क्या हिंदी में हम ज्ञान-विज्ञान का सृजन कर रहे हैं? क्या हिंदी भाषा में कुछ अपवादों को छोड़कर उच्च स्तरीय शोध हो रहा है, जिसे हम राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर का कह सकें? इसके साथ ही, क्या हिंदी भाषा में ऐसा मौलिक लेखन हो रहा है, जिसे संदर्भ के रूप में उद्धृत किया जा सके अथवा जिसका उपयोग शोध जिज्ञासा के समाधान के लिए किया जा सके?

इस दृष्टि से हिंदी की स्थिति गौरवशाली नहीं है। हिंदी संप्रेषण और संचार की भाषा है। वह किसी स्तर तक शोध संगोष्ठियों में प्रयुक्त भी होने लगी है, पर यथार्थ यह है कि हिंदी भाषा के ज्ञान-

विज्ञान की भाषा होने पर संदेह है। हिंदी भाषा में उच्च स्तरीय शोध नहीं हो रहा है। भारत के प्रमुख शिक्षण संस्थान, चिकित्सा, तकनीकी, विधि प्रबंध संस्थान एवं श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में शोध कार्य अंग्रेजी में हो रहा है। शोध ज्ञान के सृजन का स्रोत है। शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करनेवाली अथवा अर्जित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने तक सीमित नहीं है। उसका कार्य नए ज्ञान का सृजन करना भी है। इस दृष्टि से हिंदी भाषा की स्थिति क्या है, यह हमारे लिए सोचने की बात है।

आज विश्व में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, जापानी, रूसी, यहाँ तक कि हिब्रू भाषा तक में उच्च स्तरीय शोध हो रहे हैं। ये भाषाएँ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी ज्ञान के सृजन की भाषाएँ बनी हुई हैं, पर हिंदी के साथ ऐसा नहीं है। ऐसा लगता है कि हमने इस दिशा में हिंदी के साथ छलावा किया है।

हमें एक और प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। हिंदी में आज संदर्भ ग्रंथों का अभाव है। ऐसा नहीं है कि संदर्भ ग्रंथ हैं ही नहीं, पर हाँ, संदर्भ ग्रंथों की संख्या बहुत न्यून है। विज्ञान, तकनीक, विधि, चिकित्सा, प्रबंध आदि विषयों में हिंदी भाषा के संदर्भ ग्रंथ नहीं हैं, वस्तुतः जब तक शिक्षाशास्त्रियों, विचारकों, वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की चिंतन प्रक्रिया हिंदी भाषा में मौलिक लेखन का निश्चय नहीं कर लेगी, तब तक मौलिक लेखन कार्य हिंदी भाषा में नहीं होगा। अकादमिक सेमिनारों और संगोष्ठियों में भी यही वातावरण देखने को मिलता है। मंच से हम अपना शोध आलेख अंग्रेजी में प्रस्तुत करते हैं, पर मंच के नीचे हम आपस में बातचीत हिंदी भाषा अथवा अपनी देशज भाषाओं में करते हैं। आप इसे मानसिकता कहें, भाषाई गुलामी का मनोविज्ञान कहें या हीन मानसिक ग्रंथि कहें, स्थिति यही है। देश में तथाकथित ऐसा अकादमिक संभ्रांत वर्ग है, जिसका दोहरा व्यवहार हिंदी भाषा को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनने में सबसे बड़ा बाधक है।

समाज विज्ञान, कला, तकनीक, चिकित्सा, विधि, प्रबंध आदि के क्षेत्र में मौलिक पुस्तकों का अभाव है। अतः उच्च स्तरीय लेखन और शोध के लिए आवश्यक होता है कि अन्य भाषाओं की मौलिक और अपने-अपने विषय की श्रेष्ठ पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया जाए। ज्ञान की दृष्टि से और उच्च स्तरीय अध्ययन की दृष्टि से यह उचित है। विश्व की सभी भाषाओं में जो ज्ञान उपलब्ध है, वह हिंदी भाषा में उपलब्ध हो, इससे अच्छा और क्या हो सकता है? पर यदि हमने स्वयं अपने ज्ञान और मौलिक लेखन को हिंदी में लिखने का क्रम प्रारंभ नहीं किया, तब इसका परिणाम यह होगा कि दीर्घकाल में हिंदी केवल अनुवाद की भाषा बनकर रह जाएगी। मौलिक पुस्तकें हिंदी में केवल अनूदित ही मिलेंगी। हम स्वयं अपनी भाषा में ज्ञान अर्जित न करें तथा अन्य भाषाओं के अनूदित ज्ञान को पढ़ते रहें, यह प्रशंसनीय तो नहीं होगा। हमें हिंदी भाषा में ज्ञान का सृजन करना होगा।

ज्ञान को प्रत्येक युग में प्रतिष्ठा और सम्मान मिला है। ज्ञान के कारण ही हमारा अस्तित्व है। अतः हिंदी को ज्ञान के सृजन की भाषा बनाना आवश्यक है।

□

chairman@nbtindia.gov.in

राष्ट्रीयता का भाषा और साहित्य के साथ बहुत ही घनिष्ट और गहरा संबंध है।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

परंपरागत ज्ञान को कृत्रिम मेधा और संचार क्रांति की चुनौतियाँ

—अच्युतानंद मिश्र

भारत में परंपरागत ज्ञानधारा के दो मुख्य स्रोत बताए गए हैं—पहला-'लोक' दूसरा—'शास्त्र'। लोक के परंपरागत ज्ञान की समृद्धि विविधतापूर्ण और विशाल है। भारतीय लोकमानस में अनादिकाल से पूर्वजों द्वारा अर्जित और संचित व्यावहारिक ज्ञान की यह ऊर्जा मानवीय मेधा के परिश्रम, संकल्प, त्याग और तपस्या से एकत्रित ऐसा ज्ञान है, जिसमें लोक भाषाएँ, लोक संस्कृतियाँ, लोक कलाएँ, लोक संगीत से लोकनाट्य में निरंतर प्रयोग का ज्ञान मिलता रहा है। लोकसंचार की इन्हीं शक्तियों द्वारा इसे समाज तक पहुँचाया जाता रहा है। इसका वास्तविक उद्देश्य समाज में जीवन-मूल्यों का संदेश तथा लोकमंगल की स्थापना का होता है। इस लोक में व्यक्ति नहीं, समष्टि प्रमुख है। इसमें वाचिक परंपरा और समग्रता का बोध है। इन परंपराओं और अनुशासनों से ही विकसित होकर यह ज्ञान लोकोत्तर बन जाता है। लोकसंचार परंपरा का लक्ष्य केवल सूचनाएँ उपलब्ध कराना नहीं होता, बल्कि इच्छित सामाजिक परिवर्तन होता है। प्रसिद्ध चिंतक और विद्वान् पंडित विद्यानिवास मिश्र मानते हैं कि—'शास्त्र की पहचान भी लोक से ही होती है और शास्त्र भी लोक की ही देन है और वाचिक परंपरा इस लोक को स्पंदनहीन नहीं होने देती।' भारतीय ज्ञान परंपरा के एक और विद्वान् चिंतक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक की परिभाषा करते हुए लिखा है—'कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए भू-भाग पर पनपता हुआ मानव समाज ही भारतीय लोक है। भारतीय लोक हमारे सुदीर्घ इतिहास का अमृतफल है जो कुछ हमने सोचा, किया और सहा, उसका प्रकट रूप हमारा लोकजीवन है। इसलिए यह लोक राष्ट्र की अमूल्य निधि है। हमारे इतिहास में जो भी सुंदर और तेजस्वी तत्त्व हैं, वह लोक में कहीं-न-कहीं सुरक्षित हैं। इसलिए जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, पर्व, नृत्य, संगीत, कथावार्ताएँ, आचार-विचार सभी कुछ भारतीय लोक में ओत-प्रोत हैं।' भारतीय लोक पश्चिमी जगत् का 'फोक' नहीं है, जो अपढ़, पिछड़ों और अशिक्षितों के ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेजी लेखकों ने भारतीय लोक को भी इसी रूप में वर्णित किया है। इसी शिक्षा के कारण अंग्रेजी पढ़े-लिखे शिक्षित भारतीयों को भी अपनी परंपरा और ज्ञान का गर्व न होकर हीनता का बोध होता रहा है। भारतीय लोक निरंतरता का

---

* माखन लाल चतुर्वेदी पत्रकारिता एवं जनसंचार पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल के पूर्व कुलपति।

प्रतिमान और जीवन का अंग है। उसकी परंपरा और ज्ञान का सामर्थ्य अद्भुत है। इसमें विकसित तमाम अनुशासनों ने लोकमंगल की भावना को दृढ़ किया है। लोक संचार की विधा से ही भारत में पत्रकारिता सबसे पहले सामने आई थी।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान की पत्रकारिता, विशेषकर भाषाई पत्रकारिता पेशेवर नहीं थी। हालाँकि उसका उत्स यूरोप में पेशेवर हो चुका था, लेकिन भारत में पत्रकारिता संकल्प, संघर्ष और सेवा की प्रतीक थी। लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविंद, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, बिपिनचंद्र पाल या पंडित मदनमोहन मालवीय की पत्रकारिता को उनकी समग्रता में ही समझा जा सकता है। वे साहित्य, स्वदेशी, संस्कृति, राजनीतिक स्वाधीनता और पत्रकारिता के भी आदर्श थे। उनके जीवन के मूल्य और आदर्श भारत ही नहीं, भारत की स्वतंत्रता ही नहीं, विश्व की मानवता को मुक्ति दिलाना था। पश्चिमी मीडिया और स्वाधीनता संग्राम के दौर की भारतीय पत्रकारिता के आदर्श और मानक अलग-अलग थे। लोकतंत्र की स्थापना में हथियार की भूमिकावाली क्रांतिकारी पत्रकारिता और गांधीजी का अहिंसात्मक आंदोलन, स्वदेशी का आग्रह, जनजागरण, असहयोग और सत्याग्रह भी नैतिक आदर्शों से ओत-प्रोत थे। स्वाधीनता संग्राम के दौर की पत्रकारिता सादगी, नैतिकता, शिक्षा, स्वदेशी के संकल्पों के सहारे राजनीतिक परिवर्तन के लिए की जा रही थी। उसमें स्वाधीनता आंदोलन के सेनानियों, संपादकों, साहित्यकारों और पत्रकारों ने भाग लिया था। उन्हें किसी एक विचारधारा अथवा किसी एक संगठन या किसी एक मार्गदर्शक से बाँधकर परिभाषित नहीं किया जा सकता है, लेकिन उन्होंने भारत में अपने सपनों के लोकतंत्र की प्रयोगशाला का विचार किया था। उस दौर में महात्मा गांधी जैसे विचारक जिस तरह पश्चिमी लोकतंत्र को अस्वीकार कर रहे थे, उसी तरह उन्होंने पश्चिमी मीडिया की कार्यशैली को भी खारिज किया था। हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता का इतिहास साथ-साथ विकसित और स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास से जुड़ा हुआ है। इस इतिहास की गाथा, जितनी रोमांचक और प्रेरक है, साम्राज्यशाही के विरुद्ध संघर्ष की गाथा उतनी ही शानदार है। साहित्य हो या पत्रकारिता, राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक परिवर्तन और स्वदेशी की भावना से भी जुड़ा हुआ था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया के भूगोल, संस्कृति, सुरक्षा विज्ञान और तकनीकी का संचार माध्यमों पर भारी प्रभाव पड़ा था। भारतीय पत्रकारिता भी उन्हीं दिनों पूँजी और तकनीक के सहारे इस नए रूप में सामने आई थी। उसका परिणाम यह हुआ कि समाचारपत्र उद्योग बन गए। विचार पक्ष कमजोर होने लगा। समाचारों के माध्यम से विचार प्रसारित होने लगे और संपादक की संस्था, जो सत्य, न्याय, मानवता और राष्ट्रीयता की रक्षक मानी जाती थी, नष्ट होती जा रही थी। इसका परिणाम भारत के स्वाधीनता के 25 वर्ष बाद ही आपातकाल में देखने को मिला, जब देश की राजनीति, पत्रकारिता, बुद्धिजीवी, न्यायपालिका और लोकतंत्र सभी गुलाम बन गए थे। उसके बाद का दौर उदारीकरण या वैश्वीकरण का दौर माना जाता है। हालाँकि 1964 में सबसे पहले 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना आई थी, लेकिन उसमें भारतीय आधार 'वसुधैव कुटुंबकम्' की कल्पना नहीं थी। भारतीय कल्पना में पूरे विश्व के सुख, शांति और कल्पना की बात थी, जबकि 'ग्लोबल विलेज' में भौगोलिक निकटता और आर्थिक निर्भरता की कल्पना थी। पूँजी और उपग्रह संचार क्रांति ने मिलकर पत्रकारिता को पूरी तरह मीडिया में परिवर्तित कर दिया, जिसमें स्वतंत्रता संपादक को न देकर मालिक ने स्वयं हथिया ली

थी। पत्रकारिता मीडिया बनकर मुनाफा कमाने का एक बड़ा उद्योग बन गई। इसकी भविष्यवाणी बहुत पहले ही 1925 में बाबूराव विष्णु पराडकरजी ने तथा 1927 में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी जी और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे अन्य विद्वानों ने कर दी थी।

आज की मीडिया पूँजी, तकनीक और उपग्रह संचार क्रांति के अलावा मनोरंजन और विज्ञापन से संचालित है। आज स्थिति यह है कि औद्योगिक क्रांति के साथ मीडिया और पूरे समाज में मशीनीकरण बढ़ा है। 1945 में पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय में पहला कंप्यूटर बना था। उसके बाद इस यंत्र ने इंटरनेट की मदद से मशीन की शक्ल में मनुष्य और मनुष्य की पराधीनता को रख दिया है। मशीनीकरण का यह दौर लगातार जारी है। 1955 में 'कृत्रिम मेधा' अर्थात् 'आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस' के नाम का प्रयोग जॉन मैकार्थी ने किया था। इसका आशय है—मशीनों को बुद्धिमान बनाना, अर्थात् कृत्रिम रूप से विकसित की गई बौद्धिक क्षमता। इसकी विशेषता है, मनुष्यों की तरह सोचना, व्यवहार करना तथा तथ्यों को समझकर अपनी प्रतिक्रिया तर्कों और विचारों के आधार पर देना। यह आविष्कार अब मनुष्य की नियति और उसके भाग्य का नियामक हो गया है, इसने मनुष्य को धीरे-धीरे अपने अधीन बना लिया है। आज रोबोट घर-घर तक पहुँच गया है, जैसे एक नाम 'एलेक्सा' है। वह हमारे घर में ट्यूबलाइट जलाने और टेलीविजन चलाने का काम करता है। मशीनी मानव मनुष्य की सहायक बने, यह कल्पना तो हो सकती थी, लेकिन वह आज नियंत्रक और नियामक की भूमिका में आ गई है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने घोषित किया है कि 2025 में प्रयागराज में होनेवाले 'महाकुंभ' की सुरक्षा व्यवस्था कृत्रिम मेधा की मदद से की जाएगी। हजारों वर्ष से दुनिया के सबसे बड़े परंपरागत मानव मेले का नियंत्रण कृत्रिम मेधा द्वारा होगा। यह एक नया प्रयोग होगा। मनुष्य और मशीन के बीच संवेदना ही विभाजक रेखा है। यह संवेदना ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। सुख और दुःख, उल्लास और उदासी, प्यार और अनुराग की अनुभूति केवल मनुष्य को होती है। इन अर्थों में देखा जाए तो मशीन संवेदनाशून्य मनुष्य और मनुष्य एक संवेदनापूरित यंत्र बन गया है। प्रख्यात ललित निबंधकार डॉ. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैं— 'मनुष्य की अस्मिता की यात्रा मशीन छीन रही है। मनुष्य मूक हो रहा है और मशीन वाचाल। मशीन की भाषा शोर है, जिसमें कोई स्वर नहीं है, संगीत नहीं है, जिसका कोई अर्थ भी नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति केवल उत्पादन है। आज सोशल मीडिया अनियंत्रित और अमर्यादित होकर इसको बढ़ावा दे रही है। वह उत्पादन, जिसके सहारे कुछ खास लोग लाभान्वित होते हैं, शक्तिशाली बन जाते हैं।' महात्मा गांधी मशीन के विनाश की नहीं, लेकिन उसकी मर्यादा बाँधने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि मशीनों के उपयोग के पीछे वास्तविक कारण श्रम की बचत नहीं है, बल्कि धन का लोभ है। मशीन ने अपनी भाषा को गढ़ना आरंभ कर दिया है। वह मनुष्य की पराधीनता से मुक्त होने को आतुर लगती है। आज यह पूरी दुनिया की सबसे बड़ी चुनौती और संकट है। इस संकट के माध्यम से हमारे परंपरागत ज्ञान, लोक संचार और मानव संवेदना के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लगाने की कोशिश है। मनुष्य के पास अपार कौशल और बुद्धि का भंडार है। उसकी संवेदना, उसकी संप्रेषण शक्ति आज भी शेष है। क्या यह संभव है कि मनुष्य को संवेदनाशून्य बनाकर मशीन को संवेदना से भर दिया जाए? ऐसी दुनिया की कल्पना भी भयावह है।

□

mailachyutanandmishra@gmail.com

हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक

—प्रो. सुधीर प्रताप सिंह

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। अपनी सभ्यता के निरंतर विकास के लिए यहाँ के लोगों ने जिस ज्ञान परंपरा की निर्मिति की है, वह उनकी निजी आवश्यकता और अपने तर्कों पर आधारित है। यद्यपि विश्व के प्रत्येक देश की अपनी निजी ज्ञान परंपरा है, बावजूद इसके, भारतीय ज्ञान परंपरा अपने धार्मिक-सांस्कृतिक आग्रह के कारण विशिष्ट है। जिसके सृजन में भारतीय समाज ने हजारों वर्ष की यात्रा तय की है।

भारतीय ज्ञान परंपरा संवादमूलक रही है, जिसके प्रमाण हमें वेदों के समय से ही मिलने लगते हैं। हमारी परंपरा में इसे शास्त्रार्थ भी कहा जाता है। वैदिक युग में इन संवादों के विषय तत्त्व ज्ञान और आध्यात्मिक चिंतन हुआ करते थे। धीरे-धीरे इनमें सांसारिक विषयों के विमर्श भी जुड़ने लगे। 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोध:' विमर्श का मूल था। अर्थात् जिस विषय पर जितना अधिक वाद-विवाद होगा, उस विषय का गूढ़ पक्ष उतना ही स्पष्ट होता जाएगा। 'प्रश्नोपनिषद' इसका एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें शिष्य आचार्य से आध्यात्मिक और सांसारिक विषयों पर प्रश्न पूछते हैं, आचार्य उनका उत्तर देते हैं। भारतीय इतिहास के कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ और संवाद द्रष्टव्य हैं—याज्ञवल्क्य-गार्गी शास्त्रार्थ, अष्टावक्र-जनक शास्त्रार्थ, शिव-पार्वती संवाद, काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद, यमराज-नचिकेता संवाद, यक्ष-युधिष्ठिर संवाद, श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद, आदिशंकराचार्य-मंडन मिश्र शास्त्रार्थ, कुमारिल भट्ट-बौद्ध भिक्षु शास्त्रार्थ, मिलिंदपन्हों (मिनांडर और बौद्ध दार्शनिक नागसेन संवाद), कालिदास-विद्योत्तमा शास्त्रार्थ इत्यादि। विमर्श की यह परंपरा दार्शनिक ही नहीं, काव्यशास्त्रीय निरूपण में भी दिखाई देती है।

भारतीय ज्ञान की यह संवादधर्मी परंपरा आधुनिक युग में भी अक्षुण्ण रूप से चलती रही। महर्षि दयानंद सरस्वती ने अनेक भारतीय विद्वानों से संवाद किए। उन्हें वेदों के सच्चे ज्ञान पर पूरा भरोसा था। 1863 ई. में झूठे धर्मों का खंडन कर उन्होंने 'पाखंड खंडिनी पताका' लहराई। इनसे पूर्व राजा राममोहन राय ने ईसाई पादरियों के विरुद्ध हिंदू धर्म, ज्ञान और संस्कृति की रक्षा की। स्वामी विवेकानंद, जिन्होंने 1893 ई. में शिकागो में हुई धर्मों की संसद् (Parliament of Religions) में भाग लिया और अपनी विद्वतापूर्ण विवेचना द्वारा सबको प्रभावित किया।

---

* भारतीय भाषा केंद्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, जे.एन.यू., नई दिल्ली में प्रोफेसर (हिंदी)।

हमारे समाज में ऐसे विद्वानों की कमी नहीं है, जो पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति पर मुग्ध दिखाई देते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा विभिन्न अनुशासनों में इतनी विपुल और समृद्ध है कि अगर हम इसका गहन अध्ययन करें तो हममें स्वत: ही अपनी सभ्यता-संस्कृति के ज्ञानकोश के प्रति गौरव की भावना भर आएगी। भारत में जिस समय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मूल्य दृष्टि का सृजन हो रहा था, उस वक्त विश्व के अन्य देश क्या कर रहे थे? जब विश्व के अन्य महादेशों में अँधकार था, तब भारत विश्व को अपने ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित कर रहा था। सामवेद, यजुर्वेद, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, चरक संहिता आदि ग्रंथ अपने आप में ज्ञान का समृद्ध सागर हैं। औपनिवेशिक दौर में भारतवासियों में गौरव की भावना जगाने के लिए फिर से भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों की ओर लौटने की बात कही गई। स्वामी दयानंद सरस्वती का 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान इसका उदाहरण है। औपनिवेशिक दौर का पूरा समय भारतीय संस्कृति और उसकी ज्ञान परंपरा तथा यूरोपीय संस्कृति और उसकी ज्ञान परंपरा के संघर्ष का समय है।

भारतीय ज्ञान और संस्कृति अपने मूल में मुक्तिकामी रही है। इसमें ज्ञान और धर्म का मुख्य उद्देश्य मुक्ति प्रदान करना है। धर्म का कार्य मनुष्य को मोक्ष प्रदान करना है, तो ज्ञान का काम अपनी रोशनी से अज्ञानता के अँधियारे को दूर कर ज्ञान का दीप जलाना है। भारतीय ज्ञान शास्त्रों की यह मूल भावना रही है। जब भारतीय मनीषी यह कहते हैं—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' तो वे ज्ञान के माध्यम से अज्ञानता से मुक्ति की बात करते हैं। भारतीय धर्म ग्रंथों में 'सा विद्या या विमुक्तये' जैसे सैकड़ों सूत्र, श्लोक मिल जाएँगे, जिससे भारतीय सभ्यता-संस्कृति में ज्ञान की मुक्तिकामी प्रवृत्ति का पता चलता है। भारतीय संस्कृति के केंद्र में हमेशा से ज्ञान रहा है। इस ज्ञान का उद्देश्य मुक्ति के साथ-साथ आत्म शुद्धि भी रहा है। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति में ज्ञान शक्ति का प्रतीक था। इसलिए हमारे यहाँ 'Knowledge is Purifire' है, तो पाश्चात्य संस्कृति में 'Knowledge is Power'. जहाँ पाश्चात्य जगत् ने ज्ञान का प्रयोग भौतिकवाद, बाह्य विस्तार या साम्राज्यवाद के लिए किया, वहीं भारत में ज्ञान का प्रयोग आत्म विस्तार, आंतरिक उत्थान और नैतिक मूल्यों के सृजन के लिए किया गया। मैक्समूलर की दृष्टि में, यही वे भारतीय मूल्य हैं, जो वह पाश्चात्य जगत् को दे सकता है।

भारत में भाषा के साथ-साथ सांस्कृतिक स्तर पर भी विविधता देखने को मिलती है। भारत की विविध संस्कृतियों में ज्ञान राशि का विपुल कोष भारतीय भाषाओं में संचित है, जिसमें से अधिकांश का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं हुआ है। कृत्रिम मेधा ने न केवल हिंदी ज्ञान परंपरा में संचित ज्ञान को आम जन तक पहुँचाया है, बल्कि भारतीय संस्कृति की विविधता और उसके विस्तृत ज्ञान फलक से भी हमारा परिचय कराया है।

किसी भी भाषा का महत्त्व केवल इस बात में नहीं है कि वह कितने अधिक लोगों द्वारा बोली जा रही है, बल्कि इस बात में है कि उस भाषा की ज्ञान संपदा कितनी समृद्ध है? भाषिक समाज अपनी ज्ञान परंपरा से किस हद तक जुड़ा हुआ है? हमारे लिए यह हर्ष की बात है कि कृत्रिम मेधा स्वाधीनता के बाद की उस रिक्तता को भरने का पुरजोर प्रयास कर रही है, जिसे बहुत पहले भर जाना चाहिए था। कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा के संबंध और उसके महत्त्व पर चर्चा करने से पहले कृत्रिम मेधा पर विचार करना समीचीन होगा।

कृत्रिम मेधा को अंग्रेजी में 'Artificial Inteligence' कहा जाता है। कृत्रिम मेधा अथवा

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कंप्यूटर विज्ञान की वह शाखा है, जो निरंतर ऐसी मशीन को विकसित कर रही है, जो इंसान की तरह सोच और कार्य कर सके। कृत्रिम मेधा का उद्देश्य एक ऐसा कृत्रिम संयंत्र तैयार करना रहा है, जो मनुष्य के समान ही बुद्धिमान हो और उसकी तरह ही देखने-समझने और सीखने की क्षमता रखता हो। कुल मिलाकर कृत्रिम मेधा मानव बुद्धि की प्रतिकृति है।

"कृत्रिम मेधा (A.I.) शब्द की शुरुआत 1950 के दशक के आरंभ में हुई थी, लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी और रोबोटिक्स में हाल की प्रगति से सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के संगठनों में ए.आई. (कृत्रिम बुद्धि) के विकास और इस्तेमाल में काफी तेजी आई है। बिग डाटा, कंप्यूटिंग और स्टोरेज क्षमता में सुधार तथा डाटा प्रसंस्करण मशीनों की तूफानी रफ्तार से कृत्रिम मेधा के उपयोग को बल मिला है।" कृत्रिम मेधा के आविष्कार के पहले मशीन की अपनी कोई बुद्धि नहीं होती थी। कृत्रिम मेधा के द्वारा मशीन को बुद्धि दी गई, जिससे वह बिना मनुष्य के मनुष्य की तरह काम कर सके, किसी भी समस्या को सुलझाने के लिए सोच सके और निर्णय ले सके। भाषा इसके इनपुट और आउटपुट का महत्त्वपूर्ण साधन है, क्योंकि यह सारा कार्यव्यापार किसी-न-किसी भाषा में संचालित होता है।

कृत्रिम मेधा और हिंदी भाषा के बीच नैचुरल लैंग्वेज प्रोसेस काम करती है, जो मशीन और प्राकृतिक भाषा के बीच संपर्क स्थापित करती है। नैचुरल लैंग्वेज प्रोसेस कृत्रिम मेधा का ही एक भाग है, जो कंप्यूटर द्वारा मानव भाषा को समझने एवं विश्लेषण करने में सक्षम बनाता है।

आज किसी भी राष्ट्र की संपन्नता का बोध इस बात से होता है कि वह राष्ट्र प्रौद्योगिकी विकास, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, ज्ञान शास्त्र और अर्थशास्त्र में कितना निपुण है? कृत्रिम मेधा भारतीय जनता को पारंपरिक ज्ञान के साथ-साथ वैश्विक ज्ञान परंपरा से भी जोड़ती है। भारतीय ज्ञान और संस्कृति को विश्व से जोड़ने का कृत्रिम मेधा एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। कई बार यह मनोरंजन के एक साधन के रूप में जैसे विभिन्न मोबाइल ऐप अथवा एनिमेशन (बाल हनुमान, बाल गणेश आदि) के द्वारा विश्व के तमाम देशों में पहुँचकर अपनी जगह बनाता है, तो कई बार भारतीय ज्ञान परंपरा की संचित पूँजी को हिंदी भाषा में प्रस्तुत कर उसे विस्तार देता है। कोई भी ज्ञान जब सीमित हो जाता है, तब वह विलुप्त होने लगता है। ज्ञान के परिष्कार और उसकी उन्नति के लिए यह जरूरी है कि वह अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचे। हम एक लोकतांत्रिक समाज में जी रहे हैं, इसलिए "किसी समाज की प्रगति के लिए मात्र ज्ञान का विकास ही जरूरी नहीं है, उससे भी जरूरी यह है कि जो भी ज्ञान अर्जित किया जा रहा है, वह समाज के सभी वर्गों तक पहुँचे, बल्कि उसका उपयोग भी सम्यक् हो। इसके अलावा यह भी जरूरी है कि ज्ञान के इस विकास में बाकी लोगों की भी उतनी ही भागीदारी हो, जितनी कि आज प्रभु वर्गों की है।" कृत्रिम मेधा भारत की उस ज्ञान संपदा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत है। भारतीय ज्ञान की परंपरा, जिसकी पहुँच सीमित वर्ग तक थी, कृत्रिम मेधा ने उसे व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने का काम किया है। भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर विभिन्न स्मृतियाँ, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और गीता जैसे मोक्षदायिनी ग्रंथ लिखे गए हैं। इनमें ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों की झलक देखने को मिलती है। किंतु यह भी सत्य है कि ज्ञान की दुनिया के ये शास्त्र अभिजन तक ही सीमित थे। भक्ति आंदोलन के दौरान पहली बार

धर्म और मोक्ष से आम जन का साक्षात्कार होता है। हिंदी नवजागरण के दौरान एक बार फिर से नवजागरण के अग्रदूतों द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा को आम जन तक लाने की कोशिश की जाती है। किंतु साक्षरता की कमी की वजह से यह पूरी तरह जनमानस तक नहीं पहुँच पाती। यह उस दौर के संचार माध्यम की एक बड़ी सीमा है। कृत्रिम मेधा ने मोबाइल और अन्य डिवाइस के माध्यम से हिंदीभाषी क्षेत्र में अपनी भरपूर पहुँच बनाई है। भारत की लगभग 43.63% आबादी की पहली भाषा हिंदी है। देश के 125 करोड़ लोगों में से लगभग 53 करोड़ लोग हिंदी को अपनी मातृभाषा मानते हैं और लगभग 13.9 करोड़ (11% से अधिक) लोगों की यह दूसरी भाषा है। इस तरह से देश में 55% आबादी की मातृभाषा या दूसरी भाषा हिंदी है। 2011 की भारतीय जनगणना के आँकड़ों के अनुसार, 1971 से 2011 के बीच हिंदी भाषी लोगों में 161% की वृद्धि आई है।

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की 'योजना' पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार "भारत उन मुट्ठी भर देशों में से एक है, जिन्होंने उन्नतिशील कृत्रिम मेधा उद्योग की सहायता के लिए, कृत्रिम मेधा और इससे संबद्ध क्षेत्र, मशीन लर्निंग के उपयोग के लिए एक वैचारिक राष्ट्रीय ढाँचा विकसित किया है। ए.आई. और मशीन लर्निंग पर सरकारी खर्च भी 2019-2025 की अवधि में 39 प्रतिशत की सी.ए.जी.आर. की अपेक्षित वृद्धि के साथ 2025 में 11,781.9 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँचने के साथ लगातार बढ़ रहा है। सरकार के थिंक टैंक नीति आयोग के अनुसार, 2035 तक, कृत्रिम मेधा में भारतीय अर्थव्यवस्था में 1 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि करने की क्षमता है। हालाँकि, कृत्रिम मेधा को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए, कार्यनीति, कार्यान्वयन, जोखिम प्रबंधन और ए.आई. सक्षम कार्यबल की आवश्यकता होगी। कृत्रिम मेधा में नवाचार को बढ़ावा देने के लिए भी एक सुव्यवस्थित राष्ट्रीय नीतिगत ढाँचा आवश्यक है।"

यही नहीं, कृत्रिम मेधा के आने से भारतीय जीवन शैली में एक बड़ा बदलाव देखने को मिलता है। कृत्रिम मेधा ने बहुत से मुश्किल कार्यों को द्रुत और सरल कर दिया है। इसके साथ ही ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में भी इसने क्रांति लाने का कार्य किया है। कृत्रिम मेधा के माध्यम से भारतीय ज्ञान संपदा को वैश्विक स्तर पर संप्रेषित करना बहुत आसान हो गया है।

विगत कुछ वर्षों में कृत्रिम मेधा ने बहुत विस्तार किया है। प्राचीन काल से ही भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। भारत में प्राकृतिक तरीके से कृषि की एक सुनियोजित परंपरा रही है। रासायनिक खादों के प्रयोग से कुछ समय के लिए फसलों की पैदावार तो बढ़ी, किंतु कालांतर में कृषि योग्य भूमि का बहुत नुकसान हुआ। कृत्रिम मेधा ने न केवल भारतीय ज्ञान परंपरा द्वारा संरक्षित कृषि विज्ञान से आम जन को जोड़ा, वरन् कृषि से संबंधित समस्याओं का निदान भी द्रुत गति से किया।

स्वास्थ्य किसी भी देश के मानव विकास के सूचकांक को रेखांकित करनेवाले प्रधान बिंदुओं में से एक है। भारत में प्राचीन काल से आयुर्विज्ञान की समृद्ध परंपरा रही है। भारत में 'आयुर्वेद' और 'चरक संहिता' जैसे समृद्ध ग्रंथ लिखे गए, जिसे विश्व भर में प्रसिद्धि प्राप्त है। कृत्रिम मेधा के माध्यम से भारतीय आयुर्विज्ञान को आम जन तक पहुँचाने का कार्य भी किया जा रहा है। कृत्रिम मेधा का विकसित रूप भारतीय जड़ी-बूटियों की पहचान कर और उसकी महत्ता बताकर आम जन में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निदान कर रहा है।

योग के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत को प्रसिद्धि हासिल है। महर्षि पतंजलि ने 'योग सूत्र' रचकर योग को एक दर्शन के रूप में स्थापित किया। भारतीय योग न केवल तन, बल्कि मन को भी स्वस्थ रखता है। आज के समय में जब मनुष्य विभिन्न तनावों के दबाव में मानसिक और शारीरिक रूप से अस्वस्थ महसूस कर रहा है, योग इन उलझनों में मुक्ति के एक मार्ग के रूप में दिखाई देता है। कृत्रिम मेधा ने भारतीय योग को वैश्विक स्तर पर पहुँचाने का काम किया है।

भाषा किसी भी व्यक्ति, समाज और देश की प्राथमिक अस्मिता होती है, क्योंकि भाषा का संबंध सभ्यता और संस्कृति से बहुत गहरा रहता है। हिंदी विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। विश्व स्तर पर हिंदी को स्थापित करने में टेक्नोलॉजी की बड़ी भूमिका रही है। कृत्रिम मेधा टेक्नोलॉजी के विस्तार का ही चरमोत्कर्ष है। कृत्रिम मेधा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को हिंदी भाषा के माध्यम से देश ही नहीं, बल्कि विश्व के कोने-कोने तक प्रसारित किया है। ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों का भाषा से गहरा संबंध होता है। ज्ञान के अनुशासन जितने समृद्ध होंगे, वह भाषा उतनी ही समृद्ध होगी। शिक्षा, कृषि, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, योग आदि के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा हिंदी भाषा में आम जन तक पहुँची है। कृत्रिम मेधा के आने से न केवल हिंदी भाषा का विस्तार हुआ, बल्कि वह अंतर्विषयक और बहुअनुशासनिक भाषा भी बनी। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़कर उसने अपनी व्यापकता को बढ़ाया और एक समृद्ध बाजार का निर्माण किया। हिंदी केवल कविता की ही भाषा नहीं है, वरन् वह ज्ञान-विज्ञान जैसे अभियांत्रिकी, चिकित्सा, विज्ञान और प्रौद्यिगिकी की भी भाषा बनी है। इससे हिंदी भाषा के विकास के साथ-साथ भारतीय ज्ञान परंपरा भी अधिक जीवंत हुई है। कृत्रिम मेधा भारतीय ज्ञान और संस्कृति का वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार कर रही है। इससे न केवल वि-औपनिवेशीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है, बल्कि हमें अपनी भाषा में ज्ञान-परंपरा को जानने-समझने का मौका भी मिला है।

□

sudheerpsingh@gmail.com

कर्मशील बनो और उच्च चरित्रवान् बनो।

—नेपोलियन

❖ ❖ ❖

विनीत, दयालु और सच्चरित्र होना धर्म का परम तत्त्व है।

—विलियम पेन

❖ ❖ ❖

सत्कर्म करनेवाला शुभ फल पाता है।

—वाल्मीकि रामायण

पांडुलिपि-विज्ञान तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा की प्रासंगिकता

—प्रो. दीप्ति शर्मा त्रिपाठी

विशाखदत्त के नाटक 'मुद्राराक्षस' की सुप्रसिद्ध पंक्ति है, 'न हि प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते' अर्थात् प्रयोजन को जाने बिना मूर्ख व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। तात्पर्य यह कि किसी भी काम को आरंभ करने से पहले, उस कार्य के लक्ष्य का ज्ञान प्रवृत्ति में प्रेरणा प्रदान करता है। आधुनिक युग में ज्ञान के आयाम का अतिशय विस्तार हो गया है, नए-नए विषयों का आविर्भाव हो चुका है और हो रहा है। विशेषज्ञता (specialization) पर इतना बल दिया जा रहा है कि कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह दिन दूर नहीं जब आँख और कान के चिकित्सक ही अलग-अलग नहीं होंगे बल्कि दाहिनी आँख और बाईं आँख तथा दाहिने तथा बाएँ कान के डॉक्टर भी अलग-अलग होने लगेंगे। विषय-विस्तार तथा विशेषज्ञता की दौड़ के इस युग में पांडुलिपि जैसी प्राचीन वस्तु के प्रति लोगों का उपेक्षा भाव अत्यंत स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, प्राचीन ज्ञान-परंपरा के प्रति भी जिज्ञासा का अभाव सर्वत्र व्याप्त है, जो इसी भाव से प्रेरित है कि जो कुछ भी प्राचीन है, वह हेय है एवं जो नवीन है, वह ज्ञेय एवं ग्राह्य है। नवीन का ग्रहण अवश्य होना चाहिए तभी ज्ञान के क्षेत्र में विकास और प्रगति हो सकती है, किंतु प्राचीन का सर्वथा परित्याग किसी भी प्रकार स्वीकार्य नहीं कहा जा सकता। कोई भी भवन तभी सुदृढ़ होता है जब उसकी नींव मजबूत होती है। कमजोर नींव पर बना हुआ भवन भी कमजोर ही होता है। इसी प्रकार नए ज्ञान का विकास प्राचीन की भित्ति को आधार बनाकर ही हो सकता है अन्यथा उसमें दृढ़ता एवं लंबे समय तक टिके रहने की क्षमता नहीं हो सकती।

भारत जैसे देश में जहाँ हजारों वर्षों प्राचीन ज्ञान की परंपरा रही है, जहाँ 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः', 'सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्' जैसे आदर्श वाक्य रहे हैं, वहाँ ज्ञानविमुखता आश्चर्यकर होने के साथ पीड़ादायक भी है। इस संदर्भ में एक और तथ्य ध्यातव्य है कि प्रायः पढ़े-लिखे लोगों में भी यह भ्रांति देखने को मिलती है कि भारतवर्ष का प्राचीन साहित्य या तो अध्यात्मपरक है या फिर ललित साहित्य जैसे महाकाव्य, खंडकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि। इसका ज्ञान अत्यंत सीमित लोगों को है कि आधुनिक युग में जिन प्रमुख विषयों को अध्ययन का क्षेत्र बनाया गया है, प्राचीन भारत में प्रायः उन सभी विषयों से संबद्ध साहित्य उपलब्ध

---

* अंतरराष्ट्रीय संस्कृत समवाय (पेरिस) के अध्यक्ष।

होता है। आवश्यकता इस बात की है कि इस ज्ञान-सम्पदा को विस्मृति के गर्त से निकालकर अध्ययन तथा उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जाए।

अप्रयुक्त ज्ञान तथा अज्ञान में कोई अंतर नहीं होता। दोनों ही स्थितियों में मनुष्य की बुद्धि तथा मन, दोनों अंधकार से ग्रस्त होते हैं। ज्ञान के प्रकाश से दूर, वह अपने लिए विकास तथा उत्कर्ष का मार्ग निश्चित करने में भी असमर्थ होता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि ज्ञान की उस परंपरा से जुड़ने का यत्न किया जाए जो स्वतंत्र चिंतन, उन्मुक्त बुद्धि, दूरदृष्टि तथा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के विकास में सहायक हो। यहीं पर पांडुलिपियों का महत्त्व निर्विवाद हो जाता है।

भारतवर्ष के संबंध में, जो अनेक भ्रांतियाँ लोक में व्याप्त हैं, उनमें अन्यतम है कि भारतवर्ष में प्राचीनकाल में लिपि या लेखन कला का विकास नहीं हुआ था, इसलिए समस्त ज्ञान केवल मौखिक परंपरा से ही प्राप्त होता था। यह भ्रांति तथ्य से उतनी ही दूर है, जितनी दूर पृथ्वी से चंद्रमा, क्योंकि वैदिक मंत्रों में ही लेखन- कला के अस्तित्व के अनेक प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेद के दशम् मंडल के बहत्तरवें सूक्त के चतुर्थ मंत्र में कहा गया है—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्
उत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्ये उशती सुवासाः ॥

ऋ.वे. 10.72.4

वाणी (भाषा) को देखकर भी कोई देखने में असमर्थ रहता है, कोई सुनकर भी नहीं सुन पाता (लेकिन जिस पर इसकी कृपा होती है), उसके समक्ष यह अपने स्वरूप को उसी प्रकार उद्घाटित कर देती है, जैसे सुंदर वस्त्रों से सजी पत्नी पति के लिए (उद्घाटित करती है)। पंडित क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय 'References to Writing in 'gveda' शीर्षक अपने निबंध में यह स्थापित करते हैं कि वाणी (भाषा) के 'श्रवण' के साथ 'दर्शन' शब्द का अलग से प्रयोग इस बात का संकेत करता है कि भाषा केवल सुनी नहीं जाती थी, बल्कि देखी भी जाती थी। देखने का काम चूँकि आँखों से होता है, इसलिए भाषा का चाक्षुष रूप भी होता होगा, जो लिखित भाषा का ही हो सकता है। अतः यह मानने में कोई असुविधा नहीं होनी चाहिए कि वैदिककाल में लेखन कला प्रचलित थी। चट्टोपाध्यायजी के मत से आचार्य ब्रजबिहारी चौबे तथा आचार्य के.व्ही. शर्मा भी सहमत हैं। इतना ही नहीं, प्राचीन भारतीय साहित्य में भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं, जो लेखनकला के अस्तित्व को स्थापित करते हैं। वेदों के शब्दों की निष्पत्ति-प्रक्रिया के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ निरुक्त में आचार्य यास्क बताते हैं कि वेदज्ञान की तीन अवस्थाएँ होती थीं। सर्वप्रथम मंत्रद्रष्टा ऋषि होते थे, जो मंत्रों का साक्षात्कार करते थे। वे साक्षात्द्रष्टा ऋषि उन ऋषियों को मंत्रों का उपदेश करते थे, जिन्हें उनका स्वयं दर्शन नहीं होता था। इन दोनों के अतिरिक्त ऐसे भी ऋषि होते थे, जो केवल उपदेश से मंत्रों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं थे। ऐसे ऋषियों के लिए वेद एवं वेदाङ्ग ग्रंथों की रचना की जाती थी।

मूर्खता के साधक कारणों में लिखने के प्रति उपेक्षा भाव को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। परंपरा से कलियुग में विष्णु को लिखित अक्षरों का देवता कहा गया है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि दूसरे युगों में लिखित अक्षरों के दूसरे देवता माने गए होंगे। एक स्थान पर नारद एवं बृहस्पति ने यह भी कहा है कि छह महीने में सुना

हुआ शब्द भूल जाता है। शब्द भूलें नहीं, इसलिए ब्रह्मा ने लिपि का आविष्कार किया और इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' पड़ा। जैन-परंपरा में यह माना जाता है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने लोकहित के लिए लिपि का आविष्कार किया और अपनी पुत्री के नाम पर उसका नाम 'ब्राह्मी' रखा। हम इन पौराणिक विचारों से सहमत हों या असहमत, इनसे यह तो प्रमाणित होता ही है कि भारतवर्ष में लेखन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक युग से लेकर उसके बाद के समस्त युगों में किसी-न-किसी रूप में लेखन एवं लिपि का उल्लेख किया गया है।

परवर्ती संस्कृत साहित्य में तो अनेक ग्रंथों में पुस्तक का उल्लेख मिलता है। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' से लेकर बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तक एकाधिक लेखकों की रचनाओं में पुस्तक शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे इतना तो प्रमाणित होता ही है कि भारतवर्ष में लेखन कला अत्यंत प्राचीनकाल में विकसित हो चुकी थी। लेखन का कार्य अनेक वस्तुओं पर होता था। जिस क्षेत्र में लिखने के योग्य जो सामग्री अधिकता में उपलब्ध होती थी, उसी का प्रयोग लिखने के लिए किया जाता था। जैसे ताड़पत्र/तालपत्र, भूर्जपत्र/भोजपत्र, स्वर्णपत्र, ताम्रपत्र, वटपत्र आदि। योगिनीतंत्र में नाना प्रकार की लिखने योग्य सामग्री के साथ कलम का भी वर्णन किया गया है। वल्लालसेन ने 'दान सागर' नामक अपने ग्रंथ में बाँस, ताँबे और सोने की लेखनी (कलम) का उल्लेख किया है। ऐसा नहीं है कि प्राचीन साहित्य में केवल लेखन सामग्री तथा लेखनी का ही उल्लेख मिलता हो, वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की लिपियों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे आज अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग लिपियों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में भी लिपियों की विविधता के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। वाराहीतंत्र में पाँच प्रकार की लिपियों और खड्गमालातंत्र में तीन प्रकार की लिपियों की चर्चा की गई है। 'ललित विस्तर' नामक बौद्ध ग्रंथ के दसवें अध्याय में चौंसठ लिपियाँ गिनाई गई हैं। इस ग्रंथ का संपादन परशुराम शर्मा वैद्य ने किया है। उनका मानना है कि इस ग्रंथ का समय ईसा की प्रथम से लेकर तृतीय शताब्दी के बीच होना चाहिए। यदि उत्तरवर्ती अर्थात् तृतीय शताब्दी को भी इस ग्रंथ का रचनाकाल माना जाए तो इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उस समय तक इतनी लिपियों का प्रयोग विकसित हो चुका था।

यह तो हुई लेखन सामग्री और लिपियों की बात! 'काव्य मीमांसा' नामक ग्रंथ के लेखक राजशेखर ने तो लिखनेवाले व्यक्ति में क्या-क्या गुण होने चाहिए इसकी भी चर्चा की है। यहाँ पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि संस्कृत में प्रयुक्त लेखक शब्द का हिंदी में अर्थ-परिवर्तन हो गया है। संस्कृत में लेखक का अर्थ होता है वह व्यक्ति जो लिखने का काम करे, जबकि हिंदी में लेखक शब्द का प्रयोग रचनाकार के लिए किया जाता है। राजशेखर ने कहा है कि शुद्ध लिखने के लिए लिखनेवाले को (तत्कालीन) समस्त भाषाओं में कुशल, वाणी को समझने में प्रवीण (क्योंकि साहित्यकार का बोला हुआ लिखने के लिए उसे समझना पड़ेगा), सुंदर अक्षरोंवाला, संकेत समझनेवाला, अनेक लिपियों को जाननेवाला, स्वयं भी कविता करने की क्षमता रखनेवाला होना चाहिए। यहाँ ध्यातव्य है कि राजशेखर के बताए लेखक के गुणों में बुद्धि एवं कला, दोनों का संगम है। उसे सहृदय होने के साथ विद्वान् और लेखन कला में कुशल भी होना चाहिए। यह इस बात का परिचायक है कि ग्रंथ लेखन में रचनाकार तो महत्त्वपूर्ण था ही, उससे कम महत्त्व लिखनेवाले का नहीं था। कारण स्पष्ट है कि आज की तरह पुस्तकों का मुद्रण तो होता नहीं था, जो भी लिखा जाता

था वह हस्तलेख ही होता था, अतः उसे सुपाठ्य और चिरस्थायी बनाने के लिए जो भी संभव था, वह उपाय किया जाता था। तभी तो पांडुलिपियों की इतनी बड़ी संख्या (भारत में सामान्य अनुमान के अनुसार एक करोड़) आज भी उपलब्ध है। यह ध्यातव्य है कि भारतीय पांडुलिपियों का बहुलांश प्राकृतिक आपदाओं, विदेशी आक्रमण जैसे ऐतिहासिक कारणों एवं उनकी स्वयं की क्षरणशीलता के कारण नष्ट हो चुका है, किंतु जो बचा हुआ है, वह अपने आप में भारतीय मनीषा के प्रकर्श को बताने के लिए पर्याप्त है।

इस ज्ञान भंडार तक पहुँचने के लिए पांडुलिपिशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य है। बिना इस शास्त्र को पढ़े इस ज्ञानसंपदा को प्राप्त करना संभव नहीं है। ज्ञान के प्रति भारतीय परंपरा के आदर एवं जिज्ञासा को रेखांकित करने के लिए संस्कृत का एक श्लोक उद्धृत करना पर्याप्त होगा। यह श्लोक लोक-मनीषा में जिस प्रकार प्रचलित है उससे सिद्ध होता है कि ज्ञान की पिपासा और जिज्ञासा जीवन का अभिन्न अंग रही है—

ग्रन्थाः ममाग्रतः सन्तु ग्रन्थाः मे सन्तु पृष्ठतः।
ग्रन्थाः मे सर्वतः सन्तु ग्रन्थेष्वेव वसाम्यहम्॥

अर्थात् पुस्तकें मेरे आगे हों, पुस्तकें मेरे पीछे हों, पुस्तकें मेरे चारों ओर हों, मेरा जीवन पुस्तकों के बीच ही बीते। जहाँ इस प्रकार की लोक-प्रचलित उक्ति हो, उस देश के विषय में यह कहना कि वहाँ लिखित ज्ञान-परंपरा का अभाव है, कहने/माननेवालों के ही घोर अज्ञान का परिचायक है। इतना ही नहीं, पुस्तक (पांडुलिपि) की रक्षा कैसे की जाए, इस संबंध की प्रचलित उक्ति को भी उद्धृत करना व्यापक पुस्तक प्रेम का परिचायक होगा—

तैलाद्रक्षेत् जलाद्रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्।
मूर्खहस्ते न दातव्यम् इत्थं वदति पुस्तकम्॥

अर्थात् पुस्तक (पोथी अथवा पांडुलिपि) कहती है कि तेल एवं जल से मेरी रक्षा करो, तात्पर्य कि इस बात का ध्यान रहे कि पुस्तक पर तेल या जल न गिरे। पांडुलिपि के पृष्ठों को हलके हाथ से नहीं बाँधना चाहिए, क्योंकि ढीले बंधन से पृष्ठ बिखर जाएँगे या फट भी सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह कि पोथी मूर्ख व्यक्ति के हाथ में नहीं देनी चाहिए, क्योंकि वह उसका महत्त्व नहीं समझता और उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहेगा।

हस्तलेख में निहित शारीरिक पीड़ा को निम्नलिखित श्लोक में अत्यंत स्पष्टता से बताया गया है—

भुग्नपृष्ठकटिग्रीवः तुल्यदृष्टिरधोमुखः।
कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नतः परिपालयेत्॥

'झुकी हुई पीठ, कमर और गरदन की मुद्रा में सिर नीचा करके आँख गड़ाकर अत्यंत कष्ट से लिखे गए ग्रंथ की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।' उपर्युक्त श्लोक केवल इस बात के निदर्शन के लिए दिए गए हैं कि भारतीय परंपरा में ज्ञान एवं लिखित पुस्तकों का कितना महत्त्व था।

यहाँ यह बताना भी अपेक्षित है कि पांडुलिपियों का अध्ययन इस शास्त्र में विशेषज्ञता के बाद ही संभव हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक युग की लेखन सामग्री, लिपि एवं लेखन शैली अलग-अलग होती है। इन सबका ज्ञान हुए बिना पांडुलिपि का अध्ययन नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि उनमें दी हुई तिथियों की शैली भी कई बार पहेली की तरह प्रतीत होती है। विरामचिह्नों का भी प्रयोग विशेष प्रकार से होता है। जिसे हम आज पूर्णविराम कहते हैं, उसके द्वारा अर्धविराम का बोध होता है एवं पूर्णविराम के लिए दो रेखाएँ खींची जाती हैं। पांडुलिपियों की एक अन्य विशेषता ध्यातव्य है कि उनमें शब्दों के बीच अंतराल नहीं होता। सभी शब्द बिना किसी अंतराल के निरंतर लिखे हुए

मिलते हैं, इसलिए यह अनिवार्य होता है कि पाठक को भाषा एवं विषय दोनों का ही सम्यक् ज्ञान हो अन्यथा 'सोमवार को दफ्तर बंद रखा जाता है' के स्थान पर 'सोमवार को दफ्तर बंदर खा जाता है' जैसी वाक्य रचना पढ़ने में विलंब नहीं होगा। इस प्रकार की अनेक विशेषताएँ पांडुलिपिविज्ञान को स्वतंत्र शास्त्र का स्थान प्रदान करती हैं।

अतः प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस शास्त्र में यदि प्रवृत्त हुआ जाए तो क्यों और इस प्रवृत्ति का लाभ क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि भारतीय पांडुलिपियों की विषय-वस्तु क्या है एवं आधुनिक युग में उसकी क्या उपयोगिता है। वैसे तो भारतीय पांडुलिपियों में भाषा-वैविध्य भी है और विषय-वैविध्य भी और केवल परिगणन के द्वारा परिचय भी एक ग्रंथ का रूप ले लेगा। किंतु यहाँ पर अतिविस्तार का परित्याग करते हुए भाषा के लिए एकमात्र संस्कृत को आधार बनाकर स्थाली पुलाकन्याय से कतिपय महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा करना पर्याप्त होगा, जिससे इस ज्ञान की आज की प्रासंगिकता पर ध्यान जा सके।

भारतवर्ष के इतिहास में संस्कृत का महत्त्व सर्वविदित है। किंतु यह खेद का विषय है कि अपने देश में ही संस्कृत के महत्त्व को स्थापित करने के लिए विदेशी विद्वानों की उक्तियों को प्रमाण के रूप में उपस्थापित करना पड़ता है। इसकी वैज्ञानिकता के लिए नासा (अमेरिका) को बार-बार उद्धृत किया जाता है और सर विलियम जोन्स की संस्कृत भाषा की प्रशंसा अनगिनत बार अनगिनत संदर्भों में उद्धृत की जा चुकी है, लेकिन उसे पुनः एक बार स्मरण कर लेना अनुचित या अप्रासंगिक नहीं होगा।

The Sanskrit language, whatever its antiquity, is of a wonderful structure; more perfect than Greek, more copious than Latin and more exquisitely refined than either (Sir William Jones; R.A.S.B. Inaugural speech, 1786, Asiatic Researches, Vol.I : 422)

यही बात फ्रांस बॉप ने भी कही थी जिसके शब्द विलियम जोंस की प्रतिध्वनि जैसे प्रतीत होते हैं— 'Sanskrit is more perfect and copious than the Greek and the Latin and more exquisite than either"(Edinburgh Review Vol.XXXIII : 43)। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत को केवल भाषा के रूप में देखना उसका अधूरा स्वरूप जानना ही है, क्योंकि संस्कृत केवल भाषा नहीं है। यह भारतीय मानस तथा चिंतन के साथ ऐतिह्य को जानने तथा समझने का एकमात्र मार्ग है। बिना संस्कृत के रास्ते गए कोई भी व्यक्ति भारतीय ज्ञान की विशालता तथा उदात्तता का परिचय प्राप्त कर ही नहीं सकता। अतः यहाँ स्थाली-पुलाकन्याय से कतिपय विषयों की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा, जिनका लाभ उठाकर उसकी प्रासंगिकता की ओर सुधी वर्ग का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।

संस्कृत से परिचय होने के बाद पश्चिम में भाषा विज्ञान का शास्त्र के रूप में विकास एवं विस्तार हुआ। येस्पर्सन (1949 : 44) एवं ब्लूमफील्ड (1950 : 10-12) जैसे पश्चिमी विद्वानों ने भाषा विज्ञान के शास्त्रीय विकास में संस्कृत व्याकरण के अद्वितीय अवदान को उद्घोषपूर्वक स्वीकार किया है— "The Hindu Grammar taught Europeans to analyze speech for (उपरिवत)।

किंतु इसका लाभ उठाकर बीसवीं शताब्दी में पश्चिम में भाषा विज्ञान की जितनी प्रगति हुई, उतनी ही उपेक्षा का भाजन यह विषय भारतवर्ष में रहा। परिणामतः हमारे देश में जिस प्रकार भाषिक विश्लेषण का विकास होना चाहिए था, वह नहीं हो सका। भाषा की आकृति को लेकर पश्चिम में

बहुत काम हुआ और अनेक सिद्धांतों का विकास भी। किंतु अर्थपक्ष प्रायः उपेक्षित ही रहा। इसका मुख्य कारण यह था कि संस्कृत व्याकरण-दर्शन में अर्थपक्ष का जो सांगोपांग विवेचन हुआ था, उसकी ओर भारत एवं अन्यत्र भी भाषा पर काम करनेवाले विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया। यदि भाषा के अर्थपक्ष पर काम किया जाए तो वह न केवल सार्वभौम व्याकरण के विकास में सहायक होगा, अपितु मानव बुद्धि में भाषा के अवगम तथा उत्पादन की प्रक्रिया की व्यावहारिक व्याख्या में भी अत्यंत उपयोगी होगा।

इस दिशा में पतञ्जलि के महाभाष्य से आरंभ कर भर्तृहरि के वाक्यपदीय, कौंडभट्ट के वैयाकरणभूषणसार, नागेशभट्ट की वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, लघुमञ्जूषा तथा परम लघुमञ्जूषा (उत्तरवर्ती दोनों ग्रंथ प्रथम ग्रंथ के संक्षिप्त रूप हैं) का अत्यधिक सार्थक एवं परिणामदायक उपयोग किया जा सकता है। यहाँ पर इस ओर भी ध्यान आकर्षित करना अनिवार्य है कि उपर्युक्त ग्रंथों का प्रकाशन तो हो चुका है, पर अप्रकाशित पांडुलिपियों में भी अनेक ऐसी सामग्री उपलब्ध हो सकती हैं, जो इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन कर सकें। आवश्यकता इस बात की है कि उस अप्रकाशित साहित्य को प्रकाश में लाकर उसका सार्थक उपयोग किया जाए। भारतीय ज्ञान-परंपरा की प्रासंगिकता की चर्चा हो और प्रबंधन शास्त्र का नाम नहीं लिया जाए तो चर्चा अधूरी ही रह जाएगी। आजकल विश्व में प्रबंधन का अत्यधिक बोलबाला है। फिर चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो, प्रशासन हो, स्वास्थ्य संबंधी क्षेत्र हो (अस्पताल आदि), पर्यटन हो, होटल हो या उद्योग। प्रबंधन ने समस्त क्षेत्रों को व्याप्त कर रखा है, अतः अपेक्षित है कि प्रबंधन के मूल को समझा जाए और यह भी देखा जाए कि भारतीय संदर्भ में उपलब्ध ज्ञान का सार्थक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। प्रबंधन का सैद्धांतिक और शास्त्र के रूप में विकास आधुनिक काल की देन है। किसी भी क्षेत्र में प्रबंधन की बात नहीं की जाए तो वह क्षेत्र आधुनिक और वैज्ञानिक कहलाने का पात्र नहीं माना जाता, लेकिन इस बात पर कम ही ध्यान दिया जाता है कि सही प्रबंधन के लिए तत्त या तत्त्व क्षेत्र के सामाजिक मूल्यों का समुचित ज्ञान आवश्यक होता है। उसके ज्ञान के बिना किया गया प्रबंधन कभी भी सफल नहीं हो सकता। इसके साथ ही यह भी जुड़ जाता है कि प्रबंधन के नियम एवं सिद्धांत; स्थान सापेक्ष, काल सापेक्ष एवं समाज सापेक्ष होंगे तभी प्रभावी हो सकते हैं। भारतीय समाज की मानसिकता एवं मूल्यों को सही तरीके से समझकर विकसित किए गए सिद्धान्त ही सही प्रबंधन का आधार बन सकते हैं।

पिछले कुछ समय से प्रबंधन के विशेषज्ञों का ध्यान इस ओर गया है एवं विनयशील गौतम (1979, 1992), सुधीर कक्कड़ (1979), रेमंड एल. ओवेंस तथा आशीष नंदी (1977) का अवदान एवं चिंतन-पद्धति इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य उल्लेखनीय नामों में हैं—स्व. एल.पी. विद्यार्थी, प्रकाश टंडन, ईश्वर दयाल, प्रदीप खांडवाला, शंकर सेन गुप्ता, एरिक एरिक्सन आदि। इन सभी लोगों ने अनेक संस्कृत ग्रंथों का सहारा लिया है, जैसे महाभारत का शांति पर्व, नीतिशास्त्र का ग्रंथ शुक्रनीति, चाणक्य का अर्थशास्त्र, श्रीमद्भगवद्गीता तथा साहित्य के मुद्राराक्षसम्, किरातार्जुनीयम्, अभिज्ञानशाकुंतलम् आदि। भारतीय इतिहास-लेखन में हर्षचरित, विक्रमांकदेवचरित, आधुनिक केरलोदय महाकाव्य जैसे ग्रंथों के महत्त्व की उपेक्षा करना इतिहास-लेखन के प्रति अन्याय होगा। सच तो यह है कि भारत का इतिहास,

भारतीय दृष्टि से, तटस्थतापूर्वक, लिखा जाना अभी भी बाकी है और इसके लिए पांडुलिपीय उपर्युक्त ग्रंथों के समान अन्य ग्रंथों, अभिलेखों आदि की कदापि उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सामग्री ही सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक आधार भित्ति होती है। वैसे भी यह तो सर्वविदित है कि आधुनिक काल में जिसे इतिहास कहते हैं, उस दृष्टि से भारत में इतिहास लेखन की परंपरा नहीं रही है। परिणामतः यह प्रवाद लोक में प्रायः व्याप्त दिखाई पड़ता है कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा का पूर्ण अभाव है। इस प्रवाद के कारण निहित स्वार्थवाले तत्त्वों को स्वेच्छाचारिता की स्वतंत्रता भी प्राप्त हो जाती है और इसका दुरुपयोग आधारहीन तथा कभी कभी अनर्गल प्रलाप में भी किया जाता है। इस प्रकार का लेखन न केवल भारतीय अस्मिता को आहत करता है, अपितु समाज के मन में हीन भावना का भी संचार करता है। अतः प्राचीन साहित्य (ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्यिक), अभिलेखों तथा पांडुलिपियों का प्रयोग कर, आधुनिक शैली में भारत के इतिहास-लेखन की आवश्यकता को स्वीकार करना ही पड़ेगा। किसी भी समाज के मानस में व्याप्त अंतर्निहित मूल्य एवं परंपराएँ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक आचरण का आधार होती हैं। यह आवश्यक नहीं कि पुस्तक पढ़कर ही ज्ञान प्राप्त किया जाए। भारतीय आचार्यों ने ऐसी व्यवस्था का विकास किया था, जिसमें समाज के सभी वर्गों में विकासोपयोगी व्यवहार स्वतः संचरित होता था। इस नीति के अंतर्गत ज्ञान को आस्था के साथ जोड़ा गया, ताकि समाज के ज्ञान संपन्न वर्ग की भाँति ही शास्त्रों से अनभिज्ञ वर्ग का आचरण भी सामाजिक हित का साधक हो सके। इसी लक्ष्य से उन आस्थाओं का विकास हुआ, जिनमें नदियों को माता, वृक्षों को देवता और पशु-पक्षियों को भी आदरणीय और पूजनीय माना गया। इससे न तो नदियाँ अशुद्ध हुईं, न पेड़ काटने से पर्यावरण की समस्या का सामना करना पड़ा और न ही पशु-पक्षियों की प्रजातियाँ समाप्त हुईं। किंतु तथाकथित आधुनिक शिक्षा में, बिना इनके रहस्य को समझे इन्हें अंधविश्वास बताकर त्याज्य घोषित कर दिया गया। परिणामतः प्राकृतिक आपदाएँ नित्यप्रति त्रस्त कर रही हैं, पर्यावरण की समस्या सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ती जा रही है और इस आपदा से निकलने का रास्ता सारी दुनिया ढूँढ़ रही है, किंतु रास्ता कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा। इसका एकमात्र कारण है कि मानव समाज ने अपने अहंकार में प्रकृति को अपना गुलाम बनाने की कोशिश की और वह भूल गया कि वह प्रकृति का अंग मात्र है, जिस दिन अत्याचारों की अति हो जाएगी, उस दिन प्रकृति मनुष्य का अहंकार पूर्णतः नष्ट कर देगी और मनुष्य कुछ नहीं कर पाएगा। भारतीय परंपरा में इस बात के प्रति सजगता भी थी और सचेष्टता भी। इसी कारण शांतिपाठ में द्युलोक से लेकर मर्त्यलोक के प्राणियों तक सबकी शांति की प्रार्थना की जाती थी—

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। यजुर्वेद अर्थात्द्युलोक (आकाश) शान्तिमय हो, अन्तरिक्ष शान्तिमय हो, पृथ्वी शान्तिमय हो, जल शान्तिमय हो, औषधियाँ शान्तिमय हों, वनस्पति शान्तिमय हों, विश्वेदेव (समस्त देवता) शान्तिमय हों, ब्रह्म शान्तिमय हो, सबकुछ शान्तिमय हो, शांति (भी) शान्तिमय हो (और) वह शांति मुझे प्राप्त हो।

लोक-कल्याण की इस भावना की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगाना अपने आप में

केवल हास्यास्पद कहा जा सकता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा के विभिन्न आयामों की प्रासंगिकता की चर्चा अपने आप में अनेक शोध प्रबंधों का विषय है, किंतु अत्यधिक विस्तार में गए बिना कतिपय उन विषयों का उल्लेख करना अनिवार्य है जिनकी बहुत चर्चा विद्वद्गोष्ठियों में भी कम ही होती है। जैसे आयुर्वेद और विभिन्न प्रकार के पशु आयुर्वेद। आयुर्वेद शब्द का ही अर्थ होता है आयु अर्थात् जीवन का ज्ञान। इसका मूल उद्देश्य है स्वस्थ तथा नीरोग जीवन पद्धति का मार्ग बतलाना। फिर यदि नियमानुसार जीवन व्यतीत करने पर भी कोई रोगग्रस्त हो जाए तो उसके उपचार की औषधि निर्धारित करना। यही पद्धति पशु आयुर्वेद की भी है। इस पद्धति में जो सबसे महत्त्वपूर्ण और ध्यातव्य विषय है कि इसमें स्वस्थ जीवन जीने पर बल है, जो प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर जीने का मार्ग बताता है। आज के मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है कि वह प्रकृति से अत्यधिक दूर चला गया है, मानसिक एवं शारीरिक—दोनों ही प्रकार से, अतः उसके जीवन में नाना प्रकार की विकृतियाँ आ गई हैं, वह सुख-शांति से दूर हो गया है तथा दूर होता जा रहा है।

इस प्रकार के विभिन्न शास्त्रों के असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं, किंतु विस्तारभय से सुधीजनों के लिए संकेत मात्र पर्याप्त है। प्रश्न यह नहीं है कि भारतीय पारंपरिक ज्ञानसंपदा आज उपयोगी है या नहीं, ध्यान इस बात पर देना है कि उसका उपयोग मानव के कल्याण के लिए किस प्रकार किया जाए। इस संपदा का अधिकांश आज भी पांडुलिपियों में छिपा हुआ है, जिसे पांडुलिपिशास्त्र के माध्यम से पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता है।

□

diptitripathi999@gmail.com

हिंदी भाषा को भारतीय जनता तथा संपूर्ण मानवता के लिए बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है।

—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

साहित्य की उन्नति के लिए सभाओं और पुस्तकालयों की अत्यंत आवश्यकता है।

—महामहोपाध्याय पं. सकलनारायण शर्मा

नागरी प्रचार देश उन्नति का द्वार है।

—गोपाललाल खत्री

ट्विटर की हिंदी : भाषिक-विश्लेषण

—डॉ. विजया सिंह

भाषा समग्र संस्कृति की आत्माभिव्यक्ति का साधन है। सभ्यताओं के बनने के दौर में भाषाएँ भी साथ-साथ आकार ले रही थीं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, भाषा का स्वरूप भी तैयार होता गया। इसलिए भाषा, संस्कृति, सभ्यता को अलगाकर नहीं देखा जा सकता है। भाषा, व्यक्ति और समाज ये सभी एक-दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं। जैसे, समाज की निर्मिति में भाषा एक कारक की भूमिका निभाती है। दूसरी ओर, भाषा को सहेजने और उसको एक आकार देने में समाज की भी महती भूमिका होती है। फिर चाहे व्यक्ति का वास्तविक समाज हो या इंटनेट पर स्थित आभासी समाज, हर जगह समाज और उसकी भाषा या उससे संबंधित भाषा एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। हालाँकि नव मीडिया के जितने भी अभिव्यक्ति के मंच हैं, उनकी भाषायी संस्कृति का वास्तविक समाज की संस्कृति से कोई लेना-देना नहीं है। जबकि व्यक्ति दोनों में समान है, हाँ, वास्तविक समाज का सिटीजन आभासी समाज पर उपस्थित होकर नेटिजन जरूर हो जाता है। लेकिन भाषा को गढ़नेवाले कारक दोनों समाज में अलग-अलग होते हैं। क्योंकि इंटरनेट स्थित आभासी समाज की भाषा, संस्कृति और सभ्यता की निर्मिति के साथ नहीं बनी और न बढ़ी। मशीन की संरचना के आधार पर एक तयशुदा संरचना में निर्मित हुई है, आभासी समाज की भाषा। इसलिए यह भाषा सिर्फ अर्थ संप्रेषण से मतलब रखती है। भाषा का जो सांस्कृतिक पक्ष होता है, वह न ही आभासी समाज की भाषा की निर्मिति में कारक होता है और न ही उस पक्ष का उससे उसका कोई जुड़ाव होता है।

अर्थ के आधार पर भाषा की बात करें तो हर भाषा का अपना एक अलग समाज होता है, जहाँ वह प्रयुक्त होती है। और, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के प्रभाव से शब्दों में विशेष अर्थ विकसित होते हैं, जिसे सामाजिक अर्थ भी कहा जाता है। जैसे: 'तू', 'तुम' और 'आप' का व्याकरण की दृष्टि से प्रयोग एक ही अर्थ में होता है, लेकिन इनके सामाजिक अर्थ अलग-अलग हैं। यह तो हुई वास्तविक समाज की बात, मशीन और इंटरनेट के समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश नहीं, बल्कि माध्यम की संरचना के आधार पर भाषा तय होती है और अर्थ भी उसी संदर्भ में विकसित होते हैं। जैसे—ट्विटर का एक ट्वीट है—'अब ट्रोल्लो मत यार'…। सामाजिक संदर्भ में 'ट्रोल्लो' का कोई अर्थ नहीं बनता। 'ट्रोल' अंग्रेजी का शब्द है,

* सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्विविद्यालय, वर्धा में सहायक प्रोफेसर।

जिसका अर्थ निष्ठाहीन और दिग्भ्रमित करनेवाले व्यक्ति के संदर्भ में होता है। इंटरनेट पर इसका अर्थ है, किसी बात को बिना आधार के फैला देना। 'ट्रोल' शब्द को ट्विटर की संरचना के आधार पर हिंदी में प्रयोग किया गया है। यहाँ संज्ञा के एक शब्द को क्रियात्मक शब्द बना दिया 'ओंकार' के साथ। तब शब्द बन गया 'ट्रोल्लो'। यह है इंटरनेट पर स्थित नेटिजन द्वारा बनाई गई भाषा। इस बात को मार्शल मैकलुहान की प्रचलित पंक्ति 'माध्यम ही संदेश है' से जोड़कर भी देखा जा सकता है।

यह युग सूचना का युग है। हम सब सूचना समाज में जी रहे हैं और इन सूचनाओं को आभासी समाज पल्लवित करता है तथा गति भी प्रदान करता है। ये सारे जितने भी आभासी समाज हैं, नव मीडिया के विभिन्न अभिव्यक्ति के मंचों पर स्थित हैं। जिसमें, सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों के साथ फेसबुक, यू-ट्यूब, ब्लॉग और ट्विटर आदि शामिल हैं। ट्विटर की बात करें तो अपनी संरचना के आधार पर ट्विटर को माइक्रोब्लॉगिंग साइट कहा जाता है। इस मंच की संरचना और अंतर्वस्तु ऐसी है कि यहाँ (ट्विटर) पर अभिव्यक्ति की सीमाएँ हैं। फेसबुक जहाँ अभिव्यक्ति को विस्तार देता है, ट्विटर ने अभिव्यक्ति को शब्दों की सीमाओं में बाँध रखा है।

ट्विटर सोशल मीडिया का एक ऐसा मंच है, जो कम और संतुलित शब्दों में अपने प्रयोक्ताओं को अपनी बात कहने का स्थान प्रदान करता है। जैसा कि नाम से ही ज्ञात है। 'ट्विटर' (twitter) का अर्थ हिंदी में चहचहाना होता है। यानी इसके नाम के निर्माण के पीछे ही इसका मकसद रहा होगा थोड़ा कहकर अपनी बातों को संचरित करना। यही वजह है कि ट्विटर का प्रतीक-चिह्न (logo) भी एक चिड़िया है, जिसकी खुली चोंच यह बताती है कि वह कुछ बोल/चहचहा रही है। 140 शब्दों की नियमबद्धता में अपनी बात को कहने के कारण ही इसे 'इंटरनेट की लघु संदेश सेवा' (SMS of Internet) भी कहा गया। हालाँकि बाद के दिनों में कंपनी ने अभिव्यक्ति के दायरे को बढ़ते हुए अक्षरात्मक लिपि की भाषाओं के लिए 280 शब्दों के एक ट्वीट तक बढ़ा दिया गया। दूसरी ओर चित्रात्मक लिपि की भाषाओं को 140 शब्दों तक के ट्वीट तक ही सीमित रखा, जिसमें जापानी, कोरियाई और चीनी भाषाएँ शामिल की गई हैं। नवमीडिया के निवासी, जिसे 'नेटिजन' कहा जाता है, माध्यम की संरचना के अनुसार ही भाषा-व्यवहार करते हैं। क्योंकि, माध्यम जितना स्थान कहने-लिखने को देगा, भाषा उसी रूप में ढलती जाएगी। चूँकि माध्यम की संरचना भी भाषा का स्वरूप तैयार करती है, इसलिए ट्विटर की भी अन्य सोशल मीडिया के अन्य माध्यमों से अलग कुछ विशेष शब्दावली और भाषा है, जो कम में अधिक कहने का गुण रखती है। फेसबुक में जिस तरह हर रिश्ते को 'फेसबुक फ्रेंड' कहा जाता है, ट्विटर पर हर वह व्यक्ति, जो इस आभासी दुनिया में आपके साथ जुड़ा है, 'फॉलोवर' कहा जाता है। संरचनात्मक आधार पर इसे 'माइक्रो ब्लॉगिंग साइट' भी कहा जाता है। यहाँ आम प्रयोक्ताओं की तुलना में राजनीतिज्ञ, फिल्मी हस्तियाँ, पत्रकार, शिक्षाविद् आदि प्रयोक्ताओं की संख्या अधिक है। सोशल मीडिया के हर मंच की कार्यपद्धति भी एक-दूसरे से कुछ अलग होती है, जो संक्षिप्त विश्लेषण से ही ज्ञात होता है। जैसे, अन्य माध्यमों की तुलना में ट्विटर के कुछ अलग नियम और जार्गन भी हैं। जिसमें हैं, 'ट्वीटडेक (Tweet Deck), जिसकी मदद से ट्वीट को शिड्यूल किया जा सकता है और प्रयोक्ता अपनी सूची पर नजर रख सकते हैं। इसके अलावा बिटली (Bitly) से प्रयोक्ता के ट्वीट को कितने क्लिक मिल रहे हैं और किस ट्वीट

के बारे में लोग अधिक जानना चाहते हैं, इसकी जानकारी मिल सकती है। इसी तरह एनालिटिक टैब का प्रयोग करके यह पता किया जा सकता हैं कि कौन सा ट्वीट सबसे दूर तक यानी अधिक देखा गया है और सबसे ज्यादा किस लिंक को क्लिक किया गया है।

भारत और ट्विटर

जैक डॉरसी, इवान विलियम्स, बिज स्टोन और नोहा ग्लास द्वारा स्थापित ट्विटर पूरी दुनिया के साथ भारत में भी धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रहा है। अमेरिकी फर्म ई-मार्केटर के अनुसार 2014 में ट्विटर की आबादी वैश्विक स्तर पर 23 करोड़ 50 लाख थी, वहीं 2019 के अंत तक यह संख्या 37 करोड़ तक पहुँच चुकी थी। कंपनी के द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार 9 जुलाई, 2018 को कंपनी ने बहुत से फर्जी खाते को निलंबित कर दिया, जिसकी वजह से ट्विटर के फॉलोवर्स की संख्या में कमी आई। इसके बाद वरीयता के क्रम में ट्विटर 11वें स्थान के हटकर 16वें स्थान पर आ गया। स्टाटिस्का (Statiska) की रिपोर्ट की मानें तो भारत में ट्विटर प्रयोक्ताओं की संख्या 30.73 मिलियन है (दिसंबर 2022), जो वर्ष 2025 तक 43.53 मिलियन तक हो जाने की संभावना है।

वैश्विक स्तर के इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि ट्विटर पर गॉशिप्स के आँकड़े सर्वाधिक हैं। इसके बाद वार्त्तालाप के रूप में अभिव्यक्ति है। वैश्विक स्तर के इन आँकड़ों से इतर भारत का आँकड़ा बिल्कुल भिन्न है। यहाँ गॉशिप्स के लिए ट्विटर का सर्वाधिक प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके पीछे कारण है, लोगों में विमर्श की प्रवृत्ति का होना। साथ ही हिंदी भाषा की संरचना, जो सम्यक् अभिव्यक्ति पर आधारित है। ट्विटर की सीमाएँ इन गुंजाइशों पर रोक लगाती हैं। यह वजह हो सकती है कि जिस तरह फेसबुक पर बड़ी संख्या में लोग जुड़े हैं, यहाँ पर नहीं हैं। लंबी और विस्तारित बातें 280 शब्दों के दायरे में पूरी नहीं की जा सकती हैं।भारत के ग्रामीण क्षेत्र में आज भी कम लोग ट्विटर के प्रयोक्ता हैं। क्योंकि पुनः वही कि ट्विटर पर पब्लिक स्फीयर्स की स्थिति नहीं बनती है। मशीन की संरचना से भाषा अपना स्वरूप कैसे गढ़ती है, ट्विटर की हिंदी इसका एक जीवंत उदाहरण है।

ट्विटर के लगभग 16 वर्षों की विकास यात्रा में कंप्यूटर, अभियांत्रिकी, प्रसारण, कला, साहित्य, सिनेमा, संगीत और लोकप्रिय सांस्कृतिक गतिविधियाँ, ये सभी शामिल हैं। अन्य सोशल मीडिया की तरह यहाँ भी अभिव्यक्ति के तीन प्रमुख घटक हैं, उपकरण या शिल्प, गतिविधियाँ या व्यवहार और सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक संगठन। मोबाइल मीडिया वह उपकरण है, जो प्रयोक्ताओं की गतिविधियों या भाषिक व्यवहार को मशीनी सीमा में बाँधने का काम करता है।

भारत में मोबाइल मीडिया तेजी से उभर रहा है। साथ ही मोबाइल मीडिया आज एक प्रमुख घटक है, सोशल मीडिया से लोगों को जोड़ने का। मोबाइल कंपनियों ने भी कम लागत में यह सुविधा उपलब्ध करा दी है। सोशल मीडिया पर लोगों की सक्रियता या जिसे 'सक्रिय प्रयोक्ता' (active user) कहा जाता है, मोबाइल मीडिया के द्वारा ही बड़े पैमाने पर संभव हुआ है। सूचना का त्वरित प्रसारण, वितरण और प्रक्षेपण, ये सभी मोबाइल मीडिया की ही देन हैं। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया, (IAMAI) की रिपोर्ट 'मोबाइल इंटरनेट इन इंडिया', 2016 के अनुसार जून 2016 तक भारत में मोबाइल इंटरनेट प्रयोक्ताओं की संख्या लगभग 37 करोड़ थी। इसमें 71 फीसदी प्रयोक्ता शहरी क्षेत्र से थे। वर्ष 2019 में कोविड महामारी के दौरान इंटरनेट

प्रयोक्ताओं का ग्राफ तेजी से ऊपर हुआ है। रिपोर्ट की मानें तो भारत में इंटरनेट प्रयोक्ता सोशल मीडिया, मनोरंजन और संचार जैसी गतिविधियों में शामिल हैं। वर्तमान में, देश में 93 मिलियन मोबाइल इंटरनेट प्रयोक्ता हैं, जिसमें 69.2 करोड़ सक्रिय इंटरनेट प्रयोक्ता हैं। इनमें से 35.1 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों से और 34.1 करोड़ शहरी क्षेत्रों से हैं। IAMAI के अनुसार, भारत में इंटरनेट प्रयोक्ताओं की संख्या के 2025 तक 900 मिलियन तक पहुँचने की संभावना है। स्टाटिस्टा (Statista) के अनुसार आज भारत में लगभग 86.2 फीसदी प्रयोक्ता मोबाइल पर सोशल मीडिया (जिसमें ट्विटर भी शामिल है) चलाते हैं। इसलिए देखा जाए तो निश्चित रूप से भाषा प्रयोग में भी मोबाइल फोन सेट की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। datareportal.com के सर्वे रिपोर्ट की मानें तो 2019 में ट्विटर के प्रयोक्ताओं की संख्या 76 लाख थी, जो आज 2.36 करोड़ हो चुकी है। इस संख्या की बढ़ोतरी में मोबाइल मीडिया के योगदान से इनकार नहीं किया जा सकता।

भारत में नव मीडिया की दस्तक मूलतः अंग्रेजी के माध्यम से हुई है। प्रयोक्ताओं के माध्यम से हिंदी भी शीघ्र ही उसके संपर्क में आई और तेजी के साथ माध्यमों से अपना संबंध भी स्थापित किया है। हिंदी की लिपि विशिष्ट और वैज्ञानिक है, रोमन लिपि से भिन्न प्रकार की है, ध्वनि संरचना भी उसकी विशिष्ट है, वाक्य और वाक्य में पदक्रम का विन्यास भी अलग है। इसलिए नव मीडिया पर जो अंग्रेजी है, ठीक उसी प्रकार की और वही हिंदी नहीं है। लेकिन यह भी तथ्य है कि नव मीडिया पढ़े-लिखे हिंदी भाषा प्रयोक्ता के लिए अनिवार्य हो गया है। इसलिए नव मीडिया को हिंदी कितना प्रभावित कर पाई है, यह सवाल महत्त्वपूर्ण नहीं है। सवाल यह है कि नव मीडिया के प्रभाव से हिंदी और उसकी संरचना कितनी और किस तरह प्रभावित हुई है? अर्थ कितने प्रभावित हुए हैं हिंदी के ? 21 मार्च, 2006 को जब ट्विटर अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर आया तब उसकी भाषा अंग्रेजी ही थी। इसलिए हिंदी से उसका नाता बहुत बाद में जुड़ा। इसलिए हिंदी की संरचना और ट्विटर की संरचना में अभी भी दुराव है। ट्विटर पर प्रयोग की गई भाषा को देखकर समझा जा सकता है कि इस मंच पर एक ऐसा भाषिक समुदाय बन रहा है, जिसकी भाषा का आशय सिर्फ अर्थ-संप्रेषण से है। इनकी भाषा में वाक्य संरचना, शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार हो रहा है, जिससे सामान्य अर्थ से अलग उनमें छिपे हुए अर्थ को उनकी भाषा परिलक्षित करती है।

ट्विटर की हिंदी का एक और उदाहरण देखें—

'जिस दिन लगे मेरी ट्वीट गलत है, मुझे बता देना मैं फकीर आदमी हूँ, बोरिया-बिस्तर उठाकर फेसबुक में चला जाऊँगा।"

इस उदाहरण को देखें तो ट्वीट फेसबुक और ट्विटर की भाषा के बीच अंतर को बताने की व्यंजनात्मक कोशिश है। (बोरिया-बिस्तर उठाकर फेसबुक में चला जाऊँगा)।

इस तरह के बहुत सारे उदाहरण हैं, जहाँ वाक्य के साथ-साथ वैसे शब्दों के प्रयोग भी खूब हो रहे हैं, जो ध्वन्यात्मकता के प्रभाव से संकुचित हो गए हैं या कर दिए गए हैं। जैसे—

मुझे >मेरे को >मेको, करना > करो> करियो, भैया> भिया

यानी ट्विटर पर भाषिक समाज का जन्म हो चुका है, जो कहना तो अधिक चाहते हैं, लेकिन ट्विटर के मंच पर जगह नहीं है। साथ ही प्रयोक्ता भी जल्दी में हैं। इसलिए भाषा भी 'फास्ट फूड' की तरह बन चुकी है। भाषा को सिकोड़कर, संकुचित कर

शब्दों को एक के ऊपर एक रख देना या उच्चारण और ध्वन्यात्मक स्तर के वाक्य/शब्द बना लेना, ट्विटर की भाषा की नियति बन गई है। इस कारण भाषा का रूप परिवर्तन हुआ है तथा द्विअर्थिता भी बढ़ी है। इधर ट्विटर ने हिंदी प्रयोक्ताओं की बढ़ती संख्या देखकर हिंदी के साथ कई भारतीय भाषाओं के लिए भी अलग नीतियाँ तैयार की हैं। माइक्रोब्लॉगिंग ट्विटर ने अक्तूबर 2019 में भारत में पैठ बनाने के लिए सोशल साइट पर प्रयोक्ताओं की भाषायी अभिव्यक्ति का सर्वेक्षण कराया और इसकी रिपोर्ट जारी कर कहा गया कि 'भारत में 50 फीसदी ट्वीट अंग्रेजी में और 50 फीसदी भारतीय भाषाओं में हो रहे हैं। भारतीय भाषाओं के ट्वीट में हिंदी पहले स्थान पर और दूसरे स्थान पर तमिल भाषा है।' ट्विटर पर प्रयोक्ताओं की संख्या बढ़े, इसके लिए कंपनी ने एक अनुवाद फीचर जोड़ा, जिसमें ट्विटर प्रयोक्ता कंटेंट को अपनी भाषा में देख सकते हैं। आज भारत में हिंदी के साथ-साथ गुजराती, मराठी, उर्दू, तमिल, बाँग्ला और कन्नड़ भाषा में ट्वीट किए जा सकते हैं। ट्विटर की नई कार्यपद्धति में स्थानीय और क्षेत्रीय भाषा संबंधी विशेषताओं को आगे बढ़ाने के बिंदु को जोड़ा है। हिंदी के तीव्र विस्तार का ग्राफ सोशल मीडिया पर मौजूद हिंदी प्रयोक्ताओं के अपनी भाषा से लगाव की ओर इंगित करता है। कुछ वर्ष पहले तक विश्व में 80 करोड़ लोग हिंदी समझते, 50 करोड़ बोलते और 35 करोड़ लिखते थे, लेकिन सोशल मीडिया पर हिंदी के बढ़ते इस्तेमाल के कारण अब अंग्रेजी उपयोगकर्ताओं में भी हिंदी के प्रति आकर्षण बढ़ा है। वर्तमान में भारत, दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा इंटरनेट उपयोगकर्ता है, जिसका श्रेय कहीं-न-कहीं हिंदी भाषा को भी जाता है। आज फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग, व्हाट्सएप या कोई अन्य नेटवर्किंग साइट सभी पर हिंदी भाषा की सुविधा उपलब्ध है। हिंदी भाषा के कंप्यूटरीकरण के बाद सोशल मीडिया प्रयोगकर्ताओं की संख्या लगातार बढ़ रही है।

□

singhvijya710@gmail.com

हिंदी जाननेवाला व्यक्ति देश के किसी कोने में जाकर अपना काम चला लेता है।

—देवव्रत शास्त्री

भाषा विचार की पोशाक है।

—डॉ. जानसन

रामचरितमानस हिंदी साहित्य का कोहिनूर है।

—यशोदानंदन अखौरी

कृत्रिम मेधा के द्वारा भाषाओं का संवाद

—प्रो. योगेंद्र प्रताप सिंह

कृत्रिम मेधा इस समय कंप्यूटर जगत् का सर्वाधिक चर्चित विषय है। फेसबुक के स्वामित्ववाली कंपनी मेटा के मुख्य कार्याधिकारी (सी.ई.ओ.) मार्क जुकरबर्ग कृत्रिम मेधा का प्रयोग कर दुनिया भर में भाषा से जुड़ी बाधाओं को खत्म करना चाहते हैं। मेटा ने एक महत्त्वाकांक्षी 'कृत्रिम मेधा संचालित परियोजना' की घोषणा की है, जो इसके मेटावर्स के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण होगी। कंपनी ने कहा कि वह एक कृत्रिम मेधा संचालित वर्चुअल सहायक के साथ एक सार्वभौमिक भाषा अनुवादक तैयार करने पर काम कर रही है। एक ऑनलाइन प्रेजेंटेशन में जुकरबर्ग ने कहा, 'किसी भी भाषा में किसी के साथ संवाद करने की क्षमता एक ऐसी ताकत है, जिसके बारे में लोगों ने हमेशा सोचा है और कृत्रिम मेधा हमारे जीवनकाल में ही यह सच करने जा रही है।' यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तकनीकविद् अभी भाषा के क्षेत्र में बहुभाषी अनुवाद की संभावना को ही बड़ी उपलब्धि के रूप में देख रहें हैं। मनुष्य-मस्तिष्क जिस तरह उद्दीपन और अनुक्रिया के आधार पर काम करता है, उसी के अनुरूप कृत्रिम मेधा के लिए प्रोग्रामिंग हो रही है। अतएव, इस क्षेत्र में और भी संभावना शेष है।

प्रथम दृष्टया अनुवाद दो भाषाओं के मध्य 'संवाद के साधन' के रूप में दिखाई देता है। किंतु अनुवाद 'भाषाओं के मध्य संवाद' की परिकल्पना से थोड़ा भिन्न है। अनुवाद भाषा का रूपांतरण है। अनुवाद की प्रक्रिया में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का अपना स्वरूप स्थिर। रहता है। इन दोनों की अपनी-अपनी शब्द संपदा है। अनुवाद समतूल्य प्रतिस्थापन है। देश-काल के संक्रमण में विशिष्ट भाषा और बोली दूसरी भाषाओं और बोलियों के शब्द और प्रभाव को ग्रहण करते हुए सजातीय शब्दों को जन्म देतीं हैं, आगत शब्दों को आत्मसात् करती हैं, शब्दों में विकार को स्वीकार करते हुए अपनी भाषिक प्रकृति और वाचिक प्रवृत्ति, टोन आदि के अनुसार शब्दों के गढ़न को प्रेरित और निर्मित करतीं हैं। यह दोनों भाषाओं के मध्य आदान-प्रदान है, जबकि अनुवाद एक भाषा की सामग्री का संतरण मात्र है। भाषाओं के संबंध में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि मातृभाषा से अलग दूसरी भाषा प्रायः अनुवाद से नहीं सीखी जा सकती है। अनुवाद भाषाओं के मध्य संवाद नहीं, अपितु पारस्परिक समझ की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति है। अनुवाद भाषांतर मात्र है। भाषाओं के मध्य संवाद शब्द और गुणों का आदान-प्रदान है।

जिस प्रकार समाज में लोकतंत्र और तानाशाही होती है, उसी प्रकार भाषाओं में भी

* इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज के हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में प्रोफेसर।

होता है। कुछ भाषाएँ वर्चस्ववादी स्वभाव की प्रकृति के साथ दूसरी भाषाओं को दबाती हैं। विश्व क्षितिज पर अंग्रेजी के साथ ऐसा ही रहा। औपनिवेशिक आग्रहों के कारण अंग्रेजी अपना स्थान बनाती रही और दूसरी भाषाओं को शिष्टता, मानकीकरण, सभ्यता आदि के नाम पर दबाती रही। कुछ भाषाएँ अपनी प्रकृति में लोकतांत्रिक होती हैं जो कई भाषाओं को उनके स्वत्व की प्रतिष्ठा को प्रभावित किए बिना अपना स्थान बनाती हैं। हिंदी की स्थिति ऐसी ही है। इस प्रकार की भाषाएँ लोकभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। अवधी, ब्रज, बघेली आदि बोलियों को लोक चित्त के अनुसार स्वीकार करते हुए 'भाखा' (हिंदी का आदिकाल से लेकर लगभग रीतिकाल तक व्यवहृत नाम) ने निरंतर संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का दाय लेकर अपने समकालीन भाषाओं-बोलियों से संवाद करती हुई वर्तमान 'हिंदी' का स्वरूप प्राप्त किया।

मधुकर गोटे ने सरलीकृत अंग्रेजी के फोनेटिक आधार पर 'ग्लोबिस' भाषा के रूप में एक कृत्रिम भाषा को प्रस्तुत किया था। जीन पाल नीरेरी ने भी वैश्विक व्यापार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस उपयोगितावादी ग्लोबिस भाषा की संकल्पना की प्रस्तावना की थी। यह भाषा वस्तुतः अंग्रेजी की प्रयोजनवादी आवश्यकताओं की उपज थी। यह लगभग 1500 मात्र शब्द, कुछ संक्षिप्त वाक्यों से निर्मित मुहावरों और लक्षणों से युक्त अभिधात्मक और अंग चेष्टाओं से युक्त भाषिक व्यवहार था, जिसमें अंग्रेजी से भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य न्यूनतम संपर्क स्थापित किया जा सके। यह भाषा कहीं से भी सांस्कृतिक संदर्भों से नहीं जुड़ी। यह न्यूनतम दक्षता के साथ सदैव हर जगह किसी के साथ उपयोग की जानेवाली कृत्रिम भाषा की संकल्पना थी।

वर्तमान के आभासी संजाल में इंटरनेट के कारण सभी भाषाएँ संवाद की तीव्र प्रक्रिया में हैं। कृत्रिम मेधा स्वाभाविक रूप से इंटरनेट से जुड़ी है और विशाल भाषिक तथ्यों के आँकड़े संसाधन की सुविधा से समर्थ है। सूचना का संवहन तंत्र अत्यंत जटिल और समर्थ है। कंप्यूटरों के विश्वव्यापी संजाल में कोई भी कंप्यूटर मशीन स्वतंत्र नहीं हैं, वे इंटरनेट से जुड़कर परस्पर संवाद की प्रक्रिया में हैं। अब हमारा कंप्यूटर केवल हमारी भाषा से संबंधित नहीं है, वह एक साथ कई भाषा व्यवहारों से जुड़ा है। उसमें हमारे भाषा व्यवहारों का संग्रहण हो रहा है और दूसरी भाषाओं के आँकड़े भी संग्रहित हो रहें हैं। अब हमारे कंप्यूटर का भाषिक आँकड़ा केवल हमारे पाठ तक सीमित नहीं हैं, अपितु इंटरनेट के बहुभाषी व्यापक पाठ से संबंधित है। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि कंप्यूटर मनुष्य की भाषा को नहीं समझता है, उसकी अपनी भाषा केवल ऑन और ऑफ की है। इसे कंप्यूटर की भाषा में बाइनरी अंक कहते हैं और इसे 0 और 1 से व्यक्त किया जाता है। प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में 2013 में वर्ड-टू-वेक (Word 2 Vec) तकनीकी प्रकाश में आई, जिसने भाषाई लघुगणन (लैंग्वेज एलोगेरिदम) के आधार पर समानार्थक शब्दों को खोजने का उसने नया मार्ग प्रस्तुत किया। 'वर्ड-टू-वेक' (वेक्टर) की सुविधा में शब्दों को संख्याओं में बदल दिया जाता है और किसी पाठ की संरचना में सभी शब्दों अंकों में परिवर्तन कर रख देने से भाषा में सजातीय और समानार्थी शब्दों की संभावना का पता लगाया जाता है, बहुभाषिक पाठ से अन्य भाषा के समानार्थी शब्दों को खोजा सकता है।

कृत्रिम मेधा बड़े भाषिक तथ्यों (बड़ा डेटाबेस) के आधार पर नवीन भारतीय भाषा की संकल्पना को जन्म देने की संभावना रखती है। कृत्रिम मेधा द्वारा अविष्कृत यह लोक भाषा पूर्णतया व्यवहारोपयोगी होगी और समस्त

भारतीय भाषाओं के बीच लोकतांत्रिक स्थितियों को पुष्ट करेगी। वस्तुतः भारतीय भाषाएँ पूर्व में भी एक भाषिक लोकतंत्र की स्थापना करती हैं, जिसमें अपनी सामासिक ताकत पर हिंदी लोकभाषा का स्वरूप ग्रहण कर सकी। हिंदी अपने प्रादुर्भाव काल अर्थात् आदिकाल से लेकर लगभग रीतिकाल तक 'भाखा' (अर्थात् सामान्य जन की भाषा) के रूप में स्थापित हुई, जिसे कालांतर में 'हिंदी' की संज्ञा मिली। यह भारत की उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक की भारतीय भाषाओं की शक्ति को समाहित करते हुए विकसित हुई। भिन्न-भिन्न समय में उत्तर भारत में अलग-अलग बोलियों को आधार बनाकर विकसित हिंदी का व्यापक व्यवहार इस बात को स्वयं सिद्ध करता है कि हिंदी भारतीय भाषाओं की लोकतांत्रिक प्रकृति के मध्य भारतीय भाषाओं का नेतृत्व करनेवाली लोकभाषा है। यह समस्त भारतीय भाषाओं के मध्य सांस्कृतिक सूत्र का आख्यान रचती है। कृत्रिम मेधा के आधार पर हम यह दिखा सकेंगे कि भारतीय भाषाएँ परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संवाद करती हैं। भारत में उत्तर और दक्षिण के आधार पर वर्गीकृत आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों की संकल्पना एक संकुचित संकल्पना थी, जो केवल सीमित भाषिक तथ्यों के आधार पर औपनिवेशिक स्वार्थों के आधार पर गढ़ी गई संकल्पना थी। भाषा भी एक जैविक इकाई की तरह होती है। भाषा की निर्मिति समाज में होती हैं।

अभी तक भौगोलिक कारणों से दूर रहनेवाले समाज में पारस्परिक निर्भरता और आवश्यकता के अनुसार आप्रवजन होता था, अर्थात् अप्रवर्जन सीमित क्षेत्र में नगरों तक ही सीमित था। अब सूचना प्रौद्योगिकी के कारण लोगों का व्यापक तौर पर आभासी मिलन हो रहा है। जो बहुत पर्यटनधर्मी नहीं हैं, वे भी दूर देशों के ज्ञान से अवगत हो रहे हैं, बिना मिले ही सामाजिक माध्यमों से बड़ी संख्या में फेसबुक मित्र, ट्विटर समर्थक (फॉलोवर), व्यावसायिक समूह और वैचारिक समाज बना रहें हैं। लेकिन ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि भाषाएँ वास्तविक रूप से मिल रही हैं। अर्थ, अवधारणा, प्रत्यय, विचार और कल्पना का इंटरनेट पर वास्तविक मिलन हो रहा है। इंटरनेट और सूचनातंत्र के द्वारा भाषाओं का यह वास्तविक मिलन भाषाओं के संवाद को बहुगुणित कर रहा है। भाषा के संबंध में यह एक बड़ी परिघटना है। पहले लोग अपने-अपने भाषा समाज में ही रहते थे, अब प्रत्येक समाज बहुभाषी हो गया है।

अब मनुष्य और मशीन के मध्य प्रतिस्पर्धा का चरण प्रारंभ हो चुका है। अब यह आशंकाएँ भी व्यक्त हो रही हैं कि क्या यह अनुसंधान और प्रयोग संपूर्ण मानवता के लिए खतरा होगा और यह बहुभाषी समाज की स्थिति को प्रभावित करते हुए उन्हें दुष्प्रभावित करेगा? इस संबंध में इतना ही कहना उचित होगा कि मनुष्य और मस्तिष्क के बीच प्रतिस्पर्धा का चिंतन अवश्यमेव आत्मघाती है, किंतु इतिहास-विवेक के आधार पर यह संभावना बनती है कि मनुष्य अपनी भस्मासुरी यात्रा की ओर नहीं बढ़ा, तो दोनों अपने-अपने वैशिष्ट्य के आधार पर सहअस्तित्व में बने रहेंगे। सकारात्मक प्रयोग के कारण सभी भाषा और लिपि अपने-अपने स्थान पर समृद्ध होते हुए भाषाओं के मध्य संवाद को मजबूत करेंगी। जिस प्रकार से डिजिटिलाइजेशन और इक्लेट्रानिकी ने जड़ (सिलिकॉन) में चेतन शक्ति को सक्रिय कर उसे संवेदना समर्थ बनाते हुए बहुत सी भौतिक आवश्यकताओं को समाप्त कर दिया और कागज जैसी आवश्यकता को दूर करते हुए पर्यावरणीय समस्या का समाधान प्रस्तुत किया।

□

singhypdr@gmail.com

वैश्विक हिंदी के विस्तार में कृत्रिम मेधा की भूमिका

—डॉ. आनंद कुमार सिंह

डिजिटल तकनीक ने विगत 10-12 वर्षों में जिस तरह की अभूतपूर्व छलाँग लगाई है, वह हमें हर मोड़ पर चकित करती है। उसे देखते हुए यह आधारहीन कल्पना नहीं है कि हम एक नई सामाजिक क्रांति के मुहाने पर खड़े हैं।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उद्भव मानव चेतना को और उसकी सभ्यता को ठीक उसी तरह से आमूल-चूल परिवर्तन करनेवाला है, जिस तरह से 18वीं सदी में औद्योगिक क्रांति ने मानवीय चेतना को और सभ्यता की विकास-यात्रा को प्रभावित किया था। पश्चिमी विकसित दुनिया में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को एक अकादमिक अनुशासन के रूप में विकसित करने की आवश्यकता 60 के दशक में ही अनुभव कर ली गई थी। शोधकर्ताओं को एक इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क के निर्माण की संभावना पर विचार करने के लिए प्रेरित किया गया था। उन्हें लगा था कि मानव के बुद्धिगत व्यवहारों के अध्ययन के उपरांत मानव बुद्धि की व्याख्या इतनी सटीक रूप से की जा सकती है कि इसका अनुकरण करने के लिए एक मशीन भी बनाई जा सकती है। वह सांख्यिकीय आँकड़ों के माध्यम से मानव जीवन के लिए विषयगत पक्षों का ऑब्जेक्टिव शुद्धता के साथ निर्णय करने में सक्षम हो सकती है और आवश्यकता पड़ने पर सुझाव भी दे सकती है। इस 'मशीनी अधिगम' को सुविधा प्रदान करने के लिए सूचनाओं, चिह्नों, प्रतीकों, प्रमेयों, कलनों, रेखाओं, अंकों, भावनाओं और चित्रों का एक विशाल ज्ञानकोश विकसित किया जा सकता है, जो मशीन के माध्यम से अंतःक्रिया करते हुए मानव की बुद्धि को सटीक और स्पष्ट जानकारी दे सके। डिजिटल कंप्यूटर औपचारिक तर्क की किसी भी प्रक्रिया का अनुकरण कर सकते हैं, वे सीखने के माध्यम से बुद्धिमत्ता हासिल करने की कोशिश भी कर सकते हैं। 1960 और 1970 के दशक में शोधकर्ता आश्वस्त थे कि वे प्रतीकात्मक दृष्टिकोण के आधार पर अंततः कृत्रिम सामान्य बुद्धि के साथ एक मशीन बनाने में सफल होंगे। उसी समय हर्बर्ट साईमन ने भविष्यवाणी की—"मशीनें बीस साल के भीतर, एक आदमी द्वारा किए जा सकनेवाले किसी भी काम को करने में सक्षम हो जाएँगी।" शुरुआती शोधकर्ताओं ने गणित के आधार पर नए 'एल्गोरिद्म' विकसित किए जो चरणबद्ध ढंग से तर्कसंगति की नकल करते थे जैसा मनुष्य पहेलियों को हल करते समय या तार्किक विश्लेषण करते समय उसका उपयोग करते हैं। शनैः-शनैः 'कॉमन सेंस नॉलेज' और 'डिफॉल्ट रीजनिंग' के आधार पर ज्ञान की सत्ता मीमांसा करते हुए 'आर्टिफिशियल

* उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल, मध्य प्रदेश के पूर्व प्रोफेसर।

इंटेलिजेंस' को 'मशीन लर्निंग' के लायक बनाया गया। इस क्षेत्र की हजारों विफलताओं के बाद एक हद तक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रमेय विकसित कर लिया गया, जिसे एल्गोरिद्म के आधार पर नए तरह की ज्ञान मीमांसा कहा गया। इस नई ज्ञान मीमांसा तक पहुँच बनाने के लिए दृश्यमान वस्तुओं का सांख्यकीय और प्रतीकात्मक उपयोग आवश्यक था, जिसे एक नए तरह की 'सत्ता मीमांसा' कहा गया। सत्ता मीमांसा एक डोमेन के भीतर अवधारणाओं के एक सेट और उन अवधारणाओं के बीच संबंधों के रूप में ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है। इसी के अंतर्गत संधारित गतिमान सूचनात्मक संजाल से प्रक्रियात्मक विश्लेषण और उपागम के आधार पर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का निर्माण होता है। इससे दर्शन के क्षेत्र में अनेक तरह की समस्याएँ आईं, जिसका अवश्यंभावी प्रभाव मनुष्य की व्यवहार पद्धति और उसकी चिंतन पद्धति पर पड़ना ही था। लेकिन ऐसा नहीं है कि इन कृत्रिम इंटेलिजेंस के खतरों से कंप्यूटर दार्शनिक अनजान थे।

बहरहाल, आज डिजिटल वर्ल्ड में अनेक कंपनियाँ हैं, जो इस दिशा में काम कर रही हैं। माइक्रोसॉफ्ट कंपनी और उसके सजातीय समूह ओपन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (ओ.ए.आई.) से इसी तरह के सर्च इंजन बनाने पर काम कर रहे हैं जिससे वह गूगल सर्च इंजन को चुनौती दे सकें। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रोग्राम 'डीप लर्निंग' से आगे बढ़ चुके हैं और 'एक्सपेरिमेंटल लॉन्चिंग' के स्तर पर पहुँच चुके हैं। आजकल हम अमेजन की 'अलेक्सा' और एप्पल की 'सीरी' से होम अप्लायंसेज को जोड़कर छोटे-मोटे काम करवा लेते हैं। उससे मनचाहा संगीत सुनते हैं और मनचाही बातें भी कर लेते हैं।

जरा सोचें कि पिछले वर्षों में लगातार हम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के द्वारा किस तरह से गाइडेड और निर्देशित हो रहे हैं। एक छोटा सा उदाहरण लें—गूगल मैप और एप्पल मैप के सहारे अपनी यात्राओं को पूरा कर रहे हैं। कहीं भी जाना हो, चाहे वह जानी हुई जगह हो या अनजानी जगह, सामान्यतया हम गूगल मैप से लाइव लोकेशन खोज कर पहुँच जाते हैं। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि यह कई बार हमें भटका भी देता है और कई बार हमें ऐसी सँकरी गलियों में भी ले जाकर फंसा देता है, जहाँ से वापस लौटने का कोई मार्ग नहीं। यहीं पर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग को और सुदृढ़ करने की जरूरत समझ में आती है। अभी यह अपने आप में पूर्ण विकसित सेवा नहीं है, क्योंकि सारी प्रगति के बावजूद मानवीय बुद्धि को हरानेवाली 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' अभी शैशव अवस्था में ही है। कहा जा रहा है कि आनेवाले समय में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के माध्यम से हम कारें चलाएँगे, रेल के इंजन चलाएँगे और हवाई जहाज भी उड़ाएँगे। आजकल कुछ देशों में रोबोटिक्स के क्षेत्र में भी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की बहुत प्रभावोत्पादक सेवा ली जा रही है। कालांतर में रोबोटिक सेवा हमारी सामान्य जीवन चर्या का अंग भी बन सकती है। यह भी संभव है कि मेडिकल के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की इतनी घुसपैठ संभव हो जाए कि डॉक्टरों को अपेक्षित ऑपरेशन के लिए मॉड्यूल बनाकर दे दिया जाए और अपेक्षित चीर-फाड़ भी नियंत्रित गति से कम समय में की जा सके। धीरे-धीरे मशीन की संवेदना इतनी जटिल और प्रफुल्ल हो सकती है या होती चली जा सकती है कि वह हमारे बायोटिक जीवन के तंत्रिकातंत्र को भी लील ले और जड़ मशीन और चेतन मस्तिष्क की एक ऐसी आपसदारी विकसित हो जाए, जिसमें मशीन के भीतर जैविक तंत्रों का कार्यकारी निवेश हमेशा के लिए सक्रिय और प्रत्यारोपित हो जाए। तब साइबर विज्ञान कथाओं में जिस तरह से मानवीय

चेतना में तकनीकी हस्तक्षेप या तकनीक की चेतना में मानवीय हस्तक्षेप की संभावनाएँ जतलाई गई हैं, वह जादुई यथार्थ को वास्तविक जीवन में वस्तुभूत यथार्थ के स्तर पर संभव करनेवाला सिद्ध होगा। ऐसा होने की संभाव्यता इसलिए साफ दिखने लगी है, क्योंकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के हाईटेक उपकरण डिजिटल नेटवर्किंग की श्रृंखलाओं से जुड़कर न केवल अपनी भूलों से लगातार सीख रहे हैं, बल्कि नए-से-नए काल्पनिक विस्तार को परखकर आँखों के सामने वर्चुअल तरीके से परोस भी रहे हैं। वह हमारे जैविक विश्व के अरबों तंत्रिकातंत्र के संगठनों में लगातार घुसपैठ कर रहे हैं और कृत्रिम स्मृति की शक्ल में ढलकर हमारी जैविक कोशिकाओं में सूक्ष्मतम स्मृति के भौतिक अंश बनकर लगातार प्रविष्ट होते जा रहे हैं और ठीक वास्तविक स्मृति की तर्ज पर अपने संशोधित प्रतिसंसार को हमारी आभासी चेतना में निरंतर प्रतिस्थापित भी करते चल रहे हैं।

हिंदी को लेकर हम अभी इतने संवेदनशील और सजग नहीं हुए हैं कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीनी अधिगम के खतरों को भाँपकर या तो उससे हम मैत्री कर लें या उस पर बढ़त हासिल कर लें। नीतिगत रूप से यदि हम बढ़त नहीं हासिल कर सकते तो कम-से-कम उससे संभावित मैत्री के लिए हमें उस धरातल पर आने की कवायद कर ही लेनी चाहिए, जिससे हिंदी भाषा की ज्ञान सर्जना और भाषा भाषियों की चेतना को नवोदित आर्टिफिशल इंटेलिजेंस के उपनिवेश की तरह न वापस जा सके।

हिंदी के विश्व और विश्व में हिंदी की स्थिति को प्रभावी एवं उत्पादक बनाने के लिए उसकी ज्ञानात्मक उपयोगिता बढ़ाने की आवश्यकता है। अभी भी हिंदी में सृजित और उपलब्ध साहित्य के समांतर उसके साइबर लिटरेचर को कोडिफाई करने की जरूरत है, जिससे डेटाबेस का 'मटेरियल मैनेजमेंट' और 'डिजिटल पूल' सामूहिक रूप से उपयोग के लिए तैयार हो सके। सॉफ्ट तकनीक द्वारा उत्खनित 'डिजिटल न्यूरोलॉजी' जब तक हिंदी की रीढ़ का जीवनद्रव बनकर नहीं उभरेगी, तब तक उसके भाषाई विस्तार और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रभावी संसाधन के रूप में विकसित होने की कोशिश कठिन ही रहेगी। यह भी संभव है कि भारत के नीति निर्माता इस विषय में जागरूक होकर इसे फ्यूचर लर्निंग और एंप्लॉयमेंट के नए संसाधन के रूप में भी देख सकें।

'हू ओन्स द फ्यूचर' नामक पुस्तक में प्रसिद्ध कंप्यूटर दार्शनिक जेरोम लाइनर ने भी सूचनाओं के आदान प्रदान और इन्फॉर्मेशन इकॉनोमी के माध्यम से मनुष्य की अंतरक्रियात्मक गतिविधियों पर गहनता से विचार किया है। उनका मत है कि पूँजीवादी विकास की शाखा-प्रशाखा के रूप में पैदा होनेवाले आभासी जगत् में सूचना एक पूँजी की तरह प्रभावी उत्पादन है। सूचना स्वयं में व्यक्तियों के स्थानापन्न अवतार की तरह काम करती है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग की बढ़ती जरूरतों के कारण अपनी प्रक्रिया में स्वयं का विक्रय भी करती है। वह छोटी-मोटी हेरा-फेरी कर अपनी नई क्रोमिंग भी करती है। इस तरह सूचना उत्पादक, सूचना संधारक और उसके चतुर क्रेता अपने बहुल व्यवहारों के कारण वास्तविक मानव श्रम की तुलना में सूचना के अर्थशास्त्र को विकसित करते चलते हैं, जिसके लिए क्रेता न्यूरोपेमेंट करता है और सूचना के स्वत्वाधिकार का क्रमशः अंतरण होता जाता है। इससे भी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग का विराट् संसार मजबूत होता है। हिंदी के संसार को इसे समझने की जरूरत है और उससे सतर्क रहने की आवश्यकता भी है, क्योंकि अंततः भविष्य का नियंत्रण उनके हाथों में होगा, जो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर नियंत्रण करेंगे।

□

aanandksingh@gmail.com

भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम बुद्धि

—ओम विकास

जॉन मेकार्थी ने 1956 में एक प्रस्ताव में पहली बार Artificial Intelligence (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) शब्द को गढ़ा और यह प्रचलन में आ गया।

कृत्रिम बुद्धि (AI) में डाटा संग्रह एवं विश्लेषण, समस्या समाधान और परस्पर संचार का समीचीन सम्मिश्रण होता है।

कृत्रिम बुद्धि (AI) खेल-प्रणाली, गणना-प्रधान है। सोशल साइट्स व मार्केटिंग प्रणाली डाटा-प्रधान हैं। रोबोट सिस्टम में संज्ञान और क्रिया उपकरणों का सामंजस्य है। इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) में सभी वस्तुएँ, उपकरण संचार माध्यम से जुड़े होते हैं। इन सभी में सेंसर, प्रोसेसर और डाटा-विनिमय की सुविधा अन्तः स्थापित (embedded) होती है।

AI के विकास की प्रमुख विधाएँ हैं—

1. Symbolic AI. इसमें मानव दत्त नियमों के आधार पर तर्कपूर्ण विचारपरक कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों से विशेषज्ञ तंत्र (Expert Systems) बनाए गए।
2. Machine Learning. मशीन अधिगम विधा।
   - 2.1 पृथक वस्तु पहचान और समान वस्तु वर्गीकरण के लिए टेस्टडाटा से मशीन को प्रशिक्षित करने के बाद मशीन स्वयं एल्गॉरिदम बना लेती है।
   - 2.2 ANN (Artificial Neural Network). यह मॉडल मानव मस्तिष्क की जैविक तंत्रिकाओं (biological neurons) की संरचना और कार्यविधि के आधार पर डिजाइन किया जाता है।

     इससे परिणाम की परिशुद्धता (accuracy) अधिक मिलती है। लेकिन इसके लिए ट्रेनिंग डाटा सेट बहुत बड़ा होता है और कंप्यूटिंग पावर भी अधिक खर्च होती है। 2010 के दशक में महत्त्वपूर्ण विधा रही।
3. Hybrid Approach. 2020 से AI और Robotics/Cyber Physical Systems (CPS) की मिश्रित विधा का उदय हो रहा है, जिसमें अनजान परिस्थितियों में भी रोबॉट का स्वचालन नियंत्रण सुचारु हो। यह शोध का विषय है।

बुद्धि के विकास में अधिगम (Learning) महत्त्वपूर्ण है। अधिगम (लर्निंग) में निरीक्षण (सुन,

---

* भारत सरकार में भाषा टेक्नोलॉजी विकास परियोजना के प्रथम समन्वयक, विज्ञान सलाहकार राजनयिक, IIITM ग्वालियर के निदेशक।

स्पर्श, देख, चख, सूँघ) कर तदनुसार परिणाम का अनुभव करते हैं, कभी सही, कभी गलत परिणाम, बार-बार अभ्यास से परिणाम सही निकलते हैं। नई संकल्पनाओं के ज्ञान को पुराने अनुभव के ज्ञान से संबंध स्थापित करते हैं। इस प्रकार ज्ञान की मिली हुई परतों में तथ्यात्मक और कौशलात्मक ज्ञान संग्रहीत रहता है, जो नई समस्या के समाधान में सहायक होता है।

20वीं सदी में गेस्टाल्ट के समग्र अधिगम (Holistic Learning) और पिआजे का संज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive Constructivist Learning) सिद्धांत प्रसिद्ध हुए।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में श्रवण, मनन, निदिध्यासन् के अधिगम सोपान उल्लिखित है। श्रवण में इंद्रियों से ज्ञान और कौशल ग्रहण करते हैं, तथ्य संग्रह (Information-base) करते हैं। मनन में नए ज्ञान का विश्लेषण और पूर्व ज्ञान से संबंध स्थापित कर समेकित ज्ञान (knowledge-base) का सृजन करते हैं। निदिध्यासन में अनुभूत ज्ञान सार अर्थात् प्रज्ञा (wisdom) का सृजन होता है।

कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence) कंप्यूटर युक्ति है, जिससे किसी मशीन को प्रशिक्षित (train) करते हैं, जिससे मानव की भाँति सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता का विकास करते हैं। परंपरागत कम्प्यूटिंग में इनपुट डाटा+प्रोग्राम देते थे, लेकिन मशीन लर्निंग (Machine Learning (ML)) में इनपुट डाटा और आउटपुट डाटा से मशीन स्वयं प्रोग्राम लॉजिक (मॉडल) बनाती है, जिससे यह नए इनपुट डाटा की पहचान कर सके।

मशीन लर्निंग (ML) कृत्रिम बुद्धि (AI) के अंतर्गत आता है। ML में मशीन डाटा ग्रहण करती है, उसी से सीखती है। मशीन को सिखाने की युक्तियों (algorithms) में प्रमुख हैं—

Supervised Learning में ज्ञात इनपुट डाटा का ज्ञात वांछित आउटपुट डाटा से मिलान करते हैं। इससे सीखी हुई युक्ति मॉडल से नए अज्ञात डाटा की पहचान करते हैं। इससे इनपुट डाटा का वर्गीकरण (classification) कर सकते हैं।

Unsupervised Learning में अज्ञात इनपुट डाटा में समानता (similarities) के आधार पर पेटर्न, ग्रुप, फीचर्स का पता लगाते हैं। इसे 'खोजी युक्ति' (Exploratory Algorithm) कह सकते हैं।

Reinforced Learning. डाटा सेट से ट्रेन करने पर बने एल्गोरिद्म को प्रयोग करने पर आई बाधाओं और विफलता के फीडबेक के आधार पर एल्गोरिद्म स्वयं सुधार कर लेता है।

Deep Learning युक्ति मनुष्य के मस्तिष्क के मॉडल के आधार पर कार्य करती है। इसमें इनपुट और आउटपुट लेयरों के बीच एक या अधिक आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क (ANN) नोड की लेयर रखते हैं। इस अल्गोरिद्म में नोड्स को जोड़नेवाली तंतुओं को मूल्य देते हैं, जो इनपुट डाटा देने पर आउटपुट डाटा की स्वीकृति तक बदलते हैं। इस प्रकार मशीन स्वत: सीखती है और उसी के आधार पर काम करती है। इस प्रणाली में परिणाम की परिशुद्धता पर बल दिया जाता है, इस कारण बहुत अधिक डाटा प्रोसेस करना पड़ता है, इसलिए प्रोसेसिंग पावर की भी अधिक जरूरत होती है।

कृत्रिम बुद्धि के अंतर्गत कई शोध-क्षेत्र विकसित हुए, जैसे—Natural Language Processing (NLP), Machine Translation, Expert Systems, Gaming Systems, Robotics, Intelligent User Interfaces, Machine Learning, Fuzzy Systems, Neural Computing, Data Mining, IoT, Big Data, Cyber Security, Robotics, Cognitive Systems, इत्यादि।

वर्तमान AI प्रणालियाँ पूर्व प्रशिक्षित वस्तुओं को ही पहचान सकती हैं, नई अज्ञात वस्तुओं को

नहीं। नए को सिखाने पर पुरानी सीख भुला देती हैं। ANN ब्लैक बॉक्स है। इसमें 'कैसे किया?' यह समझना और समझाना मुश्किल है। पहचान के लिए ANN और तर्कपूर्ण निर्णय के लिए प्रतीकपरक (symbolic) AI की मिश्रित विधा पर शोध-विकास किए जाने की बहुत संभावनाएँ हैं।

इंडस्ट्री 4.0 में इंटरनेट संचार माध्यम से मशीन-मशीन संबद्ध रहे, बृहद् (थोक) उत्पादन (mass production) पर बल दिया गया। अब इंडस्ट्री 5.0 में मानव-मशीन की सहभागिता का संवर्धन लक्ष्य है, जिससे मानव (ऑपरेटर) के अनुभवों का प्रयोग करते हुए उपभोक्तापरक विनिर्माण (customisation) संभव होगा। इंडस्ट्री 5.0 के संदर्भ में नवाचारमय आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) प्रणालियों के विकास की बहुत संभावनाएँ हैं।

सामान्य (general) समस्या के लिए विकसित AI प्रणालियों को विशेष (particular) समस्या के समाधान के लिए प्रयोग नहीं कर पाते और न ही इसके विपरीत। इस प्रकार शोध के कई विषय हैं।

कोविड महामारी काल में भारत में वैक्सीन के आविष्कार, ऑक्सीजन प्रबंधन, टीकाकरण, ऑनलाइन शिक्षण जैसे विविध क्षेत्रों में कई नई नूतन कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों का विकास हुआ, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, सेवा क्षेत्रों में व्यवस्था को साधने में बहुत मदद मिली। आपदा को अवसर में बदलते हुए स्टार्टअप बढ़े। भारत सरकार ने Startup India प्रोग्राम के अंतर्गत नए स्टार्टअप को वित्तीय प्रोत्साहन देने का प्रावधान किया। सितंबर 2021 तक करीब 57,400 स्टार्टअप को उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (DPIIT) से मान्यता मिली। (www.StartupIndia.gov.in)।

नैतिक कृत्रिम बुद्धि (Ethical AI) प्रणालियों में मौलिक मूल्यों के संबंध में अच्छी तरह से परिभाषित नैतिक दिशा-निर्देशों का पालन किया जाता है, जिनमें व्यक्तिगत अधिकार, गोपनीयता, गैर-भेदभाव और गैर-हेरफेर जैसी चीजें शामिल हैं।

कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों के विकास में व्यक्ति, समाज और प्रकृति के प्रति सचेष्ट करते रहने की भी व्यवस्था रहे। इनके दुरुप्रयोग की सतत् जाँच हो और तत्काल प्रभावी अंकुश लगाए जाएँ।

इसलिए कृत्रिम बुद्धि के दायित्वों को भी परिभाषित करने की आवश्यकता है।

कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों से अपेक्षा है कि प्रयोगकर्ता में प्रकृति के संरक्षण के प्रति अभिरुचि बढ़े, व्यापार में अनैतिक मार्केटिंग, मिलावट, मुनाफाखोरी के दुष्परिणामों के बारे में आगाह करते हुए शुचिता बढ़ाएँ। डाक, यातायात, स्वास्थ्य आदि जनसेवाओं में पारस्परिक सहयोग और उत्कृष्ट प्रतिस्पर्धा बढ़े। शिक्षा में नैतिकता, सकारात्मकता और रचनात्मकता पर बल दिया जाए। स्कूल स्तरीय आधार-शिक्षा में सामाजिक व्यवहार, आत्म-संयम, स्वास्थ्य सजगता, प्रकृति साहचर्य के विचारों पर बार-बार बल दिया जाए।

भारत की लोक संस्कृति के वैविध्य को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों के विकास को बढ़ावा दिया जाए। संस्कृत और तद्जनित भारतीय भाषाएँ ध्वन्यात्मक है। ध्वनि संकुल विशेष का मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। संस्कृत का समृद्ध वाङ् मय है। ध्वन्यात्मकता, शब्दानुशासन, शाब्दबोध संस्कृत और भारतीय भाषाओं के वैशिष्ट्य हैं, जो अंग्रेजी से भिन्न हैं। संस्कृत और भारतीय भाषाओं में डिजिटलीकरण सुगम बनाने की दिशा में बहुत कुछ करने की जरूरत है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य प्रणयन में अनुसृजन विधा से सुबोध लेखन के लिए समेकित अनुसृजन सिस्टम (Integrated Transcreation

System) विकसित करने की आवश्यकता है। इसमें मशीन अनुवाद सिस्टम के साथ तकनीकी शब्दावली, कोश, कॉर्पस, व्याकरण चैक, शब्द निर्माण सामग्री, उत्कृष्ट अनुवाद संग्रह, संक्षिप्तीकरण, संकल्पना मैप निर्माण आदि की सुविधा हो। इस विधा से अनुसृजनकर्ता को अलग-अलग (स्कूल, कॉलेज, उच्च शिक्षा, व्यावसायिक आदि) स्तरों पर अनुवाद परियोजनाओं में रचनात्मक शैली में विषय के सुबोध प्रतिपादन का अवसर मिलेगा।

आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए आवश्यक है कि मशीन-मानव के सह-सृजन (Co-creation) से मानव केंद्रित कृत्रिम बुद्धि प्रणालियों (human-centred AI) को विकसित किया जाए।

आज के सभी कंप्यूटर की आधार भाषा रोमन लिपि पर आधारित हैं। कंप्यूटर और कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी के संयोग से सूचना क्रांति का सूत्रपात हुआ। भारत में भारतीय भाषाओं में कंप्यूटरीकरण को सुगम बनाने के लिए कई प्रोजेक्ट शुरू हुए, पूरे हुए और कई नए प्रोजेक्ट पर कार्य चल रहा है। भारतीय भाषाओं की मूल प्रकृति संस्कृत पर आधारित है, इसलिए परिवर्धित देवनागरी को प्रस्तावित किया। ध्वन्यात्मक की-बोर्ड का डिजाइन INSCRIPT मानक बनाया गया। ध्वन्यात्मक वर्णमाला क्रम में कोडित करके ISCII (Indian Script standard Code for Information Interchange) मानक बनाया गया। अंतरराष्ट्रीय मानकों के पालन करने के कारण गैर-ध्वन्यात्मक UNICODE का प्रचलन ही बढ़ा और रोमन लिपि आधारित QWERTY की-बोर्ड का ही प्रयोग बढ़ा। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टेक्नोलॉजी की मदद से मोबाइल स्मार्टफोन पर अपनी भाषा और लिपि में संदेश भेजना आसान बनता जा रहा है, लेकिन गैर-ध्वन्यात्मक रोमन लिपि पर ध्वन्यात्मक भारतीय भाषा आधार लिपि को आरोपित करने से भाषा संसाधन जटिल बनता है। परिवर्धित देवनागरी में करीब 40 व्यंजन और 10 स्वरों को रोमन लिपि के 26 प्रतीकों पर बिना क्रम के आरोपित करना होता है। यूनिकोड लिपि आकृति आधारित (Glyph based) है, ध्वन्यात्मक नहीं है। भारतीय भाषाओं के बहुसंख्य (95% से अधिक) सामान्य प्रयोगकर्ता वर्तनी दोष करते हैं। विशेष चिह्नों (Diacritical Marks) का प्रयोग मुश्किल होने से कार्य गति धीमी हो जाती है। कुछ वर्णों का धीरे-धीरे लोप हो रहा है। लिप्यंतरण भी प्रायः दोषयुक्त होता है। भाषा संसाधन के लिए पाणिनि के द्वारा दिए गए और व्यवहार में प्रचलित कारक सहित क्रिया-केंद्रित वाक्य संरचना (Case Based Verb Centric Syntax) का विश्लेषण सुगम है। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तावित विश्लेषण में वाक्य को संज्ञा पद (NP) और क्रियापद (VP) के रूप में विभाजित किया जाता हैं। भारतीय भाषाओं के संसाधन में इसी पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण हो रहा है।

सर्व भाषिक ज्ञान अंतरण के उद्देश्य से यूनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज (UNL) के विकास में संकल्पनाओं के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया, लेकिन प्रचलन में नहीं आ सका। धातु आधारित संस्कृत शब्द से वस्तु अथवा घटना के संदर्भ का भी बोध होता हैं। जैसे नदी वह है जिसमें उद्गम के समय नाद है, धीरे-धीरे प्रवाहवान होने पर सरिता कहलाती है, 'खग' का तात्पर्य 'खे' (आकाश में) गमन करनेवाला पक्षी है। कमल पंक में जनमा तो पंकज, बहते पानी में नीरज, तालाब में जनमा तो सरोज कहलाता है।

इस प्रकार कतिपय शोध एवं विकास दिशाओं का उल्लेख हुआ।

अब समय है 'उत्तिष्ठत जाग्रत् प्राप्य

वरान्निबोधत।' का

उद्घोष हो श्रुति क्रांति का, नई टेक्नोलॉजी (Disruptive Technology) के विकास का। जिसमें भाषा इनपुट ध्वन्यात्मक कोड (Phonetic Encoding Scheme) में हो, ध्वनित वाक्य और इसके लिप्यंकित स्वरूप में एकरूपता हो, जैसा सुना, वैसा बोला, वैसा लिखा। शब्द और दृश्य-पटल में एकरूपता हो। वाक्य विन्यास में क्रिया-केंद्रित सभी कारक शब्दों का समग्र रूप से विश्लेषण हो। विश्वभाषाओं के लिए संस्कृत आधारित ध्वन्यात्मक संदर्भात्मक संकल्पना शब्दों के प्रयोग से मध्यस्थ भाषा (Intermediate Language) का विकास हो। इस सबको आसान बनाने के लिए संस्कृत आधारित प्रचालन प्रणाली (OS: ऑपरेटिंग सिस्टम) का भी विकास किया जाए।

मंत्र आदि में वर्ण, अक्षर के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित उच्चारण और गायन में रागादि का मस्तिष्क पर प्रभाव जैसे मानवोपयोगी अनुसंधान किए जाने की संभावना है।

आजकल कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence) के प्रयोग से शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा, सेवा क्षेत्रों आदि में बहुत सुधार किए जा रहे हैं। AI में भी ध्वन्यात्मक इनपुट महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। विश्व व्यापार में वाक् अनुवाद की महत्ता बढ़ रही है। वाक् ध्वनि सत्यापन के लिए उपयोगी हो सकता है। स्पीच थैरैपी में भी इस विधा से अच्छे परिणाम आ सकते हैं।

प्रयोग-सुगम उपयुक्त टेक्नोलॉजी के प्रयोग से संस्कृत और भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन एवं शोध कार्य नवाचारमय बन सकेंगे। भारतीय भाषाओं के साहित्य भी उत्तरोत्तर समृद्ध होंगे।

नवीन उभरती टेक्नॉलॉजी में वैश्विक प्रतिद्वंदी बने रहकर भारत अपनी भाषा, संस्कृति और परंपरागत ज्ञान को प्रयोग एवं शोध सुलभ बनाने के लिए भी ध्वन्यात्मक मानक एवं टैक्नोलोजी का विकास कर सकता है।

□

Dr.omvikas@gamil.com

हिंदी भाषा के लिए मेरा प्रेम सब हिंदी प्रेमी जानते हैं।

—महात्मा गांधी

जो संस्कार हृदय से बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन-पर्यंत साथ नहीं छोड़ते।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

विचार जब आचार में दृढ़ता का रूप धरणा कर लेते हैं, तभी उन्हें संस्कार कहा जाता है।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

अनुवाद एवं हिंदी शिक्षण

मरुबिंदु से मरु उद्यान में पनपती हिंदी

—डॉ. आरती 'लोकेश'

यू.ए.ई. के दृश्य, दृष्टि और दिशा के डग-मग-जग पर पग धरती

"अपने जुड़वाँ बच्चों को विदेशी भाषा बदलकर हिंदी विषय दिलाना है।"

एक अभिभावक द्वारा विद्यालय में कहा गया यह कथन एक हिंदी प्रेमी को अत्यंत प्रफुल्लित कर देनेवाला है। मेरे कानों में भी यह सरल-साधारण वाक्य ऐसे ही मधुर रस को घोल गया। सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रमवाले विद्यालय में परीक्षाध्यक्ष होने के नाते मेरे पास प्राय: तरह-तरह के निवेदन आया करते हैं। हिंदी विषय छोड़कर विदेशी भाषा पढ़ने के निवेदन तो पिछले 20 वर्षों में कई बार आए, किंतु पिछले 2-3 वर्षों में नवागत उपरोक्त कथनवाले कतिपय निवेदन अभिभूत कर गए। पहले ही मन में यह क्षोभ था कि हिंदी अनिवार्य भाषा के स्थान पर विकल्प के तौर पर पढ़ाई जा रही है, तिस पर मुकाबला भी विदेशी भाषाओं से है। आधुनिकता, सार्वभौमिकता और विदेश में सामंजस्य का भाव इन भाषाओं के प्रति रुझान को बढ़ा रहा है। इन माता-पिता का हिंदी के प्रति लगाव, आवश्यकता या सीखने की चाह; कारण जो भी रहा हो, मेरे जैसे हिंदी-अनुरागी के लिए तो यह बहुत सुखद स्थिति का परिचायक था।

ये रेखाएँ बदलती तसवीर में ढलती हैं—संयुक्त अरब अमीरात की, जिसे हम संक्षेप में यू.ए.ई. कहते हैं। यू.ए.ई. में आने से पहले मैं इस देश को 'दुबई' नाम से जानती थी। अब सोचकर भी हँसी आती है कि मात्र यहाँ के विश्वप्रसिद्ध शारजाह क्रिकेट स्टेडियम को दुबई-स्थित समझती थी। दो दशकों से लेकर आज तक भी मेरा अच्छा-खासा समय लगता है अपने जानकारों, मित्रों, संबंधियों के इस भ्रम को मिटाने में और यह बताने में कि देश का नाम युनाइटेड अरब एमिरेट्स है और ये मशहूर नाम जैसे दुबई, शारजाह, आबुधाबी इस देश की एमिरेट्स हैं।ठीक वैसे ही जैसे हमारे देश भारत में राज्य होते हैं, राजधानी आबुधाबी समेत यहाँ सात एमिरेट्स हैं।

इतिहास की पुस्तक में अपने बचपन में जिसे हम 'फारस की खाड़ी' के नाम से पढ़ा करते थे, वह जलघट अब 'अरब की खाड़ी' नाम से इस देश की 650 किलोमीटर की उत्तरी सीमा-रेखा साझा करता है। पश्चिमी सीमा कतर व सऊदी अरब से, पूर्वी सीमा ओमान से बाँटते हुए दक्षिण में सऊदी अरब की रेखा विद्यमान है। क्षेत्रफल में श्रीलंका से तनिक ही बड़ा यह देश ग्लोब पर कठिनाई से ही दृष्टिगत होता है। चमत्कार इस बात में है कि फिर भी इस देश ने विश्वभर में अपनी उपस्थिति के डंके बजाए हैं और सबकी

---

* साहित्यकार दुबई, संयुक्त अरब अमीरात।

दृष्टि में स्थायी रूप से गहरा बस गया है।

भारत से यहाँ की दूरी वायुयान द्वारा अधिकतम् चार घंटे में तय हो जाती है, जिस कारण भारत के पश्चिमी राज्यों के लिए यह मुख्य प्रवास स्थान की श्रेणी में अवतरित होता है। यहाँ की कुल आबादी की 75% प्रवासी जनसंख्या में आधी आबादी भारतीयों की है और उसमें गुजरात, केरल, महाराष्ट्र तथा राजस्थान से आए भारतीयों की बहुलता है। अधिकतर प्रवासी खाड़ी तथा एशियाई देशों से आए हुए हैं, कुछेक तो हर देश के ही यहाँ मिल जाएँगे। उष्णकटिबंध जलवायु और बारहों मास सूर्यदेव के तेजपूर्ण दर्शन, ठंडे देशों के सैलानियों को बहुत भाते हैं।

भारत से कुल प्रवासी नागरिकों में से लगभग एक-चौथाई यू.ए.ई. यानी संयुक्त अरब अमीरात में निवास करते हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात व महाराष्ट्र आदि से आए भारतीय तो हिंदी बोलने में दक्ष ही होते हैं, यू.ए.ई. में आकर केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक आदि राज्यों के लोग भी बड़ी कुशलता से हिंदी में वार्तालाप कर लेते हैं। हाँ, लेकिन जैसे ही बातचीत में लिंग-वचन या विभक्तियों की गलतियाँ दिखाई देती हैं, एक हिंदीभाषी तुरंत अहिंदीभाषी को पहचान लेता है। तथापि ये गलतियाँ भी कहीं आंतरिक सुख का कारण ही बनती हैं। हिंदी-भाषी समुदाय इस बात को बड़ी सच्चाई के साथ स्वीकारते हैं कि जिस सुगमता से एक दक्षिण भारतीय हिंदी में बोल रहा है, भले ही अपना काम चलाने के लिए ही सही; एक उत्तर भारतीय दस गुना गलतियों के साथ भी किसी दक्षिणी भाषा का दसवाँ हिस्सा भी नहीं बोल सकता है। कामगार वर्ग में सभी कोटि के लोग हिंदी में ही बात करते हैं, फिर चाहे वह टूटी-फूटी ही क्यों न हो!

हिंदी-यू.ए.ई. में संचार का मुख्य माध्यम बनकर उभरी है। तीव्रगति से विकसित इस देश ने रोजगार के समुन्नत अवसर दिए हैं और आगे भी अपार संभावनाएँ हैं। मजदूर-वर्ग अधिकतर ईरान, बर्मा, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान, भारत, म्याँमार, इंडोनेशिया, फिलीपींस आदि देशों से आते हैं। कोई एक आम बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी ने इनका चोली-दामन सा साथ निभाया है। यही इनके आपसी वार्तालाप का आधार बन जाती है। थोड़ी-बहुत हिंदी सभी जानते हैं; नहीं तो जल्दी ही सीख जाते हैं। बांग्लादेश, पाकिस्तान व अफगानिस्तान आदि मुल्कों के लोग टैक्सी ड्राइवर या बस चालक के काम में अधिक पाए जाते हैं। उनकी पंजाबी लहजे की हिंदी से आप यह जान ही नहीं पाएँगे कि वे पंजाबी भारतीय नहीं हैं। जान पाएँगे तो उनके पहनावे से।

आश्चर्य तो तब होता है, जब आप अमीराती लोगों को अथवा अन्य खाड़ी देशों के लोगों को हिंदी में बात करने की कोशिश करते पाते हैं। हिंदी के समुचित ज्ञान और अध्ययन की बात नहीं करती हूँ, मेरा मंतव्य आम बोलचाल में कुछेक वाक्य हिंदी में बोले जाने से है। कुछ जुमले तो वे सदा ही अपने कंदूरे (अमीराती परिधान) की जेबों में रखकर घूमा करते हैं और किसी भारतीय से बातचीत का मौका मिलते ही इनका इस्तेमाल कर दिल जीत लेते हैं। पुलिस के लिए अरबी भाषा में 'शुर्ती' शब्द का प्रयोग होता है। पुलिस अधिकारी तो बड़ी सरलता से भारतीय देखते ही हिंदी में बोलते हैं और आत्मीयता का भरपूर प्रदर्शन करते हैं। यहाँ यह बताना बहुत जरूरी है कि यू.ए.ई. के पुलिस अधिकारी उच्च स्तर के कर्मठ, चुस्त, सहायक और मित्रतापूर्ण प्रवृत्ति के होते हैं। इमिग्रेशन अधिकारी भी हिंदी में सवाल-जवाब करना शुरू कर देते हैं। कुछ हँसी-विनोद से हिंदी में बात कर वे अपने देश में नवागंतुक को भयमुक्त और सहज कर देते हैं। इन सरकारी पदों पर हमेशा स्थानीय मूल निवासियों की ही नियुक्ति संभव है। कोरोनाकाल में सेना के

आला अफसरों को भी इसी आत्मीय वृत्ति से काम करते हम देख चुके हैं। वे नियमों और कानूनों से चलते हैं और अपने काम में दखलअंदाजी कतई बरदाश्त नहीं करते हैं। हिंदी में छोटे-छोटे वाक्य बोलने से वे भी परहेज नहीं करते।

बॉलीवुड ने यहाँ के मूल निवासियों पर अलग ही धाक जमाई है। सिनेमा हॉल में हिंदी मूवी देखने के लिए बहुत से अमीराती लोग आते हैं। पहले दिन पहला शो, सबसे ऊपर वी.आई.पी. सीट पर बैठकर देखना उनका शौक है। हिंदी गीत गुनगुनाते हुए वे हमें बहुत लुभाते हैं। कई उच्च शिक्षित अमीराती हिंदी पढ़ने भारत भी जाते हैं। पश्चिमी देशों में पढ़ाई करने पर भी वे भारतीयों के संपर्क में हिंदी सीखने में देर नहीं लगाते। यह सोचकर कि अमीराती क्या हिंदी समझेंगे, आप हिंदी में कुछ निजी बात सार्वजनिक स्थान पर नहीं कर सकते। जाने कौन-कौन आपके आस-पास हिंदी समझता हो! वैसे भी, हिंदी है ही ऐसी ग्राह्य भाषा कि सब आसानी से समझ लेते हैं।

'अरबी' यहाँ की मुख्य व राष्ट्रीय भाषा है। मध्य और उच्च, शिक्षित वर्ग संप्रेषण के लिए अंग्रेजी का प्रयोग अधिक करता है। अपने समुदाय के साथ सब अपनी मातृभाषा में ही बेतकल्लुफी महसूस करते हैं। इसके बाद तीसरे नंबर पर हिंदी का स्थान आता है। किसी भी अन्य भारतीय भाषा से अधिक हिंदी बोलते हुए लोग आपको अपने आस-पास दिखाई दे जाएँगे।

2019 में आबुधाबी में न्यायालय की तीसरी आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को सम्मिलित किया गया। यह निर्णय हम भारतीयों के लिए बहुत गर्व का विषय रहा। न्यायिक मामलों की सुनवाई का हिंदी में किए जाने से मेहनतकश वर्ग को बड़ी राहत मिली।

हिंदी में रेडियो स्टेशन तो कई दशकों से हैं। अब पिछले 5-6 वर्षों से अनेक स्थानों पर मार्गनिर्देश भी हिंदी में मिल जाते हैं। सरकारी तथा गैरसरकारी कार्यालयों के नोटिस बोर्ड्स पर अरबी, अंग्रेजी के साथ हिंदी लिखी हुई भी अपनी शान बिखेरती है। अब भी जगह-जगह यहाँ की मुद्रा 'दिरहम'को रुपया और 'फिल्स' को पैसे कहते हुए लोग मिल जाएँगे।

शैक्षिक स्तर पर हम हिंदी को जानें तो कुछ बातें खुशी देती हैं और कुछ दु:ख भी। भारतीय बोर्ड के पाठयक्रम को अपनानेवाले भारतीय विद्यालयों में तो हिंदी पढ़ाई ही जाती है, बहुत से अमेरिकन पाठ्यक्रम के स्कूल भी अतिरिक्त विषय के तौर पर हिंदी विषय का विकल्प रखते हैं। कारण भी यही है कि कई विदेशी पाठ्यक्रमों वाले विद्यालयों में भी बहुत से भारतीय बच्चे पढ़ते हैं। जहाँ यह बात सुकून देती है, वहीं यह बात अखरती है कि दसवीं कक्षा के बाद हिंदी पढ़ने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। विश्वविद्यालयों के स्तर पर तो हिंदी पूरी तरह नदारद है।

बॉलीवुड सिनेमा के गायकों, संगीतकारों, गीतकारों आदि की सुरसंगीत-रात्रियाँ या गजल की महफिलों से तो यह देश आबाद है। कुछ सामुदायिक कार्यक्रमों जैसे—नवदुर्गा, होली, गणेश चतुर्थी आदि में कुछ हिंदी और कुछ हिंदी मिश्रित गीत-संगीत सुनने को मिल जाता है। अभी तक तो पूरे यू.ए.ई. में एक ही मंदिर है, जो बरदुबई नामक स्थान पर बना है। इस मंदिर के नीचे ही बनी पूजा-सामग्री की दुकान है, जहाँ दुकान पर बैठनेवाले मालिक और उनके युवा पुत्रों की हिंदी आपको चकित कर देगी। पिछले 3-4 दशकों से एक ईरानी परिवार यह दुकान चलाता है, यह जानकर आप हैरत में पड़ जाएँगे। इसी मंदिर के सिंधी समुदाय ट्रस्ट के सौजन्य से माँ दुर्गा का जागरणादि भी कुछेक बार आयोजित किया गया है। अब दो नए मंदिर निर्माणाधीन हैं; एक दुबई के जैबल-अली नामक स्थान पर और एक आबुधाबी

में। भक्तिभाव युक्त हिंदी को भी कुछ बढ़ावा इन मंदिरों के माध्यम से मिलने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता।

कुछ वर्ष पूर्व तक तो हिंदी की काव्य गोष्ठियों अथवा नाटकों आदि का भी अभाव बहुत खलता था। वर्ष 2020 से कोरोनाकाल में जब ऑनलाइन या आभासी माध्यम से गोष्ठियों की बाढ़-सी आ गई तो यू.ए.ई. में बसे प्रवासियों ने भी इस बहती क्रीक (गंगा के समकक्ष दुबई की जीवनरेखा) में हाथ धो लिये। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगोष्ठियों का आयोजन यहाँ हुआ।

2021 में 'विश्व हिंदी सचिवालय' मॉरीशस की ओर से विद्यार्थियों के लिए 'हिंदी दिवस' प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। वैसे तो हिंदी विषय के अंतर्गत हिंदी संबंधी प्रतियोगिताओं का आयोजन स्कूलों में समय-समय पर होता रहता है, किंतु सचिवालय की प्रतियोगिताओं ने पूरे यू.ए.ई. के स्कूल, कॉलेजों तथा यूनिवर्सिटी के छात्र-छात्राओं को इस अनोखे आयोजन का हिस्सा बनने का अवसर प्रदान किया। मेरी देख-रेख में सम्पन्न इस कार्यक्रम में प्रवासी विद्यार्थियों ने हिंदी विषयक कविताएँ स्वयं रचीं व प्रस्तुत कीं। विजेताओं को पुस्तक विक्रेता (बॉर्डर्स) के ₹26,000 (1250 दिरहम) की राशि के इनाम आबंटित किए गए। बालक-बालिकाओं के प्रोत्साहनस्वरूप स्तरीय कविताओं को संकलित कर पुस्तक 'होनहार बिरवान' का रूप दिया गया। यह पुस्तक बालकों द्वारा रचित यू.ए.ई. में हिंदी की पहली पुस्तक है।

साहित्य-सम्मेलनों का यह सिलसिला थमा नहीं, सतत जारी है। श्रीमती पूर्णिमा वर्मन की बरसों पुरानी 'चौपाल' 2021 के उत्तरार्ध में फिर महक उठी। कवियों का जमघट उनके घर शारजाह में लगा और खूब काव्य-चर्चाएँ हुईं। 10 जनवरी, 2022 'विश्व हिंदी दिवस' की गूँज पूरे देश ने सुनी, जब भारतीय कौंसलावास द्वारा 'एक्सपो 2020' में 'भारतीय मंडप' (pavilion) स्थित रंगगृह में भव्य समारोह का आयोजन हुआ। हिंदी के गौरवशाली इतिहास पर प्रकाश डाला गया, हिंदी व उर्दू कवि सम्मेलन, गीत-संगीत का सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि हुआ। इस कार्यक्रम से उत्साहित होकर कौंसलावास ने पुन: फरवरी में कवि-सम्मेलन का शानदार आयोजन किया, जिसका जिम्मा यू.ए.ई. की काव्य संस्था 'महिला काव्य मंच'व अध्यक्षा स्नेहा देव को सौंपा गया। इस संस्था की दुबई और आबुधाबी की इकाइयों ने 2022 में काव्य-गोष्ठियों की झड़ी लगा दी। 'वरिष्ठ नागरिक काव्य मंच' के अध्यक्ष डॉ. नितिन उपाधे द्वारा भी मासिक गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत यू.ए.ई. की एक और संस्था श्री आलोक शर्मा द्वारा स्थापित-संचालित 'एक्ट यूनिवर्सल' (अथक चेष्टा ट्रस्ट यूनिवर्सल) ने बालकों का हिंदी में रुझान, क्रियात्मकता और नवीन सोच को बढ़ावा देने का अद्भुत काम किया है। यह संस्था गत 3-4 वर्षों से कार्यरत है। 2021 में तीनों राष्ट्रीय पर्व, प्रेमचंद पर्व, हिंदी दिवस, सामाजिक-सांस्कृतिक पर्व; कोई मौका खाली नहीं जाने दिया, जब न केवल यू.ए.ई. में, वरन् अन्य खाड़ी देशों और भारतीय बच्चों के लिए कोई प्रतियोगिता, नाटक, कविता वाचन, कहानी वाचन, भाषणादि का मंच न प्रदान किया गया हो। अहिंदी भाषियों द्वारा हिंदी प्रतिभागिता को खूब सराहा गया। इस संस्था द्वारा 'अनुशीलन' नामक समूह का गठन किया गया है, जिसमें बालकों को हिंदी साहित्य से परिचय कराकर, उसके रसास्वादन का अवसर दिया जाएगा। हिंदी-प्रेम को पल्लवित करने का यह प्रयत्न बहुत सराहनीय है।

जहाँ तक हिंदी पुस्तकों की बात आती है, पाठयक्रम की पुस्तकों व सहायक पुस्तिकाओं

के अतिरिक्त बहुत सीमित संसाधन यहाँ पर हैं। दुकानों पर पुस्तकों की बिक्री के कठोर नियम हैं, जिसके चलते विक्रेता हिंदी की पत्रिकाएँ व पुस्तकें बिक्री के लिए नहीं रखते। साहित्यानुरागियों को भारत से लाई गई पुस्तकें अदल-बदलकर अपना शौक पूरा करना पड़ता है।

राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित (पद्मश्री डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार प्राप्त) श्रीमती पूर्णिमा बर्मनजी वरिष्ठ कवयित्री-लेखिका होने के साथ-साथ 'अभिव्यक्ति' तथा 'अनुभूति' जाल-पत्रिकाओं की संस्थापक-संपादक हैं। अंतर्जाल (वेब) पर हिंदी की स्थापना करनेवालों में उनका नाम अग्रगण्य है। वर्ष 2000 से अब तक ये दोनों पत्रिकाएँ नियमित प्रकाशित होनेवाली विश्व की पहली हिंदी जाल-पत्रिकाएँ हैं। इनके द्वारा उन्होंने प्रवासी तथा विदेशी हिंदी लेखकों को एक साझा मंच प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण काम किया है। वे जलरंग, रंगमंच, संगीत तथा हिंदी के अंतरराष्ट्रीय विकास के अनेक कार्यों से जुड़ी हैं। शारजाह स्थित उनकी आलीशान कुटीर में चाय पीते हुए 'चौपाल' में जुड़ने को सभी रचनाकार लालायित रहते हैं (यह सौभाग्य व सान्निध्य केवल यू.ए.ई. के रचनाकारों को सहज सुलभ है)।

'अनन्य यू.ए.ई.' मासिक पत्रिका का कार्यभार मैंने जुलाई माह से सँभाला है। आबुधाबी से वर्ष 2006 से 'निकट' नामक पत्रिका प्रकाशित करनेवाले श्री कृष्ण बिहारी सेवानिवृत्त होने के बाद गत कुछ वर्षों से प्रयागराज से इस पत्रिका का संपादन-प्रकाशन कर रहे हैं। 2-3 वर्षों से दुबई से ही एक नई अंतर्जाल-पत्रिका 'साहित्य अर्पण' का भी उदय हुआ है। इस पत्रिका की संपादक युवा रचनाकार नेहा शर्मा हैं। श्री विकास भार्गव जैसे साहित्यप्रेमी द्वारा यू.ए.ई. के नए-पुराने सभी रचनाकारों को आगे लाने और जोड़ने का बीड़ा उठाने पर 'सोच-हिंदी इमारातो चश्मे से' नामक पुस्तक का उदय हुआ। इस पुस्तक की विशेष बात यह है कि इसकी संकल्पना से मूर्तरूप देने तक का सभी कार्य, अर्थात् प्रकाशन-मुद्रण सब यू.ए.ई. में ही हुआ। इस पुस्तक की उपलब्धि ने भी हिंदी जगत् को हिंदी के भविष्य के प्रति आशावान बनाया है। यू.ए.ई. के दृश्य, दृष्टि और दिशा के डग-मग-जग पर पग धरती हिंदी अब आगे बढ़ चली है।

□

arti.goel@hotmail.com

वही भाषा जीवित और जाग्रत् रह सकती है, जो जनता का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर सके।

—पीर मुहम्मद मूनिस

समाज और राष्ट्र की भावनाओं को परिमार्जित करने वाला साहित्य ही सच्चा साहित्य है।

—जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

तेलुगु और हिंदी का अनुवाद के माध्यम से सह-संबंध : एक परिचय

—प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

दक्षिण भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी के पठन-पाठन का श्रीगणेश हुआ। किसी भी राष्ट्र की एकता के लिए एक अनुपम एवं अनन्य महत्त्वपूर्ण हथियार भाषा है। भारत देश के लिए वह भाषा निस्संदेह हिंदी ही है। दक्षिण भारत की सभी भाषाओं के लोगों ने इस बात को पहचानकर हिंदी पठन-पाठन शुरु किया। तेलुगु प्रांतों में भी लोग इस सिलसिले में स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आजतक इस कार्य में अत्यंत मनोयोग से लगे हुए हैं। सिर्फ पठन-पाठन तक सीमित न रहकर साहित्य के प्रति भी रुचि रहने के कारण उन्होंने हिंदी में अपनी रचनाओं का सृजन करके हिंदी साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि की है। हमारी राष्ट्र भाषा की उन्नति में अनेक लोगों का योगदान है।

यह सर्वविदित सत्य है कि भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में सांस्कृतिक समरसता एवं भावात्मक ऐक्य-संधान का महत्त्व निर्विवाद है। साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता के मूलभूत तत्त्वों की पुष्टि हेतु विभिन्न भाषाओं के बीच आदान-प्रदान होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इस दिशा में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बीच उल्लेखनीय कार्य संपन्न हुआ है। तेलुगु प्रांतों के साहित्यकारों ने न केवल राष्ट्रवाणी के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कृतियों का सृजन करके अपनी विशेषताओं व भावात्मक गरिमा से हिंदी-संसार को परिचित कराया है, बल्कि तेलुगु की प्रतिनिधि रचनाओं का रूपांतरण हिंदी में प्रस्तुत करके तेलुगु के साहित्य-सौरभ को बिखेर दिया है। मैं इस लेख के अंतर्गत तेलुगु अनुवादकों के योगदान के बारे में विवरण दे रहा हूँ।

राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए दोनों भाषाओं में आदान-प्रदान की आवश्यकता है। यह कार्य अनुवाद के द्वारा कर सकते हैं। तेलुगु प्रांतों में यह कार्य अत्यंत तीव्र गति से चल रहा है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में काव्य का रूपांतरण करना कठिन कार्य और कभी-कभी असंभव भी प्रमाणित होता है। वास्तव में पद्यानुवाद मूल का यथासंभव निकटतम समतुल्य होता है, शतांशतः मूल नहीं। तेलुगु प्रांतों के हिंदीप्रेमी रचनाकारों ने तेलुगु की विशिष्ट काव्य-कृतियों का अनुवाद हिंदी में प्रस्तुत कर असंभव को संभव सिद्ध कर दिया है। भाव और अनुभूति के क्षेत्र में अनुवादकों ने अपनी सीमित परिधि में ही काव्य-भाषा की

* तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर।

अर्थ-रचना की जटिलताओं को रूपांतरित किया है। इन रूपांतरकारों को कहीं-कहीं मूल कवि की भावना, कल्पना एवं अनुभूति में अपने अंतरंग को रंग कर उसी प्रतिपाद्य को मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता मिली है।

तेलुगु के भक्त कवियों में वेमना, पोतना और गेयकार त्यागराज की पद्य कृतियों को अनूदित कर हिंदी साहित्य भंडार को सुसंपन्न बनाने में हिंदीप्रेमी तेलुगु रचनाकारों व अनुवादकों का योग स्तुत्य रहा है। सन् 1957 में 'संत वेमना' शीर्षक से डॉ. चलसानि ने तेलुगु के मध्यकालीन महान् संत कवि वेमना के सौ पद्यों का हिंदी रूपांतर प्रस्तुत कर हिंदी-तेलुगु भाषाओं की प्रकृतियों, विशिष्टताओं तथा बारीकियों का परिचय दिया है। चलसानि सुब्बारावजी के इस महती प्रयास के फलस्वरूप हिंदी के निर्गुण संत कवि कबीर के समक्ष वेमना की प्रतिभा को हिंदी संसार के लिए ग्राह्य बनाया है—

"मूर्ख की बातों में होती है आडंबरता,
पर धीमी-धीमी चलती है सज्जन की जीभ,

वेमना के मुक्तक छंदों के मूल भाव को ग्रहण कर अनुवादक ने उसकी मौलिकता को भंग किए बिना बड़ी सावधानी बरतते हुए पद्यानुवाद को बड़ी प्रांजल एवं औचित्यपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है। अनुवादक ने इन छंदों में प्रत्येक दो पंक्तियों में तुक की व्यवस्था करके छंदोबद्धता का सुरुचिपूर्ण निर्वाह किया है।

तेलुगु के महान् कवि पोतना कृत 'आंध्र महाभागवतम्' रचना के चार उपाख्यानों 'प्रहलाद चरित्र', 'गजेंद्र मोक्षम्', 'वामन चरित्र', और 'अंबरीश कथा' का हिंदी रूपांतर भी वाराणसी राममूर्ति 'रेणु' ने प्रांजल शैली में अतुकांत छंदों में किया है। यह अनुवाद मूल कविता का यथासंभव निकट प्रतीत होता है। कथ्य और अभिव्यक्ति का योग समवेत् रूप में होने के कारण अनूदित रचना की प्रभविष्णुता बढ़ गई है। इसमें कथ्य के अनुरूप समास-प्रधान तथा व्यास-प्रधान काव्य शैली दिखाई देती है। प्रभावात्मकता को बढ़ानेवाले मूल काव्य-तत्त्वों के जुड़ जाने के कारण यह अनुभूति रचना मूल की अपेक्षा अधिक सुंदर बन पड़ी है। राममूर्ति 'रेणुजी' ने आधुनिक तेलुगु काव्यकार और प्रसिद्ध दलित रचनाकार गुर्रम जाषुआ की काव्यकृति 'गब्बिलम्' का हिंदी रूपांतर 'चमगादड़' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। आधुनिक तेलुगु कविता में नवीन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा द्वारा समाज में दलित-मानव पर किए जानेवाले सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले गुर्रम् जाषुआ ने संवादात्मक एवं व्यंग्य शैली में 'गब्बिलम्' रचना में अपने मौलिक व क्रांतिकारी विचारों को व्यंजित किया है। यथा—

"राजर्षि उस प्रदेश के, निसिदिन तपोमग्न,
तब स्वागत—आतिथ्य करेंगे आनंदमग्न,

डॉ. इलपावलूरि पांडुरंग राव ने तेलुगु के प्रसिद्ध भक्त कवि त्यागराज के विशिष्ट पदों का हिंदी अनुवाद—'चंदना', 'अर्चना', 'भावना', 'चेतना', 'सांत्वाना', और 'साधना'—सात शीर्षकों के अंतर्गत किया है।

'सुमती-सूक्ति-सुधा' के सभी छंदों का सरस रूपांतरण प्रस्तुत कर अनुवादक ने हिंदी काव्य-जगत् की बहुत बड़ी क्षति को पूरा किया है, क्योंकि हिंदी नीति काव्यों में सुमती शतक का सा व्यावहारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा औचित्यपूर्ण नीति काव्य का नितांत अभाव है। तेलुगु से हिंदी में अनूदित काव्यों में श्री दुर्गानंद की रचना 'फिरदौसी' उल्लेखनीय है। गुर्रम् जाषुआ की तेलुगु काव्य-कृति 'फिरदौसी' में विडंबनापूर्ण परिवेश में मानव जीवन की मार्मिक एवं दुःखद झाँकी प्रस्तुत की गई है। मूल कवि की संवेदना, मूल दृष्टि व काव्यादर्श के साथ-साथ काव्यात्मा के समग्र स्वरूप को आत्मसात् करके श्री दुर्गानंद ने

उक्त प्रबंध काव्य का हिंदी रूपांतरण प्रस्तुत करके हिंदी कविता को सुसंपन्न बनाया है। तेलुगु की वचन कविता के पितामह पुरिपंडा अप्पलस्वामी की अड़तीस कविताओं को श्री गुर्रम् सुब्बारावजी ने सन् 1966 में 'तेलुगु के आधुनिक कवि पुरिपंडा अप्पलस्वामी' शीर्षक से प्रकाशित किया है। इस काव्य-रूपांतर में अनुवादक के मूल कवि के अंतरंग में बैठकर उनकी विशिष्ट भावनाओं तथा कोमल अनुभूतियों को, कविता के मूल सौंदर्य को अक्षुण्ण रखते हुए अत्यंत सहज शैली में प्रस्तुत किया है।

डॉ. सूर्यनारायण 'भानु' ने आधुनिक तेलुगु के पैंतालीस कवियों की विशिष्ट कविताओं का हिंदी रूपांतरण 'तेलुगु की आधुनिक काव्यधारा' शीर्षक से 'जागृति', 'कल्पना', 'प्रगति' आदि खंडों में प्रस्तुत किया है। कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण, भाव कवि देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, दलित कवि गुर्रम् जाषुआ और कवि श्रीरंगम नारायण बाबू की प्रतिनिधि कविताओं का अनुवाद अत्यंत प्रांजल, उदात्त एवं प्रौढ़ भाषा में किया है। डॉ. सूर्यनारायण 'भानु' जी ने मौलिक कविताओं में अभिव्यंजित रस के अनुकूल मात्रिक छंदों का सफल प्रयोग किया है। उन्होंने तेलुगु के प्रगतिशील कवि श्रीरंगम श्रीनिवास राव (श्री-श्री) की प्रतिनिधि कविताओं का रूपांतरण भी किया है। 'तेलुगु के आधुनिक कवि श्री श्री' शीर्षक काव्य कृति से उद्धृत ये पंक्तियाँ 'भानु' जी की अनुवाद कला की विशिष्टता का परिचय देती हैं। यथा—

"भूत हूँ
यज्ञोपवीत हूँ
वैप्लव्य गीत हूँ मैं
सुध करूँ तो पद्य होऊँ"

डॉ. चावलि सूर्यनारायण मूर्तिजी ने 'आधुनिक तेलुगु कविता-प्रथम भाग' के संपादन के साथ-साथ उसमें अनूदित पैंसठ कविताओं में से बीस कविताओं का अनुवाद भी किया है। तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों की उत्कृष्ट कविताओं का अनुवाद मूर्तिजी ने मूल कविताओं की आत्मा को आत्मसात् कर सुव्यवस्थित एवं प्रौढ़ हिंदी काव्य-शैली में प्रस्तुत किया है।

श्री पी.वी. नरसिंह राव ने ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्री सत्यनारायण कृत 'वेइपडगलु' का हिंदी रूपांतर 'सहस्रफण' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। श्री राव ने मूल रचना के सूक्ष्म एवं जटिल अभिव्यंजना-पक्ष को बड़ी क्षमता के साथ भाषांतरित किया है। डॉ. भीमसेन 'निर्मल' जी ने अपनी काव्यकृति 'कवि श्री आरुद्र' में आधुनिक तेलुगु के विख्यात कवि श्री आरुद्र की प्रतिनिधि कविताओं का सुंदर काव्य-रूपांतरण हिंदी में प्रस्तुत किया है। आरुद्र की कविताओं की विवरणात्मक समालोचना भी भीमसेन निर्मलजी ने की है। उन्होंने इस कृति में संकलित कविताओं के अनुवाद में ठेठ हिंदी शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, जिससे भाषा में सजीवता एवं प्रवाहमयता आ गई है। डॉ. निर्मलजी ने आधुनिक तेलुगु कविता के उत्कृष्ट कवि डॉ. सी. नारायण रेड्डीजी की काव्य-कृति विश्वंभरा' का सुंदर काव्य रूपांतर प्रस्तुत कर हिंदी काव्य-भंडार को सुसंपन्न बनाया है। निर्मलजी ने नारायण रेड्डी जैसे महान् तेलुगु कवि की प्रतिभा के आलोक में भारतीय कविता को तेजोमय बनाया है। फलतः नारायण रेड्डीजी को 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार से अलंकृत कर देश ने तेलुगु कविता को सम्मानित किया है।

सन् 1973 में चेबोलु शेषगिरि राव ने आंध्र के विख्यात कवि श्री मधुनापंतुलु सत्यनारायण शास्त्री के 'आंध्र पुराण' के एक प्रसंग का हिंदी काव्य रूपांतरण 'मोतीनाथ' नाम से प्रस्तुत किया है। 'मोतीनाथ' चार अध्यायों में विभक्त खंड काव्य है। इस काव्यानुवाद से मूल कविता के रसास्वादन

को पाठकों के लिए सुग्राह्य बनाने में अनुवादक का प्रयत्न एवं परिश्रम सराहनीय है।

डॉ. एम. रंगय्या ने सन् 1977 में तेलुगु की कतिपय आधुनिक कविताओं का हिंदी रूपांतर 'आधुनिक तेलुगु काव्य परिमल' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। अनुवादक ने इस रचना में तेलुगु के सुप्रसिद्ध महाकवि गुरजाड़ा से लेकर अत्याधुनिक कवियों की प्रतिनिधि कविताओं का सरल, प्रांजल एवं प्रभावशाली भाषा में रूपांतरण किया है। इन्होंने अनुवाद में मुक्त लयात्मक छंदों के साथ-साथ सममात्रिक छंदों का भी प्रयोग किया है। एम. मल्लेश्वर राव (निर्मलानंद वात्सायन) ने सन् 1978 में तेलुगु के प्रगतिवादी कवि श्री कुंदुर्ति की अट्ठाईस कविताओं का 'मेरे बिना' शीर्षक से काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है। कुंदुर्ति की अट्ठाईस कविताओं के अनुवाद में हिंदी काव्य शैली का व्यवस्थित प्रयोग लयात्मक मुक्त छंदों में किया गया है।

आचार्य पी. आदेश्वर राव की दूसरी काव्यकृति 'लोकालोक' सन् 1989 में प्रकाशित हुई है। इसमें आचार्य पी. आदेश्वर राव ने आंध्र के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, तेलुगु कवि डॉ. बेजवाड़ा गोपाल रेड्डी की चुनी हुई तेलुगु कविताओं का हिंदी में रूपांतर किया है। डॉ. रेड्डीजी की कविताओं का हिंदी रूपांतर प्रस्तुत कर आदेश्वर रावजी ने हिंदी कविता क्षेत्र को विस्तृति प्रदान की है। हिंदी काव्य-शैली तथा छंदों पर डॉ. राव का अधिकार उनके संपूर्ण काव्यानुवाद में दृष्टिगोचर होता है।

अनुवाद कला की विशिष्टताओं की दृष्टि से तेलुगु से हिंदी में अनूदित विवेच्य काव्यकृतियाँ अत्यंत विशिष्ट बन पड़ी हैं। कथ्य एवं शिल्प के सुंदर समन्वय को हूबहू उतारने का सचेष्ट प्रयास किए जाने के फलस्वरूप ये अनूदित रचनाएँ सूक्ष्म एवं संश्लिष्ट अनुभूतियों को पूर्णतः कलात्मक अभिव्यक्ति देने में सक्षम प्रतीत होती हैं। आंतरिक एवं बाह्य प्रभाव की दृष्टि से निकटतम् शब्दों का प्रयोग करना, ध्वन्यार्थ की विभिन्नता के अनुरूप शब्दों का संदर्भ चयन करना, शब्दों का चयन अर्थ-विस्तार और अर्थ संकोच की दृष्टि से करना, लक्ष्य-भाषा में अर्थ-बिंब का निर्माण अपेक्षित पृष्ठभूति में करना आदि विशेषताओं को दृष्टि में रखने के कारण तेलुगु के प्रतिनिधि रचनाओं की मौलिक अनुभूतियों को अनूदित करने में रूपांतरकार सफल हुए हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहाराव के अपर सचिव और भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी 'राष्ट्र रत्न' श्री पी.वी.आर.के. प्रसाद ने तिरुमला तिरुपति देवस्थानम के कार्यकारी अधिकारी के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान अपने तथा दूसरों के अनुभवों को, 'सर्वसंभवाम्' (नाहं कर्ता, हरिःकर्त्ता) शीर्षक से 'स्वाति' साप्ताहिक तेलुगु पत्रिका में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित किया। तदनंतर 'सर्वसंभवाम्' शीर्षक से यह रचना पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। तेलुगु पाठकों ने इस रचना का भव्य स्वागत किया है। इसे प्रो. एस ए. सूर्यनारायण वर्माजी ने "जब मैंने तिरुपति बालाजी को देखा" शीर्षक ग्रंथ के रूप में हिंदी में रुपांतरित किया। इस रचना में अलौकिक अनुभूति संपन्न रचनाकार के अनुभव तीस अध्यायों के अंतर्गत परोक्षतः श्री बालाजी की महिमाओं का वर्णन करनेवाले और पाठकों को अलौकिक आनंद देनेवाले हैं। तिरुमला में कलियुग दैव के रूप में प्रतिष्ठित बालाजी (श्री वेंकटेश्वर स्वामी) की लीलाओं को अनेक अद्भुत घटनाओं में अनुभूत कर भक्त लोग परवश होते हैं। रचनाकार ने अपने जीवन की कुछ ऐसी

महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण दिया है, जो असंभव को संभव बनानेवाली ईश्वरीय शक्ति के स्पष्ट प्रमाण देती हैं और विश्वात्मा के प्रति भक्तजनों की आस्था को सुदृढ़ बना देती है। इस रचना का बोल-चाल की भाषा में लिखा गया है। यज्ञ को समाप्त कराने में, ध्वजस्तंभ को प्रतिष्ठत करने में तथा दास साहित्य परियोजना और अन्नमाचार्य परियोजना को लागू करने में लेखक अपनी सफलता का श्रेय परमात्मा श्रीनिवास को ही देते हैं। इन अध्यायों में भावना के धरातल पर अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। इन अध्यायों का अनुवाद करते समय भावनाओं की तीव्रतम अभिव्यक्ति में सहायक तत्व के रूप में भाषा का प्रयोग करने को प्राथमिकता दी गई है।

श्री वेलुवोलु बसवपुन्नय्या कृत 'सीतायनम' का अनुवाद प्रो. एस.ए. सूर्यनारायण वर्माजी ने किया। प्रो. वर्माजी ने कहा मैंने इसे इसलिए हिंदी में रूपांतरित किया कि इस में सीता एक साधारण नारी के रूप में नहीं, देवी स्वरूप प्रतीत हीती है। ग्रंथ के अनुवाद को पूरा करते समय मुझे अहसास हुआ कि नारी को ढोल, गँवार, शूद्र एवं पशु की श्रेणी में रखना उसका अपमान करना है। उसका चरित्र कई गुना उच्चकोटि का है। श्री वेलुवोलु बसवपुन्नय्या ने मानवीय सदाशयता, सामाजिक प्रतिबद्धता और मूल्य-दृष्टि को अपनी कृतियों द्वारा स्पष्ट कर वर्तमान तेलुगु साहित्य संसार में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सीतायनम उनका नवीनतम तेलुगु उपन्यास है, जिसमें बसनपुन्नय्या ने राष्ट्र-धर्म और मानव-धर्म के प्रश्न के नेपथ्य में दशरथ-पुत्र श्रीराम ने अपनी धर्मपत्नी को जो दंड दिए, उनकी समीक्षा की है। प्रो. वर्मा ने इस रचना के हिंदी रुपांतर को 'सीतायन' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। इस रचना में सीता के चरित्र के कई आयामों का उद्घाटन हुआ है। महर्षि जनक की पुत्री, भूसुता, वीर्य शुल्का, अयोनिजा, दशरथ की बहू और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की धर्मपत्नी सीता कारण जन्मा है। उसका चरित्र दिव्य है। इस उपन्यास में राम-कथा के प्रसंगों की मौलिकता को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए बसवपुन्नय्याजी ने चरित्र को विकास के नए आयाम दिए। संस्कृतनिष्ठ शब्दों की बहुलता, कई संदर्भों में प्रकृति सौंदर्य का विस्तारपूर्वक वर्णन, लंका नगरी की शोभा का विस्तृत वर्णन, नारी-सौंदर्य का नख-शिख वर्णन, लंबे-लंबे कथनों द्वारा कथा-प्रसंगों को मार्मिक बनाने का प्रयास, नारी-अस्तित्व और उसकी स्वतंत्रता से जुड़े कई प्रश्नों को उठाने के संदर्भ में दीर्घ संवादों का प्रयोग, विरह-वेदना की अभिव्यक्ति के अवसर पर भावनाओं की तीव्रता को प्राथमिकता देना, युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में लेखक की ओर से लंबी पृष्ठभूमि बाँधने का प्रयास, भारतीय संस्कृति व धार्मिक आस्थओं के नेपथ्य में विभिन्न पात्रों की मनोवृत्तियों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं का अंकन करने की अद्भुत क्षमता आदि के काराण यह उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय बन पड़ा है।

तेलुगु प्रांतों में अनेकानेक हिंदीप्रेमी राष्ट्रवादी विचारधारा के अनुवादकों ने समय-समय पर तेलुगु के सुप्रसिद्ध रचनाओं को राष्ट्र भाषा हिंदी में प्रस्तुत करके भारत की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखने का स्तुत्य और सराहनीय प्रयास किया है। समय और आलेख की सीमा के कारण सभी अनुवाद कार्य और अनुवादकों का परिचय इसमें शामिल नहीं कर पा पहा हूँ। भविष्य में तेलुगु प्रांत की सभी अनूदित रचनाओं और अनुवादकों का सविस्तार परिचय देने का प्रयास करूँगा।

□

profsvssnraju@gmail.com

तमिलनाडु में हिंदी : भारतीय एकसूत्रात्मकता की ओर अग्रसर तमिल समाज

—डॉ. आनंद पाटील

तमिलनाडु भक्ति के स्रोत की भूमि है। यह वह पूण्यभूमि है, जहाँ देश के सर्वाधिक मंदिर हैं। यह पवित्र धरती मध्यकालीन भक्ति एवं भारतीयता की अंतःप्रवाही धारा का उद्गम स्थल रही है, परंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत स्वार्थांध राजनेताओं की संकुचित मानसिकता ने तमिलनाडु की जनता में संकीर्ण दृष्टि का संचार करने का सुनियोजित प्रयास किया, जिसके कारण हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के राष्ट्रव्यापी उपक्रम पर निरंतर कुठाराघात होता रहा। तब से लेकर आज तक हिंदी की स्थिति एवं दुर्दशा की चर्चा करते हुए भाषाई राजनीति का उल्लेख स्वाभाविक रूप से आ ही जाता है। वस्तुतः यह तथ्य सर्वविदित है कि आधुनिक समय में तमिलनाडु भाषाई, साहित्य और राजनैतिक दृष्टि से अत्यंत क्रियाशील राज्य (समाज) है। इस संबंध में यह धारणा स्पष्ट है कि भाषा का संबंध प्रत्यक्षतः जनभावनाओं से है। इस सत्य के आलोक में सत्ताकाँक्षी राजनीति भारतीय एकसूत्रता (एकात्मता) को ध्वस्त करते हुए जन-मन की भावनाओं को भाषाई आधार पर कलुषित कर भारत की कथित एवं कल्पित भाषा समस्या को अत्यधिक जटिल बनाती रही है। तमिलनाडु दीर्घावधि से साम्प्रतिक समय तक 'भाषाई राजनीति का उपकरण' (औजार एवं हथियार) बना हुआ है।

स्वतंत्रता के इस 'अमृतकाल' में भी एक ओर भाषाई और सांस्कृतिक अंतर पर चर्चा-परिचर्चाएँ हो रही हैं, परंतु 'भारत विखंडन' के नानाविध प्रयासों के बावजूद तमिलनाडु का लोक मन 'उत्तरं यत समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं। वर्ष तद भारतं, नाम भारती यत्र संतति।' में निहित ऐतिहासिक सत्य और एकसूत्रता का समर्थन करता हुआ दिखाई दे रहा है। कहना न होगा कि विगत कुछ वर्षों में तमिल भाषी समाज में 'हम सब भारतीय' की भावना से अनुप्राणित 'सांस्कृतिक ऐक्य' पुनः शनैः-शनैः जाग्रत् हो रहा है। रामायण काल के विविध प्रसंगों के बहुधा पुनःस्मरण एवं 'भक्ति द्राविड़ी उपजी' में विद्यमान तथ्य-सत्य की चर्चाओं के कारण तमिल समाज ने भारत तोड़क 'सांस्कृतिक अंतर' को अस्वीकृत करना आरंभ कर दिया है। 'काशी तमिल संगम' जैसी पहल ने इस भावधारा में उत्तर और दक्षिण के मध्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को अत्यधिक जीवंतता प्रदान करने का काम किया

* तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर।

है। भारतीय सांस्कृतिक एकसूत्रता का पुनःस्मरण करानेवाले ऐसी अनेकानेक सकारात्मक पहलों (कारणों) से राजनीति द्वारा निर्मित कृत्रिम अंतर (पार्थक्य) शनैः-शनैः समाप्त हो रहा है। इस दृष्टि से नानाविध भाषाई कृत्रिम विवादों के बीच वर्तमान तमिलनाडु में हिंदी की स्वाभाविक स्वीकृति निर्विवाद रूप में बढ़ी है। राजनैतिक सत्तांतरणों के बीच तमिल लोकमन अत्यधिक गहराई से हिंदी की आवश्यकता को जानने-समझने लगा है और येन-केन-प्रकारेण हिंदी की ओर आकृष्ट हो रहा है।

जबकि, तमिलनाडु में हिंदी की स्थिति एवं दशा के संदर्भ में यह तथ्य रेखांकनीय है कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरों की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ है। शहरों में विद्यमान शैक्षिक संस्थाओं में विविध राज्यों/क्षेत्रों के विद्यार्थियों के आवागमन के कारण संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की स्वाभाविक स्वीकृति बढ़ी है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदी अभी तक नहीं पहुँच पाई है। नगर एवं शहरों में हिंदी में होनेवाले कार्यक्रम एवं भाषणों का तमिल से हिंदी और हिंदी से तमिल में आशु-अनुवाद हो रहा है। इस स्थिति ने यह स्पष्ट कर दिया है कि हिंदी का सामान्य ज्ञान, वर्तमान तथा भविष्य की दृष्टि से आवश्यक है। इस दृष्टि से मशीनी अनुवाद ने भी एक सीमा तक भाषाई पार्थक्य दूर कर भारत ऐक्य की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सोशल मीडिया पर तमिल में लिखे जानेवाले संदेश हिंदी में और हिंदी में लिखे जानेवाले संदेश तमिल में अनूदित होकर पढ़े-समझे जा रहे हैं। वहीं, ओ.टी.टी. पर उपलब्ध फिल्म एवं सीरीज (सीजन) के लिखित भाषांतरों (सबटाइटल) के माध्यम से भी भाषाई पार्थक्य का विभ्रम टूट रहा है और यथार्थ रूप में सार्वदेशिक स्तर पर भारतीय भाषाओं की पारस्परिक संसक्ति बढ़ी है। यह भारतीय एकसूत्रात्मकता के साथ-साथ हिंदी के लिए सकारात्मक संकेत है।

शैक्षिक स्तर पर हिंदी की व्याप्ति का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि सरकारी पाठशालाओं के अतिरिक्त प्रायः सभी शिक्षा संस्थानों में हिंदी वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जा रही है। उच्चतर शिक्षा में हिंदी भले ही पिछले पायदान पर हो अथवा प्रायः अनुपस्थित हो, परंतु स्कूली शिक्षा के अंतर्गत निजी स्कूलों में हिंदी की स्थिति पहले से उन्नत स्तर प्राप्त कर चुकी है। वहीं, हिंदी के यथोचित प्रशिक्षण की अनुपलब्धता और निजी संस्थानों द्वारा दिया जानेवाला न्यूनतम वेतन, भाषिक दृष्टि से संपन्न अध्यापकों को हतोत्साहित करनेवाला प्रतीत होता है। यद्यपि दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना व्यापक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए की गई थी, परंतु वर्तमान में हिंदी का, हिंदी में स्तरीय एवं समृद्ध ज्ञान प्रदान करने की दृष्टि से उसका योगदान विवादास्पद बताया जाता है। कारण स्वरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हिंदी प्रचार-प्रसार की अपेक्षा हिंदी में अधिकाधिक पी-एच.डी. उपाधि उत्पादन का केंद्र बन चुकी है। उसे प्रदत्त 'उच्च शिक्षा केंद्र' का दर्जा गंभीरतम रूप से प्रश्नों के घेरे में है।

यह भी उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी की घुसपैठ के कारण तमिल समाज में भाषाई दृष्टि से अनेक विकार उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान पीढ़ी अपनी भाषाई संस्कृति से कटकर अंग्रेजी की ओर सहज ही झुकी हुई दिखाई देती है। अधिकतर युवा यह मानते हैं कि हिंदी से कोई रोजगार प्राप्त हो न हो, किंतु अंग्रेजी अध्ययन से कोई-न-कोई रोजगार अवश्य प्राप्त होगा। यही मनःस्थिति तमिल भाषा के साथ भी बनी हुई है,

परंतु शिक्षा के क्षेत्र में माध्यम भाषा और रोजगार की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा का ज्ञान-विज्ञान का आधार बनना और कालांतर में उसका स्थायी रूप ले लेना, इसके प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। यह तथ्य पुनः स्मरणीय है कि ऐसा घटित होने के लिए द्रविड़ राजनीति द्वारा आरोपित हिंदी विरोध प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। उसी तात्कालिक प्रभाव में तमिल समाज ने हिंदी विरोध की हृदयव्यापी भावना को दृष्टिगत रखते हुए अंग्रेजी भाषा की स्वीकृति को सर्वतः उचित माना और हिंदी को लेकर टकराव की स्थिति अधिक व्यापक होती गई। इस संदर्भ में निजी प्रसंग उल्लेखनीय है— तमिलनाडु में हिंदी का विरोध तब भी हुआ, जब 26-28 जुलाई, 2012 के दौरान तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय में 'हिंदी क्लब' (हिंदी संघ) की स्थापना के अवसर पर हिंदी की राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था, जो कि किसी भी विषय की दृष्टि से विश्वविद्यालय की सर्वथा प्रथम राष्ट्रीय संगोष्ठी थी। उस समय भी हिंदी विरोध प्रदर्शन का स्वरूप अत्यधिक उग्र था। कुछ लोगों ने तिरुवारूर नगर में लगे हिंदी के बैनर फाड़ दिए थे और कालांतर में हिंदी विभाग की स्थापना (2013-14) के प्रयासों को देखते हुए अनजान व्यक्तियों द्वारा प्रस्तावक को डराने-धमकाने की घटनाओं को भी प्रश्रय दिया गया था। ऐसी परिस्थिति में सर्वसामान्य तर्क यही था कि 'हिंदी से प्यार नहीं और अंग्रेजी से बैर नहीं।' यद्यपि कठिन परिस्थितियों में भी 'हिंदी क्लब' द्वारा हिंदी की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ होती रहीं, जिनसे स्थानीय पाठशालाओं को हिंदी शिक्षण में पहले करने के लिए बल मिला और इस पूरे वातावरण के परिप्रेक्ष्य में, सितंबर 2014 में हिंदी विभाग सफल रूप से स्थापित हो पाया। तत्कालीन विरोध के बावजूद एकीकृत परास्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में वैकल्पिक/द्वितीय भाषा के विकल्प के रूप में हिंदी अध्ययन के लिए, पहले ही बैच में सौ से अधिक विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया, जिसमें तमिलनाडु के विद्यार्थियों की संख्या उल्लेखनीय थी। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी की पढ़ाई करने के लिए विद्यार्थियों की कमी नहीं है, अपितु संस्थानों/उपक्रमों (अवसर) की निश्चय ही कमी है।

तमिलनाडु में हिंदी की स्थिति-गति को रेखाँकित करते हुए यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि खाड़ी तथा उससे घिरे देशों में (गल्फ कंट्रीज) नौकरी के लिए जानेवालों ने पहले-पहल हिंदी की आवश्यकता को जाना-समझा और ऐसे ही लोगों की आवाजाही के कारण हिंदी प्रचारित-प्रसारित भी होती रही। इस दृष्टि से हिंदी निर्यात होकर उपयोगिता (आवश्यकता) का आकलन करते हुए आयात हुई है। तमिलनाडु सरकार की ओर से आज भी हिंदी के संबंध में विरोध की स्थिति जस-की-तस बनी ही हुई है, जो कि भारत की एकसूत्रता एवं अखंडता में अराजक (बाधक) तो है ही, किंतु तमिल समाज के उज्ज्वल भविष्य की कामना (अपेक्षा) में भी बाधक है, परंतु तमिल समाज सत्य का साक्षात्कार कर भाषाई दीवारों को लाँघते हुए धीरे-धीरे उस विरोधी मानसिकता से मुक्त हो रहा है। यह बहुत सकारात्मक पक्ष है, जिसकी ओर निरंतर अग्रसर होना कल्याणकर सिद्ध होगा।

भाषाई चिंतन के इस परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि तमिलनाडु में हिंदी के विकास के लिए दो मार्ग सर्वोत्तम प्रतीत होते हैं। एक— भक्ति की एकसूत्रता का प्रसार और दूसरा— भारतीयता के मूल मंत्र एवं सूत्रधारक राजनैतिक दल का राज्य की राजनीति में व्यापक हस्तक्षेप और प्रशासन। यदि पहले मार्ग पर पूरी तन्मयता से काम किया जाता है, तो दूसरा मार्ग स्वयमेव पूर्ण

हो सकता है। दोनों मार्गों की सिद्धि के उपरांत हिंदी का मार्ग सहज ही प्रशस्त होगा। इसमें दो मत नहीं कि हिंदी का सर्वग्राही रूप राजनीति से होकर ही निकल सकेगा। चूँकि हिंदी सबको साथ लेकर चलने के अदम्य सामर्थ्य से परिपूर्ण है, तथापि उसका उत्तरोत्तर विकास सहज और स्वयमेव होता जाएगा।

यह स्पष्ट है कि हिंदी का विरोध राजनैतिक रूप में होता रहा है और तामिळी समाज उस प्रवाह में भावात्मक रूप में बहता रहा है। इसी विरोध के आधार पर द्रमुक सत्तासीन हो पाई थी। इन सब वाद-विवादों के बीच वर्तमान में पुरानी पीढ़ी के तमिल लोग (बुजुर्ग) प्रायः कहते हैं कि "देश में अन्यत्र कहीं भी जाते हैं, तो बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।" वे मानते हैं कि "हिंदी जानने से पूरे देश में सबसे जुड़ने का अवसर मिलता है और दोनों भाषाएँ परस्पर आदान-प्रदान से विराट् बनतीं हैं। अंग्रेजी को स्वीकार कर हिंदी को त्यागने का कोई औचित्य नहीं।"

इस तथ्य को प्रायः उद्धृत किया जाता है कि हिंदी को भारतीयों की 'राष्ट्रीय जनसंपर्क भाषा' के रूप में मान्यता अर्जित कराने के लिए स्वतंत्रता-पूर्व से ही प्रयास होते रहे हैं। यद्यपि इस संज्ञा का प्रयोग नहीं हुआ था, परंतु प्रचारकों की भावना इसी तथ्य-सत्य पर आश्रित थी। उन प्रयासों में एक प्रयास सर्वविदित है—गांधी ने सन् 1918 में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की थी। तमिल जनमानस में गांधी के प्रति विशेष सम्मान का भाव है। अतः गांधी के नाम और नीति के सहारे भी हिंदी का मार्ग प्रशस्त हो (किया जा) सकता है। वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में 'हिंदी विरोध' को 'गांधी विरोध' के रूप में देखने और प्रचारित करने की आवश्यकता है। इससे तमिल जनता का व्यापक समर्थन सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वस्तुतः इस तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि 'हिंदी भाषी' और 'हिंदीतर भाषी' के भेद को मिटाकर हिंदी को 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय संपर्क भाषा' के रूप में प्रचारित करने की आवश्यकता है। उल्लेखनीय है कि 'हिंदीतर' संबोधन 'इतर' अर्थात् अन्य का सूचक है और इससे सौतेलेपन का भाव सहज ही विकसित होता है। एक विभाजक रेखा सहज ही बन जाती है। वैसे भी, ऊपर स्पष्ट किया है कि हिंदी किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं है। हिंदी को 'क्षेत्र' से मुक्त करने से बहुत सारी ग्रंथियों का स्वयमेव समाहार हो जाएगा। इससे हिंदी का विस्तार भी होगा और शब्द संपदा का विकास भी।

विविध संगठनों एवं स्वयंसेवी व्यक्तियों, संस्थाओं के सहयोग से हिंदी-तमिल भाषिक विकास के कार्यों के साथ-साथ लोगों को जोड़ने एवं उनमें भरोसे का निर्माण करने की आवश्यकता है, जबकि यह स्पष्ट है कि तमिल भाषी समाज के लिए हिंदी स्वार्थ का कारण बन चुकी है। ऐसे में शिक्षा संस्थानों के माध्यम से सही दिशा में कार्य करने से हिंदी की स्वीकार्यता और विकास सहज संभव है। इसमें कदापि कोई संशय नहीं कि तमिलनाडु की राजनीति के बरक्स हिंदी का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। स्वयंसेवी संगठनों की व्याप्ति भी हिंदी के प्रसार में महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में कार्यरत है। कहना न होगा कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का मार्ग लोकतंत्रात्मक मार्ग से ही निकलेगा, परंतु केंद्र सरकार की राजनैतिक दृढ़ इच्छाशक्ति ही इस लोकतंत्रात्मक कार्य को फलीभूत कर सकती है। कबीर ने अकारण ही नहीं कहा था—"कबीरा लोहा एक है, गढ़ने में है फेर।"

□

anandpatil.cutn@gmail.com

हिंदी भाषा शिक्षण और अनुवाद : केरल के संदर्भ में

—प्रो. प्रमोद कोवप्रत

भारत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सामासिक संस्कृति है। उसमें रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, आचार-अनुष्ठान, भाषा आदि में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। 'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी।' वास्तव में देश का सौंदर्य इस भाषा वैविध्य पर टिका हुआ है। बाँसुरी के छेदों से जैसे सप्तस्वर निकलता है, उसी तरह भारतीय भाषाएँ हैं, इससे संस्कृति का संगीत निकलता है। हिंदी आज एक प्रांत की भाषा मात्र नहीं है, वह भारत की ही नहीं, संपूर्ण विश्व की भाषा के रूप में तेज गति से विकसित हो रही है। भारतीय संदर्भ में देखें, तो हिंदीत्तर प्रांतों में हिंदी का अधिक प्रचार-प्रसार के साथ शिक्षण भी चलता है। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना आदि दक्षिण के प्रांत भाषा के आधार पर संस्थापित राज्य हैं। यहाँ तेलुगू के दोनों राज्यों की अपेक्षा अन्य तीनों राज्यों में हिंदी का सामान्य व्यवहार में कम उपयोग किया जाता है। केरल में मलयालम बोली जाती है, मगर हिंदी का प्रचार-प्रसार किसी-न-किसी तरह हो रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय लोगों ने खादी और हिंदी को राष्ट्रीय भावना के प्रतीक के रूप में देखा। तीर्थाटन, पर्यटन आदि भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कारण बने। इसके अलावा राष्ट्रीय भावना को फैलाने तथा देश को एक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से स्वतंत्रता काल में हिंदी प्रचार का व्यापक आंदोलन चलाया गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो मद्रास (चेन्नई) में गांधीजी के नेतृत्व में सन् 1918 में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना हिंदी के औपचारिक रूप से शिक्षण का प्रारंभ कह सकते हैं। सभा से प्रेरित होकर दक्षिण में कई हिंदी संस्थाओं की स्थापना भी होती है तथा वे सक्रिय भी होती हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षण को और भी महत्त्व मिल गया। तमाम प्रशासनिक क्षेत्रों में हिंदी फैलने लगी। सरकारी कार्यालय, बैंक, जीवन बीमा निगम आदि। टेक्नोलॉजी एवं वैश्वीकरण के युग में इसे और भी महत्त्व प्राप्त हो गया है।

केरल में हिंदी विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सिखाई जाती है। दूसरी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन कॉलेजों में चलता है। स्कूलों में 'त्रिभाषा सूत्र' के रूप में मातृभाषा, अंग्रेजी और हिंदी का अध्ययन-अध्यापन चलता है। शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा संशोधित 'त्रिभाषा सूत्र' में भाषाओं को निम्नलिखित क्रम से स्कूली पाठ्यचर्या में रखने की नीति का समर्थन मिलता है—

1. मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा
2. संघ की राजभाषा (हिंदी) अथवा (जब तक स्थिति बनी हुई है) संघ की सहयोगी

* कालिकट विश्वविद्यालय (भारत) के हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष।

राजभाषा (अंग्रेजी)

3. आधुनिक भारतीय अथवा विदेशी वह भाषा, जो (1) और (2) के अंतर्गत न आती हो और शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त न होती हो।

दक्षिण तथा केरल के हिंदी प्रचार एवं शिक्षण के प्रसंग में हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का योगदान अति विशिष्ट है। हिंदी को भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का आह्वान वे बराबर करते रहे। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष पद पर सन् 1918 में दिया उनका भाषण महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार के कई भाषणों तथा 'यंग इंडिया', 'इंडियन ओपिनियन' जैसे पत्रों में वे लगातार लिखते रहे। 18.8.1906 को उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' (दक्षिण अफ्रीका) में लिखा है—

"भारत के विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजी बोलने-वाले लोग काफी मिल जाते हैं किंतु उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी हैं और हमेशा थोड़ी ही रहेगी, क्योंकि इसका मुख्य कारण है, यह भाषा कठिन है और विदेशी भी। साधारण मनुष्य इसे ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए संभव नहीं कि अंग्रेजी के जरिए भारत एक राष्ट्र बन जाए। अतः भारतीयों को भारत की ही कोई भाषा पसंद करनी पड़ेगी। गुजराती, बंगला तमिल आदि बोलनेवाले भारतीय हैं तो बहुत, फिर भी इनमें से किसी एक (भाषा) के सारे भारत में फैलने की बहुत कम संभावना है। बाकी बच गई हिंदी भाषा। यह भाषा उत्तर भारत में सब लोग बोलते हैं, इसकी माता संस्कृत और फारसी होने के कारण यह हिंदू और मुसलमानों दोनों को अनुकूल पड़ सकती है। इसके अलावा चूँकि संन्यासी और फकीर यही भाषा बोलते हैं, इसलिए इसका प्रसार सब जगह होता है। अनेक अंग्रेज भी इसे सीखते हैं। इस भाषा का फैलाव बहुत है। यह भाषा अपने आप में बहुत मीठी, नम्र और ओजस्वी है। इसमें बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं और अब भी लिखी जा रही हैं। हर एक पाठशाला में स्वभाषा के अतिरिक्त इस भाषा (हिंदी) का शिक्षण दिया जाना चाहिए। माता-पिता को भी चाहिए कि वे अपने बच्चों में बचपन से ही हिंदी भाषा बोलने की आदत डालें। तभी भारत वास्तविक रूप में एक राष्ट्र बन सकेगा।"

केरल में हिंदी शिक्षण का इतिहास काफी पुराना है। स्वैच्छिक संस्थाओं, हिंदी प्रचार सभाओं, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में इसका इतिहास फैला हुआ है। केरल में हिंदी प्रचार के प्रारंभ का श्रेय एम.के. दामोदरन उण्णि को जाता है। लगभग 1922 से यह शुरू हुआ और कई लोगों ने इस प्रयास को आगे बढ़ाया। उस समय घरों में, पंचायतों में, वाचनालयों में लोग हिंदी सीखते थे। 1929 में प्रथम अखिल केरल हिंदी प्रचार सम्मेलन भी संपन्न हुआ था, जो एर्नाकुलम के विख्यात कॉलेज महाराजास कॉलेज में संपन्न हुआ था। इसी तरह पहली बार सन् 1928 में कोच्चि राज्य की विधानसभा में स्कूल के पाठ्यक्रम में हिंदी को अनिवार्य रूप से स्थान देने के संबंध में एक प्रस्ताव पारित किया गया था। सन् 1929 में इसका कार्यान्वयन शुरू होने लगा। एर्नाकुलम, त्रिशूर आदि के कुछ निजी स्कूलों में हिंदी का अध्ययन शुरू हुआ था। इसी तरह ट्रावनकोर लेजिस्लेटिव काउंसिल में 1931 में रियासत के सभी स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य पाठ्यक्रम बनाने का प्रस्ताव आया था। इस पर भी काफी बहस हुई। सन् 1934 में तिरुवनंतपुरम और सन् 1936 में मालाबार प्रांत के कुछ स्कूलों में हिंदी के अध्ययन का प्रारंभ होता है। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तिरुकोच्चि रियासत ने स्कूलों में हिंदी पढ़ाने के संदर्भ में विशेष आदेश निकाले और शासक की तरफ से कुछ महत्त्वपूर्ण कदम भी उठाए गए—

सन् 1956 में केरल राज्य की स्थापना भाषा के आधार पर हुई। केरल के मुख्य रूप से तीन प्रांत थे—तिरुवितांकूर, कोच्चि या 'मालाबार'। ये तीनों

मिलकर एक राज्य बन गया। केरल के स्कूलों में मातृभाषा मलयालम, फिर अंग्रेजी और फिर हिंदी को सिखाने की व्यवस्था की गई। तृतीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाँचवीं कक्षा से शुरू करने की व्यवस्था की गई। इसे सभी स्कूलों में अनिवार्य कर दिया गया। श्रवण, भाषण, वाचन और लेखन चार भाषाई कौशल हैं। इन चारों कौशलों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम बनाया गया है। इसमें सूचनाओं, अभ्यास एवं चित्रों के साथ सरल ढंग से समझाने की व्यवस्था की गई। बच्चे मलयालम की तरह आसानी से हिंदी सीखते हैं। इसी तरह सरकार की तरफ से ही हिंदी शिक्षण डिप्लोमा पाठ्यक्रम शुरू किया गया, जिससे प्रशिक्षित अध्यापक तैयार हो जाएँ। ऐसे केंद्रों की स्थापना त्रिशूर और तिरुवनंतपुरम में हुई थी। केरल के शिक्षकों को तैयार करने में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, केरल हिंदी प्रचार सभा की भूमिका विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों की तरह ही महत्त्वपूर्ण रही है। स्कूलों में हिंदी अनिवार्य करने का फायदा यह हुआ कि जो भी स्कूली शिक्षा प्राप्त हैं, उन्हें हिंदी का सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है, भले ही प्रवाहमयता के साथ वे बोल न पाएँगे। फिर भी हिंदी समझ पाएँगे और टूटी-फूटी हिंदी में अपनी अभिव्यक्ति कर पाएँगे। वर्तमान में केरल के कालीकट जिले के चेलन्नूर पंचायत की ओर से बहुत बड़ा कदम उठाया गया है। उधर संपूर्ण पंचायत के लोगों ने संपूर्ण हिंदी साक्षरता अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से हासिल की है। यह हिंदीतर प्रांत के लिए एक नमूना बन सकता है। पंचायत के भरसक प्रयास से यह संभव हुआ है। केरल में पहला संपूर्ण हिंदी साक्षर पंचायत का श्रेय चेलन्नूर को जाता है।

केरल में हिंदी में उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था पहले से शुरू हुई थी। कोच्चि और मालाबार रियासत के कॉलेज मद्रास विश्वविद्यालय से जुड़े थे। सन् 1934 में मद्रास विश्वविद्यालय में इंटरमीडिएट और स्नातक स्तर पर हिंदी को स्थान मिला था। उसी समय एर्नाकुलम में स्थित महाराजास कॉलेज में भी हिंदी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाया जाता था। ए. चंद्रहासन् यहीं के अध्यापक थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, सेंट थॉमस कॉलेज, पाला, महाराजास कॉलेज, एर्नाकुलम, एस.एन. कॉलेज, कोल्लम, सरकारी महिला कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, सरकारी-कारी आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, कालीकट में हिंदी पाठ्यक्रम शुरू हुआ, उसी तरह सभी जगह हिंदी की पढ़ाई होती है। प्रारंभिक अध्ययन तेजी से चल रहा है। बी.ए., बी.कॉम., बी.एस.सी. पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। छात्रों को विकल्प मिलता है, चाहें तो वे दो-तीन भाषाओं में से हिंदी को चुन सकते हैं। दूसरा मुख्य विषय के रूप में बी.ए. के अध्ययन की सुविधा प्राप्त है। पुराने कई महत्त्वपूर्ण कॉलेजों के स्नातकोत्तर केंद्र आज शोध केंद्र बन चुके हैं। यहाँ हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन्न पक्षों पर गंभीर शोध अध्ययन चल रहा है।

कॉलेजों के अलावा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केरल के विश्वविद्यालयों की बड़ी भूमिका है।

विश्वविद्यालयों में शोध अध्ययन के लिए काफी सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ पी-एच.डी. के लिए अध्ययन करनेवाले छात्रों के लिए विषय की भी विविधता है। अंतरानुशासिक विषय की ओर भी वे उन्मुख होते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के विविध आयामों पर सामान्य रूप से शोध करते हैं। इसके अलावा हिंदी और मलयालम के कवि, कथाकारों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों पर तुलनात्मक अध्ययन यहाँ समृद्ध मात्रा में चल रहा है। हिंदी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य, हिंदी तथा मलयालम भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, सूरसागर और कृष्णगाथा का तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी और मलयालम के रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन आदि उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं।

केरल में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के साथ मौलिक लेखन और अनुवाद भी बड़ी मात्रा में हुआ है। मलयालम से हिंदी में और हिंदी से मलयालम में अनुवाद सांस्कृतिक एकता एवं समरसता के लिए सहायक सिद्ध होते हैं।

केरल के हिंदी प्रेमियों ने महत्त्वपूर्ण कृतियों को अनुवाद रूपी पुल के माध्यम से आपस में अंतरित करने का सराहनीय कार्य किया है। शुरू-शुरू में दक्षिण और उत्तर भारत से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में कई अनुवाद प्रकाशित होते थे तो दूसरी ओर पुस्तकों का स्वतंत्र प्रकाशन भी किया गया। इसके अलावा कई पत्रिकाओं का मलयालम के अंतर्गत विशेषांक भी प्रकाशित हुए। अनुवाद एवं हिंदी लेखन को प्रोत्साहित करनेवाली कई पत्रिकाएँ केरल से भी प्रकाशित होती थीं। युगप्रभात, हिंदी मित्र, आर्य कैरली, साहित्य मंडल पत्रिका आदि पहले से ही प्रकाशित होती थीं। वर्तमान में केरल ज्योति, संग्रथन, अनुशीलन, केरल भारती, भारत पत्रिका, शोध क्षितिज, शोध सरोवर, जन विकल्प, हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका आदि पत्रिकाएँ केरल से हिंदी का परचम लहरानेवाली पत्रिकाएँ हैं। कुल मिलाकर तीस के करीब पत्रिकाएँ केरल से प्रकाशित होकर आई थीं।

हिंदी प्रचार में अनुवाद की बड़ी भूमिका रहती है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी महत्त्वपूर्ण विधाओं में यहाँ अनुवाद संपन्न हुआ है। कविता के क्षेत्र में वल्लत्तोल की कविताएँ, कविश्री माला (वल्लत्तोल), कविश्री माला (जी. शंकर कुरुप) आदि अनुवाद महत्त्वपूर्ण हैं। पहला रत्नमयी दीक्षित और दूसरा और तीसरा एम. श्रीधर मेनन ने क्रमशः अनुवाद किया है। मलयालम की रामायण 'तुंचत्तु एषुतच्छन' ने 'अध्यात्म रामायण' नाम से लिखी है। इसका अनुवाद एन.पी. कुट्टन पिल्लै ने किया है। कुमारनाशान की करुणा का कवियूर शिवराम अय्यर, मलयालम की नई कविताएँ जी. गोपिनाथन, चिंताविष्टयाय सीता का चिंताविष्टा सीता नाम से मुत्तूर राघवन नायर ने अनुवाद किया। सीता केंद्रित इस काव्य का सुधांशु चतुर्वेदी ने 'त्यक्ता के आँसू' नाम से भी अनुवाद किया। 'बालामणि अम्मा की छप्पन कविताएँ' जी.एन. पिल्लै का अनुवाद है। 'महाभारत' का लेखक है एषुत्तच्छन। इस कृति का अनुवाद सुबहमण्य अय्यर ने किया। कुंचन नंबियार की कृति कल्याण सौगंधिक, चात्तुकुट्टि मास्टर का अनुवाद है। कुमारनाशान की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—सीता, चंडाल भिक्षुकी और करुणा। इसका अनुवाद 'तीन कविताएँ' नाम से श्रीधर मेनन ने किया है। आधुनिक मलयालम कविताओं का अनुवाद 'मलयालम काव्यधारा आधुनिक खंड' नाम से एन.ई. विश्वनाथ अय्यर ने किया है। एस. तंकमणि अम्मा ने ओ.एन.वी. कुरूप की शार्ङ्क पक्षिकल का 'शार्ङ्क पक्षी' नाम से, वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनन का कृष्ण मृगं का 'कृष्णहिरण' नाम से अनुवाद किया। ओ.एन.वी. कुरूप की प्रतिनिधि कविताएँ पी. लता का अनुवाद है। पी. रवि कुमार का काव्य है 'नचिकतस'। इसका अनुवाद 'नचिकेता' नाम से डी. तंकप्पन नायर ने किया है। वल्लत्तोल के अच्छनुम मकनुम का अनुवाद 'पिता और पुत्र नाम' से टी.एन. विश्वंभरन ने किया। अय्यप्प पणिक्कर के महाकाव्य 'गोत्रयान' का अनुवाद उसी नाम से तंकमणि अम्मा ने किया। ओ.एन.वी. की उज्जयिनी का अनुवाद एन.ई. विश्वनाथ अय्यर ने किया। 'के. सच्चिदानंदन की कविताएँ' राजेंद्र घोड़पकर का अनुवाद है। इस प्रकार मलयालम से हिंदी में काव्य अनुवाद काफी मात्रा में हो रहा है। पुस्तकाकार के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में भी कविताएँ निरंतर प्रकाशित होती जा रही हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित भारतीय लेखकों का अनुवाद भी प्रकाशित होता है। भारती ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि संस्थाएँ अनुवाद का नेतृत्व कर रही हैं। मलयालम का प्रथम उपन्यास 'इंदुलेखा', जो चंदू मेनन द्वारा लिखित है, इसका अनुवाद प्रथम बार वी.ए. केशवन नंबूतिरी ने किया। 'कथा एक प्रांतर' की ज्ञानपीठ पुरस्कर कथाकार एस.के. पोट्टेक्काट का उपन्यास है, जिसका अनुवाद पी. कृष्णन ने किया। एम.टी. वासुदेवन नायर के उपन्यास का अनुवाद दूसरी बारी नाम से के.एस. मणि ने किया। तकषी के चेम्मीन का अनुवाद मछुवारे नाम से भारती विद्यार्थी ने किया। चुनौती भी भारती का अनुवाद है। मोहम्मद बशीर का दादा का हाथी के रवि वर्मा का अनुवाद है। पी. केशवदेव के नाली से, पड़ोसी आदि अनुवाद सुधांशु चतुर्वेदी के हैं। मलयाट्टूर रामकृष्णन के 'यक्षी' का अनुवाद वी.के. रवींद्रनाथ ने किया है। एस.के. पोट्टेक्काट का 'नादान प्रेमम्' आरसु का अनुवाद है। यंत्रम मलयाट्टूर रामकृष्णन का चर्चित उपन्यास है। इसके अनुवादक है पी.के. चंद्रन। राकेश कालिया ने पी. वत्सला के उपन्यास 'नेल्लु का धान' नाम से अनुवाद किया। माधविकुट्टी की बचपन की यादें, एम. अरविंदन का, के.पी. रामनुण्णी की कहानी सूफी की जवानी पी.के. राधामणि का, पेरुंपटवं श्रीधरन का, वक्ष पर ईश्वर का आद्याक्षर वी.डी. कृष्णन नंबियार का, एम. मुकुंदन का ईश्वर की शरारतें वी.टी.वी. मोहनन का उपन्यास अनुवाद हैं। मलयालम के लगभग सभी चर्चित उपन्यासों को अनूदित अनुवाद हिंदी में मिलता है। हिंदी के भी कतिपय उपन्यासों का अनुवाद मलयालम भाषा में भी मिलता है।

कहानी के क्षेत्र में 'मलयालम की श्रेष्ठ कहानियाँ', 'समकालीन मलयालम कहानियाँ' चर्चित कृतियाँ हैं, जिनका अनुवाद क्रमशः वी.डी. कृष्णन नंपियार और पी. लक्ष्मीकुट्टी अम्मा ने किया है। एस.के. पोट्टेक्काट की कृति 'स्त्री तथा अन्य कहानियाँ' का अनुवाद पी. कृष्णन और पी. बालकृष्णन ने मिलकर किया है।

कथा कृतियों के अलावा नाटक, आलोचना, निबंध, संस्मरण आदि कई शाखाओं में भी मलयालम से हिंदी में अनुवाद की परंपरा मिलती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि केरल में हिंदी का एक समृद्ध वातावरण है। यहाँ किसी भी प्रकार का हिंदी विरोध नहीं है। केरल के लोग सभी भाषाओं से प्रेम करते हैं। मलयालम भाषी प्रदेश होने के बावजूद भी यहाँ के लगभग सारे लोग हिंदी जानते हैं या हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है। केरल के हजारों लोग भारत भर में सरकारी, गैर-सरकारी एवं सैनिक सेवा में काम कर रहे हैं। वे भी हिंदी को जाने-अनजाने फैला रहे हैं। उनके परिवार भी हिंदी परिवार बन रहे हैं। केरल के स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में हिंदी का अच्छा माहौल है। साथ ही शोध भी उच्च स्तर पर चल रहा है, जो अखिल भारतीय स्तर पर ध्यान आकर्षित करता है। शोध ग्रंथों के प्रकाशन से यहाँ के ज्ञान का विस्तार भी हो जाता है। कई ग्रंथों को पुरस्कार भी मिल रहे हैं। अनुवाद के द्वारा हिंदी और मलयालम की दूरियाँ मिट जाती हैं। इसमें एक ओर भाषा का विकास होता है, तो दूसरी ओर संस्कृति की दूरियाँ मिट जाती हैं। हमें देश की राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ एवं अक्षुण्ण रखने के लिए अनुवाद को प्रोत्साहन देना है। अनुवाद अभियान को देश के एक प्रमुख अभियान के रूप में लेना होगा। अनुवाद और हिंदी के अध्ययन के लिए उचित मात्रा में प्रोत्साहन देने से हम देश की भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने के साथ-साथ देश की प्रगति एवं विकास को भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

□

drpramodcu@gmail.com

हिंदी भाषा में अनूदित ओड़िया साहित्य : उपलब्धियाँ एवं संभावनाएँ

—डॉ. अभिषेक शर्मा

बहुभाषिकता किसी भी राष्ट्र के लिए सिर्फ चुनौतियाँ ही नहीं उत्पन्न करती, अपितु वह सृजनात्मकता के अनेक द्वार भी खोलती है। जिसे हम 'भारतीय वाङ्मय' कहते हैं, वस्तुतः वह अनेक प्रांतीय भाषाओं में रचित एक साहित्यिक पुष्प गुच्छ है। भारतवर्ष में बहुभाषिकता से संबंधित अधिकांश चुनौतियाँ सामाजिक एवं राजनैतिक हैं, और इसे 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2022' के माध्यम से दूर करने का प्रयास भी किया जा रहा है। इसके परिणाम भी हमें आनेवाले एक दशक में स्पष्ट रूप से दिखाई देंगे। किसी भी प्रांतीय साहित्य का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार सिर्फ तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुवाद कार्य द्वारा ही संभव है। फलतः किसी भी बहुभाषी राष्ट्र के लिए 'अनुवाद' एक साहित्यिक-सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है। इसलिए किसी भी योग्य अनुवादक का रचनात्मक अवदान राष्ट्र के उन्नायक जैसा होता है। गोस्वामी तुलसीदास और भक्तकवि सूरदास की लोकप्रियता यदि विश्वव्यापी है तो उसका बहुत कुछ श्रेय उनकी कृतियों के अनुवादकों को भी जाता है। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के 'विश्व कवि' कहलाने के मूल में 'नोबेल पुरस्कार' के साथ-साथ 'गीतांजलि' का अनेकानेक देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। अतः साहित्यिक अनुवाद के दौरान अनुवादक की मनःस्थिति अनुकरण से कहीं ज्यादा रचनात्मक अंकन की ओर झुकी होती है। इसलिए कभी-कभी लक्ष्य भाषा में कही गई बात 'स्रोत भाषा' के वाक्य-विन्यास से भिन्न होते हुए भी अर्थगत प्रभावोत्पादकता में मूल कृति जैसा आनंद देती है। इन्हीं संदर्भों में भारत जैसे बहुभाषाभाषी देश में अनुवाद विधा का बहुत महत्त्व है, क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता को सतत् रूप से दृढ़तर किया जा सकता है।

अनुवादक की सर्वप्रथम विशेषता दो अलग-अलग भाषाओं में मातृ-भाषावत दक्षता है। वह इन्हीं गुणों के फलस्वरूप अपने पाठकों में लोकप्रिय होता है। साहित्यिक अनुवाद भाषा के स्तर पर जितना जटिल है, उससे कहीं ज्यादा संवेदना एवं अर्थछटा के स्तर पर दुरूह होता है। प्रसिद्ध कथाकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' कृत 'मैला आँचल' उपन्यास इसका जीवंत उदाहरण है। अनुवाद विधा के संदर्भ में 'डॉ. भोलानाथ तिवारी' लिखते हैं कि "एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान

* रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक (भारत) के हिंदी विभाग में वरिष्ठ सहायक आचार्य।

और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।" इस परिभाषा में हम विशेष रूप से 'यथासंभव' शब्द पर ध्यान देंगे। 'यथासंभव' शब्द समतुल्यता के सिद्धांत की ओर इशारा करता है। अनुवाद कार्य में 'समतुल्यता का सिद्धांत' एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कारक है, जिसके सम्यक् प्रयोग से अनुवादक अपने सृजन कार्य को प्रामाणिक रूप देता है। चूँकि अनुवाद सिर्फ एक कला ही नहीं, अपितु वह कई अर्थों में विज्ञान भी है, इसलिए अनुवाद का वैज्ञानिक कलेवर जहाँ तकनीकी विषयों में अत्यधिक प्रस्फुटित होता है, वहीं उसका कलासम्मत रूप साहित्यिक अनुवादों में उभरकर सामने आता है। 'अनुवाद' के सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए 'दंगल झाल्टे' लिखते हैं कि संस्कारशील जीवन के लिए केवल एक भाषा नहीं, अपितु अनेक भाषाओं में व्याप्त तथा व्यक्त जीवनानुभूति, सौंदर्य तथा संस्कारों की भी आवश्यकता होती है। परंतु अच्छी अनुवाद प्रक्रिया के बिना यह सबकुछ असंभव-सा है। आशय यह कि उत्कृष्ट अनुवाद प्रक्रिया के द्वारा हम सिर्फ किसी कृति विशेष का अनुवाद ही नहीं करते, अपितु उसकी सभ्यता और संस्कृति से भी स्वयं को जोड़ते हैं। सच्चे अर्थों में अनुवाद की यही सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपयोगिता है। मूल पाठ का बोधन और लक्ष्य भाषा में उसके निरूपण के दौरान प्रयोग में लाए गए सिद्धांत ही अनुवाद प्रक्रिया के वास्तविक घटक हैं। वस्तुतः साहित्यिक अनुवाद मूल लेखन से भी कहीं ज्यादा दुष्कर और बहुआयामी कार्य है। ओड़िया साहित्य को अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पटल पर लाने का श्रेय हिंदी भाषा-भाषी विद्वानों के साथ-साथ ओड़िया भाषा भाषी क्षेत्र के विद्वानों को भी जाता है। ओड़िया साहित्य का हिंदी भाषा में अनुवाद आधुनिक, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन है। इसे हम भाषागत जागरूकता और अस्मिता की पहचान से भी जोड़ सकते हैं।

ओड़िया साहित्य की कालजयी कृतियों का हिंदी भाषा में अनुवाद करने वाले अनुवादकों की सूची बहुत व्यापक है जिसमें प्रमुख रूप से पं. वनमाली मिश्र, प्रभात कुमार त्रिपाठी, युगजीत नवलपुरी, डॉ. नीला भूषण हरिचंदन, प्रो. राधाकांत मिश्र, डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र, डॉ. शंकरलाल पुरोहित, डॉ. अजय कुमार पटनायक, श्रीनिवास उद्गाता, विजय कुमार मोहंती, मंजु शर्मा महापात्र, सविता मिश्र, पूर्णचंद्र रथ और राधाकृष्ण विश्वकर्मा आदि हैं। इन अनुवादकों द्वारा ओड़िया भाषा और साहित्य के कई मूर्धंय रचनाकारों का अनुवाद हुआ है, जिसमें प्रमुख रूप से महाकवि सारला दास, फकीर मोहन सेनापति, सुरेंद्र मोहंती, कालिंदी चरण पाणिग्राही, मनोरंजनदास, गोपीनाथ मोहंती, मनोज दास, सच्चिदानंद राउतराय, नित्यानंद महापात्र, कान्हुचरण महांती, रमानाथ रथ, सीताकांत महापात्र, प्रतिभा राय, कृष्ण प्रसाद मिश्र, देवदास छोटराय और गायत्रीबाला पंडा आदि उल्लेखनीय हैं। ओड़िया से हिंदी भाषा में अनूदित प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ इस प्रकार हैं—सारला महाभारत, छह बीघा जमीन, मिट्टी का पुतला, अमृत संतान, परजा, नील शैल, माटी मटाल, श्रीराधा, अष्टपदी, बहुब्रीही, घरडीह, कोणार्क, द्रौपदी, फसल, अरण्य, आदिभूमि, काठ का घोड़े, अभिशप्त गंधर्भ, शकुंतला, देवकी, अमावस का चाँद, प्रभंजन, पूजाघर, द्रौपदी और रेत की सीढ़ी आदि। इन अनूदित कृतियों के प्रकाशन में राष्ट्रीय स्तर के प्रकाशकों के साथ-साथ (साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, भारतीय ज्ञानपीठ, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली।) ओड़िशा राज्य की 'ओड़िया साहित्य अकादमी' और 'शबनम पुस्तक महल' जैसे कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशन संस्थान भी शामिल हैं।

सामान्यतः ओड़िया साहित्य को पाँच भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार है—आदियुग (9वीं सदी से 14वीं सदी तक), सारला युग (15वीं सदी), पंचसखा युग (सन् 1600 ई. से 1650 ई. तक), रीति युग (सन् 1650 ई. से 1880 ई. तक) और आधुनिक युग (सन् 1880 ई. से अब तक) हैं। 'राधानाथ युग', 'सत्यवादी युग', 'सबुज युग', 'प्रगति युग' और 'अत्याधुनिक युग' ये सभी 'आधुनिक युग' (सन् 1880 ई. से अब तक) के विकास के प्रमुख चरण हैं। आदियुग के प्रमुख कवि अवधूत हैं। इनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'रुद्र सुधानिधि' है, जबकि 'सारला युग' के प्रमुख कवियों में वत्स दास, सारला दास, मार्कंड दास आदि हैं। 'पंचसखा युग' को हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की तरह ही ओड़िया साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना जाता है। वस्तुतः यह कालखंड ओड़िया साहित्य का 'भक्ति-युग' है। इस युग के प्रमुख कवियों में भक्त कवि जगन्नाथ दास, शिशुअनंत दास, अच्युतानंद दास, बलराम दास, यशवंत दास, आदि प्रमुख हैं। इन कवियों की आध्यात्मिक रचनाओं ने ओड़िया भाषा-भाषी समाज में भक्ति और समानता के भाव का अहर्निश प्रचार-प्रसार किया है। ओड़िया साहित्य के 'रीति युग' के प्रमुख रचनाकारों में उपेंद्र भंज, अभिमन्यु सामंत सिंहार, बनमाली दास, दीनकृष्ण दास, गोपाल कृष्ण दास, भीमभोई, हाडु दास, भक्त चरण दास, यदुमणि, ब्रजनाथ बड़जेना, वृंदावती दास, विश्वनाथ खुंटिया और धनंजय भंज आदि हैं। इन कवियों की रचनाओं में भगवत-प्रेम के साथ-साथ मानवीय प्रेम पर भी बल दिया गया है।

ओड़िया साहित्य का आधुनिक काल कुल पाँच चरणों में विभक्त है। राधानाथ, फकीर मोहन सेनापति, भक्त कवि मधुसूदन राय, गंगाधर मेहेर और नंदकिशोर बल आदि रचनाकार 'राधानाथ युग' के अंतर्गत आते हैं। ओड़िया साहित्य में सत्यवादी युग की शुरुआत 1903 ई. से होती है। पं. गोपबंधु दास, पं. नीलकंठ दास, पं. गोदावरीश मिश्र, पं. कृपासिंधु, पंडित वासुदेव, शशिभूषण राय, कवयित्री कुंतला कुमारी साबत, गोदावरी महापात्र, वीर किशोर दास और मायाधर मानसिंह आदि सर्वाधिक चर्चित रचनाकार हैं। ओड़िया साहित्य में 'सबुज युग' का प्रारंभ प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत हुआ। इस युग के अंतर्गत पद्मभूषण, डॉ. कालिंदी चरण पाणिग्राही, अनंत पटनायक, अन्नदाशंकर राय, हरिहर महापात्र, लक्ष्मी नारायण साहू, हरे कृष्ण महताब, बालकृष्ण कर, रत्नाकर पति, कवयित्री अन्नपूर्णा और सरला देवी आदि रचनाकार आते हैं।

ओड़िया साहित्य का 'प्रगति युग' नई वैचारिक ऊर्जा से ओत-प्रोत है। इस युग के रचनाकारों में सच्चिदानंद राउतराय, राधामोहन गड़नायक, कान्हुचरण महांति, गोपीनाथ मोहंति, कमलाकांत दास, कृष्णचंद्र त्रिपाठी, चक्रधर महापात्र, नित्यानंद महापात्र, कुंज बिहारी दास, राजकिशोर राय, प्राणकृष्ण सामल, गोलक बिहारी धल, सिध्देश्वर होता, श्री हर्ष मिश्र और गोपालचंद्र मिश्र आदि प्रमुख हैं। ओड़िया साहित्य के अत्याधुनिक युग के रचनाकारों में सुरेंद्र मोहंति, गोबिंद दास, ब्रह्मानंद पंडा, नीलमणि महापात्र, सौभाग्य मिश्र, कृष्ण प्रसाद मिश्र, शांतनु आचार्य, प्रतिभा राय, बेणी माधव पाढ़ी, विभुदत्त मिश्र, मनोज दास, श्रीनिवास उद्गाता, मनोरंजन दास, सीताकांत महापात्र आदि प्रमुख हैं। अनूदित कृति 'सारला महाभारत' के 'पुरोवाक्' के अध्ययन से पता चलता है कि दोनों अनुवादकों के पास भारतीय साहित्य, सभ्यता एवं संस्कृति की गहरी समझ है। वे सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के वास्तविक संरक्षणकर्ता हैं। उन्होंने 'सारला महाभारत' के साथ-साथ 'चंडी पुराण' और 'विलंका रामायण' का भी अध्ययन किया है। अनुवा दुवै आज भी

'सारला दास' को ओड़िया भाषा और साहित्य का प्रमुख उन्नायक मानते हैं। हिंदी भाषा-भाषी पाठक इन्हीं दो अनुवादकों के स्तुत्य प्रयास के कारण ही 'सारला महाभारत' का हिंदी भाषा में अध्ययन कर पा रहे हैं। समूचे भारतीय साहित्य में 'शूद्रमुनि सारलादास' की अन्यतम कृति 'सारला महाभारत' (ओड़िया महाभारत) की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए अनुवादक-द्वय लिखते हैं कि "सारला शाक्त थे, तथापि महायान की शून्यवादी भावना और दर्शन द्वारा उनकी आध्यात्मिक चिंता प्रभावित थी। इसलिए सारला महाभारत में इन सभी आध्यात्मिक भावनाओं के संकेत मिलते हैं, जो संस्कृत महाभारत में भी नहीं थे, ऐसा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सूचित होता है।" आशय यह कि 'सारला महाभारत' संस्कृत महाभारत से भी अधिक आध्यात्मिक चेतना संपन्न कृति है। इसके अतिरिक्त प्रो. हरिश्चंद्र मिश्र ने 'गोदावरीश मिश्र' कृत 'कालजयी' (भोजपुरी बोली) का भी अनुवाद 'सरयू धारा' पत्रिका (सं. स्वर्गीय प्रो. शैलेंद्र कुमार त्रिपाठीजी) के लिए किया है। इस तरह ओड़िया भाषा के शास्त्रीय साहित्य को हिंदी प्रेमियों के बीच प्रथमतः प्रचारित-प्रसारित करने का उल्लेखनीय प्रयास प्रो. नीलाद्रि भूषण हरिचंदन एवं प्रो. हरिचंद्र मिश्रजी ने किया है।

ओड़िया भाषा और साहित्य के महान् कवि-चिंतक 'उपेंद्र भंज' सन् 1665 ई. से 1725 ई. तक वर्तमान रहे। कवि जीवन की शुचिता और आध्यात्मिक ऊँचाई के कारण उन्हें 'कवि सम्राट्' की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। ओड़िया भाषा और साहित्य के प्रेमी उनकी काव्य-प्रतिभा में ईश्वरीय अनुकंपा की झलक देखते हैं। कालक्रमानुसार 'उपेंद्र भंज' ओड़िया साहित्य के रीतियुग के कवि ठहरते हैं। उन्होंने लगभग पचास ग्रंथों की रचना की है, जिसमें से सिर्फ बीस ही अब तक प्रकाशित हो पाए हैं। उनके द्वारा रचित प्रमुख काव्य ग्रंथों में लावण्यवती कोटिब्रह्मांड सुंदरी और बैदेहीश-बिलास सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। कवि 'उपेंद्र भंज' कृत 'बैदेहीश-बिलास' नामक कृति का अनुवाद एवं लिप्यंतरण 'श्री सुरेशचंद्र नंद एम.ए.' ने किया है। यह अनूदित कृति भुवन वाणी ट्रस्ट, मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-226020 से प्रकाशित है। 'बैदेहीश बिलास' एक महाकाव्य है। इसकी संपूर्ण कथा रामायण पर आधारित है। अपनी अनुपम रचनात्मक शैली के कारण इस महाकाव्य का ओड़िया साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

ओड़िया भाषा और साहित्य के विकास में उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति का स्थान अन्यतम है। हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में जो महत्त्व प्रेमचंद का है, ओड़िया उपन्यास साहित्य के विकास में वही महत्त्व फकीर मोहन सेनापति का भी है। इनकी प्रमुख औपन्यासिक कृतियों में 'छमाण आठ गुंठ', 'लछमा', 'मामुँ', 'प्रायश्चित' आदि हैं। फकीर मोहन सेनापति कृत 'छमाण आठ गुंठ' उपन्यास एक कालजयी रचना है। यह उपन्यास सर्वप्रथम 'उत्कल साहित्य' नामक पत्रिका में कई किश्तों में प्रकाशित हुआ, तदुपरांत पुस्तकाकार रूप में पाठकों के सामने आया। यह उपन्यास जमींदारी व्यवस्था के शोषण से उपजी अकथनीय यंत्रणा का जीवंत दस्तावेज है। हिंदी पाठक इस उपन्यास में कहीं-न-कहीं 'गोदान' की झलक देखते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में यह उपन्यास 'एक राष्ट्रीय रूपक' के रूप में किसान जीवन की व्यथा-कथा को बयाँ करता है। यह उपन्यास अंग्रेजी सहित कई प्रांतीय भाषाओं में भी अनूदित है। हिंदी भाषा में इसका अद्यतन अनुवाद गुरुवर प्रो. राधाकांत मिश्रजी ने फकीर मोहन सेनापति, सांसद्, बालेश्वर, ओड़िशा के अनुरोध पर किया है। उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति के साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डालते हुए 'डॉ. अजय कुमार

पटनायक' लिखते हैं कि "भारतीय कथा-साहित्य के क्षेत्र में फकीर मोहन ही ऐसे प्रगतिशील कथाकार हैं, जिन्होंने संभवत: सबसे पहले सन् 1818 तक पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग पर सोचना प्रारंभ कर दिया था। समाजवादी यथार्थवाद के चित्रण में प्रेमचंद जैसे महान् प्रगतिशील साहित्यकार से पहले ही फकीर मोहन का नाम आता है।" इस तरह हम देखते हैं कि सामंती वर्ग द्वारा भूमिहीन किसानों के अहर्निश शोषण को उद्घाटित करनेवाला यह पहला भारतीय उपन्यास है। कथा सम्राट् फकीर मोहन सेनापति का जन्म गरीब परिवार में हुआ, किंतु उनके विचार बहुत ही क्रांतिकारी थे। उन्होंने बालेश्वर में एक छापाखाने की स्थापना भी की थी, जिसे देखने के लिए हजारों लोग वैसे ही एकत्रित हुए थे, जैसे कभी भारत में पहली बार रेलगाड़ी चलने पर उसके दर्शन हेतु लोग एकत्रित हुए थे। निस्संदेह ओड़िया भाषा और साहित्य में फकीर मोहन सेनापति की मौजूदगी एक युगपुरुष जैसी है। ओड़िया साहित्य के आधुनिक कालखंड पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा भी जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया उपन्यास साहित्य में कथाकार गोपीनाथ महांती का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने 'परजा', माटी मटाल', 'अमृत संतान, 'हरिजन' और 'दानापाणि' जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ लिखी हैं। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'माटी मटाल' आज भी विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। इसी कृति में कथाकार ने व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना को एक नूतन पहचान दी है। उपन्यासकार गोपीनाथ महांती कृत 'माटी मटाल' का हिंदी अनुवाद 'डॉ. शंकर लाल पुरोहित' ने किया है, और इस अनूदित कृति का प्रकाशन हिंदी अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली में हुआ है। हिंदी भाषा में अनूदित इस कृति का एक अंश यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "एक ओर समाज की बँधी-बँधायी निष्प्राण संस्कार-धारणाएँ, जो औरों को देख दर्द पैदा करती हैं और अपने प्रिय आत्मज को मशीन बना देना चाहती है—दूसरी ओर उसका स्वतंत्र मन। यही सोचते उसे लगा कि जीवन-प्राचुर्य में जब वह लहरों की तरह बढ़ने जा रहा है तो उसके उद्दाम आवेग को रोकने के लिए उसके माँ-बाप बंधु-स्वजन अपनी-अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। मात्र बेटा या भतीजा बनकर आदर-स्नेह देना ही यथेष्ट नहीं, उन लोगों की बात मान पंख कटा, कोल्हू के बैल न बन जाने तक उन लोगों को चैन नहीं पड़ेगा।" अनूदित कृति के 'प्रस्तुति' शीर्षक में 'लक्ष्मीचंद्र जैन' रचा एवं रचनाकार के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "श्री गोपीनाथ महांती ऐसे ही रस-सिद्ध साहित्य-स्रष्टा है, जिन्होंने गद्य की भाषा को कविता का लालित्य दिया और मानव भावों, भावनाओं की सूक्ष्मता को, उसके संस्कारों और विकारों, अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता, क्षमता और चारुता दी। 'माटी मटाल' लगभग 1000 पृष्ठों का उपन्यास है। कथा का विस्तार पात्रों की बहुलता, उनके मानसिक अंतर्द्वंद्वों का संसार, क्रिया-प्रतिक्रियाओं का प्रसार, प्रकृति के नाना रूपों का निखार, इस उपन्यास को गद्य का 'महाकाव्य प्रमाणित करते हैं। उपन्यास का एक-एक चरित्र सजीव होकर मानस पटल पर अंकित होता चलता है; तूलिका के चित्र-विचित्र रंग पाठक को मंत्र-मुग्ध करते रहते हैं।" निस्संदेह कथाकार श्री गोपीनाथ मोहंती यथार्थ और आदर्श के सच्चे समन्वयकर्ता थे, इसलिए, आधुनिक मानव समाज आज भी उनकी कृतियों को विशेष आदर के साथ पढ़ता है।

ओड़िया भाषा और साहित्य के समकालीन रचनाकारों में 'प्रतिभा राय' का नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनकी प्रमुख कथा कृतियों में 'पुण्यतोया', 'आशावरी', 'मेघ मेदूर', 'असमाप्त', 'उपनायिका' 'उत्तरामार्ग',

'शिलापद्म', 'याज्ञसेनी', 'महामोह' और 'आदिभूमि' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कथा लेखिका 'प्रतिभा राय' कृत 'याज्ञसेनी' उपन्यास का हिंदी में 'द्रौपदी' नाम से अनुवाद 'डॉ. शंकर लाल पुरोहित' ने किया, जिसका एक अंश यहाँ द्रष्टव्य है—"मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं ? कोई कामना नहीं? आकांक्षा नहीं, क्योंकि मैं यज्ञ-होम से जन्मी याज्ञसेनी हूँ। मेरा जन्म, जीवन और मरण किसी और के निर्देश से संचालित है। मैं क्यों आई हूँ क्यों जीवित रहूँगी? क्यों मरूँगी, क्या उद्देश्य है, मैं कुछ नहीं जानती अज्ञान ही मेरा संबल है।" प्रतिभा राय के 'याज्ञसेनी' (द्रोपदी) उपन्यास कर विचार करते हुए 'डॉ. अजय कुमार पटनायक' लिखते हैं कि 'याज्ञसेनी' के नाम से निर्मित प्रतिभाजी के उपन्यास में महाभारत की महानायिका को आज के संदर्भ में एक क्रांतिकारी नारी प्रतिभा के रूप में चित्रित किया गया है। यज्ञासेनी अतीत नहीं, वर्तमान है। आज की आधुनिक नारी के रूप में संवेदनशील विदुषी, सजग एवं प्रखर व्यक्तित्व की अधिकारिणी है जिसकी बुद्धि, विचारशीलता, स्पर्श कातरता, राजनीति, समाज विज्ञान, प्रेम, सहानुभूति, आत्म प्रत्यय तथा मातृ वत्सलता एक सफल नारीत्व का परिचय देती हैं। "भारतवर्ष की महिला लेखिकाओं में 'प्रतिभा' राय का अन्यतम स्थान है उन्होंने ओड़िशा प्रांत की स्त्रियों में आत्मरक्षा और आत्मविकास का बोध पैदा किया है। उनकी स्त्री चेतना प्रखर, ममस्पर्शी और सत्योन्मुखी है। उन्होंने स्त्री जीवन की विसंगतियों को करीब से देखा और महसूस किया है। इसीलिए उनकी रचनात्मकता का मूल और उत्स स्त्री जीवन के वास्तविक प्रसंग हैं। वे स्त्री जाति के अंतहीन दुःखों की स्वाभाविक गायिका हैं। उनके यह विशेषता ही उनके लेखन को जीवंत एवं प्रामाणिकता का दर्जा देती है।

ओड़िया भाषा और साहित्य के समकालीन रचकारों में जिन नामों की चर्चा सर्वाधिक है, उनमें प्रमुख हैं—श्री मनोज दास और डॉ. सीताकांत महापात्र। श्री मनोज दास की ख्याति का मूलाधार उनकी कथा-कृतियाँ हैं, जबकि डॉ. सीताकांत महापात्र का काव्य-साहित्य और वैचारिक गद्य भी पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय है। श्री मनोज दास के कई कहानी-संग्रहों से चुनी हुई कहानियों (कुल 22 कहानी) को आधार पर 'डॉ. अजय कुमार पटनायक' ने 'सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन' से मनोज दास कृत 'कहानी-संग्रह' शीर्षक से एक अनूदित ग्रंथ (हिंदी भाषा) का प्रकाशन करवाया है। यहाँ 'मनोज दास' कृत 'कन्यादान' कहानी के हिंदी अनुवाद का एक अंश उद्धृत है—"राजकुमार को कुछ और कहने का मौका नहीं मिला। लड़की पेड़-पौधों की ओट में कहीं अदृश्य हो गई। राजकुमार ने अपनी आँखों को धिक्कारा। राजकुमार की आँखें हैं, पर मामूली से पेड़-पौधों को देखने की ताक नहीं।" मनोज दास की कहानियों में मनोविश्लेषण के साथ-साथ मानव मूल्यों के संरक्षण का भी भाव है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से ऐसे सूत्र वाक्य रच जाते हैं, जो मानव जाति की सीमा और उसकी व्यापकता को सार्थकता को प्रदान करते हैं।

ओड़िया भाषा और साहित्य की परंपरा अत्यंत सुदीर्घ है। जिस तरह विश्व की विविध भाषाओं के साहित्य का संपूर्ण अनुवाद अभी तक नहीं हो पाया है, ठीक उसी तरह से ओड़िया भाषा में रचित साहित्य भी संपूर्ण रूप से अभी तक अनुदित नहीं हुआ है। प्रस्तुत आलेख में जिन महत्त्वपूर्ण कृतियों के अनुवादों की चर्चा है, उससे ओड़िया भाषा और साहित्य की विशालता, व्यापकता और लोकप्रियता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

□

abhisheksharmalba@gmail.com

हिंदी और तमिल के बीच साहित्यिक अनुवाद परंपरा

—डॉ. सी. जयशंकर बाबू

भारत के हिंदीतर प्रदेश में अपनी पहुँच और भिन्न भाषा-भाषियों के बीच व्यवहार के माध्यम के रूप में हिंदी प्रयुक्त होती रही है। इस क्रम में हिंदी भारत की सशक्त संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई है। द्रविड़ भाषाओं के साथ आदान-प्रदान में हिंदी का विकास कई दृष्टियों से हो रहा है। भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में हिंदी का विकास सुनिश्चित हो रहा है। हिंदी में अनूदित साहित्य के माध्यम से देश की किसी भी भाषा में साहित्य अनूदित होने का मार्ग सुगम बन जाता है।

तमिल द्रविड़ परिवार की भाषा है। द्रविड़ परिवार भारत का दूसरा बड़ा भाषिक परिवार है। यह दुनिया की प्राचीनतम भाषाओं में एक है। तमिल और हिंदी दोनों की सशक्त साहित्यिक परंपरा है। इन दोनों भाषाओं के बीच साहित्यिक आदान-प्रदान में अनुवाद की बड़ी भूमिका है।

अनेकता में एकता भारत की विशिष्टता है। भारतीय संस्कृति विविधतापूर्ण संस्कृतियों का संगम है। इस विशिष्टता की रक्षा में अनुवाद की अपनी भूमिका है। अनुवाद के माध्यम से संस्कृतियों के बीच आपसी संपर्क बढ़ता है। हिंदी दुनिया में भारत की अस्मिता की भाषा है। भारत की संस्कृति की समग्रतापूर्ण प्रस्तुति में साहित्यिक एवं ज्ञानात्मक अनुवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उत्तर-दक्षिण और पूरब-पश्चिम की तमाम विशिष्टताएँ हिंदी में विकसित हुई हैं। इस वजह से हिंदी साहित्य की अन्य भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद से उन भाषाओं को भरपूर लाभ मिलता है। हिंदी से तमिल में अनूदित साहित्य की भी ऐसी ही भूमिका है।

तमिल प्रदेश में हिंदी का प्रचलन व प्रचार

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मद्रास में हिंदी प्रचार की नींव डाली गई थी। दक्षिण भारत में हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि भी मद्रास ही रहा। सन् 1923 में स्थापित 'हिंदी प्रचारक' व उसके बाद प्रकाशित अन्य पत्र-पत्रिकाओं में तमिलभाषी हिंदी-प्रेमी हिंदी में लेखन व अनुवाद कार्यों से योगदान करने लगे। महाकवि सुब्रह्मण्य भारतीजी ने हिंदी प्रचार की नींव डाली थी। सर्वप्रथम भारतीजी ने अपने संपादन में निकलनेवाली तमिल पत्रिका 'इंडिया' के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में तमिलभाषियों से हिंदी सीखने की अपील की थी। इसके अलावा हिंदी जानने वाली जनता के लिए 'इंडिया' पत्रिका में कुछ पृष्ठ नियमित रूप से उनकी हिंदी की सामग्री के प्रकाशन के लिए सुरक्षित रखे जाने की घोषणा की थी। महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ने न केवल समूचे तमिलनाडुवासियों के प्रतिनिधि

* पांडिचेरी विश्वविद्यालय, भारत में हिंदी विभागाध्यक्ष।

के रूप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्यद्रष्टा के रूप में उन्होंने एकता की भाषा हिंदी का पक्ष-समर्थन किया। भारतीजी के ही नेतृत्व में सन् 1908 में सर्वप्रथम चेन्नई के तिरुवेल्लिकेणि (ट्रिप्लिकेन) में हिंदी वर्गों के संचालन का श्रीगणेश हुआ था। इस घटना के दस वर्ष बाद गांधीजी की संकल्पनाओं के अनुरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव पड़ी। इस कार्य हेतु गांधीजी ने अपने सुपुत्र देवदास गांधी को चेन्नई भेजा था। इन प्रयासों से हिंदी प्रचार ने व्यवस्थित आंदोलन का रूप ग्रहण किया। तमिलनाडु में ही नहीं, समूचे दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार, पत्रकारिता, लेखन, प्रकाशन, अनुवाद कार्यों में लगातार प्रगति में इन घटनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दक्षिण के अन्य प्रांतों में पहले ही हिंदी में व्यापक सर्जना का गरिमामय इतिहास रहा है। हिंदी प्रचार आंदोलन ने नई पीढ़ियों में हिंदी की चेतना जगाई। महाकवि भारती, महात्मा गांधी आदि की प्रेरणा से उस समय की युवा पीढ़ी ने बड़ी तत्परता से हिंदी सीखी और हिंदी लेखन और अनुवाद में भी अपनी भूमिका सुनिश्चित की।

तमिल प्रदेश में हिंदी सर्जना

तमिलनाडु में हिंदी लेखन का लगभग एक सदी का समृद्ध इतिहास हैं। सन् 1921 में 'स्वयं सेवक' एवं 'भारत तिलक' तथा सन् 1923 में 'हिंदी प्रचारक' के प्रकाशन के साथ ही तमिलभाषी प्रांत में हिंदी लेखन के कुसुम खिलने लगे थे। आगे चलकर हिंदी लेखन का इतना विकास हुआ कि देशभर में दक्षिण भारत के हिंदी लेखन की खुशबू फैलने लगी। तमिलनाडु में हिंदी लेखन की प्रवृत्ति की पुष्टि यहाँ स्वाधीनता-पूर्व प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं से मिलती है। स्वाधीनता-पूर्व के युग में ही तमिलनाडु में कुल नौ हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थीं। स्वातंत्र्योत्तर युग में इनकी संख्या साठ तक बढ़ गई। हिंदी में मौलिक लेखन तथा हिंदी व तमिल के बीच अनुवाद कार्यों के परिप्रेक्ष्य में तमिलनाडु में हिंदी का विकास अवश्य सुनिश्चित होने लगा। मौलिक कविता लेखन से शुरू करके कई विधाओं में तमिलभाषियों ने हिंदी में साहित्यिक सर्जना की है। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, जीवनी, आलोचना आदि विधाओं में तमिलभाषियों की सर्जना के अलावा तमिल प्रदेश में प्रवास, स्थायी निवास आदि कारणों से बसे हिंदी व हिंदीतरभाषी लेखक भी हिंदी सर्जना में योगदान दे रहे हैं। ऐसी सर्जना में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से तमिल संस्कृति के प्रतिबिंब को हम देख सकते हैं। हिंदी प्रदेश की तुलना में तमिल प्रदेश की कई विशेषताएँ हैं, सहजतः उन विशेषताओं को हम तमिल साहित्य और तमिल प्रदेश में सर्जित साहित्य में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए तमिल प्रदेश में विशिष्ट तटीय संस्कृति भी है। तमिल कृतियों के अनुवाद के माध्यम से तटीय संस्कृति की विशेषताएँ हिंदी में भी सुलभ हो पाती हैं। मौलिक सर्जना से पूर्व या लगभग उसी समय से हिंदी और तमिल के बीच अनुवाद कार्यों की परंपरा शुरू हुई, परिणामतः इन दोनों भाषाओं के बीच आपसी साहित्यिक आदान-प्रदान की सुसमृद्ध परंपरा है, इस विस्तृत परंपरा की चर्चा एक आलेख के लिए निर्धारित शब्द-सीमा के तहत कर पाने की चुनौतियाँ हैं, फिर भी इन दोनों भाषाओं के बीच अनुवाद की परंपरा और उसकी कुछ मुख्य प्रवृत्तियों को संक्षेप में समझने की कोशिश करेंगे।

हिंदी साहित्य के लेखन के आरंभिक काल में मुख्यतः तमिल एवं हिंदी के बीच आदान-प्रदान का कार्य सुसंपन्न हुआ। प्राचीन तमिल साहित्य की उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों का हिंदी में अनुवाद हुआ। हिंदी के प्राचीन साहित्य का भी यदा-कदा तमिलीकरण हुआ। इससे तमिल एवं हिंदी के बीच तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

मौलिक लेखन व अनुवाद के माध्यम से हिंदी

साहित्य की श्रीवृद्धि में तमिल भाषियों का स्तुत्य योगदान रहा। यहाँ के हिंदी लेखकों में विभिन्न क्षेत्रों के एवं विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोग हैं, जिनमें कुछ हिंदीभाषी भी हैं, जिनमें अधिकांश लोगों का जन्म एवं पढ़ाई तमिलनाडु में हुई तथा नौकरीपेशा एवं स्थायी निवास भी तमिलनाडु में ही है।

आज तक तमिल से हिंदी में और हिंदी से तमिल में अनूदित साहित्य का अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक के साहित्य का तमिल में अनुवाद हुआ है। तमिल साहित्य के आरंभिक संगमकालीन साहित्य से आधुनिक साहित्य तक काफी साहित्य हिंदी में अनूदित हुआ है।

डॉ.पी.के. बालसुब्रह्मण्यन ने तमिल संगम साहित्य की कई कृतियों का अनुवाद किया है, मगर अधिकांश कृतियाँ प्रकाशनाधीन हैं। डॉ.एच.बाल सुब्रह्मण्यम तथा प्रो. के. नाचिमुत्तु ने तोलकाप्पियर कृत 'तोळ्काप्पियम' का हिंदी अनुवाद किया है। डॉ.एम. शेषन ने संगमकालीन 'अहम-पुरम' कविताओं का हिंदी गद्यानुवाद किया है। एल.वी. के.एस. श्रीधरनजी ने भी कई उत्कृष्ट हिंदी रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया है। संगम साहित्य के 'ऐंगुरुनूरु', 'पदिट्टुपत्तु', 'नट्रिणै', 'पट्टिनप्पालै', 'मदुरैकांचि' आदि का हिंदी में अनुवाद किया है।'आनंद रंगपिल्लै की डायरी' का तमिल से हिंदी में अनुवाद किया है।

संगमकालीन साहित्य की सुविख्यात विशिष्ट कृति 'तिरुक्कुरल' का शताधिक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। हिंदी में गद्य एवं पद्यानुवाद भी कई विद्वानों ने किया है। तमिल पंचमहाकाव्यों तथा समृद्ध भक्ति साहित्य के भी कई अनुवाद हुए हैं।'शिलप्पाधिकारम' के हिंदी अनुवाद के अलावा इस कथा का अनुसरण करते हुए हिंदी में दो मौलिक काव्य-कृतियों की सर्जना भी हुई है, उनमें एक सन् 1960 में प्रकाशित अमृतलाल नागर की कृति है 'सुहाग के नुपूर' (1960) और दूसरी पंडित रामेश्वर दयाल दुबे ने भी एक काव्यकृति की सर्जना की है।

1930 के दशक में ही तमिल की पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों की रचनाएँ अनूदित होकर प्रकाशित होती थीं। हिंदी-तमिल के बीच आदान-प्रदान के कार्य में सक्रिय रूप से योगदान देनेवाले आरंभिक साहित्यकारों में सर्वश्री बी.एम. कृष्णस्वामी, का. श्रीनिवासाचारी, आक्कूर अनंताचारी, श्री अंबुजम्माल, क.म. शिवराम शर्मा, एस. महालिंगम, शा.रा. शारंगपाणि, रा. विळिनाथन, श्रीमती सरस्वती रामनाथन, श्री र. शौरिराजन, श्रीमती तुलसी जयरामन, डॉ. एन. सुंदरम, डॉ. पी. जयरामन आदि के नामों का सादर उल्लेख किया जा सकता है। इनका न केवल अनुवाद के क्षेत्र में बल्कि आगे चलकर हिंदी में मौलिक सृजन में भी योगदान अवश्य रहा है। उक्त लेखकों के अलावा कुछ और नाम भी हमारे सामने आते हैं, जिनका आदान-प्रदान एवं मौलिक सृजन की दिशा में योगदान रहा, उनमें ए. रामय्यर, के. राजगोपालन, वी. शेषाद्रि, श्री जमदग्नि, के. नारायण, उमाचंद्रन, श्रीनिवासन, पं. हृषिकेश शर्मा, प्राज्ञनंदन शर्मा, अवधनंदन, एन. वेंकटेश्वरन, रघुवर दयाल मिश्र, एस. धर्मराजन, एस.आर. सुंदरेश शर्मा, पं. रमानंद शर्मा, रामकोटय्या चौधरी, एस.एन. गणेशन आदि शामिल हैं। तमिल से हिंदी में आदान-प्रदान के संदर्भ में रवींद्र कुमार सेठ के नाम का विशेष उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने तमिल के प्राचीन भक्ति साहित्य को हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि बनाने में योगदान दिया है।

पं. श्रीनिवास राघवन ने विश्वभारती के आमंत्रण पर वहाँ दो साल रहकर प्राचीन तमिल साहित्य से मुख्यतः वैष्णव संत आलवारों के

साहित्य को हिंदी में अनूदित किया। इनकी प्रकाशित कृतियों में आळ्वारों की वाणियों का 'दिव्य प्रबंध' प्रमुख हैं, जिसमें पेरियाळ्वार की संज्ञा से ख्यात संत विष्णुचित्त के 473 पद्यों का अनुवाद प्रस्तुत किया है। तमिल भक्ति साहित्य के विशिष्ट कीर्तनों एवं आळ्वार दिव्य पदों के हिंदीकरण में पी. वेंकटाचारी की विशिष्ट देन है।

विद्वान् टी.ई.एस. राघवन प्रतिभावान कवि, गीतकार, लेखक व अनुवादक हैं। उन्होंने तमिल प्राचीन साहित्य व भक्ति साहित्य के हिंदी पद्यानुवाद तथा गद्यानुवादों में बड़ा योगदान दिया है। अव्वैयारके 'आत्तिचूडि', 'दयाशतकम', 'मुकुंदमाला', 'नालडियार', 'श्री स्तुति', 'गोदास्तुति' वेदांत देशिक कृत 'कामाक्षीशतकम' आदि भक्ति रचनाओं का तमिल से हिंदी में उत्कृष्ट अनुवाद के अलावा महाकवि भारतीयार कृत 'कण्णन पाट्टु' (कृष्ण गीत) का हिंदी अनुसृजन भी किया है। 'तिरुक्कुरल' के पद्यानुवाद में उन्होंने बड़ी प्रतिभा दरशई है। सभी अनूदित पद्य तुकांतक हैं और उनमें गेयात्मकता के लिए भी उन्होंने भरपूर प्रयास किया है। पद्यानुवाद सहित गद्य में व्याख्यानुवाद भी उन्होंने किया है। संत तिरुवल्लुवर कृत 'तिरुक्कुरल' के कुरल सं.212 के अनुवाद का एक उदाहरण देखिए—

श्रम से अर्जित वित्त जो आता पर का काम।
सिद्ध यही है जगत् में योग्य मनुज का दाम॥

'नंमाळ्वार की तिरुवाय्मोळि' के शीर्षक से डॉ. आर.एम. श्रीनिवासन् ने नंमाळ्वार के संकीर्तनों का हिंदी गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। तमिल में संत नंमाळ्वार के दिव्य संकीर्तन, जो 'तिरुवाय्यमोळि' के रूप में ख्यात हैं, उनके 1000 पासुरों (गेय गीतों) का सरल गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। तमिल आळवारों के भक्ति साहित्य पर हिंदी में अनुसंधान करनेवालों के लिए इससे बड़ी मदद मिलती है। 'तिरुवाय्मोळि' नंमाळ्वार के द्वारा गाए गए विष्णु संकीर्तन हैं, जो चार दिव्य प्रबंधों ('तिरुविरुत्तम', 'तिरुवासिरियम', 'पेरिय तिरुवंतादि' और 'तिरुवाय्मोळि' (सहस्रगीत) के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनमें एक पूरे अंश के अनुवाद में डॉ. आर.एम. श्रीनिवासनजी का योगदान है।

र. शौरिराजन की तमिल से हिंदी में अनूदित कृति में 'बीस साल के देश में बीस दिन की यात्रा' ('जनवादी जर्मनी यात्रा' तमिल मूल : एस. शंकरन), 'चौदह दिन' (मूल उपन्यासकार : सुजाता), 'जयकांतन की कहानियाँ', 'राजमेरी' (मूल उपन्यासकार : शांडिल्यन), 'सुब्रह्मण्य भारती के राष्ट्रीय गीत', 'चंपक का बगीचा' (मूल उपन्यासकार : शांडिल्यन) आदि शामिल हैं। हिंदी से तमिल में अनूदित इनकी लगभग सोलह कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'प्रेमचंद कथैगल्', 'करेपडिंद निलम्' (फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल'), 'अग्नि नदी' (कुर्रतुल ऐन हैदर का उपन्यास 'आग का दरिया'), 'राजस्थानिन अंतरपुरंगल्' (राहुल सांकृत्यायन का उपन्यास 'राजस्थानी रहनवास'), 'नान्गु पक्किरिकल चोन्न कथै' (किस्सा चार दरवेश), 'सुभद्रा' (हिंदी से अनूदित शरतचंद्र का उपन्यास), 'एळावदु कुदिरै' (धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'), 'मूनरावदु शपतम्' (रेणु का 'तीसरी कसम'), 'मृगांतकन्' (गंगाप्रसाद विमल का उपन्यास), आधुनिक हिंदी कहानियों, कविताओं, निबंधों के अनुवाद, निर्मल वर्मा की कहानियाँ, कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' आदि शामिल हैं।

कई विद्वानों ने 'तिरुक्कुरल' का गद्यानुवाद व पद्यानुवाद किया है, उनमें डॉ. सैयद रहमतुल्ला, डॉ. रवींद्र कुमार सेठ आदि शामिल हैं। डॉ. रवींद्रनाथ सेठ ने 'पेरियपुराणम', 'मुकुंदमाला', तिरुमूलर कृत 'तिरुमंतिरम' रामलिंगस्वामी का काव्य आदि तमिल कृतियों के हिंदी अनुवाद के अलावा भारतीयार की कई कविताओं और गीतों

का भी हिंदी में अनुवाद किया है। तमिल भक्ति साहित्य के हिंदीकरण में उनका योगदान स्तुत्य है।

डॉ. सी. जयशंकर बाबू ने 'तिरुक्कुरल' के धर्म-खंड का हिंदी में हाइक अनुवाद सहित कुरलों का हिंदी व्याख्यानुवाद भी किया है। उदाहरण के लिए कुरल संख्या 231 तथा 232 का उन्होंने क्रमशः इस रूप में हाइक अनुवाद किया है—

दीन को दान
जीवन का मान
यही है लाभ।

दिल से दान
दीनोद्धार; यश का
है महाद्वार।

आंदाल कृत 'तिरुप्पावै' का हिंदी अनुवाद डॉ. पुट्टपर्ति नागपद्मिनी ने किया है। 'कंब रामायण' का हिंदी गद्यानुवाद डॉ. शंकर राजु नायडु ने किया है। इन्होंने कई तमिल उपन्यासों और काव्य-कृतियों का भी हिंदी में अनुवाद किया है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड का तमिल में अनुवाद श्रीमती अंबुजम्माल ने किया है। डॉ. एम. शेषनजी ने 'रामचरितमानस' का तमिल में गद्यानुवाद किया है। उन्होंने 'गोदान' का तमिल में अनुवाद भी किया है। महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की 'तराजू', 'ज्ञानरथम' आदि तमिल कृतियों का हिंदी अनुवाद क.म. शिवराम शर्मा ने किया है।

एस. अनंत कृष्णनजी हिंदी और तमिल के क्षेत्र में एक समर्पित अनुवादक हैं। उन्होंने 'आत्तिच्चूड़ि', 'नलवलि', 'अरप्पलीश्वरर वणक्कम्', 'इन्ना नार्पतु', 'इनियवै नार्पतु', 'नालडियार', 'नानमणिक्कडिकै', 'तिरुक्कुरल', 'चिरु पंच मूलम्', 'तिरिकटुकम', 'विवेक चिंतामणि', 'कपिलर अकवल्', 'कोत्रैवेंदन', 'पट्टिनत्तार पाडलकल', आंदाल का 'तिरुप्पावै', माणिक्कवासकर 'तिरुवेंपावै' आदि तमिल कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया है।

श्री पी.एन. सुंदर रामन और डॉ. एस. रामनारायण ने डॉ. भगवतशरण अग्रवाल की हिंदी हाइकू कविताओं का तमिल में अनुवाद किया है। ये दोनों अहमदाबाद के निवासी हैं।

मैथिलीशरण गुप्त के जयद्रथ-वध काव्य का तमिल में काव्यानुवाद डॉ. सीनी सौम्यनाथन ने किया है।

श्री रा. विलिनाथन ने कई तमिल कृतियों का हिंदीकरण किया है। उन्होंने 'कल्कि' कृष्णमूर्ति के तमिल उपन्यास 'शोलैमले की राजकुमारी', 'पार्थिबन का सपना', 'बाहर का आदमी' आदि का अनुवाद किया है। श्रीमती पार्वती ने मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'परितप्त लंकेश्वरी' का तमिल में अनुवाद किया है।

तमिल के विख्यात लेखक रा. कृष्णमूर्ति 'कल्कि' के तमिल उपन्यास का हिंदी में 'लहरों का आरव' शीर्षक से राधा जनार्दन ने अनुवाद किया है। ज्ञानपीठ से पुरस्कृत जयकांतन डी. के तमिल उपन्यास का 'बदलते चेहरे' शीर्षक से न.वी. राजगोपालन ने, अखिलन पी.वी. के तमिल उपन्यासों का क्रमशः 'कहाँ जा रहे हैं हम' शीर्षक से, 'चित्रप्रिया' शीर्षक से डॉ. अनुकुमारी तथा के.ए. जमुना ने हिंदी में अनुवाद किया है।

आधुनिक तमिल कथा साहित्य के अनुवाद में उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं, डॉ. वी. पद्मावती। उन्होंने 'बीसवीं शताब्दी की तमिल कहानी' के शीर्षक से सौ कहानियों का तमिल से हिंदी में अनुवाद किया है, जो पाँच खंडों में प्रकाशित हुआ है।

उन्होंने साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त गोविंद मिश्र का उपन्यास 'कोहरे में कैद रंग' का अनुवाद तमिल में 'मूडुपंचिरायिल वन्नंगल' के शीर्षक से किया है। विख्यात तमिल कवि सिर्पि बाल सुब्रमण्यम का पुरस्कृत काव्य संकलन 'ओर

ग्रामत्तु नदी' का हिंदी में अनुवाद 'एक ग्रामीण नदी' के शीर्षक से किया है। इन दोनों अनूदित कृतियों का प्रकाशन साहित्य अकादमी ने किया है। डॉ. वी. पद्मावतीजी ने राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती की तमिल कविताओं का हिंदी में तथा डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की चयनित हिंदी कविताओं का अनुवाद तमिल में किया है।

तमिल कहानी साहित्य के हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में योगदान देनेवालों में एक और उल्लेखनीय अनुवादक हैं डॉ. पी. सरस्वती। उन्होंने तमिल के विख्यात कथाकार कि. राजनाराणन की चयनित तमिल कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया है, जो 'मृगमरीचिका एवं अन्य कहानियाँ' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

'तमिल की लोकप्रिय कहानियाँ' शीर्षक से डॉ. ए. भवानी के संपादन में प्रकाशित संकलन में हिंदी में अनूदित 20 तमिल कहानियाँ शामिल हैं। विजयलक्ष्मी सुंदरराजनजी का हिंदी एवं तमिल के बीच अनुवाद कार्य में विशिष्ट योगदान है।

डॉ. एम. शेषन का 'समकालीन तमिल कहानियाँ' शीर्षक से 20 कहानियों का एक संकलन प्रकाशित हुआ है जिसमें तमिल कहानीकार एस. शंकरनारायण, तिरुवारूर बाबू, ना. पार्थसारथी, त.ना. कुमारस्वामी, तमिळिनियन्, मा. राजेंद्रन, तमिळिनियन, कल्कि, उत्तमचोलन, एस.एस. तेन्नरसु, अरिज़र अण्णादुरै, जयकांतन, पा. मुरुगेशन, पुदुमैपित्तन, पावण्मन, मलैयमान, ये. यतिराजन्, पूवै. अमुदन की तमिल कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया है। इन्होंने शिव प्रसाद सिंह के 'नीला चाँद' उपन्यास का तमिल में अनुवाद भी किया है।

श्री टी.एस.के. कण्णन ने चर्चित उपन्यासों का भी हिंदी में अनुवाद किया है। इनकी प्रकाशित अनुवाद कृतियों में 'दिलवाली घरवाली' उपन्यास (तमिल मूल : नाथन), 'कलैनर की छोटी कहानियाँ' (मूल कहानीकार : डॉ. एम. करुणानिधि), 'तेन पांडि सिंगम' उपन्यास (तमिल मूल : डॉ. एम. करुणानिधि), 'कुट्राल कुरिंजी' (तमिल मूल : कोवि मणिशेखरन), 'वल्लुवर के अमर सिद्धांत' (डॉ. सी. कुलंदैस्वामी की आलोचना कृति 'वालुम वल्लुवम' का हिंदी अनुवाद) आदि इनकी अनूदित कृतियों में शामिल हैं।

डॉ. कमला विश्वनाथन ने तमिल की विख्यात लेखिका शिवशंकरी की कई कहानियों एवं उपन्यासों का अनुवाद किया है। तमिल से डॉ. प्रतापचंद्रा रेड्डी की जीवनी तथा सुंदर राजन की तमिल लघुकथाओं का हिंदी में अनुवाद किया है, जो 'नित्य कला' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। डॉ. विजयलक्ष्मी सुब्रह्मण्यम के कुछ तमिल उपन्यासों तथा कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया है। डॉ. जमुना कृष्णराज ने साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त मु. मेत्ता की तमिल कहानियों का हिंदी अनुवाद अश्रुपुष्प के शीर्षक से किया है। उन्होंने शिवशंकरी की तमिल कहानियों का हिंदी अनुवाद भी 'जमाना बदलेगा' शीर्षक से किया है।'तोंदवाले गणपति' के शीर्षक से तमिल कवि अळ वल्लियप्पा की बाल कविताओं का हिंदी अनुवाद किया है। 'देव पाठ' के शीर्षक से तमिल भक्ति काव्य का अनुवाद भी किया है। उनका एक काव्य संग्रह 'मानव की खोज' में शीर्षक से तमिल से हिंदी में अनूदित प्रकाशित हुआ है।

बड़ी मात्रा में तमिल साहित्य के हिंदी में अनुवादों के बावजूद तमाम कृतियाँ पाठकों के लिए सुलभ नहीं हो पा रही है। सभी अनूदित कृतियों के डिजिटल संस्करण, निःशुल्क पी.डी.एफ. संस्करण आदि रूपों में उपलब्ध कराना सुनिश्चित होने से भविष्य में इन दोनों भाषाओं में आदान-प्रदान की काफी संभावनाएँ हैं।

□

professorbabuji1@gmail.com

कोंकणी-हिंदी भाषाओं का संगम

—प्रो. वृषाली सुभाष मांद्रेकर

हिंदी से कोंकणी में भी अनुवाद कार्य किया गया है, जिसे साहित्य अकादमी द्वारा भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। 'अंधा युग' एवं 'अंधेर नगरी' का अनुवाद रमेश वेलुस्कर, 'आधे अधूरे'—(एक संवसार अर्दकुटो)—अनुवादक नागेश करमली, 'चित्रलेखा'—प्रभाकर नाडकर्णी (2002) 'आषाढ़ का एक दिन'—(आषाढ़ातलो एक दिस) अनुवादक हैं पांडुरंग भांगी, 'म्हजोएक्कावन कविता और पृथ्विराजांचे दोळे'—प्रभाकर शेजवलकर, 'रामचरितमानस' (2004) अनंतभट, 'कावळो आनी काळेपाणी' (2008)—महाबलेश्वर सैल तथा 'कलिकथा व्हाया बायपास'—हेमा नायक (2008) खूँटियों पर टँगे हुए लोग—प्रोसोनियासिरसाट 'जिंदगीनामा',—जयंती नायक, 'तमस',—प्रोवृषाली मांद्रेकर आदि।

प्रभाकर शेजवलकर ने सन् 1994 में, रामकुमार वर्मा का एकांकी संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' का अनुवाद किया, जिसमें पृथ्वीराजाँचे दोले, कूपाचे मर्ण, धा मिनिटाँ, 'नाचे गोम', 'चंपक', नटी आदि एकांकियाँ संग्रहीत हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें' एकांकी हिंदी साहित्य क्षेत्र में चर्चित साहित्य कृति रही है। पृथ्वीराज और गोरी के वैरभाव एवं शब्दभेदी बाण से गोरी की हत्या इस एकांकी का मूलभाव रहा है।

'अंधा युग' धर्मवीर भारती का गीतिकाव्य है, जिसका अनुवाद साहित्य अकादमी से पुरस्कृत रचनाकार रमेश वेलुस्कर ने किया है। दोनों अनुवाद 'अंधा युग' एवं 'अंधेर नगरी' उत्कृष्ठ बन पड़े। अनुवादक ने स्वयं कवि होने के कारण गीतिनाट्य 'अंधा युग' में लय एवं ताल की बृहदता, संवादों की गीतिमयता, पात्रों की मानसिकता के अनुकूल भाषा की रचना की है। मुक्त छंदों में महाभारत के उत्तर-पूर्व की घटनाओं को आधारभूत मानकर परिचित कथा को ही प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित किया है। निराशा, कुंठा, रक्तपात, विद्रोह, विकृति, कुरूपता, अंधापन आदि को सूक्ष्मता से मूल कृति में चित्रित किया है, जिसका कोंकणी में अनुवाद इस भाषा के साहित्य में चार-चाँद लगाता है।

भारतेंदु की बहुचर्चित कृति 'अंधेर नगरी' का अनुवाद भी कवि के माध्यम से होने के कारण मूल कृति के गीति संवादों के साथ न्याय कर पाए हैं। ब्रिटिश शासक एवं उसकी नीतियों का पर्दाफाश करनेवाली यह कृति सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर भी व्यंग्य करती है। अज्ञानी एवं मूर्ख राजा, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, अनीतिपूर्ण व्यवहार इन सबका पर्दाफाश इस प्रहसन से हुआ है। मोहन राकेश हिंदी नाटयक्षेत्र में सिर्फ तीन नाटक

* शणै गोंयबाब भाषा एवं साहित्य महाशाला, गोवा विश्वविद्यालय में उप अधिष्ठाता।

रचकर महत्त्वपूर्ण नाटककार साबित-सिद्ध हुए। 'लहरों के राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे-अधूरे'—इन तीन नाटकों में से दो नाटकों का अनुवाद कोंकणी में हुआ है—आषाढ़ासतली एक दिस—पांडुरंग भांगी और आधे-अधूरे का 'एक संवसार अर्दकुटो नागेश करमली द्वारा किया गया है। दोनों अनुवाद कथ्य एवं शैली के संप्रेषण में सफल हो पाए हैं। सावित्री की पूर्ण पुरुष की तलाश, उसका द्वंद्व, मानसिकता, सांसारिक जीवन में महेंद्र का स्थान, उसकी कमियाँ, बिन्नी अशोक एवं किन्नी की माँ तथा उसके गैर पुरुषों के साथ संबंधों पर व्यक्त की गई सोच को बहुत ही गहराई तथा सूक्ष्मता से रेखांकित करने में अनुवादक सफल हुआ है।

के अनंत भट ने भी अनुवाद क्षेत्र में महनीय कार्य किया है। तुलसीदास, सूरभजनमाला तथा श्रीरामचरित मानस का कोंकणी अनुवाद किया है। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' का अनुवाद सहज-सरल शैली में किया है। अनुवाद साहित्यिक आदान-प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण साधन है, विश्व की भाषाओं को सीखना हर एक के लिए संभव नहीं है इसलिए अनुवाद के माध्यम से ही बेहतरीन कृतियों को पढ़ा जा सकता है। हिंदी साहित्य में श्री रामचरित मानस का स्थान अक्षुण्ण है, इसके कारण कोंकणी भाषा की गरिमा में वृद्धि हुई है। अनुवाद में कुछ कमियों को महसूस किया जा सकता है—जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रचुरता से उपयोग (आनन निगमाग भववादिधि, भवसागर, कलिमल) किया गया है, जिससे कहीं-कहीं अनुवाद के बजाय रामचरित मानस की मूल कृति को पढ़ने जैसी अनुभूति होती है।

ज्ञानपीठ के मूर्तिदेवी पुरस्कार तथा साहित्य अकादमी से सम्मानित निर्मल वर्मा की 'कव्वे और काला पानी' का अनुवाद साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त कोंकणी के श्रेष्ठ लेखक महाबळेश्वर सैल ने किया है। कथा लेखक निर्मल वर्मा की इस जगत् के किसी भी लोक से तुलना करना मुश्किल/कठिन है। उनके लेखन पर किसी का प्रभाव नहीं है, न ही उनके लेखन को ग्रहण कर कोई उनकी तरह रचना कर सकता है। शैली की नवीनता, कथ्य की नूतनता से उन्होंने नवकथा को जन्म दिया है। 'वोताचो एक कुडको', 'दुसरो संवसार', सकाळची भेवंडी, दादलो आनी चली, कावळें आनी काले पाणी, एका दिसाची सोयरो आदि कहानियों को उत्कृष्टता से अनुवादित किया है। कहानियों का परिवेश भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन-शैली से जुड़ा हुआ है। निर्मल वर्मा ने विदेशों के चरित्रों और परिवेशजन्य अनुभूति को यथार्थता से चित्रित किया है।

'कलिकथा वाया बायपास' अलका सरावगी के उपन्यास का अनुवाद हेमा नायक ने किया है। किशोर बाबू के जीवन की तीन अवस्थाओ में 1943 का बंगाल का अकाल, 1946 का ग्रेट कॅलकटा किलींग और 1947 का देश विभाजन, अपने मित्रों के साथ घुमक्कड़ी की प्रथम अवस्था, बिना किसी मोहपाश के पचास बरसों मे पैसों को पीछे भागना और बायपास के उपरांत अपने जीवन की तीसरी अवस्था को लेखिका ने विभिन्न शैलियों के माध्यम से रेखांकित किया है। हेमा नायक ने भी अनुवादित उपन्यास में कोंकणी भाषा का सजीव एवं सार्थक प्रयोग करने का प्रयास किया है।

कोंकणी से हिंदी में भी लगातार अनुवाद कार्य हो रहा है, जिसमें कोंकणी काव्य चेतना हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय कार्मेलीन प्रभाकर रोजवलकर, भारतीय कथा कोश, संपादक कमलेश्वर, कथादर्पण-संपादक मोहनदास सुर्लकर आदि प्रमुख हैं। कोंकण देश की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ आँचलिक विशेषताओं से परिचित हो जाते हैं।

सहज सौंदर्य, प्रेम एवं समर्पण के श्रेष्ठ कवि बाकीबाब बोरकर, रसास्वाद की गहनता तथा बिखरे अलंकारों की गझिनता लिए हुए रवि पंडित, सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के प्रति जागरुक तथा भाव एवं विचार की गहनता से स्थानिय रंग भरनेवाले मनोहर राय सरदेसाय, गोवा की मिट्टी से जुड़े हुए प्रकाश पाडगाँवकर लोगों के दिलों में अन्याय की प्रतिकार शक्ति को जगानेवाले पंडुलीक नायक लोकगीतों की धूम एवं कल्पनाशयता से भरपूर रमेश वेलुस्कर की कविता की तथा समाज के साथ प्रतिबद्धता रखनेवाले नागेश करमली, साथ-ही-साथ अन्य उभरते हुए नए कलाकारों कुल मिलाकर पंद्रह रचनाकारों की कविताओं से हिंदी पाठक अवगत हो सकता है।

'कोंकणी काव्य चेतना' में कोंकणी के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों की, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कवियों की नव-कवियों की रचनाओं की इस अनुवाद सृष्टि में आशय की सधनता, विचारों की नूतनता तथा भावों की विविधता को पाते है। इन कवियों ने राज्याभिमान, देशाभिमान के साथ ही व्यक्ति केंद्रित रचनाओं की भी सृष्टि की है। 'आयज तू येतलो देखुन', 'वोंवळाचो धमधम', 'धराची रसणाय', 'पांयजणा' जैसी कविताएँ व्यक्तियों के प्रेम की भावनाओं की सघन बुनावट लेकर प्रस्तुत होती हैं, तो 'पाडेल्यानो पाडुन चलात 'आमीकोण' आदि पुंडलकि नायक तथा डॉ. तानाजी हळर्णकर की शास्त्र च डॉ. शस्त्री जाली कविताएँ अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती हैं। 'मिठाकण' कविता नमक के महत्त्व और सांसारिक जीवन में एक नारी की महत्ता को केंद्र में रखकर रची गई है। 'नीळे सवणें' कविता में तो कवि एक रूपक का आधार लेकर बहुत ही सुंदर ढंग से आध्यात्मिकता की और ले जाते हैं। जहाँ कबीर और मीरा के पद सहज ही याद आते हैं। 'सवणे जीवा भिडून गेले हांवय जाले गाड नी' यह भाव कबीर के पदों में भी मिलता है—

'खूँटियों पर टँगे लोग' का अनुवाद प्रो. सोनिया सिरसाट ने किया है। कविता का अनुवाद जटिल होता है। लयबद्धता एवं शब्दों के संगुफन से जो मेल हिंदी कविताओं में है, उसे कोंकणी में बरकरार रखने और कविता के भावों को कोंकणी पाठक तक पहुँचाने के लिए यह अनुवाद महत्त्वपूर्ण है। कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा' का अनुवाद जयंती नायक ने किया। अनुवादक स्वयं लेखिका है, इसलिए कृष्णा सोबती के भावविश्व को समझने में कोई भी कठिनाई नहीं हुई। 'तमस' का अनुवाद प्रो. वृषाली मांद्रेकर ने किया है। साहित्य अकादमी से यह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होगी। 'तमस' की पंजाबी उर्दू मिश्रित हिंदी को अनुवादित करना दुष्कर कार्य है। पर अनुवाद की समस्याओं का निराकरण करते हुए जयंती नायक तथा वृषाली मांद्रेकर ने बखूबी यह कार्य निभाया है। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति के कारण कोंकणी भाषा में भी इन साहित्य कृतियों से वृद्धि होगी। इसके अलावा अमृता प्रीतम की कहानियों का तथा तुलसीदास, कबीरदास आदि के जीवनीपरक किताबों का भी अनुवाद कोंकणी में हुआ है।

अनुवाद पुनः सृजन होता है। इस अनूदित कार्य को देखकर मुझे लगा कि इसमें कलित कविताओं का मूलभाव हिंदी रूपांतरा में यथांभव आ सका है, इसमें सम्मिलित कवि विभिन्न प्रवृत्तियों व विचारधाराओं से संबद्ध है, जो आज की कोंकणी कविता का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हैं। इन्हें पढ़कर हिंदी जगत् के सुविज्ञ पाठकों रसिकों, सहृदयों को कोंकणी-काव्य में व्याप्त सौंदर्य, रागात्मक बोध, जीवन संघर्ष और मानवीय अस्मिता की पहचान हो सकेगी। यह भूतपूर्व कुलगुरु द्वारा अभिव्यक्त विचार इस अनुवाद की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं।

'कार्मेलीन' दामोदर मावजो को उपन्यास के

अनुवादक हैं प्रभाकर शेजवलकर। इस उपन्यास के हिंदी अनुवाद से समस्त भारतवासी गोवा के क्रिश्चियन समाज की नारी के दु:ख-दर्द, वात्सल्य भावना तथा बच्ची के लिए सर्वस्व दाँव पर लगाने की क्षमता को अनुभूत कर सकते हैं। इस उपन्यास का केंद्रीय चरित्र कार्मेलिन विविध रूपों में पाठकों से साक्षात्कार करता है। आरंभ में माता-पिता के गुजर जाने से प्यार और वात्सल्य भाव की आशा करनेवाली अनाथ, अबोध बालिका, गहराई से प्रेम करनेवाली प्रेमिका, फूफा-फूफी के ममता के बोझ तले दबी युवती, प्रेम भंग हुई निराश प्रियतमा, विवाह रूपी संकट-पति को झेलनेवाली पत्नी, अपने बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारियों को वहन करनेवाली माँ, यहाँ तक कि विदेश में जाकर सर्वस्व लुटाकर अपनी बच्ची बेलिंदा के उज्ज्वल भविष्य की कामना करनेवाली माँ इन विभिन्न रूपों से एक सशक्त नारी-चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इसका अनुवाद उचित हुआ है। मूल उपन्यास एवं अनुदित उपन्यास पढ़ने के उपरांत कहीं भी यह महसूस नहीं होता है कि मूल भाषा का कोंकणी कथ्य, परिवेश एवं उद्देश्य स्रोत भाषा में सुगमता से नहीं आई है।

कथा दर्पण 2009 में प्रकाशित डॉ. किरण बुडकुले एवं श्री मोहनदास सुलंकर द्वारा संपादित कोंकणी कहानियों का हिंदी अनुवाद है। अनुवाद कथ्य एवं शैली का संप्रेषण होता है। चयन, पठन, विश्लेषण, भाषांतरण पुनरीक्षण, मिलान, संशोधित संस्करण आदि प्रक्रियाओं द्वारा गुजरता हुआ समुचित अनुवाद होता है, शरीर और आत्मा का, जिस तरह से संबंध होता है, वैसे ही अर्थ एवं शैली का संबंध होता है इन मुद्दों करे ध्यान में रखते हुए कोंकणी कथाकारों की 27 कहानियाँ संकलित की है, जिनमें आद्य कहानीकार से लेकर आधुनिक कहानीकार भालचंद्र गावकर, मधुसूदन जोशी आदि की कहानियाँ संकलित हैं। संकलन और चयन् कार्य मुश्किल होता है, फिर भी प्रतिनिधि कहानियों का चुनाव करते हुए विषय की विविधता सांस्कृतिक धरोहर प्राकृतिक सौंदर्य, मूल्यहीन भौतिकवाद, निरंकुश शरीर संबंधों के दुष्परिणाम, धार्मिक मान्यताओ आदि से जुड़ी यह कहानियाँ कोंकणी कहानी साहित्य का वृहत परिप्रेक्ष्य स्पष्ट करती है। जिसमें अनुवादक के रूप में शोभा वेरेंकर, ज्योति कुलकर्णी, वृषाली मांद्रेकर, रमिता मुख, किरण पोपकर, मॅग्डालिन डिसुझा, चतुरा साकोर्डेकर, रूपा च्यारी आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त दामोदर मावजों के कहानी-संग्रह 'सपनमोगीं' का अनुवाद डॉ. रमिता गुरव ने किया और मावजो की कृतियों को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने में वह सफल हुई।

कोंकणी से हिंदी एवं हिंदी से कोंकणी भाषाओं में साहित्यकृतियों का अनुवाद कार्य अबाध गति से प्रवाहमान है। उसमें समस्याएँ तो होती हैं, पर अनुवाद के बाद पुन: सृजन का आनंद प्राप्त होता है। इस प्रकार अनुवाद आदान-प्रदान तथा सद्भावना का माध्यम है। वह भारत ही नहीं, विश्व की संस्कृति एवं समाज को जानने का विश्वव्यापी कैनवास है।

□

vrushalimandrekar38@gmail.com
vrushali.mandrekar@unigoa.ac.in

राष्ट्रभाषा के प्रचार को मैं राष्ट्रीयता का अंग मानता हूँ।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान

—प्रो. एम. ज्ञानम

भूमिका

तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण की स्थिति भारत के अन्य प्रांतों से भिन्न है। इसलिए उसकी समस्याएँ भी भिन्न हैं। ये समस्याएँ कुछ सामाजिक हैं और कुछ भाषावैज्ञानिक हैं। इनका विश्लेषण कर समाधान ढूँढ़ना इस लेख का उद्देश्य है।

सामाजिक समस्याएँ

1. तमिल संसार की प्राचीनतम भाषाओं में एक है। लक्षण और लक्ष्य ग्रंथों से अत्यंत समृद्ध भाषा है और आज भी जीवंत तथा हर क्षेत्र के लिए सक्षम भाषा है। तमिलभाषियों को सामान्यतः अपनी भाषा की प्राचीनता, समृद्धता और जीवंतता पर गर्व है। इसलिए सन् 1965 में पूर्वनिर्धारण के अनुसार जब हिंदी को पूर्ण रूपेण राजभाषा के रूप में पूरे भारत में लागू किया गया, तो उसका भारी विरोध सिर्फ तमिलनाडु में हुआ। सन् 1967 में तमिलनाडु में प्रांतीय दल द्रविड़ मुनेड़ कड़गम के सत्ता में आने के मुख्य कारणों में एक था उसका तीव्र हिंदी विरोध।
2. द्रविड मुन्नेट्र कषगम, सत्ता में आने के तुरंत बाद सरकारी स्कूलों और सरकारी अनुदान प्राप्त स्कूलों से तृतीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण को हटा दिया और दो भाषा सूत्र को लागू कर दिया, यानी सिर्फ मातृभाषा और अंग्रेजी मात्र का स्कूलों में शिक्षण। तमिलनाडु में स्कूली शिक्षा का दायित्व करीब 90% सरकारी और सरकारी अनुदान प्राप्त स्कूलों पर ही है। इसलिए कहना चाहिए कि तमिलनाडु में करीब 90% स्कूली छात्र हिंदी शिक्षण से वंचित रह जाते हैं।
3. हिंदी विरोध की मानसिकता तमिलनाडु के समाज में आज कम हो गई है। प्राइवेट स्कूल अपने यहाँ हिंदी शिक्षण होने का जोरदार विज्ञापन देना और काफी संख्या में छात्रों का उसका लाभ उठाना इसका प्रमाण है। लेकिन हिंदी विरोध की मानसिकता पूरी तरह से नहीं मिटी है।
4. इसके अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि तमिलनाडु में अभी दो मुख्य राजनीतिक दल ही हैं—द्रविड़ मुनेड़ कड़गम् और कुछ समय बाद उससे अलग हुआ अनैत्तिंदिय अण्णा द्रविड मुन्नेट्र कषगम। अन्य दल, प्रांतीय हों या राष्ट्रीय इनके गठबंधन के ही मोहताज हैं, या चुनाव में नगण्य अहमियत

* केंद्रीय हिंदी संस्थान के मैसूर केंद्र के पूर्व क्षेत्रीय निदेशक।

ही पाते हैं। ये दोनों दल हिंदी का विरोध करते हैं और एक-दूसरे पर दो भाषा सूत्र की ढिलाई का आरोप लगाते हुए खुद को तमिल के रक्षक होने का दावा करते हैं। इस प्रकार हिंदी विरोध अब सामाजिक से अधिक राजनीतिक हो गया है।

5. इस परिस्थिति में तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण सिर्फ दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा और सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम के अपनानेवाले स्कूलों (केंद्रीय विद्यालय, सैनिक स्कूल और सी.बी.एस.ई. के प्राइवेट स्कूल) पर ही निर्भर है। लेकिन इनसे 10% स्कूली छात्र भी हिंदी शिक्षण नहीं ले पाते।
6. ध्यातव्य है कि तमिलनाडु को छोड़कर भारत भर में फैले हुए जवाहर नवोदय विद्यालय, तमिलनाडु में कहीं नहीं है, क्योंकि तमिलनाडु में जो सरकारें सन् 1967 के बाद बनीं, वे जवाहर नवोदय विद्यालय के लिए जमीन आबंटित करने के लिए तैयार नहीं हुईं।
7. उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण का प्रावधान कुछ महाविद्यालयों में और कुछ विश्वविद्यालयों में जरूर है। लेकिन बुनियादी हिंदी शिक्षण के अभाव में उच्च शिक्षा में हिंदी को लेनेवालों की संख्या अत्यंत कम है, (10% से भी कम)। उदाहरण के लिए अन्नामलाई विश्वविद्यालय में एम.ए. हिंदी में इस वर्ष सिर्फ एक छात्र है।

सामाजिक समस्याओं का समाधान

1. तमिलनाडु के समाज में यह विश्वास दिलाना चाहिए कि हिंदी से तमिल का कोई नुकसान नहीं होगा। वास्तव में हिंदी की स्पर्धा अंग्रेजी से है, प्रांतीय भाषाओं से नहीं। अंग्रेजी के कारण हिंदी समेत सभी भारतीय भाषाएँ खतरे में हैं। उपनिवेश काल के सभी उपनिवेश देश अपने ऊपर प्रभुत्व जमानेवाले देश की भाषाओं से आक्रांत हैं। फ्रांस के अफ्रीकी उपनिवेश फ्रेंच से मुक्ति नहीं पा रहे हैं। लैटिन अमेरिका के स्पैनिश उपनिवेश स्पैनिश से मुक्ति नहीं पा रहे हैं। इस बात का प्रचार कर उपनिवेशकालीन विदेशी भाषा के चंगुल से देश को छुड़ाने का प्रयास करना चाहिए।
2. केंद्रीय विद्यालय सेना या केंद्रीय उपक्रमों के कर्मचारियों के बच्चों के लिए ही मुख्य रूप से खोले गए हैं। उनमें प्रवेश की शर्तें भी उसके अनुरूप ही हैं। तमिलनाडु की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखकर साधारण जनता के लिए भी केंद्रीय विद्यालय खोले जा सकते हैं। चूँकि समाज में हिंदी का विरोध कम है, इन विद्यालयों में साधारण जनता न के बराबर के खर्च में स्तरीय शिक्षा के साथ, हिंदी शिक्षण भी पाएगी जिसके लिए प्राइवेट स्कूलों में अभी हजारों/लाखों रुपए खर्च करने पड़ रहे हैं।
3. जवाहर नवोदय विद्यालय अपनी शर्तों को तमिलनाडु के लिए परिवर्तित कर खुद जमीन खरीदकर खुल सकते हैं। जवाहर नवोदय विद्यालय शहर से दूर जंगल या बंजर भूमि में ही बनते हैं। वहाँ जमीन सस्ती ही होती है। जवाहर नवोदय विद्यालय गरीब ग्रामीण जनता के लिए बहुत बड़ा वरदान है, जिससे तमिलनाडु वंचित है। जवाहर नवोदय विद्यालय से तमिलनाडु की गरीब ग्रामीण जनता को

निःशुल्क हिंदी शिक्षण के साथ स्तरीय शिक्षा भी मिल सकती है।

4. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के माध्यम से जगह-जगह आंशिक हिंदी विद्यालय खोलने के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदी विद्यालय खोलने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जा सकता है। आजकल हिंदी प्रचार कुछ हद तक शहरों में ही चलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में नगण्य ही है, जबकि हमारे देश में गाँव ही अधिक हैं और हमारी जनता ज्यादातर गाँवों में बसी हुई है।
5. आजादी से पहले महात्मा गांधी ने सरकारी सहयोग के बिना, बल्कि कहना चाहिए, सरकार के अहसयोग के बावजूद, हिंदी का प्रचार तमिलनाडु में जितना किया, उतना भी हम आजादी के बाद अपने लोगों के शासन् में नहीं कर पा रहे हैं। आज भी जो कुछ हो रहा है, उन्हीं से स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा द्वारा ही अधिकांश हो रहा है। हिंदी की आवश्यकता और दायित्व पहले से भी आज अधिक हो गया है। हिंदी प्रेमियों का ध्यान तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण की ओर आना ही समस्याओं का असली समाधान है, जिससे उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त और भी उपाय निकल सकते हैं।

भाषावैज्ञानिक समस्याएँ

सामान्य समस्याएँ

1. तमिल में अन्य द्रविड़ भाषाओं की तुलना में बहुत कम ही संस्कृत शब्दों को लिया है। कन्नड़, तेलुगू और मलयालम में संस्कृत शब्दों की बहुलता सराहनीय एवं उच्च साहित्यिक मानी जाती है, जबकि तमिल में कम-से-कम संस्कृत शब्दों का प्रयोग सराहनीय नहीं माना जाता। उसमें शुद्ध तमिल शब्द के प्रयोग की ही अपेक्षा होती है। यह प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। तीस-चालीस साल पहले जो संस्कृत शब्द तमिल में प्रयुक्त होते थे, वे आजकल लुप्त हो गए हैं। इससे शब्द स्तर पर तमिलभाषी छात्रों को तेलुगू, मलयालम और कन्नड़भाषी छात्रों से, हिंदी सीखने में अधिक कठिनाई होती है।
2. तमिलनाडु की सीमा हिंदी ही नहीं, किसी भी आर्य भाषा-भाषी प्रदेश से लगी नहीं है। यह भी तमिलभाषियों को हिंदी या किसी आर्य भाषा को सीखने में कठिनाई प्रस्तुत करता है। तमिलभाषी छात्र जितनी आसानी से मलयालम, कन्नड़ या तेलुगू सीख सकते हैं, उतनी आसानी से हिंदी नहीं सीख पाते।

संरचनागत समस्याएँ

तमिल भाषा की संरचना हिंदी से कुछ भिन्न है। कुछ प्रमुख संरचनागत भिन्नताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है, जो तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण में समस्या पैदा करती हैं।

ध्वनि-स्तर पर

1. तमिल में 'ऐ' और 'औ' द्विस्वर हैं, जबकि हिंदी में मूल स्वर है।
2. तमिल में 'ऋ' नहीं है। 'ऋ' युक्त कुछ संस्कृत शब्दों में वह 'रि' बनता है, (जैसे ऋषि → रिषि) और कुछ शब्दों में 'रु' (जैसे ऋतु → रुदु)। तमिलभाषी ज्यादातर 'ऋ' का उच्चारण 'रु' के रूप में ही करते हैं।

3. तमिल में 'ज्ञ' का उच्चारण '´' की तरह होता है, जबकि हिंदी में 'ग्य' की तरह।
4. लिखित तमिल में अनुनासिकता है ही नहीं। इसलिए तमिलभाषी छात्र अकसर अनुनासिकता को 'म्' के रूप में उच्चरित करते हैं।
5. वर्गोत्तर व्यंजनों के पहले अनुस्वार को तमिलभाषी अकसर 'म् ' के रूप में उच्चरित करते हैं। (जैसे—वंश→वम्सम् कंस→कम्सन्) जबकि हिंदी में इन संदर्भों में अनुस्वार का उच्चारण परवर्ती व्यंजन के सजातीय होता है।

व्याकरण-स्तर पर

1. तमिल में संज्ञाओं का बहुवचन रूप (मूल रूप) हमेशा एकवचन रूप के साथ बहुवचन चिह्न जोड़कर बनाया जाता हैं। हिंदी में पुल्लिंग संज्ञाओं में सिर्फ आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ बहुवचन में (मूल रूप) रूप बदलते हैं। उनमें भी संस्कृत तत्सम आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ और वरिष्ट रिश्तेसूचक आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ बहुवचन (मूल रूप) में रूप नहीं बदलतीं। तमिलभाषी छात्रों के लिए यह समस्या है। वे व्यापारियाँ, घरें आदि प्रयोग कर बैठते हैं, या तिर्यक रूप को मूल बहुवचन रूप की जगह प्रयोग करते हैं जैसे 'व्यापारियों आए'।
2. तमिल में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग भेद सिर्फ विवेकशील जाति (मानव/देव/राक्षस) में ही होता है। अन्य सब संज्ञाएँ नपुंसक लिंग की होती हैं। हिंदी में हर संज्ञा स्त्रीलिंग या पुल्लिंग की होती है। इसकी पहचान तमिलभाषी छात्र के लिए बड़ी कठिनाई है।
3. तमिल में कर्ताकारक का कोई चिह्न/परसर्ग होता ही नहीं है, जबकि हिंदी में है (ने)। इसके आगमन के नियम हैं, जो तमिलभाषी छात्र के लिए समस्या खड़ी करते हैं। और भी कई कठिनाइयाँ कारक चिह्न/परसर्ग के प्रयोग में तमिलभाषी को होती हैं। उनके कुछ अमानक प्रयोगों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—
   * राम रोटी खाया
   * सीता रोटी खाई
   * राम को दो बच्चे हैं
   * गाड़ी दो पच्चीस को आई।
   * आज राम को शादी है।
   * माँ आते ही बच्चे उसकी ओर दौड़ पड़े
   * तुम देरी से आना अच्छा नहीं है।
   * अध्यापक आते-आते दस बज गए।
   * मेहमान आए तीन दिन हो गए।
   * मैं उसको प्रेम करता हूँ।
   * मैं जाना है।
   * राम वन जाना पड़ा
   * रहीम जाना चाहिए
   * सीता ने चिट्ठी को फाड़ डाली
4. तमिल में निजवाचक सर्वनाम सिर्फ अन्य पुरुष में होता है, जबकि हिंदी में उत्तम और मध्यपुरुष में भी होता है। तमिलभाषी छात्र अकसर मैं मेरे घर जा रहा हूँ, जैसे प्रयोग कर बैठते हैं।
5. तमिल में विशेषण और विशेष्य के बीच अन्विति नहीं होती, जबकि हिंदी में होती है। इसलिए तमिलभाषी छात्र 'मेरा माँ' 'बड़ा किताब' जैसे प्रयोग

अकसर करते हैं।

6. तमिल में सामान्य वर्तमान काल का प्रयोग अभी घट रही घटना के लिए भी हो सकता है, जबकि हिंदी में इस संदर्भ में सातत्य वर्तमान काल रूप अपेक्षित है। तमिलभाषी छात्र 'बस आती है, देखो, कह सकता है, जबकि उसे 'बस आ रही है, देखो' कहना चाहिए था।

7. तमिल में आदतन घटनेवाली भूतकालिक क्रिया के लिए भविष्यत्कालिक क्रिया रूप का प्रयोग होता है, जो हिंदी में संभव नहीं है। उदाहरण 'मैं बचपन में खूब कबड्डी खेलूँगा।' मानक हिंदी में होना चाहिए खेलता था या खेला करता था।

8. तमिल में संबंधवाचक सर्वनाम के प्रयोग की तुलना में कृदंत के प्रयोग से वाक्य बनाना अधिक सहज है। "जो लड़का वहाँ बैठा है, वह मेरा भाई है" की तुलना "मैं वहाँ बैठा हुआ लड़का मेरा भाई है" कहना तमिलभाषी के लिए सहज है। इसी तरह 'जब···तब' जहाँ···वहाँ, जैसे···वैसे आदि शब्दों से वाक्य बनाने से भी बचकर तमिलभाषी छात्र कृदंतों का प्रयोग अकसर करता है। उदाहरण 'तुम कहते समय में आऊँगा', जो हिंदी के लिए असहज है।

9. तमिल में भाववाच्य है ही नहीं। कर्मवाच्य भी सिर्फ लिखित या औपचारिक तमिल में ही है। हिंदी में ये दोनों वाच्य सहज रूप में प्रयुक्त हैं। तमिलभाषी छात्र के लिए यह थोड़ा कठिन है।

10. इच्छार्थक क्रिया रूप तमिल 'में' नहीं है। इसलिए 'मैं चाहता हूँ कि वह डॉक्टर बने' के बदले तमिलभाषी छात्र अकसर 'मैं चाहता हूँ कि वह (या उसे) डॉक्टर बनना चाहिए।' कहते हैं, जो मानक हिंदी के लिए स्वीकार्य नहीं है।

11. भूतकालिक सकर्मक क्रिया और कर्म के बीच अन्विति तमिलभाषी छात्र के लिए कठिन है, क्योंकि तमिल में ऐसी अन्विति होती नहीं है। स्नातक या स्नातकोत्तर हिंदी शिक्षण प्राप्त छात्र भी अकसर कहते या लिखते हैं—
'राम (ने) किताब खरीदा' जो मानक हिंदी में अस्वीकार्य है।

12. इसी तरह कर्तृवाच्य में भावे प्रयोग भी तमिलभाषी छात्र के लिए कठिन है। वह अकसर 'सीता (ने) चिट्ठी को फाड़ दी' जैसे अमानक हिंदी वाक्य बनाता है।

13. हिंदी में एक वाक्य के भूतकालिक कृदंत (आकर आदि) और समापिका क्रिया का कर्ता सामान्यतः एक ही होना चाहिए जबकि तमिल में ऐसा नहीं है। इसलिए तमिलभाषी छात्र अकसर 'राम आकर लक्ष्मण जाएगा' या साँप काटकर बच्चा मर गया। जैसे वाक्य बनाता है, जो मानक हिंदी में गलत होता है।

14. हिंदी में आते ही, आते-आते, आए, आना आदि कृदंत रूपों के साथ कर्ता आने पर दोनों के बीच संबंध कारक परसर्ग (का/के) आता है और यह मानव वाची कर्ता के संदर्भ में अनिवार्य है। तमिल में ऐसा नहीं है, वह कर्ता के रूप में ही तमिल में आता है। इससे संबंधित अमानक हिंदी प्रयोग ऊपर सं. 3 में दरशाते गए हैं।

15. हिंदी के सरल वाक्य की संरचना तो तमिल जैसी ही है जैसे कर्ता+कर्म+क्रिया (SOV)। लेकिन मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य की संरचना तमिल की संरचना जैसे नहीं हैं, अंग्रेजी जैसे हैं। जो…वह जहाँ…वहाँ, जब…तब, कि, ताकि, जबकि हालाँकि, ताकि एवं चूँकि आदि से बननेवाले मिश्र वाक्य तमिलभाषी छात्र के लिए कठिन है।

संयुक्त वाक्यों में भी संज्ञा पदबंधों को छोड़कर विशेषण पद वंध, क्रिया विशेषण पदबंध और क्रिया पदबंध को जोड़ना तमिलभाषी छात्र के लिए अकसर असहज है।

शब्द स्तर पर

तमिल और हिंदी में कई समस्रोती शब्दावली हैं। कइयों के अर्थ समान है, जैसे मन, भूमि, आदि। लेकिन कुछ शब्द कुछ भिन्न अर्थ देते हैं। कुछ शब्द तमिल में ऐसे हैं कि उनका स्रोत तो संस्कृत ही है, लेकिन हिंदी में प्रचलित नहीं हैं। इन दोनों संदर्भों में हिंदी शिक्षण में समस्या होती है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

समस्रोती-भिन्नार्थी शब्द

तमिल शब्द	तमिल में अर्थ	मूल शब्द का हिंदी में अर्थ
अहालम् (< अकाल)	अनुचित समय, बेतुका समय	दुर्भिक्ष
अदिसयम् (< अतिशय)	आश्चर्य	ज्यादा, अति
अबवादम् (< अपवाद)	बदनामी	जो नियम से बाहर हो,
अवहासम् (< अवकाश)	कुछ करने के लिए पर्याप्त समय	छुट्टी
अवसरम् (< अवसर)	जल्दी	मौका
अवस्तै (< अवस्था)	पीड़ा, बुरी दशा	दशा
अयोक्कियन् (< अयोग्य)	बुरा व्यक्ति	अनर्ह, अपात्र
आबासम् (< अभास)	गंदगी, भद्दापन	प्रतीति
उबन्यासम् (<उपन्यास)	धार्मिक प्रवचन	नोवेल
तिदि (< तिथि)	मृतकों का वार्षिक दिवस/ अनुष्ठान	दिनांक
रुसि (< रुचि)	स्वाद	दिलचस्पी
पत्तिरम् (< भद्र)	सुरक्षित	भला, अच्छा
बिन्नम् (< भिन्न)	अपूर्णांक	अलग
मर्यादा	सम्मान	व्यवहार-सीमा
वासनै (< वासना)	सुगंध	विषय-लिप्सा
विहारम् (< विकार)	कुरूपता	परिवर्तन

विवसायम् (< व्यवसाय)	कृषि	पेशा
संबिरदायम् (< संप्रदाय)	रीति-रिवाज	पंथ, मजहब
संबवम् (< संभव)	घटना	मुमकिन
सम्सारम् (< संसार)	पत्नी	दुनिया
कल्याणम् (< कल्याण)	शादी	मंगल

संस्कृत मूल के हिंदी में प्रचलित शब्द

तमिल शब्द	तमिल में अर्थ
अक्किरमम् (< अक्रम)	अन्याय
जनादिबदि (< जन + अधिपति)	राष्ट्रपति
सबा नायहर् (< सभा + नायक)	सभाध्यक्ष
अबेट्चहर् (< अपेक्षा)	अभ्यर्थी (चुनाव के)
वित्तियासम् (< व्यत्यास)	भेद, भिन्नता
सौरियम् (< सौकर्य)	आराम, सुविधा, स्वास्थ्य

स्थानाभाव के कारण थोड़े ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। यह बहुत बड़े शोध का विषय है।

संरचनागत समस्याओं का समाधान

1. हिंदी शिक्षण में संरचनागत समस्याओं का उत्तम समाधान उत्तम हिंदी शिक्षण एवं अभ्यास ही है। हिंदी शिक्षकों को मानक हिंदी की संरचना का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। साथ ही तमिल छात्र कहाँ गलत प्रयोग कर सकते हैं, इसका भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उन बिंदुओं का पर्याप्त अभ्यास कराना इस समस्या का समाधान हो सकता है।
2. दुर्भाग्यवश तमिलनाडु के हिंदी प्रचारक ज्यादातर (करीब 95%) शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हैं। इनका व्याकरणिक ज्ञान प्रायः कमजोर होता है। केंद्रीय हिंदी संस्थान का हैदराबाद केंद्र अपने नवीकरण कार्यक्रमों से उनके शिक्षण स्तर को ऊपर उठाने का सराहनीय प्रयास करता है। लेकिन इस क्षेत्र में और भी बहुत कार्य होना है।
3. उत्तम हिंदी शिक्षण और मानक हिंदीभाषियों से सीधे संपर्क के अभाव में तमिलभाषी हिंदी छात्रों के लिए दूरदर्शन के हिंदी कार्यक्रम समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। दूरदर्शन हिंदी शिक्षण कार्यक्रम और उपचारात्मक हिंदी शिक्षण कार्यक्रम भी चला सकता है।
4. तमिलभाषी छात्रों के सामान्य हिंदी प्रयोग संबंधी त्रुटियों के संबंध में छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। ऐसी किताबें अंग्रेजी के लिए मिल जाती हैं। हिंदी के लिए भी प्रकाशित की जा

सकती हैं। ऐसी किताबों की माँग बहुत होगी। इसलिए गैर-सरकारी प्रकाशन भी इस काम को लेकर लाभ उठा सकते हैं।

उपसंहार

हिंदी को राजभाषा के रूप में विकसित करने के संवैधानिक दायित्व के बावजूद तमिलनाडु में हिंदी शिक्षण कमजोर ही है। इसके कारणों को ढूँढ़कर समाधान ढूँढ़ना हम सबका दायित्व है। यह संविधान और देश के प्रति हमारा कर्तव्य है।

सहायक ग्रंथ

जगन्नाथन वी.आर.	1982	प्रयोग और प्रयोग, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
एम. ज्ञानम	2016	भाषा और राजनीति तमिलनाडु, के संदर्भ में समन्वय दक्षिण (5:3 पृ. 14-23)
एम. ज्ञानम	2003	केंद्रीय संस्थान, हैदराबाद केंद्र हिंदी प्रयोग मैसूर हिंदी प्रचार परिषद बेंगलुरु

□

gandhignanam@yahoo.co.in

नम्रता सारे गुणों का दृढ़ स्तंभ है।

—कन्फ्यूशस

नारी नर की सहचरी, उसके धर्म की रक्षक, उसकी गृहलक्ष्मी तथा उसे देवत्व तक पहुँचानेवाली साधिका है।

—डॉ. राधाकृष्णन

निंदक आखिर स्वयं ही निंदित हो जाते हैं।

—ऋग्वेद

हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य

—डॉ. विमलेश कांति वर्मा

भारत के विविध देशों से बढ़ते और सुधरते कूटनीतिक और सांस्कृतिक संबंधों के कारण विभिन्न देशों में लिखी जा रही साहित्यिक कृतियों के हिंदी अनुवाद को इधर तीन दशकों में प्रोत्साहन मिला है। तकनीकी सुविधाओं की सुलभता ने, बढ़ते व्यापारिक, वाणिज्यिक संबंधों ने, पर्यटन उद्योग के विस्तार ने विभिन्न संस्कृतियों को जानने और समझने की इच्छा तथा विदेश में बढ़ते हुए भारतीय आप्रवासन ने जहाँ दूसरे देश के साहित्य के प्रति एक सुशिक्षित भारतीय के मन में आकर्षण उत्पन्न किया है, वहीं दूसरे देश की साहित्यिक समृद्धि को अपनी भाषा में रूपांतरित करने की इच्छा ने अनुवाद को नई भूमि भी दी है। आज अनुवाद दो देशों को निकट लाने में एक सेतु का कार्य कर रहा है। अनुवाद एक ऐसा खुला हुआ वातायन है, जिससे हम विश्व की बहुरंगी सुंदर छवि को देख सकते हैं और स्वच्छ, जीवनदायिनी प्राणवायु और प्रकाश को ग्रहण कर सकते हैं।

वर्ष 1961 की भारतीय जनसंख्या गणना के अनुसार 1652 बोली जानेवाली भाषाओं के देश भारत में हिंदी केंद्रीय महत्त्व की भाषा है, क्योंकि वह देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। संविधान स्वीकृत राजभाषा तथा विदेश में बसे हुए विविध भाषा-भाषियों के मध्य संपर्क भाषा तो है ही, वह उनके बीच भारतीय अस्मिता की प्रतीक भाषा भी है। विविध देशों में बसे हुए भारतीय हिंदी के माध्यम से परस्पर जुड़े हुए हैं, इसलिए हिंदी के ही माध्यम से दूसरी भाषाओं में अनुवाद की सबसे अधिक संभावना है। भारत में भी विविध भारतीय भाषाओं का साहित्य भी हिंदी में ही अनूदित होकर दूसरी भाषाओं में पहुँचता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकड़ों के अनुसार विश्व में आज 195 देशों की गणना है। इन 195 देशों में से उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार हिंदी में लगभग 83 देशों के रचनाकारों की रचनाओं के हिंदी में अनुवाद उपलब्ध हैं।

समाजशास्त्रियों का मानना है कि यदि किसी समाज को आप सही अर्थों में समझना चाहते हैं तो वह उस समाज के साहित्य के अध्ययन से संभव है, क्योंकि साहित्य व्यक्ति की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें उसके राग-द्वेष, संस्कार, आस्था और विश्वास सभी प्रतिबिंबित होते हैं।

भारतीय आप्रवासन आँकड़े बताते हैं कि आज विविध कारणों से भारतीय विश्व के अनेक देशों में बसे हुए हैं और उनकी संख्या करोड़ों में है। इनके अतिरिक्त भारत में रह रहे शिक्षित भारतीय भी विश्व के अनेक देशों से किसी-न-किसी रूप में संपर्क में हैं और दूसरे देशों की संस्कृति के बारे में जानने की उनकी रुचि है, वे उनके साहित्य से

---

* प्रसिद्ध भाषाविद्, भारतविद् एवं लेखक।

परिचित होना चाहते हैं। किसी देश को समझने का सबसे आसान तरीका उस देश के साहित्य से परिचित होना है। यही कारण है कि हम किसी देश के साहित्य को पढ़कर उसके अनुवाद की बात सोचते हैं। विदेशी साहित्य के हिंदी में उपलब्ध अनुवाद इसी रुचि के प्रतिफल हैं।

हिंदी में विदेशी साहित्य के अनुवाद की परंपरा भारतेंदु काल (1850ई.) से प्रारंभ होती है। हिंदी का भारतेंदु काल नवजागरण का काल है, साहित्य के क्षेत्र में गद्य का विकास हुआ, नई लोक काव्य शैलियाँ साहित्यिक अभिव्यक्ति का जहाँ माध्यम बनीं, वहीं दूसरी ओर विदेशी साहित्य, विशेषकर अंग्रेजी साहित्य की लोकप्रिय रचनाओं के हिंदी अनुवाद भी हुए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) ने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' के नाम से अनुवाद किया, जो अपने समय का बहुत अच्छा अनुवाद माना गया। भारतेंदु के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) ने 'सरस्वती' पत्रिका में कई अनुवाद प्रकाशित कर विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद का पथ प्रशस्त किया। द्विवेदीजी ने जे.एस. मिल के 'लिबर्टी' का वर्ष 1905 में 'स्वाधीनता' नाम से अनुवाद प्रकाशित किया, बैरन के 'ब्राइडल नाइट' का 'सोहागरात' नाम से, हर्बर्ट पेंसर के 'द एजुकेशन' का 'शिक्षा' नाम से अनुवाद किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) ने जोसेफ एडिसन के 'प्लेजर्स ऑफ इमेजिनेशन' का 'कल्पना का आनंद', हेकेल के 'रिडिल ऑफ यूनिवर्स' का 'विश्व प्रपंच' तथा एड्विन आर्नोल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' का 'बुद्ध चरित' शीर्षक से अनुवाद प्रकाशित किया। श्रीधर पाठक (1858-1928) ने ओलिवर गोल्ड स्मिथ के 'द हर्मिट' का 'एकांतवासी योगी' तथा थॉमस ग्रे के 'डेजरटेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' नाम से अनुवाद किया। कथाकार प्रेमचंद (1880-1936) ने गार्ल्सवर्दी के तीन नाटकों का 'हड़ताल', 'चाँदी की डिबिया' तथा 'न्याय' नाम से अनुवाद किया। लाला सीताराम (1858) ने शेक्सपियर के 11 नाटकों के हिंदी अनुवाद हिंदी पाठकों के लिए किए। कविवर जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' (1866-1932) ने पोप के 'एसेज ऑन क्रिटिसिज्म' का 'समालोचनादर्श' नाम से पद्यात्मक अनुवाद किया। डॉ. हरिवंश राय बच्चन (1907-2003) ने शेक्सपियर के कई नाटकों के हिंदी में अनुवाद कर अच्छे अनुवादक की ख्याति पाई। अवधेय है कि भारतेंदु काल और महावीर प्रसाद द्विवेदी काल में जो अनुवाद हुए, वे मूलतः अंग्रेजी साहित्य की प्रमुख कृतियों के ही हुए।

हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य में चिली में जनमे स्पेनिश कवि पाब्लो नेरूदा, तुर्की के महान् क्रांतिकारी कवि नाजिम हिकमत और जर्मन कवि रेनर मारिया रिल्के की रचनाओं के विभिन्न अनुवादकों ने हिंदी में अलग-अलग अनुवाद किए और भारतीय पाठकों के बीच ये बहुत पसंद भी किए गए। वर्ष 1957 में डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'सीपी और शंख' तथा 'आत्मा की आँखें' पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिसमें पुर्तगाली, स्पेनी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, अमेरिकी, चीनी और पोलिश कवियों की कविताएँ हिंदी पाठकों को पढ़ने को मिलीं। 1960 में धर्मवीर भारती का भारतीय ज्ञानपीठ से 'देशांतर' ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें 21 देशों के 161 आधुनिक कवियों की कविताओं के हिंदी अनुवाद हैं। इसमें अमेरिका के एजरा पाउंड, अर्जेंटीना के जार्ज लुईस बोर्जे, इंग्लैंड के रूपर्ट ब्रुक और टी.एस. इलियट, चिली के पाब्लो नेरूदा, जर्मनी की रेने मारिया रिल्के, तुर्की के नैजिम हिकमत, मेक्सिको के ओक्टोविया पाज, स्पेन के फेडेरिको गार्सिया लोर्का तथा रूस के व्लादीमीर मायकोवस्की और बोरिस पास्तरनाक

सम्मिलित थे। 1978 में नामवर सिंह के संपादन में 'आधुनिक रूसी कविताओं' का एक लंबी भूमिका के साथ प्रकाशन हुआ और अनेक रूसी रचनाकारों की रचनाएँ हिंदी पाठकों को पढ़ने को मिलीं।

विदेशी साहित्य के अनुवाद के प्रति हिंदी विद्वानों की रुचि बराबर बनी रही और भीष्म साहनी, रघुवीर सहाय, राजेंद्र यादव, विष्णु खरे आदि कितने ही हिंदी साहित्यकारों ने विदेशी भाषा साहित्य की अनेक प्रमुख रचनाओं के हिंदी अनुवाद किए। एच.जी.वेल्स, बोरिस पास्तरनाक, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, लियो टॉलस्टॉय, मैक्सिम गोर्की और दोस्तायावस्की की अनेक रचनाओं के हिंदी अनुवाद पाठकों को मिले। आज भी विदेशी साहित्य के अनुवाद में भारतीयों की रुचि है और निरंतर अनुवाद भी हो रहे हैं। पाब्लो नेरूदा, रेने मारिया रिल्के और ओक्टोविया पाज की कविताओं के कई-कई अनुवाद मेरे देखने में आए, पर स्रोत भाषा की अज्ञानता के कारण ये अनुवाद मूल के कितने निकट पहुँच पाए हैं, इस पर बहुत विवाद है।

आज अंग्रेजी के अतिरिक्त फ्रांसीसी, स्पेनी, जर्मन, जापानी, बल्गारियन तथा रूसी साहित्य की कई कृतियों का भी मूल भाषा से हुआ अच्छा अनुवाद हिंदी में उपलब्ध है।

विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद अधिकांशतः अंग्रेजी भाषा के माध्यम से किए गए अनुवाद हैं, पर पिछले तीन दशकों से कई विदेशी भाषा विशेषज्ञों की रुचि अनुवाद में बढ़ी है और ये अनुवाद स्रोत भाषा से होने के कारण मूल के अधिक निकट हैं और विदेशी साहित्य की संस्कृति और सुरभि का परिचय देते हैं।

भारतवासियों के विशिष्ट संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय पटल पर अंग्रेजी सबसे अधिक प्रयोग में आनेवाली भाषा है और विदेश जानेवाला हर भारतीय अंग्रेजी के माध्यम से अपना काम चला लेता है। विश्व के अधिकांश देशों का साहित्य आज अंग्रेजी में उपलब्ध है। विदेश गए पढ़े-लिखे भारतीय अंग्रेजी का संपर्क भाषा के रूप में विदेश में प्रयोग भी करते हैं। जिन देशों की भाषा अंग्रेजी नहीं है, वहाँ भी अंग्रेजी से उनका काम चल जाता है, इसलिए जब कभी कोई अच्छी कृति उन्हें मिलती है, तो वे उसे अपनी भाषा हिंदी में रूपांतरित करना चाहते हैं, पर अंग्रेजी से इतर मूल भाषा और लिपि की अज्ञानता अनुवादकों के सम्मुख अनेक प्रकार की कठिनाइयों को जन्म देती है। हर भाषा की अपनी लिपि है और उसी लिपि में भाषा की ध्वनियों को ठीक से उच्चरित करना मातृभाषा भाषी सीखता है। उदाहरण के लिए फिजी के मूल निवासियों की भाषा 'काईबीती' जब रोमन लिपि में लिखी जाती है, तो D का उच्चारण न्द (nd), B का उच्चारण म्ब (mb) के रूप में होता है और nadi को 'नादी' और labasa को 'लंबासा' पढ़ा जाता है। जो व्यक्ति फिजीयन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करता है, वह नादी और लबासा पढ़ता है इसी प्रकार C का उच्चारण D के रूप में होता है और laucala को 'लौकाला' न पढ़कर 'लौदाला' पढ़ा जाएगा। अनुवादक यदि काईबीती भाषा नहीं जानता तो वह नादी, लबासा और लौकाला पढ़ेगा। चूँकि ये व्यक्तिवाची संज्ञाएँ हैं, इसलिए इनका सही लिप्यांतरण आवश्यक है। इस कठिनाई का समाधान श्री कृष्ण कुमार भार्गव ने अपने बृहत् 'विश्व उच्चारण कोश' के माध्यम से किया है। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के संदर्भ में ये त्रुटियाँ अनुवादक को कभी-कभी परेशानी में डाल सकती हैं और उसकी अभिव्यक्ति को उपहासास्पद भी बना सकती हैं। रोमन लिपि की उच्चारणगत सीमाओं से हिंदी का पाठक भली-भाँति परिचित है, जिसमें 'ट' और 'त', 'ड', 'ढ', ह्रस्व और दीर्घ स्वर लेखन में और अनुच्चरित ध्वनियों के

लेखन में, जहाँ वे व्यक्तिवाची संज्ञाओं से संबंधित हैं, बड़ी कठिनाई है। अगर बल्गारियन भाषा से हिंदी में अनुवाद की बात करें तो अनुवाद में अनेक कठिनाइयाँ अनुवादक के सामने आती हैं। बल्गारियन भाषा स्लाविक परिवार की भाषा है और सांस्कृतिक दृष्टि से अंग्रेजी की तुलना में हिंदी के अधिक निकट है। नाते-रिश्ते की शब्दावली को लें तो भारत के ही समान हर रिश्ते के लिए अलग शब्द हैं, जो अंग्रेजी में नहीं हैं, इसलिए यदि अंग्रेजी को आधार बनाकर हिंदी में अनुवाद किया गया है तो अनुवादक के लिए सही संबंधवाची शब्दावली का चयन कठिन कार्य है। मूल बल्गारियन भाषा से हिंदी अनुवाद करते समय यह समस्या उपस्थित नहीं होगी। यही कारण है कि बल्गारिया के साहित्य का जो अनुवाद अंग्रेजी से किया गया है, उसमें सही शब्द का चयन अनुवादक नहीं कर सका है। इसी प्रकार अभिवादनवाची शब्दावली है। 'दोविजदाने' अंग्रेजी के 'गुड़बाई' का पर्याय न होकर 'फिर मिलेंगे' के अधिक निकट है। यही स्थिति 'स्बोगोम' की भी है।

अनुवाद परकाया प्रवेश विधा के ही समान कठिन और श्रमसाध्य कार्य है। दो भाषाओं पर समान अधिकार आसान नहीं। हर भाषा की अपनी अर्थ छवियाँ और अपने मुहावरे होते हैं, अपने सांस्कृतिक प्रतीक होते हैं, जिनका मूल भाषा जाने बिना सही अनुवाद संभव नहीं है। भाषा ज्ञान केवल शब्द ज्ञान व वाक्य संरचना का ज्ञान ही नहीं है, वरन् भाषा प्रयोग का ज्ञान या भाषिक दक्षता भी आवश्यक है, जो सामान्यतः विदेशी भाषा से अनुवाद के संदर्भ में और भी आवश्यक हो जाती है। विदेशी साहित्य का हिंदी में जो अनुवाद आज हो रहा है, वह मूल भाषा से न होकर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हो रहा है। यही कारण है कि अनुवाद पढ़कर मूल साहित्यिक रचना पढ़ने का जो आनंद, उससे अनुवाद का पाठक वंचित रह जाता है। खिर्स्तो बोतेव बल्गारियन भाषा के राष्ट्रकवि माने जाते हैं। उनकी एक कविता का तीन भारतीय कवियों ने अंग्रेजी के माध्यम से हिंदी में अनुवाद किया और जब एक परिचर्चा में उन तीनों अनुवादों का एक बल्गारियन साहित्य की प्रोफेसर ने विश्लेषण किया तो तीनों ही अनुवादों को अपरिपक्व कहते हुए भ्रष्ट और अग्राह्य बताया। इसका कारण बल्गारियन संस्कृति से अनुवादक का अपरिचय और अंग्रेजी अनुवाद को आधार बनाना था। मूल भाषा और देश की संस्कृति का अच्छा ज्ञान अनुवादक के लिए अपरिहार्य है, जिसके बिना अनुवाद पाठक को मूल कृति पढ़ने का आनंद नहीं दे पाता।

हिंदी में अनूदित विदेशी भाषा साहित्य के उपलब्ध जो आँकड़े मेरे सम्मुख हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि हिंदी में अनूदित विदेशी साहित्य सबसे अधिक अंग्रेजी साहित्य है, चाहे वह अमरीका का हो, इंग्लैंड का या ऑस्ट्रेलिया का हो, उसके बाद रूसी साहित्य है। रूसी साहित्य के हिंदी में अधिक अनुवाद होने का कारण भारत-रूस मैत्री के साथ-ही-साथ रूस का भारतीय साहित्य के अनुवाद में सरकारी और सहकारी सहयोग है। चीन की भी हिंदी अनुवाद में रुचि रही, पर वह पनप नहीं पाई और अर्वाचीन चीनी साहित्यिक कृतियों के अधिक अनुवाद हिंदी में नहीं हो सके। फ्रांसीसी, जर्मन तथा स्पेनी भाषाओं का अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालयों में बड़े स्तर पर होता रहा तथा इन देशों के भारत स्थित सांस्कृतिक केंद्रों में भी ये भाषाएँ सिखाई भी जाती रहीं, पर जो छात्र ये भाषाएँ सीखते रहे, उनकी रुचि वहाँ के साहित्य पढ़ने और उसके अनुवाद में कभी नहीं रही। इन भाषाओं के साहित्य की प्रमुख कृतियों के जो अनुवाद हुए भी, वे इन भाषाओं के पढ़ानेवाले

विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा ही हुए। पर इन अनुवादों की विशेषता यह रही कि ये मूल भाषा से हिंदी में अनूदित हुए और भारत के विदेशी भाषा विशेषज्ञों द्वारा हुए, जिसके कारण ये अनुवाद अच्छे बन पड़े और पाठकों के मध्य लोकप्रिय भी हुए।

अनुवाद कर्म दो संस्कृतियों को निकट लाने और लोकमत के माध्यम से देशों के राजनीतिक और कूटनीतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में एक सेतु का कार्य करता है। यही कारण है कि विकसित देशों में अनुवाद की एक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठा है। भारत में अनुवाद के संदर्भ में आज सबसे बड़ी चुनौती यही है कि अनुवाद को एक प्रतिष्ठित व्यवसाय के रूप में मान्यता मिले।

सामान्यतः यह मान लिया जाता है कि अनुवाद के लिए अच्छा मानदेय न होने के कारण अच्छे अनुवाद नहीं हो पाते। मुझे लगता है कि यह अर्धसत्य है। अनुवाद एक श्रमसाध्य कार्य है, स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों पर अच्छे अधिकार के साथ साहित्यिक अनुवाद में भाषिक संस्कृति के ज्ञान के बिना अच्छा अनुवाद संभव ही नहीं है। अच्छे अनुवादक के लिए भारत में भी अच्छा मानदेय संभव है, पर योग्य और प्रशिक्षित अनुवादकों की भारत में बहुत कमी है। वस्तुतः एक साहित्यिक कृति के अनुवाद के चार चरण होते हैं—भाषांतर, पुनरीक्षण, पुनर्गठन, संपादन। भाषांतर से पहले भाषांतरण की अच्छी तैयारी आवश्यक है, जिसका अर्थ है, अनुवाद प्रारंभ करने से पहले मूल भाषा में लिखी कृति को अच्छी तरह भाषांतर, पुनरीक्षण, पुनर्गठन एवं संपादन पर कुछ सामग्री होनी चाहिए। उन पंक्तियों में विश्लेषणात्मक रूप में आज आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद की व्यावहारिक उपयोगिता को समझते हुए भारत में अनुवाद को एक महत्त्वपूर्ण अनुशासन के रूप में मान्यता मिले और 'राष्ट्रीय अनुवाद अकादमी' की स्थापना हो, जो बहुभाषा-भाषी भारत की बौद्धिक संपदा को अनुवाद के माध्यम से देश-विदेश को परिचित कराए। बहुभाषा-भाषी भारत, जहाँ अनुवाद के माध्यम से संगठित हो सकता है, वहीं अनुवाद भारत की विश्व बंधुत्व की नीति को अधिक प्रभावी भी बना सकेगा।

□

vimleshkanti@gmail.com

समस्त आर्यावर्त या ठेठ हिंदुस्तान की राष्ट्र तथा शिष्ट भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी है।

—जॉर्ज ग्रियर्सन

देश को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है।

—सेठ गोविंददास

भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित समानताओं के आधार पर भाषा-शिक्षण, परस्पर अनुवाद और लिप्यंतरण की संभावनाएँ

—डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा

भाषिक विविधता

संविधान की आठवीं अनुसूची : 'विविधता में एकता' भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता है और यह विशेषता भारतीय भाषाओं और भारतीय लिपियों में भी परिलक्षित होती है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1,652 मातृभाषाएँ हैं और संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ शामिल की गई हैं—ये भाषाएँ हैं : कश्मीरी, सिंधी, हिंदी, बांग्ला, पंजाबी, असमिया, ओड़िया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम, उर्दू, संस्कृत, नेपाली, मणिपुरी, कोंकणी, संथाली, बोडो, डोंगरी और मैथिली। भारत सरकार का कर्तव्य है कि देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाय करे। भाषाओं की यह विविधता प्रथमदृष्ट्या हमें भयभीत भी कर सकती है, लेकिन यदि हम भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित समानताओं का विश्लेषण करके उनके आधार पर भारतीय भाषाओं के परस्पर शिक्षण, अनुवाद और लिप्यंतरण के पैटर्न विकसित करने में सफल हो जाएँ तो यही विविधता भारत में सामासिक एकता स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

शास्त्रीय भाषाएँ (Classical languages) : इसके अलावा जिन भाषाओं की विरासत 1500-2000 वर्ष पुरानी है, उन्हें संविधान में शास्त्रीय भाषा (Classical language) का दर्जा प्रदान किया गया है। ये भाषाएँ हैं—तमिल, तेलुगु, संस्कृत, कन्नड़, मलयालम और ओड़िया। एक बार जब किसी भाषा को शास्त्रीय भाषा घोषित कर दिया जाता है, तो उस भाषा के अध्ययन के लिए उत्कृष्टता केंद्र (Centre of Excellence) स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार भारत की राजभाषा हिंदी : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार भारतीय संघ की प्रमुख राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है, परंतु राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत हिंदी के अतिरिक्त

---

* रेल मंत्रालय, भारत सरकार के पूर्व राजभाषा निदेशक।

गौण राजभाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी सरकारी कामकाज में किया जा सकता है।

सामासिक संस्कृति (Composite culture) : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति (Composite culture) के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

त्रिभाषा सूत्र (Three-language formula) : त्रिभाषा फॉर्मूला भारत में भाषा-शिक्षण से संबंधित नीति है, जो भारत सरकार द्वारा राज्यों से विचार-विमर्श करके बनाई गई है। इस फॉर्मूले को देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए सन् 1968 में स्वीकार किया गया था। त्रिभाषा सूत्र के अनुसार हिंदीभाषी क्षेत्रों में हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा में से, दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के अध्ययन के लिए इस सूत्र के अनुसार व्यवस्था की जानी चाहिए। तमिलनाडु ने इसके स्थान पर तमिल-अंग्रेजी का द्विभाषी सूत्र अपनाया है।

संघ लोकसेवा आयोग (UPSC) की परीक्षाओं में वैकल्पिक माध्यम, इसके अलावा राजभाषा संकल्प, 1968 में यह व्यवस्था की गई है कि संघ लोकसेवा आयोग (UPSC) की परीक्षाओं में संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी।

भारत एक बहुलतावादी समाज (pluralistic society) है।

संसार में कुल 12 भाषा-परिवार हैं। इनमें से चार भाषा-परिवारों की अनेक भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं। इनमें प्रमुख भाषा-परिवार हैं—भारतीय आर्य भाषा परिवार और द्रविड़ भाषा परिवार। उत्तर, मध्य और पश्चिम भारत की अधिकांश भाषाएँ (हिंदी, पंजाबी, बँगला, गुजराती, मराठी, ओडिया, असमिया आदि) आर्य परिवार की भाषाएँ मानी जाती हैं। इस परिवार की भाषाओं को बोलनेवाले भारतीयों की संख्या 78.05 प्रतिशत है। द्रविड़ परिवार की भाषाएँ दक्षिण भारत अर्थात् तमिलनाडु, पुडुचेरी, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक में बोली जाती हैं। इनके बोलनेवाले भारतीयों की संख्या 19.64 प्रतिशत है। इन भाषाओं में प्रमुख हैं—तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलुगु।

2. भारत की सांस्कृतिक एकता के विकास में अखिल भारतीय शब्दावली की भूमिका बहुत प्राचीन समय से हमारा भारत मूलभूत विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी रहा है और उसकी सफलता निश्चय ही वैज्ञानिक तंत्र पर आधारित रही है। इसके फलस्वरूप हमारे यहाँ अनेक विषयों में पारिभाषिक शब्दावली विकसित हुई है, जिसका आयुर्वेद, योग, ज्योतिष और गणितीय गवेषणा से लेकर भौतिक विज्ञान तक सफलतापूर्वक प्रयोग होता था। संस्कृत भाषा ने भारतीय उपमहाद्वीप को जिस एकता के सूत्र में बाँधा था, कालांतर में उसका स्थान अनेक भाषाओं ने ले लिया। फिर ऐसा समय आया, जब इसमें से प्रत्येक भाषा का एक विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपनी संचार-प्रणाली विकसित हो गई। वैसे भाषाओं की बहुलता के दौर में भी एक अखिल भारतीय शब्दावली का अस्तित्व था, जिससे विनिमय और संचार प्रक्रिया सुगमतापूर्वक चलती थी। इससे स्पष्ट है कि भारत

की सांस्कृतिक एकता के विकास में संस्कृत की तत्सम शब्दावली पर आधारित अखिल भारतीय शब्दावली का विशेष योगदान रहा है। इसी क्रम में सन् 1950 में स्थापित वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग ने शुरू से ही ऐसी शब्दावली के निर्माण पर बल दिया, जो थोड़े-बहुत संशोधन के बाद हमारी विभिन्न भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप ढाली जा सके और इस प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर उसका इस्तेमाल किया जा सके। अब तक वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा कृषि एवं पशु-चिकित्सा, इंजीनियरिंग एवं टेक्नोलॉजी, मानविकी एवं समाज विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और भाषा विज्ञान से संबंधित अखिल भारतीय शब्दावली का प्रकाशन किया जा चुका है। आशा है, क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित उक्त विषयों से संबंधित पुस्तकों में इस शब्दावली का व्यापक उपयोग किया जा सकेगा।

प्रो. बी.एस. रामकृष्ण मानते हैं कि भारतीय भाषाओं में 40 से 48 स्वनिम (phonemes) ऐसे हैं, जो सभी भारतीय भाषाओं में समान हैं। इनका उपयोग भारतीय भाषाओं में परस्पर शिक्षण और अनुवाद के लिए किया जा सकता है। उस्मानिया विश्वविद्यालय की भाषा विज्ञान विभाग की प्रोफेसर नागम्मा रेड्डी यह मानती हैं कि हजारों सालों के संपर्क के कारण यह आदान-प्रदान केवल शब्दावली तक ही सीमित नहीं रहा। यह इस बात का संकेत है कि विभिन्न भाषाओं में अंतर्निहित सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ का प्रभाव तीन स्तरों पर, अर्थात् उनकी ध्वनि व्यवस्था, वाक्य विन्यास और आर्थी संरचना पर भी परिलक्षित होता है। लेकिन अखिल भारतीय शब्दावली (Pan Indian Terminology) के प्रयोग के लिए बहुत सावधानीपूर्वक भाषा-नियोजन की आवश्यकता है। डॉ. भीमसेन निर्मल यह मानते हैं कि सभी भारतीय भाषाओं ने संस्कृत से शब्दावली ग्रहण तो की है, लेकिन अखिल भारतीय शब्दावली का संकलन करते समय हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि संस्कृत के अनेक शब्द ऐसे भी हैं, जिनका अर्थ भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए, 'अनर्गल' शब्द का तेलुगु में अर्थ है।···धाराप्रवाह, जबकि हिंदी में इसका अर्थ है निरर्थक बकवास। डॉ. निर्मल ने तेलुगु और हिंदी में प्रयुक्त ऐसे 300 शब्दों की सूची तैयार की है, जिनके अर्थ दोनों भाषाओं में भिन्न-भिन्न हैं।

आज से लगभग 70 वर्ष पूर्व सीता नाम की एक फ्रांसीसी महिला ने 10 भारतीय भाषाओं में समान शब्दावली का संकलन करके उसे प्रकाशित करवाया था।

इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर विदेशी आगत शब्दावली के रूप में मुसलिम शासन के दौरान प्रशासनिक और न्यायिक प्रणाली के अनेक फारसी शब्द भी विभिन्न भारतीय भाषाओं में घुल-मिल गए हैं। आधुनिक युग के दौरान विश्वव्यापी प्रयोग के अंग्रेजी के अनेक शब्द भी भारतीय भाषाओं में समाहित हो गए हैं। इन शब्दों को वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग ने अपने शब्दकोश में सम्मिलित कर लिया है।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के शिक्षण में अखिल भारतीय शब्दावली की व्यापक भूमिका हो सकती है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा हिंदी-असमिया, हिंदी-ओड़िया, हिंदी-तेलुगु, हिंदी-मलयालम, हिंदी-तमिल, हिंदी-मराठी और हिंदी-बँगला की समान स्रोतीय शब्दावली के तुलनात्मक अध्ययन पर निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की गईं। इनकी मदद से हिंदीतर भाषी छात्रों को सरलता से हिंदी का अध्यापन भी किया जा सकता है—

- हिंदी और तमिल की समान स्रोतीयभिन्नार्थी शब्दावली—वी.रा. जगन्नाथन

- समान स्रोत और भिन्न वर्तनी की शब्दावली असमीया -हिंदी और हिंदी-असमीया (1976)—विजय राघव रेड्डी
- समान स्रोत और भिन्न वर्तनी की शब्दावली : ओड़िया-हिंदी और हिंदी-ओड़िया (1980)—विजय राघव रेड्डी
- तेलुगु और हिंदी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन (1981)—जे. विश्वमित्र
- हिंदी पंजाबी क्रिया पदबंध : व्यतिरेकी विश्लेषण (1984)—भारत भूषण
- हिंदी एवं मलयालम में आगत संस्कृत शब्दावली : व्यतिरेकी अध्ययन (1984)—टी.के. नारायण पिल्लै
- हिंदी मराठी : क्रिया पदबंध (1986)—म.मा. बासुतकर
- हिंदी असमीया : व्याकरणिक कोटियाँ (1986)—रामलाल वर्मा
- हिंदी बँगला : संयुक्त क्रिया (1986)—ललित मोहन बहुगुणा
- हिंदी तेलुगु : संज्ञा पदबंध (1987)—विजय राघव रेड्डी
- हिंदी तेलुगु : व्याकरणिक संरचना (1987)—शकुंतला रेड्डी

इसके अलावा केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान (CIIL), मैसूर द्वारा भी विभिन्न भारतीय भाषाओं में समान शब्दावली के आधार पर निम्नलिखित त्रिभाषी शब्दावलियों का प्रकाशन किया गया है—

- Malayalam – English – Tamil Trilingual Bidirectional Dictionary
- Malayalam – English – Telugu Trilingual Bidirectional Dictionary
- Malayalam – English – Kannada Trilingual l Bidirectional Dictionary
- Malayalam – English – Tamil Trilingual Bidirectional
- Tamil- English – Malayalam Trilingual Bidirectional Dictionary
- Telugu – English – Malayalam Trilingual Bidirectional Dictionary

सरकारी संस्थानों के अलावा निजी प्रकाशकों ने भी भारतीय भाषाओं के बीच समानरूपी शब्दावली पर आधारित पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ कर दिया है। इन प्रकाशनों में प्रमुख हैं प्रो. जी. सुंदर रेड्डी द्वारा लिखित और राजपाल एंड संज द्वारा प्रकाशित 'हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं के समान रूपी शब्द'।

यह विडंबना है कि भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित समानताओं के बावजूद आज भी अनेक विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं का अध्यापन अंग्रेजी माध्यम से किया जा रहा है। यही कारण है कि विद्यार्थियों को न केवल भारतीय भाषाएँ सीखने में अधिक समय लगता है, बल्कि उनमें अरुचि भी पैदा हो जाती है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय तेलुगु संस्थान, हैदराबाद ने सन् 1984 में Common Core Vocabulary of Indian Languages विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया था, जिसमें देश-भर के भाषा वैज्ञानिकों और भाषाविदों ने भाग लिया था और भारतीय भाषाओं में परस्पर समानता के आधार पर द्विभाषी या बहुभाषी शब्दकोश और अल्पकालिक पाठ्यक्रम निर्मित करने की योजना तैयार की थी।

आज का युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि इस बृहत् कार्य के लिए अधुनातन टैक्नोलॉजी का गहन उपयोग किया जाए। भारतीय भाषाओं और लिपियों के शिक्षण के लिए सभी भारतीय भाषाओं और लिपियों के लिए विकसित समान कुंजी-पटल (INSCRIPT (अर्थात् Indian scripts) कुंजी-पटल

का उपयोग किया जा सकता है।

3. भारतीय भाषाओं के बीच अंतर्निहित वाक्य विन्यास (Syntax) की समानता भारतीय भाषाओं के बीच अंतर्निहित समानता का और आयाम है, वाक्य विन्यास (Syntax)। अगर हम अंग्रेजी के वाक्य विन्यास को देखें तो उसका आधार है। Subject-Verb-Object (SVO), अर्थात् Ram(S) killed (V) Ravan (O). इसके विपरीत, हिंदी का वाक्य विन्यास है। Subject-Object-Verb (SOV) अर्थात् राम ने (S) रावण को (O) मारा (V). यही वाक्य विन्यास सभी भारतीय भाषाओं का भी है। सभी भारतीय भाषाएँ क्रियांतक हैं अर्थात् सभी भारतीय भाषाओं के वाक्यों में क्रिया अंत में आती है, जबकि अंग्रेजी सहित पश्चिम की अनेक भाषाओं में 'क्रिया' वाक्य के बीच में आती है।

मैंने सन् 1992 में IIT, कानपुर द्वारा आयोजित CPAL-2 के अवसर पर प्रस्तुत अपने आलेख में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में यही स्पष्ट किया था कि जब तक भाषा विशेष के विशिष्ट पक्षों का सम्यक् अध्ययन नहीं कर लिया जाता, तब तक उस भाषा का संसाधन कंप्यूटर के माध्यम से नहीं हो पाएगा। जैसे हिंदी और अंग्रेजी के निम्नलिखित वाक्य देखें—

(1) राम को बुखार है।
(2) राम श्याम से मिलता है।
(3) Ram has a fever.
(4) Ram meets Shyam.

वाक्य (1) में 'को' का प्रयोग हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की भाषाविशिष्ट प्रवृत्ति है। यह दिलचस्प तथ्य है कि वाक्य (3) के अंग्रेजी वाक्य में 'को' परसर्ग (postposition) के समकक्ष कोई पूर्वसर्ग (Preposition) नहीं है, लेकिन सभी भारतीय भाषाओं में 'को' के समकक्ष परसर्ग का नियमित प्रयोग मिलता है—

(5) रामलाताप आहे। (मराठी)
(6) रामक्कुज्वरम् (तमिल)
(7) रामन्नुपनियानु (मलयालम)
(8) रामनिगेज्वर दिगे (कन्नड़)
(9) रामेरताप आछे (बँगला)

यह प्रवृत्ति दक्षिण पूर्वेशिया की अन्य भाषाओं में भी मिलती है। इन्हीं समान भाषिक प्रवृत्तियों के कारण ही यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि संपूर्ण दक्षिण पूर्वेशिया, एकभाषिक क्षेत्र (Linguistic Zone) है।

4. प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) या कृत्रिम मेधा (AI) की मदद से शाब्दिक संबंधों के जालक्रम (Network) का निर्माण इस प्रकार की भाषिक प्रवृत्तियों और अभिलक्षणों के विश्लेषण का कार्य प्राकृतिक भाषा संसाधन या Natural Language Processing (NLP) या कृत्रिम मेधा (AI) के अंतर्गत किया जा सकता है।

NLP का मुख्य आधार स्तंभ है शब्दवृत्त (Lexicon)

अर्थपरक क्षेत्रों (Semantic Fields) के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

यदि माँ-बाप और बच्चे के संबंध को लें तो ये संबंध इस प्रकार हो सकते हैं—

पिल्ला > बच्चा > कुत्ता

बछड़ा > बच्चा > गाय

इसी प्रकार अंग-अंगी संबंधों को भी रखा जा सकता है—

पैर <>अंग-अंगी संबंध <>शरीर

चोंच <>अंग-अंगी संबंध <>चिड़िया

पर्यायवाची शब्द भी (जैसे पवन, समीर, वायु, हवा) भी इसी के अंतर्गत आते हैं।

शब्दवृत्त (Lexicon) के अंतर्गत इस प्रकार के अनेक संबंधों को एक जालक्रम (Network) के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

ठंडा <>पर्याय<> शीतल

ठंडा<> विलोम<> गरम
चीता <>वर्ग स्तनपायी<> पशु
खाना>प्रेरणा > खिलाना
बछड़ा >शिशु >गाय
हाथ >अंग> शरीर
सोमवार>अनुक्रम> मंगलवार

5. समांतर कॉर्पोरा पर आधारित लिप्यंतरण प्रणाली : इसी आधार पर IIIT हैदराबाद के कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने समांतर कॉर्पोरा का उपयोग करते हुए 7 भारतीय भाषाओं में परस्पर लिप्यंतरण (Transliteration) की सुविधा को विकसित किया है, जिसकी मदद से मात्र लिप्यंतरण के माध्यम से परस्पर अनुवाद भी किया जा सकता है। इस लिप्यंतरण प्रणाली के अंतर्गत आरंभ में निम्नलिखित भारतीय आर्यभाषाओं (पंजाबी, गुजराती, उर्दू और बंगाली) और द्रविड़ भाषाओं (तेलुगु, तमिल और मलयालम) में यह व्यवस्था की गई है। यह सामग्री पर्यटन और स्वास्थ्य के ILCI corpora (Jha, 2010) नामक ऑनलाइन कॉर्पोरा से ली गई थी, जिसमें 11 भाषाओं के 30,000 समांतर वाक्य संकलित किए गए थे। इसके अंतर्गत सभी भारतीय भाषाओं में पाठ को इनपुट करने और बाद में उसके आउटपुट के लिए यूनिकोड का प्रयोग किया जाता है। यह सर्वविदित ही है कि आज विश्व की सभी लिखित भाषाओं के लिए यूनिकोड नामक विश्वव्यापी कोड का उपयोग, माइक्रोसॉफ्ट, आई.बी.एम., लाइनेक्स, ओरेकल जैसी विश्व की लगभग सभी कंप्यूटर कंपनियों द्वारा किया जा रहा है। यह कोडिंग सिस्टम फॉण्ट्स मुक्त, प्लेटफॉर्म मुक्त और ब्राउजर मुक्त है। यूनीकोड के उपयोग से कंप्यूटर पर उपलब्ध अधुनातन साधनों का उपयोग किया जा सकता है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में कॉर्पस के आधार पर अनुवाद प्रणाली के विकास के लिए और प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) के लिए भी इसका व्यापक उपयोग किया जाने लगा है।

6. भारतीय भाषाओं के बीच समरूपी (Cognate) शब्दों की खोज के लिए शब्दजालों (Wordnets) का उपयोग : IIT मुंबई द्वारा भारतीय भाषाओं के बीच समरूपी (Cognate) शब्दों की खोज के लिए शब्दजालों (Wordnets) का उपयोग करने के लिए पुष्पक भट्टाचार्य के निर्देशन में Automatic Cognate Detection (ACD) नाम से एक परियोजना आरंभ की गई थी, जिसकी मदद से मशीनी अनुवाद, Information Retrieval (IR) और द्विभाषी या त्रिभाषी शब्दावलियों के संकलन जैसी चुनौतीपूर्ण NLP applications के कार्य को स्वतः ही सुगमता से किया जा सकता है। इस परियोजना के अंतर्गत शब्दजालों (Wordnets) के माध्यम से समरूपी (Cognate) शब्दयुग्मों (wordpairs) का पता लगाने के लिए 10 भारतीय भाषाओं (मराठी, गुजराती, बँगला, पंजाबी, मलयालम, तमिल, तेलुगु , नेपाली, उर्दू और हिंदी) को आधार बनाया गया था। भले ही हिंदी और तेलुगु समान भाषा-परिवार की भाषाएँ नहीं हैं, फिर भी उनके बीच समानता और शुद्धता का स्तर बहुत ऊँचा होता है। समरूपी (Cognate) वे शब्द होते हैं, जिनका व्युत्पत्तिपरक स्रोत (etymological origin) समान होता है। (Crystal, 2008). भारतीय भाषाओं में बहुत बड़ी संख्या में शब्द और संकल्पनाएँ या तो संस्कृत के मूल स्रोत से ली गई हैं या फिर संस्कृत से उधार ली गई हैं। इसके लिए दो तरह के datasets निर्मित किए जाते हैं <sourcelang> और <targetlang>. इनमें स्रोत भाषा हमेशा हिंदी ही रहती है। इस नैटवर्क में एक शब्द को वर्णक्रम (sequence of characters) माना जाता है। यह तथ्य भी सर्वस्वीकृत ही है कि भारतीय भाषाएँ जैसी बोली जाती हैं, वैसी ही लिखी जाती हैं। इसके विपरीत पश्चिम की भाषाओं में उच्चारण और लिपि में बहुत भेद होता है। अधिकांश भारतीय भाषाओं में संस्कृत से लिए गए शब्द दो रूपों में होते

हैं—तत्सम और तद्भव। तत्सम शब्दों में संस्कृत की वर्तनी ज्यों-की-त्यों रहती है, जबकि तद्भव शब्दों में कमोबेश अंतर भी हो सकता है और वे शब्द पूरी तरह बदले हुए भी हो सकते हैं।

7. भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद के लिए IIIT हैदराबाद द्वारा विकसित 'अनुसारक'

IIIT हैदराबाद द्वारा विकसित 'अनुसारक' एक ऐसा कंप्यूटर सॉफ्टवेयर है, जिसकी मदद से भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद किया जा सकता है। हो सकता है कि यह अनुवाद व्याकरण की दृष्टि से पूरी तरह शुद्ध न हो, तो भी पाठक इसे आसानी से समझ लेता है। उदाहरण के लिए, तेलुगु-हिंदी 'अनुसारक' तेलुगु में मुद्रित पाठ को हिंदी पाठक को हिंदी में उपलब्ध करा देता है। आम तौर पर यह माना जाता है कि मशीनी अनुवाद प्रणाली को विकसित करना बहुत जटिल होता है, क्योंकि इसके लिए विश्वज्ञान (encyclopaedic knowledge) को कंप्यूटर में समाहित करना होता है। इसके बावजूद लक्ष्य भाषा में बहुत-कुछ छूट जाता है। इसलिए मानव और मशीन पर काफी बोझ पड़ता है।

'अनुसारक' में विश्वज्ञान (encyclopaedic knowledge) को कंप्यूटर में समाहित करने की आवश्यकता नहीं होती। 'अनुसारक' किसी स्रोत भाषा के पाठ का विश्लेषण करता है और ज्यों-का-त्यों इसे लक्ष्यभाषा में अंतरित कर देता है। यह संदर्भ या स्रोत भाषा में निहित विश्वज्ञान के आधार पर अंदाजा लगाने की कोशिश भी नहीं करता। 'अनुसारक' स्रोत भाषा के पाठ के रूपिम (morpheme) को उठाता है और लक्ष्य भाषा के रूपिम में अंतरित कर देता है। इसकी सफलता का मुख्य कारण यही है कि भारतीय भाषाओं में शब्दों का क्रम समान ही होता है, अर्थात् सभी भारतीय भाषाएँ SOV होती हैं, इसलिए अनुवाद की गुणवत्ता भी कमोबेश ठीक ही रहती है। इसकी मदद से कोई भी पाठक किसी भी वैबसाइट के भारतीय भाषाओं के पाठ को भी अपनी भाषा में अंतरित करके पढ़ सकता है। किसी भी भारतीय भाषा की पत्रिका का संपादक बिना अनुवादक की सहायता से भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री को तुरंत अपनी भाषा में अंतरित करके उसका उपयोग कर सकता है। बाद में उस पाठ को किसी संपादक की सहायता से व्याकरणिक दृष्टि से संशोधित भी कर सकता है।

फिलहाल 'अनुसारक' का अल्फावर्शन तेलुगु, कन्नड़, बंगाली और पंजाबी से हिंदी में अनुवाद के लिए सुलभ है, बीटावर्शन जल्द ही जारी किया जाएगा। यह 'अनुसारक' प्रो. राजीव संगल, पूर्व निदेशक IIIT, हैदराबाद के नेतृत्व में अक्षर भारती ग्रुप द्वारा विकसित किया गया है।

8. ब्राह्मी लिपि से भारतीय लिपियों का ऐतिहासिक विकास-क्रम : ब्राह्मीलिपि भारत की अधिकांश लिपियों की जननी है तथा उर्दू को छोड़कर सभी भारतीय लिपियाँ (Indic scripts) ब्राह्मी लिपि के मूल स्रोत से विकसित हुई हैं। सम्राट् अशोक ने तीसरी शती ईस्वी पूर्व में अपने अधिकांश शिलालेखों में इसी ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया था। वस्तुतः ब्राह्मी लिपि का विकास-क्रम नदी के प्रवाह जैसा है। 5वीं सदी ईसा पूर्व से 350 ईसा पूर्व तक इसका एक ही रूप मिलता है, लेकिन बाद में इसके दो विभाजन मिलते हैं—उत्तरी धारा व दक्षिणी धारा। हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, बंगाली, असमिया आदि भारतीय आर्य भाषाओं की लिपियों का विकास इसी ब्राह्मी-लिपि की उत्तरी धारा से हुआ है। दक्षिण भारत में इसी लिपि को नंदिनागरी कहा जाता था और तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम आदि द्रविड़ भाषाओं की लिपियों का विकास 'नंदिनागरी' से ही हुआ है। उत्तर भारत की इस लिपि को हम देवनागरी के नाम से जानते हैं।

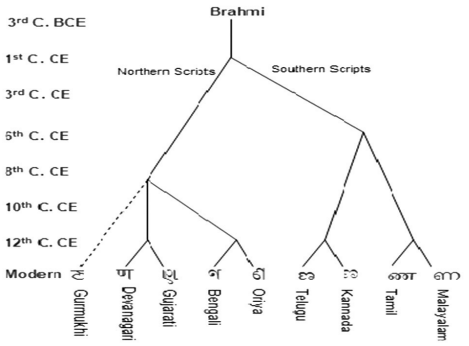

मूल स्रोत लिपि ब्राह्मी होने के कारण सभी भारतीय लिपियों में निम्नलिखित अंतर्निहित समानताएँ परिलक्षित होती हैं—

- सभी लिपियाँ अक्षरात्मक (syllabic) हैं और उनमें मात्राएँ अंतर्निहित हैं।
- प्रत्येक व्यंजन (consonant) में स्वर (vowel) निहित है।
- सभी भारतीय लिपियों की वर्णमाला (alphabet) के क्रम में कुछ अपवादों को छोड़कर समानता है।
- ये सभी लिपियाँ बाएँ-से-दाएँ लिखी जाती हैं।

इसी अंतर्निहित समानता के आधार पर ही ब्राह्मी-आधारित 10 प्रमुख भारतीय लिपियों (Indic scripts) के लिए ISCII नामक समान कोडिंग प्रणाली विकसित की गई। इसके अलावा IIT, कानपुर के वैज्ञानिकों ने सभी भारतीय भाषाओं और लिपियों के लिए समान कुंजी-पटल (INSCRIPT अर्थात् Indian scripts) का भी विकास किया।

9. भारतीय लिपियों (Indic scripts) में लिप्यंतरण की सुविधा : यह तो सर्वविदित ही है कि संस्कृत, हिंदी, मराठी, कोंकणी, सिंधी और नेपाली की लिपि देवनागरी है, लेकिन इसी इंस्क्रिप्ट की-बोर्ड से हम अन्य भारतीय लिपियों में भी संबंधित लिपियों में लिप्यंतरण की मदद से टाइप कर सकते हैं। इसके लिए निम्नलिखित लिंक का उपयोग किया जा सकता है।

https://www.google.co.in/inputtools/try/

नमस्कार (हिंदी)/নমস্কার (बँगला)/નમસ્કાર (गुजराती)/ನಮಸ್ಕಾರ (कन्नड़)/ନମସ୍କାର (ओड़िया)/ਨਮਸ੍ਕਾਰ (पंजाबी)/நமஸ்காரம் (तमिल)/నమస్కార (तेलुगु)/നമസ്കാരം (मलयालम)

निष्कर्ष

इससे स्पष्ट है कि भारतीय भाषाओं और लिपियों में परस्पर भिन्नता के बावजूद हजारों वर्षों से इनके बीच सांस्कृतिक, दार्शनिक और धार्मिक स्तर पर आदान-प्रदान की अविच्छिन्न परंपरा रही है। भारतीय भाषाओं और लिपियों में अंतर्निहित इन्हीं समानताओं के कारण ही 'विविधता में एकता' हमारी संस्कृति की अन्यतम विशेषता बन गई है। यह विशेषता खानपान, वेशभूषा, सोच-विचार और सांस्कृतिक मूल्यों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि भारतीय भाषाओं और उनकी लिपियों के बीच भी जो अंतर्निहित समानता परिलक्षित होती है, उससे भावी संभावनाओं के द्वार भी खुलते हैं। आज का युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है और कदाचित् यही कारण है कि फिजी में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन की थीम ही यही रखी गई है।···हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक···मुझे विश्वास है कि सम्मेलन के दौरान अन्य विषयों के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित समानताओं के आधार पर भाषा-शिक्षण, परस्पर अनुवाद और लिप्यंतरण के उपकरण एवं सॉफ्टवेयर विकसित करने के लिए रोड मैप तैयार किया जाएगा और उसे चरणबद्ध रूप में कार्यान्वित भी किया जाएगा।

□

malhotravk@gmail.com

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में हिंदी और भारतीय भाषाएँ

—अनिल शर्मा 'जोशी'

वर्ष 2023 में फीजी में हो रहे बारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में थीम रखा गया है 'हिंदी-पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक'। वास्तव में यह केवल हिंदी की यात्रा नहीं है, अपितु यह विषय हिंदी का विस्तार, फलक और विभिन्न आयाम दर्शाता है कि हिंदी एक तरफ तो भारत की समृद्ध ज्ञान-परंपरा की भाषा है, जो वेद, उपनिषद्, पुराण से होती हुई भारत के सार्वकालिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों, महाभारत और रामायण की भाषा संस्कृत की उत्तराधिकारी है। वहीं दूसरी तरफ शास्त्र और लोक के बीच में वह कड़ी है, जो एक तरफ तो शास्त्रों का मूल भाव आम जनता तक पहुँचाती है, दूसरी तरफ एक जीवंत लोक भाषा के रूप में लोक में प्रचलित मुहावरों, बोलियाँ के माध्यम से आमजन को ज्ञान से जोड़ती है।

परंतु भारत की सबसे बड़ी चुनौती सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग नहीं है, अपितु हम सबके सामने चुनौती यह है कि हिंदी ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बने, जिसके माध्यम से आधुनिकतम ज्ञान विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, इंजीनियरिंग, समाज विज्ञान, प्रबंधन आदि विषय हिंदी और भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत हों। आजादी के बाद देश के प्रमुख हिंदी क्षेत्रों में बारहवीं तक ज्ञान-विज्ञान के विषय हिंदी व भारतीय भाषाओं में पढ़ाए जाते रहे हैं।' 70-80 के दशक में देश के प्रमुख पदों पर ऐसे लोग थे जिनकी अपनी प्रारंभिक पढ़ाई हिंदी और भारतीय भाषाओं के माध्यम से हुई थी और एक चरण पूरा करने के बाद उन्होंने अंग्रेजी पर अधिकार बनाया था। परंतु जैसे ही प्रौद्योगिकी का युग यानी 80 का दशक प्रारंभ हो जाता है, अथवा उदारीकरण का दौर शुरू होता है, वैश्वीकरण चर्चा में आ जाता है। लोगों को ऐसा लगने लगता है कि अंतरराष्ट्रीयकरण, वैश्वीकरण और आधुनिकता की भाषा केवल अंग्रेजी हो सकती है।

भारत में धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आने लगी कि ऐसा वातावरण बना कि भारत के सभी प्रमुख उच्च पद अंग्रेजी के लिए आरक्षित हैं। यदि हम डॉक्टर, इंजीनियर, चार्टर्ड अकाउंटेंट, यहाँ तक कि सिविल अधिकारी बनना चाहते हैं, तो अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना ही लाभकर रहेगा। इस विचार में हम दो बातें भूल गए—पहली यह कि अंग्रेजी को भारत भर में थोपा जाना एक औपनिवेशिक योजना थी, जिसके बीज हमें मैकाले के मिनट्स से मिलते हैं। इनमें यह कल्पना की गई थी कि आनेवाले समय में भारत का भविष्य उन लोगों के हाथ में होगा, जो केवल रक्त

* केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, शिक्षा मंत्रालय के उपाध्यक्ष।

और रंग से भारतीय होंगे, परंतु विचार, खानपान और जीवन-शैली के स्तर पर वे पश्चिमी मनोवृत्ति के हो जाएँगे। दूसरा ऐसा मान लिया गया कि चूँकि अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है, इसलिए ज्ञान-विज्ञान का अर्जन केवल उसी भाषा में हो सकता है। हम यह भूल गए कि जर्मन, फ्रांस, पुर्तगाल, स्वीडन, चीन, रूस, जापान, दक्षिण कोरिया, इजराइल, ऐसे अन्य अनेक देश हैं, जिन्होंने ज्ञानार्जन अपनी भाषा में किया। यहाँ संक्रांत सानू की पुस्तक 'अंग्रेजी का भ्रम जाल' का उल्लेख करना उचित होगा, जो एक तालिका के माध्यम से यह दर्शाती है कि विश्व के सबसे धनी 20 देशों में से 16 देश ऐसे हैं, जहाँ विद्यार्थी अपनी भाषा के माध्यम से ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मनोविज्ञान यह मानता है कि प्रारंभिक वर्षों में अपनी ही भाषा के माध्यम से पढ़ने पर मौलिकता और कल्पनाशीलता विकसित होती है। साथ ही भारतीय मेधा भाषा के कारण अपनी संभावनाएँ नहीं पा पाई।

भारत की आजादी के बाद हिंदी और भारतीय भाषाएँ ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बनें, यह विचार प्रमुख व्यक्तियों के विचार और चिंतन में दिखाई पड़ता है। हिंदी को राजभाषा घोषित करने के पीछे यही विचार था। परंतु औपनिवेशिक मानसिकता के चलते 15 वर्ष तक अंग्रेजी को राजभाषा का दर्जा दिया गया। भाषावार प्रांतों के निर्माण के बाद स्थितियाँ जटिल होती चली गईं और महात्मा गांधी द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करना अथवा उसे स्वाधीनता संग्राम की भाषा माननेवाला भाव क्षीण होता चला गया। रोजगार और संघ लोक सेवा आयोग में भारतीय भाषाओं की पारस्परिक स्थिति महत्त्वपूर्ण हो गई और विशेष रूप से नौकरियों को लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं में एक प्रतिद्वंद्विता और प्रतिस्पर्धा की स्थिति दिखाई देने लगी। कोठारी आयोग की सिफारिशों में भी हिंदी और अंग्रेजी पर जोर था, परंतु संभवत: हमने अपनी भाषाओं के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान को अर्जित करने का महत्त्व नहीं समझा और इस प्रकार अंग्रेजी शक्तिशाली होती चली गई।

इधर अंग्रेजी के चलते सभी नौकरियाँ व बड़े पद अंग्रेजी के लिए आरक्षित होते चले गए। यह भारतीय भाषाओं के लिए चुनौतीपूर्ण और कठिन स्थिति थी। कई कारणों से नई सरकार ने भारतीय भाषाओं को लेकर जो नीति अपनाई वह भाषा की दृष्टि से इस देश के लिए नए रास्ते दिखाती है और दिशा परिवर्तन करनेवाली थी। वर्ष 2020 में दो बड़े काम हुए—पहला, भारत सरकार द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इस शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें प्राथमिक कक्षा में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा पढ़ने पर जोर दिया गया। साथ ही इसे यथासंभव माध्यमिक आदि स्तर पर ले जाने के प्रयासों को उल्लेख था। दूसरा प्रधानमंत्रीजी द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय भाषाओं के माध्यम से देने की घोषणा की गई। बिहार, बंगाल और असम में की गई यह बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण घोषणा थी। देश के सर्वोच्च राजनेता की प्राथमिकता में भारतीय भाषाएँ आईं। प्रधानमंत्रीजी की इस विषय पर प्रतिबद्धता निश्चित रूप से थी, उन्होंने इस विषय को लाल किले की प्राचीर से दिए अपने भाषणों में भी शामिल किया। यही नहीं, जैसे महात्मा गांधी ने वर्ष 1918 में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की घोषणा कर देवदास गांधी को तत्कालीन मद्रास में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए भेजा था, उसी प्रकार प्रधानमंत्रीजी की घोषणा के तत्काल बाद शिक्षा मंत्रालय में एक टास्क फोर्स का गठन किया गया, जिसका काम मुख्य रूप से इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रमों में हिंदी और भारतीय भाषाओं के माध्यम को लाने पर

विचार करना था। इस समिति में प्रमुख आई.आई.टी. के निदेशक भी थे।

यह समिति शिक्षा मंत्रालय के तत्कालीन सचिव के अध्यक्षता में गठित की गई थी। इस समिति के सदस्यों में प्रधानमंत्रीजी का भारतीय भाषाओं की तरफ विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करनेवाले सामाजिक कार्यकर्ता श्री संतोष तनेजा, व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् के अध्यक्ष श्री निर्मलजीत सिंह कलसी शामिल थे। मुझे भी इस समिति का सदस्य बनने का मौका मिला। इसमें व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं में शिक्षा देने के विभिन्न आयामों पर विचार किया गया—सैद्धांतिक पक्षों के साथ-साथ यह भी चर्चा की गई थी कि इसकी व्यावहारिकता क्या रहेगी, इस समिति में इंजीनियरिंग में भारतीय भाषाओं का पाठ्यक्रम क्या हो सकता है, अंग्रेजी के शब्दों और संकल्पनाओं की क्या स्थिति रहेगी, इसकी वित्तीय अपेक्षाएँ क्या रहेंगी आदि विषयों पर विचार किया गया। समिति द्वारा एक निर्णय यह भी लिया गया कि विद्यार्थियों का इस दृष्टि से सर्वेक्षण किया जाए कि उनमें से कितने विद्यार्थी भारतीय भाषाओं में पढ़ना चाहते हैं। समिति में विभिन्न प्रोफेशनल्स की उपस्थिति के चलते यह होना स्वाभाविक ही था। इस विषय पर जो सर्वेक्षण हुए, वे आँख खोलनेवाले थे।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के सर्वेक्षण में यह बात स्पष्ट हुई कि 42 प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी इंजीनियरिंग अपनी भाषाओं में पढ़ना चाहते हैं। इस विषय में अपनी बात रखते हुए मैंने समिति की बैठक में कहा कि ये आँकड़े बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन विद्यार्थियों को नहीं पता कि अपनी भाषाओं में पढ़ने के कारण वे विदेश जा पाएँगे अथवा नहीं या उनको बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नौकरियाँ मिलेंगी अथवा नहीं। उन्हें यह भी नहीं पता कि इन विषयों के विशेषज्ञ पढ़ाने के लिए उपलब्ध है अथवा नहीं। अथवा इन विषयों की पाठ्य सामग्री भी उपलब्ध है अथवा नहीं। परंतु उसके बावजूद वे महसूस करते हैं कि अगर अपनी भाषा में शिक्षा का पाठ्यक्रम नहीं हुआ तो वे दक्षता के साथ इंजीनियरिंग का पाठ्यक्रम नहीं पढ़ पाएँगे। अन्य सदस्यों ने भी इन विषय पर महत्त्वपूर्ण विचार रखे। इसी संबंध में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के उपाध्यक्ष श्री एम.पी. पुनियाजी बताते हैं कि प्रत्येक वर्ष इंजीनियरिंग में अठारह लाख विद्यार्थी दाखिला लेते हैं, परंतु इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरे करनेवालों की संख्या केवल तेरह लाख होती है। यह महत्त्वपूर्ण विषय है कि वे पाँच लाख विद्यार्थी किन कारणों से इंजीनियर नहीं बन पाते! श्री पूनिया ऐसा मानते हैं कि इसका प्रमुख कारण व्यावसायिक शिक्षा का अंग्रेजी में होना है। इस संबंध में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद में प्रसिद्ध विद्वान् श्री देवव्रत की अध्यक्षता में एक समिति गठित की और तत्कालीन अध्यक्ष श्री अनिल सहस्रबुद्धे की पहल पर इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं के माध्यम की अनुमति दे दी गई।

इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण समस्या भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन की थी। इस संबंध में भी अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् द्वारा पहल की गई और लगभग ढाई सौ पुस्तकें प्रमुख प्रकाशकों द्वारा अंग्रेजी में तैयार की गईं। यह एक बड़ी चुनौती थी। इस बीच अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् द्वारा यह भी पहल की गई थी कि अनुवाद का एक ऐसा टूल बनाया जाए, जो विशेष रूप से व्यावसायिक शिक्षा की सामग्री का अनुवाद कर सकें।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने यह महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया, उन्होंने एक

ट्रांसलेशन टूल भी बनाया है। यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि हमारी सारी पुस्तकें अंग्रेजी में हैं तो सभी का मानवीकृत अनुवाद करने में बहुत समय लगेगा, जबकि इस टूल के द्वारा यह आसानी से और शीघ्र कार्य किया जा सकता है। यह टूल काफी हद तक सही अनुवाद कर सकता है। इतना नहीं पुस्तकों में जो चित्र, फिगर, टेबल और चार्ट होते हैं, यह उनका भी भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने में सक्षम है। इसे बेहतर बनाया जा रहा है। यह आपको शब्द के विकल्प भी देते हैं। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के प्रौद्योगिकीविद् श्री वासु ने यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आज इस दृष्टि से अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने पहचान बना ली है। पहले और दूसरे वर्ष की प्रमुख पुस्तकें कई भारतीय भाषाओं में तैयार हो गई हैं। हाल ही में माननीय राष्ट्रपति द्वारा अखिल भारतीय तकनीकी परिषद द्वारा प्रकाशित उड़िया पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। पुस्तकों का अनुवाद और प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जो कई भारतीय भाषाओं में किया गया।

आज से एक वर्ष पूर्व मेरा तमिलनाडु जाना हुआ था। भारतीय भाषाओं में सबसे पहले तमिलनाडु में व्यावसायिक शिक्षा दी जाने की शुरुआत हुई थी। तमिलनाडु सरकार ने और भी प्रयत्न किए हैं, जैसे तमिलनाडु के सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों का उनके इंजीनियरिंग में प्रवेश के लिए आरक्षण किया गया है। इसी प्रकार रोजगार में भी ऐसे इंजीनियरों के लिए आरक्षण की व्यवस्था है, जिन्होंने तमिल भाषा से इंजीनियरिंग पढ़ी है। यह एक महत्त्वपूर्ण शुरुआत है। भारत के प्रमुख संस्थान इस दिशा में काम कर सकते हैं। फिक्की और अन्य संगठन, जिसमें देश की प्रमुख निर्माण और विपणन कंपनियों के मालिक हैं, यह काम करने में सहयोग कर सकते हैं।

इधर इंजीनियरिंग के व्यावसायिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं को लाने के प्रयत्न हो ही रहे थे कि साथ-ही-साथ चिकित्सा विज्ञान भी हिंदी और भारतीय भाषाओं में पढ़ाया जाए, इसके लिए प्रयत्न किए जा रहे थे। अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री मोहनलाल छीपा ने अपने कार्यकाल में इस तरह की पहल की। परंतु किसी भी मेडिकल कॉलेज के लिए व्यापक आधारभूत संरचना चाहिए होती है। उनके विश्वविद्यालय में संभवतः उस समय उस तरह की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं और यह पहल अपेक्षित रूप नहीं पा सकी। परंतु गृह मंत्रीजी का इस विशेष विषय में विशेष आग्रह है। उनकी पहल से मध्य प्रदेश में वर्ष 2022 से 13 कॉलेजों में प्रथम वर्ष में एनाटमी, फिजियोलॉजी और बायो केमिस्ट्री की पढ़ाई हिंदी में प्रारंभ हो गई। जिसमें मध्य प्रदेश के चिकित्सा शिक्षा मंत्री श्री विश्वास सारंग की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस योजना की हाल में ही मध्य प्रदेश में शुरुआत की गई।

जुलाई के महीने में हम लोगों की चर्चा पशु विज्ञान परिषद के प्रमुख श्री योगेश शर्मा से हुई। वे पशु विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं में पढ़ाई करने के पक्षधर थे। परंतु पाठ्यक्रमों के अनुवाद आदि को लेकर उनकी कुछ आशंकाएँ थीं। इन आशंकाओं के दूर होने पर पशु विज्ञान परिषद ने भी यह निर्णय लिया कि इस विषय की शिक्षा भारतीय भाषाओं में होगी।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विषय में पुस्तकों का अनुवाद और प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण काम किया है और इंजीनियरिंग की पहले दो वर्षों की पुस्तकों का अनुवाद और प्रकाशन हिंदी और विभिन्न भारतीय भाषाओं में सामने आ गया और विद्यार्थियों के

हाथों में पहुँच चुका है। अब इस बात के संबंध में विद्यार्थियों से जानकारी लेनी चाहिए कि इनमें से कौन-कौन सी पुस्तक उन्हें मदद दे रही है और पुस्तकों को लेकर उनकी अपेक्षाएँ क्या हैं? बाजार का यह नियम है कि यदि माँग होगी तो उपलब्धता भी होगी। जितनी बड़ी संख्या में विद्यार्थी पुस्तकें पढ़ेंगे, उतनी ही मात्रा में पुस्तकों का अनुवाद होंगे और प्रकाशित पुस्तकों की गुणवत्ता बढ़ेगी।

यह पहल कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अंतत: विद्यार्थी अंग्रेजी में प्राथमिक कक्षा में क्यों पड़ता है। चूँकि वह जानता है कि यदि उसे बड़े पद या रोजगार लेना है तो उसके लिए अंग्रेजी ही मुख्य भाषा रहेगी। यदि उसे पता चल जाता है कि वह अपनी भाषाओं में पढ़कर कल्पनाशीलता और मौलिकता के विकास के साथ वह एक व्यावसायिक डिग्री ले सकता है और उसके आधार पर उसे नौकरी मिल सकती है, तो वह चाहेगा कि वह अपनी भाषाओं में पढ़े। नौकरी का मिलना महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, यदि नौकरी नहीं मिलती है तो पूरी शृंखला प्रभावित होती है और उच्च शिक्षा, सेकेंडरी शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, सभी के ऊपर प्रभाव पड़ता है। केंद्र सरकार एक बड़ी नियोक्ता है और राज्य सरकारें भी बड़ी नियोक्ता हैं। यदि यह पहल करती है तो निश्चित रूप से एक नई दिशा, एक नई राह दिखाई देगी। इसी प्रकार देश के बड़े उद्योगपतियों को इस दिशा में आगे आना होगा। यदि वे इस प्रकार से भारतीय भाषाओं के प्रोफेशनल्स को नौकरी देते हैं तो भाषाओं का परिदृश्य बदल सकता है। इसमें एक बहुत बड़ी भूमिका हमारे समाज और अभिभावकों की भी है, जो यह समझते हैं कि अंग्रेजी ही ज्ञान की कुंजी है। अपने स्तर पर भारत की ज्ञान-परंपरा, नैतिक मूल्य, उपयुक्त जीवन शैली के बारे में नहीं सोचते। भारतीय भाषाओं के ना होने के कारण भाषा के विभिन्न उपयोगी चीजों के उत्पादन और विपणन पर पड़नेवाले प्रभाव के बारे में वे विचार नहीं कर पाते। उन्हीं के दबाव और अपेक्षाओं के चलते भारतीय शिक्षा पद्धति अपनी जड़ों से कट रही है। पूरे समाज में भारतीय भाषाओं के लिए एक वातावरण बनाना होगा। फर्राटेदार अंग्रेजी सफलता की निशानी नहीं है। विषय का गहरा ज्ञान और कार्यान्वयन की क्षमता ही योग्यता का परिचायक है।

इस दिशा में हिंदी प्रेमियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को विद्वानों को अपने-अपने क्षेत्रों की पुस्तकों को हिंदी और भारतीय भाषाओं में लाने का बीड़ा उठाना होगा। अनुवाद के लिए एक विशेषज्ञ के साथ एक भाषा का विद्वान् जुड़ सकता है। वह ऐसी पुस्तक के ज्ञान-सामग्री, संदर्भ सामग्री प्रस्तुत कर सकता है कि विद्यार्थी भाषाई अवरोध से हटकर अपनी भाषा में उच्चतर ज्ञान को सहज रूप में पा सकें। यह समय की आवश्यकता है। हिंदी और भारतीय भाषा प्रेमी हाथ पर हाथ धरे न बैठें। यह अभियान इस भाषाई आंदोलन का एक अंग बने और समस्त भाषाओं से प्रेम रखते हुए भी अपनी भाषाओं के विकास और उनके माध्यम से भारत और भारतीयता से जुड़ने के उपक्रम को साधने के प्रयास में जुटें।

□

anilhindi@gmail.com

नीतिज्ञ के लिए यश और धन की कमी नहीं है।

—प्रेमचंद

अनुवाद के माध्यम से कन्नड़-हिंदी में आदान-प्रदान

—प्रो. टी.आर. भट्ट

कन्नड़ प्रदेश पूरे दक्षिण में भाषाओं की दृष्टि से और धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से विशिष्ट है। जितनी भाषाएँ यहाँ बोली जाती हैं, उतनी दक्षिण में और कहीं नहीं। यहाँ विभिन्न भाषाओं के विकास के लिए अनेक धर्मों के संतों ने खूब योगदान दिया है। इसीलिए यहाँ ज्यादा सहिष्णुता देखी जा सकती है, ज्यादा भाईचारा का प्रभाव देखा जा सकता है, हर क्षेत्र में आदान-प्रदान देखा जाता है। इसी सहिष्णुता के कारण यहाँ हिंदी वर्षों से विकसित हो रही है। लोगों ने हिंदी को अपने दिल से स्वीकार कर कन्नड़ के साथ हिंदी को उसके विकास में योगदान दिया है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय यहाँ के लोगों ने हिंदी सीखकर देश की भावना बढ़ाई है, चाहे कन्नड़ के लेखक हों, नेता हों, पत्रकार हों, धार्मिक संत हों, सबने हिंदी के माध्यम से देश की अखंडता को बनाए रखने में साथ दिया है।

विभिन्न भाषाओं का संगम

कर्नाटक पाँच भाषा-प्रांतों की सीमाओं से घिरा हुआ है। दक्षिण की प्रमुख भाषाएँ तमिल, तेलुगू, मलयालम, मराठी, कोंकणी यहाँ के सीमावर्ती प्रदेशों में बोली जाती हैं। वास्तव में बेंगलुरु में, जो राज्य की राजधानी है, खूब तमिल, तेलुगू बोली जाती है, क्योंकि यह दो राज्यों की सीमा पर है। इसी तरह मंगलूर, मैसूर, केरल से लगे हुए हैं, इसीलिए इन शहरों में, गाँवों में मलयालम अधिक संख्या में बोली जाती है। इसी तरह धारवाड़, बेलगाँव, महाराष्ट्र और गोवा की सीमा से लगे रहने के कारण यहाँ मराठी कोंकणी की प्रधानता है। इसके साथ ही दक्खिनी मुगलों के शासनकाल से कन्नड़ प्रांत की प्रमुख बोली बन गई है। कर्नाटक के उत्तर भाग में दक्खिनी दूसरी भाषा के जैसे बोली जाती है। दक्खिनी के साथ उर्दू भी बोली जाती है। कोंकणी गोवा की भाषा है। 16वीं शती में पुर्तगालियों के आक्रमण से बचने के लिए बड़ी संख्या में सारस्वत लोग कर्नाटक के तटवर्ती प्रदेश और सीमावर्ती प्रदेशों में आकर बस गए। ये सारस्वत लोग अपने साथ कोंकणी ले आए और आज भी कर्नाटक के कई प्रदेशों में यह दूसरी भाषा के रूप में बोली जा रही है।

कन्नड़ प्रांत में कन्नड़ की कई बोलियाँ प्रचलित हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। तुळु, हविगन्नड़, कोडव, अरेभाषे, ब्यारी आदि। इनमें काफी साहित्यिक रचनाएँ रची गई हैं। इन भाषाओं के अतिरिक्त और भी बोलियाँ हैं—जैसे कराड़ी, चितूपौन की मराठी, तमिल-कन्नड़ मिश्रित बोली। इन बोलियों

* कर्नाटक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्रोफेसर।

से मानक कन्नड़ समृद्ध हुई है। इसी कारण से कन्नड़ में भाईचारे की भावना अधिक विकसित हुई है। इतनी बोलियों के सम्मिश्रण से यहाँ के लोगों में भाषा का दुरभिमान मिट गया है। इसी कारण से कन्नड़ प्रदेश के लोग अन्य सभी भाषा-भाषियों के साथ आसानी से घुल-मिल जाते हैं। भाषा के इस उदार स्वभाव के कारण हिंदी इस प्रदेश में पहले से आसानी से जम गई है। इन्हीं विशेषताओं के कारण विभिन्न भाषा समुदायों के साथ भाव, विचार का आदान-प्रदान अपने आप होता आया है। अनुवाद के मूल में यह विशेषता काम कर रही है। लोगों के बीच मौखिक अनुवाद अपने आप होता आया है।

कर्नाटक सनातन धर्म के तीन महान् संतों की कर्मभूमि रही है। इसी भूमि पर शंकराचार्य (अद्वैत), द्वैत मत के प्रवर्तक मध्वाचार्य और विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य आदि ने अपने-अपने मतों का प्रचार आम लोगों तक जनभाषा के माध्यम से किया। इन संतों के उपदेश के कारण ही समाज में वर्ग-वैषम्य कम हुआ है। इस कन्नड़ प्रदेश में सनातन धर्म की और एक प्रधान शाखा है—वीरशैव या लिंगायत धर्म। 12वीं शती में बसवेश्वर ने इस धर्म को जन-जन तक पहुँचाया। इस धर्म में पिछड़ी जाति के लोगों को भी सम्मिलित किया गया। आज इस धर्म के हजार से ज्यादा मठ कर्नाटक के कोने-कोने में स्थापित हैं। आम लोगों पर इन मठों का खूब प्रभाव है। इन मठों ने जातिभेद को मिटाकर पिछड़े वर्ग के लोगों को अपने धर्म में शामिल कर दिया था। इसी कारण से पूरे देश में बंधुत्व का अधिक भाव उत्तर प्रदेश को छोड़कर कर्नाटक में ही देखने को मिलता है। साथ ही यहाँ जैन मठ भी काफी हैं, जिनके द्वारा अहिंसा का खूब प्रचार हुआ है। भक्ति युग और आधुनिक युग में 'रामायण' पर जितनी रचनाएँ रची गई हैं, उतनी भारत की और किसी भी भाषा में नहीं। कन्नड़ साहित्य में जैन रामायण की अलग परंपरा है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। संत लोग यायावर होते हैं और आम लोगों की बोली ही उनके संदेश का माध्यम बनती है। यहाँ पर अनुवाद का बहुमुख्य पात्र है। भक्ति-युग में अनुवाद (संस्कृत से लोक की बोली में) के माध्यम से संत लोग भक्तों एवं आम लोगों के बीच पहुँच गए थे। उन दिनों अनुवाद भक्तों के साथ संतों का एक माध्यम रहा है।

भारत की प्रमुख भाषाओं में साहित्य का निर्माण भक्तियुग से ही होता आया है। भारत की भाषाएँ अलग-अलग होते हुए भी उनका मूल स्वर एक ही है, मूल स्रोत एवं प्रेरणाबिंदु एक ही है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अच्छे साहित्य को पढ़कर रस-ग्रहण की प्रक्रिया अनुवाद के माध्यम से होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर पूरे भारत में भक्तिकाल से परस्पर या संस्कृत से विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद-कार्य खूब होता आया है। इसी कारण से प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य समृद्ध हुआ है। जहाँ तक कन्नड़ का प्रश्न है—यहाँ प्राचीनकाल से हमारे सांस्कृतिक एवं आकर—ग्रंथ महाभारत, रामायण, भगवद्गीता, वेद, उपनिषद् का अनुवाद एवं उन ग्रंथों का रूपांतर, कथा-विस्तार लगातार होता आया है। जिस तरह हिंदी प्रदेश में 'रामचरितमानस' एवं 'कुमारव्यास भारत' अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों का आधार अनुवाद ही है। भक्तिकाल से कन्नड़ में रामकाव्य-परंपरा काफी समृद्ध रही है। जैन, जैनेतर रामायण ग्रंथों का बड़ी संख्या में यहाँ निर्माण हुआ है। इनका भी एकमात्र आधार अनुवाद है। अतः भक्तियुग से वर्तमान युग तक कन्नड़ में विभिन्न भाषाओं से अनुवाद लगातार होता आया है।

कर्नाटक में जब से हिंदी का प्रचार 1920-1925 के करीब हुआ, तब से भारत की कुछ

भाषाओं की कृतियों को हिंदी में लाने की कोशिश हुई। आरंभ में कविता एवं कहानियों का अनुवाद आरंभ हुआ। 1935-40 के करीब बाँग्ला के साहित्यकार शरत्चंद्र, बंकिमचंद्र, टैगोर की रचनाओं का अनुवाद हिंदी के माध्यम से कन्नड़ में हुआ। उसके बाद प्रेमचंद की कृतियों की ओर पाठकों की उत्सुकता जागी। प्रेमचंद की साहित्य-सेवा का कालखंड भारतीय साहित्य के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उन दिनों प्रेमचंद से पूर्व के साहित्य का अनुवाद आधुनिक कन्नड़ में बिल्कुल नहीं हुआ था। वास्तव में कन्नड़ में अनुवाद प्रेमचंद की कहानी से होता है। कन्नड़ के श्रेष्ठ हिंदी सेवी प्रो. नागप्पा सन् 1933 में काशी में एम.ए. करते समय प्रेमचंद से मिले और उनकी कुछ कहानियों का अनुवाद करने की अनुमति माँगी। प्रेमचंद ने अनुमति देते हुए कहा था कि "अगर आपके द्वारा अनूदित मेरी कहानियों को कन्नड़-पाठक पढ़कर खुश होंगे तो आपका अनुवाद सार्थक होगा।"

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद केंद्र साहित्य अकादमी ने 1955-57 के बीच भारत की चौदह भाषाओं की चुनी हुई बीस-बीस कविताओं का मूल कविता-संकलन हिंदी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया था। इससे भारतीय कविता के मूल स्वर को पहचानकर कुछ पाठकों ने अपने को अनुवाद-कार्य में लगाया। इसी समय केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 'भारतीय कहानी' के नाम से देश की चौदह भाषाओं की चुनी कहानियों के हिंदी अनुवाद का संकलन निकाला। लगभग इसी अवधि में (1960) वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इस अनुवाद-कार्य को आगे बढ़ाया। उसने 'कविश्रीमाला' के शीर्षक से कन्नड़ कवि बेंद्रे और कुवेंपु की रचनाओं का संकलन अनूदित रूप में प्रकाशित किया। धीरे-धीरे हिंदी पत्रिकाओं में कन्नड़ में अनूदित कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित होने लगीं। उन्हीं दिनों 1970 के करीब सरोजिनी महिषी ने कुवेंपु के 'रामायण दर्शनं' के कुछ पदों का हिंदी में अनुवाद किया। बाद में प्रधान गुरुदत्त ने उसका पूरा अनुवाद किया है। कुवेंपु के दो बृहत् उपन्यास 'मलेनाडिन मदुमगळु', 'पहाड़ी प्रदेश की बहू' शीर्षक से अनूदित है। इसी तरह कुवेंपु का और एक उपन्यास 'कानूर सुब्बम्म हेग्गडति' 'कानूर की पटवारिन सुब्बम्म' शीर्षक से अनूदित है। इन दोनों उपन्यासों के प्रसिद्ध अनुवादक गुरुनाथ जोशी थे, जो हिंदी प्रचारक के साथ बहुत अच्छे अनुवादक थे। इन्होंने मूलकृति के साथ न्याय करने की भरसक कोशिश की। लगभग इसी अवधि में प्रभुशंकर के 'आम्रपाली' नाटक का अनुवाद हिंदी में चंद्रबाई ने किया है। यहाँ तो अनुवादक ने उस नाटक को सांस्कृतिक हिंदी में रखा है, जिसके कारण सहजता गायब हो गई है। इसी तरह कन्नड़ में आगे के वर्षों में उपन्यासों का खूब अनुवाद हुआ है। कन्नड़ का उपन्यास-साहित्य भी काफी समृद्ध है। इनमें कुवेंपु के साथ शिवराम कारंत, अ.न. कृष्णराय, त्रिवेणी आदि लेखकों के उपन्यासों का अनुवाद हुआ है। आरंभ के इन अनुवादकों में डॉ. प्रसन्न, हिरण्मय, बी.आर. नारायण, भालचंद्र जयशेट्टी, तिप्पेस्वामी, चंद्रकांत कुसुनूर, रामचंद्र स्वामी, प्रधान गुरुदत्त आदि प्रसिद्ध हैं, जिनमें कुछ अनुवादकों ने हिंदी उपन्यासों का बड़ी संख्या में अनुवाद किया है। इसी तरह हिंदी से कुछ उपन्यासों का अनुवाद उस काल में हुआ था। आरंभ से यहाँ के पाठक के प्रेमचंद से आकर्षित होने के कारण 'गोदान', 'निर्मला' और उनकी कई कहानियों का अनुवाद किया गया। यहाँ पर एक खास बात का उल्लेख करना उचित है कि कुछ कन्नड़ के लेखकों ने भी हिंदी के सामान्य ज्ञान पर अज्ञेय, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, गंगा प्रसाद विमल आदि के उपन्यासों का कन्नड़ में अनुवाद

किया है। लेकिन संख्या की दृष्टि से हिंदी से कम कृतियाँ कन्नड़ में आई हैं।

उपन्यास के जैसे कहानी विधा के अंतर्गत परस्पर अनुवाद का काम खूब हुआ है। काफी संख्या में कन्नड़ की कहानियाँ हिंदी में आ गई हैं।

आधुनिक कन्नड़ की अन्य गद्य विधाएँ काफी समृद्ध हैं जिनमें नाटक, आत्मकथा, विचार-साहित्य प्रमुख हैं। कन्नड़ के नाटक साहित्य का अनुवाद उपन्यास की भाँति खूब हुआ है। कुवेंपु के 'शूद्रतपस्वी', 'अँगूठे के बदले ग्रीवा' (बेरळ्गे कोरळ्), 'श्मशान कुरुक्षेत्र'—इन नाटकों का अनुवाद बी.आर. नारायण ने सफलतापूर्वक किया है। इसी तरह श्रीरंग के छह नाटकों का अनुवाद नारायण ने किया है। गिरीश कर्नाड के छह-सात नाटकों का अनुवाद हुआ है। कवि कंबार का 'सिरिसंपिगे' नाटक हिंदी में अनूदित है। कवि बेंद्रे का 'मेला तथा अन्य एकांकी' और जी.बी. जोशी का 'सत्तवर नेरळु' (साया उनका जो चले गए) का बड़ी सफलता के साथ प्रो. नंदिनी ने हिंदी में अनुवाद किया है। इसी तरह हिंदी के कई प्रसिद्ध नाटककार—मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, रामकुमार वर्मा, नरेंद्र मोहन, सुरेंद्र वर्मा के नाटकों का कन्नड़ में अनुवाद हुआ है।

कन्नड़ का काव्य, उपन्यास के जैसा समृद्ध साहित्य प्रकार है, जिसके अंतर्गत कन्नड़ की कुछ ही काव्य कृतियों का हिंदी में अनुवाद हुआ है। आरंभिक अनुवादकों में मैसूर के नागप्पा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने कन्नड़ की कुछ कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया है, जो उत्कृष्ट बन गई हैं। अनुवाद-कला में नागप्पा सिद्धहस्त हैं, अनुवाद उनकी रुचि का क्षेत्र रहा है। वे अपनी पसंद की कविता का अनुवाद बड़ी निष्ठा के साथ करते थे। वे हमेशा कहा करते थे कि 'जिस कृति में आपका अपना मन रमता है, उसी का अनुवाद कीजिए।' इसीलिए साहित्य का अनुवाद जो करता है, उसे सहृदय होने की बड़ी आवश्यकता है। इनके बाद कन्नड़ में आज तक काफी संख्या में काव्य का अनुवाद हुआ है। इन अनुवादकों में हैं—म.सु. कृष्णमूर्ति, सु. रामचंद्र, प्रधान गुरुदत्त, टी. प्रभाशंकर, बी.आर. नारायण, तिप्पेस्वामी, भालचंद्र जयशेट्टी, डी.एन. श्रीनाथ आदि। मैंने कन्नड़ के एक प्रसिद्ध कवि पी.एस. रामानुजं के दो काव्य का हिंदी में अनुवाद किया है—'नदी के साथ बहते' (नदियोडने हरिदाग) और 'कावेरी से सागर तक' (कावेरियिंद सागरदवरेगे)। इन कविताओं का अनुवाद करते समय मूल कविताओं के साथ मैंने अपने आप को उलझाया। इस इनवोल्वमेंट के कारण मैंने अनुभव किया कि कैसे मूल रचना का स्वाद अनुवाद में रूपांतरित किया जा सकता है।

जो भी हो, आधुनिक कन्नड़-काव्य के क्षेत्र में जितना अनुवाद-कार्य होना चाहिए, उतना नहीं हुआ है। एक तो कविता का अनुवाद करना कठिन है ही, साथ ही स्रोत भाषा कन्नड़ का गहरा ज्ञान चाहिए। उचित भाषा-ज्ञान के अभाव में युवा पीढ़ी के अनुवादक गद्य की अपेक्षा कविता के अनुवाद कार्य से पीछे हटते हैं। कन्नड़ में आज नई पीढ़ी में अच्छे अनुवादक कम होते जा रहे हैं। आज के वैश्वीकरण के संदर्भ में हर कार्य की गुणवत्ता (Quality) की माँग हो रही है। बाजारवाद के प्रभाव के कारण जीवन के हर क्षेत्र में गुणवत्ता की ओर लोग आकर्षित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य के क्षेत्र में अच्छी चीज की माँग हो रही है। इसी कारण से अनुवाद-क्षेत्र में कई समस्याएँ, चुनौतियाँ सामने आ रही हैं। आज कन्नड़ साहित्य में उत्कृष्ट साहित्य की कमी नहीं है। लेकिन यहाँ अच्छे अनुवादक कम होते जा रहे हैं। हिंदी से कन्नड़ में अनुवाद तो कठिन नहीं है। हिंदी के सामान्य ज्ञान से कई कन्नड़-लेखकों ने हिंदी उपन्यास, नाटक, कहानी सफलता के

साथ अनुवाद किया है। कुछ हद तक उनका काम सफल भी हुआ है। आज हमारे सामने चुनौती यह है कि अनुवाद-कार्य में गुणवत्ता को कायम रखना है। यह उतना सरल कार्य नहीं है। आज के युवा अनुवादकों में ठीक कन्नड़, हिंदी एक साथ जाननेवालों की संख्या कम होती जा रही है। राज्य के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग है, लेकिन बहुत ही कम संख्या में अच्छे हिंदी के छात्र मिलेंगे जिनकी स्रोत भाषा कन्नड़ अच्छी हो। दूसरी बात यह है कि अनुवाद अर्थात् साहित्यानुवाद में रुचि एवं आस्था रखनेवालों की जरूरत है। रुचि के अभाव में अनुवाद सफल नहीं हो सकता। क्योंकि साहित्य का अनुवाद क्रिएटिव होता है, इसीलिए अनुवाद को क्रिएटिव बनाने के लिए अभिरुचि या टेस्ट बढ़ाने की बड़ी आवश्यकता है। साहित्यिक अनुवाद में संख्या महत्त्वपूर्ण नहीं है। अनुवादक संख्या के पीछे पड़ जाए तो अनुवाद का स्तर अपने आप गिर जाता है। कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासकार एस.एल. भैरप्पा के पंद्रह से अधिक उपन्यास अनूदित हो चुके हैं। प्रो. नागप्पता कन्नड़ के प्रसिद्ध विचार-साहित्य 'देवरु' (एस.एन. मूर्तिराव) का 'ईश्वर' शीर्षक से अनुवाद किया है। इसके अनुवाद-कार्य में उन्होंने चार साल लगाए हैं। उनके लिए अनुवाद-कार्य 'लेबर ऑफ लव' है। उन्होंने अपनी पूरी आस्था एवं लगन इस काम में लगाई है।

कन्नड़ से कुछ कृतियाँ अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से हिंदी में गई हैं। किसी भी कृति का सीधा स्रोत भाषा से न करने से अनुवाद में काफी कमियाँ आ जाती हैं। उदाहरण के लिए कन्नड़ के 'दांपत्य गीत' (समुतींद्र नाडिग) के अंग्रेजी अनुवाद के आधार एक हिंदीभाषी अनुवादक ने अनुवाद किया है। यहाँ अनुवादक स्रोत भाषा न जानने के कारण अपने अनुवाद-कार्य में काफी असफल हुए हैं। इससे मूल रचना का भाव-सौंदर्य गायब रहा है। हाल ही में 'कन्नड़' में रचित 'हे राम' (अनंत चीनिवाड़) शीर्षक नाटक का अनुवाद श्री आर.पी. हेगड़े ने किया है। मूल नाटक में जो प्रवाह है, वह अनूदित नाटक में कम हो गया है। अनुवाद की भाषा शुद्ध है, लेकिन हिंदी की सरलता, सहजता उसमें नहीं है।

इस तरह कन्नड़ में अब तक जो अनुवाद कार्य हुआ है, वह तृप्तिकर है। हिंदी से कई अच्छी कृतियाँ अब तक कन्नड़ में नहीं गई हैं। समकालीन साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों का हिंदी में अनुवाद कराने की जिम्मेदारी यहाँ की अनुवाद अकादमी ने ले ली है। यह संस्था नई पीढ़ी के अनुवादकों को कार्य शिविर द्वारा प्रशिक्षण दे रही है। इसी तरह साहित्य अकादमी की ओर से जो अनुवाद-कार्य अब तक परस्पर भाषाओं से चल रहा है, वह निस्संदेह प्रशंसनीय है।

उपर्युक्त अनुवाद संबंधी विवरण से स्पष्ट है कि कन्नड़-प्रदेश में अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषा बोलनेवालों के बीच बांधव्य या भाईचारे की भावना खूब विकसित हुई है। आदान-प्रदान के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को कायम रखने में बहुत-कुछ सहयोग मिल रहा है। आनेवाले दिनों में कन्नड़ प्रदेश के लोग अपनी मातृभाषा के माध्यम से हिंदी को विश्व की एक सशक्त भाषा बनाने की दिशा में अपना योगदान देते रहेंगे।

□

trbhatdwd@gmail.com

हमारी नागरी दुनिया की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।

—राहुल सांकृत्यायन

वैश्विक हिंदी

विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में विदेश मंत्रालय की भूमिका

—सौरभ कुमार

विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का दायित्व विदेश मंत्रालय को दिया गया है और मंत्रालय का अधिकारी होने के नाते मैं कहना चाहूँगा कि मंत्रालय हिंदी से जुड़े अपने दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रहा है। आज के वैश्विक परिवेश में, हिंदी भाषा की भूमिका लगातार बढ़ रही है और इस भूमिका को सकारात्मक रुख प्रदान करते हुए विदेश मंत्रालय विभिन्न कार्यकलापों के जरिए हिंदी के वैश्विक संवर्धन में सार्थक भूमिका निभा रहा है।

वर्तमान में विदेश में भारत के लगभग 200 मिशन कार्यरत हैं। ये भारतीय मिशन ही विदेशों में भारत सरकार के हिंदी ध्वज वाहक हैं। भारत की बढ़ती आर्थिक और कूटनीतिक ताकत के साथ ही हिंदी भाषा सीखने में विश्व के सभी देशों की रुचि बढ़ी है। हिंदी सीखने के लिए विदेशी छात्र तो भारत आ ही रहे हैं, स्थानीय स्तर पर भी विदेशी छात्र अपने ही देश में हिंदी सीख रहे हैं और सिखा रहे हैं। ये हिंदी कक्षाएँ उन देशों में अवस्थित स्कूलों, सामुदायिक केंद्रों और धर्मार्थ ट्रस्टों में संचालित की जा रही हैं। विदेश मंत्रालय द्वारा उन्हें उपयुक्त शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराई जाती है तथा हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इसके अलावा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा भारतीय संस्कृति, भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से गत 43 वर्षों से गगनाँचल पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। परिषद् विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी अध्यापकों को विदेश स्थित भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों में तथा विदेशों में विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों में स्थापित हिंदी पीठों में विश्वविद्यालय स्तर के हिंदी प्राध्यापकों को हिंदी शिक्षण के लिए भेजती है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न छात्रवृत्ति योजनाओं के तहत हिंदी पठन-पाठन के लिए छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार और भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने के लिए 7 विदेश स्थित भारतीय मिशनों में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति), अताशे (हिंदी एवं संस्कृति) तथा वरिष्ठ हिंदी अनुवादक के पद सृजित हैं। इससे भी विदेशों में हिंदी एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार को गति मिली है। मंत्रालय केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी पढ़ने के लिए भारत आनेवाले विदेशी छात्रों की चयन प्रक्रिया में सहयोग तथा राजनीतिक अनुमोदन

---

* विदेश मंत्रालय, भारत सरकार में सचिव (पूर्व)।

प्रदान कर भारत में उनके शिक्षण प्रवास को सुगम बनाता है।

विश्व स्तर पर हिंदी कार्यकलापों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना की गई है। विश्व हिंदी सचिवालय के उद्देश्यों में उन सरकारों और संस्थाओं को सहयोग देना शामिल है, जो नए नजरिए का उपयोग करके हिंदी सीखने के दायरे, संख्या और गुणवत्ता में विस्तार करते हैं। इसके साथ ही इसका कार्य उन नीतियों और प्रणालियों को बढ़ावा देना है, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी सीखने की सुविधा प्रदान करती हैं। हिंदी के शिक्षण और अधिगम में लगे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों और उत्कृष्ट अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ एक नेटवर्क का निर्माण करना भी सचिवालय का कार्य है। सचिवालय दुनिया भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबंधित सूचना को प्रकाशनों और आई.सी.टी. नेटवर्क के माध्यम से प्रसारित करने में सहायता प्रदान कर रहा है।

साथ ही विश्व हिंदी सचिवालय दुनिया भर के देशों और पुस्तकालयों को ऐसी परियोजनाएँ और कार्यक्रम विकसित करने में सहायता प्रदान कर रहा है, जो हिंदी साक्षरता, पठन-पाठन और सतत् अधिगम को प्रोत्साहित करते हैं। सचिवालय दैनिक जीवन में संचार के माध्यम के रूप में विश्व भर में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित कर रहा है। यह हिंदी भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए भाषा केंद्रित और विशिष्ट कार्य-कलापों का निरंतर आयोजन कर रहा है। सचिवालय ने हिंदी के लेखकों, प्रकाशनों, संस्थाओं एवं अन्य योगदानकर्ताओं का डाटाबैंक भी बनाया है और दुनिया भर में हिंदी भाषी समुदायों का एक नेटवर्क स्थापित किया है।

हाल में विश्व हिंदी सचिवालय में भारत की ओर से उप-महासचिव का चयन किया गया है, जो शीघ्र ही अपना कार्यभार सँभालेंगे। साथ ही विदेश मंत्रालय से विविध पदों पर अन्य कार्मिकों की भी तैनाती की गई है। आशा है कि विश्व हिंदी सचिवालय शीघ्र ही हिंदी से जुड़ी वैश्विक गतिविधियों को गति प्रदान करेगा और यह हिंदी से संबंधित वैश्विक कार्य-कलापों का सर्वप्रमुख केंद्र बन जाएगा।

मॉरीशस में ही भारत सरकार द्वारा पाणिनी भाषा प्रयोगशाला की स्थापना की गई है। इसके तहत कुल 34 कंप्यूटर टर्मिनल हिंदी शिक्षण के लिए मॉरीशस सरकार को उपहारस्वरूप दिए गए है। पाणिनी प्रयोगशाला आज मॉरीशस में हिंदी शिक्षण का एक बड़ा केंद्र बन गया है और स्थानीय नागरिक इससे यथोचित लाभ ले रहे हैं।

विदेश मंत्रालय में 'हिंदी सलाहकार समिति' गठित है, जिसके अध्यक्ष माननीय विदेश मंत्रीजी हैं। राजभाषा विभाग के दिशा-निर्देशों के अनुरूप देश में गठित नगर, राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अलावा विदेशों में भी मिशन प्रमुखों की अध्यक्षता में 'नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति' का गठन किया गया है। फिलहाल ये समितियाँ लंदन (युनाइटेड किंगडम), पोर्ट लुई (मॉरीशस), सिंगापुर, फिजी और दुबई (संयुक्त अरब अमीरात) में कार्यरत हैं। उक्त नगरों के सभी भारतीय कार्यालय इन समितियों के सदस्य हैं। इन समितियों के गठन का उद्देश्य हिंदी के उतरोत्तर एवं प्रगामी प्रयोग को प्रोत्साहित करना है।

हम सभी जानते हैं कि विदेश मंत्रालय विश्व-पटल पर हिंदी के प्रचार-प्रसार और दुनिया भर के हिंदी विद्वानों को एक मंच प्रदान करने के लिए विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन करता है। विश्व हिंदी सम्मेलन की परिकल्पना राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा 1973 में की गई थी।

परिणामस्वरूप पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 10-12 जनवरी, 1975 को नागपुर, भारत में आयोजित किया गया। विदेश मंत्रालय ने अलग-अलग देशों में 11 विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किए हैं। इस बार विदेश मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा फिजी सरकार के सहयोग से 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 15-17 फरवरी 2023 में फिजी में किया जा रहा है। लंबे समय से हिंदी यूनेस्को की आधिकारिक भाषा रही है। पिछले वर्ष 'विश्व हिंदी दिवस', 2022 के अवसर पर भारत स्थित 40 सूचीबद्ध यूनेस्को धरोहरों का विवरण हिंदी भाषा में यूनेस्को की आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड किया गया है।

सभी प्रबुद्ध पाठक जानते होंगे कि भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्थापक देश रहा है। संघ सरकार और भारत के हिंदी प्रेमियों की शुरुआत से यह अनवरत माँग रही है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की कामकाज की भाषा बनाई जाए। इसके अलावा, 1975 में नागपुर में आयोजित पहले विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन तक हिंदी विद्वानों की यह एक स्थायी सिफारिश रही है। विदेश मंत्रालय ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने संबंधी कार्य को हमेशा उच्च प्राथमिकता दी है।

फिलहाल संयुक्त राष्ट्र में 6 आधिकारिक भाषाएँ हैं, यथा अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, चीनी, स्पैनिश और अरबी। इनमें से पहली चार भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्य देशों की भाषाएँ हैं और अन्य दो भाषाएँ अर्थात् स्पैनिश और अरबी बहुत सारे देशों में बोली जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र में इन कामकाजी भाषाओं के अतिरिक्त किसी और भाषा को शामिल करने के लिए आम सभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से पारित एक संकल्प की लंबी प्रक्रिया को अंगीकार करना होता है। इस प्रक्रिया के बाद सबसे मुख्य अड़चन यह है कि किसी नई भाषा में सेवा प्रदान करने से संबंधित प्रावधानों अर्थात् न्यूयॉर्क, जेनेवा, वियना इत्यादि स्थित संयुक्त राष्ट्र के सभी कार्यालयों में प्रलेखन, अनुवाद, भाषांतरण, वरवेटम, रिपोर्टिंग, प्रिंटिंग और दुभाषियों आदि पर आनेवाले वित्तीय भार को प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों को बराबर अनुपात में वहन करना होता है, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र के अधिकांश सदस्य देश सहमत नहीं हो पाते है। तथापि, हिंदी भाषा की दृश्यता और स्वीकार्यता में वृद्धि करने के उद्देश्य से विदेश मंत्रालय ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं, जैसे—

1. संयुक्त राष्ट्र में एक आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को शामिल करने तथा इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने के लिए 8वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 13 जुलाई, 2007 को संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय, न्यूयॉर्क में आयोजित किया गया था, जिसमें संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन महासचिव श्री बान की मून ने भाग लिया। श्री मून ने सभा को 'नमस्ते' और 'मैं भी थोड़ा-थोड़ा हिंदी बोलता हूँ' से संबोधित किया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र में हिंदी भाषा ने वर्ष 2007 में ही दस्तक दे दी थी और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में पूर्णतः स्थापित करने का हमारा प्रयास जारी है।
2. दिनांक 29.03.2018 को न्यूयॉर्क स्थित भारत के स्थाई मिशन और भारत गणराज्य की सरकार के बीच स्वैच्छिक अंशदान से संबंधित करार संपन्न किया गया, जिसे 'हिंदी प्रोजेक्ट' का नाम दिया गया है। इस करार को क्रियान्वित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ की वेबसाइट

और सोशल मीडिया माध्यमों में हिंदी की विषय-वस्तु की मात्रा को बढ़ाया गया है, जिसकी पहुँच और लोकप्रियता में लगातार वृद्धि हुई है।

3. मंत्रालय के प्रयासों के अंतर्गत जून, 2018 से संयुक्त राष्ट्र 'यू.एन. रेडियो वेबसाइट' पर अपना कार्यक्रम हिंदी में भी प्रसारित कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'विश्व हिंदी दिवस' के उपलक्ष्य पर 10 जनवरी, 2019 को हिंदी समाचार वेबसाइट का शुभारंभ किया है। पिछले वर्षों में संयुक्त राष्ट्र ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए निम्नलिखित कार्य शुरू किए हैं—

i. यूएन की हिंदी वेबसाइट
ii. यूएन का हिंदी फेसबुक पेज
iii. यूएन का हिंदी ट्विटर अकाउंट
iv. यूएन का हिंदी इंस्टाग्राम पेज
v. साउंड क्लाउड पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन
vi. यू.एन. ब्लॉग (हिंदी में)
vii. यू.एन. न्यूज मोबाइल ऐप (Android और iOS) का हिंदी विस्तार।

4. संयुक्त राष्ट्र संघ से संबंधित सूचनाओं को विभिन्न सोशल मीडिया प्लेट्फार्मों; जैसे कि ट्विटर, इंस्टाग्राम एवं फेसबुक पर हिंदी में दिया जा रहा है। इन प्लेटफार्मों के हिंदी फोलोवर्स लगातार बढ़ रहे हैं। 02 दिसंबर, 2022 तक संयुक्त राष्ट्र हिंदी ट्विटर हैंडल के 46,300 फोलोवर्स हैं तथा संयुक्त राष्ट्र हिंदी इंस्टाग्राम के 28,400 फोलोवर्स हैं। संयुक्त राष्ट्र फेसबुक के वैश्विक पेज पर एक हिंदी पेज जोड़ा गया है, जिसकी पहुँच 60,80,867 लोगों तक है।

जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय राजनेताओं ने समय-समय पर संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित किया है। मैं यह उल्लेख करना प्रासंगिक समझता हूँ कि पूर्व विदेश मंत्रियों और पूर्व प्रधानमंत्रियों तथा वर्तमान प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र संघ में कई बार अपने संभाषण हिंदी में दिए हैं। इस प्रकार विदेश मंत्रालय हिंदी भाषा के साथ विश्व समुदाय का परिचय और संपर्क बढ़ाने का कार्य कर रहा है, जो हिंदी को एक महत्त्वपूर्ण वैश्विक भाषा बनाने के हमारे प्रयासों के अनुरूप है।

□

secyeast@mea.gov.in

सज्जनों का लक्षण यह है कि वे सदैव दयावान् और करुणाशील होते हैं।

—महाभारत

सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग है।

—प्रेमचंद

विश्व हिंदी सम्मेलन : नागपुर से नादी

—रवींद्र प्रसाद जायसवाल

हिंदी शताब्दियों से समन्वय और सम्मान की भाषा रही है। भारत के ऋषियों, संतों और कवियों की वाणी ने हमेशा विश्व-मानव की कल्पना की और विश्व को एक परिवार के रूप में देखा। इसीलिए, भारत में कभी कोई साम्राज्यवादी या विस्तारवादी परंपरा नहीं रही। भगवान् बुद्ध, स्वामी विवेकानंद और गांधीजी ने जो प्रेम, मैत्री एवं शांति का संदेश दिया, यही परंपरा भारत के सभी साहित्यकारों, कवियों एवं कलाकारों को अनुप्राणित एवं अनुप्रेरित करती रही है कि कैसे मनुष्य अपनी संकीर्णताओ से उपर उठकर शांतिमय, मैत्रीपूर्ण विश्व का निर्माण कर सके। नानक, कबीर, तुलसी, जायसी, रहीम, रसखान ने हिंदी का प्रयोग कर जन-जीवन को आध्यात्म के सूत्र में पिरोया। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन का उद्देश्य भारतवर्ष के इन्हीं संस्कारों को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना तथा विश्व बंधुत्व की भावना का विस्तार संपूर्ण विश्व में करना है।

1975 में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का भी उद्देश्य देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका बनाना था। 1936 में गांधीजी द्वारा स्थापित 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा ने सम्मेलन की परिकल्पना की। विनोबाजी और इंदिराजी से गहन चर्चा और उनकी स्वीकृति के उपरांत जब 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की घोषणा हुई, तो विश्व भर में फैले हिंदी जगत् की आशाएँ और आकांक्षाएँ जाग्रत् हो गईं। इसकी परिकल्पना ऐसे मंच के रूप में हुईं, जिस पर भारतीय तथा प्रवासी भारतीय अपने विचार रख सकें और विश्व भर में हिंदी की स्थिति पर चर्चा कर सकें।

सम्मेलन का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इसने भाषागत सद्भाव और सहयोग के नए युग का शुभारंभ किया, जिसमें हिंदी की अपेक्षित भूमिका स्पष्ट हुई कि वह अन्य भारतीय भाषाओं के साथ समन्वय, सद्भाव और सहयोग की अपने ऐतिहासिक दायित्व को पूरा करे। संपूर्ण हिंदी जगत् का जनमानस इस बात के लिए हर्षित था कि हिंदी के इस प्रथम अंतरराष्ट्रीय मंच पर हिंदी को राष्ट्रसंघ की एक मान्य भाषा बनाने की माँग की गई है।

यह पहली बार था कि हिंदी के माध्यम से दुनिया भर में फैले हुए लाखों प्रवासी भारतीयों और भारतवंशियों से भारत के जनमानस का भावात्मक एवं रागात्मक संबंध स्थापित हुआ। इस सम्मेलन में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड आदि भारतवंशी देशों से बड़ी संख्या में प्रतिनिधियों ने भाग लिया और उन्होंने स्पष्ट विचार

---

* विदेश मंत्रालय, भारत सरकार में संयुक्त सचिव।

व्यक्त किए कि भारत से उनका संबंध भाषा के कारण है। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक परंपराओं और विशिष्टताओं को हिंदी के माध्यम से सुरक्षित रखा है।

1975 से आरंभ हुए इस उत्सव ने 48 वर्ष की यात्रा में ग्यारह पड़ाव पार किए हैं। 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 15 से 17 फरवरी, 2023 को फिजी में आयोजित होना है। हर विश्व हिंदी सम्मेलन से पहले देश में इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रश्न उठते रहे हैं। अकसर पूछा जाता है कि इन सम्मेलनों का औचित्य क्या है ? इनसे हिंदी का क्या लाभ होता है ? क्या इतने व्यापक स्तर पर किए गए इन आयोजनों से हिंदी को कुछ मिला ? कोई इन्हें हिंदी का महाकुंभ कहता है, तो कोई महा आयोजन ! ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि भारत सरकार के ये आयोजन वास्तव में किस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। यह भी समझना आवश्यक है कि मेले और सम्मेलन में अंतर होता है।

नागपुर के मंच पर विश्व भर के भाषा भागीरथों ने उपस्थित होकर हिंदी की जिस निर्मल गंगा का आह्वान किया था, वह पुण्य सलिला भारत, मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सूरीनाम, न्यूयॉर्क, जोहान्सबर्ग के हिंदी प्रेमियों के अंतःस्थलों को शीतलता प्रदान कर 15 फरवरी, 2023 को फिजी पहुँच रही है। इस राह में प्रवासी भारतीयों और भारतवंशियों से संबंधों का सिंचन जहाँ एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, वहीं इसके साथ विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना, वैश्विक स्तर पर हिंदी पत्रिका का प्रकाशन, विश्व हिंदी सचिवालय की वेबसाइट की स्थापना, विश्व हिंदी दिवस का आयोजन, अनेक देशों में हिंदी पीठों की स्थापना और संयुक्त राष्ट्र में हिंदी का वृहत्तर उपयोग विश्व हिंदी सम्मेलनों की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

इन ग्यारह सम्मेलनों से हमें क्या मिला, इस पर सिलसिलेवार विचार करें तो हम पाएँगे कि वास्तव में सम्मेलनों ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार की दिशा में तो कार्य किया ही है, हिंदी को विश्व में पहले से कहीं प्रभावी ढंग से स्थापित किया है और हिंदी की लोकप्रियता व लोकोपयोगिता को इस तरह बढ़ाया है कि आज वह वैश्विक व्यापार की भाषा तो बनी ही है, साथ ही सूचना-प्रौद्योगिकी में अपनी दखल निरंतर बढ़ा रही है। इन आयोजनों की आभाव दमक हमारी युवा पीढ़ी को भी आकर्षित करती है। संभवतः इसी का ही परिणाम है कि वेब पर हिंदी कंटेंट का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। गूगल के अनुसार, हिंदी में सामग्री पढ़नेवाले हर वर्ष 94% की दर से बढ़ रहे हैं, जबकि अंग्रेजी में यह दर 19% है। और यही कारण है कि विश्व भर की कंपनियाँ चाहे वह अमेजन, फ्लिपकार्ट, ओएलएक्स, क्विकर या स्नैपडील हो, सब अपने ऐप और उत्पाद हिंदी में लॉन्च कर चुकी हैं। तो आइए सम्मेलनवार पारित प्रस्तावों का अवलोकन कर देखते हैं कि क्या वास्तव में हमें इनसे कुछ मिला है ?

एक विश्व एक मानव की भावना का संचार करने के उद्देश्य से आहूत प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन (10-14 जनवरी, 1975 नागपुर, भारत) में तीन प्रस्ताव पारित किए गए थे, यथा—(1) संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए; (2) वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो और (3) विश्व हिंदी सम्मेलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ठोस योजना बनाई जाए। इनमें से पहले प्रस्ताव पर हर सम्मेलन में चर्चा हुई और पारित भी हुआ है। आज की तारीख में उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हुई है, उसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। 1975 में हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि संयुक्त राष्ट्र सभा की विश्व

पंचायत में हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी के शब्द कभी बोले भी जाएँगे या नहीं ! तथापि न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र संघ मुख्यालय के सभागार में हुआ आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन इस प्रश्न का एक सटीक उत्तर है। यह विश्व हिंदी सम्मेलन के मंच से उठी माँग का ही परिणाम है कि हमारे पूर्व विदेश मंत्री और प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा स्वर्गीय श्री नरसिंह राव द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा को हिंदी में संबोधित किया गया और हमारे वर्तमान यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी द्वारा भी इस सभा को हिंदी में संबोधित किया जाता है। जून 2022 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने हिंदी भाषा से जुड़े भारत के प्रस्ताव को मंजूरी दी। इसके परिणामस्वरूप अब संयुक्त राष्ट्र के सभी जरूरी संदेश हिंदी में भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

प्रथम हिंदी सम्मेलन में हुए मंथन एवं पारित अन्य दो प्रस्तावों से हमें दो अमूल्य रत्नों की प्राप्ति हुई, एक वर्धा स्थित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, जिसकी स्थापना 'विश्व हिंदी विद्यापीठ' के रूप में हुई और दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलनों की सतत सलिला। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा ने कार्य करना आरंभ किया। यहाँ हिंदी को तकनीकी जानकारी और विविध व्यवसायों की संवाहक भाषा के रूप में विकसित करने पर भी बल दिया जा रहा है। इससे संदर्भित नए-नए पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। इस विश्वविद्यालय की मंशा है कि हिंदी माध्यम से ज्ञान के विभिन्न अनुशासन एवं परिक्षेत्र न केवल भारत में, अपितु विश्व जनमानस में अपनी गहरी पैठ बनाएँ और हिंदी विश्व-हृदय का हार बने। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय अपने स्वरूप में एक अनूठा विश्वविद्यालय है। विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों के मद्देनजर हिंदी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से और हिंदी को विश्वभाषा बनाने के मकसद से इस विश्वविद्यालय ने दो महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। विदेशों में विश्वविद्यालयों व संस्थाओं में हिंदी व हिंदी माध्यम से विभिन्न विद्याओं के अध्ययन व अनुसंधान के लिए यह विश्वविद्यालय समन्वयक की भूमिका निभाता है तथा विश्वभर के हिंदी पाठकों को भारतेंदु से लेकर अब तक के कॉपीराइट मुक्त महत्त्वपूर्ण हिंदी साहित्य को सुलभ कराने का बीड़ा इसने उठाया है। विश्वविद्यालय की वेबसाइट हिंदीसमयडॉटकॉम (hindisamay.com) पर उत्कृष्ट हिंदी साहित्य के पृष्ठ उपलब्ध हैं।

जैसा कि सम्मलेन की अनुशंसा रही इस विश्वविद्यालय को उच्च शिक्षा के एक अंतरराष्ट्रीय मंच के रूप में विकसित किया जा रहा है। हिंदी भाषा में भारतीय मूल्यों व परंपराओं के संवर्धन के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने तथा इसे इसी रूप में दुनिया के सामने स्थापित करने का अभियान विश्वविद्यालय द्वारा चलाया जा रहा है।

पिछले आठ विश्व हिंदी सम्मेलन तीन से चार वर्ष के नियमित अंतराल पर हुए हैं, इस दृष्टि से सम्मेलनों के आयोजन में स्थायित्व भी दृष्टव्य है।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन (28-30 अगस्त, 1976 मोका, मॉरीशस) में पारित हुए प्रस्तावों में मुख्य थे कि मॉरीशस में एक 'विश्व हिंदी केंद्र' की स्थापना की जाए, जो सारे विश्व में हिंदी की गतिविधियों का समन्वय कर सके और एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका का प्रकाशन किया जाए, जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके, जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे।

विश्व स्तर पर हिंदी से संबंधित गतिविधियों के समन्वयन के लिए एक संस्था की स्थापना के विचार ने मंतव्य का रूप धारण किया और

लगातार कई विश्व हिंदी सम्मेलनों में मंथन के बाद मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' स्थापित करने पर भारत और मॉरीशस सरकारों के बीच सहमति हुई। दोनों सरकारों के बीच समझौते पर हस्ताक्षर किए गए तथा मॉरीशस की विधान सभा में अधिनियम पारित किया गया। 11 फरवरी, 2008 को विश्व हिंदी सचिवालय ने आधिकारिक रूप से अपना कार्य आरंभ किया। सचिवालय का मुख्य उद्देश्य एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार करना तथा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए एक वैश्विक मंच तैयार करना है। सचिवालय वर्ष 2009 से नियमित रूप से 'विश्व हिंदी पत्रिका' और वर्ष 2018 से 'विश्व हिंदी साहित्य' का प्रकाशन कर रहा है। इनके साथ ही त्रैमासिक सूचना-पत्र विश्व हिंदी समाचार' का भी प्रकाशन होता रहा है।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन (28-30 अक्तूबर, 1983, नई दिल्ली, भारत) में 'विश्व हिंदी विद्यापीठ' की स्थापना पर और इस बात पर जोर दिया गया कि अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार की संभावनाओं का पता लगाकर इसके लिए गहन प्रयास किए जाएँ। विद्यापीठ की स्थापना के बाद से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के संबंध में प्रयास निरंतर जारी हैं।

मॉरीशस (02-04 दिसंबर, 1993) त्रिनिदाद एवं टोबेगो (04-08 अप्रैल, 1996) और यू.के. (14-18 सितंबर, 1999) में आयोजित चौथे, पाँचवें और छठे विश्व हिंदी सम्मेलनों में अधूरे संकल्पों पर पुनः चर्चा हुई, जो तत्समय पूर्ण रूप से साकार नहीं हो पाए थे, किंतु अब काफी हद तक पूरे हो चुके हैं। इसके साथ ही छठे सम्मेलन का एक प्रस्ताव था कि विदेशों में हिंदी के शिक्षण, पाठ्यक्रमों के निर्धारण, पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण, अध्यापकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था और सुदूर शिक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएँ। इस दिशा में प्रयास जारी हैं। साथ ही यह भी प्रस्ताव था कि हिंदी को सूचना तकनीक के विकास, मानकीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी लेखन, प्रसारण एवं संचार की अद्यतन तकनीक के विकास के लिए भारत सरकार एक केंद्रीय एजेंसी स्थापित करे। यद्यपि इस प्रयोजन से केंद्रीय एजेंसी की स्थापना तो नहीं हुई है, भारत सरकार का राजभाषा विभाग तथा सी-डैक जैसी संस्थाएँ हिंदी से जुड़ी तकनीक के विकास के लिए निरंतर गतिशील हैं। नई पीढ़ी में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए आवश्यक पहल का भी एक प्रस्ताव सामने आया था। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि आज की पीढ़ी सोशल मीडिया व तकनीक के माध्यम से हिंदी से उत्तरोत्तर जुड़ रही है। सोशल मीडिया, यूट्यूब आदि पर हिंदी प्रयोक्ताओं की संख्या बढ़ती जा रही है।

सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन (5-9 जून, 2003 पारामारिबो, सूरीनाम) की अनुशंसाओं में अन्यों के साथ-साथ शामिल था कि भारतीय मूल के लोगों के बीच हिंदी के प्रयोग के प्रभावी उपाय किए जाएँ और हिंदी विद्वानों की 'विश्व-निर्देशिका' का प्रकाशन किया जाए। 'विश्व हिंदी दिवस' का आयोजन हो। इन सभी दिशाओं में सार्थक प्रयास किए गए जिनके परिणामस्वरूप वर्ष 2006 से देश में और विदेशों में 'विश्व हिंदी दिवस' का आयोजन किया जा रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् तथा विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा विद्वानों की 'विश्व-निर्देशिका' का प्रकाशन भी ऑनलाइन डेटाबेस के रूप में किया गया है। इसी सम्मेलन के प्रस्तावस्वरूप कई विश्वविद्यालयों के हिंदी पाठ्यक्रम में विदेशी हिंदी लेखकों की रचनाओं को भी शामिल किया गया है।

13-15 जुलाई, 2007 को न्यूयॉर्क में आयोजित आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन इस दृष्टि से अभूतपूर्व था कि इसका उद्घाटन सत्र संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय के हॉल में आयोजित किया गया। उद्घाटन सत्र के बीच में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री बान-की-मून सभाकक्ष में पधारे। उन्होंने अपना संबोधन आरंभ करते हुए कहा— "नमस्ते क्या हाल-चाल है? मैं थोड़ा-थोड़ा हिंदी में बोलता हूँ। मैं जो कुछ हिंदी भारत में सीखा था, भूल गया हूँ, लेकिन आगे अच्छी हिंदी बोलने की कोशिश करूँगा। हिंदी भारत की सुंदर भाषा है, इस सम्मेलन में भाग लेते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। मैं सबको शुभकामनाएँ देता हूँ"। संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय में हिंदी की इस गूँज ने विश्व में हिंदी को एक नई पहचान दी। सम्मेलन का मुख्य विषय 'विश्व मंच पर हिंदी' था। हालाँकि इस आयोजन से यह कहीं सिद्ध नहीं होना था कि कल से ही हिंदी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बन जाएगी। वस्तुतः प्रतीक भी जीवन में महत्त्वपूर्ण होते हैं। किसी बालक के बालों में लगा छोटा सा मोरपंख एक साधारण से चेहरे को कृष्ण बना देता है। इसी प्रकार हमने संयुक्त राष्ट्र के दरवाजे पर दस्तक देकर हिंदी की धमक विश्व मंच पर तो पहुँचा ही दी।

सम्मेलन की अनुसंशाओं में यह भी शामिल था कि हिंदी में ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी विषयों पर सरल एवं उपयोगी हिंदी पुस्तकों के सृजन को प्रोत्साहित किया जाए। हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के प्रभावी उपाय किए जाएँ। एक सर्वमान्य व सर्वत्र उपलब्ध यूनिकोड को विकसित व सर्वसुलभ बनाया जाए। उल्लेखनीय है कि इस सम्मेलन की आधिकारिक वेबसाइट पहली बार पूरी तरह यूनिकोड में बनी, जो उस समय तक उपलब्ध नवीनतम तकनीक पर आधारित थी। आज देवनागरी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के लिए सर्वत्र यूनिकोड का प्रयोग किया जा रहा है। इसके साथ ही प्रस्ताव था कि हिंदी को साहित्य के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाई जाए। इस दिशा में भारत सरकार निरंतर प्रयासरत है। उच्च शिक्षा के लिए हिंदी को माध्यम बनाने की दिशा में सार्थक कार्य हो रहे हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में हिंदी माध्यम से शिक्षा भी आरंभ हुई है। हाल ही में केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने हिंदी में एम.बी.बी.एस. प्रथम वर्ष की तीन पुस्तकों का विमोचन किया।

22 से 24 सितंबर, 2012 को दक्षिण अफ्रीका में आयोजित नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन में अन्य संकल्पों के दोहराव के साथ एक प्रस्ताव था कि अनुवाद की महत्ता देखते हुए अनुवाद के विभिन्न आयामों के संदर्भ में अनुसंधान की आवश्यकता है, अतः इस दिशा में ठोस काररवाई की जाए। इस दिशा में राजभाषा विभाग ने सकारात्मक पहल करते हुए सीडैक, पुणे के सहयोग से स्मृति आधारित अनुवाद टूल कंठस्थ तैयार कराया है, जिसका लोकार्पण मॉरीशस में आयोजित ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में किया गया। तत्पश्चात उस पर निरंतर कार्य करने को प्रोत्साहित कर उसके स्मृतिकोश में 21 लाख से अधिक वाक्यों का संचयन किया गया। इसके बाद इसके उन्नयन की दिशा में कार्य करते हुए वर्ष 2022 में इसमें न्यूरल मशीन ट्रांस्लेशन को जोड़ा गया और 15 सितंबर, 2022 को कंठस्थ-2.0 का लोकार्पण किया गया। आज भारत के पास स्वदेश में विकसित अद्यतन अनुवाद प्रणाली है, जिसके प्रयोग से अंग्रेजी से हिंदी व हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद सरलता से किया जा सकता है।

पहले आठ सम्मेलन साहित्य, हिंदी शिक्षण,

हिंदी के वैश्वीकरण, मीडिया और अनुवाद पर केंद्रित रहे, नौंवा सम्मेलन पहला ऐसा सम्मेलन था, जो भाषा व तकनीक को समर्पित रहा। हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए आयोजित इस सम्मेलन में ऐसे विषयों का चयन किया गया, जिसमें वर्तमान समय में हिंदी भाषा के विस्तार की संभावनाएँ थीं। संचार एवं सूचना, प्रशासन, सूचना प्रौद्योगिकी, विज्ञान और विदेश नीति इसके कुछ विषय थे।

10 से 12 सितंबर, 2015 को भोपाल में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में अपने संबोधन में तत्कालीन विदेश मंत्री माननीया श्रीमती सुषमा स्वराजजी ने कहा था, "10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन ऐतिहासिक साबित होगा।" और वास्तव में ऐसा ही हुआ भी। सभा में विषयवार समस्याओं के निदान पर सुदीर्घ चिंतन हुआ और अनुशंसाओं के अनुपालन के लिए बिंदुवार काररवाई की गई, जिसके परिणामस्वरूप अब पासपोर्ट द्विभाषी रूप में जारी किए जाने पर काम किया जा रहा है, संधियों/करारों की हिंदी प्रतियों को मंत्रालय की वेबसाइट पर अपलोड किया जा रहा है। विश्व हिंदी सचिवालय अधिक सक्रिय हुआ है और विभिन्न देशों के हिंदी विद्वानों तथा अमेरिका में हिंदी सेवियों के सहयोग से कई परियोजनाएँ आरंभ की गई हैं, जिनमें 'अनन्य' पत्रिका और 'हिंदी से प्यार है' परियोजना शामिल है। 'हिंदी से प्यार है' परियोजना के अंतर्गत नवंबर 2021 से 2022 तक प्रत्येक दिन हिंदी साहित्य जगत् के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर का परिचय दिया गया, जिसे हिंदी स्वयंसेवियों द्वारा तैयार किया जा रहा था और स्वयंसेवी संपादकों के समूह द्वारा संचालित किया जा रहा था।

18-20 अगस्त, 2018 को मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति था। भारत के अलावा मॉरीशस ही दुनिया का एकमात्र देश है, जिसने तीसरी बार विश्व हिंदी सम्मेलन की मेजबानी की। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन का पहला सत्र भोपाल से मॉरीशस तक था, जिसमें 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित अनुशंसाओं पर की गई काररवाई से संबंधित एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन तकनीक और डिजिटल प्रकाशन को भी समर्पित रहा, इसमें राजभाषा विभाग द्वारा तैयार 'स्मृति आधारित अनुवाद प्रणाली' का लोकार्पण किया गया। सम्मेलन की अनुशंसाओं के अनुपालन में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों के माध्यम से डायस्पोरा देशों में भारतीय भाषाओं और संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन के लिए कार्य किया जा रहा है।

विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों से गुजरते हुए यह तो स्पष्ट है कि इन सम्मेलनों से हिंदी विश्व को कई उपलब्धियाँ हासिल हुईं, जिनसे वैश्विक धरातल पर हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हुई है और भारत व विश्व भर में फैले भारतवंशियों के बीच संबंध प्रगाढ़ हुए हैं। तो आइए, इस आशा के साथ बारहवें सम्मेलन का आगाज करें कि इस सम्मेलन के बाद हिंदी सही मायनों में विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

□

jshindi@mea.gov.in

परमात्मा से प्रार्थना है कि हिंदी का मार्ग निष्कंटक करें।

—हरगोविंद सिंह

न्यूजीलैंड में हिंदी की विकास यात्रा

—रोहित कुमार 'हैप्पी'

भारतीय विश्व भर में बसे हुए हैं। विश्व के हर कोने में पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टी.वी. और अनेक संस्थाएँ हिंदी के लिए काम कर रही हैं। न्यूजीलैंड में भी स्वाभाविक रूप से भारतीय अपनी भाषा एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। एक तथ्य न्यूजीलैंड को हिंदी जगत् में विशेष स्थान देता है, इस 50 लाख की जनसंख्यावाले छोटे से देश ने इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन दिया।

न्यूजीलैंड या आओटियारोआ (Aotearoa -न्यूजीलैंड का माओरी नाम) दक्षिण प्रशांत महासागर में स्थित एक छोटा सा देश है। न्यूजीलैंड की राजधानी वैलिंग्टन है तथा सबसे बड़ा शहर ऑकलैंड है। ऑकलैंड न्यूजीलैंड की वाणिज्य राजधानी है। न्यूजीलैंड तेजी से बहु-सांस्कृतिक समाज (Multi-cultural Society) के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है।

न्यूजीलैंड की जनसंख्या लगभग 50 लाख है। न्यूजीलैंड में अंग्रेजी और माओरी न्यूजीलैंड की आधिकारिक भाषाएँ हैं। यहाँ सामान्यतः अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है। यद्यपि अंग्रेजी न्यूजीलैंड में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है तथापि माओरी और न्यूजीलैंड सांकेतिक भाषा दोनों को औपचारिक रूप से न्यूजीलैंड की आधिकारिक भाषाओं के रूप में संवैधानिक तौर पर विशेष दरजा प्राप्त है। यहाँ के निवासियों को किसी भी कानूनी काररवाई में माओरी और न्यूजीलैंड सांकेतिक भाषा का उपयोग करने का अधिकार है।

2018 की जनगणना के अनुसार यहाँ भारतीयों की कुल जनसंख्या 2,25,414 है। जनसंख्या की दृष्टि से न्यूजीलैंड यूरोपियन (64.1 प्रतिशत), माओरी (16.5 प्रतिशत), चीनी (4.9 प्रतिशत) समुदाय के पश्चात् भारतीय (4.7 प्रतिशत) चौथा बड़ा समुदाय है। हिंदी न्यूजीलैंड में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में पाँचवें स्थान पर है।

यों तो न्यूजीलैंड की भारतीय पत्रकारिता का इतिहास 100 वर्ष पुराना है। भारतीय पत्रकारिता का अध्याय गुजराती व अंग्रेजी पत्रों से आरंभ होता है।

न्यूजीलैंड की एक शताब्दी पुरानी भारतीय पत्रकारिता में 25 वर्ष से भी अधिक का नियमित सहयोग हिंदी पत्रकारिता का भी है। नब्बे के दशक में न्यूजीलैंड में हिंदी पढ़नेवाले लोग तो थे, लेकिन कोई हिंदी का प्रकाशन नहीं था। भारतीय संस्कृति, भाषा व साहित्य को प्रचारित-प्रसारित करने का कोई सुदृढ़ माध्यम भी नहीं था। इसी को देखते हुए एक हिंदी पत्रिका के प्रकाशन की योजना अंकुरित हुई।

न्यूजीलैंड की हिंदी पत्रकारिता का अध्याय 1996 में 'भारत-दर्शन' पत्रिका के प्रकाशन से

---

* न्यूजीलैंड से प्रकाशित 'भारत-दर्शन' के संपादक।

आरंभ माना जाएगा। 1996 में आरंभ हुई यह पत्रिका शीघ्र ही विश्व-पटल पर 'हिंदी वेब पत्रकारिता' का नया इतिहास रचनेवाली थी। 1996 में भारत-दर्शन का प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित होकर आया और 1997 में 'भारत-दर्शन' का इंटरनेट संस्करण उपलब्ध करवाया गया। इसके साथ ही, इस पत्रिका को 'इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन' होने का गौरव प्राप्त हुआ।

यह बड़ा रोचक विषय है कि ऑनलाइन हिंदी वेब साहित्यिक-पत्रकारिता विदेश से आरंभ हुई। भारत-दर्शन का इंटरनेट संस्करण 1997 में आरंभ हुआ था। इसके अतिरिक्त वेब पत्रकारिता को आगे बढ़ानेवाली अन्य मुख्य पत्रिकाएँ भी विदेश की धरती से ही वेब पर आईं।

इंटरनेट पर दूसरी पत्रिका थी—'बोलोजी' जिसमें कुछ पृष्ठ हिंदी के होते थे, यह भी 1999 में अमरीका से प्रकाशित हुई। राजेंद्र कृष्ण इसका प्रकाशन करते थे।

'बोलोजी' के पश्चात् पूर्णिमा वर्मन द्वारा शारजाह से 'अभिव्यक्ति' (2000) का प्रकाशन आरंभ हुआ। पूर्णिमाजी ने अपने वेब-प्रकाशन की यात्रा 'बोलोजी' से आरंभ की थी और इस अनुभव की विकास-यात्रा का परिणाम 'अभिव्यक्ति' के रूप में स्थापित हुआ।

उपरोक्त तीनों वेब प्रकाशन 'साहित्यिक' थे और 'साहित्यिक पत्रकारिता' से जुड़े हुए थे।

अब यदि भारतीय वेब पत्रकारिता की चर्चा करें तो इसका आरंभ 1995 में अँग्रेजी समाचार-पत्र 'द हिंदू' से हुआ, लेकिन भारत में हिंदी वेब पत्रकारिता का उदय 1997 में दैनिक जागरण से हुआ और उसके बाद 1998 में अमर उजाला व दैनिक भास्कर ने वेब पर अपनी उपस्थिति दर्ज की। 1999 में वेब दुनिया और 2000 में नई दुनिया ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

वेब दुनिया एक पत्र-पत्रिका न होकर एक पोर्टल था, जिसमें अन्य साइट के लिंक्स इत्यादि भी थे यथा उसे भारत का पहला हिंदी पोर्टल कहा गया। तकनीकी तौर पर यदि कहा जाए कि भारत-दर्शन (1997) इंटरनेट पर पहला हिंदी प्रकाशन था, दैनिक जागरण (1997) पहला पत्र था और वेब दुनिया (1999) पहला पोर्टल था तो उचित होगा।

कुछ वर्षों के बाद बी.बी.सी. हिंदी जैसे मीडिया दिग्गजों ने भी वेब मीडिया की महत्ता को समझते हुए 2001 में अपना वेब संस्करण आरंभ किया।

यद्यपि न्यूजीलैंड से पहला हिंदी आलेख 1930 में 'विशाल भारत' के माध्यम से भारत में प्रकाशित हुआ था। उस समय न्यूजीलैंड में न तो हिंदी प्रकाशन की सुविधा थी और न ही पाठक वर्ग था। न्यूजीलैंड में नियमित हिंदी लेखन 90 के दशक से आरंभ होता है। यह 'द इंडियन टाइम्स' में 1992 में हस्तलिखित हिंदी रिर्पोर्टों के प्रकाशन से आरंभ होता है। यह समाचार-पत्र मूलतः अंग्रेजी में था, लेकिन कुछ समय तक इसमें आंशिक रूप में हिंदी का प्रकाशन होता रहा। इस समाचार-पत्र में रोहित कुमार हैप्पी और स्व. महेंद्र सी. विनोद (जो फिजी के समाचार-पत्र शांति दूत के संपादक भी रह चुके थे) की हस्तलिपि में रिपोर्ट और रचनाएँ प्रकाशित हैं। इसके पश्चात् 1996 में भारत-दर्शन के रूप में पूर्णकालीन हिंदी प्रकाशन आरंभ हुआ।

'90 के दशक में इंटरनेट के माध्यम से न्यूजीलैंड से कालजयी हिंदी साहित्य पाठकों को उपलब्ध करवाया गया। इंटरनेट के माध्यम से कबीर, सूर और तुलसी प्रचारित किए गए। कबीर के दोहों व प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों ने हजारों पाठकों की स्मृतियाँ ताजा कर दीं। आरंभिक दौर में भक्तिकालीन साहित्य के अतिरिक्त सुदर्शन की 'हार की जीत', रवींद्रनाथ टैगोर की 'काबुलीवाला', प्रेमचंद की 'सद्गति' जैसी कहानियाँ ऑनलाइन प्रकाशित की गईं। यशपाल की 'परदा', 'दुःख का अधिकार' व जैनेंद्र की 'पाजेब' जैसी कहानियाँ इंटरनेट के माध्यम से पाठकों तक पहुँचीं।

पत्रिकाओं की बात करें तो हिंदी की इस यात्रा

में 'भारत-दर्शन' के साथ कई अन्य पत्रिकाएँ आरंभ हुईं, किंतु वे अल्पजीवी ही रह पाईं। भारत-दर्शन के अतिरिक्त 1996 में कुछ समय के लिए 'शांति सरोवर' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसका संपादन स्व. एम.सी. विनोद शर्मा ने किया। स्व. एम.सी. विनोद शर्मा फिजी के साप्ताहिक पत्र 'शांतिदूत' के पूर्व संपादक थे। 'शांति सरोवर' की सामग्री अंग्रेजी में थी, लेकिन कुछ पृष्ठ हिंदी में थे। इसके बाद 2015 में कुछ समय तक 'गुलदस्ता' मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई। इसका संपादन नीलम मधु करती थीं। इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त कुछ हिंदी विद्यालय और संस्थाएँ भी अपनी वार्षिक पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं।

वर्तमान में भारत-दर्शन (द्वैमासिक) के अतिरिक्त धनक (वार्षिक), पहचान (त्रैमासिक) और अनन्य (मासिक) प्रकाशित हो रही हैं। पहचान और अनन्य का प्रकाशन 2022 में ही आरंभ हुआ है।

भारत-दर्शन का मानना है कि पत्रकारिता और लेखन केवल पठनीय सामग्री परोसने और मनोरंजन तक सीमित नहीं है। इसने नैतिक मूल्यों को भी बढ़ावा देने पर बल दिया। प्रकाशनार्थ सामग्री का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा कि सामग्री नैतिक मूल्यों पर खरी उतरती हो। इसका प्रयास है कि सत्साहित्य प्रकाशित हो, जिससे विचारों का प्रदूषण दूर हो और एक सुदृढ़ एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो।

न्यूजीलैंड ने न केवल हिंदी वेब में प्रतिनिधित्व किया, बल्कि ऑनलाइन हिंदी शिक्षण में भी नए कीर्तिमान स्थापित किए। वेब के शुरुआती दौर में ऑनलाइन हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की। न्यूजीलैंड में विकसित 'हिंदी टीचर' विदेशियों और विदेश में जनमे भारतीय बच्चों के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। '90 के दशक में अनेक देशों के विश्वविद्यालयों ने (जहाँ हिंदी पढ़ाई जाती थी) इस ऑनलाइन पद्धति का उपयोग किया। इस परियोजना को विश्व-स्तर पर सराहना मिली।

यह उन लोगों के लिए था जिनकी भाषा हिंदी नहीं या जो भारतीय विदेशों में पैदा हुए थे और वे हिंदी सीखना चाहते थे। इसके शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी रखा गया ताकि विदेशों में जनमे बच्चे व विदेशी इसका लाभ उठा सकें। '90 के दशक में यह तकनीक व प्रौद्योगिकी उपलब्ध करवाना अपने आप में एक उपलब्धि थी।

इस समय न्यूजीलैंड की कई संस्थाएँ अपने स्तर पर हिंदी सेवा में लगी हुई हैं। यहाँ हिंदी पठन-पाठन का स्तर व माध्यम अनौपचारिक और स्वैच्छिक रहा है। वैलिंगटन हिंदी स्कूल, वायटाकरे हिंदी स्कूल, दि लैंग्वेज एंड कल्चरल सोसाइटी ऑफ न्यूजीलैंड, भारतीय मंदिर, पूजा कल्चरल ट्रस्ट, भारतीय समाज, ऑकलैंड का पापाटोएटोए हाई स्कूल, कैंटरबरी हिंदी ट्रस्ट, साउथलैंड हिंदी स्कूल सक्रिय हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. टॉड नाचोवित्ज, डॉ. पुष्पा भारद्वाज वुड एवं सुमन कपूर हिंदी शिक्षण से जुड़े हुए हैं। वैसे स्वयंसेवी आधार पर हिंदी शिक्षण न्यूजीलैंड में दशकों से चल रहा है। ऑकलैंड में 1945 के आसपास पंडित अमीचंद द्वारा आरंभ हुआ था। इसके बाद '90 के दशक में ऑकलैंड के 'महात्मा गांधी सेंटर' में इंडियन एसोसिएशन में भी हिंदी की कक्षाएँ होती रही हैं।

भारत-दर्शन का भी प्रयास रहा है कि वह तकनीकी व प्रौद्योगिकी का उपयोग करके हिंदी शिक्षण में भी यथासंभव योगदान दे। विदेशों में सक्रिय भारतीय मीडिया भी इस संदर्भ में बी.बी.सी. व वॉयस ऑफ अमेरिका से सीख लेकर, उन्हीं की तरह हिंदी के पाठ विकसित करके उन्हें अपनी वेबसाइट व प्रसारण में जोड़ सकता है। बी.बी.सी. और वॉयस ऑफ अमेरिका अंग्रेजी के पाठ अपनी वेबसाइट पर उपलब्ध करवाने के अतिरिक्त इनका प्रसारण भी करते हैं।

न्यूजीलैंड का उच्चायोग यथासंभव हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी अहम भूमिका निभाता

आया है। उच्चायोग शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध करवाने, हिंदी से संबंधित सूचनाओं के आदान-प्रदान, स्थानीय संस्थाओं व भारतीय सरकार के बीच संवाद स्थापित करने और हिंदी के आयोजनों में अपनी भागीदारी करता है। अपने कार्यकाल के दौरान कई भारतीय उच्चायुक्त व्यक्तिगत तौर पर भी हिंदी को प्रोत्साहित करते रहे हैं।

ऑकलैंड में 2017 में भारत का वाणिज्य दूतावास खुलने पर मानद कौंसल भाव ढिल्लो संस्थाओं और सरकार के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। वे हिंदी आयोजनों में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

वैलिंगटन का हिंदी विद्यालय कई वर्षों से उच्चायोग के सहयोग से हिंदी पोस्टर और निबंध प्रतियोगिताएँ आयोजित करता आ रहा है।

भारत-दर्शन '90 के दशक से भारतीय उच्चायोग का सशक्त सहयोगी रहा है। 1997 में भारत के स्वतंत्रता स्वर्ण जयंती समारोह, फिल्म उत्सव, प्रदर्शनी व सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं।

भारत के अमृत महोत्सव के अंतर्गत भारत दर्शन ने ऑनलाइन हिंदी उत्सवों का आयोजन किया जिसमें भारत के उच्चायोग, विश्व हिंदी सचिवालय, वैश्विक हिंदी परिवार और अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद् की सहभागिता रही।

भारत के उच्चायोग और भारत दर्शन ने पिछले वर्ष न्यूजीलैंड में 'माओरी की 101 कहावतें' पुस्तक का साझा प्रकाशन किया।

न्यूजीलैंड से अनेक विश्वस्तरीय वेबसाइट्स संचालित हो रही हैं और नए-नए प्रयोग भी हो रहे हैं।

यहाँ से 'कहत-कबीर' नामक साइट पर कबीर का समग्र साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें मुद्रित सामग्री, चित्र व वीडियो सम्मिलित होंगे। कबीर की जीवनी, उनके दोहे, भजन व प्रचलित किंवदंतियाँ प्रकाशित की जा चुकी है। निरंतर इसमें और सामग्री सम्मिलित की जा रही है।

ऑनलाइन इ-पुस्तकालय विश्वभर में बसे हिंदी-प्रेमियों को पुस्तकें व इ-पुस्तकें उपलब्ध करवाने की योजना पर काम किया जा रहा है, जिससे हिंदी का प्रचार और तेजी से हो सके। 'ऑनलाइन डिजिटल पुस्तकालय' (https://ebooks.bharatdarshan.co.nz/) में पुस्तकों को 'डेस्कटॉप' पर 'फ्लिप बुक' के तौर पर पढ़ा जा सकता है और यदि इसे मोबाइल पर खोला जाए तो इसका 'फॉरमैट' ईपब (ePub) बन जाएगा, जो सरलता से पढ़ा जा सकता है। यह पुस्तकालय अपनी तरह का इकलौता ऑनलाइन पुस्तकालय है। इसमें डेस्कटॉप और मोबाइल के लिए स्वचालित भिन्न प्रणाली और तकनीक का उपयोग किया गया है।

हिंदी शोध और प्रयोग—यह एक ऐसी वेबसाइट है, जिसमें हिंदी में हो रहे नए-नए शोध और प्रयोगों का उल्लेख किया जाता है। हिंदी में विकसित हो रही नवीनतम तकनीक पर चर्चा की जाती है व शोध-पत्र उपलब्ध करवाए जाते हैं।

'वाणी से टंकण' में आप बोलकर 'विराम चिह्नों' सहित हिंदी टाइप कर सकते हैं। इसमें बोलकर टाइप करने के पश्चात् आप इसे कॉपी-पेस्ट कर सकते हैं, एम.एस वर्ड फाइल के रूप में 'सेव' कर सकते हैं और इसे कहीं भी इ-मेल भी कर सकते हैं। यह डेस्कटॉप संस्करण और एप के रूप में उपलब्ध है।

निस्संदेह प्रवासी भारतीय जहाँ भी बसे हैं, वहाँ अपनी भाषा, संस्कृति व साहित्य का प्रचार कर रहे हैं। हम सब हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत हैं। अब हमें अपने निजी प्रयासों को एक नया रूप देते हुए संयुक्त प्रयास आरंभ करने चाहिए। वैश्विक ग्राम (Global Village) के आज के इस समय में यह सब संभव है। हम सबके संयुक्त प्रयासों से ही हिंदी आगे बढ़ेगी।

□

editor@bharatdarshan.co.nz

बुल्गारिया और हिंदी

—आनंद वर्धन

विश्व के प्रत्येक देश की एक भौगोलिक सीमा होती है। ठीक इसी तरह दुनिया की हर भाषा का एक भौगोलिक वृत्त होता है। यह वृत्त छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी, किंतु कुछ भाषाएँ ऐसी हैं जिनका भौगोलिक वृत्त अपने क्षेत्र, प्रदेश और देश की सीमाओं से परे भी बन जाता है जिसे जानने-समझनेवाले, बोलनेवाले और लिखनेवालों का वृहद् संसार है। हिंदी भाषा ऐसी ही भाषा है, जिसकी उपस्थिति दुनिया के शताधिक देशों में है। यद्यपि यह भारत की राजभाषा है, किंतु भारत के अनेक राज्यों की भाषा होने के साथ ही गैर-हिंदी प्रदेशों में भी लोग इसका व्यवहार करते हैं। भारत से बाहर अन्य अनेक देशों में हिंदी व्यवहृत होती है। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख है अन्य देशों में भारतीयों का प्रवासन और आप्रवासन।

प्रवासी भारतीयों और भारतीय मूल के लोगों की उपस्थिति के कारण हिंदी उन देशों में आम बोलचाल में व्यवहार में लाई जा रही है। वह बाजार और व्यवसाय में व्यवहृत हो रही है तथा अन्य सामाजिक कार्यों में भी लोग उसका उपयोग कर रहे हैं। मनोरंजन की दृष्टि से दृश्य और श्रव्य माध्यमों यथा हिंदी में निर्मित रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रमों और हिंदी फिल्मों का आनंद उठा रहे हैं और साहित्य की बात करें तो अनेक देशों में रचनाकार हिंदी में रचनाएँ लिख रहे हैं और हिंदी की पत्रिकाओं और इ-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हो रहा है।

अन्य देशों में हिंदी के लोकप्रिय होने का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है—भारतीय वाङ्मय, साहित्य, संस्कृति और परंपरा व समाज को जानने की जिज्ञासा।

भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत का संपूर्ण विश्व मुरीद है। यहाँ के वैदुष्य, विविधता और सुंदरता ने दुनिया भर के लोगों को सदा आकर्षित किया है और अतीत से लेकर अब तक यह आकर्षण कायम है।

भारत के विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों को जानने-समझने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में भारत विद्या विभाग या भारत शास्त्र विभाग कार्यरत हैं। ऐसा ही एक देश पूर्वी यूरोप में स्थित है, जिसे हम बल्गारिया के नाम से जानते हैं, जहाँ के सोफिया विश्वविद्यालय में भारत विद्या का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया जा रहा है। बल्गारिया यूरोप का पूर्वी द्वार भी है। यह सुंदरता से भरा हुआ एक ऐसा देश है, जहाँ

---

* मानव विकास संसाधन केंद्र काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के निदेशक।

एक ओर उत्तर से लेकर दक्षिण तक काले सागर की नीली लहरें नर्तन करती हैं तो वहीं दूसरी ओर वितोषा पर्वत की हिमाच्छादित चोटियाँ पूरी दुनिया को अपने सौंदर्य से अभिभूत करती हैं। ऐसे खूबसूरत देश बल्गारिया के भारत से हमेशा अत्यंत प्रगाढ़ संबंध रहे हैं। भारत और बल्गारिया के राजनयिक संबंध तो प्रगाढ़ हैं ही साथ ही दोनों देशों के मध्य पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सुदीर्घ परंपरा भी देखने को मिलती है।भारत और बल्गारिया दोनों देशों की सभ्यता अत्यंत प्राचीन और गरिमामय है और दोनों देशों को अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व है।

यों तो दोनों देशों के बीच राजनयिक संबंध सन् 1954 में स्थापित हुए, किंतु इसकी जड़ें हमें आठवीं शताब्दी ईसवी सन् में मिलती हैं। निर्विवाद रूप से भारतीय मेधा से सभी प्रभावित रहे हैं। बल्गारिया भी इससे अछूता नहीं है। यद्यपि भारत और बल्गारिया के संबंध शताब्दियों पुराने हैं, किंतु जब भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 में हुआ तो बल्गारिया के क्रांतिकारी इतिहासकार ग्योर्गी राकोव्स्की ने उससे प्रभावित होकर अपनी सहानुभूति भारत के लोगों के प्रति प्रदर्शित की। ग्योर्गी राकोव्स्की का मानना था कि संपूर्ण यूरोप की सांस्कृतिक जड़ें भारतीय संस्कृति में ही विद्यमान हैं। भाषा को लेकर भी उनका यही विचार था। इसके बाद भारत और बल्गारिया के आत्मीय संबंध हमें तब देखने को मिले जब रवींद्रनाथ टैगोर को सन् 1913 में नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद टैगोर की अनेक रचनाओं का अनुवाद बल्गारियाई भाषा में हुआ और सन् 1926 में जब टैगोर बुल्गारिया आए तो उनका अभूतपूर्व स्वागत बल्गारिया में हुआ।

सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के बाद जब शेष दुनिया से उसके पारस्परिक संबंध नए रूप में स्थापित होने लगे तो भारत की संस्कृति और भाषाओं के प्रति भी अनेक देशों की रुचि जागृत हुई। बल्गारिया में साठ के दशक में हिंदी का अध्यापन शुरू हुआ। आरंभिक तौर पर यहाँ सन् 1966 से हिंदी पढ़ाई जाने लगी और अनेक अतिथि प्राध्यापक सन् 1966 से लेकर वर्तमान तक यहाँ हिंदी अध्यापन के लिए आए। बल्गारिया में सोफिया विश्वविद्यालय के शास्त्रीय और आधुनिक भाषाशास्त्र संकाय के अंतर्गत पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों के केंद्र में भारत विद्या विभाग में हिंदी विषय का अध्यापन भारत अध्ययन के अंतर्गत किया जाता है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने यहाँ भारत विद्या के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। सन् 1982 में श्रीमती बोयानोवा ने हिंदी का अध्यापन सोफिया विश्वविद्यालय में आरंभ किया। सन् 1984 में पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों के केंद्र में सोफिया विश्वविद्यालय में भारत विद्या विभाग की विधिवत् स्थापना हुई और बल्गारिया में उच्च शैक्षणिक स्तर पर हिंदी और भारतीय संस्कृति का अध्यापन आरंभ हुआ। तब से निरंतर यह विभाग हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन व प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रोफेसर एमिल बोएव, जो पूर्वी भाषा और संस्कृतियों के अध्ययन केंद्र के संस्थापक थे, ने व्यावहारिक हिंदी के विभिन्न पाठ्यक्रमों को योजनाबद्ध तरीके से लागू करने में बहुत सहायता की थी।

हिंदी के प्रचार-प्रसार का जो कार्य यहाँ शुरू हुआ, उसमें विदेश मंत्रालय के अधिकारी और हिंदी के जानकार श्री द्रागोवेस्त गोरानोव और श्री बोरिस्लाव कोस्तोव ने भी सहयोग किया और अध्यापन कार्य भी किया, जो बाद में स्वयं भारत में बल्गारिया के राजदूत बनकर गए। यह हिंदी के

लिए सम्मान की बात है। क्रमशः यहाँ अध्यापकों की संख्या बढ़ती गई और हिंदी का अध्यापन सुचारु रूप से आगे बढ़ सका। यहाँ अध्ययन कर चुके कुछ विद्यार्थी विदेश विभाग में भी काम कर रहे हैं और कुछ बल्गारिया में और अन्य देशों में भी हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

यहाँ अध्यापनरत कई अध्यापक किसी-न-किसी भारतीय संस्थान या परियोजना के अंतर्गत अध्ययन कर चुके हैं। इनमें से अनेक को हिंदी जगत् से जुड़े सम्मानों से सम्मानित भी किया जा चुका है। इनमें प्रमुख हैं सुश्री वान्या गांचेवा, प्रो. मिलेना ब्रातोएवा, डॉक्टर गलीना सोकोलोवा आदि। यहाँ हिंदी का अध्यापन कर रहे अध्यापक देश-विदेश में आयोजित होनेवाली संगोष्ठियाँ-कार्यक्रम और परिसंवाद, जो हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित होते हैं, में निरंतर भाग लेते हैं और अपने ज्ञान का विस्तार भी करते चलते हैं। हिंदी और भारत के प्रति इनका जो लगाव है, वह अप्रतिम है।

सोफिया विश्वविद्यालय में तो हिंदी का अध्यापन होता ही है, इसके अतिरिक्त यहाँ सन् 1997 में पूर्व पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना भी हुई जिसकी अध्यक्ष श्रीमती योरदांका बोयानोवा हैं, जो हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के कार्य में तन-मन-धन से समर्पित होकर कार्य कर रही हैं। सोफिया विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद श्रीमती योरदांका बोयानोवा ने इस प्रतिष्ठान की स्थापना की। इसके द्वारा निरंतर कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, जो मील के पत्थर साबित हुए हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रतिष्ठान पूरी तरह गैर-सरकारी है। विश्व हिंदी दिवस के आयोजनों में भी पूर्व-पश्चिम न्यास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। पूर्व-पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान द्वारा हिंदी की सांध्यकालीन नियमित कक्षाएँ उन लोगों के लिए आयोजित की जाती हैं, जो कहीं-न-कहीं कार्यरत हैं, पर हिंदी सीखना चाहते हैं। इन अध्येताओं की बाकायदा परीक्षा भी होती है। इस प्रकार सोफिया विश्वविद्यालय का भारत विद्या विभाग और पूर्व-पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान निरंतर हिंदी के माध्यम से भारत और बुल्गारिया के पारस्परिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में सेतु की भूमिका निभा रहा है। यह भी उत्साहजनक है कि पूर्व पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान के सहयोग से विभाग के अध्यापकों ने बल्गारियाई विद्यार्थियों के लिए उच्च हिंदी शिक्षण नाम से पुस्तकें भी तैयार की हैं, जो अलग-अलग कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हैं और उनकी सहायता से विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन करते हैं।

सोफिया में स्थापित इंदिरा गांधी स्कूल में भी हिंदी भाषा का अध्यापन माध्यमिक कक्षाओं में किया जाता है। भारतीय राजदूतावास के सहयोग से इस विद्यालय में हिंदी के कार्यक्रम होते रहते हैं। बल्गारिया में हिंदी की फिल्में भी लोकप्रिय हैं, जो हिंदी भाषा को विस्तार देने का काम कर रही हैं। अनेक नायक, नायिकाएँ जो हिंदी सिनेमा के परदे पर सक्रिय हैं, उनसे यहाँ के लोग भलीभाँति परिचित हैं। इसी प्रकार भारतीय खानपान, भारतीय योग-परंपरा और आयुर्वेद के प्रसार ने भी प्रकारांतर से हिंदी के विस्तार में योगदान दिया है। पूर्व-पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान द्वारा यहाँ 40 से अधिक हिंदी फिल्मों का बुल्गारियाई भाषा में अनुवाद भी कराया जा चुका है और इन हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन भी होता है। हिंदी के अनेक टी.वी. सीरियल यहाँ लोकप्रिय रहे हैं, जैसे बालिका वधू, उतरन आदि। वर्तमान में भी हिंदी के सीरियल नियमित रूप से प्रसारित किए जाते

हैं जिन्हें बल्गारिया की बुजुर्ग महिलाएँ बड़ी रुचि से देखती हैं।

यहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी अध्ययन के साथ-साथ अनुवाद का कार्य भी बड़े मनोयोग से करते हैं। अब तक यहाँ हिंदी की अनेक कविताओं, कहानियों और उपन्यासों आदि का बुल्गारियाई भाषा में अनुवाद किया जा चुका है। हिंदी की जिन रचनाओं के अनुवाद किए गए हैं, उनमें प्रमुख हैं—अज्ञेय की 'अपने-अपने अजनबी' और 'शेखर : एक जीवनी', निर्मल वर्मा की 'परिंदे', कमलेश्वर की 'नीली झील' व 'कितने पाकिस्तान', जैनेंद्र की 'सुनीता' आदि। सन् 1998 में भारतीय दूतावास के सहयोग से 'मयूर के पंख' शीर्षक से एक संकलन प्रकाशित किया गया।

इसी प्रकार सोफिया विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों के केंद्र के 20 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर सन् 2004 में सोफिया विश्वविद्यालय में एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर एक ग्रंथ का प्रकाशन किया गया 'पूर्व का नया चेहरा', जिसमें अन्य भाषाओं के साथ अनेक नामचीन भारतीय रचनाकारों की अनूदित रचनाएँ सम्मिलित की गईं। एक अन्य संकलन 'समय के नृत्य में' भी हिंदी की रचनाओं के बुल्गारियाई अनुवाद प्रकाशित किए गए हैं।

अनेक बुल्गारियाई रचनाओं का अनुवाद भी हिंदी में किया गया है, जो दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक और साहित्यिक संवाद स्थापित करने की एक अच्छी पहल है।

भारत विद्या विभाग ने हिंदी और बल्गारिया भाषा का एक कोश तैयार करने में भी रुचि दिखाई है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह भी है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में भारत सरकार के उपक्रम भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के महत्त्वपूर्ण योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा हिंदी के अध्यापकों का चयन कर उन्हें विश्व के अनेक देशों में हिंदी के अध्यापन के लिए भेजा जाता है। बल्गारिया का सोफिया विश्वविद्यालय भी इस योजना से लगातार लाभान्वित होता रहा है। यहाँ अध्यापन करने आए अतिथि प्राध्यापकों ने भी बल्गारियाई रचनाकारों की अनेक रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया और बल्गारिया को केंद्र में रखकर और बल्गारिया के विषय में भी लिखा। हाल ही में प्रो.गाबृएला निक और प्रो. आनंद वर्धन ने बल्गारिया की 29 सुविख्यात कवयित्रियों की 100 कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया है। प्रख्यात बाल साहित्यकार डॉक्टर श्रीप्रसाद ने भी अपने तीन महीनों के बल्गारिया प्रवास के दौरान 'बनारस से बल्गारिया—मेरी डायरी' लिखी। यह रोचक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है, जो बल्गारिया के बारे में अच्छी जानकारी देती है।

सोफिया स्थित भारतीय दूतावास ने भी इस दिशा में सदैव सकारात्मक रुख अपनाया है। भारत विद्या विभाग और भारत के राजदूतावास के सहयोग से सन् 2006 में एक पत्रिका 'मैत्री' का शुभारंभ किया गया था, जिसके छह अंक निकले थे, जिनका संपादन भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की हिंदी पीठ पर पदस्थ प्रो.आनंद वर्धन ने किया था। वर्तमान में भारतीय दूतावास के राजदूत श्री संजय राणा के प्रयास और विदेश मंत्रालय के सहयोग से पुनः 'मैत्री' पत्रिका प्रकाशित की गई है। भारतीय स्वतंत्रता के 75 साल पूरे होने के अवसर पर दूतावास के समर्थन और पूर्व-पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान के सहयोग से हिंदी के 25 कवियों की 75 कविताओं का बल्गारियाई अनुवाद कराया जा रहा है।हिंदी के कार्यक्रमों के

आयोजन में दूतावास का सक्रिय सहयोग हमेशा मिलता रहता है। हिंदी दिवस और विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रमों और हिंदी से संबंधित प्रतियोगिताओं में भारतीय और बल्गारिया मूल के व्यक्ति मनोयोग से भाग लेते हैं, जिन्हें दूतावास द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

एक बार हवाई अड्डे से अपने घर आने के लिए जब मैंने टैक्सी पकड़ी और चालक को बताया कि मुझे द्रुश्बाद्वे जाना है तो उसने मुझसे हिंदी में कहा, द्रुश्बा दो में ? मुझे आश्चर्य हुआ, मैंने उससे पूछा है कि क्या आपको हिंदी आती है? उसने कहा, हाँ। जब मैंने पूछा कि आपने हिंदी कहाँ पढ़ी तो उसने कहा, अपने एक पड़ोसी से, जो भारतीय थे। मैं उन्हें बल्गारियाई सिखाता था और वे मुझे हिंदी।

इसी प्रकार आईटेक कार्यक्रम के अंतर्गत भारत जा चुके कोस्तायोसीफोव से एक कार्यक्रम में मुलाकात होने पर उन्होंने पूछा, ''आप कैसे हैं?" और उनके उच्चारण को सुनकर जब मैंने उनसे पूछा, ''आपने हिंदी कैसे सीखी?" तो उन्होंने बताया कि ''मैं आठ बार भारत जा चुका हूँ और बार-बार जाना चाहता हूँ और केवल वहाँ सुन-सुनकर ही मैंने हिंदी सीखी है।"

ठीक ऐसे ही सोफिया के एक भारतीय रेस्टोरेंट के मालिक दिमितर ने भी अपने भारतीय प्रवास के दौरान हिंदी सीखी। वेलिको तरनोवो शहर में रहनेवाली वेंत्सेस्लावा उजोनोवाकी हिंदी के प्रति रुचि ने उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। मेरी एक वयोवृद्ध छात्रा क्रासा, जो साठ साल से अधिक आयु की हैं, से जब मैंने पूछा कि इस उम्र में आप हिंदी क्यों पढ़ रही हैं तो उन्होंने कहा कि ''मुझे बचपन से ही हिंदी सिनेमा गीत बहुत अच्छे लगते थे, पर हिंदी सीखने की इच्छा अब पूरी हो सकी।" मेरा अगला प्रश्न था, तो आप भारत जाना चाहती हैं ? जिसके जवाब में क्रासा ने कहा कि मैं तो आप जैसे अध्यापकों में ही भारत देख लेती हूँ।" बल्गारिया की बुजुर्ग पीढ़ी को आज भी 'हाथी मेरे साथी', 'श्री 420', 'आवारा' और 'मेरा नाम जोकर' के गीतों की धुन याद है।

सचमुच हिंदी के अध्येताओं से लेकर हिंदी-प्रेमियों द्वारा किए गए प्रयासों को देखकर बल्गारिया में हिंदी के प्रसार के प्रति आश्वस्ति का भाव जागृत होता है।

□

anandsharma_64@yahoo.co.in

हिंदी का काम देश का काम है, समूचे राष्ट्र निर्माण का प्रश्न है।

—बाबूराम सक्सेना

हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।

—वी. कृष्णस्वामी अय्यर

यूरोप में हिंदी की स्थिति एवं उपस्थिति
(नीदरलैंड्स, डेनमार्क, बेल्जियम, हंगरी)

—विश्वास दुबे

मैं पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से यूरोप के विभिन्न देशों में रहा हूँ, कई देश घूमे हैं और हर देश में हिंदी के अलग स्वरूप को देखा, समझा है।

जिस तरह प्रवासी को अपने देश से निकलकर एक नए देश में अनेक अवरोधों के बीच आगे बढ़ना पड़ता है और खुद को स्थापित करना होता है, उसी तरह भाषा भी नई जमीन और नए देश में अपनी जगह तलाशती है। जैसे-जैसे भाषा को चाहनेवाले उन अवरोधों को हटाकर भाषा का मार्ग सुगम करते हैं, वैसे-वैसे किसी भाषा के प्रचार-प्रसार की राह सुनिश्चित होती है।

यूरोप में हिंदी की स्थिति सब जगह एक-सी नहीं है। जैसी जिस देश की परिस्थिति, हिंदी भाषा के प्रसार का वैसा विविध रूप।

यूरोप के देशों में वहाँ बसे भारतीयों की जनसंख्या के आधार पर हिंदी संपर्क भाषा बनी है और उसके अनुसार ही हिंदी का प्रसार हुआ है। फिर यह भी है कि अपनी जनसंख्या के आधार पर भारतीय और भारतवंशी जितना प्रतिनिधित्व अपने देश की सरकार में ले पाते हैं, उसी अनुपात में वे हिंदी को उठाने की बात कर पाते हैं। रोजमर्रा के जीवन में भाषा का प्रसार यूनिवर्सिटी और स्कूलों में नहीं, घरों, सड़कों और बाजारों में उसके उपयोग पर निर्भर करता है।

डेनमार्क में मेरे प्रवास के दौरान मैंने पाया कि हिंदी अधिकांशतः प्रवासी भारतीयों के बीच ही प्रचलित थी, हालाँकि उसके अलावा कई अफगानी व्यवसायी, जो वीडियो पार्लर / लाइब्रेरी चलाते थे, वे हिंदी फिल्में भी रखते थे और खुद भी उर्दू मिश्रित हिंदी बोलते थे। अन्य देशों के नागरिक जैसे—चीनी, अफ्रीकन, श्रीलंकन इत्यादि भी हिंदी फिल्में उनसे लेते थे और सबटाइटल के साथ हिंदी फिल्में देखते थे।

समय के साथ जो विदेशियों का झुकाव हिंदी की ओर बढ़ा है, इसमें बॉलीवुड का अहम योगदान है। कई देशों में टेलीविजन तथा सिनेमाघरों में बॉलीवुड की फिल्में दिखाई जाती हैं, हिंदी धारावाहिक भी दिखाए जाते हैं, जिन्हें अकसर डब करके दिखाया जाता है। इन धारावाहिकों और फिल्मों की वजह से यहाँ के लोगों की भारतीय संस्कृति में रुचि बढ़ी है तथा उसको जानने की उत्सुकता भी बढ़ी है और किसी भी देश की संस्कृति को जानने के लिए वहाँ की भाषा को जानना बहुत

---

* सूचना प्रौद्योगिकी (नीदरलैंड) के निदेशक।

जरूरी है। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि कई देशों के लोग हिंदी में रुचि लेते हैं। केबल टी.वी. और इंटरनेट के इस जमाने में हिंदी टी.वी. चैनल्स दिखानेवाले कई प्लेटफॉर्म्स जैसे यप्प, चित्रम इत्यादि यूरोप में काफी प्रचलित हैं।

मेरे डेनमार्क प्रवास के दौरान, उस समय डेनमार्क में हिंदी सिखानेवाले लगभग 2-3 शिक्षक हुआ करते थे, जो आज लगभग 20 से ज्यादा हैं। लगभग यही स्थिति बेल्जियम, जर्मनी, हंगरी आदि देशों में भी है, जहाँ हिंदी भाषा सिखानेवाले शिक्षकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है।

कॉन्टिनेंटल यूरोप के अधिकतर देश अपनी खुद की भाषा पर बल देते हैं और हिंदी को भी अंग्रेजी के समकक्ष मानते हैं। किसी भाषा के प्रचार-प्रसार में यह भी जरूरी है कि वह उस देश के साहित्य में कितनी पैठ या जड़ स्थापित कर पाती है। नीदरलैंड्स के लायीडेन विश्वविद्यालय में डच विद्वानों ने हिंदी साहित्य पर अनेक लेख लिखकर हिंदी साहित्य की जड़ें स्थापित करने का काम किया। भारत से भी हिंदी के साहित्यकार और विद्वान् यहाँ आमंत्रित किए गए। प्रेमचंद की 'सप्त सरोज' का हिंदी से डच में अनुवाद किया गया था। भारतीय साहित्यकार और महापुरुष यहाँ आते रहे, जैसे रवींद्रनाथ टैगोर, महर्षि जोगी आए, जिससे भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रति लोगों की रुचि रही। कहते हैं कि आजाद हिंद फौज के सैनिक भी यहाँ आकर रहे थे।

नीदरलैंड्स में मुझे लगभग 6 साल हो गए हैं और मैंने हर गुजरते साल के साथ, हिंदी को यहाँ फलते-फूलते देखा है।

नीदरलैंड्स में हिंदी की स्थिति को समझने से पहले यह समझना होगा कि यह देश एक मामले में अनूठा है—नींदरलैंड्स में हिंदी के प्रसार की दो धाराएँ हैं—एक, जो भारतवंशी संभाले हैं और एक, जो प्रवासियों ने संभाला है। यहाँ भारी संख्या में भारतवंशी हैं—'सूरीनामी।' लगभग 180,000 से ज्यादा भारतवंशी सूरीनामी नीदरलैंड में रहते हैं और जो अपने घर में डच के अलावा भोजपुरी/अवधी भाषा भी बोलते हैं। भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा सूरीनामी संस्कृति में समाहित है। भारतवंशियों ने अपनी एकजुटता के लिए हिंदुस्तानी पठन-पाठन की परंपरा आरंभ की। सनातन धर्म की कई संस्थाएँ गठित की गईं, जो भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं (हिंदी सहित) के इर्द-गिर्द केंद्रित थी। प्रवासी भारतीयों से भी बहुत पहले इन भारतवंशियों द्वारा हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हो गया था। उनकी हिंदी में विशेष रुचि रही। इन सुरीनामीयों ने अपने पूर्वजों से हिंदी के गीत-कहानी सुनी हैं, इनके त्योहारों पर हिंदी (भोजपुरी) गीत-संगीत बजते हैं। इस तरह भारतवंशियों के प्रभाव में हिंदी के प्रचार-प्रसार की नींव रखी गई। 14 सितंबर को यहाँ हिंदी दिवस मनाया जाता है, इस अवसर पर सूरीनामी संस्थाओं में वाद-विवाद, भाषण, निबंध लेखन आदि कार्यक्रम होते हैं। यहाँ के उजाला रेडियो और आमोर रेडियो पर हिंदी के गाने बजते है। कुछ प्रभावशाली सरनामी राजनीतिज्ञों ने भोजपुरी भाषा में काव्य-संग्रह भी लिखें हैं। नींदरलैंड में कई मंदिर हैं, जहाँ हिंदी का बोलबाला है, इन मंदिरों में भारत से आए पंडितों ने संस्कृति के साथ हिंदी की अलख जगा रखी है। ये सारे तथ्य हिंदी भाषा के प्रसार के आधार बने। हिंदी की वैश्विकता का मूलाधार भारतीय संस्कृति है।

इसी तरह डेनमार्क का 'भारतीय मंदिर', संस्कृति और आस्था को हिंदी भाषा के माध्यम से प्रवासियों से जोड़ने में अहम् भूमिका निभा रहा है।

खुशखबरी ये है कि पूरे विश्व में और यूरोप में पिछले कुछ वर्षों में जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए भारतीय सरकार द्वारा सतत् प्रयास किए जा रहे हैं, उनमें बहुत बढ़ोतरी हुई है। पिछले 8-10

सालों में भारतीय दूतावास और आई.सी.सी.आर. के प्रयासों में तेजी आई है।आई.सी.सी.आर. के माध्यम से कई देशों में अब भारतीय राजदूतावास के अंतर्गत हिंदी शिक्षक भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इन केंद्रों द्वारा हिंदी पढ़ाई जा रही है, बच्चों और बड़ों का प्रशिक्षण/शिक्षण हो रहा है।

उदाहरण के तौर पर नीदरलैंड्स का गांधी केंद्र हो, ब्रिटेन का नेहरू सेंटर, जर्मनी का टैगोर सेंटर या हंगरी का अमृता शेरगिल कल्चरल सेंटर, सभी में भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा के कार्यक्रम ज्यादा-से-ज्यादा आयोजित हो रहे हैं। हंगरी में अमृता शेरगिल कल्चरल सेंटर में गीत-संगीत के कार्यक्रम, नवरात्रि उत्सव इत्यादि कार्यक्रम होते रहे हैं, भारतीय नृत्य और योग की कक्षाएँ भी चलती हैं और इसके चलते भाषा का प्रसार हो रहा है।

भारतीय राजदूतावास बेल्जियम द्वारा कई हिंदी कार्यक्रम और प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं। आजादी का अमृत महोत्सव के अंतर्गत कई कार्यक्रम डेनमार्क, बेल्जियम और हंगरी भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित किए गए—कई प्रतियोगिताएँ हुईं और अधिकांश भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा पर केंद्रित रहीं।

प्रवासियों और भारतवंशियों में यह बोध बढ़ रहा है कि हिंदी बोलने के अलावा देवनागरी लिखना-पढ़ना भी जरूरी है, तभी भाषा से पूर्ण जुड़ाव संभव होगा।

कोरोना काल में सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों द्वारा वैश्विक रूप से ऑनलाइन संवाद बढ़ा है और इसका फायदा हिंदी प्रसार को भी हुआ है। हिंदी के प्रति एक सकारात्मक सोच बढ़ी है, कोरोना काल में सबकुछ ऑनलाइन था तो इस दौरान हिंदी के अंतरराष्ट्रीय कवि-सम्मेलन, वेबिनार हुए और संपर्क सूत्र बढ़े। इससे हिंदी साहित्य के प्रति यहाँ के युवाओं में लगाव बढ़ा है।

प्रवासी भारतीय वैश्वीकरण के सबसे प्रत्यक्ष वाहक हैं और कई ऑनलाइन सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से उनके बीच हिंदी एक जीवंत कड़ी बन रही है। पिछले कुछ सालों में हिंदी की वेबसाइट्स की संख्या भी बहुत बढ़ी है, इंटरनेट पर हिंदी लोकप्रिय हो रही है, पॉडकास्ट बनाए जा रहे हैं और इस तरह हिंदी साहित्य अब इंटरनेट के माध्यम से विश्व भर में प्रसारित होने लगा है। इंटरनेट और नवीनतम तकनीक हिंदी को दुनिया भर में फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, निभा रही है और कई तकनीकी साहित्यकारों द्वारा कई परियोजनाओं पर सक्रिय रूप से काम हो रहा है। प्रवासी साहित्य स्वदेश प्रेम और प्रवास के द्वंद्व पर टिका है, जो भारतीय पाठकों के लिए एक नए तरह का साहित्य है।

चूँकि विदेशों में हिंदी पसर रही है, उसका मुख्य कारण भारतवंशियों का अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम और लगाव है और हिंदी इस गहरे जुड़ाव का माध्यम।

हिंदी भाषा को बचाने व उठाने के लिए हमें व्यवसाय, तकनीकी और शिक्षा से जोड़ना होगा। तकनीकी जानकारियों का अनुवाद कर उसे हिंदी भाषा का अंग बनाना—कंप्यूटर की भाषा, अभियांत्रिकी की भाषा, मेडिकल की भाषा बनाना होगा। भाषा का प्रचार और प्रसार इस बात पर निर्भर है कि बोलचाल के अलावा, उस भाषा में कामकाज/व्यवसाय भी हो रहा हो। भारत विकसित देश बन रहा है और एक बहुत बड़ा बाजार है, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए जहाँ वह अपना माल भेज सके और इसलिए उसे एक ऐसी भाषा की जरूरत होगी, जिससे वह भारतीयों से संपर्क साध सके। विदेशों में भी हिंदी तभी बढ़ेगी, जब भारत में इसका प्रयोग बढ़े और यह व्यवसाय से जुड़े।

□

vishwas@kaviarpan.com

चीन में हिंदी शिक्षण

—प्रो. ज्यांग जिंगकुई

विश्व की दो प्राचीनतम सभ्यता के रूप में चीन और अपने पड़ोसी मित्र देश भारत के बीच सांस्कृतिक संबंध का लंबा इतिहास रहा है। प्राचीन चीन के थांग वंश में रहे ह्वेनसांग ने चीन और भारत के बीच सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ करने में सांस्कृतिक राजदूत की भूमिका निभाई। उन्होंने चीनी लोगों को न केवल भारत के बौद्ध धर्म तथा भारतीय इतिहास व रीति-रिवाज आदि से परिचित कराया, बल्कि चीनी शास्त्र को संस्कृत में अनुवाद करके चीनी संस्कृति का भी भारत में प्रचार-प्रसार किया। ह्वेनसांग की तरह फाहयान, इत्सिंग इत्यादि लोगों के निरंतर प्रयास ने चीन-भारत मैत्री को गहरा करने के लिए एक अटूट पुल का निर्माण किया। यद्यपि बाद में उपनिवेशी आक्रमण ने इस संबंध को भंग करने की कोशिश की, तथापि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दोनों देशों के बीच पारस्परिक संबंध कायम होने से द्विपक्षीय सांस्कृतिक संबंध फिर से जीवित हो उठा। इसी समय चीन और भारत ने हिंदी और चीनी शिक्षण प्रारंभ किया। आधुनिक समय में चीन में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की विधिवत् शुरुआत को यदि रेखांकित करना हो, तो हम कह सकते हैं कि इसका श्रीगणेश सन् 1942 में युननान प्रांत के 'पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज' में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ हुई, जिसने दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंध की शोभा को बढ़ा दिया। हिंदी भाषा उसी समय से चीनी लोगों के लिए पड़ोसी देश को जानने और समझने की कुंजी बन गई। इधर के वर्षों में चीनी सरकार भारत के साथ अपने संबंधों का विकास करने को बड़ा महत्त्व देती रही है और चीन में हिंदी शिक्षण के विकास ने, चाहे दोनों देशों के राजकीय आवाजाही या आर्थिक व व्यापारिक संपर्क हों या आपसी समझ व विश्वास, भारतविद्या के अध्ययन को अति-सुविधा प्रदान की है। अतएव हिंदी समझनेवाले चीनी लोगों की अपेक्षाए बढ़ी हैं, जिसने हिंदी शिक्षण को प्रेरणा और उत्साह दिया है। चीन में हिंदी शिक्षण का इतिहास लगभग सत्तर वर्षों का है। यहाँ हम चीन में हिंदी शिक्षण के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इसके भविष्य की संभावनाओं पर भी चर्चा करेंगे।

1. चीन में हिंदी शिक्षण का उद्गम और प्रारंभिक विकास

चीन में हिंदी शिक्षण सन् 1942 में प्रारंभ हुआ। उस समय चीनी लोग जापान आक्रमण के विरोध में चल रहे युद्ध (द्वितीय विश्वयुद्ध) की आग से पीड़ित थे। जापान आक्रमण विरोधी युद्ध के आठ सालों के दौरान, भारतीय सरकार ने चीन

* छिंगह्वा विश्वविद्यालय, चीन।

को महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान की थी। इस दौरान सन् 1938 में युननान-बर्मा मार्ग का निर्माण पूरा किया गया था। 23 अगस्त, सन् 1939 को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी श्री जवाहरलाल नेहरू चीन की राजकीय यात्रा पर विमान से चीन के छुंगछिंग शहर पहुँचे थे, उस विकट स्थिति में शहर पर लगातार बम बरसाए जा रहे थे। इस यात्रा के पश्चात् ही तत्कालीन चीनी सरकार ने चीन-भारत संबंध को ज्यादातर महत्त्व दिया था। सन् 1942 में 'पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज' इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में युननान प्रांत के छुंगकोंग शहर में स्थापित हुआ। इस कॉलेज के हिंदी विभाग में उसी साल दस छात्रों को भरती किया गया था। उस समय कृष्ण सिंह नामक एक भारतीय शिक्षक यहाँ हिंदी पढ़ाने का काम कर रहे थे। युद्ध के कारण उत्पन्न बाधाओं से हिंदी विभाग को भी एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होना पड़ रहा था। तीन वर्षों के बाद सन् 1945 में हिंदी विभाग छुंगछिंग शहर में पहुँच गया और साल भर बाद ही इसे नानचिंग स्थानांतरित करना पड़ा। अतः हम कह सकते हैं कि चीन में हिंदी सीखनेवालों की पहली पीढ़ी ने जापानी आक्रमण विरोधी युद्ध-काल की अभावग्रस्त स्थिति में बड़े परिश्रम से पढ़ाई की और इसमें यिन होंगयुआन, फोंग जंगडू चीन के हिंदी शिक्षण कार्य के महत्त्वपूर्ण प्रवर्तक माने गए हैं।

सन् 1949 में नए चीन की स्थापना होने के बाद ही सन् 1950 में चीन ने भारत के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित किया था। भारत, चीन लोक गणराज्य को मान्यता देनेवाला प्रथम गैर-समाजवादी देश बना। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ दो प्राचीन सभ्यता चीन और भारत के बीच संबंध तेजी से विकसित हो रहा था, उस समय देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभाशाली व्यक्तियों की बड़ी आवश्यकता पड़ रही थी। इसी भूमिका में सन् 1941 में 'पूर्वी भाषा और साहित्य संस्थान' पीकिंग विश्वविद्यालय के 'विदेशी भाषा विद्यापीठ' में सम्मिलित किया गया था। तत्कालीन उस पूर्वी भाषा विभाग के अध्यक्ष हमारे देश के प्रसिद्ध भारतविद् श्री जि श्यानलीन बने थे। एक और प्रसिद्ध विद्वान् श्री जिन खमू हिंदी का अध्यापन व अध्ययन ऑफिस के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किए गए। उस साल पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में तीस से ज्यादा छात्रों को भरती किया गया, जिन्हें दो कक्षाओं में विभक्त किया गया और चार सालों तक हिंदी सिखाई गई। तत्कालीन चीन और भारतीय सरकार ने पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग पर ध्यान केंद्रित किया। पीकिंग विश्वविद्यालय ने हिंदी का अध्ययन-अध्यापन नियमित रूप से चलाने के लिए, भारत-चीन मैत्री संघ के द्वारा कुल-मिलाकर पाँच भारतीय शिक्षकों को चीन आने का निमंत्रण दिया, जिनमें से एक शिक्षक उर्दू पढ़ाने के लिए और चार हिंदी पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। इसके अतिरिक्त, दस भारतीय छात्र भी चीनी छात्र के साथ-साथ पढ़ाई करते थे। चीन के तत्कालीन प्रधानमंत्री ज्यो एंलाई ने इस हिंदी विभाग पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने भारतीय राजदूत की पत्नी को पीकिंग विश्वविद्यालय में भारतीय साहित्य पढ़ाने का अनुमोदन किया था, जो कि नए चीन के उच्च शिक्षण के इतिहास में एक विशेष घटना थी।

सन् 1949 से सन् 1959 तक का समय चीन में हिंदी विकास की दृष्टि से उत्कृष्ट काल रहा है, क्योंकि इस दौरान हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में जो गति, जो रुचि नीति-निर्धारकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों में दिखाई पड़ती है, वह बाद के वर्षों में काफी शिथिल पड़ गई। यह वह समय था जब चीन और भारत पंचशील के सिद्धांतों की छाया में और 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारों की गूँज में साथ-साथ आगे बढ़ रहे थे। उनमें एक छात्र श्री जिन डिंगहान (हिंदी

विभाग के रिटायर प्रोफेसर, पीकिंग विश्वविद्यालय) ने अपने विद्यार्थी जीवन को याद करते हुए कहा कि उस समय चीन और भारत दोनों देशों के संबंध बहुत घनिष्ठ थे। हमें चीन-भारत के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसी गतिविधियों में भाग लेने के अधिक मौके मिलते थे। एक बार वर्ष 1956 में, भारतीय दूतावास में 'झाँसी की रानी' फिल्म दिखाई जा रही थी। प्रधानमंत्री चाऊ एन लाय भी वहाँ गए थे। जब उन्होंने मुझे भारतीय राजदूत के साथ हिंदी में बातचीत करते हुए देखा, तो पूछा, "तुम हिंदी जानते हो?" मैंने कहा, "हाँ जी।" फिर उन्होंने पूछा, "कहाँ पढ़ते हो?" "पीकिंग विश्वविद्यालय में" और उन्होंने बताया कि तुम युवा हो, भारत के साथ संबंध बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए मेहनत से अच्छी तरह हिंदी सीखो। बाद में श्री जिन डिंगहान के द्वारा "हिंदी-चीनी भाई-भाई" नामक गान हिंदी से चीनी में अनूदित होकर प्रकाशित हुआ।

श्री जिन डिंगहान के साथ हिंदी सीखनेवाले श्री ल्यू एनवू, श्री ल्यू गुओलान, श्री श्यु श्याओयांग, श्री मा मंगगांग स्नातक होने के बाद भी हिंदी अध्यापन के कार्य में वर्षों तक जुटे रहे, खासतौर पर श्री ल्यू एनवू और श्री ल्यू गुओलान नए चीन के पहले छात्र बने, जो चीनी सरकारी आदान-प्रदान कार्यक्रम के तहत हिंदी पढ़ने के लिए भारत गए। उस दौरान के विद्यार्थियों ने आगे चलकर चीन में हिंदी की मशाल को जलाए रखने में कितना योगदान दिया, आगे हम इसकी भी थोड़ी चर्चा करेंगे। 'रामचरितमानस' जैसी बृहद कृति का चीनी में अनुवाद या शब्दकोश जैसा दुरूह कार्य, व्याकरण निर्माण इत्यादि जितने भी काम हिंदी में चीन में हुए, उन सबके पीछे उस दौर के विद्यार्थियों की प्रमुख भूमिका है।

इस दौरान पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी के विद्यार्थियों की संख्या में काफी इजाफा हुआ। सन् 1954, 1955, 1956, 1960 साल में दो बार पीकिंग विश्वविद्यालय में अपनी दो कक्षाओं में तीस से ज्यादा छात्रों को भरती किया गया और सन् 1955 के बाद पंचवर्षीय पढ़ाई की व्यवस्था हो गई। सन् 1958 में पीकिंग विश्वविद्यालय में चीनी विदेश मंत्रालय के कई संबंधित कर्मचारियों को भी हिंदी पढ़ाई गई।

2. हिंदी शिक्षण का अनुलंबन और पुनर्जीवन

सन् 1960 से सन् 1979 तक का समय चीनी जनता और समाज के लिए बहुत कठिन समय रहा। इस दौरान चीनी जनता और समाज को कई अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना पड़ा। महा-सांस्कृतिक क्रांति के काले बादल चीन में अध्ययन-अध्यापन के ऊपर छा गए, जिससे चीन में शिक्षण कार्य में कई तरह की बाधाएँ उत्पन्न हो गईं। इन परिस्थितियों के प्रभाव से पीकिंग विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग भी छोटा हो गया और उसमें हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या भी कम हो गई। इस प्रकार चीन में हिंदी शिक्षण का अनुलंबन हुआ। परंतु उस सांस्कृतिक क्रांति के समापन के बाद सन् 1979 में पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में छात्र को भरती किए जाने का पुनः आरंभ हुआ, जिसने हिंदी शिक्षण के विकास का गतिरोध मिटाया। इससे पहले, सन् 1971 में पीकिंग विश्वविद्यालय ने मजदूरों, खेतिहरों और सैनिकों के एक समूह को भरती किया, जिसमें तब हिंदी सीखनेवाले श्री थांग रेनहू बाद में पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्रोफेसर बने।

सन् 1980 से सन् 1999 तक का दौर चीन में परिवर्तनों की शुरुआत का दौर था। 'खुलापन' इस दौर का सूत्र वाक्य है। खुलेपन की दृष्टि का प्रभाव शिक्षा और हिंदी शिक्षण पर भी पड़ा। हिंदी भाषा का शिक्षण भी इस खुलेपन की नीति से एक बार फिर से जीवित हो उठा। इन तमाम वर्षों में, कठिन से कठिनतर समय में भी हिंदी को समर्पित लोगों ने बचाए रखा। खुलेपन की नीति से हिंदी को लाभ तो हुआ, किंतु उतना नहीं जितना होना चाहिए था। इसके पीछे दोनों देशों के बीच के

संबंधों में जमी हुई बर्फ भी शायद एक बड़ा कारण रहा। जब तक आपको हिंदी साहित्य के वर्तमान, सर्जनात्मक साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ और लोगों से बार-बार मिलने का अवसर नहीं मिलता, तब तक भाषा के विकास में उतनी गति नहीं आ पाती। इस दौरान हिंदी शिक्षण का अध्यापन व अध्ययन निरंतर जारी रहा, यह भी एक संतोष की बात है। सन् 1985, 1988, 1991, 1996, 2000 में हिंदी विभाग में छात्रों को भरती किया गया है। इनमें श्री ज्यांग जिंगकुई, श्रीमती गूओ टोंग, श्रीमती ज्यांग योंगहोंग, श्रीमती वांग जिंग स्नातक होने के बाद पीकिंग विश्वविद्यालय में ही हिंदी का अध्यापन व अध्ययन करते रहे हैं। सन् 1996 में श्री ज्यांग जिंगकुई चीन में हिंदी भाषा एवं साहित्य पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त करनेवाले प्रथम व्यक्ति हैं।

3. हिंदी शिक्षण का देशव्यापी विकास

सन् 2000 में नई शताब्दी की शुरुआत ने भारत-चीन संबंध की जड़ता को भी तोड़कर मित्रता का बीजारोपण कर दिया। दोनों देशों के संबंधों में जो गरमाहट आई है, उसका प्रभाव हिंदी के अध्ययन-अध्यापन पर भी पड़ा है। सन् 2003 इस दृष्टि से विशेषकर गतिशील रहा है। इस वर्ष पीकिंग विश्वविद्यालय में 'भारतीय अनुसंधान केंद्र' की स्थापना हुई। तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयीजी की चीन यात्रा के दौरान, उन्होंने इस समारोह में भाग लिया और इसको वित्त-सहायता प्रदान करने की घोषणा की। इसी वर्ष चार वर्ष में एक बार हिंदी के विद्यार्थियों को प्रवेश देने की योजना में भी बदलाव आया। अब हरेक दो वर्षों में हिंदी विभाग में विद्यार्थियों को प्रवेश मिल सकता है। इसी वर्ष पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी को 'सर्व सुलभ भाषा' की श्रेणी में भी शामिल किया गया। इसका अर्थ यह है कि मुख्य विषय के अलावा भी हिंदी अब कोई भी विद्यार्थी पढ़ सकता है।

आज पीकिंग विश्वविद्यालय में बी.ए., एम.ए., पी-एच.डी. स्तर के विद्यार्थी हैं और ऐसे विद्यार्थियों की संख्या भी कम नहीं है, जो भारत के बारे में अन्य विषयों (सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक आदि) पर गहन अध्ययन कर रहे हैं और साथ-ही-साथ हिंदी, संस्कृत, बंगाली आदि भाषा भी सीख रहे हैं।

चीन और भारत, दोनों देशों के संबंधों में ज्यों-ज्यों निरंतर विकास हो रहा है और पारस्परिक समझ विस्तृत हो रही है, पीकिंग विश्वविद्यालय की सहायता और समर्थन में सन् 2006 से चीन के अन्य विश्वविद्यालयों में भी हिंदी विभाग खुल रहे हैं। वर्तमान में श्यीएन फॉरेनया स्टडीज विश्वविद्यालय, बेइजिंग फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय, कम्युनिकेशन विश्वविद्यालय ऑफ चाइना, गुआंगज्यो फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय, शंघाई फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय, यूनान विश्वविद्यालय ऑफ नेशनलिटीज आदि नौ विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खुले हैं। पीकिंग विश्वविद्यालय ने चीन में हिंदी शिक्षण के विकास में विशेष योगदान दिया है। पीकिंग विश्वविद्यालय का योगदान मुख्यतः तीन पहलुओं में उल्लेखनीय है। सबसे पहले, पीकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ने अन्य विश्वविद्यालय को हिंदी पाठ्यपुस्तक की चार पुस्तकों और बृहत् हिंदी-चीनी शब्दकोश संकलित करके प्रदान किया है, जो हिंदी शिक्षण के लिए अनिवार्य हैं। दूसरा, चीन के हिंदी शिक्षण में सारे युवा शिक्षक पीकिंग विश्वविद्यालय से ही प्रशिक्षित होते हैं, जैसे श्यीएन फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय, बीजिंग फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय और गुआंगज्यो

फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षक पीकिंग विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद हिंदी शिक्षण का काम कर रहे हैं। तीसरा, पीकिंग विश्वविद्यालय चीन में हिंदी शिक्षक के आगे की पढ़ाई के लिए केंद्र है। बहुत सारे शिक्षक कई सालों तक काम करने के बाद, पीकिंग विश्वविद्यालय में एम.ए. और पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ाते हैं। अतएव पीकिंग विश्वविद्यालय ने पूरे चीन में हिंदी शिक्षण के विकास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय भूमिका निभाई है।

विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा के रूप में हिंदी का वैश्विक मंच व्यापक होता जा रहा है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के विस्तार, बाजार की जरूरत, विश्व के विभिन्न देशों में हिंदी शिक्षण, विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन और राष्ट्र संघ में हिंदी की प्रतिष्ठा के इधर हुए तेज प्रयासों से प्रकट होता है कि हिंदी एक देशीय की जगह बहुदेशीय भाषा का रूप ले चुकी है। चीन और भारत के बीच दिन-पर-दिन बेहतर मैत्री विकसित हो रही है और चीन में हिंदी के भविष्य को लेकर स्थिति उत्साहजनक दिखती है, जैसे चीन में हिंदी शिक्षण में, चीन में भारत से संबंधित जैसे व्यापारिक कंपनियों में और भारतीय कंपनियों में नौकरी मिल सकती है। इसलिए चीन में हिंदी शिक्षण की आवश्यकता और निरंतरता बढ़ रही है और आगे भी बढ़नी चाहिए, ताकि भारतवर्ष की गहरी समझ प्राप्त करके चीन और भारत के बीच आपसी भरोसा तथा समझ को बढ़ा सकें तथा चीन और भारत साथ-साथ सहयोग करके वैश्विक मंच पर अंतराष्ट्रीय मुद्दों में योगदान कर सकें।

4. चीन के हिंदी विद्वान्

(1) श्री प्रो. जिन खमू (Jin Kemu, 1912-2000)

श्री जिन खमू का जन्म ज्यांग श्यी (Jiangxi) प्रांत में हुआ था। श्री जिन पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी अध्यापन व अध्ययन ऑफिस के प्रथम अध्यक्ष बने थे। श्री जिन खमू चीन के प्रसिद्ध साहित्यकार, अनुवादक और विद्वान् हैं, वे क्रमशः हुनान विश्वविद्यालय, वुहान विश्वविद्यालय और पीकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बने। सन् 1948 में श्री जिन पीकिंग विश्वविद्यालय में आए। नए चीन की स्थापना के बाद, श्री जिन खमू ने श्री जि श्यानलीन के साथ-साथ चीन में हिंदी विद्वानों की पहली पीढ़ी का पालन-पोषण किया। श्री जिन खमू ने अनेक भाषाओं की जानकारी प्राप्त की, जैसे अंग्रेजी, फ्रांसीसी, हिंदी, संस्कृत, पालि इत्यादि।

श्री जिन खमू ने आजीवन बहुत कृतियाँ प्रकाशित की हैं, जिनमें अकादमिक कृतियाँ हैं— संस्कृत साहित्य का इतिहास, भारतीय संस्कृति, तुलनात्मक संस्कृति आदि। श्री जिन ने ऋग्वेद, मेघदूत, सावित्री, मेरा बचपन जैसी भारतीय विश्वख्यात रचनाओं का अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अनेक कविता-संग्रहों और निबंध-संग्रहों का भी प्रकाशन किया है।

(2) श्री प्रो. ल्यू एनवू (Liu Anwu, 1930-)

श्री ल्यू एनवू पीकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और पी-एच.डी. के निदेशक हैं। इन्हें चीन का भारतीय साहित्य अध्ययन समिति का अध्यक्ष बनने का गौरव भी प्राप्त हुआ है और वर्तमान में वे इस समिति के अवैतनिक अध्यक्ष हैं। श्री ल्यू चीनी लेखक संघ के सदस्य भी हैं।

श्री ल्यू एनवू का जन्म सन् 1930 में छांगडे (Chengde), हुनान(Hunan) प्रांत में हुआ था। सन् 1949 में चीनी भाषा विभाग, हुनान विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और तत्पश्चात् सन् 1951 में वे पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पढ़ने लगे। सन् 1954 में हिंदी सीखने के लिए श्री ल्यू भारत गए और सन् 1958 में भारत से वापसी के

पश्चात् हिंदी पढ़ाने का काम शुरू किया। प्रो. ल्यू एनवू हिंदी विभाग में 50 वर्षों तक कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त हुए। श्री ल्यू पीकिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा विभाग के पूर्वी साहित्य अध्ययन ऑफिस के अध्यक्ष बने और डिग्री समिति एवं अकादमिक समिति के अध्यक्ष बने हैं।

उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'हिंदी साहित्य इतिहास', 'प्रेमचंद के जीवनचरित की टीका-टिप्पणी', 'महाभारत और रामायण के अध्ययन', 'भारतीय साहित्य और चीनी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' इत्यादि। उन्होंने अधिकाधिक प्रेमचंद की कहानियों व उपन्यासों और राजा और रानी आदि रवींद्रनाथ ठाकुर के दस नाटकों का अनुवाद किया है। उन्होंने अपना अध्ययन-क्षेत्र केवल हिंदी साहित्य तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि पूरे भारतीय साहित्य को अपने अध्ययन क्षेत्र का विषय बनाया है। सन् 2004 में श्री प्रो. ल्यू एनवू को चीनी अनुवाद संघ के द्वारा वरिष्ठ अनुवादक का सम्मान-पत्र प्रदान किया है और सन् 2005 में पीकिंग विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर नियुक्त किए गए हैं।

(3) श्री प्रो. यिन होंगयुआन (Yin Hongyuan, 1925-)

प्रो. यिन होंगयुआन का जन्म सोंगज्यांग (Songjiang, अब शंघाई के सोंगज्यांग इलाका), ज्यांगसू (Jiangsu) प्रांत में हुआ। सन् 1945 में, श्री यिन होंगयुआन को राष्ट्रीय प्राच्य भाषा संस्थान, छोंगछिंग में प्रवेश दिया गया। सन् 1948 में स्नातक होने के बाद, पहली पीढ़ी के हिंदी शिक्षक के रूप में उसी संस्थान में नियुक्त हुए और सन् 1949 में पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज को पीकिंग विश्वविद्यालय में सम्मिलित किए जाने के बाद उन्होंने पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाना शुरू किया।

प्रो. यिन होंगयुआन ने अपने जीवन को हिंदी अध्यापन और अध्ययन में समर्पित किया है। उन्होंने चीनी में हिंदी व्याकरण लिखा और हिंदी पाठ्यपुस्तक, बृहत् हिंदी-चीनी शब्दकोश, चीनी-हिंदी शब्दकोश (अभी प्रकाशित नहीं) आदि पुस्तक के संपादन में भाग लिया। इनके अतिरिक्त, उन्होंने उपन्यास झाँसी की रानी, पंडित कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण और प्रेमचंद की कुछ कहानियों आदि रचनाओं का अनुवाद किया है।

(4) श्री प्रो. जिन डिंगहान (Jin Dinghan, 1930-)

प्रो. जिन डिंगहान का जन्म छांगशा, हुनान प्रांत में हुआ। सन् 1951 में श्री जिन डिंगहान पीकिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में हिंदी सीखने लगे। सन् 1955 में स्नातक होने के बाद पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। वर्तमान में श्री जिन पीकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हैं, चीनी दक्षिणी एशियाई अध्ययन समिति के सलाहकार हैं और चीन के सामाजिक विज्ञान अकादमी के अध्येता हैं। उनको लेक्चर देने के लिए बहुधा भारत, इंग्लैंड, अमेरिका और जापान आदि देशों के लिए आमंत्रित किया गया है तथा अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन के अध्यक्ष भी बने हैं।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—हिंदी-चीनी मुहावरे शब्दकोश और हिंदी पाठ्यपुस्तक के संपादन के काम में भाग लिया। प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला', तुलसीदास के काव्य 'रामचरितमानस', यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' का हिंदी से चीनी में अनुवाद किया और मौ जेडोंग के चुनिंदा लेख (प्रथम-चतुर्थ अध्याय) का चीनी से हिंदी में अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त, उनके चीनी, अंग्रेजी, हिंदी में लिखे गए दस से अधिक उच्चस्तरीय शोध-प्रबंध देश-विदेश के प्रकाशन में प्रकाशित हुए हैं। सन् 1990 में उनको 'चीन-भारत मैत्री पुरस्कार' मिला और सन् 1993 में

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा का 'विश्व हिंदी सम्मान पुरस्कार' और सन् 1999 में 'विश्व तुलसीदास सम्मान पुरस्कार' और सन् 2001 में भारत के राष्ट्रपति के.आर. नारायण का 'जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार' मिला है।

(5) श्री प्रो. मा मंगगांग (Ma Menggang, 1928-2019)

(6) प्रो. थांग रेनहू (Tang Renhu, 1950-)

प्रो. थांग रेहू ने सन् 1950 में सिछुआन (Sichuan) में जन्म लिया। सन् 1971 में वे पीकिंग विश्वविद्यालय के हिंदी भाषा और साहित्य विषय में पढ़ने लगे। सन् 1974 में स्नातक होने के बाद से ही पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाते रहे हैं। उन्होंने पाकिस्तान के राष्ट्रीय आधुनिक भाषा विश्वविद्यालय (एन.यू.एम.एल.) और नेहरू विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई और अध्ययन किया। श्री थांग पीकिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी साहित्य अध्ययन केंद्र और हिंदी भाषा और साहित्य विभाग के प्रोफेसर हैं, जो हिंदी के अध्यापन, पाठ्यपुस्तक के संपादन और भारतीय साहित्य के अध्ययन आदि कार्यों में कार्यरत रहे हैं। उन्होंने पूर्वी साहित्य इतिहास में हिंदी साहित्य के बारे में कई अध्याय लिखे हैं, हिंदी पाठ्यपुस्तक के संपादन में भाग लिया और उनके ठाकुर की साहित्यिक कृतियों का अध्ययन, चीनी और भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त, बीस से ज्यादा शोध-प्रबंध का प्रकाशन हुआ और जैनेंद्र कुमार के त्याग-पत्र आदि अन्य लेखकों की कहानियों, निबंधों और एकांकियों और लोक-कथाओं आदि का अनुवाद किया। इसके अलावा, बृहत् हिंदी-चीनी शब्दकोश, पूर्वी संस्कृति शब्दकोश आदि सात संदर्भ शब्दकोश के संपादन के काम में भाग लिया। वर्तमान में प्रो. थांग रेहू भारतीय आधुनिक साहित्य का इतिहास और हिंदी पाठ्यपुस्तक के पुनः संपादन कार्य में जुटे हैं।

(7) प्रो. ज्यांग जिंगकुई(Jiang Jingkui, 1967-)

प्रो. ज्यांग जिंगकुई ने सन् 1967 में ज्यांगसू (Jiangsu) प्रांत में जन्म लिया। सन् 1985 में प्रो. ज्यांग जिंगकुई ने पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा में नामांकन लिया। प्रो. ज्यांग जिंगकुई चीन की हिंदी भाषा और साहित्य पर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त करनेवाले प्रथम व्यक्ति हैं। वर्तमान में प्रो. ज्यांग पीकिंग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग के अध्यक्ष हैं और भारतीय अध्ययन केंद्र के उपनिदेशक हैं। वे चीन के दक्षिण एशियाई अध्ययन समिति के उप-महासचिव, चीन के भारतीय साहित्य अध्ययन समिति के उप-महासचिव, चीन-भारत मैत्री संघ के सलाहकार समिति के उपाध्यक्ष भी हैं साथ ही वे प्रो. ज्यांग श्यीएन फॉरेन स्टडीज विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अतिथि प्रोफेसर भी हैं। प्रो. ज्यांग वर्षों से भारत की आधुनिक भाषा और साहित्य, भारतीय धर्म, दक्षिण एशियाई संस्कृति के अध्यापन और अध्ययन के कार्यों में लगे रहे हैं। उनकी कृतियाँ हैं—'हिंदी नाटक' और 'ठाकुर की कृतियों पर अध्ययन'। उन्होंने भारत के साहित्य और संस्कृति, भारतीय साहित्य के अध्ययन आदि पुस्तकों के संपादन में भाग लिया। इनके अतिरिक्त, उनके पचास से अधिक उच्चस्तरीय शोध-प्रबंध प्रकाशित हुए, जैसे 'हिंदी लोक नाट्य', 'भारतीय धर्म का कालखंड', 'भक्ति आंदोलन का समीक्षात्मक अध्ययन' इत्यादि।

प्रो. ज्यांग जिंगकुई ने बहुधा देशीय और अंतरराष्ट्रीय अकादमिक सम्मेलन में भाग लिया और भाषण दिया। सन् 2007 में न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय में आयोजित हुए विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर प्रो. ज्यांग जिंगकुई को हिंदी भाषा एवं साहित्य का 'विशेष योगदान पुरस्कार' मिला है।

□

jingkui@tsinghua.edu.cn

थाईलैंड में हिंदी

—शिखा रस्तोगी

गूँजे हिंदी विश्व में स्वप्न हो साकार,
थाई देश की धरा से हिंदी की जय-जयकार
हिंदी भाषा का जयघोष है सात समुंदर पार,
हिंदी बने विश्व भाषा दिल करे पुकार।

वैश्वीकरण के इस युग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया अति सहज, स्वाभाविक, आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हो गई है। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी भी भाषा है। सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ और घनिष्ठतम बनाने में भाषा की भूमिका सर्वदा सार्थक और सकारात्मक रही है।

वर्तमान में विश्व फलक पर हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी से होने लगा है। यह मधुर भाषा विश्व भाषा के रूप में अग्रसर होती जा रही है। अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के सुंदर देश थाईलैंड में हिंदी भाषा का सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर विकास हो रहा है। थाईलैंड में रहनेवाले भारतीय और थाई लोग देश की सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ हिंदी भाषा के प्रति भी सजग हो रहे हैं। इस संदर्भ में हिंदी चलचित्र एवं हिंदी सीरियलों की महती भूमिका है। यहाँ के लोगों में खासतौर से युवा पीढ़ी में हिंदी चलचित्रों के प्रभाव से हिंदी के प्रति लगाव और श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बॉलीवुड सिनेमा में, उसके गाने में नृत्य के प्रति दीवानगी चरम सीमा पर है। घर-घर में थाई लोग हिंदी चलचित्र बड़े शौक से देखते हैं जैसे अशोक, चंद्रगुप्त, नागिन, महाभारत और रामायण सीरियल बड़े प्रसिद्ध हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं, रीति-रिवाजों, देवी-देवताओं, मेहँदी, कुमकुम, आरती और प्रसाद आदि के बारे में उनके जिज्ञासापूर्ण प्रश्न बड़ी खुशी और आत्मीयता से पूछे जाते हैं। जिसका उत्तर पाकर उसमें निहित सुंदर भावों को सुनकर हिंदी भाषा के अध्ययन के प्रति उनका रुझान बढ़ जाता है।

इसी का परिणाम है कि थाईलैंड में कई विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है जैसे सिलपाकॉर्न विश्वविद्यालय, महाचुलालोंगकोर्न राज विद्यालय, बौद्ध भिक्षु विश्वविद्यालय, प्रिदीपानो मान्ग धमासास्त्र विश्वविद्यालय, चुलालोंगकोर्न विश्वविद्यालय, कसासास्त्र विश्वविद्यालय और चिंयागमाई विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि लेने के बाद वे स्नातकोत्तर और पी-एच.डी. करने के लिए भारत जाते हैं। हर वर्ष भारतीय दूतावास

---

* जी.आई.आई.एस. बैंकॉक, थाईलैंड में हिंदी विभागाध्यक्ष।

की सहायता से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, नॉर्थ ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय शिलांग और केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा आदि संस्थानो में छात्र अध्ययन के लिए जाते हैं।

थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम, ऐसा संस्थान है, जो हिंदी को विश्वव्यापी बनाने की यात्रा में अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर रहा है। 'हिंदी बने विश्व भाषा मूल मंत्र' का पालन करते हुए गत 12 वर्षों से मैं भी इस अभियान से जुड़ी हुई हूँ। यहाँ छात्र पूर्ण निष्ठा से केवल हिंदी सीखते ही नहीं, बल्कि भाषा के कौशलों में दक्ष भी बनते हैं। यह संस्था हिंदी भाषा के माध्यम से भारत और थाईलैंड के सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में सेतु का काम कर रही है। यहाँ हिंदी भाषा की कक्षा हर रविवार को होती है। हिंदी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा से जुड़े अनेक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। इन समारोहों के माध्यम से भारत की संस्कृति को मजबूत बनाने का प्रयास किया जाता है। कवि सम्मेलन, भाषण प्रतियोगिता, कविता पाठ और नाटक आदि समय-समय पर आयोजित होते हैं। थाई भारत सांस्कृतिक आश्रम का हिंदी को घर-घर तक पहुँचाना ही मुख्य ध्येय है। इसमें थाई युवा बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। हिंदी सीखकर वे कार्यक्रमों का मंच संचालन करते हैं। जिससे हिंदी के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। विदेशी धरा पर थाई लोगों को हिंदी बोलते, पढ़ते देख मन बहुत प्रसन्न होता है। कबीर के दोहों का पठन बखूबी करते हैं।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक में विभिन्न राष्ट्रीयता प्राप्त विद्यार्थी हिंदी भाषा सीख रहे हैं। यहाँ विदेशी लोगों का हिंदी के प्रति सकारात्मक रवैया देखना, मेरे लिए सुखद अनुभव है। उन लोगों की जुबान से हिंदी सुन मैं मंत्रमुग्ध रह जाती हूँ। विद्यार्थियों के साथ केवल हिंदी में बात करती हूँ। हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता, मधुरता व स्पष्टता के कारण हिंदी भाषा छात्रों के लिए सरल हो जाती है। कई भाषायी पृष्ठभूमियों के छात्रों को हिंदी सीखने में सर्वाधिक सहायक हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता है। जैसे उच्चारण और लेखन की एकरूपता। जैसा बोलते हैं, वैसा लिखते हैं। स्वर और व्यंजनों के क्रमिक उच्चारण स्थान एक वर्ण के लिए एक ही ध्वनि और मात्राओं का तर्कसंगत प्रयोग। यहाँ भारतीय फिल्म बड़ी रुचि के साथ देखते हैं। स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र में हिंदी भाषा से संबंधित कई कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। थाई हिंदी छात्रों द्वारा काव्यपाठ, नाटकों की प्रस्तुतियाँ समय-समय पर भारतीय दूतावास बैंकॉक में की जाती रही है। थाई हिंदी छात्र शास्त्रीय गायन-वादन और नृत्य में भी हिस्सा लेते हैं। वे कहानी, कविता और भारत के बारे में हिंदी में बोलते हैं। स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान कर भारत अध्ययन के लिए भेजता है। हिंदी पर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। हिंदी की पुस्तकें देता है। हिंदी कॉमिक्स थाई विद्यार्थी बहुत पसंद करते हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ, जातक कथाएँ, रामायण, महाभारत की कहानियाँ बहुत चाव से पढ़ते हैं। स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र थाईलैंड में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी है।

थाईलैंड हिंदी परिषद्, थाई एवं भारतीयों को ऐसा मंच प्रदान करता है, जहाँ सभी हिंदी में अपने मन के भावों को कविता, भजन, कहानी, लोकगीत द्वारा प्रकट करते हैं। यह संस्था हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, थाई छात्र संस्था द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं।

भारत सरकार द्वारा हिंदी भाषा के अध्ययन के लिए भेजी गई पुस्तकें सुगम और आकर्षक

हैं, जो हिंदी भाषा को सरलता से सिखाने में महत्त्वपूर्ण है। चित्र के साथ शब्द का अर्थ लिखा है, जो छात्रों की शब्द संपदा बढ़ाने में सहायक है। वे हिंदी भाषा बोलने, लिखने, समझने और सामान्य वार्त्तालाप में सक्षम हो जाते हैं। उनका यह भाषिक कौशल उनके द्वारा समय-समय पर किए गए नाटकीय प्रस्तुतियों में देखा जा सकता है, जैसे—भारत दर्शन, नेताजी, स्वामी विवेकानंद, यादगार लिफ्ट आदि। विशेष बात यह है कि ये सब थाई हैं। हिंदी संस्थान समय-समय पर कई प्रतियोगिताएँ आयोजित करता है। इसमें छात्र बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। विद्यार्थियों को भाषा कौशल दिखाने के लिए कई अवसर मिलते हैं। यह केंद्र थाई-भारत मैत्री को मजबूत करने की अटूट कड़ी है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक पताका को विश्व-पटल पर फहराने के लिए तत्पर है। छात्र भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित योग, नृत्य और वादन में रुचि रखते हैं। रंग-बिरंगी होली, प्रकाश पर्व, दीपावली को हमारे साथ प्रसन्नता से मनाते हैं।

हिंदी दिवस तथा विश्व हिंदी दिवस क्रमशः 14 सितंबर को, 10 जनवरी को मनाते हैं। यह समारोह भारतीय दूतावास द्वारा बहुत धूमधाम से मनाया जाता है।

थाईलैंड में विद्यालय स्तर पर कई विद्यालयों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है। उनमें मुख्यतः सी.बी.एस.ई. पाठयक्रम का विद्यालय ग्लोबल इंडियन इंटरनेशनल स्कूल, पायोनीयर इंटरनेशनल स्कूल, थाई सिख इंटरनेशनल स्कूल आदि हैं। यहाँ छात्र पूरे मनोयोग से हिंदी सीखते हैं।

थाईलैंड के लोगों में भारतीय संस्कृति के प्रति जिज्ञासा और आकर्षण अत्यधिक है। वर्तमान में डिजिटल क्रांति के कारण अपने देश में रहते हुए भी यहाँ के निवासी भारतीय संस्कृति के सुंदर व गरिमामय पहलुओं को देखते हैं, जिससे भारत दर्शन की उनकी लालसा और प्रबल हो जाती है। हिंदी भाषा दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाने तथा पर्यटन को बढ़ावा देने की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यही संस्कृति की संवाहिका भाषा का श्रेष्ठतम पक्ष तथा महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

मेरा सपना था कि मैं राष्ट्र की सेवा करूँ। यह सपना साकार हुआ थाईलैंड में आकर। मेरे लिए यह बड़े गौरव की बात है कि हिंदी भाषा का प्रसार थाईलैंड में हो रहा है। थाईलैंड और भारत में सांस्कृतिक समानताएँ हैं। जिस वजह से हिंदी भाषा को सीखने की ललक युवाओं में अधिक है। थाईलैंड में हिंदी समृद्ध है। युवाओं के लिए रोजगार का माध्यम है। पर्यटन के लिहाज से प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पर्यटक थाईलैंड से भारत और भारत से थाईलैंड आते हैं। इस दौरान एक-दूसरे के संवाद बनाने और संस्कृति को समझने के लिए हिंदी अहम भूमिका निभाती है।

□

srastogi357@gmail.com

जिस देश को अपनी भाषा और अपने साहित्य के
गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

दक्षिण अफ्रीका में हिंदी : कल, आज और कल

—सुनंदा वर्मा

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए भारतीयों की संख्या आज सभी अफ्रीकी देशों की तुलना में सबसे अधिक है। डरबन दक्षिण अफ्रीका के क्वजूलूनेटान प्रॉविंस का सबसे बड़ा शहर है और बताया जाता है कि भारतीयों की आबादी की संख्या देखते हुए यह विश्व का भारतीयों का सबसे बड़ा नगर है। वर्ष 2014 में पति के साथ दक्षिण अफ्रीका में मुझे दो साल रहने का अवसर मिला। हम लोग जोहान्सबर्ग पहुँचे ही थे, जब पिता डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने एक ई-न्योता फॉर्वर्ड किया। न्योता हिंदी दिवस के आयोजन का था। हिंदी दिवस के साथ हिंदी शिक्षा संघ की मासिक ई-पत्रिका 'हिंदी खबर' की पहली सालगिरह भी मनाई जा रही थी। हम सपरिवार आयोजन में शामिल हुए। आयोजन में हर उम्र के लोग थे। सभी किसी-न-किसी तरह हिंदी से जुड़े थे। रंगारंग कार्यक्रम हो रहा था। हिंदी की कविताएँ, गाने सुनाए जा रहे थे। हिंदी गानों पर लड़कियाँ नाच रही थीं। इस आयोजन से लगा, जैसे भारत से दक्षिण अफ्रीका की लगभग 8,250 किलोमीटर दूरी को हिंदी ने पाट दिया है। यहीं पहली बार दक्षिण अफ्रीका में हिंदी से जुड़े और हिंदी के लिए काम कर रहे लोगों से परिचय हुआ। हाउटेंग प्रॉविंस में हिंदी शिक्षा संघ के क्षेत्रीय निदेशक हीरालाल शिवनाथ और विरजानंद बुदलू 'गरीब भाई' से मिलकर लगा ही नहीं, जैसे पहली बार मिल रहे हों। दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में यह देखने का मौका मिला कि वहाँ बसे भारतीयों की पहली, दूसरी और अब तीसरी पीढ़ी के लोग हिंदी को डेढ़ सौ साल से अधिक समय से कैसे बचाए और सँभाले हुए हैं। इन बीते सालों में दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने गिरमिट जीवन के कष्ट झेले, संघर्ष किया, विपरीत परिस्थितियों का सामना किया, लेकिन अपनी भाषा और संस्कृति को सँजोए रखा। हिंदी की स्थिति समझने के लिए मैंने हिंदी से जुड़े लोगों का साक्षात्कार लेना चाहा। एक को छोड़ सभी ने मेरा आग्रह स्वीकार किया। दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के कल, आज और कल की स्थिति पर विस्तृत चर्चा हुई।

दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के बीज उन भारतीयों ने बोए, जो नेटाल क्षेत्र के गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे। सन् 1860 में नेटाल में गन्ने के खेतों में काम करनेवालों की कमी हो गई थी। स्थानीय जूलू लोगों को काम पर रखा तो गया, लेकिन बात बनी नहीं। जूलू अपने आदिवासी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर थे और इस तरह की कड़ी मेहनतवाले काम करने की उन्हें न इच्छा थी, न आवश्यकता। केप कॉलोनी के गवर्नर, सर

---

* स्वतंत्र पत्रकार, स्तंभकार एवं प्रसिद्ध लेखिका।

जॉर्जग्रे ने देखा था, कि मॉरीशस के गन्ने के खेतों में भारतीय अनुबंधित श्रमिकों का काम अच्छा था। उन्होंने नेटाल के खेतों में भी भारतीय अनुबंधित श्रमिकों को लाने का सुझाव दिया। नेटाल खेतों के मालिक तैयार हो गए। 'टूटो' नाम का जहाज 12 अक्तूबर, 1860 को मद्रास के बंदरगाह से चलकर 16 नवंबर, 1860 को दक्षिण अफ्रीका के उस समय पोर्ट-नेटाल कहलानेवाले और आज के डरबन शहर पहुँचा। जहाज में 342 भारतीय थे। दस दिन बाद भारतीयों का दूसरा जहाज दक्षिण अफ्रीका पहुँचा। 'एस.एस. बेलवडेयर' कलकत्ता से 4 अक्तूबर, 1860 को चलकर 26 नवंबर को डरबन पहुँचा। उसमें 310 यात्री थे। सन् 1911 तक भारतीय गिरमिटिया मजदूर मद्रास, बॉम्बे और कलकत्ता से एक सुनहरे भविष्य के सपने के साथ दक्षिण अफ्रीका इसी तरह आते रहे। दक्षिण भारत के गिरमिटिया मजदूर तमिल, तेलुगू बोलते थे और उत्तर भारत से गए अवधी और भोजपुरी बोलते थे। आनेवालों में अधिकांश एजेंटों के बहलाने-फुसलाने और उनकी मनगढ़ंत बातों को सच मानकर आनेवाले थे। पचास वर्षों में इन भारतीयों की संख्या लगभग दो लाख हो गई (बाद में कोयले की खदानों में और रेल की पटरियाँ बिछाने का काम भी इन्होंने ही किया)। अब तमिल, तेलुगू, अवधी और भोजपुरी के साथ इनमें अन्य भारतीय भाषाएँ, जैसे गुजराती, कन्नड़, मलयालम बोलनेवाले भी दक्षिण अफ्रीका में जुड़ गए। सभी नए देश, परिवेश में, अपनों से बहुत दूर, गिरमिट जीवन के संघर्षों का सामना कर रहे थे। भारत में भले ही वह खुद को किसी एक प्रांत या भारतीय भाषा से जोड़ते हों, दक्षिण अफ्रीका में सब भारतीय थे, एक थे। वैसे तो संकेत और संदर्भ से तमिल, तेलुगूभाषी भोजपुरी और अवधी भाषियों से बात कर ही लेते थे, लेकिन एक भाषा बोलने की बात अलग होती है। भाषा लोगों को निकट लाती है, विश्वास जगाती है, दूर देश में अपनों का एहसास दिलाती है, शक्ति देती है, इसीलिए नए देश में लोग सबसे पहले अपनी भाषा बोलनेवालों को ढूँढ़ते हैं। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों ने आपस में बात करने के लिए हिंदी को चुना। भवानीदयाल संन्यासी ने अपने ग्रंथ 'प्रवासी की आत्मकथा' में बहुत रोचक तरीके से बताया है कि क्यों और कैसे गिरमिटियों ने हिंदी भाषा को अपनी भाषा चुना, जबकि तमिल और तेलुगूभाषी संख्या में कहीं अधिक थे।

"गिरमिटियों की गाँठ में तो बँधे थे केवल हिंदीभाषी और मद्रासी। उनके पीछे-पीछे गुजराती तथा कुछ अन्य प्रांतवासी भी व्यवसाय के विचार से स्वतंत्ररूपेण वहाँ जा पहुँचे। इस प्रकार हिंदुस्तान के विभिन्न प्रांतों के मनुष्यों का वहाँ जमाव हो गया। उनमें कोई हिंदी बोलता था तो कोई गुजराती, किसी की बोली तमिल थी, तो किसी की तेलुगू, कुछ मलयालमभाषी थे, तो कुछ कन्नड़भाषी। एक-दूसरे की बोली समझ नहीं पाते थे। इससे कामकाज में बड़ी अड़चन होने लगी, कब तक पड़ोसी के सामने मौन साधे रहते, कहाँ तक इशारे से काम किया करते? यह स्थिति तो बड़ी अवांछनीय थी। आपस में बातचीत करने के लिए एक सार्वजनिक भाषा का सवाल सामने आया, जिसे उन्होंने बड़ी सुगमता से हल कर लिया। इस बात पर विचार करने के लिए न कहीं सभा-सम्मेलन की बैठक हुई थी, न विद्वानों की वार्त्ताएँ और न किसी प्रकार की सार्वजनिक चर्चा ही। प्रत्येक भारतीय ने व्यक्तिगत रूप से अपने मन में प्रस्ताव पास कर लिया कि विभिन्न भाषा-भाषियों से बातचीत करने के लिए हिंदी से काम लेना चाहिए। हिंदी अपनी सरलता के प्रताप से प्रवासी भाइयों की राष्ट्रभाषा बन गई। नेटाल में मद्रासियों की संख्या सबसे अधिक है और हिंदीभाषियों की तादाद उनसे बहुत कम है पर मद्रासियों के लिए हिंदी सीखना अनिवार्य हो गया। तमिल और तेलुगू द्रविड़ भाषाएँ बहुत अच्छी

बोल लेते हैं और कोई टूटी-फूटी हिंदी भी बोल लेते हैं। यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि केवल दक्षिण अफ्रीका का ही नहीं, प्रत्युत जिन-जिन उपनिवेशों में हमारे देशवासी गिरमिट की प्रथा में गए हैं, यद्यपि वे एक-दूसरे से हजारों कोस दूर हैं, तो भी यह देखकर विस्मय होता है कि उन सभी देशों के प्रवासी भारतीयों ने पारस्परिक व्यवहार के लिए एकमत से हिंदी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार किया— उसी से अपनी तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति की।"

हिंदी के शब्द भंडार और वाक्य-संरचना की सरलता के कारण गिरमिटियों ने उसे चुना और दक्षिण अफ्रीका में हिंदी एक ऐसी संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई, जिसमें अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली के साथ तमिल, तेलुगू, अंग्रेजी और अफ्रीकांस के शब्द भी अपना लिये गए। यह होना स्वाभाविक था, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की यह हिंदी इन सभी को जोड़ रही थी। क्योंकि भारत से आए लोग डरबन के आसपास ही अधिकतर रहते और काम करते थे, इसलिए उनकी हिंदी 'नेटाली हिंदी' भी कहलाने लगी (वर्मा, 2020:25-46)। भाषा के इस रूप को प्रोफेसर राजेंद्र मिस्त्री ने अपनी डॉक्टरेट की उपाधि के शोध का विषय चुना। इस शोध ने 'लैंग्वेज इन इंडेन्चर' नाम की किताब का रूप लिया। केपटाउन विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्री प्रोफेसर राजेंद्र मिस्त्री ने मुझे बताया कि जब वह टेक्सस में एम.ए. कर रहे थे तब उनकी रुचि संपर्क भाषा और क्रीयोल स्टडीज में हुई। उस समय वह इस बात से भी अचंभित थे कि कक्षा में बोली जानेवाली हिंदी, दक्षिण अफ्रीका में उनकी बोली जानेवाली हिंदी से कितनी अलग थी। दक्षिण अफ्रीका की हिंदी के लिए वह कहते हैं कि "नाम कई हैं, लेकिन संपूर्ण सहमति से अलग, लोगों से अलग समयों में। यहाँ की बोलचाल के लिए सबसे ज्यादा सुना जानेवाला नाम 'हिंदी' है और यही नाम औपचारिक जनगणना इत्यादि में इस्तेमाल किया जाता है। इस भाषा को बोलनेवालों को बाकी लोग 'हिंदुस्तानी' कहते थे,...एक पीढ़ी पहले तक कलकतिया बात का पर्याय के रूप में अपने लोगों के बीच प्रयोग होता था। तमिल बोलनेवाले उन लोगों के लिए कलताकार (वस्तुतः कलकत्ता का व्यक्ति) शब्द का प्रयोग करते थे। भोजपुरी शब्द चलती भाषा में प्रचलित नहीं है। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों द्वारा बोली जानेवाली हिंदी पर प्रो. राम भजन सीताराम, प्रो. बिसराम रामविलास तथा बाल गणेश ने भी कई महत्त्वपूर्ण शोध निबंध लिखे हैं।

प्रो. राम भजन सीताराम ने दक्षिण अफ्रीका के डरबन विश्वविद्यालय में वर्ष 1971 से 2000 तक हिंदी का अध्यापन किया। उन्होंने बताया कि भाषा को लेकर दक्षिण अफ्रीका में एक प्रकार का संघर्ष चल रहा था। "नेशनल पार्टी का अपार्थाइड 1948 से शुरू हुआ। लेकिन उससे पहले भी, अंग्रेजों के समय में भी भेदभाव होता था। अंग्रेजों के जमाने में अंग्रेजी का वर्चस्व था। उसके बाद 1948 से डच लोगों की भाषा का रहा। उसका नाम अफ्रीकांस दे दिया गया। जैसे संस्कृत का प्राकृत रूप होता है, वैसे ही डच का प्राकृत रूप बन गया अफ्रीकांस। इन लोगों ने फिर अफ्रीकांस को सब पर थोपना शुरू किया। 1976 में इसी कारण सोवेटो में विद्यार्थियों ने रिवोल्ट किया। अफ्रीकी बच्चे पहले अपनी भाषा में पढ़ते थे, फिर अंग्रेजी में। साइंस, मैथ्स अंग्रेजी में पढ़ाया जाता था, क्योंकि अफ्रीकी भाषाएँ उतनी विकसित नहीं थीं कि उनमें पढ़ाया जाए। ये वैसा ही है जैसे मानिए, भारत में कहा जाए कि अब सारी पढ़ाई संस्कृत में ही होगी। भाषा को लेकर राजनीति होने लगी थी। हिंदी शिक्षा संघ हिंदी को पढ़ाने का काम तब भी कर रहा था, हालाँकि उसका रूप तब अलग था। पंडित नरदेवजी ने इसकी स्थापना 1948 में की। देश में हिंदी पढ़ाने में उनकी और हिंदी शिक्षा संघ की मुख्य भूमिका है।"

पंडित नरदेव वेदालंकार का जन्म सन् 1913 में हुआ था और वे दक्षिण अफ्रीका एक गुजराती पुजारी के तौर पर आए थे। दक्षिण अफ्रीका आकर उन्होंने देखा कि हिंदीभाषी समुदाय पौराणिक और वैदिक दो तरह की विचारधाराओं में बँटा हुआ था। तब उन्होंने हिंदी को विकसित और प्रचारित करने पर जोर दिया, जिससे वह दोनों समूहों को एक साथ जोड़ने में सफल हुए। उनका दक्षिण अफ्रीका में हिंदी और अन्य मातृभाषाओं के लिए किया गया योगदान अतुलनीय है। अफ्रीका पहुँचने के एक साल बाद उन्होंने सन् 1948 में 'हिंदी शिक्षा संघ' दक्षिण अफ्रीका की स्थापना की। पंडित नरदेव उसकी प्रेरक शक्ति भी थे और उसके पहले अध्यक्ष भी। उन्होंने हिंदी को एक स्थान दिया और कक्षाओं और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला, जो वह चलाते थे, उसके माध्यम से हिंदी व्याकरण से सबका परिचय करवाया। उसके बाद उन्होंने परीक्षाओं के द्वारा धर्म शिक्षा अध्ययन आरंभ किया और जब कोई विद्यार्थी इन परीक्षाओं के क्रम में सफल हो जाता था, वे उसके बाद विद्यार्थियों को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा भारत की प्रथम से रत्न स्तर की हिंदी परीक्षाओं के लिए तैयार करते थे।

आज दक्षिण अफ्रीका का हिंदी शिक्षा संघ हिंदी को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय संघ है। वर्तमान में हिंदी शिक्षा संघ अपनी वार्षिक परीक्षा स्वयं तैयार करता है और औसतन 700 विद्यार्थी ये परीक्षा देते हैं। उनको प्रथम से कोविद और शिक्षण पद्धति शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम ग्रेड दिए जाते हैं। बताया जाता है कि सन् 1985 से 2020 तक, कम-से-कम 35,000 छात्रों ने हिंदी शिक्षा संघ की परीक्षा दी है। लगभग सभी लोग जो विभिन्न पाठशालाओं में हिंदी सिखा रहे हैं, हिंदी शिक्षा संघ के पढ़े हुए हैं। हर साल हिंदी छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिए और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए हिंदी शिक्षा संघ इस्टेडफड आयोजित करता है। इस्टेडफड का माहौल बिल्कुल घर की शादी जैसा होता है। प्रतियोगिता की तैयारी होती है और हिंदी समाज के लोग कुछ दिन पहले से भोज की तैयारी में साथ जुटते हैं— सब्जियाँ काटकर तैयार की जाती हैं, पूड़ियाँ बेलकर रखी जाती हैं। पूरे वातावरण में उत्साह और सहयोग दिखता है। हिंदी शिक्षा संघ का 'हिंद वाणी' नाम का हिंदी रेडियो स्टेशन भी है, जो सन् 1998 में स्थापित किया गया था। 'हिंद वाणी' को संघ के सबसे सफल प्रोजेक्टों में गिना जाता है।

हीरालाल शिवनाथ जी 12-13 साल के थे जब उन्होंने पंडित नरदेव वेदालंकार को एक कार्यक्रम में सुना। उनके भाषण से वह इतने प्रभावित हुए कि जब पुस्तकालय में काम करने के लिए पंडितजी को कुछ युवा स्वयं सेवकों की जरूरत थी, तो उन्होंने अपना नाम भी दे दिया और हर हफ्ते डरबन स्थित हिंदी शिक्षा संघ जाने लगे। जो संबंध तब स्थापित हुआ, वह आज भी चल रहा है। हिंदी शिक्षा संघ की मासिक इ-पत्रिका 'हिंदी खबर' हीरालाल शिवनाथ निकालते हैं। यह ई-पत्रिका अपने पाठकों को हिंदी संघ में हो रही गतिविधियों से परिचित कराती है और हिंदी जगत् में हो रहे कार्यक्रमों के बारे में बताती है। यह पत्रिका दुनिया के सभी प्रमुख केंद्रों में जाती है, जहाँ हिंदी को सांस्कृतिक या शैक्षणिक भाषा के रूप में पढ़ाया जा रहा है।

प्रो. बिसराम रामविलास डरबन विश्वविद्यालय के वेस्टविल परिसर में संस्कृत विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष रहे हैं। हिंदी और संस्कृत भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में उनका महत्त्वपूर्ण सहयोग है। उनके स्कूल में भाषा और संस्कृति से जुड़ी चीजें सिखाई जाती हैं। हिंदी सीखने के लिए उन्होंने एक वेबसाइट भी बनाई है, जिसमें हिंदी सीखने के लिए बीस पाठ हैं। 'लेट्सस्पीक हिंदी' नाम की उनकी किताब में पहले छात्र अंग्रेजी के अक्षरों से हिंदी सीखते हैं (ट्रांसलिटरेशन) और फिर कुछ समय के बाद देवनागरी सीखते हैं। दक्षिण

अफ्रीका में हिंदी की स्थिति पर वह बताते हैं कि हिंदी दक्षिण अफ्रीका में राजभाषा नहीं है, लेकिन दक्षिण अफ्रीका संविधान के प्रीएम्बल में हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं की लिस्ट में है, जिनका आदर किया जाएगा। जब दक्षिण अफ्रीका में अपार्थाइड खत्म हुआ तो जातियों के लिए अलग विश्वविद्यालय नहीं रहे। इससे भारतीय भाषाओं, हिंदू स्टडीज और भारतीय दर्शन पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या कम हो गई और भारतीय भाषाओं और हिंदू स्टडीज का विभाग बंद करना पड़ा। जब नौकरी के अवसर कम हो गए तो पढ़नेवाले कम हो गए। यहाँ हिंदी बोलनेवाले लगातार कम होते जा रहे हैं। हालाँकि आर्य समाज और सनातन धर्म सभा सीधे और सक्रिय रूप से हिंदी शिक्षा संघ के माध्यम से हिंदी का प्रचार करते हैं, हिंदी फिल्में, टी.वी. सीरियल, संगीत यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं, बॉलीवुड के कलाकार आकर यहाँ बड़े कार्यक्रम करते हैं, उनमें बहुत भीड़ होती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि देखने और सुननेवाले हिंदी भाषा बोलते और समझते हों या वह हिंदी सीखना चाहते हों।

जब हिंदी बोलनेवाले लगातार कम होते दिख रहे हों तो देश में हिंदी का भविष्य क्या है? डॉ रामविलास कहते हैं, "हिंदी कम बोलनेवाले होने का मतलब यह नहीं है कि हिंदी के प्रति लोगों का प्रेम नहीं है। आज जो भारतीय दक्षिण अफ्रीका में हैं, उनमें से अधिकांशतः उन भारतीयों की संतान हैं, जो गिरमिटिया मजदूर के रूप में दक्षिण अफ्रीका पहुँचे थे। हिंदी एक ब्रैंड, एक विरासत की तरह देखी जाती है, जो गिरमिटियों को परिभाषित करती है, यह समझिए कि उनके मन में हिंदी के प्रति एक तरह की देशभक्ति है।" वह कहते हैं भाषा के प्रति उत्साह जगाने के लिए भारतीय कंसलेट के जरिए बिहार की नाटक मंडलियों को बुलाना चाहिए। वहाँ की बोली दक्षिण अफ्रीका की बोली के सबसे निकट है। बिरहा, पछरा, कजरी, सोहर और ऐसी ही सभी शैलियों को (जिनसे यहाँ के लोग परिचित हैं) पुनर्जीवित करनी चाहिए। ऐसा करने से लोगों के मन में अपनी सांस्कृतिक जड़ों को करीब से जानने की उत्सुकता होगी, गर्व होगा, आत्मसम्मान बढ़ेगा और अस्तित्व मजबूत होगा। ऐसा होने से अपने आप हिंदी के प्रति रुझान बढ़ने लगेगा। हीरालाल शिवनाथ का मानना है कि दक्षिण अफ्रीका में हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में शुद्ध अकादमिक दृष्टि की जरूरत नहीं है, जरूरत है ऐसे पाठ्यक्रम की, जो दक्षिण अफ्रीका के संदर्भ के अनुकूलन हो और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। वह कहते हैं, "दक्षिण अफ्रीका के लोग हिंदी इसलिए सीखना चाहते हैं, क्योंकि वह उनकी अस्मिता को बतानेवाला एक माध्यम है। हमें ऐसे कार्यक्रमों की आवश्यकता है, जो हमारे शिक्षकों को लगातार सशक्त और समर्थ बनाएँ।"

यह हमारा सौभाग्य है कि भारतीयों के साथ जहाँ भी हिंदी भाषा गई, कुछ ऐसे लोग हमेशा रहे, जिन्होंने हिंदी को बचाना और बढ़ाना अपना कर्तव्य और दायित्व समझा। सुदूर उन देशों में हिंदी भाषा कितनी विकसित होती है, यह भारत के सहयोग पर निर्भर करता है। सरकार ऐसे लोगों को वहाँ भेजे, जो भाषा वैज्ञानिक हों तो निश्चित हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का काम वैज्ञानिक तरीके से होगा, नतीजे आँके जा सकेंगे, लेकिन हिंदी बढ़ाने के नाम पर अगर हम केवल भारतीय कविता पाठ और भारतीय साहित्य पर चर्चा करेंगे तो उन देशों में हिंदी का विकास कैसे होगा? दक्षिण अफ्रीका के लिए आवश्यक है कि वहाँ के स्थानीय भारतीयों की हिंदी संबंधित जरूरतों को केंद्र में रखकर परिणाम उन्मुख परियोजनाएँ आरंभ की जाएँ जो वहाँ के शिक्षकों को सशक्त करें।

□

sunandaverma@yahoo.com

श्रीलंका में हिंदी की दशा और दिशा

—अतिला कोतालावाल

हिंदी मात्र एक भाषा नहीं, बल्कि भारत की साझी विरासत और महान् संस्कृति को विश्व भर में जन-जन तक पहुँचानेवाली समर्थ संवाहिका भी है। हिंदी भाषा की संगीतात्मकता, मधुरता व रोचकता विदेशी लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित करके रखने की कम क्षमता नहीं रखती। हिंदी भाषा श्रीलंका के लोगों के बीच आत्मीयता के मधुर संबंध स्थापित कर उन्हें भारतीय संस्कृति से जोड़े रखने में अहम भूमिका निभाती है।

पहले ऐतिहासिक परिदृश्य में देखा जाए तो श्रीलंकावासियों का हिंदी भाषा के प्रति प्रेम कोई आज से नहीं है। श्रीलंका में हिंदी के अतीत को ढूँढ़ना बहुत आसान काम भी नहीं है। उसका मुख्य कारण यह है कि श्रीलंका एक अहिंदीभाषी देश है, जहाँ सिंहली, तमिल तथा अंग्रेजी का बोलबाला है। इसके बावजूद भी भारत तथा श्रीलंका के आपसी संबंधों को देखा जाए तो उनका एक लंबा अतीत है। प्राचीन काल से ही दोनों देश सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा आर्थिक आदान-प्रदान के कारण एक-दूसरे से एक समीप संबंध रखते रहे हैं। इतना ही नहीं, जहाँ तक दोनों देशों की भाषाओं की बात आती है, सिंहली और हिंदी का भी काफी लंबा अतीत है, जो प्राचीन काल से चला आ रहा है। दोनों भाषाएँ आर्य भाषा परिवार की हैं। दोनों भाषाओं की लिपियों का स्रोत भी एक ही ब्राह्मी लिपि है। दोनों भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है। अतः व्याकरणिक संरचना और शब्द-भंडार भी इन्हें संस्कृत भाषा से विरासत में मिला है। इसलिए दोनों भाषाओं के शब्द, वाक्य रचना में काफी समानताएँ हैं। यही कारण है कि हिंदी भाषा सिंहलियों को अकसर आत्मीय लगती है और जहाँ तक दोनों देशों की संस्कृतियों की बात आती है तो श्रीलंका की संस्कृति और भारत की संस्कृति में बहुत-सी समानताएँ हैं।

श्रीलंका में हिंदी की लोकप्रियता के कई कारण हैं। अतीत से ही श्रीलंका की जनता का हिंदी के प्रति मुख्य आकर्षण हिंदी फिल्में और हिंदी गीत ही रहा है। यही कारण है कि श्रीलंका में हिंदी भाषा बहुत लोकप्रिय बनी। 'रेडियो सीलोन' (राष्ट्रीय रेडियो) यानी श्रीलंका ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन द्वारा हिंदी गाने बहुत पहले से प्रचुर मात्रा में प्रसारित होने लगे। हिंदी भाषा के प्रति जनता में प्रेम जाग्रत करने में 'रेडियो सीलोन' की बहुत बड़ी भूमिका है। हिंदी गानों से ओतप्रोत होकर इनके अर्थ और भाव को समझने के लिए लोग हिंदी सीखने की ओर प्रेरित होने लगे। हिंदी फिल्मों और गीतों पर मोहित होकर यहाँ के कुछ बुद्धिजीवी भारत गए और हिंदी पढ़कर श्रीलंका

* स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में हिंदी शिक्षिका एवं अनुवादक।

वापस लौटे। उन्हीं के प्रयासों से हिंदी भाषा की शिक्षा अनौपचारिक रूप से आरंभ हुई। जगह - जगह पर हिंदी की कई संस्थाएँ खुलीं। उन संस्थाओं में यहाँ के हिंदी फिल्मों के दीवाने बोलचाल की हिंदी पढ़ने लगे और मधुर हिंदी भाषा उनके लिए मनोरंजन का एक साधन बनी। यही नहीं, श्रीलंका के कुछ समाचार-पत्रों में सिंहली में अर्थ सहित हिंदी गाने और हिंदी के पाठ भी सिलसिलेवार प्रकाशित होने लगे। इसके कारण पूरे देश के हिंदी चाहनेवालों को अनौपचारिक रूप से हिंदी पढ़ने का अवसर मिलने लगा। हिंदी फिल्मी गीत यहाँ इतने लोकप्रिय हैं कि चाहे पुराने हों या नए, सभी गायकों के गाने आज भी सबकी जुबाँ पर हैं। युवा वर्ग का हिंदी के प्रति आकर्षण तथा सबसे बड़ी प्रेरणा सिनेमा के कारण ही है। आजकल बड़े पैमाने पर हिंदी धारावाहिक भी पसंद किए जा रहे हैं। उसके अतिरिक्त धार्मिक यात्रा के कारण बोधगया, बिहार, लखनऊ, साँची आदि स्थानों की यात्रा के प्रयोजन से भी हिंदी सीखी जाती है। मिडल ईस्ट में गए हुए लोग वहाँ पर भारतीय लोगों के साथ प्रचुर मात्रा में संपर्क बनाए रखने के कारण हिंदी सीख लेते हैं और वापस आने पर हिंदी सीखने की इच्छा प्रकट करते हैं। चिकित्सा के कारण और शास्त्रीय नृत्य संगीत के कारण भी हिंदी की लोकप्रियता यहाँ बरकरार है। हिंदी की लोकप्रियता में व्यापार, संवाद और पर्यटन भी प्रमुख हैं। आजकल योग भी हिंदी सीखने का एक मुख्य कारण बनता जा रहा है। श्रीलंका के कई प्रदेशों में योग प्रशिक्षण संस्थाएँ खुल गई हैं, जिसके कारण भारत के प्रति ही नहीं, हिंदी भाषा के प्रति भी लोगों का श्रद्धा भाव उमड़ता हुआ दिखाई देता है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों की परिस्थितियों में भी हमारे पास औपचारिक हिंदी शिक्षण की बहुत ही सीमित व्यवस्था रही है। उनमें प्रमुख व्यवस्था प्रत्यक्ष शिक्षण व्यवस्था (Direct Teaching Method) की थी। आरंभिक काल में भारत में चेन्नई स्थित 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' एवं वर्धा स्थित 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' द्वारा संचालित हिंदी परीक्षाओं में बैठने का अवसर विद्यार्थियों को मिला। बहुत लोग परीक्षाओं को देने मात्र के लिए हिंदी सीखते थे। कक्षा शिक्षण (Class Room Teaching) के दौरान बहुत शिक्षकों ने इस प्रक्रिया को रोचक बनाने के लिए हिंदी फिल्मों का, फिल्मी संवादों का, फिल्मी गीतों का उपयोग अवश्य किया।

20वीं सदी तक आते-आते हिंदी शिक्षण क्षेत्र में परिदृश्य बदला। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी भाषा शिक्षण की बात तब आई, जब केंद्रीय हिंदी संस्थान के सहयोग से बने पाठ्यक्रम श्रीलंका में लागू हुए। इन पाठ्यक्रमों के द्वारा कुछ नए आयाम आए और वैज्ञानिक ढंग से हिंदी भाषा का शिक्षण स्तरीय बन गया। इन सबके दौरान जब कोरोना की समस्या आई, तब सबकुछ बदल गया। ऐसे समय में ऑनलाइन शिक्षण का विकल्प सामने आया। पहले विद्यार्थी और गुरु के बीच में जो प्रत्यक्ष संपर्क सूत्र था, वह एक तरह से समाप्त-सा हो गया। यह ऑनलाइन शिक्षण में उत्पन्न सबसे बड़ा संकट था। इतनी विकट परिस्थितियों में भी भाषा शिक्षण को रोचक और सुगम बनाने का प्रयत्न जारी था। परिणामस्वरूप ऑनलाइन-शिक्षण द्वारा बहुत सामग्री सामने आई और मल्टीमीडिया का खूब प्रयोग होने लगा। परिणामस्वरूप हिंदी शिक्षण को अधिकाधिक रोचक बनाने में शिक्षक सफल हुए।

इन सबके बाद अब जो युग आया है, वह Hybrid Technology का है। आजकल श्रीलंका की करीब सभी संस्थाओं में प्रत्यक्ष शिक्षण और ऑनलाइन शिक्षण को साथ मिलाकर चलने का प्रयास किया जाता है। आजकल शिक्षक अपनी कक्षा शिक्षण के दौरान प्रचुर मात्रा में अधुनातन

डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। एक तरह से यह हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। अब एक तरह से सबकुछ वैश्विक हो गया तो आसानी से शिक्षण सामग्री भी उपलब्ध है। इतना ही नहीं, शिक्षक द्वारा Recorded सामग्री उपलब्ध कराने के कारण विद्यार्थी कभी भी,कहीं पर भी शिक्षण को ग्रहण कर सकता है, जितनी बार हो सके, बार-बार सुनकर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है। यह भी इस युग कि बहुत बड़ी उपलब्धि है।

हिंदी शिक्षण के पाँच सालों से अधिक कालावधि में श्रीलंका में हिंदी भाषा की उन्नति तथा प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी केंद्रित कई शब्दकोश, भाषा विज्ञान और विविध व्याकरण विषयक लेखों एवं पुस्तकों की रचना की गई। अनेक कहानियों का, उपन्यासों का अनुवाद प्रचुर मात्रा में हुआ है। प्रेमचंदजी जैसे महान् साहित्यकार के करीब-करीब सभी उपन्यास सिंहली में अनूदित हो चुके हैं।

वर्तमान में श्रीलंका के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। केलनीय विश्वविद्यालय में हिंदी का एक स्वतंत्र विभाग है। यहाँ पर (सामान्य) बी.ए हिंदी (विशेष) तथा यह एकमात्र विश्वविद्यालय है, जहाँ एम.फिल. तथा पी-एच.डी की उपाधियों से संबंधित शोध कार्य हिंदी में किए जा रहे हैं। अन्य कई विश्वविद्यालयों में भी हिंदी अध्यापन का कार्य चल रहा है। इनके अलावा, श्रीलंका के करीब 80 से अधिक सरकारी विद्यालयों में O level (+10) तथा A level (+12) में हिंदी भाषा पढ़ाई जाती है। इनके अलावा, कई स्वैच्छिक संस्थानों के द्वारा भी हिंदी शिक्षण कार्य का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

विशेषतः हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भारतीय दूतावास का योगदान अग्रणी है। भारत का उच्चायोग हिंदी के साथ अनेक विषयों की शिक्षा के लिए हर वर्ष 500 से अधिक छात्रों को छात्रवृत्ति पर भारत भेजता है। छात्रवृत्ति पाने के लिए भी कुछ छात्र बचपन से ही हिंदी सीख रहे हैं। उसके साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, जो अब 'स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र' के नाम से जाना जाता है और भारतीय सहायक उच्चायोग-केंडी के अधीन भारतीय कला केंद्र, हम्बंतोट केंद्र आदि की भूमिका बड़ी सराहनीय है। स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र कोलंबो में भारतीय संस्कृति का प्रतिबिंब है, तो भारतीय कला केंद्र कैंडी का। यहाँ पर हिंदी शिक्षण के साथ-साथ भारतीय नृत्य, संगीत, योग और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियाँ चलती रहती हैं। सांस्कृतिक केंद्र में होली, दीपावली, नवरात्रि, राखी, बसंत पंचमी आदि त्योहारों को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इन पर्वों पर श्रीलंका के लोगों की भीड़ देखते ही बनती है।

निष्कर्ष यह है कि आरंभ में हिंदी की दशा उतनी संतोषजनक नहीं थी। निस्संदेह उस समय हम अपने शिक्षण को रोचक नहीं बना पाते थे। दूसरे युग में भाषा शिक्षण के अधुनातन सिद्धांतों के आधार पर केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा निर्मित पाठ्यक्रमों को अपनाने से हिंदी शिक्षण को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने में बल मिला। इसके बाद कोरोना के युग के साथ ही अधुनातन तकनीक का प्रयोग हिंदी शिक्षण में हुआ और बहुत बड़ी क्रांति के साथ शिक्षण के नए आयाम सामने आए और दिशा पूरी तरह से बदल गई। अब ऐसा लग रहा है कि आनेवाला युग हिंदी शिक्षण के क्षेत्र का सर्वोत्तम उज्ज्वल युग होगा। वैसे तो वैश्वीकरण के इस युग में श्रीलंका में भी हिंदी की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यों कहा जाए तो हिंदी भाषा की लोकप्रियता यहाँ चरम शिखर पर है।

□

athila321@gmail.com

उज्बेकिस्तान में हिंदी : प्रचार-प्रसार और शिक्षण

—डॉ. सिरोजिद्दीन नुर्मातोव

उज्बेकिस्तान में हिंदी शोध कार्य की परंपराएँ आदिकालीन पूर्व की अद्वितीय सभ्यता और खासतौर से भारत की प्राचीन आध्यात्मिक तथा भौतिक संस्कृति की और उज्बेक लोगों के मन व मस्तिष्क में खिलने वाली सदियों पुरानी अभिरुचि और प्राकृतिक आकर्षण से संबंधित हैं, जो कुल मिलाकर इस देश में Oriental Studies में परिवर्तित हो गए थे।

यह सर्वविदित है कि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो मध्य एशिया में भारत की ओर जीती-जागती दिलचस्पी की जड़ें बहुत गहरे भूतकाल से जमी थीं। उसी जमाने से हमारे युग तक अपनी मौलिकता और वैज्ञानिक महत्त्व में अतुल्य ख्वारज्म के विद्वान् अलबेरूनी की अद्भुत कृतियाँ आ पहुँची हैं, जिन्होंने भारत और उसकी आश्चर्यजनक सभ्यता के चमत्कार के आदर्शों को सारे विश्व को खोलकर दिखाया। भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये रचनाएँ, जो दसवीं और ग्यारहवीं शतियों के संगम में रची गई थीं, अपने आशय में भारतीय भाषाओं के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण मोड़ की अहमियत रखनेवाले काल के द्योतक हैं, जिसमें मध्य आर्य-भारतीय भाषाकाल से नवीन भारतीय भाषाकाल की ओर संक्रमण प्रतिबिंबित है।

दूसरे उदाहरण के रूप में चौदहवीं शती के भारतीय महाकवि अमीर खुसरो देहलवी के ललित साहित्य के कलापूर्ण चरित्रों और कथावस्तुओं का गहरा प्रभाव उज्बेक साहित्य के जन्मदाता अजिमोरशान शायर अलिशेर नवाई की विशाल महाकृति 'खमसा' में पाया जाता है।

भारत और भारतीय भाषाओं से सीधा संबंध रखनेवाली अमूल्य जानकारियाँ आगे चलकर दूसरे उज्बेक कवि और चिंतक म.ज. बाबर की विख्यात रचना 'तूज्क-ए-बाबरी' या उज्बेक में जिसका शीर्षक 'बाबरनामा' में निहित है। उस समय से हमारे देशों के संपर्क निरंतर बढ़ते जाने लगे थे और इस प्रक्रिया में अनेक उज्बेक कवि और लेखकों ने योगदान किया था, जिनमें उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में रहनेवाले जाकिरजान फुर्कत, इसाक खान इब्रत और हमजा नियाजी जैसे कीर्तिप्राप्त भद्रजन भी विशेष स्थान रखते हैं।

उपरोक्त तथ्य आजकल के उज्बेक भारतशास्त्र के विकास के लिए और खासकर Indology के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। निस्संदेह भूतकाल में भारतीय भाषाओं और उनमें हिंदी भाषा के क्षेत्र में प्रज्ज्वल उपलब्धियाँ उज्बेक विद्वानों और चिंतकों को मिली थीं, परंतु आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखने पर यह मानना पड़ता है

* ताश्कंद सरकारी प्राच्य विद्या विश्वविद्यालय, उज्बेकिस्तान के दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया की भाषाओं के विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर

कि वास्तविक वैज्ञानिक आधार पर बने शिक्षा और शोधों की मौलिक प्रवृत्तियाँ प्रगतिशील रूसी विद्वानों की सहायता से चालू की गई थीं। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म और दर्शन के प्रख्यात मर्मज्ञ Academician S.F.Oldenburg ने सबसे पहले यह प्रस्ताव रखा था कि ताशकंद में विशेष Oriental Studies के क्षेत्र में एक शिक्षात्मक संस्था की स्थापना की जाए। बीसवीं सदी के आरंभ में ऐसी संस्था की योजनाओं पर बहुत विचार-विमर्श करने के बाद भारतीय भाषाओं में से संस्कृत और उर्दू को प्राथमिकता दिए जाने का फैसला किया गया था। इसका कारण संभवतः यह था कि उस समय भारत पराधीन देश था और इसके आधार पर अधिक बल प्राचीन और मध्यकालीन युगों से संबंधित भाषाओं की शिक्षा-दीक्षा दिए जाने और Classical Philology के हितों से प्रेरणा लेकर आगामी पाठ्य कार्यक्रम बनाने का निश्चय उचित समझा गया था।

हमारी समझ में जब 15 अगस्त, 1947 के भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई थी तो ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी में वर्तमान काल में प्रचलित नवीन भारतीय भाषाओं के पाठन को ध्यान में रखते हुए हिंदी और उर्दू भाषाएँ पढ़ाने का कार्यक्रम तैयार किया गया था। इसके अनुसार एक नए विभाग अर्थात् Indian Philology Department की नींव डाली गई थी, जिसका यथोचित पहला शीर्षक North Indian Philology Department हो गया था।

गत अवधि के दौरान हमारे यहाँ नवीन भारतीय भाषाओं तथा साहित्य पर विशेषज्ञों की तैयारी के उद्देश्य से बहुत सी पाठ्य पुस्तकें, शब्दकोश और दूसरी पाठ्य सामग्रियाँ संकलित की गई थीं, जिनका उपयोग माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के संस्थानों में हो रहा है और विभाग के सारे सदस्यगण हमारे पूर्वजों और स्वर्गवासी गुरुजनों की सृजनात्मक धरोहर को सीखने और दैनिक कार्यों में लाने को अपना सज्जनात्मक कर्तव्य समझते हैं।

आज तक इस प्रक्रिया के अंतर्गत जिसका श्रीगणेश भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के उपलक्ष्य में किया गया था, कुल मिलाकर एक हजार से अधिक विशेषज्ञों को तैयार किया गया है, जो वर्तमानकाल में न केवल हमारे देश, बल्कि विदेशों में भी सफलतापूर्वक कार्यरत हैं। इनकी संख्या में रूस, युक्रेन, कजाकिस्तान, किरर्गिजस्तान, तजाकिस्तान, जॉर्जिया, अजरबैजान, क्यूबा, वियतनाम, पोलैंड, जर्मनी, बुल्गेरिया, मंगोलिया, लिटोनिया जैसे छोटे और बड़े देश भी हैं।

उज्बेकिस्तान में भारत-विद्या की परंपराओं का विकास, जो पिछले पचहत्तर वर्षों से होता आ रहा है, मुख्यतः भूतपूर्व सोवियत देश में कार्यरत मॉस्को और लेनिनग्राद के दो मौलिक भारतविद् स्कूलों की उपलब्धियों और अनुभवों के आधार पर उभर आया था। आजकल हमारे देश में हिंदी भाषा की उच्चतम शिक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाले हमारे विभाग के अध्येताओं में, जो आज दक्षिण एशियाई भाषाओं का विभाग कहलाया जाता है, उन दोनों स्कूलों के वरिष्ठ डॉ. मोस्काल्योव और प्रो. सेरेब्रयाकोव जैसे प्राध्यापक शिक्षक रहे थे। कारण विभाग की आधुनिक कार्यप्रणाली में उपर्युक्त स्कूलों की परंपराएँ अभी तक सुरक्षित हैं।

स्वाधीन उज्बेकिस्तान के माध्यमिक और उच्चशिक्षा के क्षेत्रों में हो रहे सुधारों के कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए, जिनका लक्ष्य निरंतर शिक्षा का कार्यान्वयन माना जाता है, हिंदी की अध्यापन प्रणाली को हम तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें सबसे पहले चरण में आम शिक्षा प्रदान करनेवाली दो पाठशालाएँ हैं, जहाँ दूसरी कक्षा से नौवीं कक्षा तक पढ़ाई होती है। दूसरे चरण में तो, जिसमें दसवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक शिक्षा दी जाती है, अकादमिक lyceums का नाम ले लिया है और तीसरा चरण हमारे विभाग में दी जानेवाली बी.ए. और एम.ए. की शिक्षा के रूप में प्रस्तुत है।

इसी संबंध में मेरा उद्देश्य केवल पाठकों को तीनों चरणों की बुनियाद में डाले गए मुख्य सिद्धांतों से अवगत कराने का है।

इसी पथ पर आगे बढ़ते हुए हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि के स्वरूप में इस बात पर विशेष ध्यान देना उचित है कि गत अवधि में हमारे विभाग के अधिकांश प्राध्यापक पीएच.डी. डिग्री प्राप्त करने के बाद एक साथ समान रूप से शिक्षात्मक तथा वैज्ञानिक शोध-संबंधी काम करते आ रहे हैं। यह बात भी बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है कि शोधकार्य की प्रणाली में शिक्षा संबंधी पाठ्यपुस्तकों, शब्दकोश और पाठ्य सामग्री का संकलन भी अनिवार्यता से प्रस्तुत है। इसी दिशा में स्वतंत्रता से पूर्व के दौर में हमारे विभाग के यहाँ विश्वविद्यालयों के लिए रचित स्वर्गीय डॉ. रेना आउलोवा की पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त अन्य प्रौढ़ अध्यापकों के प्रयासों के फलस्वरूप उज्बेकिस्तान के कई नगरों और प्रांतों में खुले हुए माध्यमिक स्कूलों के लिए भी काफी मात्रा में विभिन्न कक्षाओं के स्तर पर काम में लाई जाने वाली पाठ्य सामग्रियाँ संकलित हुई थीं। निस्संदेह इसी सज्जनात्मक कार्य में हमारे विभाग के बहुत से अध्यापक लोगों ने सम्मिलित होकर अद्वितीय आत्मत्याग से भाग लिया था।

उज्बेकिस्तान के हिंदी-प्रेमियों के लिए यह गर्व की बात है कि सन् 2007 में न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में उज्बेकिस्तानी विदुषी डॉ. उल्फात मुखिबोवा को पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उनसे पहले हिंदी के जाने-माने वरिष्ठ विद्वान् प्रोफेसर अजाद शमातोव को सन् 2003 में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में तथा डॉ. फतिह तेशाबाएव और डॉ. शिरीन जलीलोवा को सन् 1999 में लंदन में आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में 'सम्मानित विद्वान्' पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका था।

यह भी उल्लेखनीय है कि उज्बेक भारतविदों के गर्व और सौभाग्य की बात है कि सन् 2014 में भारत के राष्ट्रपति स्वर्गीय श्री प्रणब मुखर्जी की ओर से स्वर्गीय प्रोफेसर अजाद शमातोव को जॉर्ज ग्रियर्सन नामक पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

प्रोफेसर अजाद शमातोव ने उज्बेकिस्तान में भारत-विद्या के विकास के लिए, विशेषकर हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने में काफी परिश्रम किया है। उनकी तरफ से भाषा विज्ञान, भारतीय साहित्य, विशेषकर भारतीय आर्य भाषाओं से संबंधित दो सौ से अधिक वैज्ञानिक-ग्रंथ, निबंध, पाठ्यपुस्तकें, शब्दकोश बड़ी संख्या में प्रकाशित किए गए हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि तब उज्बेकिस्तान के प्रति हिंदी-प्रेमियों के लिए सौभाग्य का दिन रहा था जब 7 जुलाई, 2015 को भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की उज्बेकिस्तान यात्रा के दौरान उनके हाथों प्रथम उज्बेक-हिंदी शब्दकोश का लोकार्पण हुआ था, जिस शब्दकोश को वरिष्ठ भारतविद् विद्वान् प्रोफेसर अजाद शमातोव और वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक बयात रखमतोव ने बनाया था। उस अवसर पर उज्बेकिस्तान के माननीय प्रधानमंत्री शवकात मिर्जियोएव (वर्तमानकाल में उज्बेकिस्तान गणतंत्र के राष्ट्रपति) तथा प्रोफेसर अजाद शमातोव और भारतविद् बयात रखमतोव भी उपस्थित थे।

उज्बेकिस्तान में स्थित ताशकंद प्राच्य विद्या संस्थान के दक्षिणी एशिया की भाषाओं के विभाग के अध्यापकगण विविध दिशाओं में अपने शोध कार्य करते आ रहे हैं। उल्लेखनीय है कि उनके बीच विशेषकर भाषा-विज्ञान तथा भारतीय साहित्य से संबंधित दिशाओं में काफी शोध कार्य किए जा चुके हैं तथा कई अन्वेषण ग्रंथों का प्रकाशन भी हो चुका है।

वरिष्ठ भारतविद् प्रोफेसर अजाद शमातोव की ओर से 'हिंदी भाषा का प्रामाणिक व्याकरण',

'दक्षिणी एशिया की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन', 'हिंदी-उज्बेकी शब्दकोश', 'उज्बेक-हिंदी शब्दकोश', 'हिंदी भाषा का सैद्धांतिक व्याकरण' आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। डॉ. तमारा होदजायेवा की तरफ से आधुनिक भारतीय साहित्य से संबंधित तथा डॉ. उल्फात मुखिबोवा की तरफ से प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य से, विशेषकर भक्ति साहित्य से संबंधित कई भाषावैज्ञानिक रचनाएँ छापी गई हैं।

यह बात अति उचित लग रही है कि वर्तमान उज्बेक और हिंदी भाषाओं की सामाजिक और व्यावहारिक विशेषताओं में भी समानता उत्पन्न हो रही है। उदाहरणार्थ दोनों भाषाएँ हाल ही में स्वाधीन हुए देशों की राष्ट्रभाषाएँ बन चुकी हैं, जिनमें उन्हीं देशों की बहुजातीयता, बहुसांस्कृतिकता और बहुपंथीयता निहित है। अतः दोनों में एक ही साथ विशेष महत्त्व रखनेवाली भाषा निर्माण की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, जो भाषागत परिस्थिति और भाषागत राजनीति पर निर्भर हैं। मिसाल के तौर पर नई तकनीकी प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक परिभाषाओं के निर्माण और प्रमाणीकरण तथा नए शब्दों और परिभाषाओं को बनाने के स्रोतों की खोज, बोलचाल और साहित्य शैलियों के विभेदों से निपटने के उपायों का निर्धारण और स्पष्टीकरण जैसी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। इन समस्याओं को सुलझाने की विधियाँ हमारे बीच में विचार और अनुभव का आदान-प्रदान और आपसी समृद्धिकरण की परंपराओं को विकसित करने के प्रयत्नों से ही दोनों भाषाओं की जनताओं को आपस में पास लाने और सांस्कृतिक समन्वय की दिशा में आगे बढ़ाने के हेतु नए-नए फलदायक आयाम खुल सकते हैं।

उज्बेकभाषी विद्यार्थियों को पढ़ाते समय समानताप्रधान विशेषताओं के अलावा दोनों भाषाओं के भिन्न-भिन्न तत्त्वों का आकलन करना भी अत्यंत आवश्यक माना जा सकता है। यहाँ पहले-पहल हिंदी भाषा की संरचना में तत्सम शब्दावली और शब्दरचना को दृष्टि में रखना जरूरी है, जिनके नियमों के अनुसार अध्यापकों को पदरचना और शब्दरचना की मुख्य पद्धतियों को जानने और प्रयोग में लाने की आवश्यकता है, जो तत्सम शब्दों और रूपों के साँचे बनाने के लिए आधार का काम दे सकते हैं। साथ ही अध्यापकों को हिंदी के शब्द-समूहों के विकास की मौलिक प्रवृत्तियों से परिचित होकर उनको विद्यार्थियों की चेतना तक पहुँचाने में सक्षम होना चाहिए।

आजकल के अंतरराष्ट्रीय संबंधों में अत्यंत महत्तम माध्यम की हैसियत से उपयोगी भाषा अंग्रेजी के हिंदी के शब्द भंडार, ध्वनिमाला और व्याकरण पर गंभीर प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसी संदर्भ में उच्च शिक्षा प्रणाली तथा माध्यमिक स्कूलों में कार्यरत भारतविद् लोगों को अंग्रेजी के व्याकरण और शब्दावली के सिद्धांतों का ज्ञान उपलब्ध कराके ठेठ हिंदी के और अंग्रेजी से आए शब्दों के अंतरों को गहरी समझ के साथ-साथ दोनों भाषाओं के मूर्धन्य व्यंजनों का फर्क बूझना भी बहुत आवश्यक है।

इस प्रकार सैद्धांतिक उद्देश्यों के अतिरिक्त उपरोक्त विवरणों को व्यावहारिक लक्ष्यों की ओर निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। इसी प्रकार के विवरणों के लिए प्रयुक्त होनेवाली पद्धतियों में से फॉर्मल-सिस्टेमिकल और फंग्शनल-कम्युनिकेटिव पद्धतियाँ सर्वोपयोगी हैं। इन पद्धतियों के अंतर्गत एक भाषागत इकाई अर्थात् भाषागत घटना अन्य भाषाओं की प्रणाली में फिर से प्रस्थापित इकाई के रूप में मानी जाती है। वास्तव में यही इकाइयाँ वक्तृता की इकाइयाँ समझी जाती हैं और अंततः वे वक्तृता का रूप देने तथा भाषा की प्रणाली को बनाने वाले मुख्य तत्त्व का काम दे सकती हैं।

□

sirojiddin2003@yahoo.com

सूरीनाम सहित कैरेबियाई देशों में हिंदी भाषा का प्रभुत्व

—प्रो. पुष्पिता अवस्थी

भाषा मानव-हृदय का कल्पवृक्ष है। भाषा द्वारा जीवन की सारी कल्पनाएँ साकार होती हैं। भाषा की शक्ति से दुनिया की भौगोलिक दूरियाँ निकटता में बदल जाती हैं। भाषा व्यक्ति, समाज और देश को संस्कारित करती है। इतिहास भाषा में मुखरित होता है। विश्व के विभिन्न समुदायों की सभ्यता और संस्कृति का इतिहास उस देश के नागिरकों द्वारा बोली जानेवाली भाषा में लिखित है। भाषा द्वारा जन-समाज के बीच जितनी अधिक शाखा-दर-शाखा बोलियाँ विकसित होती हैं, वह उस भाषा की शक्ति होती हैं। बोली का विकास ही भाषा के संवर्धन का पुष्ट आधार है और बोली का प्रसार ही भाषा के विस्तार का आधार है।

विश्व में हिंदी भाषा वस्तुतः भारतीय संस्कृति को जिलाए रखने के लिए प्राणभाषा का कार्य कर रही है। सूरीनाम देश ही नहीं, पूरे विश्व के भारतवंशी आज भी भारतभूमि से उपजे हुए शंख सरीखे हैं, जिनके हृदय की राख से भारतीय संस्कृति का ही शंखनाद होता है। हिंदी भाषा की सांस्कृतिक अंजुली में भारतीय धर्म, मूल्य, दर्शन और मानवीय संस्कृति के बीज हैं, जो हिंदी-प्रेमियों की हथेली में हर्षित होकर सौंपती है। हिंदी ही वह शक्ति है, जो वैश्विक भारतीयों को सांस्कृतिक स्तर पर संबद्ध करती है। शर्तबंदी प्रथा के संघर्ष को वे अपनी भाषायी ताकत से ही जीत सके। जीवन-संघर्ष इन्हें तोड़ते रहे, पर अपने भीतर की जिजीविषा की शक्ति से ये अपने को आपस में जोड़ते रहे। खून-पसीना बनकर देह से रिसता रहा, लेकिन मन से साहस की बूँद नहीं रिसने दी। आँसुओं से गीले अपने आँखों के पालने में पुरखों के सपने ही पालते रहे। दिवस के ताप में धरती में धान रोपते, संध्या में भजन-कीर्तन करके धर्म के और भारतीय संस्कृति के बीज रोपते-रोपते और गहरी रात में हृदय की दियरिया की लप-लप रोशनी में हिंदी भाषा परिवार की बोलियों की सुनहरी फसल उगाते रहे। भारतीय संस्कृति के राम, कबीर के राम, तुलसी के राम, गांधी के राम—यहाँ के जनजीवन में आपसी दरस-परस पर राम-राम उद्बोधन के रूप में बसे हुए हैं। घर-घर में पढ़ी-पढ़ाई और पूजी जानेवाली 'गीता' और 'रामचरितमानस' की कर्मनिष्ठा और मानवीय मूल्यों की उपासना आज भी सूरीनाम के

---

* प्रख्यात लेखिका।

हिंदुस्तानियों का जीवन-बोध है और यही भारत से नाभिनाल जुड़े रहने का भाव है।

सन् 1953 ई. में लिखी मिस्टर डी. क्लार्क ने अपनी पुस्तक के 48-49 पृष्ठ पर उल्लेख किया है कि "जब उन्होंने पारामारिबो के रजिस्ट्रेशन कार्यालय में आए हुए भारतीयों की सूची की जाँच की तो पाया कि 80 प्रतिशत आप्रवासियों का आगमन उत्तर प्रदेश और बिहार से है। शर्तबंदी प्रथा समाप्त होने के बाद 66 प्रतिशत आप्रवासी भारतीयों ने सूरीनाम को अपनी मातृभूमि मानकर वहीं बस जाना स्वीकार कर लिया, जिनके पास अपने-अपने जिलों की उपभाषाएँ और बोलियाँ थीं।"

जिसमें संस्कृत, उर्दू के अतिरिक्त भोजपुरी, अवधी, प्राचीन अवधि, 'रामचरितमानस' की अवधि, हिंदी, हिंदुस्तानी, बाजारी हिंदी, मगही और मैथिली प्रमुख हैं। अपनी अस्मिता को बनाते हुए और अस्तित्व को बचाते हुए आप्रवासियों की हिंदुस्तानी बोली-बानी ने अपनी तरह से सरनामी भाषा का आकार ग्रहण किया। कुछ समय के बाद ब्रज बोलनेवालों का समूह लुप्त हो गया। भोजपुरी, मगही और अवधी का प्राधान्य बढ़ गया। आगे चलकर इसी 'सरनामी हिंदी' ने सरनामी भाषा का स्वरूप ग्रहण किया। श्री मार्टे ने कोलोनियल औपनिवेशिक रिपोर्ट 1885 का अध्ययन करते हुए एक घटना का उल्लेख किया कि जब कमांडर ने अपने सिपाहियों को बंदूक भरने का आदेश दिया तो दो कुली नेता चुनौती देते हुए चीखे—कि आवा 'Come on', बहुत मारा 'Let them have it' शब्द सूरीनामी शर्तबंदी भारतीय मजदूर के प्रथम रिकॉर्ड किए हुए शब्द हैं। श्री अवतार की आँखिन देखी साक्ष्य के अनुसार, सन् 1913 ई. के जहाज से जैसे ही प्रताप नाम का युवा उतरा, उसने व्यथा से भरकर कहा, "पगला समुद्र। वह अपने साथ भारत से चटनी की बोतल लाया था—जिसे एक दिन किसी ने चुरा लिया।" इसके लिए प्रताप ने हंगामा खड़ा कर दिया तो किसी ने कहा, "ई सारा गुस्सा दिखावे है, सारे चुल्लभर पानी में डूब मर।" उसी शाम सूरीनाम नदी की रेलिंग पर खड़ा होकर चिल्लाया, "बाबू लोग, अब प्रताप जा रहा है।" यह सब हिंदुस्तानी बोली-बानी के जीवित उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त पारंपरिक गीत, धार्मिक गीत और लोकगीतों में इन्हीं अवधी, भोजपुरी के उदाहरण मिलेंगे। पूर्वी भारतीय इसे हिंदुस्तानी कहते हैं और डच इसे हिंदुस्तान पुकारते हैं। जिसे आगे चलकर श्री जे.एच. ज्ञानाधीन ने 1964 ई. में सरनामी नाम प्रदान किया, जिसके ब्रोंशो में लिखा था, 'The Roman spelling of Sarnam East Indians-Hindustani.'

सन् 1960 ई. में क्रियोल दल द्वारा जब 'एक समाज, एक राष्ट्र और एक भविष्य, की आवाज उठाई गई तो उसी के साथ एक 'राष्ट्रीय भाषा' का नारा बुलंद हुआ। ऐसे में कानूनविद् और भाषा वैज्ञानिक जे.एस. अधीन द्वारा वेदांत दर्शन के आधार पर 'अनेकता में एकता' के सूत्र को लेकर बहुभाषा को प्रधानता दी गई और 'सरनामी' को भी सूरीनाम की राष्ट्रीय भाषा होने की मान्यता मिली। पं. सूर्य बीरे ने अपनी पहल से देवनागरी लिपि में सरनामी मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। डॉ. कविजीत नाराइन ने नीदरलैंड से सरनामी भाषा की पत्रिका का प्रकाशन किया और 'का हाल' नाम से डॉ. दम्स्त्यैख के साथ पाठ्य अभ्यास सामग्री तैयार की। डॉ. तेयो दम्स्त्यैख 1985 के अनुसार 'सरनामी' ने शब्दावली और वर्तनी की दृष्टि से अपने को सूरीनाम देश की बहुसंस्कृति और बहुभाषा से प्रभावित होकर इतना अधिक परिवर्तित किया है कि इसे हिंदुस्तानी सरनामी या सरनामी हिंदुस्तानी कहने

से अधिक बेहतर और उचित होगा—'सरनामी पुकारना'। सूरीनाम देश में 'सरनामी' हिंदी की एकमात्र बोली भर नहीं है, बल्कि एक पूर्णरूपेण समर्थ भाषा भी है।

सन् 1953 ई. में अधीन ने हिंदी-डच शब्दकोश का निर्माण किया, जिसकी भूमिका में उन्होंने लिखा था—सूरीनामी जनसंख्या के एक बड़े भाग की मातृभाषा हिंदी है। डच सरकारी और राजकाज की भाषा है, इसलिए एक ऐसे शब्दकोश की परम आवश्यकता है, जिसमें हिंदी शब्द 'देवनागरी' में लिखे हुए हों। आगे चलकर दस वर्षों बाद भाषाविद् अधीन ने 'सरनामी' के लिए 'रोमन लिपि' को मान्यता दी। शिक्षा मंत्रालय से जिसे स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। 2001 में ज्ञानाधीनजी से सरनामी और हिंदी के नैकट्य के लिए मेरी उनसे और पं. हरदेव सहतू के साथ बैठकें हुईं। मेरे प्रस्ताव से भाषाविद् ज्ञानाधीनजी के साथ यह सुनिश्चित हुआ कि सरनामी को देवनागरी लिपि में लिखा जाए, जिससे सरनामी बोलनेवालों के लिए हिंदी पढ़ना और सीखना सहज होगा और वे हिंदी भाषा परिवार के सदस्य हो जाएँगे। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य और महत्त्वपूर्ण है कि सूरीनाम के हिंदुस्तानियों ने अपनी भारतीय संस्कृति को जीवन प्रदान करने के लिए 'सरनामी' भाषा को ही व्यवहार में लाकर विकसित किया, जिससे आगामी पीढ़ियों के द्वारा 'सरनामी' भाषा के प्रयोग से हिंदुस्तानी भाषा और भारतीय संस्कृति के गुणसूत्र विकसित होते रहेंगे। मार्टिन लक्ष्मण, हरिदंत श्रीनिवासी, जीत नाराइन, महादेव खुनखुन, मुंशी रहमान खान, चंद्रमोहन, अमर सिंह रमण, श्री ब्रीस महावीर, श्री रामनारायण साव, पं. रामदेव रघुवीर सहित सूरीनाम के प्रसिद्ध सरनामी के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने हिंदी में भी कविताएँ लिखी हैं। रवींद्र बलदेव सिंह, चित्रा गयादीन, चाँदनी, राजमोहन, रामदास हॉलैंड में सरनामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिनकी रचनाओं में पुरखों के संघर्ष का अतिवाद और हिंदुस्तान देश से बिछुड़ने के दर्द का करुणक्रंदन है। इसमें से बलदेव सिंह, राजमोहन और जीत नाराइन सरनामी के प्रसिद्ध गीतकार हैं, जो पूरे भाव से अपने गीत गाते हैं। भारतीय लोक संस्कृति के गुणसूत्र होने के बावजूद यह भारतीय हिंदी बोलियों के लोकगीतों की तर्ज से बिल्कुल अलग है और वह इस कारण भी कि यूरोपीय जीवन-साहित्य संस्कृति के पर्यावरण और माहौल के अनुकूल इन्होंने अपनी काव्य-कला को आधुनिक गीत कौशल के साथ आधुनिक पाश्चात्य वाद्य यंत्रों के बीच उसी के समानांतर प्रतिष्ठा के साथ विकसित किया है, इसलिए इनकी कविताएँ और गीत विशिष्ट हैं और 'विश्व कविता' के आयोजन में हिंदी और हिंदी भाषा परिवार की बोलियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत की जगह सूरीनाम देश से इन्हें आमंत्रित किया जाता है, जहाँ वे भारत से बाहर विकसित हो रही हिंदी भाषा परिवार की बोलियों, हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

तुलसी और कबीर की भाषा अपने जनमानस के सामूहिक सांस्कृतिक संस्कार के कारण, अपने संवेदनशील वैशिष्ट्य के कारण सुरक्षित है। इन कवियों ने कालजयी संप्रेषण समर्थ शब्द भाषा का अन्वेषण किया है। भारतीय संस्कृति के अनुकूल मानवीय मूल्यजनित शब्द-संपदा की सृष्टि की, जो सूरीनाम के हिंदुस्तानियों के संवेदनशील चित्त की शक्ति बन सकी।

सूरीनाम की अपसंस्कृति के कोलाहल में गोस्वामी तुलसीदासजी भारतीय संस्कृति की विवेक परंपरा की धुरी हैं, वे परिवार और रिश्तों के उद्बोधन के रचनाकार हैं। भारतीय संस्कृति के

अनुसार दायित्व और कर्तव्यबोध के व्याख्याता हैं। तुलसीदास ने परिवार के महत्त्व को, रिश्तों की सघनता को अत्यंत मार्मिक तरीके से उद्घाटित किया है। जिसका सूरीनामी हिंदुस्तानी पूरी संवेदनशीलता के साथ पालन करते हैं। तुलसी और कबीर स्रष्टा और दृष्टा दोनों ही थे। वे भाषा और समाज की नाड़ी पहचानते थे। यही कारण है कि छह सौ से अधिक वर्ष व्यतीत होने पर भी भारत और भारतवंशी बहुल देशों में भारतीय संस्कृति के प्रणेता बने हुए हैं और गहरे अर्थों में वे ही भारतीय संस्कृति के मूल वंशज हैं। वे सच्चे अर्थों में भारतीय जनमानस, जनसंस्कृति और जनसमाज के जनकवि थे। जिसका प्रभाव सूरीनाम की हिंदुस्तानी भाषा और साहित्यकारों में स्पष्ट दिखाई देता है। भारत से गए हुए हिंदुस्तानियों ने जीविकोपार्जन के लिए मजदूरी करते हुए, जीवन से मुक्ति पाने के लिए ईश्वर के मुखापेक्षी हो गए थे। दासता ने हृदय में भक्ति और अपनी मातृभूमि के संस्कार जगाए। 'बीजक', 'मानस' और 'गीता' के गुटकों ने संजीवनी शक्ति और आत्मविश्वास का संचार किया।

भारतीय मजदूरों और किसानों के साथ आए कहानियाँ-खिस्से (किस्से) और लोकगीत ही मुख्य रूप से हिंदी साहित्य की थाती थे, जो वाचिक परंपरा से चलती रही, इसी तरह से रामलीला और रासलीला का प्रचलन 1920 से प्रारंभ हुआ। इनके लिए भारत से मँगवाई पुस्तकों की भाषा का उपयोग किया जाता था। 1918 ई. के बाद धार्मिक सत्संगों में हिस्सा लेनेवाले प्रचारकों के द्वारा परचे लिखे जाते थे। सन् 1940 के बाद, आर्य समाज, सारामा का के हिंदी कार्यकर्ताओं द्वारा साइक्लो स्टाइल पर्चे वितरित किए जाते थे। टंकण और मुद्रण यंत्रों के अभाव के कारण हिंदी का विकास तीव्र गति से नहीं हो पा रहा था। पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव ने 'सत्यदर्शक' पुस्तक लिखी, जिसकी पाँच सौ प्रतियाँ प्रकाशित हुईं। इन्होंने 'बग्घा' के नाम से भी साहित्य सेवा की। सूरीनाम देश की आजादी के बाद निबंध एवं आलेख लिखने में प्रगति हुई। सूरीनाम के लेखकों को प्रायः तीन भाषाओं से नियमित गुजरना पड़ता है—डच, सरनामी एवं सरल हिंदी। 'सरस्वती' नाम से एक प्रकाशन संस्था ने प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया है, लेकिन वह असाध्य स्तर तक महँगी है। यदि किसी दानवीर की मदद से प्रकाशित भी हो जाए तो उसको पढ़नेवाली आबादी पाँच प्रतिशत भी नहीं मिलेगी।

सूरीनाम तथा आसपास के देशों में भारतीय संस्कृति के सम्यक् योगदान और उत्थान के लिए श्री लक्ष्मण सिंह के नेतृत्व में मोती माढ़े और अन्य लोगों ने नवयुग संस्था के साथ-साथ 'माता गौरी संस्थान' और 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' का गठन किया। माता गौरी संस्थान सांस्कृतिक और सामाजिक आयोजनों का काम कर रही है। सूरीनाम हिंदी परिषद् संपूर्ण देश में सूरीनाम सरकार के सहयोग से हिंदी भाषा की परीक्षाएँ करवाते हुए भाषा प्रचार में लगी हुई है और 'विद्यानिवास सूरीनाम साहित्य संस्थान' नाम से परिषद् की एक शाखा हिंदी के साहित्य का प्रचार करने में संलग्न है। श्री मंगल प्रसाद, श्री लक्ष्मी प्रकाश मल्हू तथा महादेव खुनखुन, सुरजन परोही, रामदेव रघुवीर, हरदेव सहतू ने हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। श्रीमती सुशीला मल्हू सहित उनके समकालीनों ने हिंदी और भारतीय संस्कृति की सेवा की और कर रहे हैं। ये सभी हर घर में, घर के हर मन में भाषा के माध्यम से धर्म और संस्कृति का झंडा लगा रहे हैं।

सन् 1975 ई. में सूरीनाम देश के स्वतंत्र राष्ट्र

घोषित होने के बाद अनेक धर्मनिष्ठ हिंदुस्तानी नीदरलैंड आ बसे और सरनामी हिंदी का प्रचार-प्रसार करने लगे तथा शेष हिंदुस्तानी सूरीनाम में रहते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार करने लगे। सूरीनाम देश में दो तरह के उपासकों के द्वारा भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा का प्रचार करने लगे। देवी सरस्वती के उपासकों की दो कोटियाँ होती हैं। राष्ट्र और कला के उपासक भक्त अपनी ज्ञानात्मक संवेदना द्वारा सरस्वती की साधना में अपने कृतित्व का फल अर्पित करते हैं। दूसरे श्रम द्वारा अर्जित पूँजी को, धन-संपत्ति को, कला साहित्य-संस्कृति प्रेमीजनों पर अर्पित करनेवालों की एक महान् परंपरा देश में रही है।

यूरोप और कैरेबियाई देशों में ख्याति प्राप्त हिंदुस्तानी चित्रकार हैं—आनंद बिंदा और राम जिआवन सिंह। इसके साथ-साथ प्रसिद्ध कवि हैं—मार्तिन हरिदत्त लक्षमन श्रीनिवासी, जीत नाराइन, जेम्स् रामलाल भाई के अतिरिक्त स्थानीय रूप से प्रसिद्ध कवि हैं—हरदेव सहतू, सुरजन परोही, श्रीमती सुशीला, अमर सिंह रमण, बिहारी लाल कल्लू, तेज प्रसाद खेंदू, निधान सिंह आदि। इसके साथ-साथ नए हस्ताक्षरों में श्रीमती संध्या भग्गु, कृष्णा भिखारी, रोशनी अयोध्या, संचिता, अमित अयोध्या, सुशीला बीरबल, देवानंद शिवराज, मर्लेना गंगाराम, डॉ. कार्मन जगलाल, रामदेव महाबीर, निशा झाकरी, कंधई धीरज कुमार, मोहन सुमेर, आनंद लालता, तारावती बिरजा, विरजानंद अवतार आदि हिंदी भाषा के लेखक और प्रचारक हैं। शिनाफूंग यहाँ के प्रसिद्ध फोटोग्राफर हैं। संगीतकार कृष रामखेलावन यहाँ के ही नहीं, यूरोप, अमेरिका आदि कई देशों में गजल, कव्वाली और लोकगीतों के लिए प्रसिद्ध हैं। माइकल स्लोरी, लेविस वंदल, वाग्लोई सिंग प्रसिद्ध नीग्रो कवि हैं। जोहाना फाउटन, एलसन हाउत, जॉन फोरहुक प्रसिद्ध लेखक हैं। एरविन डफरीन यहाँ के प्रसिद्ध मूर्तिकार और कलाकार हैं।

सूरीनाम देश पर लिखित यह आलेख मेरे हृदय में सूरीनाम की परछाइयों का शाब्दिक प्रतिबिंब है, जिसको लेकर पंद्रह से अधिक पुस्तकें लिखी हैं—साहित्य अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित और चर्चित हैं— सूरीनाम देश की संस्कृति को जानने-समझने के लिए हिंदी में 'छिन्नमूल' उपन्यास और 'Uprooted dreams' अवश्य पढ़ें, जिससे इस संस्कृति का रसात्मक अनुभव प्राप्त हो सकेगा।

□

pushpitaawasthi1960@gmail.com

पारस्परिक व्यवहार प्रगति का सार है।

—बक्सटन

❖ ❖ ❖

प्रतिभा जन्मजात होती है, वह सिखाई नहीं जाती।

—ड्राइडेन

इथियोपिया एवं चेक गणराज्य में हिंदी अध्यापन के संस्मरण

—आशुतोष द्विवेदी

इथियोपिया में हिंदी अध्यापन

हिंदी एक भीनी सुगंध की तरह अपने आप फैलते चले जाने का जादू रखती है। मैं विदेश मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से 2012 से 2015 तक अदिस अबाबा, इथियोपिया में भारतीय दूतावास में नियुक्त था। वहाँ विदेशी नागरिकों को हिंदी पढ़ाने का काम मुझे सौंपा गया। सप्ताह में एक दिन शनिवार को कक्षा लगती थी। कक्षा निःशुल्क थी। पचास के करीब विद्यार्थी आते थे, जिनमें अधिकांश इथियोपियन ही थे, कुछ अन्य देशों, जैसे, जापान, यूक्रेन, केन्या आदि देशों के भी थे। कुछ विद्यार्थी भारतीय भी थे, जिनको हिंदी और अच्छी करनी थी। शुरू में आसान और मनोरंजनपूर्ण लगनेवाला यह काम वास्तव में कठिन था। सीखनेवालों में अधिकारी, अध्यापक, कलाकार, व्यापारी, मजदूर, स्कूल-कॉलेज के छात्र, लगभग समाज के हर वर्ग के लोग थे। आपसी बातचीत के लिए तीन भाषाएँ थीं, एक हिंदी, दूसरी अम्हेरिक (इथियोपिया की राजभाषा) और तीसरी अंग्रेजी। हिंदी मुझे आती थी, लेकिन सब छात्रों को नहीं आती थी। अम्हेरिक अधिकांश छात्रों को आती थी, पर मुझे न के बराबर आती थी। अब बची अंग्रेजी, जो मुझे आती थी और अधिकांश विद्यार्थियों को भी आती थी। तो, अंततः पढ़ाने के लिए अंग्रेजी का चयन कर लिए गया। लेकिन कई ऐसे विद्यार्थी थे, जिन्हें अंग्रेजी की उतनी ही समझ थी, जितनी मुझे अम्हेरिक की। उनको समझाने के लिए मैंने अंग्रेजी और अम्हेरिक दोनों जाननेवाले विद्यार्थियों का सहारा लिया। कक्षा का प्रारंभ, हिंदी भाषा में रुचि जगाने के उद्देश्य से मैंने कुछ व्यावहारिक वाक्यों के साथ किया। जैसे, नमस्ते, आप कैसे हैं, मैं अच्छा हूँ, आदि-आदि। इन वाक्यों को अंग्रेजी में बताया और फिर अंग्रेजी व अम्हेरिक दोनों जाननेवालों से उनको अम्हेरिक में भी बुलवाया, ताकि अंग्रेजी न समझनेवाले भी कक्षा का आनंद ले सकें। इसके बाद भाषा के व्यावहारिक बोल-चाल के पक्ष पर कई हफ्तों तक चर्चा होती रही।

कक्षा मजे से चल रही थी। बीच-बीच में कुछ हिंदी फिल्में, जो कि वहाँ लोकप्रिय थीं, जैसे शोले, डिस्को-डांसर आदि, कक्षा को दिखाकर, फिर उनके ऊपर चर्चा हो जाती थी और इस माध्यम से कुछ नए शब्दों और नए वाक्यों का ज्ञान कक्षा को कराया जाता था। कई लोग थे, जो व्यावहारिक

---

* भारतीय उच्चायोग, फिजी में अताशे।

हिंदी बोलना सीख गए थे, उन्होंने धीरे-धीरे कक्षा में आना कम कर दिया। कक्षा का समय शनिवार को दोपहर के बाद का होता था और करीब दो घंटे की समय-सीमा थी। प्राइवेट जॉबवालों को कक्षा में आने में दिक्कत भी होती थी। लेकिन जब तक यह मुद्दा सामने आया, कक्षा में ऐसे लोग कम ही बचे थे। बहुत से लोग व्यावहारिक हिंदी सीखकर, संतुष्ट होकर जा चुके थे। अब बचे थे करीब 25 विद्यार्थी। सभी इथियोपियन थे। ये वे लोग थे, जिन्हें और गहरे से हिंदी सीखने की लगन थी, भारत को देखने, जानने और यहाँ पढ़ने की चाह थी, इनमें से कुछ कलाकार, अभिनेता, फिल्म-निर्माता, निर्देशक, लेखक भी थे, जिनके मन में बॉलीवुड में आकर अपना भाग्य आजमाने के सपने थे। इनकी लगन देखकर मेरी लगन और दुगनी हो जाती थी। जब शनिवार को मैं सुबह-सुबह हिंदी पढ़ाने निकलता था (अब कक्षा का समय सर्वसम्मति से सुबह का कर दिया गया था और कोई समय सीमा तय नहीं रखी गई थी) तो मेरी पत्नी अकसर कहती थी कि इतनी लगन से बाकी दिनों में दफ्तर जाते तो नहीं दीखते! इस पर मेरा उत्तर होता था कि बाकी दिन दफ्तर रोजी-रोटी के लिए जाता हूँ, लेकिन शनिवार को हिंदी पढ़ाने मैं अपने आत्मिक आनंद के लिए जाता हूँ।

अब बचे हुए 25 विद्यार्थियों को मैंने हिंदी की वर्णमाला पढ़ाना शुरू किया। इसमें जो सबसे दिलचस्प मुश्किल आई, वह थी वर्णों के उच्चारण का परिचय, क्योंकि 'क' से कबूतर, 'ख' से खरगोश, 'ग' से गमला अगर बताया जाता तो पहले कबूतर, खरगोश, गमला का परिचय देना और इनका ठीक-ठीक उच्चारण बताना ही एक बड़ा काम हो जाता। इसलिए वर्णमाला के उच्चारण के लिए मैंने उदाहरणों का नया सेट तैयार किया, जिसमें वे शब्द रखे गए, जिनसे सभी विद्यार्थी परिचित हों। जैसे, 'क' से कनाडा, 'ख' से खारतूम, 'ग' से गैब्रोन आदि। विद्यार्थियों को मजा आने लगा। वर्णमाला का पूरा परिचय और उसका पर्याप्त अभ्यास हो जाने के बाद शुरू हुआ हिंदी पढ़ने-लिखने का सिलसिला। इसके लिए छोटी-छोटी बालोपयोगी मनोरंजक कहानियों का सहारा लिया गया। मैं इंटरनेट से छोटी-छोटी कहानियाँ छाँटता था, फिर उनको कक्षा में किसी से पढ़ने के लिए कहता, फिर उसके उच्चारण में बाकी लोगों से सुधार करवाता और अंत में स्वयं उसके सही-सही उच्चारण से सबका परिचय करवाता। इसके बाद लिखने का कार्यक्रम चलता था। जब कक्षा और आगे बढ़ती गई तो विद्यार्थियों की संख्या भी कम होती गई, क्योंकि अब मामला जरा ज्यादा श्रम और समय देने का था। अब लगभग एक दर्जन लोग कक्षा में बचे थे। अब तक कक्षा को एक वर्ष भी पूरा हो गया था। एक उल्लेखनीय बात और थी कि अब कक्षा में हिंदी के साथ-साथ हिंदुस्तान पर भी चर्चा हुआ करती थी, भारतीय स्थलों, व्यंजनों, महापुरुषों और दर्शन-पद्धतियों और उनके साथ-साथ व्यक्तिगत समस्याओं पर भी वार्ता हो जाती थी।

फिर मेरे इथियोपिया से वापस आने का समय पास आने लगा। असल में हिंदी कक्षा की परिकल्पना ने जब मूर्त रूप लिया, तब तक मेरे लगभग डेढ़ वर्ष वहाँ पूरे हो चुके थे और सामान्यतः नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। जब मेरी भारत-वापसी का समय निकट आने लगा तो मेरे विद्यार्थी काफी उदास होने लगे। वे चाहते थे कि मैं कुछ महीनों तक वहाँ और रहूँ, लेकिन ऐसा संभव नहीं था। वैसे भी हिंदी पढ़ाना मेरा अतिरिक्त कार्य था, मेरी नियुक्ति तो वहाँ के कार्यालयी कामों के लिए हुई थी, जो अपने सामान्य नियमों पर ही आधारित थी। एक दिन मेरी कक्षा के एक विद्यार्थी, जिनका नाम था एर्मियास, उन्होंने हिंदी में एक नाटक खेलने का प्रस्ताव रखा, एक ऐसा नाटक, जो

हिंदी कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा भारतीय दूतावास में भारतीय प्रतिनिधियों और अन्य इथियोपियन आगंतुकों के सामने मंचित किया जाए और जो मेरे लिए एक यादगार उपहार बन जाए। नाटक का प्रारूप उन्होंने ही तैयार किया था, जिसमें नायक, जो कि एक इथियोपियन व्यापारी है, हिंदी न समझने के कारण अपनी भारतीय प्रेमिका से हाथ धो बैठता है। नाटक भाषा से संबंधित सहज हास्य को लेकर आगे बढ़ता है और इसमें मनोरंजन का काफी मसाला है, इथियोपियन के लिए भी एवं भारतीय के लिए भी। इस नाटक के अंतिम दृश्य में मैंने उपसंहार स्वरूप इतना जोड़ा था कि नायक जब अपनी हिंदी अज्ञानता से निराश हो जाता है तो वह सोचता है कि हिंदी कैसे सीखूँ? तभी उसे भारतीय दूतावास में चल रही निःशुल्क हिंदी कक्षा का विज्ञापन दिखाई देता है और वह हिंदी सीखने हेतु भारतीय दूतावास जाने का विचार करता और यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है। सभी विद्यार्थियों ने बड़े मन से इस नाटक की तैयारी की थी। इनमें कुछ प्रमुख नाम थे, हायलू, किब्रोम, दावित, एक और विद्यार्थी जिसका नाम भी एर्मियास था। मेरी भूमिका इसमें निर्देशक जैसी थी। नाटक करनेवाले सभी लोग पहले से अभिनय थे और बहुत अच्छा अभिनय कर रहे थे।

'हिंदी दिवस' के दिन नाटक का मंचन हुआ और नाटक को अपेक्षा से अधिक सराहा गया। सभी ने, जिनमें इथियोपियन भी थे और भारतीय भी, मुझे और मेरी कक्षा को बहुत साधुवाद दिया। इस नाटक की तैयारी के दौरान इथियोपियन लोगों की हिंदी के प्रति लगन से अभीभूत होकर मैंने एक गीत लिखा था, जो हिंदी और भारत से प्रेम करनेवाले एक इथियोपियन के मन के उद्गार हैं। इस गीत को भी जब भारतीय दूतावास, अद्दिस अबाबा, इथियोपिया में एक इथियोपियन विद्यार्थी ने गाया तो सभी श्रोता भाव-विभोर हो गए।

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से वर्ष 2018 में मेरी नियुक्ति भारतीय दूतावास प्राग, चेक गणराज्य में की गई। वहाँ भी, विदेश में हिंदी अध्यापन के मेरे अनुभव को देखते हुए, राजदूत महोदया ने हिंदी पढ़ाने का अनुरोध किया और हिंदी-प्रेम में मैंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। समय ऐसा तय करना था, जो हिंदी-सीखनेवालों के लिए भी उचित हो और अपने नियमित सरकारी कार्यों में बाधा भी न आए। विचार-विमर्श करने के बाद प्रत्येक गुरुवार को शाम 5:30 से 7:30 का समय नियत किया गया। सभी मीडिया पोर्टलों पर निःशुल्क हिंदी कक्षा के विज्ञापन भेज दिए गए। पचास से भी अधिक लोगों ने आवेदन-पत्र भरकर हिंदी-कक्षा के लिए पंजीकरण कराया। यह एक उत्साहित करनेवाली संख्या थी, क्योंकि चेक गणराज्य में भारतीयों की संख्या अफ्रीकी, अमरीकी या अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में कम ही है।

हिंदी सीखने के इच्छुक लोगों में अधिकांश चेक नागरिक ही थे, कुछ पोलैंड, इंग्लैंड, जर्मनी, नीदरलैंड, कोरिया, कुवैत आदि देशों के भी थे। इनमें व्यापारी, राजनयिक, इंडोलॉजी के विद्यार्थी एवं अन्य भारत-प्रेमी थे। हाँ, इस कक्षा में कुछ ऐसे विद्यार्थी भी थे, जो वहाँ की चार्ल्स यूनिवर्सिटी में संचालित हिंदी भाषा की कक्षाओं में सम्मिलित हो रहे थे। (यह कक्षा लघु अवधि के पाठ्यक्रम के रूप में, हिंदी में निष्णात एक चेक अध्यापिका द्वारा संचालित की जाती थी।) अब, हमारी हिंदी-कक्षा प्रारंभ हुई। यहाँ भी वही समस्या आई, जो इथियोपिया में आई थी, भाषा की। चेक भाषा मुझे नहीं आती थी, हिंदी उन्हें नहीं आती थी और कई ऐसे विद्यार्थी थे, जो अंग्रेजी में उतने सहज नहीं थे। लेकिन इस बार इथियोपिया में पढ़ाने का अनुभव साथ था तो पहली ही कक्षा में मैंने उन विद्यार्थियों को चिन्हित कर लिया, जो चेक और अंग्रेजी दोनों में सहज हों, ताकि वे कम अंग्रेजी जानेवाले चेक

साथियों के लिए सम्प्रेषण का काम कर सकें। यहाँ भी वर्णमाला का ज्ञान कराते समय 'क' से कबूतरवाला मुद्दा सामने था तो मैंने यूरोप के हिसाब से हर वर्ण से जुड़े हुए शब्द खोजे, जिनमें प्रमुख देशों, शहरों और चेक के स्थानीय क्षेत्रों के नाम थे।

प्राग में हिंदी पढ़ाते समय एक विशेष समस्या आई। यह समस्या अदिस अबाबा में भी आई थी, लेकिन उतने कठिन रूप में नहीं, जितनी कि यहाँ थी। अनेक विद्यार्थी, जिन्हें हिंदी तो नहीं आती थी, लेकिन हिंदी के कुछ शब्द या वाक्यांश उन्होंने हिंदी फिल्मों से सीख रखे थे। हिंदी सिनेमा की एक सामान्य समस्या है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में इनकी प्रमुख भूमिका तो है, निस्संदेह, परंतु जिस प्रकार की हिंदी का प्रयोग इनमें होता है, वह मानक हिंदी से बहुत दूर है। कई बार विद्यार्थियों को यह समझाना कठिन हो जाता था, जो उन्होंने हिंदी फिल्मों से सीखा है, वह बिल्कुल गलत है। धीरे-धीरे अभ्यासपूर्वक वे इस बात को समझने लगे। कक्षाओं का प्रारंभ बोल-चाल की भाषा से हुआ। जब कुछ महीनों में भाषा के प्रति विद्यार्थियों की रुचि विकसित हुई तो हम व्याकरण की ओर बढ़े। साथ ही पढ़ने और लिखने का क्रम भी आरंभ हुआ। इस स्तर तक पहुँचने पर कुछ विद्यार्थी कम हो गए। जिनकी रुचि केवल बोल-चाल की हिंदी सीखने में थी, वे अपना लक्ष्य पूरा करके जा चुके थे। हालाँकि जाते-जाते उनमें से कई लोगों ने अनुरोध किया कि अगर दोबारा बोल-चाल का सत्र आरंभ हो तो उन्हें आमंत्रित किया जाए। कुछ तो इमेल, फोन आदि के माध्यम से बाद तक जुड़े भी रहे और उच्चारण संबंधी सलाह लेते रहे।

प्राग में सर्दियों में अँधेरा बहुत जल्दी हो जाता है, अपराह्न करीब 3-4 बजे और बर्फ भी गिरती है। ऐसे में देर शाम बाहर लोग कम ही निकलते हैं। फिर भी हमारी कक्षा 05:30 बजे शाम से शुरू होकर कभी-कभी रात 9 बजे तक चलती थी। ऐसा भी होता था कि विद्यार्थी अपने साथ कुछ खाने-पीने का सामान भी लाते थे और सब वहीं मिल-बाँटकर खाते। दो-चार बार ऐसा भी हुआ कि हिंदी कक्षा भारतीय संस्कृति और दर्शन की कक्षा में परिवर्तित हो गई। चूँकि दर्शन और अध्यात्म मेरे प्रिय विषय हैं, इसलिए मैं भी देर तक इन विषयों पर बोलता था। सच कहूँ तो सप्ताह भर मुझे इस शाम का इंतजार रहने लगा और पढ़नेवालों का भी यही हाल था। इसी तरह प्रेमपूर्ण वातावरण में हिंदी की धारा यूरोप की धरती पर आगे बढ़ रही थी और तभी कोरोना नामक महामारी ने हमला बोल दिया। हिंदी कक्षाएँ भी बंद हो गईं। करीब साल भर से ऊपर यही माहौल चलता रहा। चारों ओर बीमारी के संक्रमण से एक भयग्रस्त वातावरण बन गया था। लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने में, बातचीत करने में संकोच करते थे। जब माहौल कुछ सँभलने लगा तो मेरा मन हुआ कि हिंदी कक्षाओं का पुनरारंभ किया जाए। कुछ पुराने और कुछ नए विद्यार्थी भी इस बारे में लगातार संपर्क करते रहते थे, लेकिन एक तो मेरा कार्यकाल वहाँ समाप्त होनेवाला था, दूसरे मेरा पूरा परिवार भी कोरोना की चपेट में बुरी तरह से आ गया था। इसलिए नियमित कक्षाएँ प्राग में दोबारा शुरू नहीं हो पाईं, लेकिन हिंदी की सेवा जारी रही। लोग इमेल से, फोन से संपर्क करके अपना-अपना भाषा-अभ्यास जारी रख रहे थे। कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जो हमसे हिंदी-प्रेम के कारण जुड़े और पूरा-का-पूरा परिवार आज भी हमारे संपर्क में है और यदा-कदा ऑनलाइन संपर्क करके हिंदी की एवं भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं अध्यात्म की चर्चा करते रहते हैं। आज भी उन दिनों को याद करते हैं तो एक ही बात हमारे मानस में गूँजती रहती है।

□

admn.suva@mea.gov.in

अमेरिका में हिंदी : कल, आज और कल

—डॉ. सुरेंद्र गंभीर

भारत से दूर अमेरिका में हिंदी का अस्तित्व तीन कारणों से है—पहला कारण था, राजनयिक और राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी कारणों से हिंदी-भाषियों की अमरीकी सरकार को आवश्यकता, दूसरा कारण था, शिक्षा के क्षेत्र में मानवीय विकास के लिए द्विभाषिकता (बाईलिंगुलइज्म) का प्रोत्साहन और तीसरा कारण था, 1965 से भारतीयों का बड़ी संख्या में आप्रवासन। इन तीनों कारणों से समय के साथ अमेरिका में हिंदी के पठन-पाठन और विभिन्न संदर्भों में उसका प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के शिक्षण का विचार द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिका में तीव्र गति से बढ़ा। इस विचार का 1945 में वाशिंगटन डी.सी. के सैनिक रक्षा-विभाग के 'स्ट्रीटिजिक सर्विसिज' से आरंभ हुआ। तुरंत बाद 1946 में फुलब्राइट का विशाल कार्यक्रम विश्व की अन्य संस्कृतियों और भाषाओं को समझने के लिए और उनसे संबंध स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया। 'स्ट्रीटिजिक सर्विसिज' का एक हिस्सा था—'ब्रिटिश ऐंपायर सेक्शन' जिसका कार्यभार संस्कृतज्ञ डॉ. नार्मन ब्राउन को मिला। इस विभाग का कार्य था गुप्तचर गतिविधियों का समायोजन। यही विभाग आधुनिक सी.आई.ए. का पूर्व प्रतिनिधि बना। द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिका ने अपने सैनिक भारत में राजनयिक कारणों से भेजने शुरू किए और इन सैनिकों का हिंदुस्तानी भाषा और सांस्कृतिक जानकारी से लैस होना उपयुक्त समझा गया। इस विचार का कार्यान्वयन 1947 में यूनिवर्सिटी ऑफ पेसिंल्वेनिया के एक ग्रीष्मकालीन कार्यक्रम से शुरू हुआ। इस कार्यक्रम में भाषा वैज्ञानिक डॉ. हैनरी होनिग्जवाल्ड ने हिंदी सीखने-सिखाने की सामग्री तैयार की और हिंदी का पहला कोर्स सेना के जवानों को पढ़ाया। वर्षानुवर्ष इसी कार्यक्रम की पुनरावृत्ति होती रही। इस कार्यक्रम में एक भाषा-वैज्ञानिक होता था, जो हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरणिक पक्ष प्रस्तुत करता था और एक हिंदी-उर्दू मातृभाषी शिक्षार्थियों के समक्ष उच्चारण और वाक्यात्मक अनुतान आदि का अभ्यास करवाता था। सैनिक और राजनयिक क्षेत्र में दो संस्थान आज भी हिंदी-शिक्षण कर रहे हैं। सैनिकों के लिए कैलिफोर्निया प्रदेश के मांट्रे नामक स्थान पर 'डिफेंस लैंगवेज इंस्टीट्यूट संस्थान' में भारतीय मूल के अनुभवी शिक्षकों के मार्गदर्शन में अमेरिकी सैनिक प्रतिदिन लगभग सात घंटे गहन (इंटेनसिव) हिंदी पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी सीखते हैं। हर रोज कक्षा के बाद घर जाकर जो काम उन्हें आत्मसात्

---

* फिलाडेल्फिया, अमेरिका में साहित्यकार।

करना होता है, वह अलग। भाषिक प्रवीणता के मापदंड पर विशिष्ट स्तर प्राप्त करनेवाले सफल सैनिकों के लिए वेतन में स्थायी वृद्धि का प्रोत्साहन रहता है। राजनयिकों के लिए एक अलग संस्थान है, जो विदेश मंत्रालय के अधीन है। इसका नाम है 'फॉरन सर्विस इंस्टीट्यूट'। यह संस्थान वेस्ट वर्जीनिया के आरलिंगटन नामक स्थान में है। इस संस्थान में राजनयिकों का अनेक विदेशी भाषाओं में प्रशिक्षण होता है और हिंदी इन विदेशी भाषाओं में सम्मिलित है।

डॉ. ब्राउन हिंदी के क्षेत्र में सैनिक कार्यक्रमों और शिक्षा के क्षेत्र में एक सफल सेतु बने। उन्होंने भारत के डैकन कॉलेज के भाषा-वैज्ञानिक डॉ. एस.एम.कत्रे के सहयोग से 1954 में पूना (वर्तमान पुणे) में एक कार्यक्रम का आयोजन किया। यह कार्यक्रम असैनिक शिक्षार्थियों के लिए था। इसी कार्यक्रम में प्रशिक्षित अमेरिकी शिक्षार्थी कालांतर में अन्यान्य विश्वविद्यालयों में दक्षिण-एशिया विभागों में प्राचार्य बने और हिंदी भाषा-शिक्षण इन कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम का एक प्रमुख अंग बना। डॉ. ब्राउन की शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार-संबंधी यह दूरदृष्टि सराहनीय थी। कालांतर में रॉकफैलर फाउंडेशन, कारनेगी फाउंडेशन और फोर्ड फाउंडेशन के आर्थिक अनुदानों से उपर्युक्त कार्यक्रमों में भारत के अतिरिक्त दक्षिण-एशिया के अन्य देशों का समावेश हुआ और इस प्रकार ये कार्यक्रम विश्वविद्यालय स्तर पर धीरे-धीरे सशक्त और स्थायी होने लगे।

वर्ष 1957 में सोवियत यूनियन ने स्पूतनिक-1 छोड़ा और अमरीका में इसकी अनेकविध प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप 1958 में हिंदी समेत कुछ अन्य विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के लिए 'नेशनल डिफेंस ऐक्ट टाइटल-6' बना। 1961 में विद्यार्थियों को भारत ले जाकर हिंदी समेत कुछ अन्य विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के लिए 'फुलब्राइट हेज कार्यक्रम' की स्थापना हुई। 1965 में इस कार्यक्रम का नाम 'नेशनल डिफेस ऐक्ट' से बदलकर 'हायर एजूकेशन ऐक्ट टाइटल-6' कर दिया गया। यह परिवर्तन इस बात का सूचक था कि विदेशी भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन मूलतः शैक्षिक विषय माना जाने लगा। 1962 में 'अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज' की स्थापना हुई और भारत के हिंदी-भाषी समाज में रहकर हिंदी शिक्षण का कार्यक्रम शुरू हुआ और वह आज तक चल रहा है। इन सब गतिविधियों के बीच 5 फरवरी, 2006 को अमेरिकी सरकार द्वारा देश में प्रयुक्त अनेक भाषाओं के संरक्षण के लिए एक नई नीति की घोषणा हुई। तत्कालीन राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू बुश ने 'नेशनल लैंग्वेज सिक्योरिटी इनश्येटिव' कार्यक्रम की घोषणा की। इन भाषाओं में हिंदी भी सम्मिलित थी। आर्थिक दृष्टि से उभरते देशों से निकट भविष्य में व्यापारिक संबंधों को मजबूत करने के लिए वहाँ की भाषा और संस्कृति के ज्ञान से युवावर्ग को तैयार करने के लिए सरकार की यह दूरदृष्टि थी। इस कार्यक्रम में कुछ भाषाएँ विशेष रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी जोड़ी गई थीं।

अमेरिका के गैर-सरकारी समाज में हिंदी संबंधी गतिविधि

विश्वविद्यालयों के बाहर अनौपचारिक स्तर पर समाज में भारतीय मूल की पहली पीढ़ी में साहित्य-सृजन और साहित्य संबंधी गतिविधि के अंतर्गत कवि-सम्मेलनों में कविता-वाचन प्रचुर मात्रा में विद्यमान और लोकप्रिय रहा है। न्यूयॉर्क के एक हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉ. विजय मेहता 'सम्राट् चंद्रगुप्त' और 'भिक्षुणी' नाम के दो महाकाव्यों के प्रणेता हैं। अनेक अन्य कवि, उपन्यासकार और गद्यकारों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। मेरे परिचित नामों में विशिष्ट हैं—उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी, विंदेश्वरी अग्रवाल, अनिल प्रभा कुमार, स्वदेश राणा,

सीमा खुराना, अनूप भार्गव, वेदप्रकाश बटुक, अभिनव शुक्ल, रेणु राजवंशी गुप्ता, मधु महेश्वरी, शशि पाधा, सुधा ओम ढींगरा। जहाँ अमेरिका में बड़े मेधावी साहित्य-सर्जक हैं वहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री के संग्रह का श्रेय भी इस पीढ़ी को जाता है। अमेरिका में 'कविता-कोश' का निर्माण हुआ। डेढ़ लाख से भी अधिक पन्नों के इस कोश में दुनिया भर के हिंदी, भोजपुरी, मैथिली, अवधी आदि भाषाओं की कविताएँ सम्मिलित हैं। इसका श्रेय प्रिंस्टन-निवासी अनूप भार्गव को है। अनूप भार्गव जहाँ एक ओर स्वयं कवि हैं और कवि-सम्मेलनों के आयोजन में सक्रिय हैं वहाँ 'मुझे हिंदी से प्यार है' कार्यक्रम के अंतर्गत 'साहित्यकार तिथिवार' में प्रतिदिन हिंदी साहित्य की किसी हस्ती का विशद परिचय प्रस्तुत करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त न्यूयॉर्क कौंसलावास की आधिकारिक वेबसाइट पर उनकी 'अनन्य' मासिक पत्रिका लोकप्रियता के चरण छू रही है। ग्यारह अन्य देशों के हिंदी लेखों के संस्करण भी 'अनन्य' की वेबसाइट पर सम्मिलित किए जा चुके हैं। 'विश्व हिंदी न्यास' की पत्रिका 'हिंदी जगत्' नियमित रूप से कई वर्षों से निकलती आ रही है। इसके अतिरिक्त अमेरिका के विभिन्न प्रदेशों से प्रकाशित होनेवाली विश्व हिंदीजन की द्विभाषी पत्रिका 'सेतु', अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की पत्रिका 'विश्वा', अखिल विश्व हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'सौरभ', विश्व हिंदी ज्योति की 'हिंदी कौस्तुभ', हिंदी क्लब की 'दृष्टि', वैश्विक हिंदी चिंतन की 'विभोम स्वर' अनेक लेखकों और पाठकों को समय-समय पर मंच प्रदान करती रही हैं।

अमेरिकी शिक्षा-क्षेत्र में हिंदी

हिंदी भाषा पढ़ानेवाले लगभग 80 से अधिक छोटे-बड़े कार्यक्रम आज पूरे देश में ऊर्जा के साथ सक्रिय हैं। लगभग बीस कार्यक्रम दक्षिण एशिया के महत्त्वपूर्ण विशाल कार्यक्रम कहे जा सकते हैं, जहाँ भाषाओं के अतिरिक्त अन्य दक्षिण-एशियाई कोर्स भी पढ़ाए जाते हैं। कुछ छोटे कार्यक्रम हैं, जहाँ केवल हिंदी पढ़ाई जाती है या फिर एकाध दक्षिण-एशियाई कोर्स भी पढ़ाया जाता है। महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिल्वेनिया का कार्यक्रम सबसे पुराना है और वह अधिकांश बड़े कार्यक्रमों का जनक है। अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिल्वेनिया, कोलंबिया, प्रिंस्टन, येल, कार्नेल, सिराक्यूज, ब्राउन, शिकागो, मिशिगन, विस्कांसिन, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया - बर्कले, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया-लास एंजलेस, आयोवा, एमरी, और यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सस हैं। आयोवा, विस्कांसिन और टैक्सस विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य का पठन-पाठन भी रुचि रखनेवाले शिक्षार्थियों के लिए होता है।

विश्वविद्यालीय स्तर पर विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण विषय पर महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। अनेक विद्वज्जनों ने हिंदी भाषा का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इनमें विशेष नाम हैं—टैक्सस के डॉ. हर्मन वैन आल्फन, इलिनाय विश्वविद्यालय की डॉ. यमुना कचरु, वाशिंगटन विश्वविद्यालय के डॉ. माइकल शपीरो, कैलिफोर्निया-बर्कले की उषा जैन, सिराक्यूज के डॉ. तेज भाटिया, मिशिगन के डॉ. पीटर हुक, पेंसिल्वेनिया के डॉ. फ्रैंक साउथवर्थ, डॉ. विजय गंभीर, डॉ. सुरेंद्र गंभीर। साथ-साथ विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने के लिए विविध शिक्षण-सामग्री का निर्माण भी होता रहा है। भाषा-शास्त्र में निष्णात अनेक विद्वानों ने इसमें योगदान दिया है। इसकी लंबी सूची स्थानाभाव के कारण यहाँ प्रस्तुत नहीं की जा रही।

शैक्षिक क्षेत्र में हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप कार्यक्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमेरिका की

सरकार ने यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास को हिंदी और उर्दू भाषाओं में उच्चस्तर पर विद्यार्थी तैयार करने के लिए एक बहुत बड़ी राशि का अनुदान दिया। यह कार्यक्रम बी.ए. स्तर के उन छात्रों के लिए था, जो अपने किसी भी चार वर्षों के विशिष्ट पाठ्यक्रम के साथ-साथ हिंदी और उर्दू में अपनी व्यावसायिक और संवादात्मक प्रवीणता को उच्च शिखर तक ले जाना चाहते थे। यह कार्य 2006 से 2016 वर्ष तक चला।

2006 में नेशनल लैंगवेज सिक्योरिटी इनिश्येटिव के अंतर्गत स्टारटाक भाषा-कार्यक्रम का सूत्रपात हुआ। सरकार ने दस नई विदेशी भाषाओं के अध्ययन के लिए आर्थिक सहयोग देने की प्रतिबद्धता की घोषणा की। इन कार्यक्रमों को चलाने का दायित्व मुख्य रूप से समाज में फैली स्वयंसेवी संस्थाओं ने किया। गरमी की छुट्टियों में जहाँ एक ओर विद्यार्थियों के लिए हिंदी-शिक्षण के कार्यक्रम होने लगे, वहाँ दूसरी ओर शिक्षकों के लिए भाषा-शिक्षण में प्रशिक्षण का आयोजन भी होने लगा। 2006 के इसी कार्यक्रम के अंतर्गत दो और परियोजनाएँ थीं, जिनके अंतर्गत कॉलेज और हाई स्कूल के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने के लिए भारत भेजा जाने लगा।

उपर्युक्त औपचारिक शैक्षिक क्षेत्र के बाहर हिंदी-शिक्षण का दूसरा संदर्भ है, भारतीय मूल के समाज में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा बच्चों के लिए सप्ताहांत हिंदी कक्षाओं का आयोजन। पूरे देश में ऐसे दो सौ से तीन सौ तक कार्यक्रम होने का अनुमान है। संभवतः सबसे बड़ा कार्यक्रम है—'हिंदी यू.एस.ए.' इसके अतिरिक्त युवा हिंदी संस्थान, वी.एच.पी. बाल-विहार, यू.एस. हिंदी एसोसिएशन, चिन्मय मिशन बाल विहार, बाल गोकुलम्, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी न्यास, मधु भाषा केंद्र, ऐशी (एजूकेटर्ज सोसाइटी फार हैरिटेज ऑफ इंडिया), विद्यालय, अखिल विश्व हिंदी समिति, वैश्विक हिंदी संस्थान के नाम उल्लेखनीय हैं। ये स्वयंसेवी संस्थाएँ बालकों को शनिवार और रविवार की कक्षाओं में हिंदी सिखाने के लिए कार्यरत हैं।

'निर्मल रोशन साहित्यिक मंच' गत एक वर्ष से ऑनलाइन कविता-वाचन और चर्चाओं का आयोजन कर रहा है। ह्यूस्टन का 'श्रीराम चरित भवन' देश-विदेश के अनेक श्रोताओं के लिए हिंदी में 'रामचरितमानस' का व्याख्यान ऑनलाइन कर रहा है। युवा हिंदी संस्थान ने अभी हाल में 'फुलब्राइट हेज' के अनुदान से 12 हिंदी शिक्षकों की भारत के आदिवासी क्षेत्रों में यात्रा का आयोजन किया और पर्यावरण और आदिवासी जीवन के अध्ययन से हिंदी-शिक्षण के लिए उपयोगी अधिकृत सामग्री का संचयन किया।

अमेरिका में हिंदी के भविष्य की संभावनाएँ

अमेरिका और अन्य देशों में विदेशी भाषा के रूप में अपनी भाषा का संवर्धन करने के लिए विश्व के अनेक देश अपनी-अपनी योजनाओं के साथ सक्रिय हैं। जापान, चीन, कोरिया, जर्मनी, फ्रांस आदि विदेशों में अपनी-अपनी भाषा और संस्कृति के संवर्धन और प्रसार के लिए बड़े सुनियोजित ढंग से कार्यरत हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में संख्या की दृष्टि से हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाएँ बहुत पीछे हैं। विश्व में हिंदी, भारतीय संस्कृति के प्रसार और राजनयिक कारणों हेतु भारत सरकार द्वारा सुनियोजित योजनाओं का कार्यान्वयन अपेक्षित है। आशा है, आज का उदीयमान भारत इस दिशा में जल्दी अग्रसर होगा और आगामी वर्षों में विदेशों में हिंदी की स्थिति शिक्षा-क्षेत्र में सशक्त होगी।

□

surengambhir@gmail.com

फिजी में हिंदी संघर्ष, समाज और साहित्य

—मनीषा रामरक्खा

भाषा एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है, जिसके प्रयोग का अधिकार परमात्मा ने हर प्राणिमात्र को जन्म के साथ प्रदान किया है। भाषा परमात्मा की एक अद्भुत देन है, जो जीवनपर्यंत प्राणी के विचारात्मक एवं भावनात्मक तथ्यों को प्रभावशाली बनाती है और आपसी आदान-प्रदान के माध्यम से विचारों को विस्तार प्रदान करती है। हर प्राणी की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं एवं अभिव्यक्तिकरण में भिन्नताएँ होती हैं, लेकिन सभी भाषाएँ विचारों को सशक्त बनाती हैं और विस्तार प्रदान करती है, अर्थात् भाषा विविधता में एकता कायम रखने का सशक्त साधन है। इसी एकता को कायम रखने के लिए फिजी में भी हिंदी भाषा के गठन की एक संघर्षमय कहानी है।

फिजी प्रशांत महासागर का स्वर्ग कहलाता है। 'मेरी शान मेरी हिंदी महान' यह था उन फिजी भारतीय वंशजों का नारा, जिन्हें अपनी जन्मभूमि भारत से लगभग बारह हजार किलोमीटर दूर एक ऐसे द्वीप में, बंधुआ मजदूर बनाकर छोड़ दिया था, जिसके विषय में उन्होंने कभी स्वप्न में भी कोई कल्पना न की थी। आज भी फिजी भारतीयों के लिए मई का महीना बहुत ही यादगार महीना है, क्योंकि 14 मई, 1879 को प्रथम जहाज हमारे भारतीय पूर्वजों को लेकर फिजी के समुद्री तट पर आया था और यहीं से शुरू हुई फिजी में भारतीयों के नए जीवन की नई कहानी एवं फिजी में हिंदी के संघर्ष की कहानी, साथ ही फिजी में हिंदी साहित्य और संस्कृति की नींव डालने की विचारधारा। आज 143 वर्षों के उपरांत भी भारतीय वंशजों की यादें तरो-ताजा हैं।

जीवन के प्रथम चालीस वर्ष अति कष्टमय थे। हिंदी के विकास का भी यह अति संघर्षमय समय था। इस दौरान आपसी विचार-विमर्श और अपनी भावनाओं के आदान-प्रदान के लिए एक नई हिंदी का प्रचलन चल पड़ा, जिसे 'फिजी हिंदी' नाम दिया गया। आज भी यह बोलचाल का अति लोकप्रिय माध्यम है। 'फिजी हिंदी' का अपना एक रूप है, अपना अलग इतिहास है, बोलने और समझने में सरल है। यहाँ के गैर भारतीय भाई-बंधु इसका प्रयोग बड़ी आसानी से कर लेते हैं। भारत के विभिन्न प्रांतों खासकर बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, कलकत्ता, दक्षिणी प्रदेश से भोजपुरी, अवधी, बिहारी भाषाओं के साथ-साथ पंजाबी, तमिल भाषाओं को लेकर आए थे। फिजी हिंदी में अंग्रेजी और फिजी के आदिवासी काईवीतियों की भाषा 'ईतौकेयी' के शब्दों का मिश्रण भी देखने को मिलता है।

भारत के और भी अन्य प्रांतों के लोगों को फिजी लाया गया था, जिनकी भाषा-बोलियाँ

* फिजी विश्वविद्यालय में हिंदी प्राध्यापिका।

अलग-अलग थीं। इन आनेवालों में अधिकतर ग्रामीण इलाके के लोग थे, सीधे-साधे जो एक-दूसरे की भाषा को समझते न थे। कहावत है 'आवश्यकता अविष्कार की जननी है' अत: जब अपने दु:ख-सुख में दूसरों को शामिल करने की आवश्यकता हुई, तो उस समय एक मिश्रित भाषा 'फिजी बात' का अविष्कार हुआ और कालांतर में यही बोली 'फिजी हिंदी' कहलाई। 37 वर्षों तक 87 जहाज भारतीय मजदूरों को फिजी के समुद्री तट पर उतारते रहे। उस समय उनको पहला सुझाव यही दिया जाता था कि 'फिजी बात' सीखो! आज फिजी हिंदी का अपना पाठ्यक्रम भी है, जो रोमन लिपि में तैयार किया गया है, और इसके माध्यम से गैर भारतीय बच्चों को हिंदी में बात करना और हिंदू संस्कृति के सरल विषयों को समझाना और प्रयोग में लाना सिखाया जाता है। फिजी हिंदी में व्याकरण के नियमों का प्रावधान न के बराबर है। जैसे—कौनची करता, काँ जाता और कौनची मँगता आदि बात-चीत का सरल माध्यम है।

फिजी गिरमिट भारतीयों का जीवन गांधीजी के विचारों से कहीं-न-कहीं प्रभावित रहा है, परिणामस्वरूप अन्य प्रवासी भारतीय देशों की तुलना में फिजी में हिंदी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति अधिक समृध्द रही है। फिजी भारतीय पूर्वजों के जीवन की प्राथमिकता अपने अस्तित्व को, संस्कृति-सभ्यता को और अपने आत्म सम्मान को बचाए रखना था। अनेक संघर्षों के उपरांत हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति को फिजी में पूर्णत: सुरक्षित रखा। महात्मा गांधी के वक्तव्य के उन विचारों को प्रस्तुत करना चाहूँगी, जिनसे प्रेरित होकर फिजी गिरमिटिया पूर्वजों ने भाषा को सुरक्षित रखने के लिए तन-मन-धन से पूरा प्रयास किया। गांधीजी ने संस्कृति के प्रचार-प्रसार में मातृभाषा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए—मॉरीशस में प्रवासी भारतीयों के समक्ष बोलते हुए तीन बातें बतलाई थीं, गांधीजी के शब्दों में—"पहली बात— अपने बच्चों को शिक्षित कीजिए, दूसरी—राजनीति में भाग लीजिए तथा तीसरी—अपनी मातृभाषा हिंदी का समुचित प्रयोग कीजिए।"

इन तीनों विचारों को फिजी भारतीय पूर्वजों ने अपने जीवन का लक्ष्य मानकर अपने बच्चों के लिए अनेकों पाठशालाएँ खोलीं, राजनीति में बहुत अच्छा मुकाम हासिल किया और हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान दिलाया। हिंदी साहित्य को भी समृध्द बनाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत लाभ को परे रखते हुए, त्यागपूर्ण जीवन बिताकर भाषा और साहित्य को सुदृढ़ बनाया। परिणामस्वरूप फिजी के संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त है। माना कि हमारे पूर्वजों के सामने एक नया वातावरण, नए जीवन की नई कहानी, नई समस्याएँ थीं, पर अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति और अपने सत्य सनातन वैदिक विचारों का साथ उन्होंने कभी नहीं छोड़ा तथा अपने जीवन में इनको सदैव प्रथम स्थान दिया। फिजी में मानक हिंदी और फिजी हिंदी दोनों के लिए संघर्ष चलता रहा और दोनों अपनी-अपनी जगह पूर्ण सुरक्षित एवं समृध्द हैं। धन्य है फिजी भारतीय का समाज, जिसने फिजी हिंदी को विकसित करने में अपना योगदान दिया, वहीं मानक हिंदी भाषा को स्कूली पाठ्यक्रम में पूर्णत: सुरक्षित रखने के लिए कभी कोई समझौता नहीं किया। परिणामस्वरूप फिजी में दोनों सुरक्षित हैं और समय के साथ-साथ विकसित हो रही हैं।

स्कूली पाठ्यक्रम में प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयी स्तर पर मानक हिंदी पूर्णत: सुरक्षित है। मानक हिंदी-फिजी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त और शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम की

भाषा मानक हिंदी है। इसका लिखित रूप पूर्णत: देवनागरी लिपि में है। यह पाठ्यक्रम कक्षा एक से लेकर कक्षा आठ तक प्राइमरी स्कूलों के लिए है और वर्ष नौ (Year Nine) से लेकर वर्ष तेरह (Year Thirteen) तक सेकेंडरी स्कूलों के लिए पूर्णत: मानक हिंदी पर आधारित है। मानक हिंदी फिजी में औपचारिक तौर पर काम में लाई जानेवाली सक्षम भाषा है। मुझे फिजी भारतीय पूर्वजों पर बड़ा गर्व है, जिनकी सूझ-बूझ से आज फिजी में भारतीयों द्वारा संचालित एकमात्र विश्वविद्यालय (The University of Fiji) है, जहाँ पर पोस्टग्रेड डिप्लोमा हिंदी एवं मास्टर ऑफ आर्ट्स हिंदी अध्ययन की पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हैं और निकट भविष्य में पी-एच.डी. शुरू करने की पूरी संभावना है।

फिजी में हिंदी भाषा, समाज और साहित्य के संघर्ष को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

पहला चरण : संघर्ष काल—1879-1920

दूसरा चरण : जागृति काल—1920-1950

तीसरा चरण : प्रगति काल—1950-अब तक

संघर्ष काल—(1879-1920)

यह कालखंड फिजी भारतीयों के जीवन का एवं हिंदी भाषा के लिए अत्यंत कठिन समय रहा। आज उनकी पीड़ा का अनुमान लगाना बड़ा कठिन काम है। अधिकांशत: निरक्षर थे, पर उनमें अपनी संस्कृति और अपनी भाषा को कायम रखने की ललक थी। शरीर से वे फिजी में रहते थे पर आत्मा हमेशा भारत भूमि की मिट्टी छूने और अपने मुल्क की खबर सुनने के लिए तड़पती थी। अपना कुली काल पूरा करने के बाद अनेक प्रयास करने पर भी जब वे अपने मुल्क यानी भारत लौटने में असमर्थ रहे, तब वे फिजी को ही अपना मुल्क बनाने, भारतीय संस्कृति को उसे समृध्द बनाने में लग गए। उन्होंने अपने बल पर छोटे-छोटे केंद्र स्थापित किए और हिंदी तथा हिंदू संस्कृति की शिक्षा देना शुरू किया। शिक्षा का माध्यम हिंदी और संस्कृत हुआ करती थी। उस समय पाठ्य पुस्तक थी 'चाणक्य नीति दर्पण', 'विदुरनीति', 'कबीर या रहीम के दोहे', 'रामचरित-मानस' या जो भी पुस्तक उपलब्ध होती थी, उसे पाठ्यपुस्तक के रूप में काम में लाया जाता था। रामचरित मानस गाकर व सुनकर उन्हें अटूट धैर्य धारण की शक्ति प्राप्त होती थी। यही कारण है कि आज फिजी में 2000 से कुछ अधिक रामायण मंडलियाँ हैं।

उदाहरण के तौर पर पंडित भगवान दत्त पांडे शर्तबंदी में सन् 1884 में फिजी आए थे। कुली काल पूरा होने पर वूसी नसौरी में अपनी छोटी सी कुटी बनाकर रहने लगे और यही कुटी हिंदुओं के लिए हिंदी शिक्षण और धार्मिक शिक्षा का केंद्र बन गई। आगे चलकर यहीं पर स्कूल का निर्माण किया गया। यही भारतीयों की शिक्षा का फिजी में प्रथम स्कूल था। इसी समय फिजी में साहित्य का सृजन शुरू हुआ, गन्ने के खेतों से, कुली-लेन की दर्द भरी पीड़ा से, उन कुटियों से जहाँ वे रविवार को एक साथ बैठकर परमात्मा से अपनी दर्दभरी गुहार लगाया करते थे। आह, पीड़ा, करुण-क्रंदन से भरी सहायता की पुकार से जो गान उपजा, उसने फिजी में हिंदी साहित्य सृजन की नींव डाली। इसी को फिजी का प्रथम हिंदी पद्य साहित्य कहा जा सकता है, जो अपनी पीड़ा को कम करने के लिए गाया गया, पर संकलित न किया जा सका।

उदाहरण के तौर पर—

'रोटी कारन जाल में फस पखेरु आए
रोटी कारन आदमी लाखों कष्ट उठाए'

या फिर—'खूब पसीने से सींचे हम बगिया
बैठा-बैठा हुकुम चलाय रे विदेसिया'
या—'नगौना हमसे छूटे न प्यारी,
देस छूटा जात छूटी, छूटे बाप महतारी,

इस टापू का भाँग नगौना, पीकर रात गुजारी।'

दु:खित स्त्री-पुरुषों के मुख से अनेक ऐसे गीत फूट पड़े, जो लोक साहित्य के अंग बन गए। ऐसा पद्य साहित्य बहुतायत में गाया गया, पर दुर्भाग्यवश अधिकांश प्रकाशित नहीं किया जा सका।

जागृति काल—(1920-1950)

फिजी प्रवासी भारतीयों की जागृति के दो चरण फिजी के संपूर्ण वातावरण में आज भी परिलक्षित होते हैं—एक उनकी धार्मिक भावना और दूसरा उनका शिक्षा के प्रति प्रेम। जहाजी भाईचारा और भारतीय होने पर गर्व ही उनके लिए सबकुछ था। जाति और धर्म के भेदभाव को परे रख एक जुट होकर धर्म, संस्कृति और शिक्षा केंद्रों का विकास ही उनका परम लक्ष्य बन गया था। यह वह समय था, जबकि फिजी भारतीयों में अपनी भाषा, संस्कृति और साहित्य के प्रति भावना जागी और लेखन कार्य में रुचि जाग्रत होने लगी। बाँके महावीर मित्र सन् 1934 में भक्तिपरक कविताएँ लिखते थे, इन्हें फाग मंडली में गाया जाता था। इनका फाग संग्रह 'मानव मित्र बसंत' नाम से संकलित है। गोविंद नारायण तथा बाबू कुँवर सिंह ने कविताएँ 1935 में लिखना शुरू की, जो 'शांति दूत' एवं 'फिजी समाचार' में छपती रहीं। श्री नंदकिशोर ने सन् 1959 में 'उस पार', 'दुर्गम पथ' आदि अनेक मार्मिक कविताएँ लिखीं। श्री सूर्यपालजी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविताएँ लिखते थे। इसी कारण वे 'हिंदलाल' नाम से मशहूर हो गए।

फिजी के सबसे लोक प्रसिध्द एवं राष्ट्रीय कवि पं. कमला प्रसाद मिश्र ने एक हजार कविताएँ लिखी थीं, अधिकांश अप्रकाशित रह गईं। इनकी कविता 'ताज', 'मेरा अतीत', 'कितना अंतर', 'जीवन मार्ग' आदि कविताओं में प्रकृति प्रेम, मानवीय संवेदना तथा राष्ट्रीयता आदि भावनाएँ देखने को मिलती हैं। डॉ. विवेकानंद शर्मा द्वारा संकलित एवं प्रकाशित की गई पुस्तक—'फिजी के राष्ट्रीय कवि कमला प्रसाद मिश्र का काव्य' बहुत ही सुंदर विचारों से पूर्ण कविता संग्रह है। विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी कोर्स में इसे शामिल किया गया है।

रेवा नसौरी के स्वर्गीय पं. प्रतापचंद शर्मा एक दार्शनिक कवि थे। इनका पहला काव्य संग्रह 'प्रवासी भजनावली' सन् 1947 में प्रकाशित हुआ और दूसरा काव्य संग्रह सन् 2012 में 'प्रताप कवितांजली' नाम से प्रकाशित हुआ है। वर्तमान समय में भी बहुत से कवि हिंदी साहित्य-सेवा में लगे हुए हैं।

यह जागृति का वह समय था, जबकि विभिन्न धर्म-संस्थाओं ने भारत से विद्वानों और शिक्षकों को बुलाना शुरू कर दिया था। अथक प्रयासों से धन बटोर कर शिक्षा की उन्नति के लिए शिक्षक भारत से बुलाए जाने लगे। आर्य समाज, सनातन धर्म, संगम संस्थाएँ और गुरुद्वारा समुदाय सभी अपने धर्म गुरुओं को बुलाया करते थे। 1930 के दशक में पत्रकारिता ने काव्य रचनाओं के प्रकाशन में बहुत सहयोग प्रदान किया। 'फिजी समाचार', 'भारत पुत्र' तथा 'वृध्द वाणी' आदि पत्रिकाएँ उस समय बहुत लोकप्रिय थीं। 'वैदिक संदेश' आर्य समाज प्रचारक श्री कृष्ण शर्मा द्वारा प्रकाशित और सनातन धर्म द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिकाओं ने धार्मिक साहित्य प्रकाशन में बहुत बड़ा योगदान दिया। 'फिजी समाचार' (1927-1975) लंबे समय तक चलनेवाली पत्रिका थी। सन् 1935 में हिंदी साप्ताहिक समाचार-पत्र 'शांति दूत' का प्रकाशन शुरू हुआ। यह अति लोकप्रिय था, ज्ञानवर्धक और भारतीय समाज को एक साथ जोड़ने तथा लंबे समय तक चलनेवाला समाचार-पत्र था।

प्रगति काल—(1950-2023)

वर्तमान समय में फिजी में अनेक कवि एवं साहित्यकार उभरकर आ रहे हैं। हिंदी काव्य साहित्य लेखिका श्रीमती अमरजीत कँवल एक हिंदी शिक्षिका थीं।

अब थोड़ा प्रकाश गद्य साहित्य रचना एवं साहित्यकारों पर डालना चाहूँगी। फिजी का पहला गद्य साहित्य संभवत: पं. अयोध्या प्रसाद शर्मा द्वारा लिखा गया 'किसान संघ का इतिहास' है, जिसे दो खंडों में लिखा गया था।

फिजी में हिंदी और हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार में पं. अमीचंदजी का नाम प्रमुख रहा है। वे बहुगुणी प्रतिभा के व्यक्ति थे। हिंदी की प्राथमिक कक्षाओं के लिए हिंदी की पाठ्य पुस्तकें लिखनेवाले प्रथम व्यक्ति थे। इनकी लिखी हुई 'मेरी पहली पोथी से लेकर छठवीं पोथी' तक हिंदी पाठ्यक्रम की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें सिध्द हुई।

प्रतिभा के धनी, सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार जोगेंद्र सिंह कँवल फिजी में सदैव याद रहेंगे।

फिजी भाषा के विकास में डॉ. विवेकानंद शर्मा और प्रो. सुब्रह्मनी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आज भी फिजी में मानक हिंदी जिन संघर्षों और चुनौतियों का सामना कर रही हैं, वे हैं—आधुनिक तकनीकी फेसबुक, चैट, इ-मेल आदि के आकर्षण में भाषा के प्रति अरुचि बढ़ रही है। मातृभाषा और धर्म के प्रति बढ़ती हुई युवा वर्ग की अरुचि चिंता का विषय है। माता-पिता के बदलते खयाल, आधुनिकता की ओर झुकाव है। पाठ्यक्रम में मानक हिंदी के स्थान पर फिजी हिंदी लाने का प्रयास। देवनागरी लिपि का स्थान रोमन लिपि लेती जा रही है, परिणामत: हिंदी ध्वनियों का लोप हो रहा है।

□

manishar@unifiji.ac.fj

अपनी सरलता के कारण हिंदी प्रवासी भाइयों की स्वत: राष्ट्रभाषा हो गई।

—भवानीदयाल संन्यासी

शिक्षा के प्रसार के लिए नागरी लिपि का सर्वत्र प्रचार आवश्यक है।

—शिवप्रसाद सितारेहिंद

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

—रविशंकर शुक्ल

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी : प्रचार-प्रसार

—रीता कौशल

ऑस्ट्रेलिया छह स्टेट और दो टेरीटॉरि में विभाजित है। ऑस्ट्रेलिया को 'प्रवासियों का देश' कहा जाता है, क्योंकि यहाँ की आबादी विश्व के तमाम देशों से आए प्रवासियों से बनी है।

ऑस्ट्रेलिया की 2021 की जनगणना के आँकड़ों को देखें तो यहाँ सामुदायिक विविधता और भी ज्यादा बढ़ गई है। 2021 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में हिंदीभाषी लोगों में 55.3% की वृद्धि हुई है। जनगणना में यह भी पाया गया कि लगभग आधे ऑस्ट्रेलियाई लोगों के माता-पिता विदेशों में पैदा हुए थे, जो लगभग 48.2% के बराबर है। ऑस्ट्रेलिया के बाहर अन्य देशों में जन्म लेनेवालों में सबसे बड़ी वृद्धि भारत के रूप में उभरकर आई है। पिछली जनगणना की तुलना में ऑस्ट्रेलिया के स्थायी निवासियों में भारत में जन्म लेनेवालों की संख्या में करीब 2,17,963 अतिरिक्त लोगों की बढ़ोत्तरी हुई है। इस तरह वर्तमान में ऑस्ट्रेलिया के स्थायी निवासियों के जन्म-देश की सूची में ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड के बाद भारत का स्थान आता है।

भारत से आनेवाले प्रवासियों की इतनी बड़ी तादाद के चलते ऑस्ट्रेलिया में कई हिंदी सेवी संस्थाएँ हैं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं के प्रयासों और कुछ आर्थिक व राजनैतिक कारणों के चलते ऑस्ट्रेलिया सरकार का दृष्टिकोण भी भारत के प्रति सकारात्मक हुआ है। आज ऑस्ट्रेलिया के छह राज्यों में से तीन में हिंदी सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बन गई है। ये राज्य विक्टोरिया, न्यू साउथ वेल्स और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया हैं। इन राज्यों के शिक्षा मंत्रालय की पाठ्यक्रम बनानेवाली समिति ने हिंदी भाषा के लिए भी पाठ्यक्रम तैयार किया है, जो कि यहाँ की कुछ पाठशालाओं में लागू हो चुका है और बाकी में लागू करने के प्रयास जारी हैं। सभी स्कूलों में हिंदी न शुरू हो पाने का सबसे बड़ा कारण उन स्कूलों में हिंदी सीखनेवाले छात्रों की कम संख्या और मान्यताप्राप्त हिंदी शिक्षकों की कमी है।

इस संदर्भ में मेलबर्न के उपनगर क्रेनबर्न स्थित 'रेंजबैंक प्राइमरी स्कूल' का योगदान उल्लेखनीय है। यह वह स्कूल है, जिसने 2012 में हिंदी को मुख्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर कक्षा एक से छह तक के छात्रों को दूसरी भाषा के रूप में हिंदी उपलब्ध कराई थी। इस तरह 'रेंजबैंक प्राइमरी स्कूल' को विक्टोरिया राज्य में हिंदी शिक्षण करनेवाले सबसे पहले सरकारी स्कूल का दर्जा प्राप्त है। इस समय यहाँ 500 के आस-पास छात्र हिंदी पढ़ रहे हैं। रेंजबैंक के हिंदी कार्यक्रम की विशेषता यह है कि यहाँ पर पहली से लेकर छठवीं कक्षा तक

---

* साहित्यकार, ऑस्ट्रेलिया।

सबको हिंदी पढ़ना अनिवार्य है, वे विद्यार्थी भले ही किसी भी देश के क्यों न हों ! यही कारण है हिंदी सीखनेवाले छात्रों में से अधिकांश भारतीय पृष्ठभूमि के नहीं हैं। अपने छात्रों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करने में इस विद्यालय के प्रधानाचार्य कॉलीन एवरी की भूमिका अत्यंत सराहनीय है।

बाद के वर्षों में मेलबर्न के 'द ग्रेंज P-12 कॉलेज' में भी हिंदी मुख्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बन गई। 'द ग्रेंज कॉलेज' में हिंदी के तीन-चौथाई छात्र गैर-भारतीय पृष्ठभूमि के हैं।

विक्टोरिया राज्य की स्कूल के स्तर की एक संस्था, जिसका नाम, 'विक्टोरियन स्कूल आफ लैंगुएजेज' है। इसके अंतर्गत 14 केंद्र हैं, जहाँ शनिवार को सुबह 8 से 12 बजे तक कक्षाएँ लगती हैं। विक्टोरिया राज्य में 'हिंदी शिक्षा संघ' नाम की भी एक संस्था है, जो हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों के माध्यम से यथासंभव कार्य कर रही है।

न्यू साउथ वेल्स राज्य के दस प्राइमरी व एक माध्यमिक स्कूल में हिंदी मुख्य पाठ्यक्रम का हिस्सा है, जबकि वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के मात्र एक स्कूल 'ईस्ट केन्विक प्राइमरी स्कूल' में हिंदी मुख्य पाठ्यक्रम का हिस्सा है। 21 जनवरी, 2021 को वेस्टर्न ऑस्ट्रेलियन एजुकेशन एंड ट्रेनिंग मिनिस्टर सू एलरी ने घोषणा की थी कि अब हिंदी वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के पाठयक्रम का हिस्सा होगी। लगभग सभी कक्षाओं के लिए 2023 से पाठयक्रम उपलब्ध हो जाएगा। वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया का हिंदी समाज (HSWA), जो कि 1996 में गठित एक गैर-लाभकारी पंजीकृत संगठन है। इसके संस्थापक सदस्यों में प्रेम माथुर, राज्यश्री मालवीय, अनूप मालवीय, लक्ष्मी तिवारी, अनु मदान के नाम प्रमुख हैं। इतने लंबे समय से वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के इस हिंदी समाज के अनगिनत स्वयंसेवकों के अथक प्रयासों से और तत्कालीन इंडियन कॉन्सल जनरल दंतु चरणदासी और भारतीय मूल के एम.एल.ए. यज मुबारकाई के सहयोग से ही यह काम संभव हो पाया है।

सिडनी में हिंदी की शुरुआत तब हुई, जब भारत से नई-नई आईं प्रवासी माताओं के एक समूह ने माला मेहता के नेतृत्व में ऑस्ट्रेलिया में अपने छोटे बच्चों के भविष्य के बारे में सोचना शुरू किया। उन्होंने सोचा कि जब ये बच्चे भारत में अपने दादा-दादी और परिवार के अन्य सदस्यों से मिलने लौटेंगे, तो वहाँ की भाषा व संस्कृति से अपरिचित होने के कारण स्वयं को एलियंस की तरह महसूस करेंगे। इसी समस्या के निदान की सोच के साथ उन्होंने जून 1987 में 'इंडो-ऑस्ट बाल भारती विद्यालय हिंदी स्कूल' (IABBV-हिंदी स्कूल) की नींव रखी। ये एक गैर-लाभकारी संस्था है, जो पूरी तरह से स्वयंसेवकों द्वारा संचालित है। यह स्कूल न्यू साउथ वेल्स डिपार्टमेंट ऑफ ट्रेनिंग एंड एजुकेशन कोऑर्डिनेशन (NSW DTEC) के तहत सामुदायिक भाषा कार्यक्रम द्वारा प्रदान की गई कुछ वित्तीय सहायता और सतत् प्रोत्साहन के साथ आगे बढ़ता रहा है। यह न्यू साउथ वेल्स राज्य की पहली समुचित हिंदी शिक्षण संस्था है, जो सिडनी में हिंदी के शिक्षण के लिए समर्पित है।

विश्वविद्यालयों के हिंदी शिक्षण की स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी पढ़नेवालों की संख्या में भारी गिरावट हुई है। 1990 के मध्य में जहाँ छह ऑस्ट्रेलियन विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती थी, वहीं आज मात्र दो विश्वविद्यालयों तक सीमित रह गई है। इन विश्वविद्यालयों के नाम हैं— ला ट्रोब यूनिवर्सिटी (मेलबोर्न) व ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी (कैनबरा)। 2020 में कोविड के कारण अंतरराष्ट्रीय छात्रों का ऑस्ट्रेलिया आना बंद हो गया और इसके साथ ही विश्वविद्यालयों के सामने वित्तीय समस्याएँ खड़ी हो गईं। यही कारण

थे कि दिसंबर 2020 के आते-आते ला ट्रोब यूनिवर्सिटी ने अपने हिंदी कार्यक्रम को बंद करने का निर्णय ले लिया था। इसके विरोध में 'हिंदी एक्शन ग्रुप' एक व्यापक हस्ताक्षर अभियान चलाने में कामयाब रहा और इस मुद्दे पर संघीय शिक्षा मंत्री से भी बात की गई। लगभग तीन महीने तक चली इस मुहिम का परिणाम अत्यंत सुखद रहा। हिंदी प्रेमियों/सेवियों की मेहनत रंग लाई और ला ट्रोब यूनिवर्सिटी ने अपने हिंदी शिक्षण को जारी रखने का फैसला दे दिया। इस संबंध में आधिकारिक निर्णय की घोषणा सोमवार 8 फरवरी, 2021 को की गई थी।

विक्टोरिया, न्यू साउथ वेल्स और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया जैसे राज्य, जहाँ हिंदी सरकारी स्कूलों के पाठयक्रम का हिस्सा बन चुकी है, के अतिरिक्त बाकी के राज्यों में हिंदी शिक्षण सामुदायिक व भाषा संस्थानों के द्वारा तो किसी-न-किसी रूप में चल ही रहा है। इन संस्थानों को कम्युनिटी लैंग्वेज स्कूल और ऑफिस ऑफ मल्टीकल्चरल जैसे संगठनों का संरक्षण प्राप्त होता है। लगभग सभी राज्यों में लैंग्वेज स्कूल के माध्यम से कक्षा एक से बारहवीं तक के छात्रों के लिए विभिन्न लोकेशन में हिंदी कक्षाएँ चलाई जाती हैं।

कैनबरा से संतोष गुप्ता ने बताया कि कैनबरा का हिंदी स्कूल फरवरी 2006 में स्थापित किया गया था। कैनबरा हिंदी स्कूल का उद्देश्य व्यापक ऑस्ट्रेलियाई समुदाय में विशेष रूप से कैनबरा और इसके पड़ोसी क्षेत्रों, जैसे कि कयूनबियन, कूमा, गूगोंग आदि में हिंदी भाषा को विकसित कर उसे बढ़ावा देना है। कैनबरा हिंदी स्कूल में 4 से 17 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए यहाँ के सामान्य स्कूलों के सत्रों के दौरान कैनबरा कॉलेज में रविवार को 2-3 घंटे के लिए हिंदी भाषा की कक्षाएँ चलाई जाती हैं। छात्रों को उनकी क्षमता के आधार पर समूहों में विभाजित किया जाता है।

कैनबरा हिंदी स्कूल के छात्र विभिन्न समारोह और मंचों, जैसे भारत के उच्चायोग द्वारा आयोजित गणतंत्र दिवस व स्वतंत्रता दिवस समारोह, हिंदू मंदिर और सांस्कृतिक केंद्र के वार्षिक समारोह, ऑस्ट्रेलियन कैपिटल टेरीटॉरि के कम्युनिटी लैंग्वेज स्कूल एसोसिएशन के वार्षिक दिवस और कैनबरा इंडिया काउंसिल द्वारा आयोजित 'इंडिया इन दि सिटी' आदि पर नियमित रूप से हिंदी के नाटक, कविता, कहानी का मंचन करते हैं और निबंध लेखन आदि प्रतियोगिताओं में भी हिस्सा लेते हैं। कैनबरा हिंदी स्कूल के जैसी ही रूपरेखा पर साउथ ऑस्ट्रेलिया की राजधानी ऐडलेड में अमिता मल्होत्रा 'ऐडलेड हिंदी स्कूल' चला रही हैं।

ब्रिस्बेन में हिंदी के प्रसार में मधु खन्ना, सोमा नायर, दिपाली निधि, माननीय इंडियन कॉन्सल जनरल अर्चना सिंह, नंदनी विनय प्रकाश जैसी हिंदी सेवियों ने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए हैं। जहाँ दिपाली निधि और अर्चना सिंह दशकों से हिंदी शिक्षण से जुड़ी हुई हैं, वहीं मधु खन्ना का ऑस्ट्रेलियन इंडियन रेडियो पर हिंदी भाषा में साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित होता है।

ब्रिस्बेन के वेदांत सेंटर में 2021 से हिंदी पढ़ाई जा रही है। विश्व हिंदू परिषद् क्वींसलैंड के बाल संस्कार केंद्र के 'विद्या विहार' खंड की दो शाखाएँ हैं—बाल केंद्र व युवा केंद्र। इन केंद्रों पर 2010 से हर रविवार को दोपहर 2 से 5 बजे तक हिंदी, संस्कृत व वैदिक श्लोक की कक्षाएँ चलती हैं। ब्रिस्बेन में 'ज्ञान हिंदी एकेडमी स्कूल' में नंदनी विनय प्रकाश 2016 से हिंदी की कक्षाएँ चला रही हैं। यहाँ की क्वींसलैंड यूनिवर्सिटी के 'इंस्टीट्यूट ऑफ मॉडर्न लैंग्वेज' में हिंदी लेवल 1A और हिंदी लेवल 1B का पाठयक्रम उपलब्ध है।

सिडनी की रेखा राजवंशी ने 2010 में 'इंडियन लिटरेरी एंड आर्ट सोसाइटी ऑफ ऑस्ट्रेलिया' (ILASA) इनकॉर्पोरेटेड संस्था की

स्थापना की, जिसके माध्यम से वह ऑस्ट्रेलिया में भारतीय कला और साहित्य को बढ़ावा देने के लिए हिंदी के विभिन्न साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती हैं।

मेलबोर्न में स्वर्गीय प्रोफेसर बलभद्र तिवारी की अध्यक्षता में साल 1999 में 'साहित्य संध्या' प्रारंभ हुई थी। बाद में इसको आगे बढ़ाने में डॉ. सुभाष शर्मा का बहुत बड़ा योगदान रहा। एक पंजीकृत संस्था न होते हुए भी 'साहित्य संध्या' मेलबोर्न के साहित्याकाश का जगमगाता सितारा है। यहाँ एक 'हिंदी निकेतन' नाम की संस्था भी है, जिसके सांस्कृतिक कार्यक्रम लोगों को परस्पर जोड़ते हैं।

अगर ऑस्ट्रेलिया के हिंदी साहित्य की बात करें तो यहाँ के लेखकों की बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसमें रीता कौशल का 'रजकुसुम', 'ऑस्ट्रेलिया से रेखा राजवंशी की कहानियाँ', डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव के 'क्षितिज के पार', 'बोलती कहानियाँ' आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

विजय कुमार सिंह का एक उपन्यास 'ऋणमुक्त' शीर्षक से दो खंडों में प्रकाशित हुआ है। संजय अग्निहोत्री के तीन उपन्यास 'झूठे नाते', 'अकेला अंग्रेज', 'अँधेरों का संगतराश' प्रकाशित हो चुके हैं। लक्ष्मी तिवारी के उपन्यास 'पड़ाव' और हाल ही में प्रकाशित रीता कौशल के उपन्यास 'अरुणिमा' को भी पाठकों द्वारा खूब सराहा गया है।

ऑस्ट्रेलिया से प्रकाशित काव्य संग्रहों की एक लंबी सूची है। सभी का नाम यहाँ दे पाना एक बेहद दुरुह कार्य होगा। इसमें से कुछ, हरिहर झा के 'भीग गया मन', 'फुसफुसाते वृक्ष कान में', 'दुल्हन-सी सजीली', रीता कौशल का 'चंद्रकांक्षा' हैं। डॉ. भावना कुँअर के 'तारों की चूनर' (हाइकु संग्रह), 'धूप के खरगोश' (हाइकु संग्रह), 'जाग उठी चुभन' (सेदोका संग्रह), 'परिंदे लौटे' (चोका संग्रह), 'कूल कछुआ स्मार्ट कंगारू' (बालगीत) आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'मुट्ठी भर चाँदनी' (गजल संग्रह), 'कंगारुओं के देश में (कविता संग्रह) रेखा राजवंशी की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। कैनबरा में रहने वाले डॉ. अवधेश प्रसाद के भी अब तक तीन काव्य संकलन 'तन्हाईयाँ', 'खामोशियाँ', 'चिरागों की कतार' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं।

बाल साहित्य में भी कई बाल-गीत व बाल-कहानी संग्रह देखने को मिलते हैं। अभी हाल ही में वर्ष 2022 के अंत में रीता कौशल के सम्पादन में 'ऑस्ट्रेलिया की 21 श्रेष्ठ बाल कहानियों' का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

ऑस्ट्रेलिया से चेतना, देवनागरी, हिंदी समाचार-पत्रिका, हिंदी-पुष्प, भारत-भारती आदि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। ऑस्ट्रेलिया में 1970 में आए, हिंदी शिक्षण व उसके प्रचार-प्रसार का बिगुल बजानेवाले स्वर्गीय डॉ. दिनेश श्रीवास्तव मेलबोर्न से निकलनेवाली हिंदी पुष्प मासिक पत्रिका के संस्थापक संपादक थे। 'साउथ ऐशिया टाइम्स' मासिक पत्रिका, जो कि अंग्रेजी में है, 'हिंदी पुष्प' इसी का एक छोटा सा हिंदी परिशिष्ट है। दिनेशजी ने कुछ और हिंदी सेवियों के साथ मिलकर 'हिंदी निकेतन' नाम की एक संस्था की स्थापना की थी। 'देवनागरी' पत्रिका इसी संस्था की पत्रिका थी, जिसका दिनेशजी ने पाँच वर्षों तक प्रकाशन किया।

'भारत-भारती' हिंदी समाज ऑफ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया की वार्षिक पत्रिका है। हर वर्ष 'भारत-भारती' पत्रिका की 150 प्रतियाँ मुद्रित कराई जाती हैं। भारत-भारती पत्रिका की शुरुआत 1996 में हुई। स्थानीय हिंदी प्रेमियों के लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए इसका शुभारंभ किया गया। प्रारंभिक वर्षों में यह 'पत्रिका' नाम से ही प्रकाशित की जाती थी। बाद में इसका नाम 'भारत-भारती' कर दिया गया। इसका

विमोचन हर वर्ष जुलाई में 'हिंदी समाज ऑफ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' की वार्षिक मीटिंग में होता है। संस्था के सदस्यों को इसकी मुद्रित प्रतियाँ मुफ्त में वितरित की जाती हैं और सॉफ्ट कॉपी को यथासंभव इ-मेल के द्वारा देश-विदेश में भेजने का प्रयास किया जाता है। इसकी उपलब्धता संस्था की वेबसाइट पर भी है, जहाँ से इसे कोई भी डाउनलोड करने के लिए स्वतंत्र है।

मेलबोर्न में रहनेवाले डॉ. अमित सारवाल ऑस्ट्रेलिया के जाने-माने अनुवादक और पत्रकार हैं। डॉ. अमित सारवाल 'द यूनिवर्सिटी ऑफ द साउथ पैसिफिक (फिजी)' में सीनियर लेक्चरर के पद पर कार्यरत रहे हैं। 'व्याकुल राष्ट्र', 'हमारा प्रशांत' और 'ध्रुवस्वामिनी' इनकी कुछ चुनी हुई अनुदित पुस्तकें हैं। 'हमारा प्रशांत' (काव्य-संग्रह) 2021 में प्रकाशित हुआ था। यह संग्रह पैसिफिक यानी प्रशांत के कवियों द्वारा लिखी गई अंग्रेजी कविताओं का हिंदी अनुवाद है। इसमें प्रस्तुत कविताएँ प्रशांत के विभिन्न देशों में आम लोगों के दैनिक जीवन, प्रकृति प्रेम, उपनिवेशवाद, राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक घटनाओं, लैंगिकवाद, सांस्कृतिक धरोहर तथा गिरमिटिया और उनके वंशजों के जीवन की झलक दिखती हैं।

अगर मीडिया की बात करें तो ऑस्ट्रेलिया में दो सार्वजनिक वित्त पोषित प्रसारक हैं : ऑस्ट्रेलियन ब्रॉडकास्ट कॉरपोरेशन (ए.बी.सी) और स्पेशल ब्रॉडकास्ट सर्विस (एस.बी.एस.)। इसमें एस.बी.एस. ऑस्ट्रेलिया का बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी राष्ट्रीय सार्वजनिक प्रसारक है। एस.बी.एस. रेडियो ने 1975 में आठ भाषाओं में प्रसारण शुरू किया था और अब 60 से अधिक भाषाओं में मौलिक कार्यक्रम प्रसारित करता है। इन 60 भाषाओं में हिंदी को भी महत्त्वपूर्ण दर्जा प्राप्त है। 1989 से ऑस्ट्रेलिया में बसी अनीता बरार 1992 से एस.बी.एस. हिंदी टी.वी./ रेडियो चैनल पर प्रोड्यूसर तथा उद्घोषिका हैं। अनीता बरार ऑस्ट्रेलिया के हिंदी भाषी समुदाय व एस.बी.एस. हिंदी के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

सार्वजनिक रेडियो के अलावा ऑस्ट्रेलिया में सामुदायिक व वाणिज्यिक रेडियो/टी.वी. प्रसारण के अन्य दो मॉडल हैं। 'संगम रेडियो पर्थ' हर शनिवार को दोपहर 3 से 4 बजे तक विभिन्न भारतीय भाषाओं व हिंदी के कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। बहुत बार 'हिंदी समाज ऑफ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' के द्वारा चलाई जानेवाली हिंदी पाठशाला के बच्चे अपनी शिक्षिकाओं के साथ इस रेडियो स्टेशन पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने जाते हैं। 2005 में सुभाष शर्मा ने कम्यूनिटी टी.वी. चैनल पर हिंदी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से 'आपसे मिलिए' कार्यक्रम शुरू किया। इसमें उन्होंने अनेक राजनेताओं तथा उच्च पदासीन भारतीयों के नियमित रूप से साक्षात्कार किए। उन्होंने 'आपकी समस्या हमारे जवाब' नाम का एक और कार्यक्रम शुरू किया। इसके अंतर्गत नए प्रवासियों के हित को ध्यान में रखते हुए हिंदी में सूचनाएँ दी जाती थीं। ये दोनों ही कार्यक्रम बेहद लोकप्रिय हुए, पर बाद में कई अन्य कारणों से ये चैनल बंद हो गया, किंतु इन्हीं से मिलते-जुलते प्रारूप पर पूरे ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी भारतीयों द्वारा बहुत से कम्यूनिटी टी.वी. चैनल व रेडियो स्टेशन चलाए जा रहे हैं। इन सभी का उद्देश्य हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं व संस्कृति का प्रचार-प्रसार है।

उपरोक्त जानकारी को देखें तो ऑस्ट्रेलिया के छह स्टेट और दो टेरीटॉरि में से पाँच स्टेट और एक टेरीटॉरि में हिंदी के प्रचार-प्रसार पर व्यापक कार्य चल रहा है। यदि भारतीय समुदाय अपनी भाषा एवं संस्कृति को सहेजने हेतु कृतसंकल्प है, तो ऑस्ट्रेलियाई सरकार व्यापारिक व राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत से अपने संबंध प्रगाढ़ करने के उद्देश्य से हिंदी भाषा को बढ़ावा दे रही है।

□

rita210711@gmail.com

सिंगापुर में हिंदी शिक्षण की स्थिति

—डॉ. संध्या सिंह

सिंगापुर में हिंदी का आगमन भी सिंगापुर की बहुप्रजातीय समाज की खूबसूरती को बरकरार रखने के साथ ही शिक्षण में उस समाज से आए हुए युवाओं को यथायोग्य स्थान मिले, इसी कारण हुआ। कई अभिलेखों के आधार पर यह तय है कि सिंगापुर में हिंदी काफी पहले ही, यानी 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही प्रवेश कर चुकी थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सिंगापुर की सरकार ने प्रजातीय एकता को बरकरार रखने की कोशिश में विद्यालयों में मातृभाषा शिक्षण को अनिवार्य कर दिया। सिंगापुर को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में 9 अगस्त, 1965 को पहचान मिली। उस समय मलय भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया, जबकि चीनी, अंग्रेजी और तमिल को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया। सरकार ने विद्यालयों में द्विभाषी नीति की शुरुआत सन् 1966 में की। द्विभाषिकता सिंगापुर की भाषा नीति की आधारशिला रही है। यह नीति अंग्रेजी और मातृभाषा-भाषाओं का उपयोग करने पर जोर देती है। विशेष रूप से तीन मुख्य जातीय समूहों के लिए, जैसे चीनी समुदाय के लिए मंदारिन या यहाँ जिसे चीनी ही कहते हैं, मलय समुदाय के लिए मलय और भारतीयों के लिए तमिल। अंग्रेजी को सिंगापुर की कामकाजी भाषा बनाया गया, जबकि मातृभाषा पर जोर व्यक्ति के मूल्यों और सांस्कृतिक संबंध की भावना को मजबूत करने के लिए दिया गया।

चूँकि द्वितीय भाषा का अध्ययन सबके लिए अनिवार्य था और विकल्प में सिर्फ तीन भाषाएँ। वे भी ऐसी कि न लिपि अपनी मातृभाषा से मेल खाती हो, न स्वर, न व्यंजन। अत: तमिल भाषियों के अलावा अन्य भारतीयों के लिए परेशानियों का अंबार खड़ा होना जाहिर था। यह बात काफी चिंताजनक थी कि एक हिंदी भाषी छात्र अच्छे माध्यमिक विद्यालय या विश्वविद्यालय के अच्छे पाठ्यक्रम में महज इसलिए नहीं जा पाता, क्योंकि द्वितीय भाषा में उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। इस गंभीर विषय पर हिंदी समुदाय में काफी विचार-विमर्श हुआ। अपने-अपने स्तर पर प्रयास का ज्यादा फल नहीं मिल सकता था, अत: एक समिति बनाकर इस मसले को सरकार के समक्ष रखने का विचार ही आगे आया। हिंदी ही नहीं पंजाबी, गुजराती, बंगाली व उर्दू भाषी भी इसी समस्या से गुजर रहे थे। इन सभी का सिंगापुर के आजाद होने से लेकर विकास तक में बड़ा योगदान था। महात्मा गांधी मेमोरियल के ट्रस्टी व अधिवक्ता श्री श्रीनिवास राय से बातचीत के दौरान पता चला कि सन् 1985 में उन्होंने एक पत्र मंत्रालय को सौपा कि मेरा बच्चा हिंदी पढ़ना

* नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर में विभागाध्यक्ष (हिंदी व तमिल)।

चाहता है, क्योंकि उसके बाकी सभी विषयों में अच्छे अंक हैं, पर द्वितीय भाषा हिंदी न होने के कारण उसके अंक बहुत प्रभावित हो रहे हैं। उस समय विदेश मंत्री श्री धानाबालनजी ने कहा, "हमें अपनी नीति का पुन: अवलोकन करना चाहिए।" सन् 1988 में हिंदी समर्थन कमेटी बनाई गई, जिसमें इस मुद्दे का विश्लेषण किया गया और आगे की योजना पर बात हुई। सन् 1989 में सिंगापुर के शिक्षा मंत्री श्री टोनी तानजी थे, उनके सामने यह प्रस्ताव रखा गया, जिसके जवाब में मंत्रालय का यही उत्तर आया कि मंत्रालय इस पर विचार करेगा और अगर मान्यता मिलती है तो समुदाय को ही हिंदी कक्षाओं की व्यवस्था करनी पड़ेगी, क्योंकि मंत्रालय के पास हिंदी विशेषज्ञ नहीं हैं।

6 अक्तूबर, 1989 का दिन सिंगापुर में हिंदी भाषियों के लिए अत्यंत खास रहा क्योंकि इसी दिन संसद में शिक्षामंत्री श्री टोनी तानजी ने घोषणा की कि गैर तमिल भाषी भारतीय छात्र माध्यमिक विद्यालय में पाँचों (हिंदी, गुजरती, पंजाबी, बाँग्ला, उर्दू) में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सन् 1990 से पढ़ सकते हैं अर्थात् अब दसवीं यानी 'ओ लेवल' की परीक्षा छात्र हिंदी में लिख सकते थे। (द स्ट्रेट टाइम्स, सिंगापुर, 7 अक्तूबर, 1989, पेज 24) और यहीं से सिंगापुर की शिक्षा नीति में हिंदी को स्थान मिला, जो धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। सरकार ने स्थान मुहैया कराया बाकी सब समुदाय व समिति ने किया। इस कार्य में श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर और सिंगापुर उत्तर भारतीय हिंदू संघ यानी भारतीय भवन ने 5-5 हजार डॉलर का चंदा भी दिया। द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की पहली माध्यमिक कक्षाएँ 21 जनवरी, 1990 को 'बेंग वान प्राथमिक' विद्यालय में हिंदी सोसाइटी के माध्यम से लगीं। धीरे-धीरे अन्य कक्षाओं के लिए भी मान्यता मिली।

गैर तमिल भारतीय भाषाओं (हिंदी, गुजरती, पंजाबी, बंगाली, उर्दू) का शिक्षण का कार्य तो शुरू कर दिया गया पर बच्चों के अंक बोर्ड परीक्षाओं के अलावा अन्य स्तरों पर नहीं जुड़ते थे, क्योंकि मंत्रालय के अनुसार सभी पाँचों भाषाओं का कोई मानक इम्तहान नहीं है। इस समस्या को दूर करने के लिए गैर तमिल भारतीय भाषा समूह (NTIL) की स्थापना हुई। सन् 1998 में पहली बार प्राथमिक चार की एक जैसी परीक्षा पाँचों भाषाओं के लिए इस बोर्ड के बैनर तले हुई और एक-एक करके अन्य स्तरों की भी। सन् 2007 पुन: गैर तमिल भारतीय भाषाओं के लिए एक नया मील का पत्थर था, क्योंकि इसी साल से न सिर्फ अंक सभी स्तरों पर जुडने लगे, बल्कि शिक्षा मंत्रालय ने 'बोर्ड फॉर टिचिंग एंड टेस्टिंग साउथ एशियन लैंग्वेजेज़' (BTTSAL) को प्रति वर्ष 15 लाख सिंगापुर डॉलर का सालाना वित्तीय अनुदान देने का निश्चय किया। बोर्ड ने समान पाठ्यक्रम का निर्धारण कर दिया और पाँचों भाषाओं में एक जैसी सामग्री, जैसे किताबें (अनुवादित) प्रयोग की जाने लगी, ताकि बोर्ड मानकता को बरकरार रख सके।

इस अत्याधुनिक छोटे से देश में जितने विद्यार्थी हिंदी पढ़ते हैं, उतने द्वितीय भाषा के रूप में शायद ही किसी देश में होंगे। यहाँ हिंदी कई रूपों में पढ़ाई जाती है, अर्थात् जहाँ स्थानीय विद्यालयों में द्वितीय भाषा के रूप में 'हिंदी सोसाइटी' या 'डी.ए.वी.' द्वारा संचालित कक्षाएँ चलाई जाती हैं, वहीं कई अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में द्वितीय व तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। साथ ही वयस्क कक्षाएँ भी लगाई जाती हैं और यहाँ के दो प्रमुख विश्वविद्यालयों में भी हिंदी विदेशी भाषा के रूप में सिखाई जा रही है। स्थानीय विद्यालयों में हिंदी शिक्षण ही मुख्य रूप से इस देश में हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है, क्योंकि किसी भी विदेशी देश में हिंदी को मुख्यधारा में स्थान मिलना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। भारत से आए

अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में हिंदी होना कई देशों में आम है, क्योंकि उनका पाठ्यक्रम भारतीय शिक्षा प्रणाली या कैंम्ब्रिज शिक्षा प्रणाली पर आधारित होता है और सी.बी.एस.सी. पाठ्यक्रम, आई.सी.एस.सी. या आई.जी.सी.एस.ई. पाठ्यक्रम होने के कारण हिंदी और भारतीय भाषाओं का होना आम बात है, लेकिन जब स्थानीय पाठ्यक्रम में हिंदी को स्थान मिलता है तो यह अधिक खास हो जाता है।

सिंगापुर के स्थानीय विद्यालयों में हिंदी शिक्षण का कार्य करनेवाली संस्थाएँ 'हिंदी सोसाइटी' सिंगापुर और डी.ए.वी. हिंदी स्कूल हैं। सन् 1989 में जब हिंदी को मान्यता मिलने की बात सामने आई तो सबसे पहले 'हिंदी सोसाइटी' ने ही हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों के लिए हिंदी कक्षाओं का आयोजन किया। स्थानीय विद्यालयों में हिंदी शिक्षण में भी हिंदी सोसाइटी ही शुरुआत में प्रमुख रही। आर्य समाज, जिसके माध्यम से डी.ए.वी. हिंदी स्कूल ने हिंदी कक्षाएँ काफी पहले से शुरू की थीं, लेकिन कुछ समय बाद लगभग बंद हो गईं। सन् 1990 में द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता मिलने के बाद भी शुरू में उनकी रफ्तार धीमी थी। आज सिंगापुर में स्थानीय विद्यालयों में 'हिंदी सोसाइटी' या डी.ए.वी. हिंदी स्कूल द्वारा संचालित कक्षाएँ ही चलाई जा रही हैं। धीरे-धीरे डी.ए.वी. ने भी रफ्तार पकड़ी, खासकर सन् 2000 के बाद विद्यार्थियों की संख्या में धीरे-धीरे बढ़ोत्तरी होने लगी और आज दोनों ही संस्थाओं में लगभग समान संख्या में छात्र हिंदी भाषा सीख रहे हैं। सन् 2014 में 'हिंदी सोसाइटी' जिसका मुख्य कार्यालय महात्मा गांधी मेमोरियल, 3 रेसकोर्स लेन, सिंगापुर में था, द्वारा 7 सेंटर और 47 स्थानीय विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही थी और डी.ए.वी. हिंदी स्कूल, जिसका मुख्य कार्यालय 113/114 सैयद अलवी रोड, सिंगापुर में है, के द्वारा 12 सेंटर और 83 स्थानीय विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही थी।

आज स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में 'हिंदी सोसाइटी' व 'डी.ए.वी.' द्वारा हिंदी शिक्षण का कार्य चल रहा है, जिसका निरीक्षण उन दोनों संस्थानों के अलावा 'बोर्ड फॉर टिचिंग एंड टेस्टिंग साउथ एशियन लैंग्वेजेज' करता है। स्थानीय विद्यालयों में पढ़ाए जाने के कारण जितने विद्यार्थी हिंदी भाषा पढ़ रहे हैं, उतने अन्य गैर-तमिल भारतीय भाषाओं में नहीं।

6 अक्तूबर, 1989 को डॉ. टोनी तान ने जब यह घोषित कर दिया कि सिंगापुर में हिंदी शिक्षण का कार्य शुरू किया जा सकता है तो मात्र दो महीने का समय था सारी तैयारी के लिए। सिंगापुर में शैक्षणिक सत्र जनवरी के महीने में शुरू होता है, तो इन्हीं दो-ढ़ाई महीनों में सबकुछ करना था, सामग्री तैयार करनी थी, अध्यापक तैयार करने थे, विद्यार्थियों का पंजीकरण करना था, सिर्फ स्थान मंत्रालय द्वारा मुहैया कराया गया। उस समय 'हिंदी सोसाइटी' सिंगापुर ने हिंदी भाषी समूह के साथ मिलकर एक इतिहास रचा, हिंदी के क्षेत्र में एक नया संचार हुआ। सन् 1990 में मात्र 99 छात्र 'हिंदी सोसाइटी' सिंगापुर के बैनर तले हिंदी को दूसरी भाषा के रूप में सीख रहे थे। वर्ष प्रति वर्ष की बढ़त पर अगर ध्यान दें तो सबकुछ खुद स्पष्ट हो जाएगा। सिंगापुर जैसे छोटे देश में यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। वर्तमान में 'हिंदी सोसाइटी' का कार्यालय 11 अरविन प्लेस, ताई संग सिंगापुर में है।

विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या ने शिक्षण की अन्य जरूरतों को भी बढ़ाया, जिसके कारण 'हिंदी सोसाइटी' ने अपने सेंटरों की संख्या में बढ़ोत्तरी की। शुरुआत में सिर्फ बेंगवान प्राथमिक में एक स्थान पर ही सभी कक्षाएँ लगती थीं। धीरे-धीरे एक सेंटर ने कई सेंटरों तक अपना जाल फैलाया। स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में हिंदी की कक्षाएँ शुरू करने का श्रेय भी 'हिंदी सोसाइटी' को जाता है। शुरुआत हुई सन् 1998 में स्वीस कॉटेज

प्राथमिक विद्यालय से और बढ़ते-बढ़ते वर्तमान में लगभग 67 स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में 'हिंदी सोसाइटी' से संबंधित अध्यापिकाओं द्वारा हिंदी पढ़ाई जा रही है। 'हिंदी सोसाइटी' के प्रारंभिक शिक्षकों में श्री उमाशंकार दूबे, श्रीमती कमलेश गौड, श्रीमती वीणा शर्मा, श्रीमती आशा अग्रवाल प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने हिंदी ज्ञान से सिंगापुर की धरती को सींचा।

श्रीमान शिवाकांत तिवारीजी सन् 1990 से सन् 2010 तक 'हिंदी सोसाइटी' के अध्यक्ष रहे पर सन् 2010 में अचानक उनकी मृत्यु ने संस्था को झकझोर दिया। हालाँकि, संस्था के अन्य सदस्यों ने बखूबी कार्यभार सँभाल लिया, पर जो रिक्तता तिवारीजी के जाने से बन गई थी, उसका भर पाना मुश्किल है। वर्तमान में 'हिंदी सोसाइटी', सिंगापुर के अध्यक्ष श्री महेंद्र प्रसाद रायजी हैं।

समय-समय पर कई गतिविधियों का आयोजन संस्था द्वारा किया जाता है जिनमें विद्यार्थियों की भागीदारी उनके भाषा कौशल को और बढ़ाती है। प्रारंभिक वर्षों से ही सिंगापुर के 'हिंदी सोसाइटी' ने हिंदी पत्रिका प्रतिवर्ष विद्यार्थियों के लिए निकालने पर जोर दिया। 'साधना' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रतिवर्ष होता है जिसमें सालभर संस्था द्वारा हुई गतिविधियों का जिक्र, विभिन्न कार्यों का जिक्र, विद्यार्थियों की उपलब्धियों का विवरण, बाल और किशोर वर्ग की लेखनी अध्यापिकाओं की लेखनी साथ ही पुराने विद्यार्थियों की कुछ यादें सम्मिलित होती है। 'हिंदी सोसाइटी' कई सामुदायिक कार्यक्रमों का हिस्सा पहले भी रही है और आज भी है। वार्षिक समारोह के आयोजन में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों को विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सभी कार्यक्रम हिंदी में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। सामुदायिक केंद्र में 'होली मिलन' हो या भारतीय सांस्कृतिक मेले में सहभागिता हो या प्रतियोगिताओं में भागीदारी हो, हिंदी सोसाइटी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है।

सिंगापुर में अगर पहली पंजीकृत हिंदी शिक्षण संस्था की बात करें तो वह डी.ए.वी. हिंदी स्कूल है। डी.ए.वी. हिंदी स्कूल में हिंदी कक्षाएँ काफी पहले से लगती हुई दिखाई देती हैं, लेकिन वह द्वितीय भाषा विद्यालय के रूप में नहीं बल्कि एक भाषा केंद्र के रूप में विकसित था, जिसे आर्य समाज की छत्रच्छाया मिली थी। सिंगापुर में जापानी शासन् के समय भी हिंदी का दर्जा बढ़ा, क्योंकि इंडियन नेशनल आर्मी ने नेताजी हिंदी हाई स्कूल के माध्यम से भी अपने मिशन को आगे बढ़ाया। सन् 1962 में सैयद अली रोड पर डी.ए.वी. हिंदी स्कूल की अपनी इमारत का निर्माण हुआ। आज यह इमारत डी.ए.वी. हिंदी स्कूल का कार्यालय है और साथ ही अतिरिक्त गतिविधियों का भी केंद्र है। 113 सैयद अली रोड, सिंगापुर-207681 पर स्थित इस कार्यालय के साथ ही कई कक्षाएँ भी इस इमारत में हैं, जिनका इस्तेमाल हिंदी सिखाने, गतिविधियाँ करवाने तथा, सांस्कृतिक आयोजनों के लिए भी किया जाता है। सिंगापुर में हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता मिलने के बाद डी.ए.वी. में भी इस दिशा में एक धीमा प्रयास शुरू हुआ। डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या पर गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी शिक्षण की ओर सन् 2000 के बाद इस संस्था ने कदम तेज किए। आज स्थिति यह है कि हिंदी सोसाइटी और डी.ए.वी. स्कूल दोनों में लगभग समान संख्या हैं। आज लोगों के पास विकल्प हैं। चूँकि हिंदी शिक्षण कई स्थानीय विद्यालयों में भी इन दोनों संस्थाओं के माध्यम से संपन्न होता है, इसलिए कई बार माता-पिता द्वारा विद्यालय में जिस संस्था द्वारा हिंदी शिक्षा दी जाती है, वहाँ पंजीकरण करा लिया जाता है।

डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के चेयरमैन श्रीमान ओ.पी. रायजी हैं, जो अपनी पुत्री रीता राय सियाजी के साथ इसका अवलोकन कर रहे हैं। प्रारंभ से ही श्री ओ.पी. रायजी इस संस्था के अध्यक्ष रहे हैं। यह संस्था भी वार्षिक रूप से 'दृष्टि' नामक पत्रिका का प्रकाशन करती है। पत्रिका में छात्रों के साथ ही अध्यापिकाओं के आलेख और साहित्यिक रचनाएँ समाहित होती हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में इनकी भागीदारी बढ़-चढ़कर होती है। सांस्कृतिक गतिविधियों और प्रतियोगिताओं के आयोजन से छात्रों में भाषा के प्रति लगाव और बढ़ता है। वे अपनी अभिव्यक्ति बेहतर कर पाते हैं। आर्य समाज, सिंगापुर द्वारा पिछले दो वर्षों से वार्षिक रूप से बड़े स्तर पर एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है, जो लेखन पर आधारित होती है। चूँकि आर्यसमाज और डी.ए.वी. हिंदी स्कूल एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं, इसलिए डी.ए.वी. हिंदी स्कूल इस तरह की गतिविधियों में अधिक सक्रिय दिखाई देता है। सिंगापुर की अन्य संस्थाओं, जो सांस्कृतिक कार्यों में अधिक सक्रिय है, जैसे संगम सिंगापुर के साथ मिलकर कई साहित्यिक, सांस्कृतिक आयोजन भी डी.ए.वी. हिंदी स्कूल और आर्य समाज भवन के माध्यम से संपन्न होता है।

स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में हिंदी पढ़ाने की अनुमति से विद्यार्थियों के अंक और बेहतर हुए हैं, क्योंकि अब छात्र चार या पाँचों दिन हिंदी पढ़ सकते हैं। उन्हें हिंदी का माहौल ज्यादा मिलता है, जिससे वे भाषा की गहराई को बेहतर समझ व अपना सकते हैं। शिक्षा में एक सबसे बड़ा संसाधन शिक्षक वर्ग होता है। हिंदी को मान्यता मिलने के बाद उपयुक्त शिक्षक वर्ग का चुनाव संस्था के समक्ष था। सिंगापुर ऐसा देश नहीं है, जहाँ हिंदी के ज्ञाता आसानी से मिल सकें। अत: इस जरूरत को पूरा करने के लिए दोनों संस्थाओ ने भारत से काम करने आए आई.टी., बैंकिंग आदि क्षेत्रों के लोगों की पत्नियों को चुना। ये महिलाएँ स्नातक या उससे ऊँची डिग्री रखती हैं और ज्यादातर हिंदी या तो उनकी मातृभाषा है या यही संपर्क की भाषा है। कई महिलाएँ पहले भारत व अन्य देशों में पढ़ा भी चुकी होती हैं। समय-समय पर प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था की जाती है ताकि शिक्षण का स्तर अद्यतन रहे। अब तो 'बी.टी.टी.एस.एल.' द्वारा एक समान किताबें सभी पाँचों गैर तमिल भारतीय भाषाओं के लिए बना दी गई हैं, पर इससे पहले 2007 तक संस्थाओं की अध्यापिकाएँ ही शिक्षण सामग्री तैयार करती थीं। सामग्री निर्माण में पाठ्यक्रम की आवश्यकता के साथ विद्यार्थियों की रुचि को ध्यान में रखा जाता था। साथ ही भारत में प्रचलित कुछ पुस्तकें, जैसे बाल भारती, सरस भारती, ज्ञान सुधा भी पाठ्यक्रम का हिस्सा हुआ करती थीं।

पिछले दशक में दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में हिंदी के प्रति कहीं-कहीं अधिक सकारात्मक कहीं मध्यम रूप में रुझान देखने को मिला है। इसका प्रमुख कारण विश्व मंच पर भारत की बढ़ती हुई दृश्यता और भारतीय संस्कृति व भाषा के प्रति परोक्ष रूप से ही सही, आकर्षण है। सिंगापुर के दोनों मुख्य विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा शिक्षण कार्यक्रम संचालित होता है; नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर (एन.यू.एस.) और नान्यांग टेक्नोलाजिकल यूनिवर्सिटी (एन.टी.यू.)। ये दोनों विश्वविद्यालय एशिया ही नहीं विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अगर आपको नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर में किसी कक्षा के बाहर तमिल, चीनी, मलय, यूरोपियन विद्यार्थी एक-दूसरे से यह चर्चा करते हुए दिख जाएँ या सुनाई पड़ जाएँ कि

घर पुल्लिंग क्यों है और दुकान स्त्रीलिंग क्यों है, क्योंकि हैं तो दोनों इमारतें ही, सब लोग सो गए तो वे सोये या कहीं चले गए का क्या हिसाब है, तो समझ जाइए आप हिंदी कक्षा के आस-पास हैं। जी हाँ, सिंगापुर के प्रमुख विश्वविद्यालय एन.यू. एस. में हिंदी भाषा कार्यक्रम पिछले पंद्रह वर्षों से चल रहा है। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर (एन.यू.एस.) में हिंदी भाषा शिक्षण की शुरुआत सन् 2008 में हुई। एन.यू.एस. में हिंदी कला और सामाजिक विज्ञान संकाय की शाखा 'सेंटर फॉर लैंग्वेज स्टडीज' के अंतर्गत 'माईनर इन हिंदी स्टडीज' और 'ऐच्छिक मॉड्यूल' रूप में सिखाई जाती है। हिंदी के छह स्तर हैं, जिन्हें प्राथमिक, मध्यम और उच्च तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। ये छह स्तर विद्यार्थी छह सत्रों में पूरा करते हैं। 'माईनर इन हिंदी स्टडीज' एक बड़ा कदम है और भविष्य में इसे और आगे ले जाने की योजना है। नान्यांग टेक्नोलाजिकल यूनिवर्सिटी (एन.टी.यू.) की बात करें तो हिंदी भाषा शिक्षण सन् 2014 से हो रहा है। एन.टी.यू. में हिंदी मानविकी, कला और सामाजिक विज्ञान संकाय की शाखा 'सेंटर फॉर मोर्डन लैंग्वेजेज' के अंतर्गत ऐच्छिक विषय के रूप में सिखाई जाती है। एन.टी.यू. हिंदी के दो स्तर हैं, पर 2014 से 2022 तक सिर्फ पहले स्तर की कक्षाएँ ही चलाई जा सकी हैं, जिसका कारण हिंदी के अगले स्तर में विद्यार्थियों की कम रुचि है।

दोनों ही विश्वविद्यालयों में हिंदी विदेशी भाषा के रूप में सिखाई जाती है। वर्तमान में नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर और नानयांग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी सिंगापुर दोनों विश्वविद्यालयों में 'एन इंट्रोडक्शन टू हिंदी एलिमेंट्री लेवल' नामक पुस्तक स्तर एक और दो के लिए लगाई गई है। चूँकि नानयांग टेक्नोलॉजिकल विश्वविद्यालय में सिर्फ एक ही स्तर की हिंदी कक्षाएँ चलती हैं, इसलिए वहाँ सिर्फ एक ही पुस्तक का इस्तेमाल किया जाता है। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर में स्तर तीन और चार के लिए 'एन इंट्रोडक्शन टू हिंदी इंटरमीडिएट लेवल' नामक पुस्तक का इस्तेमाल किया जाता है। सिंगापुर में हिंदी शिक्षण ज्यादा व्यावहारिकता पर आधारित है और मुख्य रूप से कक्षा-गतिविधियों द्वारा व्याकरण सिखाया जाता है।

इन सभी पहलुओं पर दृष्टिपात करने के बाद यह तो स्पष्ट हो जाता है कि सिंगापुर में व्यवस्थित तरीके से हिंदी शिक्षण का इतिहास भले ही बहुत पुराना न रहा हो, लेकिन वर्तमान समृद्ध है। जिस देश की बाल और युवा पीढ़ी अपनी मातृभाषा से जुड़ी हो, वह किसी-न-किसी रूप में उस भाषा को युवा होने पर भी अवश्य इस्तेमाल करेगी। स्थानीय विद्यालयों में हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। बहुत कम ही ऐसे उत्तर भारतीय परिवार हैं, जो द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी न लेकर चीनी या कोई और भाषा चुनते हैं। हिंदी का विकल्प मिलने से छात्रों को कुछ सुविधा हुई है और चूँकि दो संस्थाएँ इस कार्य में अग्रसर है इसलिए एक प्रतियोगिता भी बनी रहती है, जिससे भाषा शिक्षण का स्तर निरंतर बढ़ रहा है। सरकारी मान्यता मिलने और अनुदान मिलने के कारण यहाँ हिंदी का भविष्य बेहतर दिखाई देता है। यहाँ के प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की उपस्थिति विश्व की अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाओं के समकक्ष उसे खड़ा करती है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीख रहे विद्यार्थी हिंदी के वैश्विक रूप को अधिक बड़ा कर रहे हैं। यह तो कहा ही जा सकता है कि हजारों छात्रों द्वारा हिंदी भाषा सीखना सिंगापुर में हिंदी के धवल भविष्य की ओर इंगित करता है।

□

sandhyasingh077@gmail.com

पोलैंड में हिंदी

—मोनिका ब्रोवार्चिक

क्या आपने कभी 'गस्पर द इंडिया' का नाम सुना है? यह है पोलैंड का वह पहला व्यक्ति जिसका उल्लेख भारत के संदर्भ में पुराने ऐतिहासिक अभिलेखों में मिलता है। लगभग 15वीं शताब्दी के मध्य से 16वीं शताब्दी की शुरुआत तक गस्पर डी इंडिया मशहूर पुर्तगाली नाविक, वास्को द गामा, के अभियानों के दौरान मुकामी द्विभाषिए के रूप में नियुक्त रहा था। कहते हैं कि वह काफी पहले से ही भारत में आके बस गया था और कई भारतीय भाषाएँ जानता था। उसने पुर्तगालियों को न केवल स्थानीय लोगों से संपर्क बनाने और उनकी भाषा अनुवाद करने में सहायता की थी बल्कि उन्हें भारत में प्रचलित रीति-रिवाजों को समझाता रहा और जल पथों वगैरह की खबर देता रहा। अपनी जानकारी के कारण वह पुर्तगालियों के लिए भारत का मार्गदर्शक बन चुका था। वैसे गस्पर का जन्म पोलैंड के एक यहूदी परिवार में हुआ था, मगर उसके बचपन में ही उसका परिवार पोलैंड को छोड़कर कहीं और जा बसा। फिर भी हम कह सकते हैं कि मूलतः वह पोलैंड ही का पहला आदमी था जिसका उल्लेख भारतीय इतिहास में हुआ था और वह भी भारतीय भाषाओं की निपुणता के कारण।

गस्पर द इंडिया का जन्म पोजनान में हुआ यानी इस शहर में जहाँ आजकल आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय स्थित है और जहाँ दक्षिण एशियाई अनुभाग में संस्कृत, तमिल और हिंदी पढ़ाई जाती हैं। इस छोटे से निबंध में मैं भारत-पोलैंड के संबंधों के लंबे, गस्पर द इंडिया से शुरू होते हुए, सफर की कुछ झलकियाँ जो बुनियादी तौर पर हिंदी-अध्ययन और हिंदी-अध्यापन से जुड़े हैं, आपके सामने रखना चाहूँगी। इस उद्देश्य से मैं पहले पोलैंड के उच्च शिक्षा में हिंदी अध्ययन के इतिहास पर दो-चार शब्द पेश करके वर्तमान स्थिति का परिचय देने की कोशिश करूँगी। उसके बाद में पोलैंड में हिंदी से जुड़ी हुई कुछ परियोजनाओं पर प्रकाश डालना चाहूँगी और आखिर में कुछ चिंतनीय बातों की तरफ इशारा करके समाप्त करूँगी।

आजकल के पोलैंड में भारतीय विद्या और इसके साथ-साथ हिंदी का अध्यापन तथा हिंदी साहित्य एवं भाषा पर शोधकार्य चार विश्वविद्यालयों में जारी है—वारसा विश्वविद्यालय में, क्राकोव के यग्येलोनियन विश्वविद्यालय में, व्रोत्स्लव विश्वविद्यालय में और पोजनान के आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय में। इन उच्च शिक्षा केंद्रों की बात करने से पहले हमें पोलैंड में भारत

---

* प्राच्य विद्या संस्थान आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय पोजनान, पोलैंड में दक्षिण एशियाई अनुभाग की अध्यक्षा।

के प्रति शैक्षिक रुचि के उद्गम और विकास पर विचार करना चाहिए जिसमें लगातार उतार-चढ़ाव पोलिश अतीत में मची हुई खलबली के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए।

जैसे पूरे यूरोप में भारत को जानने और समझने की खोज संस्कृत भाषा और प्राचीन भारत की संस्कृति के आकर्षण में जड़ जमाए थी वैसे पोलैंड में भी हुआ था। 19वीं शताब्दी के दूसरे दशक में दो ऐसे ग्रंथ लिखे गए थे जो, पोलिश विद्वानों के इस आकर्षण के प्रथम प्रमाण हैं यानी संस्कृत भाषा का पहला पोलिश व्याकरण, जो संस्कृत और स्लवोनिक भाषाओं के सादृश्य की जाँच-पड़ताल का प्रयत्न था और प्राचीन भारत के इतिहास का खोजपरक अध्ययन, जो पश्चिम देशों के इसी इतिहास के प्रभाव पर केंद्रित था।

उल्लेखनीय है कि 17वीं शताब्दी के अंत से लेकर 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक पोलैंड स्वाधीन नहीं रहा, पड़ोस के राज्यों—यानी रूस, ऑस्ट्रिया और प्रशिया ने इसके क्षेत्र को आपस में तीन हिस्सों में बाँट लिया था। पोलैंड के इन तीनों हिस्सों में पड़े कुछ विश्वविद्यालयों में संस्कृत की पढ़ाई चल रही थी। क्राकोव में, जहाँ पोलैंड का सबसे पुराना 1364 में स्थापित हुआ विश्वविद्यालय स्थित है, सन् 1860 से लेकर कुछ अंतरालों के साथ संस्कृत-अध्ययन चल रहा था (Sudyka 2007: 78)। हालाँकि इन जटिल ऐतिहासिक परिस्थितियों में भारतीय विद्या का विकास सीमित रहा। बदलाव तब आया जब सन् 1918 में पोलैंड को स्वतंत्रता मिली और ज्ञान-विज्ञान की इस शाखा का उत्थान होने लगा। इसी साल में स्वतंत्र पोलैंड की राजधानी में स्थित वारसा विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई। इसी विश्वविद्यालय से पोलैंड में हिंदी पढ़ने और पढ़ाने का शुभारंभ हुआ। सन् 1938 में प्रोफेसर स्तानिस्लाव षायेर (Stanisław Schayer) ने हिंदी पाठ्यक्रम का सूत्रपात किया (Stasik 2007: 92)। मूल रूप से संस्कृत के विद्वान् प्रोफेसर षायेर स्वयं नौसिखियों को हिंदी पढ़ाते थे, पर उनके निमंत्रण पर पोलैंड में आए हुए हिरंमोय घोषाल पहले यानी 1935 से बाँग्ला पढ़ाने लगे और बाद में उच्च हिंदी पाठ्यक्रम की शुरुआत की।

हिंदी-अध्ययन और अध्यापन के इस शुभारंभ का एकाएक अंत हुआ जब सन् 1939 में नाजी जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया। 1939 में नाजी के हवाई हमले की वजह से वारसा विश्वविद्यालय की भारतीय विद्या की पुस्तकों का नया-नया अर्जित हुआ संग्रह जल गया था। युद्ध के दौरान पोलैंड में नाजी जर्मनी ने उच्च शिक्षा पर पाबंदी लगाई और सारे विश्वविद्यालयों को बंद कर दिया। 1939 से 1945 तक लड़े जानेवाले द्वितीय महायुद्ध ने पोलैंड को तबाह करके इसकी प्रगति में विघ्न डाला।

युद्धोत्तर पोलैंड अलोकतांत्रिक तरीके से सोवियत संघ के गठबंधन में पड़ गया। 1989 तक इसमें साम्यवादी शासन प्रणाली चलती रही, जो सोवियत संघ के नियंत्रण में थी। रूसी साम्यवादी सरकार अंतरराष्ट्रीयवाद के मुद्दे के समर्थन में और लौह परदे के उस तरफ पड़े देशों के खिलाफ उत्तर औपनिवेशिक देशों को सहयोग दे रही थी। उस समय के रूस और भारत के मैत्रीपूर्ण संबंध का यह परिणाम हुआ कि सोवियत संघ के गठबंधन के देशों ने इसका अनुसरण किया और इसी से भारतीय विद्या को बढ़ावा मिला।

1955 से वारसा विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन और इस पर शोधकार्य पुन: प्रारंभ हुआ। उस साल तात्याना रुत्कोफस्का (Tatiana Rutkowska) की नियुक्ति हुई। श्रीमती रुत्कोफस्का प्रतिष्ठित रूसी विद्वान् प्रोफेसर बरन्निकोव की छात्रा रहीं, मगर उन्होंने अपना पूरा शैक्षणिक जीवन वारसा विश्वविद्यालय से

जुड़कर बिताया था और पोलैंड में हिंदी की पहली डॉक्टर की उपाधि उन्हीं ने प्राप्त की। 1956 से वे हिंदी साहित्य का पाठ्यक्रम पढ़ाने लगीं। उस दौर के कुछ ऐसे नाम हैं जिनकी बात किए बिना हम वारसा में हिंदी की पढ़ाई की चर्चा पूरी नहीं कर सकते हैं, जैसे डॉ. आगन्येषका कोवालस्का-सोनी (Agnieszka Kowalska-Soni), प्रोफेसर मारिया क्षिषतोफ बिरस्की (Maria Krzysztof Byrski), श्रीमान अर्तुर कर्प (Artur Karp), श्रीमती अन्ना शेक्लुतस्का (Anna Sieklucka) और श्रीमती दनूता स्तशीक (Danuta Stasik)।

क्राकोव के यग्येलोनियन विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन सन् 1973 से आरंभ हुआ। उसी साल में प्रोफेसर तदेउष पोबोजनिअक (Tadeusz Pobożniak) ने हिंदी का पाठ्यक्रम शुरू किया। सन् 1987 में पोजनान के आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय में हिंदी व्याख्याता के पद पर दार्यूष गोंशोर (Dariusz Gąsior) नियुक्त हुए थे, पर सोचनीय बात यह हुई कि वे समय से पहले गुजर गए और हिंदी पाठ्यक्रम 1999 तक समाप्त हो गया।

हिंदी और पोलिश में परस्पर प्रकाशन संबंधी चर्चा में उल्लेखनीय हैं हिंदी की कुछ चुनिंदा कविताओं, कहानियों और एक सुप्रसिद्ध उपन्यास के पोलिश में अनुवाद। विस्मय की बात यह है कि युल्युष परनोफस्की (Julliusz Parnowski), जिन्होंने ये गद्यानुवाद किए स्वयं हिंदी सीखी थी। 1971 में उनके द्वारा किए प्रेमचंद की कहानियों, 1978 में आधुनिक हिंदी कहानियों और 1982 में फणीश्वर नाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' के पोलिश अनुवाद प्रकाशित हुए।

भारत में हिंदी पाठकों को भी पोलिश साहित्य की कुछ रचनाओं को हिंदी में पढ़ने का अवसर मिला। पोलिश कविताओं के अनुवाद बराबर छपते रहे, लेकिन अकसर अंग्रेजी के माध्यम से। गद्य के अनुवाद गिने-चुने हैं और अधिकतर उनका माध्यम भी अंग्रेजी ही है। वैसे रोचक बात यह है कि एक ही पोलिश उपन्यास यानी 'क्वो वादिस' को तीन बार हिंदी में अनूदित करने का प्रयत्न हुआ। 'क्वो वादिस' का लेखक हेनरिक शेंक्येविच (Henryk Sienkiewicz) नोबेल विजेता था, शायद इसीलिए उसकी रचना ने इतना ध्यान आकर्षित किया कि उसके तीन विविध रूपांतर प्रकाशित हुए : 'जब रोम जल रहा था' श्रीकांत व्यास का 1958 में प्रकाशित; 'समरट नीरो' रमेशचंद्र अवस्थी का 1959 में और शेखर का 'क्वो वादिस' 1969 में। सुप्रसिद्ध हिंदी कवि और लेखक रघुवीर सहाय के द्वारा येर्जी आंद्रजेयेव्स्की (Jerzy Andrzejewski) के उपन्यास 'राख और हीरे' का अनुवाद सन् 1978 में साहित्य अकादमी से प्रकाशित हुआ।

पोलैंड और भारत के बीच में सांस्कृतिक विनिमय का करार हस्ताक्षरित हुआ और इसके आधार पर 1983 से छात्रों और शिक्षकों का आदान-प्रदान होने लगा था। भारत से हिंदी के प्राध्यापक वारसा विश्वविद्यालय आने लगे और पारस्परिक तरीके से दिल्ली विश्वविद्यालय में पोलिश के प्राध्यापक पहुँचने लगे।

1989 में लोकतांत्रिक परिवर्तन के साथ पोलिश इतिहास में नया दौर आया—पोलिश जनवादी गणराज्य समाप्त हुआ था और पोलैंड गणराज्य पैदा हुआ। वास्तव में लगभग पूरे पूर्वी ब्लॉक में साम्यवादी सरकारों का नाश हुआ, इस बड़े परिवर्तन को शांतिपूर्ण क्रांति का नाम दिया जाता है। बढ़ते भूमंडलीकरण के परिवेश में पूर्वी पोलिश कंपनियों का अंतरराष्ट्रीय या भारतीय स्वामित्व बन गया है। इसके कारण पोलैंड में भारत के अत्यधिक पेशेवर लोग रहने और काम करने आने लगे जिससे पोलैंड में भारतीय प्रवासी समाज बढ़ने लगा। बाद में सामाजिक मीडिया ने नेटिजेंस को 'वसुधैव कुटुंबकम्' का सही अनुभव दिलाया है।

1990 से पोलैंड में भारतीय विद्या और हिंदी पढ़ाई की नई लहर देखने को मिली। उदाहरणस्वरूप हिंदी के उच्च शिक्षा के छात्रों में बॉलीवुड के प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी। पोलैंड के आजकल के ज्यादातर छात्र उन पाठ्यक्रमों को चुनते हैं, जो पेशे संबंधी हैं और जो अच्छी नौकरी दिलाने में सहायक हैं।

वारसा विश्वविद्यालय में अपनी गुरु यानी डॉ. रुत्कोफस्का के नक्शेकदम पर चलते हुए दनूता स्तशीक (Danuta Stasik) ने न केवल हिंदी में डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की बल्कि 2002 में हिंदी में पोलैंड का पहला पोस्ट-डाक का शोध प्रबंध लिखा था। सन् 1992 में डॉ. रुत्कोफस्का और प्रोफेसर स्तशीक ने मिलकर पोलिश में हिंदी साहित्य के इतिहास पर ग्रंथ प्रकाशित किया (Rutkowska, Stasik 1992)। प्रोफेसर स्तशीक ने इसके अतिरिक्त सन् 1998 में हिंदी भाषा पर पुस्तक लिखी (Stsik 1998) और छात्रों के लिए दो भागों में हिंदी पाठ्यपुस्तक तैयार की (Stasik 1994, 1997), जो इतनी लोकप्रिय हुई कि उनके आज तक कई संस्करण प्रकाशित हो गए। 2013 में प्रोफेसर स्तशीक ने कुँवर नारायण की चुनी हुई कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया (Stasik 2013)।

प्रोफेसर बिरस्की ने, जो वैसे तो संस्कृत के विद्वान् थे, बहुत वर्षों तक विभाग के अध्यक्ष के रूप में हिंदी के अध्ययन को काफी बढ़ावा दिया और स्वयं हिंदी पढ़ाई, वे 1993 से 1996 तक भारत में पोलैंड के राजदूत के पद पर रहे। वारसा विश्वविद्यालय से जुड़े हिंदी प्राध्यापकों की सबसे नई पीढ़ी में डॉ. अलेक्संद्रा तुरेक (Aleksandra Turek), डॉ. युस्तिना विश्नएफसका सिंह (Justyna Wiśniewska Singh) का उल्लेख करना चाहिए।

क्रकाउ के यग्येलोनियन विश्वविद्यालय में लगभग 90 के दशक के आस-पास डॉ. प्रषेमिस्लाफ प्येकारस्की (Przemysław Piekarski) हिंदी के प्राध्यापक थे। लगभग उसी समय से श्रीमान उमेश नौटियाल इसी विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए। श्रीमान नौटियाल ने 2009 में अन्ना कोवालस्का (Anna Kowalska) के साथ तीन भागों में 'प्रारंभिक हिंदी व्याकरण एवं व्यावहारिक हिंदी' प्रकाशित की। जबकि हिंदी कवि अशोक वाजपेयी और इसी विश्वविद्यालय से जुड़ी हुई प्रोफेसर रेनाता चेकलस्का (Renata Czekalska) ने कई दूसरे अनुवादकों के सहयोग से 2001 और 2011 के बीच में पोलिश के चार सुप्रसिद्ध कवियों और पोप जॉन पॉल द्वितीय की कविताएँ हिंदी में अनूदित कीं। 2007 में प्रोफेसर चेकलस्का ने कई दूसरे अनुवादकों के सहयोग से कुँवर नारायण की चुनिंदा कविताओं का पोलिश अनुवाद प्रकाशित किया। 2009 में प्रोफेसर चेकलस्का के संपादन में कमिला युनिक के द्वारा तेजी ग्रोवर का नीला पोलिश में अनूदित हुआ। इस समय यग्येलोनियन विश्वविद्यालय में डॉ. प्योत्र बोरेक (Piotr Borek) हिंदी साहित्य पर शोधकार्य और हिंदी-अध्यापन करते हैं। मग्दालेना वर्गा (Magdalena Varga) हिंदी पढ़ाती हैं। यग्येलोनियन विश्वविद्यालय से प्रतिष्ठित जर्नल "Cracow Indological Studies" निकलता है, जिसमें भारतीय विद्या, हिंदी भाषा और साहित्य पर निबंध भी प्रकाशित होते हैं, उसके अंक ऑनलाइन उपलब्ध हैं।

पोजनान के आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय में 1999 में हिंदी की पढ़ाई का पुनः प्रारंभ हुआ, जब मेरी नियुक्ति हुई। उस दौर में हिंदी खुले कोर्स के रूप में पढ़ाई गई, मगर 2007 से इसी विश्वविद्यालय में हिंदी और तामिल के बी.ए. पाठ्यक्रम चलने लगे, 2021 से हिंदी और संस्कृत के बी.ए. और हिंदी के एम.ए. के भी पाठ्यक्रम आरंभ हुए। हमारे अनुभाग में प्रोफेसर क्षिषतोफ स्त्रोञस्की (Krzysztof Stroński) हिंदी भाषा

विज्ञान पर शोधकार्य करते हैं और श्रीमान मंदार पुरंदरे हिंदी अध्यापन करते हैं।

व्रोत्स्लव द्वितीय महायुद्ध के पहले जर्मन शहर था, उस समय वहाँ के ब्रेसलाऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत-अध्ययन चल रहा था। उल्लेखनीय है कि 1833 से अदोल्फ एफ. स्तेनत्जलेर (Adolf F. Stenzler) संस्कृत पढ़ाते थे। वे जर्मेनी के संस्कृत-अध्ययन के क्षेत्र में अग्रणी व्यक्ति थे। संस्कृत के बहुत विद्वान् उनको गुरु मानते थे। युद्धोत्तर व्रोत्स्लव विश्वविद्यालय में सन् 1957 में प्रोफेसर लुदविक स्कुजक (Ludwik Skurzak) ने संस्कृत-अध्ययन का पुनः आरंभ किया (Sachse 2007)। हिंदी और संस्कृत का बी.ए. पाठ्यक्रम 2009 से चल रहा है और 2016 से एम.ए. पाठ्यक्रम शामिल हुआ। डॉ. तेरेसा मियोंजेक (Teresa Miążek) हिंदी साहित्य पर शोधकार्य करती हैं और श्रीमती योअन्ना ब्रोवारस्का (Joanna Browarska) हिंदी पढ़ाती हैं।

व्रोत्स्लव के संदर्भ में इसका उल्लेख भी आवश्यक है कि वहाँ पर भारत के सम्मान द्योतक दूत (Honorary Consul of the Republic of India in Wrocław) श्रीमान कार्तिकेय जोड़ी स्थित है। वे हिंदी-प्रचार के लिए कुछ कार्यक्रम आयोजित करते हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने सन् 2019 में सुप्रसिद्ध हिंदी कवि हरिवंश राय बच्चन के प्रति विशेष सम्मान प्रदान करने के लिए उनके बेटे अमिताभ बच्चन को एक संगोष्ठी में बुलाया था। पोलिश मीडिया में इस कार्यक्रम की काफी चर्चा हुई जिससे हिंदी और हिंदी-अध्यापन आकर्षण-केंद्र बने। इस मौके पर हमने आदरणीय अतिथि को 2013 में प्रकाशित हरिवंश राय बच्चन की कविताओं का संग्रह दिया जिसका पोलिश अनुवाद तीन विश्वविद्यालयों यानी यग्येलोनियन, वारसा और आदम मित्सक्येविच के छात्रों और प्राध्यापकों ने मिलकर मेरे संपादन में किया।

हिंदी-पोलिश संबंधों को अगर साझा करना है तो अनुवाद की और बात करनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि जब 2014 में पोलैंड दिल्ली में विश्व पुस्तक मेले का सम्मान द्योतक अतिथि बना तो तीन पोलिश पुस्तकें अनूदित हुईं : रिषार्ड कापुश्चिंस्की का 'शाहों का शाह' (अनुवाद : प्रकाश दीक्षित), ओल्गा तोकार्चुक की 'कमरे और अन्य कहानियाँ' (अनुवाद : मारिया पुरी) और अंजेय स्तशुक की 'गालिसिया की कथाएँ' (अनुवाद : मारिया पुरी, मोनिका ब्रोवार्चिक)। तोकार्चुक का कहानी संग्रह पहली ऐसी गद्य रचना का अनुवाद था, जो मूल पोलिश से हिंदी में हुआ, स्तशुक के उपन्यास का अनुवाद भी इसी माध्यम से हुआ। इस किताब से पहले श्रीमती पुरी और मैंने मिलकर अदम जगएफस्की की कविताओं का अनुवाद किया, जो 2011 में साहित्य अकादमी से प्रकाशित हुआ। मारिया पुरी, दिल्ली में स्थित वारसा विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या की पूर्व छात्रा हैं। फिलहाल श्रीमती पुरी और मैं कृष्णा सोबती की कहानियों का पोलिश अनुवाद तैयार कर रही हैं।

हिंदी से जुड़ी हुई कुछ हाल की परियोजनाएँ

इस निबंध के अंत में मैं आपसे हिंदी से जुड़ी हुई कुछ हाल की परियोजनाओं की बात करना चाहूँगी। 2022 के सितंबर में आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय ने आधुनिक हिंदी कार्यशाला (मॉडर्न हिंदी वर्कशॉप) का आयोजन किया था। यह कार्यक्रम यूरोप के अलग-अलग देशों में हर दो साल में होता है।

2022 की शुरुआत से आदम मित्सक्येविच विश्वविद्यालय ग्रुप ए.एफ. आई.टी. कंपनी के सहयोग से हिंदी-अध्ययन का ऑनलाइन

प्लेटफॉर्म बना रहा है—ई-हिंदी। इस परियोजना के लिए हमें आइसलैंड, लिख्तेंश्टाइन और नोर्वेय की ओर से इ.इ.ए. (EEA funds) मिले। हम हिंदी का स्व अधिगम ऑनलाइन उपकरण (self-learning online tool) बना रहे हैं जिसमें 30 पाठ होंगे (व्याकरण, पाठ, संवाद, अभ्यास और ऑडियो की सामग्री)। ई-हिंदी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म दो भाषाओं में उपलब्ध होगा—पोलिश और अंग्रेजी में। ई-हिंदी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म खुली पहुँच में उपलब्ध होगा यानी ऐसे सब लोग जो इसका प्रयोग करके हिंदी सीखना चाहते हैं, निःशुल्क सीख सकते हैं अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार। हमें बहुत उत्सुकता से उस क्षण की प्रतीक्षा है जब पढ़ाई करना चाहनेवाले हमारे इस परिश्रम के फल का प्रयोग कर सकेंगे, 2023 में जिस समय यह परियोजना खत्म होगी।

कुछ चिंतनीय बातें और चुनौतियाँ

अंत में मैं संक्षेप में कुछ चिंतनीय बातें आपके सामने प्रस्तुत करना चाहती हूँ। विदेश में हिंदी-अध्यापन की कुछ अपनी चुनौतियाँ होती हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में हिंदी छात्रों की संख्या कम होती जाती है, क्योंकि छात्र पेशे संबंधी पाठ्यक्रमों को चुनते हैं। हमें हिंदी अध्यापन को आकर्षक बनाने के लिए भारत का सहयोग चाहिए जैसे जापानी, चीनी या कोरिआन प्राध्यापकों को इन देशों से मिलता है। पढ़ाने की उच्च स्तरीय और रोचक सामग्री अगर उपलब्ध की जाएगी तो अच्छा। विदेश में पढ़ानेवालों प्राध्यापकों के लिए पुनश्चर्या कोर्स होने चाहिए।

मगर सबसे बड़ी बात यह है कि हमें ऐसे आम ढाँचे की आवश्यकता है, जो हिंदी सिखाने का मानक बने और हिंदी भाषा के स्तर को जाँचने का मानक। जिस के अनुसार पोलैंड में दी गई हिंदी परीक्षा और किसी दूसरे देश में दी गई परीक्षा के परिणाम तुलना करने योग्य हों।

□

monikabr@amu.edu.pl

मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान ही संस्कृति है।

—मैथ्यू आर्नल्ड

हिंदू संस्कृति आध्यात्मिकता की अमर आधारशिला पर आधारित है।

—विवेकानंद

दक्षिण कोरिया में हिंदी

—प्रो. प्रतिभा मुदलियार

शोधसार

उक्त शोधालेख में दक्षिण कोरिया में हिंदी की स्थिति, गति और उसका वहाँ स्वरूप क्या है? इसके बारे में जानने की कोशिश की गई है। दक्षिण कोरिया आर्थिक दृष्टि से संपन्न एक विकसित राष्ट्र है जिसने अपने मानव संसाधन के बलबूते पर कम समय में अपना विकास किया। ऐसे देश में हिंदी एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है और यहाँ के लोगों को भारत तथा हिंदी के प्रति विशेष प्रेम भी है। भारत की ओर उनके आकर्षण के कुछ अहम कारण हैं—एक यहाँ की संस्कृति, योगा, बौद्ध धर्म तथा वर्तमान में भारत का विश्व बाजार का अहम हिस्सा होना। ऐसे में भारतीय भाषा विशेषकर हिंदी के प्रति उनका लगाव तथा उसके स्वरूप को लेकर यहाँ चर्चा की जा रही है। साथ ही हिंदी शिक्षण की समस्याओं और उनके समाधान पर भी विचार किया गया है।

बीज शब्द

अध्ययन, अध्यापन, कोशनिर्माण, पाठ्यक्रम, अनुवाद, साहित्याध्यन, हिंदी शिक्षण

******

सुदूर पूर्व में बसा दक्षिण कोरिया एक खूबसूरत देश है, जिसने गत पच्चीस वर्षों में आर्थिक दृष्टि से समृद्धी के चमत्कारपूर्ण शिखर छू लिये हैं। लगभग भारत के साथ-साथ ही आजाद हुआ यह देश भारतीय आर्थिक तंत्र से ही नहीं बल्कि अन्य कितने ही देशों से किस हद तक आगे बढ़ा है, इसका पता इस बात से चलता है कि आज कोरिया की प्रति व्यक्ति आय 18000 अमेरिकी डॉलर से भी अधिक है। यूँ तो भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण कोरिया एक छोटा सा देश है, पर इसका अपना एक गौरवशाली इतिहास और संस्कृति है।

भारत-कोरिया संबंद्धों की प्राचीनता

कोरिया में भारत की पहचान प्रायः बुद्ध, गांधी और टैगोर के देश के रूप में होती है। स्थान-स्थान पर बौद्ध मंदिरों की जीवंत उपस्थिति कोरिया और भारत के बीच प्राचीन संबंद्धों का सहज परिचय देती है। आज भी दक्षिण कोरिया के अधिकतम लोग बौद्ध धर्म में आस्था रखते हैं। दक्षिण कोरिया के सांस्कृतिक जीवन पर इस धर्म की गहरी छाप सहज दृष्टिगोचर होती है।

कोरिया के इतिहास ग्रंथ 'सम गुक युसा' में यह दर्ज है कि पहली शताब्दी में राजा 'किम सुरो' का विवाह भारत स्थित अयोध्या की राजकुमारी

* मैसूर विश्वविद्यालय के हिंदी अध्ययन विभाग में प्रोफेसर।

'ह्वांग ओक' के साथ हुआ था। दक्षिण कोरिया के एक दूसरे शहर पूसान के निकट 'मिनहे' में रानी की समाधि भी है, जो एक विशेष पत्थर (पासा) से बनी हुई है। ऐसा कहा जाता है कि यह पत्थर राजकुमारी अपने साथ ले आई थी। अपवादस्वरूप ही सही (या अपुष्ट ही क्यों न हो) ऐसा कहा जाता है कि ई.पू. काल में भी कोरिया के दक्षिण में भारतीय लोगों का वास था। किम सुरो 'गाया' का राजा था और गाया शब्द से 'गया' ध्वनि भी मिलती है। आठवीं शताब्दी में 'हे छो' नामक एक कोरियाई बौद्ध भिक्षु ने भारत की यात्रा की थी और भारत में वह लगभग दस साल रहा। भारत यात्रा पर लिखी गई उसकी डायरी तथ्यपरक मानी जाती है।

कोरिया में टैगोर के प्रति भी एक अनूठा आकर्षण और प्रेम है। टैगोर की सारी कृतियों का रूपांतर कोरियाई भाषा में हो चुका है। वैसे टैगोर कभी कोरिया नहीं आए, किंतु उन्होंने इस छोटे से देश का उल्लेख 1929 में 'पूर्व का दीपक' (Lamp of the East) नाम से किया है। वह मात्र चार पंक्तियाँ हैं, जिसका हिंदी अनुवाद कवि दिविक रमेशजी ने हिंदी में किया, जो 'हिंदी और विदेश' नामक उनके लेख में उद्धृत है। वह पंक्तियाँ इस प्रकार हैं···

एशिया के स्वर्णिम युग में
रहा कोरिया एक द्वीप वाहकों में
और कर रहा प्रतीक्षा
वही दीप होने को ज्योति
करने को फिर से आलोकित
पूरब का प्रांगण यह सारा।

इस छोटी सी भूमिका से इस बात का पता चल जाता है कि भारत कोरिया का संबंद्ध धर्म, संस्कृति और साहित्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि एक-दूसरे के प्रति भावनात्मक लगाव तक विस्तार पा गया है जिसकी जड़ें बहुत पुरानी हैं।

आधुनिक युग में भारत और कोरिया के औपचारिक संबंद्धों की नींव 1962 में पड़ी और 1973 में दोनों देशों के बीच राजदूत स्तरीय संबंद्ध स्थापित हुए और उत्तरोत्तर यह संबंद्ध और गहरे, घने और मजबूत होते गए और होते जा रहे हैं। इन संबंद्धों को और करीब लाने का काम भाषा के स्तर पर हिंदी कर रही है। जे.एन.यू. के कोरियाई अध्ययन विभाग के डी.के. तिवारी लिखते हैं कि "As one of the newly industrialized countries, South Korea is showing a keen interest in responding to Indian economic reforms.... The newly opportunity as allowed, beside businessmen, a flow of Korean tourists to India and modestly vice versa. This also indicates an ensuing long term cultural contact between India and South Korea. Central to the bilateral relations now is the place of languages – Korean and Hindi. This is despite the fact that English is both business and the government language in India." कोरिया में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन वैशिष्ट्यपूर्ण है, जिसकी समग्र चर्चा निम्नलिखित है—

दक्षिण कोरिया में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन

दक्षिण कोरिया में हिंदी का अध्ययन दो-तीन कारणों से होता है। एक बौद्ध धर्म के प्रति आस्था, दो, भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी रुचि, तीन, भारतीय बाजार, उपभोक्ता और व्यापार के प्रति गहरा आकर्षण। आजकल हुंडई, सैमसंग, एल.जी. जैसी बड़ी कोरियाई कंपनियाँ भारत में खूब फल-फूल रही हैं। आम जनता तक पहुँचने के लिए जरूरी है उस देश की भाषा को जानें समझें। सैमसंग जैसी कंपनियों ने तो अपने कर्मचारियों को भारत भेजने से पहले हिंदी सीखने का विशेष प्रबंध किया है। भारत में निवेश करनेवाली

कोरियाई कंपनियाँ कर्मचारियों की नियुक्ति के समय, कोरियाई विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हिंदी के विद्यार्थियों को प्राथमिकता दे रही है। जिसका उत्साहवर्द्धक और प्रेरणादायी प्रभाव सहज ही दृष्टिगत होता है। और इसके लिए यहाँ के छात्र काफी मेहनत भी करते हैं।

दक्षिण कोरिया में हिंदी का अध्यापन प्रमुख रूप से दो विश्वविद्यालयों में होता आ रहा है। एक है 'हांकुक विदेशी भाषा अध्ययन विश्वविद्यालय', जिसके दो परिसर 'सिउल' और 'योग इन' में स्थित हैं। 1972 में इस विश्वविद्यालय में पहली बार हिंदी शिक्षा का प्रबंध किया गया और उस समय 31 छात्रों ने इस विभाग में प्रवेश लिया था और 1984 में इसी विश्वविद्यालय के दूसरे परिसर 'योग इन' में हिंदी विभाग खुला। इसके बाद उत्तरोत्तर छात्रों की संख्या में वृद्धी होती रही। दूसरा, 'पुसान विदेशी भाषा अध्ययन विश्वविद्यालय' जो दक्षिण कोरिया के दूसरे बड़े शहर पुसान में स्थित है, जिसकी स्थापना 1983 में हुई और इस विभाग में प्रतिवर्ष 35 छात्र प्रवेश पाते हैं। मार्च 2002 से 'सियोल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय' में 'हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति' विभाग का प्रारंभ हुआ। इस विभाग की स्थापना में प्रो. किम उ जो का योगदान सराहनीय है। इन विश्वविद्यालयों में हिंदी को समर्पित कोरियाई विद्वान् हैं, प्रो. स हे जंग, प्रो. ई जंग हो, प्रो. किम उ जो, प्रो. छे जा छिन, प्रो. ईम, और इ उंग गु। इनके अलावा आई.सी.सी.आर. से नियुक्त एक हिंदी विद्वान् और दिल्ली विश्वविद्यालय से एक भाषाविद् यहाँ हिंदी पढ़ाते हैं।

दक्षिण कोरिया का हिंदी को योगदान

दक्षिण कोरिया में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन प्रधानतः कॉलेज तथा विश्वविद्यालय के स्तर पर होता आ रहा है। हिंदी शिक्षण का बीड़ा हिंदी को समर्पित प्रोफेसरों द्वारा ही उठाया गया है। अतः इनका योगदान उल्लेखनीय है। प्रो. ई जंग हो और प्रो. किम उ जो ने यहाँ हिंदी शिक्षण का श्रीगणेश किया। प्रो. किम ऊ जो लिखित, 'बेसिक हिंदी', 'पॉकेट हिंदी वार्त्तालाप' तथा 'परिचयात्मक हिंदी पाठ्य पुस्तक' हिंदी भाषा शिक्षण में अत्यंत उपयोगी साबित हुई है। प्रो. ई जंग हो की 'हिंदी व्याकरण' और 'हिंदी वार्त्तालाप' (पर्यटकों के लिए) पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी क्रम में प्रो. स हे जोंग की 'हिंदी उच्चारण' महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। जिसका प्रयोग उच्चारण अभ्यास के लिए होता आ रहा है। ये तीनों वरिष्ठ विद्वान् हिंदी के क्षेत्र में प्रमुख प्रचारक ही नहीं बल्कि हिंदी को समर्पित शिक्षक हैं। प्रो. छे जा छिन भाषा विशेषज्ञ के रूप में हिंदी के क्षेत्र में कार्यरत हैं। इनकी 'हिंदी फोनोलॉजी', 'हिंदी वार्त्तालाप' तथा 'हिंदी भाषा का इतिहास' नामक पुस्तकें प्रशंसनीय रही हैं। कोरियाई छात्रों के लिए हिंदी के व्याकरणिक तथा व्यावहारिक स्वरूप को समझने में ये पुस्तकें विशेष सहायता पहुँचाती हैं। इसके अलावा भारत के भौगोलिक स्वरूप, उसकी संस्कृति, विभिन्नता और अखंडता पर भी प्रो. किम उ जो ने अपनी पुस्तक में प्रकाश डाला है। हालाँकि इन पुस्तकों का माध्यम कोरियाई भाषा है। किंतु हिंदी भाषा शिक्षण के क्षेत्र में इन विद्वानों का योगदान रेखांकित करने लायक है। ये पुस्तकें कोरियाई छात्रों के लिए ही नहीं अपितु पर्यटकों के लिए भी उपयोगी साबित हुई हैं।

हिंदी के प्रचार, प्रसार और प्रोत्साहन में भारतीय दूतावास भी अहम भूमिका रखता है। दूतावास से आयोजित हिंदी भाषण प्रतियोगिता, हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित पुस्तकों तथा हिंदी सॉफ्टवेयर का वितरण, विश्वविद्यालयों में भारतीय नृत्य का आयोजन आदि हिंदी के प्रति आकर्षण ही पैदा नहीं करता अपितु एक

सकारात्मक दृष्टिकोण निर्माण करने में भी सहायता पहुँचाता है। इस तरह के आयोजन छात्रों में जहाँ उत्साह निर्माण करते हैं वहीं प्रेरणा भी देते हैं।

कोश निर्माण कार्य

इस क्षेत्र में भी दक्षिण कोरिया में कार्य हुआ है। प्रो. ई जंग हो ने 1995 में 'हिंदी-कोरियाई' कोश का निर्माण किया तो प्रो. किम उ जो के प्रधान संपादकत्व में 'कोरियाई-हिंदी' कोश का निर्माण 2008 में किया गया। इस कोश के निर्माण में भारत के अतिथि आचार्यों ने भी योगदान दिया, जिनमें से एक थे दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. रविंद्र गर्गेश और दूसरी मैं।

अनुवाद कार्य

यह युग अनुवाद का युग है। भाषायी सीमाओं को लाँघते हुए अपनी भाषा से अन्य किसी भाषा का ज्ञान होने का अर्थ है तीसरी आँख का होना और इस तीसरी आँख की उपलब्धि अनुवाद से ही संभव है, जो हमें अन्य भाषाओं के ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे कार्यों का परिचय देता है। दक्षिण कोरिया में विशेषकर हिंदी-कोरियाई साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद का कार्य गतिमान है। प्रो. ई जंग हो ने भीष्म साहनी के 'तमस' तथा 'भारतीय बाल कथाओं' का अनुवाद किया है। प्रो. ई ऊं गु ने प्रेमचंद के 'निर्मला' का अनुवाद किया है। भारत सरकार के पद्मश्री से सम्मानित किम यांग शिक ने दिविक रमेश की कविताओं का कोरियाई अनुवाद किया है और दिविक रमेशजी ने किम यांग शिक की कविताओं का हिंदी अनुवाद किया। दिविक रमेश ने 'कोरियाई लोक कथा' तथा 'कोरियाई बाल कविताओं' का अनुवाद भी किया है। प्रो. ज्ञानमजी ने 'श्रेष्ठ कोरियाई कहानियों' का अनुवाद किया। प्रो. किम उ जो ने कोरियाई प्रतिनिधि कवियों की कविताओं का हिंदी अनुवाद 'पहाड़ में फूल' शीर्षक से किया है। मैंने प्रो. ई ऊं गुजी के साथ मिलकर कोरियाई लेखक 'ई सांग' की कहानियों का 'पंख तथा अन्य कहानियाँ' नाम से हिंदी अनुवाद किया है। साहित्य के अलावा भारतीय दर्शन और उपनिषद् के अनुवाद का कार्य भी गतिमान है।

साहित्याध्ययन तथा अनुसंधान

दक्षिण कोरिया में विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय के स्तर पर हिंदी भाषा के अलावा हिंदी साहित्य का अध्ययन-अध्यापन भी किया जाता है। यहाँ हिंदी साहित्य के अंतर्गत हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी कविता, हिंदी कथा साहित्य, हिंदी साहित्यकार, प्राचीन हिंदी साहित्य, समकालीन हिंदी साहित्य आदि विषयों का अध्ययन और अध्यापन होता है। हिंदी की पाठ्य सामग्री कोरियाई माध्यम में पढ़ाई जाती है। भले ही माध्यम उनकी अपनी मातृभाषा है, किंतु संदर्भ और सरोकार भिन्न-भिन्न होने के कारण साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में कठिनाई आती है। इस संदर्भ में प्रो. किम उ जी का कथन हैं कि "हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ाते समय मेरे लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि कोरिया के विद्यार्थियों के लिए सुदूर स्थित भारत के प्राचीन साहित्य की तत्कालीन सार्थकता क्या है? मेरे विचार में सबसे बड़ी सार्थकता तो मानवीय सार्वभौमिकता से अनुभूत कराना होगा और इसका सबसे अच्छा माध्यम चक्षु-श्रवण सामग्री होगी। मेरा सुझाव है कि हिंदी साहित्य से संबंधित चक्षु-श्रवण सामग्रियों का व्यवस्थित रूप से संकलन किया जाए। इसके अंतर्गत साहित्यिक यात्रा का प्रबंध भी किया जाए।"

विश्वविद्यालय के स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित अनुसंधान कार्य भी वैशिष्ट्यपूर्ण है। प्रो. ई जंग हो ने Understanding of Asian literature में हिंदी भाषा पर काम किया

है। प्रो. किम उ जो ने तुलसीदास, पद्मावत, निर्गुण भक्तिधारा, कबीर, सूरदास, महिला लेखन और दलित साहित्य पर अपने शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किए हैं। प्रो. छ्वे जो छिन ने भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी भाषा पर विशेष अनुसंधानात्मक कार्य किया है। Participle in Hindi, Agreement in Hindi, Subject and Agent in Hindi, Passive voice in Hindi आदि उनके उल्लेखनीय आलेख हैं। इनके अलावा पुसान विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य में अनुसंधान का काम चल रहा है।

हिंदी शिक्षण में आनेवाली समस्याएँ और समाधान

मैंने दक्षिण कोरिया में हिंदी अध्यापन का कार्य किया है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाने का यह मेरा पहला अवसर था। यह देश तकनीकी की दृष्टि से काफी उन्नत देश है। यहाँ की कक्षाएँ मल्टीमिडिया हैं। अतः अपने देश में रहते जिन सुविधाओं को पाना कठिन था, वह यहाँ सहज सुलभ हैं। इसलिए कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ तो दूर हो जाती हैं, पर बावजूद इसके भाषा सीखने-सिखाने के स्तर पर आनेवाली मूलभूत समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

यहाँ के छात्र बारहवीं कक्षा समाप्त कर कॉलेज में आते हैं और एक विदेशी भाषा के रूप में एक विषय के स्तर पर हिंदी लेते हैं। अतः उनका अध्ययन बिल्कुल प्रारंभिक स्तर से शुरू होता है। कोरियाई प्रोफेसर इन छात्रों को कोरियाई भाषा माध्यम से हिंदी का उच्चारण, व्याकरण, भाषा-विज्ञान आदि तो पढ़ाते हैं और विद्यार्थी समझने के स्तर पर हिंदी भाषा की संरचना को समझ भी लेते हैं, लेकिन व्यवहार में भूल कर जाते हैं।

सबसे पहली समस्या उच्चारण को लेकर आती है। कोरियाई विद्यार्थी ट, ठ, ड, ढ, ण जैसी मूर्धन्य ध्वनियों, ङ, ञ जैसी अनुनासिक ध्वनियों, घ, झ, ढ, ध, भ जैसी घोष ध्वनियों के उच्चारण में बहुत कठिनाई महसूस करते हैं। ब, व, र, ल का अंतर तो वे समझ लेते हैं, लेकिन अकसर उच्चारण में कठिनाई अनुभव करते हैं। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि कोरियाई भाषा में ये ध्वनियाँ नहीं हैं और नई ध्वनियों को आत्मसात् करने में स्वाभाविक है कि कठिनाई तो होती ही है।

डॉ. आरती सिंह, जिन्होंने दक्षिण कोरिया में रहकर हिंदी शिक्षण का काम किया, उन्होंने अपनी कुछ समस्याओं को यों उद्धृत किया है, "जो व्यंजन उनकी मातृभाषा से मिलते-जुलते हैं, उनका उच्चारण छात्र आसानी से कर लेते हैं, लेकिन कुछ व्यंजन जैसे पंचम वर्ण ङ, ञ, ण, न, म हैं। जिसमें न, म व्यंजन कोरियाई भाषा में हैं, इनका उच्चारण छात्र आसानी से कर लेते हैं, पर ङ, ञ, ण, का उच्चारण करने में छात्रों को कठिनाई होती है। ये अल्पप्राण अनुनासिक ध्वनियाँ हैं। शुरुआत में इन सभी के लिए न का उच्चारण कराया जाता है, पर धीरे-धीरे अभ्यास से छात्र इनका सही उच्चारण सीख लेते हैं। ल, ड, ढ, ड, ढ का उच्चारण करने में भी उन्हें कठिनाई होती है। इन वर्णों का उच्चारण करते समय जीभ ठीक से पलटती नहीं हैं, जिससे उच्चारण में असुविधा होती है। हिंदी की कुछ ध्वनियाँ ऐसी हैं, जो छात्रों को एक जैसी लगती हैं जैसे—ग-घ, च-छ, ज-झ, त-ट-ठ, द-ध, र-ल आदि व्यंजन का उच्चारण करने में छात्र भ्रमित हो जाते हैं। इनके बार-बार अभ्यास और सही उच्चारण पर ध्यान देने से यह समस्या दूर की जा सकती है।"

कारक के प्रयोग में भी कोरियाई छात्र गड़बड़ा जाते हैं। कर्ता कारक 'ने', संप्रदान कारक 'को', कृदंत का 'का' वाला रूप अकसर उनकी परेशानी का कारण होता है। इसी प्रकार प्रेरणार्थक क्रिया, संयुक्त क्रिया और अकर्मक क्रिया के प्रयोग में भी

अकसर भूल करते दिखाई देते हैं। कोरियाई-हिंदी शब्दकोश का काम करते समय मैंने यह महसूस किया कि कोरियाई भाषा में क्रिया विशेषण का प्रयोग अधिक होता है, इतना ही नहीं, उसकी रचना में कुछ प्रत्यय भी निश्चित होते हैं और उस पर आधारित रूप भी निर्धारित होते हैं। जबकि हिंदी के वाक्य विन्यास में क्रिया विशेषण के साथ परसर्ग, प्रत्यय का प्रयोग कोरियाई विद्यार्थियों के लिए अजीब और मुश्किल लगता है।

नवीन पाठ्यक्रम की संकल्पना

विद्यार्थियों की उच्चारण संबंधी कठिनाइयों को कम करने के लिए नवीनतम पाठ्यक्रम निर्माण करने की आवश्यकता महसूस की गई। जब मैं हांकुक विश्वविद्यालय सियोल में हिंदी पढ़ाया करती थी तब कभी-कभार कक्षा में हिंदी फिल्म दिखाया करती और उनको जो वाक्य समझ आता उसे लिखने के लिए कहती या उसका उच्चारण करने के लिए कहती। इससे एक तो हिंदी उच्चारण समझ आता और दृश्य माध्यम होने के कारण वे उसका आनंद भी लेते। प्रो. ली उं गु ने भाषा सीखने के लिए पाठ्यक्रम में हिंदी फिल्मी गीत का प्रयोग किया, जो बहुत ही सफल हुआ। उनका कथन है, "कोरिया में आजकल हिंदी फिल्मों के प्रति छात्रों की अच्छी धारणा है, अतः भाषा सीखने के प्रति आकर्षकता व रोचकता लाने के लिए मैंने भाषा शिक्षण में फिल्मी गीत का प्रयोग किया। वे कहते हैं कि इस पाठ्य सामग्री में राष्ट्रगान, चार गजलों के अलावा 37 गीत आ गए। इन गीतों को चुनकर चलचित्र डी.वी.डी. बनाई गई। सन् 1964 से 2006 तक के 37 लोकप्रिय हिंदी फिल्म गीतों को कालक्रम के आधार पर डी.वी.डी. के रूप में संकलित किया है। इन गीतों में से चिट्ठी आई है, होठों पे सच्चाई, हाथी मेरे साथी, कुछ-कुछ होता है, कल हो न हो जैसे गीत लोकप्रिय हो गए। दो-तीन छात्र इकट्ठे होकर एक सप्ताह में कम-से-कम एक गाना अभिनय के साथ गाने की परीक्षा देते हैं।"

यूँ तो विदेशी भाषा सीखते समय ये समस्याएँ सामने आ ही जाती हैं। अतः इसका समाधान खोजना भी आवश्यक है। मेरी समझ के अनुसार मातृभाषा या माध्यम भाषा की तुलना में हिंदी का अध्यापन, हिंदी संरचना पर सरल पाठ्य पुस्तक का निर्माण, हिंदी वार्त्तालाप की कक्षाएँ, बातचीत के लिए अवसर प्रदान करना, निरंतर अभ्यास की आवश्यकता पर जोर देना और समय-समय पर भारतीय समाज, संस्कृति और मानसिकता पर व्यापक जानकारी देना, दृश्य-श्रव्य माध्यम का प्रयोग आदि समस्या के समाधान में उपयुक्त सुझाव हो सकते हैं।

उपसंहार

दक्षिण कोरिया में हिंदी का अलख जगाने का श्रेय भारतीय दूतावास तथा यहाँ के हिंदी को समर्पित हिंदी शिक्षकों और विद्वानों को जाता है। अपनी सीमाओं में ही सही, पर इन लोगों ने सराहनीय काम किया है। साहित्य और संस्कृति के अलावा कोरियाई कंपनियों का भारत में आगमन और निवेश हिंदी के विकास में एक नया अध्याय जोड़ रहा है। शायद यह भी एक कारण हो सकता है कि आज विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रति अधिक आकर्षण है और उत्तरोत्तर छात्रों की संख्या में वृद्धि हो रही है। अतः मेरे विचार से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को लाने की हर मुमकिन कोशिश करने की जरूरत है। वैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी अपनी सकारात्मक भूमिका निभा रही है, इसलिए विश्व भाषा बनने के मार्ग पर सक्रिय है।

□

mudliar_pratibha@yahoo.co.in

विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा : भारत से मॉरीशस तक

—प्रीति सागर

हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 10 से 14 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का बोधवाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' था, जिससे हिंदी द्वारा 'एक विश्व एक मानव' की भावना का संचार हो। सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी एवं समापन भारत के महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती ने किया था। सम्मेलन से संबंधित राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष भी महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती थे। उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम थे, जिनकी अध्यक्षता में मॉरीशस के एक प्रतिनिधिमंडल ने सम्मेलन में प्रतिभागिता की थी। सम्मेलन के उद्घाटन में स्वागत भाषण महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री वसंतराव नाइक द्वारा दिया गया था। समापन समारोह की मुख्य वक्ता हिंदी की प्रतिष्ठित कवयित्री एवं छायावाद के चार स्तंभों में से एक महादेवी वर्मा थीं। विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा कि, "हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है।...मुझे इस बात की खुशी है कि इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन ने विश्व एकता और भाईचारे के आदर्श को सामने रखा है। आज दुनिया के सब देश यह अनुभव कर रहे हैं कि जब तक इनसान वर्ग, जाति, रंग के भेदभाव को नहीं भूलेगा, तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता।"

(1) प्रशासन, विधि और विधायी कार्यों की भाषा
(2) ज्ञान-विज्ञान का माध्यम
(3) भाषा शिक्षण और सहायक सामग्री।

इस सम्मेलन में तीस देशों के एक सौ बाईस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अवसर पर एक वृहत प्रदर्शनी तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आकाशवाणी कलाकारों का संगीत कार्यक्रम, भारतीय कला केंद्र एवं मॉरीशस की कलाकार मंडली 'त्रिवेणी' की प्रस्तुतियाँ रहीं। एक अंतरराष्ट्रीय कवि गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। आयोजन स्थल को 'विश्व हिंदी नगर' का नाम दिया गया एवं प्रवेशद्वारों को 'तुलसी', 'मीरा', 'सूर', 'कबीर', 'नामदेव' और 'रैदास' जैसे नामों से सुसज्जित किया गया। प्रतिनिधियों एवं

* अध्यक्ष, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

अतिथियों के आवासों को 'विश्व संगम', 'मित्र निकेतन', 'विद्या विहार', 'पत्रकार निवास' आदि नाम दिए गए एवं भोजनालय के नाम 'अन्नपूर्णा', 'आकाशगंगा' आदि रखे गए। यहाँ भारतीय भाषाओं के पंद्रह लेखकों को सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त बारह अहिंदी भाषी लेखकों तथा दो विशिष्ट लेखकों को भी सम्मानित किया गया और इस तरह हिंदी के माध्यम से उन भाषाओं के प्रति अपना प्रेम और आदर व्यक्त किया गया। पहले ही सम्मेलन में मॉरीशस के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य श्री दयानंद बसंत ने यह प्रस्ताव किया कि हिंदी को संयुक्त संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति दिलाई जाए। इस अवसर पर तीन मंतव्य पारित किए गए—

(1) संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को अधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलाया जाए।
(2) विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना वर्धा में हो।
(3) विश्व हिंदी सम्मेलनों की उपलब्धियों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अत्यंत विचारपूर्वक एक योजना बनाई जाए।

इस सम्मेलन में एक विशेष डाक टिकट भी जारी किया गया। इस सम्मेलन में हिंदी के संबंध में काका कालेलकर ने कहा, "हम सबका धर्म सेवाधर्म है और हिंदी इस सेवा का माध्यम है··· हमने हिंदी के माध्यम से आजादी पहले और आजाद होने के बाद भी समूचे राष्ट्र की सेवा की है और अब इसी हिंदी के माध्यम से विश्व की सारी महानता की सेवा करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।" पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में मंच से कहा गया था, "सांस्कृतिक शक्ति के रूप में भारत का उन्मेष उतना ही जरूरी है, जितना आर्थिक एवं राजनीतिक। विश्व हिंदी सम्मेलन को हिंदी के मार्ग को आत्मविश्वास का प्रकाश देना है। ···यही इस सम्मेलन की भूमिका है, इसका मंतव्य है, गंतव्य है।" पहले विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन द्वारा इस बात की पुष्टि हो गई कि हिंदी असाधारण सामर्थ्य संपन्न भाषा है और वह संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के गौरव की अधिकारिणी है। इस आयोजन ने पहली बार हिंदी को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया और हिंदी के पक्ष में एक वातावरण सृजित किया। इस आयोजन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि हिंदी के कारण पहली बार दुनियाभर के प्रवासी भारतीय भारत से जुड़े।

दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भारतवंशी बहुल देश मॉरीशस में हुआ। विदेश में मॉरीशस ही वह देश है, जिसे तीन बार विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन का सौभाग्य मिला है। इसी मॉरीशस के सौंदर्य पर मुग्ध धर्मवीर भारती ने लिखा था। "यहाँ भारत से इस बात का अंदाज भी नहीं हो सकता था कि वह द्वीप इतना सुंदर है, इतना प्यार भरा है। दक्षिणी तट का शांत, कहीं अंगूरी, कहीं धानी, कहीं फिरोजी, कहीं मंदिर के पुराने पवित्र काई जमें पोखरों जैसे रंगवाला सुहावना समुंदर, द्वीप को चक्र की तरह घेरे हुए लहरें उछालती प्रवाल रेखा और उत्तरी तट का गहरा नीला और चट्टानों से टकराकर फेन उगलता विक्षुब्ध महासागर—गाढ़ी काली रात में ज्वालामुखी के शून्य वृत्ताकार क्रेटर पर खड़े होकर सचमुच आकाश छूने और तारे तोड़ लाने का अहसास, नीली धुंध में ढँके पहाड़, मीलों फैले गन्ने के खेत, चीड़ के जंगल, पानी की लहराती झीलें, सारे द्वीप में हर सड़क पक्की, छोटे-छोटे कलात्मक कॉटेज, शामारेत की वह रहस्यमयी रंग-बिरंगी धरती और पांपिलेमूस के थालीदार पत्तोंवाले शतदल कमल और सैकत तटों के जादू रेखाओं वाले शंख और चीड़ वनों के बारहसिंगे! अचरज होता है कि इस छोटे से द्वीप को विधाता ने कैसे प्रेरित क्षणों में गढ़ा होगा! कौन सा देश है दुनिया में, जहाँ प्रकृति ने इतना सौंदर्य बाहर बिखेरा

हो और इतना भावभीना प्यार लोगों के हृदयों में? ये दो आयाम हैं, इस इंद्रधनुषी द्वीप के आंतरिक और बाह्य सौंदर्य के!"

भारतवंशियों के लिए यह विशेष रूप से गौरव का अवसर था, क्योंकि हिंदी के कारण ही भारत से उनका भावात्मक एवं सांस्कृतिक संबंध बना हुआ है। 28 से 30 अगस्त, 1976 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई स्थित महात्मा गांधी संस्थान में आयोजित सम्मेलन के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम थे। सम्मेलन के उद्घाटन एवं समापन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह ने की। इस सम्मेलन में डॉ. कर्ण सिंह की अध्यक्षता में भारत के तेईस सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल सहित सत्रह देशों के एक सौ इक्यासी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में चार पूर्ण शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया, जिनके विषय थे—

(1) हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप
(2) जन-संचार के साधन और हिंदी
(3) हिंदी के प्रचार में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
(4) विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्या।

इस सम्मेलन में एक पुस्तक एवं एक चित्र प्रदर्शनी भी लगाई गई थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र, महात्मा गांधी संस्थान मॉरीशस तथा युवा एवं क्रीड़ा मंत्रालय मॉरीशस की प्रस्तुतियाँ थीं। एक कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। इस अवसर पर मॉरीशस के तीन डाक टिकट जारी किए गए तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रंथावली' के तृतीय खंड का लोकार्पण किया गया। इस सम्मेलन में पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित मंतव्यों को पुन: स्वीकार्यता प्रदान करते हुए दो मंतव्य पारित किए गए—

(1) मॉरीशस में एक 'विश्व हिंदी केंद्र' की स्थापना की जाए, जो पूरे विश्व की हिंदी गतिविधियों का समन्वय कर सके।
(2) एक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन हो, जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके, जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे तथा विज्ञान तथा अध्यात्म की महान् शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।

दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन को मॉरीशस में आयोजित करके वास्तव में हिंदी को एक विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इस सम्मेलन में न केवल हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रकट हुआ, वरन् विश्व की अन्य भाषाओं के समकक्ष हिंदी की स्थिति का आकलन भी किया गया। इस सम्मेलन द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि हिंदी विश्व स्तर पर अन्य विश्व भाषाओं के साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। पहले और दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन के महत्त्व का आकलन करते हुए लल्लन प्रसाद व्यास लिखते हैं, "विश्व हिंदी सम्मेलनों के क्रम में ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम नागपुर सम्मेलन और द्वितीय मॉरीशस सम्मेलन का अपूर्व महत्त्व है।···प्रथम दो का महत्त्व इस दृष्टि से ही विशेष है कि प्रथम का तो सूत्रपात की दृष्टि से अपना अग्रणीय महत्त्व है तथा दूसरे का स्थान इसलिए विशेष है कि एक भारतवंशी-बहुल देश में, जहाँ कुली-मजदूर बनकर भारत से आए प्रवासियों ने त्याग, तपस्या, साधना और बलिदान से हिंदी की अस्मिता की रक्षा की और उसका विकास किया।"

तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन पुन: भारत की धरती पर हुआ। 28 से 30 अक्तूबर, 1983 को भारत की राजधानी नई दिल्ली के इंद्रप्रस्थ स्टेडियम में आयोजित सम्मेलन के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन लोकसभा

अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ थे। उद्घाटन एवं समापन समारोह की अध्यक्षता क्रमश: डॉ. रोनोल्ड स्टुअर्ट मैग्रेगर एवं श्री बलराम जाखड़ ने की। अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए ब्रिटेन निवासी, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं हिंदी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. रोनोल्ड स्टुअर्ट मैग्रेगर ने कहा, "भारत को समझने के इच्छुक लोगों को हिंदी सीखनी होगी। हिंदी की अपनी उपयोगिता है, अपनी विशेषता है।" प्रस्तुत सम्मेलन में तीन पूर्ण सत्र आयोजित हुए, जिनके विषय थे—

(1) अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी प्रसार की संभावनाएँ और प्रयास
(2) भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिंदी
(3) मानव मूल्यों की स्थापना और हिंदी की भूमिका।

इसके अतिरिक्त सम्मेलन के पहले दिन 'आधुनिक भारत में हिंदी के बढ़ते चरण' शीर्षक के अंतर्गत छह समानांतर सत्र हुए, जिनके विषय थे—

(1) आधुनिक भारत में हिंदी साहित्य की विकास रेखाएँ
(2) आधुनिक भारत में हिंदी भाषा की प्रगति
(3) आधुनिक भारत में हिंदी की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति
(4) देवनागरी लिपि: स्वरूप और संभावनाएँ
(5) आधुनिक भारत में हिंदी पत्रकारिता की प्रगति
(6) हिंदी के विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान।

सम्मेलन के दूसरे दिन 'अंतरराष्ट्रीय संदर्भ और हिंदी' विषय के अंतर्गत तीन समानांतर सत्र हुए, जिनके विषय थे—

(1) भारतीय मूल के जन समुदाय में हिंदी का प्रचार-प्रसार, समस्याएँ और संभावनाएँ
(2) विश्व के अन्य देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार, समस्याएँ और संभावनाएँ
(3) संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों में हिंदी का प्रयोग और संभावनाएँ।

सम्मेलन के तीसरे और अंतिम दिन 'हिंदी का अंतर-भारतीय स्वरूप' विषय के अंतर्गत आयोजित छह समानांतर सत्रों के विषय थे—

(1) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ: आदान-प्रदान (तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़)
(2) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (मराठी, गुजराती और हिंदी की बोलियाँ)
(3) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ: आदान-प्रदान (बंगला, उडिया, असमिया)
(4) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (उर्दू, पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी)
(5) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (भोट, बर्मी और मुंडा परिवार)
(6) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ: आदान-प्रदान (संस्कृत, पालि, अपभ्रंश)।

इस सम्मेलन में अन्य कार्यक्रमों में कई प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया जैसे—'हिंदी के बढ़ते चरण', 'विदेशों में हिंदी', 'संचार माध्यम और देवनागरी लिपि' और 'व्यवहार में हिंदी' विषयों पर प्रदर्शनी, हिंदी तथा अंतरराष्ट्रीय भाषाओं की चित्रमय प्रदर्शनी आदि। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लोकनृत्य, रासलीला, कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। बिरजू महाराज द्वारा 'कहानी कत्थक की' का संयोजन प्रस्तुत किया गया तथा भारतीय कला केंद्र ने भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस अवसर पर सम्मानित इकतालिस विद्वानों में अठारह भारतीय भाषाओं के लेखक, सात अहिंदी भाषी विद्वान्, आठ विदेशी हिंदी विद्वान् तथा आठ अन्य हिंदी सेवी थे। 'विश्व हिंदी' और 'विश्व के मानचित्र पर हिंदी' शीर्षक दो स्मारिकाओं

एवं 'भाषा', 'गगनांचल' और 'अक्षरा' पत्रिकाओं का लोकार्पण किया गया। तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में श्री हरीश बुधू के नेतृत्व में मॉरीशस से आए प्रतिनिधिमंडल समेत दो सौ साठ देशों से आए छह हजार पाँच सौ छियासठ प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया और यहाँ चार महत्त्वपूर्ण मंतव्य पारित किए गए जिसके अंतर्गत सम्मेलन के लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक स्थायी समिति के गठन की बात रखी गई। इस सम्मेलन की उपलब्धियों एवं महत्त्व को आँकते हुए श्री मधुकरराव चौधरी ने लिखा, "तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की विराट्ता की अभूतपूर्व अनुभूति से आज भी हम प्रेरित हैं। सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्राय: सभी व्यक्तियों ने यह अनुभव किया कि हिंदी न तो मात्र व्याकरण है और न ही केवल साहित्य। भाषा के रूप में हिंदी एक जातीय संपदा के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय सामाजिक संस्था भी है। मूल्य के रूप में वह हमारी सामासिक संस्कृति का प्रतीक है और साहित्य के रूप में वह मानव मूल्यों की एक सशक्त संवाहिका है। भाषा-व्यवहार, सांस्कृतिक मूल्य और ऐतिहासिक परंपरा के धरातल पर हम किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हैं, हमने किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना व निर्माण किया है और किस प्रकार हिंदी अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण कड़ी के रूप में उभरी है—ये सभी तथ्य सम्मेलन के माध्यम से ध्वनित हुए।"

चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन 02 से 04 सितंबर, 1993 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में आयोजित किया गया। दूसरी बार मॉरीशस में आयोजित हो रहे इस समारोह के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्री श्री मुकेश्वर चुनी थे। चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में शामिल हुए भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री मधुकरराव चौधरी और उपनेता भारत के तत्कालीन गृह राज्यमंत्री श्री रामलाल राही थे। सम्मेलन का उद्घाटन मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ द्वारा किया गया। 'हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति' विषय पर दो पूर्ण सत्र थे तथा पाँच समानांतर सत्रों का आयोजन अग्रलिखित विषयों पर किया गया—

(1) हिंदी योजनाएँ एवं नीतियाँ
(2) हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार
(3) हिंदी संचार एवं विज्ञान
(4) बहुफलकीय हिंदी
(5) हिंदी, भारतीय संस्कृति एवं लोक साहित्य।

इस सम्मेलन के अन्य कार्यक्रमों में हिंदी विकास संबंधी प्रदर्शनी लगाई गई थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र, भोजपुरी सांस्कृतिक दल, महात्मा गांधी संस्थान तथा मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्रालय द्वारा प्रस्तुतियाँ दी गईं। सम्मेलन में भारत और मॉरीशस के अतिरिक्त लगभग दो सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अवसर पर मॉरीशस के चार विद्वानों को सम्मानित किया गया। पिछले तीन विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित संकल्पों की संपुष्टि करते हुए सात मंतव्य पारित किए गए। अभी तक के चारों विश्व हिंदी सम्मेलनों का बोधवाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही रहा था।

'आप्रवासी भारतीय और हिंदी' विषय पर केंद्रित पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद एवं टोबेगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में 04 से 08 अप्रैल, 1996 को आयोजित किया गया। सम्मेलन का आयोजन 'हिंदी निधि संस्था' द्वारा वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय के सहयोग से किया गया एवं इस आयोजन के मुख्य संयोजक 'हिंदी निधि' के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम थे। भारत के सत्रह सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री माताप्रसाद ने किया। सम्मेलन का उद्घाटन त्रिनिदाद एवं टोबेगो

के प्रधानमंत्री श्री वासुदेव पांडे ने किया। सम्मेलन के पूर्ण सत्र के अलावा 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास', 'कैरेबियन द्वीपों में हिंदी की स्थिति' तथा 'कंप्यूटर युग में हिंदी की उपादेयता' विषयों के अंतर्गत कई समानांतर सत्रों का आयोजन किया गया। विभिन्न देशों के दो सौ सत्तावन प्रतिनिधि शामिल हुए और दूरदर्शन तथा सेटेलाइट द्वारा इस सम्मेलन का सीधा प्रसारण किया गया। यहाँ भारतीय, अफ्रीकी और पाश्चात्य संगीत की मिश्रित प्रस्तुतियाँ दी गईं। सी-डेक की ओर से कंप्यूटर प्रदर्शनी, पुस्तक प्रदर्शनी तथा 'हिंदी के बढ़ते चरण' नाम से हिंदी भाषा के विकास एवं इतिहास की चित्रमय झाँकी प्रस्तुत की गई। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रामलीला कला केंद्र, कानपुर नौटंकी मंडल, गुलाब थिएटर कंपनी तथा भारतीय फीचर फिल्मों की प्रस्तुतियाँ रहीं। इस अवसर पर पाँच मंतव्य पारित हुए और पाँच भारतीय तथा तेरह विदेशी विद्वानों को सम्मानित किया गया।

छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'हिंदी और भावी पीढ़ी' था, जिसका आयोजन 14 से 18 सितंबर, 1999 को लंदन, ब्रिटेन में किया गया। यू.के. हिंदी समिति, गीतांजलि बहुभाषी समुदाय, बर्मिंघम और भारतीय भाषा संगम, यार्क द्वारा गठित राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार थे। सम्मेलन का उद्घाटन एवं भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भारत की तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्रीमती वसुंधरा राजे ने किया। छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रतिनिधिमंडल के उपनेता हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र थे। हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के पचासवें वर्ष में आयोजित इस सम्मेलन में इक्कीस देशों के सात सौ प्रतिनिधि शामिल हुए। शैक्षिक सत्रों के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों में डी.ए.वी.पी. द्वारा पुस्तक एवं फोटो प्रदर्शनी तथा सी-डेक द्वारा कंप्यूटर प्रदर्शनी लगाई गई। इस सम्मेलन में हिंदी भाषा एवं साहित्य दोनों पर ही बल दिया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतर्गत जापानी विद्यार्थियों द्वारा नाट्य प्रस्तुति, श्रीमती शोभना नारायण द्वारा नृत्य प्रस्तुति तथा भूपेन हजारिका द्वारा गायन प्रस्तुत किया गया। इस सम्मेलन में पारित सात मंतव्यों में पुन: हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने की बात दोहराई गई। इस अवसर पर बीस विदेशी एवं तेरह भारतीय विद्वानों को सम्मानित किया गया।

'विश्व हिंदी-नई शताब्दी की चुनौतियाँ' विषय पर आयोजित सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में सूरीनाम हिंदी सम्मेलन आयोजन समिति (सुहोक) द्वारा सूरीनाम हिंदी परिषद्, ग्लोबल ऑर्गनाइजेशन फॉर पीपुल ऑफ इंडियन ओरिजिन (गोपियो), सूरीनाम विश्वविद्यालय, माता गौरी फाउंडेशन, सनातन धर्म महासभा, आर्य दिवाकर तथा सूरीनाम की अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं और संबंधित संगठनों द्वारा 05 से 09 जून, 2003 को संपन्न हुआ। उल्लेखनीय है कि सूरीनाम की धरती पर भारतवंशियों का आगमन कई दशक पहले 05 जून को ही हुआ था। इक्कीसवीं सदी के इस पहले विश्व हिंदी सम्मेलन के संयोजक श्री जानकी प्रसाद सिंह थे। भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने किया। सम्मेलन का उद्घाटन सूरीनाम के राष्ट्रपति श्री रोनाल्डो रोनाल्ड वेनेत्शियान ने किया। सम्मेलन में दस शैक्षिक सत्रों के विषय थे—

(1) विश्व हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ और समाधान
(2) हिंदी की बोलियों में नया सृजन
(3) विश्व हिंदी एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका
(4) हिंदी और प्रसारण
(5) हिंदी और पत्रकारिता

(6) अर्थव्यवस्था में हिंदी की भूमिका
(7) हिंदी और शिक्षण व्यवस्था
(8) भारतेतर देशों में हिंदी का समकालीन रचनात्मक परिदृश्य
(9) हिंदी में अनुवाद और संदर्भ साहित्य
(10) भविष्य की हिंदी और हिंदी का भविष्य—एक परिसंवाद।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा 'हिंदी हमारी धरोहर' प्रदर्शनी तथा नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई। दैनिक न्यूज बुलेटिन 'सम्मेलन समाचार' का प्रकाशन किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शेखर सेन द्वारा कबीर और तुलसी पर एकल नाट्य प्रस्तुतियाँ, शारदा सिन्हा द्वारा पारंपरिक भोजपुरी गायन, मनोज तिवारी द्वारा आधुनिक भोजपुरी गीत प्रस्तुति, सुमिता शर्मा द्वारा रामचरितमानस के प्रसंगों तथा महादेवी वर्मा के गीतों पर कथक प्रस्तुति, निजामी बंधुओं द्वारा कव्वाली और दिल्ली के 'ध्वनि ग्रुप' के कलाकारों द्वारा कथक नृत्य प्रस्तुति शामिल रहे। प्रस्तुत सम्मेलन में मनोज रघुवंशी द्वारा निर्मित 'विश्व हिंदी की रचना यात्रा' तथा दिनेश लखनपाल द्वारा निर्मित 'हिंदी हैं हम' इन दो फिल्मों का प्रदर्शन भी किया गया। इस सम्मेलन में बारह से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। कुल छब्बीस विद्वानों को सम्मानित किया गया जिनमें दस भारतीय तथा सोलह विदेशी विद्वान् थे। इस अवसर पर पारित दस मंतव्यों में पहला प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प था।

आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'विश्व मंच पर हिंदी' था। 13 से 15 जुलाई, 2007 को संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयॉर्क में संपन्न इस सम्मेलन का आयोजन भारतीय विद्या भवन न्यूयॉर्क के सहयोग से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने किया। संयुक्त राष्ट्र संघ मुखयालय के सभागार में उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्री आनंद शर्मा ने की। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में स्वागत भाषण भारत के राजदूत रोनेन सेन ने दिया।

(1) 'संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी' विषय पर पूर्ण सत्र सहित अन्य विषयों पर नौ समानांतर सत्रों का आयोजन किया गया था। समानांतर सत्रों के विषय अग्रलिखित थे—
(2) देश-विदेश में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान
(3) वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी
(4) विदेशों में हिंदी सृजन (प्रवासी हिंदी साहित्य)
(5) हिंदी के प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका
(6) हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी फिल्मों की भूमिका
(7) हिंदी युवा पीढ़ी और ज्ञान-विज्ञान
(8) हिंदी भाषा और साहित्य : विभिन्न आयाम
(9) (अ) साहित्य में अनुवाद की भूमिका
(ब) हिंदी बाल साहित्य
(स) देवनागिरी लिपि।

इस अवसर पर केंद्रीय हिंदी संस्थान के सहयोग से नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा एक पुस्तक प्रदर्शनी, राष्ट्रीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा 'हिंदी की अंत:कथा-देश से परदेस तक' विषय पर प्राचीन पांडुलिपियों तथा हिंदी के विकास के संबंध में एक प्रदर्शनी और 'सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी का प्रयोग' विषय पर एक प्रदर्शनी आयोजित हुई। साथ ही मनोज रघुवंशी द्वारा निर्मित फिल्म 'हिंदी आज तक' का प्रदर्शन किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पंकज उधास द्वारा गजल कार्यक्रम, गीता चंद्रन एवं उनके समूह द्वारा भरतनाट्यम नृत्य की प्रस्तुति और शुजात द्वारा

सितार वादन शामिल था। हिंदी की समृद्धि के लिए दस मंतव्य पारित किए गए। हिंदी के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देने के लिए बीस भारतीय विद्वानों तथा बीस विदेशी विद्वानों को सम्मानित किया गया। हिंदी के प्रति युवा वर्ग को आकर्षित करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक हिंदी निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता के दो विजेताओं, एक हिंदीभाषी और एक अहिंदीभाषी को पुरस्कारस्वरूप भारत सरकार की ओर से सम्मेलन में भाग लेने के लिए न्यूयार्क जाने का अवसर प्रदान किया गया।

नवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 22 से 24 सितंबर, 2012 को दक्षिण अफ्रीका की औद्योगिक राजधानी जोहान्सबर्ग के सैंडटन सेंटर के नेल्सन सभागार में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन भारत के विदेश मंत्रालय ने हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ्रीका के सहयोग से किया गया। इस सम्मेलन के सफल आयोजन के लिए भारत की विदेश राज्यमंत्री श्रीमती प्रणीत कौर की अध्यक्षता में एक संचालन समिति गठित की गई। सम्मेलन के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श के लिए छह उपसमितियाँ गठित की गईं। दक्षिण अफ्रीका में भारत के उच्चायुक्त श्री वीरेंद्र गुप्ता के संरक्षण में एक आयोजन समिति का भी गठन किया गया। दक्षिण अफ्रीका लंबे समय तक महात्मा गांधी का कार्यक्षेत्र रहा है। समानता, न्याय एवं विश्व-शांति के लिए किए गए गांधीजी के प्रयासों को सम्मान देने के लिए सम्मेलन के उद्घाटन स्थल का नाम 'गांधी ग्राम' रखा गया था। गांधीजी के जीवन दर्शन से प्रभावित दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. नेल्सन मंडेला के सम्मान में पूर्ण सत्र हॉल का नाम 'नेल्सन मंडेला सभागार' रखा गया था। शैक्षिक सत्रों के स्थलों को 'शांति', 'सत्य', 'अहिंसा', 'नीति' और 'न्याय' कक्ष नाम दिए गए थे। यहाँ 'सत्य मंडप' में पुस्तक विमोचन के लिए एक स्थायी मंच की व्यवस्था की गई थी। विदेश राज्यमंत्री श्रीमती प्रणीत कौर ने उद्घाटन भाषण में कहा, "हमने नवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन दक्षिण अफ्रीका में आयोजित करने का इरादा किया, इस बात की मुझे बहुत खुशी है। राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा जिसने विश्व हिंदी सम्मेलन का बीज बोया और दक्षिण अफ्रीका दोनों ही महात्मा गांधी के जीवन से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। इसके साथ ही गांधीजी खुद गुजराती-भाषी होते हुए भी हिंदी भाषा के बड़े हिमायती थे। इस तरह विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए दक्षिण अफ्रीका आना हमारे लिए किसी तीर्थाटन से कम नहीं है। ···दक्षिण अफ्रीका में भी भारतीय मूल के लोगों ने जिनके दादा, परदादा लगभग डेढ़ सौ साल पहले यहाँ आए, अपनी भाषा को बनाए रखा। पं. नरदेव वेदालंकारजी ने हिंदी शिक्षा संघ की नींव रखकर इस काम को बढ़ावा दिया।" भारत सरकार के विदेश मंत्रालय, दक्षिण अफ्रीका के हिंदी शिक्षा संघ एवं अन्य भागीदारों के सहयोग से आयोजित होने वाले हिंदी प्रेमियों के इस विशाल मेले का केंद्रीय विषय 'भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ' था। सम्मेलन में कुल नौ अकादमिक सत्र आयोजित किए गए, जिनके विषय थे—

(1) महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ
(2) हिंदी : फिल्म, रंगमंच और मंच की भाषा
(3) सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी लिपि और हिंदी का सामर्थ्य
(4) लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी
(5) विदेश में भारत : भारतीय ग्रंथों की भूमिका
(6) ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी
(7) हिंदी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका

(8) हिंदी के प्रसार में अनुवाद की भूमिका
(9) दक्षिण अफ्रीका में हिंदी शिक्षा-युवाओं का योगदान।

इस सम्मेलन के सत्रों में हुई चर्चा ने हिंदी के बहुआयामी और व्यापक संदर्भों को रेखांकित किया। इस सम्मेलन में एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों से बड़ी संख्या में प्रवासी लेखकों, हिंदी सेवियों तथा हिंदी प्रेमियों ने भागीदारी की, जो हिंदी की लोकप्रियता का सूचक है। इसके अतिरिक्त पुस्तक प्रदर्शनी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा संयोजित हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी की अनुप्रयोग प्रदर्शनी तथा गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा संयोजित महात्मा गांधी के जीवन एवं साहित्य पर प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त इस सम्मेलन में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया। सम्मेलन के पहले दिन सांयकाल संत कबीर के जीवन पर आधारित एकल नाट्य प्रस्तुति प्रसिद्ध नाट्यकर्मी शेखर सेन द्वारा दी गई। सम्मेलन के दूसरे दिन दक्षिण अफ्रीका की सांस्कृतिक संस्था 'अनावृत्ता' द्वारा नृत्य प्रस्तुतियाँ दी गईं, जिनमें भारत और दक्षिण अफ्रीका की संस्कृति के मिले-जुले रंग दिखाई दिए। सम्मेलन के अंतिम दिन समापन समारोह एवं भोजन के उपरांत एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। नवें विश्व हिंदी सम्मेलन में बड़ी संख्या में विद्यार्थियों एवं युवाओं को शामिल करने और आकर्षित करने के प्रयास किए गए थे। नवें सम्मेलन के लोगो का चयन विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित एक विश्व स्तरीय प्रतियोगिता द्वारा किया गया, जिसमें जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुंबई के श्री जोग शुभानंद गोपाल विजयी रहे। नवें विश्व हिंदी सम्मेलन में 22 देशों के लगभग 600 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में कुल 12 प्रस्ताव पारित किए गए। नवें विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित संकल्पों में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के लिए समयबद्ध काररवाई सुनिश्चित करने की बात कही गई। विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए एक मानक पाठ्यक्रम तैयार किए जाने के लिए महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा को अधिकृत किया गया। दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भारत में आयोजित करने का प्रस्ताव पारित हुआ। पूर्व में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलनों की भाँति इस सम्मेलन में भी हिंदी भाषा के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने के लिए भारत तथा अन्य देशों के हिंदी विद्वानों को सम्मानित किया गया।

दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भारत सरकार के विदेश मंत्रालय और मध्य-प्रदेश शासन के पारस्परिक सहयोग से 10 से 12 सितंबर, 2015 को भोपाल में आयोजित हुआ। भोपाल के लाल परेड ग्राउंड में सम्मेलन स्थल को 'माखनलाल चतुर्वेदी नगर' नाम दिया गया। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने किया। विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने प्रास्ताविक वक्तव्य प्रस्तुत किया एवं गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने समापन भाषण दिया। 'रामधारी सिंह दिनकर सभागार' में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज चौहान ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। सम्मेलन की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हुए सुषमा स्वराज ने कहा, "जब विश्व हिंदी सम्मेलन की स्थापना की गई थी उस समय यही कल्पना की गई होगी कि यह सम्मेलन भाषा की उन्नति के लिए स्थापित किया जा रहा है और यदि पहले सम्मेलन से भाषा की उन्नति के लिए सम्मेलन हुआ होता तो आज हम वहाँ खड़े नहीं होते जहाँ हम खड़े हैं। मुझे दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि आज हिंदी भाषा संवर्द्धन के लिए ही चिंता नहीं करनी पड़ रही है, बल्कि संरक्षण की भी चिंता करनी पड़ रही है। जिस तरह

अंग्रेजी का उभार हिंदी पर आ रहा है, उससे भाषा अपनी अस्मिता खोती जा रही है।" नरेंद्र मोदी ने उद्घाटन उद्बोधन में कहा, "हर पीढ़ी का दायित्व रहता है, भाषा को समृद्ध करना। ···हमारे देश में हिंदी भाषा का आंदोलन किन लोगों ने चलाया? ज्यादातर हिंदी भाषा का आंदोलन उन लोगों ने चलाया, जिनकी मातृभाषा हिंदी थी।··· उन्होंने हिंदी भाषा के लिए, उसके संरक्षण और संवर्धन के लिए दीर्घ दृष्टि से काम किया था।" सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'हिंदी जगत : विस्तार एवं संभावनाएँ' था। विचार-विमर्श हेतु 12 सत्र आयोजित किए गए थे। जिनके शीर्षक थे—

(1) विदेश नीति में हिंदी
(2) संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी
(3) विज्ञान क्षेत्र में हिंदी
(4) प्रशासन् में हिंदी
(5) विधि एवं न्यायिक क्षेत्र में हिंदी और भारतीय भाषाएँ
(6) गिरमिटिया देशों में हिंदी
(7) विदेशों में हिंदी शिक्षण:समस्याएँ और समाधान
(8) देश और विदेश में प्रकाशन : समस्याएँ एवं समाधान
(9) हिंदी पत्रकारिता और संचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता
(10) विदेशियों के लिए भारत में हिंदी अध्ययन की सुविधा
(11) अन्य भाषा-भाषी राज्यों में हिंदी
(12) बाल साहित्य में हिंदी।

विचार-विमर्श के लिए बनाए गए कक्षों के नाम देश-विदेश के हिंदी सेवियों के नाम पर रखे गए थे, जैसे—'रोनाल्ड स्टुअर्ट मेक्ग्रेगर सभागार', 'अलेक्सेई पेत्रोविच वरान्निकोव सभागार', 'विद्यानिवास मिश्र सभागार', 'कवि प्रदीप सभागार'। प्रदर्शनी स्थल को 'डॉ. मोटूरि सत्यनारायण कक्ष' का नाम दिया गया था। सम्मेलन के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार और संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश सरकार द्वारा किया गया। सम्मेलन स्थल पर कई संस्थाओं की प्रदर्शनियाँ उनकी उपलब्धियों को दरशा रही थीं। दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए प्रतीक चिह्न चयन हेतु विदेश मंत्रालय द्वारा लोगो डिजायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विजेता को रु. 50.000 की पुरस्कार राशि निर्धारित की गई थी। 'लोगो चयन समिति' द्वारा जयपुर की ख्याति गुप्ता द्वारा निर्मित प्रतीक चिह्न चयनित किया गया। दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के लोगो पर आधारित एक स्मारक डाक टिकट भी डाक विभाग द्वारा जारी किया गया। सम्मेलन में 20 भारतीय एवं 20 विदेशी हिंदी सेवियों को विश्व हिंदी सम्मान से अलंकृत किया गया। ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में आयोजित करने का प्रस्ताव पारित हुआ। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान वहाँ स्थित विश्व हिंदी सचिवालय के नए भवन के औपचारिक उद्घाटन की बात भी निश्चित की गई।

ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 18 से 20 अगस्त, 2018 को मॉरीशस के स्वामी विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन केंद्र में आयोजित किया गया। सम्मेलन स्थल को 'गोस्वामी तुलसीदास नगर' नाम दिया गया। मॉरीशस की शिक्षामंत्री लीला देवी दुकन लछुमन ने स्वागत भाषण किया। उद्घाटन सत्र के आरंभ में ही भारत के दिवंगत राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दो मिनट का सामूहिक मौन रखा गया। भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि, "इस सम्मेलन में आकर मेरे मन में दो भाव एक साथ उभर रहे हैं। पहला शोक का भाव और दूसरा संतोष का भाव। अटलजी के निधन पर शोक

की छाया इस सम्मेलन पर है, किंतु दूसरा संतोष का भाव भी है कि समूचे विश्व के हिंदी प्रतिनिधि आज अटलजी को श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्र हैं। ···गिरमिटिया देशों में लुप्त हो रही भाषा को बचाने की जिम्मेदारी भारत की है। भारत ने वह जिम्मेदारी सँभाली है।" मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने सम्मेलन में आएँ सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए एक महत्त्वपूर्ण बात कही। उनके शब्दों में, "भारत को हम माता कहते हैं, इसलिए हम उसके पुत्र हुए और पुत्र अपना कर्तव्य जानता है, अत: हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने का समर्थन करते हैं।" सम्मेलन का मुख्य विषय 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' था। मॉरीशस के प्रतिष्ठित साहित्यकार अभिमन्यु अनत के सम्मान में मुख्य सभागार का नाम 'अभिमन्यु अनत सभागार' रखा गया। हिंदी के लिए समर्पित रहे भारतीय एवं मॉरीशस के विद्वानों के नाम पर समानांतर सत्रों के कक्षों के नाम रखे गए थे, जैसे—गोपालदास 'नीरज' कक्ष, भानुमति नागदान कक्ष, सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' कक्ष, आदि। मणिलाल डॉक्टर, राय कृष्णदास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित नरदेव वेदालंकार तथा विक्रम सिंह रामलाला प्रदर्शनी स्थल को राय कृष्णदास का नाम दिया गया। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में विचार-विमर्श के लिए आठ समानांतर सत्रों के विषय थे—

(1) भाषा और लोकसंस्कृति के अंत: संबंध
(2) प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी सहित भारतीय भाषाओं का विकास
(3) हिंदी शिक्षण में भारतीय संस्कृति
(4) हिंदी साहित्य में संस्कृति चिंतन
(5) फिल्मों के माध्यमों से भारतीय संस्कृति का संरक्षण
(6) संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति
(7) प्रवासी संसार: भाषा और संस्कृति
(8) हिंदी बाल साहित्य और भारतीय संस्कृति।

भारत सरकार के विदेश राज्यमंत्री श्री एम.जे. अकबर की अध्यक्षता में 'प्रौद्योगिकी का भविष्य' विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। 16 अगस्त, 2018 को भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन के कारण सम्मेलन में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किए गए। उद्घाटन सत्र के पश्चात् अटलजी के निमित्त श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया जिसमें देश-विदेश के विद्वानों ने अटलजी के प्रति श्रद्धाजंलि अर्पित की। इस सत्र में मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा, "मैं अपने और अपने देश की ओर से अपने करीबी दोस्त और सहयोगी के लिए शोक व्यक्त करता हूँ। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है। अटलजी दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंधों को अटल बंधन में बाँधने के लिए प्रयत्नशील रहे।" ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के शुभंकर में भारत और मॉरीशस के राष्ट्रीय पक्षी मोर और डोडो एक साथ हिंद महासागर की लहरों में खड़े हैं। दोनों पक्षी ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन की संख्या 11 को हिंदी में दरशाते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक चिह्न में मोर और डोडो का एक साथ खड़े होना भारत और मॉरीशस के प्रगाढ़ मैत्री संबंधों को स्पष्ट करने के साथ मॉरीशस में हिंदी की विकास यात्रा को भी दरशाना है। सम्मेलन के समापन समारोह के मुख्य अतिथि मॉरीशस के कार्यवाहक राष्ट्रपति परमशिवम् पिल्लै वायापुरी ने कहा कि, "हिंदी मोर के समान एक बहुत सुंदर और पवित्र भाषा है और वह अपने पंखों को विश्व के कोने-कोने में फैला रही है। मॉरीशस में हिंदी डोडो की तरह समाप्त नहीं होगी।"

विशिष्ट अतिथि के रूप में मॉरीशस गणराज्य के मार्गदर्शक मंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा कि "हिंदी को अंतरराष्ट्रीय मंच पर पहचान दिलाने के लिए तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु

मॉरीशस की सरकार और मॉरीशसवासी अपना पूरा सहयोग देंगे।" ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में 18 भारतीय एवं 18 विदेश हिंदी सेवियों को 'विश्व हिंदी सम्मान' से अलंकृत किया गया। विश्व हिंदी सम्मेलन के इतिहास में पहली बार हिंदी सेवी संस्थापकों को भी विश्व हिंदी सम्मान से विभूषित किया गया। दो हिंदी सेवियों को 'विशिष्ट हिंदी सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक चिह्न के विजेता रुचित यादव को भी पुरस्कृत किया गया। इस सम्मेलन में मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ द्वारा दो डाक टिकट जारी किए। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन में 20 देशों के दो हजार से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फीजी में आयोजित करने का प्रस्ताव पारित हुआ।

विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन ने हिंदी प्रेमियों को परस्पर सवांद के अवसर उपलब्ध कराए हैं। अभी तक आयोजित हुए विश्व हिंदी सम्मेलन इस बात की पुष्टि करते हैं कि ये आयोजन हिंदी के पक्ष में एक वातावरण सृजित करते हैं। इन आयोजनों में हुए विचार-विमर्श में हिंदी भाषा की ऐतिहासिक उपलब्धियों, वर्तमान संदर्भ तथा भविष्य की संभावनाएँ दिखाई देती हैं, जो इन सम्मेलनों की महत्त्वपूर्ण वैचारिक उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं। इन सम्मेलनों के आयोजनों ने यह भी पुष्ट किया है कि हिंदी एक असाधारण सामर्थ्य वाली भाषा है और वह संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के गौरव की ही अधिकारिणी नहीं, वरन् संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित होने की भी अधिकारिणी है। अभी तक के विश्व हिंदी सम्मेलन अधिकांशत: ऐसे देशों में आयोजित किए गए हैं, जहाँ भारतीय समुदाय के लोग बड़ी संख्या में हैं। इन देशों से भारत के पुराने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा अन्य बहुपक्षीय राजनयिक संबंध रहे हैं। इस दृष्टि से ये सम्मेलन आनेवाले समय में इन देशों से भारत के सांस्कृतिक संबंधों को और सुदृढ़ करेंगे। हिंदी के कारण भारत के साथ अच्छे संबंधों का उल्लेख पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते हुए मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने किया था, "हम मॉरीशसवासी हिंदी की महानता को भली प्रकार पहचानते हैं। यही एक भाषा है, जिसे लेकर पिछले 150 वर्षों में हमने अपने बाप-दादा की परंपरा को जिंदा रखा है। आप जानते हैं कि लगभग 150 वर्षों पहले हमारे बाप-दादा भारत से मजदूरों के रूप मॉरीशस आए थे। आज इन्हीं मजदूरों की मेहनत से हमारा देश एक प्रगतिशील देश बन सका है। हमारे देश में भारत के वंशजों के अलावा और कई लोग भी बसने आए। हम सभी ने मिलकर एक मिली-जुली सभ्यता और एक मिले-जुले समाज की रचना की है। हमारे छोटे से देश में फ्रेंच, इंग्लिश, उर्दू, तेलुगु, चीनी, तमिल, मराठी और गुजराती भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन हिंदी सबसे अधिक लोग समझते-बोलते हैं।" इस भाषण से स्पष्ट पता चलता है कि भारत में जो स्थिति हिंदी भाषा की अन्य भाषाओं के साथ संपर्क एवं सहयोग की है, लगभग वही स्थिति मॉरीशस में हिंदी की अन्य भाषाओं के साथ संपर्क एवं सहयोग की है। हिंदी भाषा के महत्त्व को बताते हुए प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम ने भारत और मॉरीशस के संयुक्त प्रयासों की भी सराहना की, "हिंदी के ही द्वारा भारत की सभ्यता को समझा और परखा जा सकता है। आप सबको यह जानकर खुशी होगी कि हमारे यहाँ भारत सरकार के सहयोग से बन रहे महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट में भी भारतीय चिंतन और दर्शन और साथ-साथ हिंदी का विकास होगा। इस महत्त्वपूर्ण संस्था का शिलान्यास मॉरीशस की परम मित्र श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। हमें आशा है कि महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट न केवल मॉरीशस का एक बहुत मूल्यवान् संस्थान बन सकेगा, बल्कि पूरे

भारतीय महासागर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का एक महान् केंद्र भी बन सकेगा, जहाँ आस-पास के लेखक, विचारक आएँगे। इस प्रकार मॉरीशस को उस भाषा और संस्कृति की सेवा करने का एक और अवसर प्राप्त होगा, जिसने उसे पिछले 150 वर्षों में दुनिया में आगे बढ़ने की शक्ति दी है।" चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन के बाद इन सम्मेलनों के आयोजन में निरंतरता आई है। कोरोना के कारण बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन समय से आयोजित नहीं किया जा सका। अब बाहरवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आगामी 15 से 17 फरवरी, 2023 तक फिजी में आयोजित किया जाएगा। विगत ग्यारह सम्मेलनों में हिंदी प्रेमी भारतीय और विदेशी विद्वानों द्वारा हिंदी के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श हुआ और कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। उनमें कुछ क्रियान्वित हो गए और कुछ अभी प्रक्रिया में हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के फलस्वरूप ही मॉरीशस की विधानसभा में एक अधिनियम पारित कर विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई। "सन् 1976 में मॉरीशस में आयोजित दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में इसका नामकरण किया गया और कहा गया कि यह संस्था 'विश्व हिंदी सचिवालय' के नाम से काम करेगी। भारत के साथ मिलकर सम्मिलित रूप से हिंदी के विश्वरूप को संगठित करना मॉरीशस के लिए गौरव की बात थी। 'विश्व हिंदी सचिवालय' में भारत और मॉरीशस की साझेदारी का एक अधिनियम मॉरीशस की संसद ने पारित किया सन् 2007 से यह संस्था कार्यरत है।" भारत और मॉरीशस के बीच द्विपक्षीय समझौते के तहत स्थापित 'विश्व हिंदी सचिवालय' का उद्देश्य हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रोन्नत करना, संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए एक सशक्त मंच प्रदान करना तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन एवं परिरक्षण करना है। फरवरी 2008 से 'विश्व हिंदी सचिवालय' ने आधिकारक रूप से कार्य करना शुरू किया। 'विश्व हिंदी सचिवालय' के मुख्यालय के निर्माण का आधिकारिक शुभारंभ 2015 में भारत के प्रधानमंत्री श्रीमान नरेंद्र मोदी तथा मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ ने किया और 2016 में भूमि पूजन के साथ औपचारिक रूप से निर्माण कार्य शुरू किया गया। 2018 में मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ के सान्निध्य में भारत के तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंदजी ने विश्व हिंदी सचिवालय का उद्घाटन किया गया। इस संस्था के माध्यम से हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए अथक प्रयत्न जारी हैं, लेकिन अभी तक हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा नहीं बनाया जा सका है।

वर्धा में 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय' की स्थापना भी विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव का मूर्त रूप है।

इन सम्मेलनों के कारण विश्व में हिंदी के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है और अब हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। आशा है, हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने का हिंदी-प्रेमियों का स्वप्न जल्दी ही साकार होगा और हिंदी इस सदी में एक समृद्ध और शक्तिसंपन्न विश्वभाषा के रूप में समादृत होगी। अधिकांश भारतीयों की चिरंतन अभिलाषा यही है कि सभी भारतीय समवेत स्वर में हिंदी का जयगान करते हए कहें—

"हिंदी है पहचान हमारी,
हिंदी है पहचान हमारी,
हिंदी हम सबकी परिभाषा,
हिंदी हम सबकी परिभाषा,
कोटि-कोटि कंठों की भाषा,
कोटि-कोटि कंठों की भाषा,
जनगण की मुखरित अभिलाषा,
जनगण की मुखरित अभिलाषा,
हिंदी है पहचान हमारी…"

□

psagarhv20@gmail.com

रूस में हिंदी

—प्रगति टिपणीस

रूस और भारत के बीच संबंधों की शुरुआत हम भारत के आजाद होने के आस-पास यानी बीसवीं सदी के मध्य को मानते हैं और लगभग तभी ही वाक्यांश 'रूसी हिंदी भाई-भाई' भी प्रचलित एवं प्रसिद्ध हुआ था। परंतु वास्तव में रूस और रूस के लोगों में भारत के प्रति रुचि पंद्रहवीं सदी से बनी हुई है और मेरा यह कहना किसी भी तरह से गलत नहीं होगा कि यूरोप के लिए भारत का मार्ग सबसे पहले रूसी यात्री अफानासी निकितिन ने खोला था। जी हाँ, वे रूस के प्राचीन नगर त्वेर से सन् 1468 में भारत के लिए रवाना हुए थे और काले सागर, कैस्पियन सागर तथा अरब सागर को पार करते हुए अजरबैजान एवं ईरान के रास्ते भारत पहुँचे थे। वास्कोडिगामा तो अफानासी निकितिन के 25 साल बाद भारत पहुँचे थे, परंतु इतिहास में उनका ही नाम भारत का मार्ग खोजनेवाले पहले यूरोपीय यात्री के रूप में दर्ज है। बात दरअसल यह है कि अफानासी निकितिन सन् 1468 से 1474 तक भारत में रहने के बाद जब घर लौट रहे थे तो वे रूस तो पहुँच गए थे, परंतु अपने शहर त्वेर पहुँचने से पहले उनकी मृत्यु हो गई थी। भारत के बारे में उनकी डायरियाँ और संस्मरण सुरक्षित रह गए थे और बाद में उनके अध्ययन से ही हमें भारत के उनके अनुभवों का पता चलता है। यह यात्रा रूस में 'तीन समुद्र पार की यात्रा' के नाम से जानी जाती है।

वहीं रूस में भारतीय साहित्य के अध्यापन और अनुवाद का काम भी जोरों पर था। कालिदास रूसी में अनूदित होनेवाले पहले भारतीय कवि हैं। उनकी 'नल और दमयंती' का अनुवाद ही वसीली झुकोवस्की (1783-1852) ने सबसे पहले किया था। कालिदास की 'शकुंतला' का अनुवाद कंस्तांतिन बालमंत (1867-1942) ने किया और ईगर सिविरयानिन (1887-1941) ने कालिदास की कई अन्य रचनाओं का अनुवाद किया। इस तरह हम देखते हैं कि अठारहवीं शताब्दी में रूस में भारत के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा था और रूसवासी प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शन, इतिहास और कला में गहरी रुचि ले रहे थे।

उन्नीसवीं सदी के अंत में कुछ रूसी लेखकों विगोरनित्स्की (1897), गिल्फेर्टिंग (1899) और पागेल्लो (1902) ने हिंदुस्तानी भाषा पर आरंभिक पुस्तकें लिखीं। ये व्यावहारिक पाठ्य-पुस्तकें थीं और इनमें भाषा के साधारण नियम दिए गए थे।

सन् 1917 की क्रांति के बाद रूस में आधुनिक भारतीय भाषाओं का आधिकारिक

---

* 'हिंदुस्तानी समाज, रूस' की सांस्कृतिक सचिव।

तौर पर गंभीरता से अध्ययन शुरू हुआ। रूस में सबसे पहले उर्दू (हिंदुस्तानी) का अध्ययन शुरू हुआ। अलेक्सेय बरात्रिकफ (1890-1952) ने लेनिनग्राद (सेंट पीटर्सबर्ग) विश्वविद्यालय में हिंदुस्तानी का अध्यापन शुरू किया था। उन्हें रूस में भारतीय भाषाओं के अध्ययन और अध्यापन की परंपरा का संस्थापक कहा जा सकता है। सन् 1934 में उन्होंने हिंदुस्तानी (हिंदी व उर्दू) के व्याकरण की पहली पाठ्य-पुस्तक तैयार की। उन्होंने ही सबसे पहले रूस में हिंदी रूसी और रूसी-हिंदी शब्दकोशों के निर्माण का काम शुरू किया था। इसके अलावा उन्होंने लल्लूजी लाल की रचना 'प्रेम सागर' का अध्ययन और विश्लेषण किया था। उन्होंने तुलसी के 'रामचरित मानस' का रूसी भाषा में पहला अनुवाद किया, जिसमें उन्हें दस साल का समय लगा था। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए कामों को विक्तर वालिन, वसीली विस्क्रोनी, सिंपोन रुदिन, गिओर्गी जोग्राफ और तत्याना कतेनिना ने विस्तार दिया।

वसीली बिस्क्रोनी (1908-1978) द्वारा संकलित 'हिंदी-रूसी शब्दकोश' आज भी सर्वश्रेष्ठ शब्दकोश माना जाता है।

विक्तर बालिन हिंदी साहित्य के इतिहास और मैथिली, अवधी तथा ब्रज भाषाओ के साहित्य के गहन अध्ययन के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने रूसी छात्रों के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास का विस्तृत पाठ्यक्रम भी तैयार किया था। प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों को अनुवाद के जरिए रूसी पाठकों तक पहुँचानेवाले वही पहले व्यक्ति थे। उन्होंने 'निर्मला', 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' का रूसी भाषा में अनुवाद किया।

प्रो. सिंपोन रूदिन (1929-1978) आधुनिक भारतीय भाषाओं के ध्वनि-विज्ञान के क्षेत्र में किए अपने गहरे विश्लेषण के लिए जाने जाते हैं। भारतीय भाषाओं की ध्वनियों की अपनी उत्तम पकड़ के चलते वे हिंदी, बाँग्ला और मराठी जैसी भाषाएँ बड़ी आसानी से बोल लेते थे। गिओर्गी जोग्राफ ने हिंदी और उर्दू भाषाओं के इतिहास और भारतीय भाषाओं के आधुनिक रूप का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा उत्तर भारत के मुहावरों, लोकोक्तियों और भारतीय लोककथाओं पर काम कर व्यावहारिक भाषा में पैठ बनानी शुरू की।

मॉस्को में भारतीय भाषाओं का अध्ययन और अध्यापन दूसरे विश्व-युद्ध के बाद शुरू हुआ। छठे दशक में मॉस्को विश्वविद्यालय में पूर्वी भाषा अध्ययन संस्थान की स्थापना की गई और उसमें 'हिंदुस्तानी' भाषा पढ़ाई जाने लगी। सन् 1957 में भारत से डॉ. रामकुमार वर्मा को हिंदुस्तानी भाषा के कोर्स तैयार करने के लिए बुलाया गया था। उन्होंने दो-ढाई साल रूस में काम किया। लगभग उसी समय मॉस्को के 'अंतरराष्ट्रीय संबंध संस्थान' में भी 'पूर्वी भाषा अध्ययन केंद्र' की स्थापना की गई और वहाँ भी हिंदुस्तानी भाषा पढ़ाई जाने लगी। मॉस्को के 'पूर्वी देश अध्ययन संस्थान' नामक इंस्टीट्यूट में भी उन्हीं दिनों भारतीय भाषाओं और साहित्य का सक्रिय रूप से अध्ययन शुरू किया गया। येगेनी चेलिशेफ, व्लदीमिर चेर्निशोफ, तत्याना पेलिङ्गारिकवा और व्लदीमिर लिपिरोव्स्की हिंदी के क्षेत्र में इस इंस्टीट्यूट के प्रमुख विद्वान् माने जाते हैं।

सोवियत संघ के साथ भारत के राजनयिक संबंध आजादी के पहले यानी 13 अप्रैल, 1947 को स्थापित हो गए थे। जून 1955 में भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को सोवियत संघ यात्रा और फिर उसी साल नवंबर में रूसी प्रधानमंत्री श्री बुल्गानिन और साम्यवादी दल के प्रमुख सचिव श्री ख्रुश्चेव की भारत-यात्रा और उनके सम्मान में कलकत्ता में विश्व इतिहास में हुई अभूतपूर्व रैली के बाद दोनों देशों के संबंधों में

प्रगाढ़ता आई और विभिन्न क्षेत्रों में आदान-प्रदान होने लगे। भारत से लेखन और रेडियो प्रसारण के क्षेत्र से बहुत जानकार रूस आने लगे। उस समय हिंदी का आधिकारिक रूप से प्रचार-प्रसार शुरू हुआ और उसके अध्ययन अध्यापन का काम भी।

वर्तमान में मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के एशिया और अफ्रीका संस्थान, मॉस्को अंतरराष्ट्रीय संबंध संस्थान, रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय, उच्चतर अर्थशास्त्र विद्यालय, सेंट पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय, कजान राजकीय विश्वविद्यालय और व्लादिवस्तोक विश्विद्यालय में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जाती है। इसके अलावा सेंट पीटर्सबर्ग के एक स्कूल में भी हिंदी दूसरी और तीसरी भाषा की तरह पढ़ाई जाती है।

जैसा कि मैंने पहले बताया 1955 ई. से संबंधों ने अपना रंग गाढ़ा करना शुरू किया और 1947 ई. में भीष्म साहनी, सोमसुंदरम, समित्तर सिंह, राधे दुबे, डॉ. मदनलाल 'मधु' के अलावा कई भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञ सोवियत संघ आए और उन्होंने प्रगति प्रकाशन गृह या मॉस्को रेडियो में काम करना शुरू किया। एक समय था 'मॉस्को रेडियो' से भारत की 12 भाषाओं में प्रसारण होता था और रूसी साहित्य का उन सब भाषाओं में अनुवाद। रेडियो और पत्रिकाओं के माध्यम से हमें सोवियत संघ की नीतियों और कामों के बारे में पता चला। कुछ नाम तो भारतीय पाठकों के बीच बहुत प्रचलित रहे, जिनमें से भीष्म साहनी, मदन लाल मधु, योगेंद्र नागपाल, श्याम दुबे, मुनीश सक्सेना आदि मेरे दिमाग में आ रहे हैं। इन लोगों को श्रेय न केवल रूसी साहित्य से भारतीय पाठकों का परिचय कराने को जाता है, बल्कि शुद्ध, सरल, सरस हिंदी में अनुवाद करने को भी। भाषा के उचित प्रयोग पर तब बहुत जोर दिया जाता था। हमारे देश की कई पीढ़ियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने रूसी साहित्य तथा रूसी विज्ञान साहित्य खूब पढ़ा है और उससे लाभान्वित भी हुई हैं। भारत की 12 भाषाओं हिंदी, बंगाली, असमिया, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलगु और उर्दू के विशेषज्ञ रूस आए थे। नतीजतन इन भाषाओं की पढ़ाई भी यहाँ के उच्च संस्थानों में होने लगी।

अब मैं संक्षेप में रूस के कुछ उच्च शिक्षा संस्थानों में हिंदी की अवस्था के बारे में बताती हूँ।

मॉस्को के एशिया और अफ्रीका संस्थान में भारतीय भाषाशास्त्र विभाग की स्थापना 1956 ई. में हुई। उसके पहले हिंदी का अध्यापन प्राच्य विभाग के तहत होता था। 1949 ई. में छात्रों और अध्यापकों का पहला समूह हिंदी को उसके परिवेश और व्यवहार में सीखने के लिए लखनऊ गया था और उसके बाद यह सिलसिला सोवियत यूनियन के विघटन तक ऐसे ही चलता रहा। यहाँ से छात्र केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा भी हिंदी सीखने के लिए जाते हैं। हालाँकि यह संख्या निरंतर घटती जा रही है।

1949 ई. में मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय से गए छात्रों के पहले समूह में प्रोफेसर बरीस जखारिन भी थे, जिनके संस्कृत और हिंदी के लिए किए गए अभूतपूर्व कार्यों की सराहना पिछले वर्ष (2021) 'संस्कृत दिवस' के उपलक्ष्य पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने की थी और इस साल उन्हें भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा 'विशिष्ट सम्मान' से नवाजा गया। भारतीय संस्कृति और भाषा के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करने के लिए तत्पना शाऊम्यान को इस वर्ष 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया है।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का रूस में व्यापक पैमाने पर अनुवाद हुआ है और उसे यहाँ बहुत सराहा और पढ़ा जाता है। महाभारत, रामायण, तुलसीदास, कबीर, प्रेमचंद, अज्ञेय, बच्चन, कृष्णचंद्र, भीष्म साहनी, रेणु और कई साहित्यकारों की कृतियों का रूसी में अनुवाद

हुआ है। वर्तमान भारतीय साहित्य बहुत कम रूसी पाठकों तक पहुँच पा रहा है, क्योंकि भारतीय भाषाओं की माँग दिन-बदिन घटती जा रही है और उसके विशेषज्ञों की संख्या भी।

मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाशास्त्र विभाग के अलावा इतिहास, अर्थशास्त्र और समाजविज्ञान विभागों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इन विभागों के छात्र अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्रों में हिंदी में काम करने की अपेक्षा रखते हैं, काम भले भारत में हो या रूस में।

भारतीय भाषाशास्त्र विभाग में हिंदी भाषा के साथ-साथ प्राचीन और आधुनिक भारतीय भाषा ज्ञान, भारतीय साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य, उर्दू साहित्य की शिक्षा भी दी जाती है। विभाग के अध्यापक और प्रोफेसर बहुत अनुभवी हैं और अपने क्षेत्रों में विश्व ख्याति रखते हैं।

सेंट पीटर्सबर्ग विश्विद्यालय में भारतीय भाषाओं और साहित्य का अध्यापन 1836 ई. में शुरू हुआ, तब प्रोफेसर लेंस को संस्कृत के बारे में व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। 19वीं सदी में शुरू हुआ काम आज तक निरंतर हो रहा है। 1990 ई. में सोवियत संघ के विघटन के बाद से वहाँ पर इंडो आर्यन फिलोलोजी का विभाग कार्यरत है, जिसमें आर्यन भाषाओं के अलावा द्रविड़ भाषाओं का भी गहन अध्ययन और शोध होता है।

'मॉस्को रेडियो' को, जो बाद में 'रेडियो रूस' हुआ और फिर 'रेडियो स्पुतनिक', अंततः 2016 में पूरी तरह से बंद कर दिया और हिंदी में काम के एक और अवसर पर गाज गिर गई। उस समय रेडियो में काम कर रहे लोगों ने रूस और भारत दोनों देशों की सरकारों से गुहार लगाई थी कि रेडियो प्रसारण को जारी रखा जाए, लेकिन उनकी फरियादें रंग नहीं ला पाई।

□

pragatitipnis@gmail.com

दांपत्य जीवन चित्त की शांति का एक प्रधान साधन है।

—प्रेमचंद

दांपत्य जीवन कोमलता एवं प्रगाढ़ प्रेम से परिपूर्ण है।

—डॉ. राधाकृष्णन

दुःख के सम्मुख मुसकराने से दुःख ही सुख लगने लगता है।

—गोपालदास 'नीरज'

फिजी में 'हिंदी बात'

—पद्मजा

दक्षिणी प्रशांत में एक छोटा सा अतिसुंदर एवं विशिष्ट देश है फिजी, जहाँ वर्तमान में अनुमानित रूप से लगभग 3.5 लाख भारतवंशी बसते हैं। फिजी में इनका प्रथम आगमन मई 1879 ई. में गिरमिटिया (अंग्रेजो के द्वारा एक एग्रीमेंट के तहत गन्ने की खेती के लिए, भारत से ले जाए गए श्रमिक, जो एग्रीमेंट को गिरमिट कहते थे और स्वयं को गिरमिटिया) के रूप में हुआ। यह गिरमिटिया श्रमिक अधिकतर उत्तर प्रदेश के अयोध्या, प्रतापगढ़, आजमगढ़, बस्ती, गोंडा, बहराइच, जौनपुर, बनारस, लखनऊ, कानपुर आदि जिलों से थे, जिनकी बोली मुख्य रूप से अवधी थी। वह अपने साथ रामचरितमानस, हनुमान चालीसा, कबीर भजनावली, आल्हा आदि ले गए थे। इन ग्रंथों ने गिरमिटिया श्रमिकों की यातनापूर्ण जिंदगी में संजीवनी का काम किया और उनकी संस्कृति एवं संस्कारों को बचाकर रखा।

भारत के बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान आदि अनेक अन्य प्रांतों के लोग भी उन भारतवंशियों में शामिल थे, यद्यपि उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम थी। कालांतर में पंजाब एवं गुजरात से भी कुछ लोग कृषक एवं व्यवसायी के रूप में यहाँ आ बसे। इन सभी अलग-अलग प्रांतों से आए भारतवंशियों की अपनी अलग-अलग भाषाएँ और बोलियाँ थीं, किंतु फिजी आने पर इन सभी के बीच पारस्परिक संप्रेषण के लिए बोलचालवाली हिंदी लोकप्रिय हो गई। हिंदी ने फिजी के भारतवंशियों को धर्म, जाति, वर्ण, समुदाय, प्रांतीयता आदि की सीमाओं में बँधने नहीं दिया और उनकी एकता का अत्यंत सशक्त आधार बनी।

फिजी के गिरमिटिया श्रमिकों ने अपनी यातनापूर्ण जिंदगी का दंश झेलते हुए भी, अपनी अगली पीढ़ी की शिक्षा के लिए स्कूलों की व्यवस्था की, क्योंकि उन्होंने अशिक्षा के कष्ट को अनुभव किया था।

स्कूलों की व्यवस्था भी 1920 ई. में गिरमिट प्रथा के उन्मूलन के बाद ही संभव हो सकी थी। उनकी स्कूली किताबों में गिरमिट काल के बारे में कोई अध्याय नहीं मिलता। शायद कोई भी भुक्तभोगी इतिहास की इस कारुणिक गाथा को दुःस्वप्न की भाँति विस्मृत कर देना चाहेगा। उनकी नई पीढ़ियाँ अपने परिश्रम के बलबूते अब काफी आगे बढ़ चुकी हैं, किंतु उनकी पुरानी टीस यदा-कदा चुपके से झलक जाती है।

समय के साथ फिजी में हिंदी में परिस्थितिजन्य

---

* भारतीय उच्चायोग फीजी के पूर्व उच्चायुक्त।

बदलाव आए और बोलचाल के माध्यम के रूप में हिंदी की एक अलग बोली ही तैयार हो गई। इस प्रकार वहाँ हिंदी की दो धाराएँ प्रवहमान हुई। एक खड़ी बोली या मानक हिंदी और दूसरी बोलचाल की हिंदी जो वाक्य-विन्यास में मानक हिंदी से साम्य रखते हुए भी अपनी शब्द-संपदा में उससे नितांत भिन्न है और अत्यंत रोचक एवं अद्भुत भी। फिजी के भारतवंशी इसे 'फिजी बात' (भाषा), हिंदुस्तानी या फिजी हिंदी भी कहते हैं। प्रस्तुत आलेख में 'फिजी हिंदी' ही चर्चा का मुख्य विषय है।

बोलचाल के संप्रेषण माध्यम के रूप में विकसित फिजी हिंदी में उन सभी भाषाओं के कुछ-कुछ शब्द शामिल हो गए, जिन्हें भारत के विभिन्न भाषा-भाषी गिरमिटिए अपने साथ ले गए थे। दक्षिण भारत से गए लोगों ने भी हिंदी सीखी और इसी क्रम में तमिल एवं तेलुगु भाषा के शब्द भी उसमें जोड़े।

कृषक एवं व्यवसायी के रूप में आनेवाले पंजाब एवं गुजरात के लोगों ने भी अपनी भाषा के शब्दों से फिजी हिंदी को समृद्ध किया। उन सभी ने घर से बाहर की बोलचाल की भाषा के रूप में फिजी हिंदी को अपना लिया था, भले ही अपने घरों में वह अपनी मातृभाषा बोलते रहे हों। अब तो उनकी भी कई पीढ़ियाँ गुजर गई हैं और समय के साथ 'फिजी हिंदी' को उनके घरों में प्रवेश मिल गया है।

'फिजी हिंदी' में अंग्रेजी के बहुत से शब्द ऐसे शामिल हो गए हैं, जैसे मूल भाषा के ही हों—मिनिस्टा (मिनिस्टर), टीचा (टीचर), बेंडिज (बैंडेज), टेक्सी (टैक्सी), मास्टा (मास्टर), कमिश्ना (कमिश्नर), रेपरी (रेफरी), सट (शर्ट), बिजनिस (बिजनेस), राऊड (रोड), ओबासीस (ओवरसीज), फराय (फ्राई), नेस (नर्स), टउन (टाउन) और ऐसे ही न जाने कितने शब्द।

ऐसी चीजें, जो विशेषतः फिजी की ही हैं, उन्हें ईतोकेई (फिजी के मूल निवासियों की भाषा) से यथावत् ले लिया गया है, जैसे—नगोना, कावा (एक तरह का पेय), बुला (नमस्ते), मोदे (विदा), बिलो (नारियल का कटोरीनुमा पात्र), सुलु (ड्रेस) आदि।

फिजी के मूल निवासियों (इनके लिए उनकी भाषा में काईविति शब्द का प्रयोग होता है) ने हिंदुस्तानी भोजन (दाल, रोटी, पूरी, पुलाव आदि) के साथ-साथ उनकी भाषा भी सीख ली है। दुकानों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में उन्हें फिजी हिंदी में बोलते देखा जा सकता है। शॉपिंग मॉल में काईवीति सेल्स गर्ल्स अपनी सुंदर मुसकान के साथ यह पूछकर मुझे आश्चर्यचकित कर देती थी—"बहिनी, बास्केट लागी का?" "तुम्मे कउन रकम का बुला सट देखाई?" भारतवंशी बहुल इलाके में रहनेवाले यूरोपियन लोग भी काम चलाऊ हिंदी सीख लेते हैं।

फिजी में फीजियन और अंग्रेजी के साथ हिंदी को भी सरकारी भाषा का दर्जा मिला हुआ है। उनका संविधान हिंदी में भी लिखा गया है। फिजी के राष्ट्रगान का हिंदी रूपांतरण भी तैयार किया गया है। यद्यपि सरकारी भाषा के रूप में मानक हिंदी प्रयुक्त होती है, किंतु संचार माध्यमों—टीवी, रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं में फिजी हिंदी का पर्याप्त प्रयोग होता है। हिंदी लिखने के लिए देवनागरी के साथ-साथ रोमन लिपि का भी प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि फिजी हिंदी का आधार हिंदी की खड़ी बोली ही है, किंतु इसका स्वरूप अवधीमय है। इसमें अपभ्रंश शब्द बहुत बड़ी संख्या में हैं। अपने वर्तमान स्वरूप में आते-आते इसका व्याकरण भी कुछ भिन्न हो गया है। नुक्तावाले शब्द इसमें देखने

को नहीं मिलते। 'श' को 'स' और 'व' को 'ब' बोला जाता है और लिखा भी जाता है।

फिजी हिंदी में लिंगभेद भी समाप्त हो गया है। तू (तू/ तुम), तोर/तोकर (तुम्हारा/ तुम्हारी), ऊ (वह), ओ (वे), ऊकर (उसका), ओकर (उनका) हम्मे (मुझे), तुम्मे (तुम्हें) आदि शब्दों का प्रयोग होता है। हिंदी के ने, का, की, के, रा, री, रे, में, पर आदि के स्थान पर केवल क या म जोड़ देने से काम बन जाता है, जैसे—जायक परी (जाना पड़ेगा), देखेक चाही (देखना चाहिए), लेवेक परी (लेना पड़ेगा), लईक जाय (लेकर जाते), तलइयाक लगे (तालाब के पास), ओढ़नीक (ओढ़नी का), दूनोक (दोनों को), धीरेस (धीरे से), मुड़वाक बले (सिर के बल), नहायधोयक (नहा धोकर), अच्छास (अच्छे से), बक्साम (बक्से में) आदि।

क्रिया के प्रयोग में भी भिन्नता है, यथा—हम आता, हम आवत हई, ओ आवत हई (वर्तमान), हम काल आइस (भूतकाल), हम बिहान आइस (भविष्य काल)। लिंग के अनुसार क्रिया अलग-अलग न होकर वही प्रयुक्त होती है। बहुवचन के शब्दों की गठन भी कुछ भिन्न है, जैसे—मनई (एकवचन), मनईन/ मनई लोग (बहुवचन), लरका (एकवचन), लरकन (बहुवचन) आदि। लड़का, लड़की, बहू, बेटा आदि के आगे छोटा या बड़ा ना लगाकर छोटकना, बड़कना, छुटकी, बड़की आदि का प्रयोग होता है।

फिजी की राजधानी सूवा में रहनेवाली हिंदी की लेखिका श्रीमती उत्तरा गुरुदयाल ने एक बार बातचीत में मुझे बताया कि वह 5 देवरानी-जेठानी हैं और उनके ससुराल में उन्हें क्रमशः बड़की, मँझली, सँझली, छुटकी और ननकी कहकर संबोधित किया जाता है। रोचक बात यह है कि उत्तर भारत के अवध क्षेत्र के परिवारों में भी इस तरह के संबोधन काफी प्रचलन में रहे। हिंदी के आधे अक्षरवाले शब्दों में आधेवाले अक्षर को पूरा ही बोलते हैं जैसे धरम (धर्म), करम (कर्म), खरचा (खर्च)। यह प्रयोग भारत की हिंदी बोलियों में बहुतायत से होता है। उत्तर भारत के पूर्वांचल की बोलियों की तरह फिजी हिंदी में भी 'औ' या 'ऐ' की मात्रा की जगह 'उ' और 'ई' का प्रयोग होता है—अउरत (औरत), भउजी (भौजी), कउन (कौन), मउका मौका। वर्तमान में फिजी हिंदी में साहित्यिक लेखन कार्य भी हो रहा है। यहाँ पर फिजी के प्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर सुब्रमणि, जो वहाँ के साउथ पेसिफिक विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर रहे हैं, के द्वारा लिखित दो उपन्यासों का उल्लेख किए बगैर फिजी हिंदी की चर्चा अधूरी ही रहेगी। यह उपन्यास हैं—(1) डउका पुराण, तथा (2) फिजी माँ।

फिजी हिंदी में साहित्यिक लेखन का प्रथम एवं अनूठा प्रयास है—'डउका पुराण।' दूसरे उपन्यास 'फिजी माँ' को लिखने तक उनकी लेखनी और भी निखर गई है। फिजी हिंदी में लिखे इन दोनों उपन्यासों में वहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक व सांस्कृतिक मुद्दे बखूबी अभिव्यक्त हुए हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का निरूपण इनमें सहज ढंग से बन पड़ा है। यह मात्र कथाकृति न होकर सामाजिक सांस्कृतिक बदलाव के दस्तावेज बन गए हैं। इन उपन्यासों में पहली बार फिजी में बसे भारतवंशियों की उस प्रामाणिक बोली का प्रयोग किया गया है, जिसे वे अपने रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग करते आए हैं। इनमें समाज के उन पात्रों को भी मुखरता मिली है, जो स्वयं को इसी भाषा बोली में अभिव्यक्त कर पाते हैं। बृहदाकार उपन्यास फिजी माँ से कुछ पंक्तियाँ एक नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं, जिनमें 'रामचरितमानस' और श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' का उल्लेख आता है—

"हम कभी नई सोचा कि आस्ते से पंडित जी के क्लास भी जमे लगी। पंडित जौन रकम हिंदी बोली निकारे, पढ़ाई में जान लाय दे। अउर रमायन के किस्सा, हरदम रामचरितमानस रामचरितमानस रटा करे। हमभी अपने में बोलिस- रामचरितमानस। एक दिन पंडित किस्सा पढ़कर सुनाइस 'उसने कहा था'। हम रातभर मन मा बोली 'तेरी कुड़माई हो गई', 'तेरी कुड़माई हो गई?'…'हाँ हो गई।' 'कब?', 'कल'। देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ शालू।"सोचवाला किस्सा कहाँ से खोज लाए पंडितजी। ऐसन किस्सा पढ़ावा करें तो पंडित सबन के मनजीत ले। अउर हम हिंदी अउर मन लगाकर पढ़ेगा। केतना बात सोचे की है किस्सा मे।" (फिजी माँ, पृष्ठ 392 -393)

फिजी के संचार माध्यमों—टी.वी., रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं में फिजी हिंदी को मानक हिंदी के बराबर ही स्थान मिला हुआ है। रेडियो चैनलों में कथा वार्ता, लोकगीत, समाचार आदि बराबर चलते रहते हैं। 'शांतिदूत' नामक पाक्षिक समाचार-पत्र काफी लंबे समय से प्रकाशित हो रहा था, जिसमें मानक हिंदी व फिजी हिंदी दोनों में ही लेखन हो रहा था, किंतु व्यावसायिक कारणों से हाल के वर्षों में यह बंद हो गया है।

फिजी के बहुत से भारतवंशी अब अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशों में बस गए हैं और आपसी बोलचाल में उन देशों में भी फिजी हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया के ब्रिसबेन शहर में 'ब्रिसवानी' नाम का रेडियो चैनल फिजी के भारतवंशियों के लिए निरंतर कार्यक्रम प्रसारित करता रहता है।

फिजी हिंदी बोलनेवाले भारतवंशी अब खड़ी बोली भी अच्छी तरह समझने और बोलने लगे हैं और इसका श्रेय वहाँ के हिंदी प्रेमियों के निजी प्रयासों, विश्वविद्यालय आदि संस्थाओं तथा भारतीय राजदूतावास द्वारा किए जानेवाले प्रयासों को जाता है।

□

padmajamea@gmail.com

पुरुषार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में है।

—महात्मा गांधी

मनुष्य परिस्थिति का दास नहीं, अपितु परिस्थितियाँ मनुष्य की दासी हैं।

—डिजरायली

परोपकार ही धर्म है, परपीड़न ही पाप।

—स्वामी विवेकानंद

फिजी और मॉरीशस : औपनिवेशिक, ऐतिहासिक एवं हिंदी पत्रकारिता से जुड़े संबंध

—डॉ. बीरसेन जागा सिंह

फिजी, मॉरीशस और ट्रिनिडाड जैसे द्वीपों को अंग्रेजों ने मात्र शक्कर पैदा करने के लिए ही ब्रिटिश उपनिवेश बनाया था। परंतु जिस ब्रिटेन को शक्कर की आय और दासों के क्रय-विक्रय ने 'ग्रेट ब्रिटेन' बना दिया था, उसी के राजनेता विलियम विल्बरफोर्स ने ब्रिटिश साम्राज्य में दास-प्रथा उन्मूलन का कानून ब्रिटिश पार्लियामेंट में (1833 में) पारित करवा दिया था। स्वतंत्र दासों ने गन्ने के खेतों में काम करना दास-प्रथा का पर्याय मानकर खेतों से मुख मोड़ लिया था। पुराने दास मजदूरों की कमी की पूर्ति करने के लिए उपनिवेशों में शक्कर पैदा कर रहे अंग्रेज और फ्रेंच गोरे किसानों ने भारत के बाढ़ग्रस्त और अनावृष्टि झेल रहे उन्नीसवीं सदी के पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से मजदूरों को आयात करने के लिए भारत की औपनिवेशिक सरकार से आज्ञा प्राप्त कर ली थी। दास-प्रथा की अपेक्षा लिखा-पढ़ी करके अनुबंध पर हस्ताक्षर करने या अंगूठा लगाने के बाद ही 'अग्रीमेंट' करके शर्तों पर श्रमिकों को उपनिवेशों में भेजा जाने लगा था! मुख सुख या उच्चारण की सुविधा के लिए 'आग्रीमेंट' शब्द 'गिरमिटिया' में परिवर्तित होकर रूढ़ शब्द बन गया। गिरमिटिया प्रथा के नियमों का पालन करते हुए बिहार के छोटा नागपुर इलाके से प्रथम बार के लिए 1834 में 36 पहाड़ी हृष्ट-पुष्ट गिरमिटिए एटलस जहाज द्वारा 2 नवंबर, 1934 को मॉरीशस लाए गये थे! वर्ष 1920 तक मॉरीशस में साढ़े चार लाख गिरमिटिए मॉरीशस लाए गए थे! मॉरीशसीय एक्सपेरीमेंट सफल हो जाने के बाद अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भी भारतीय गिरमिटिए भेजे जाने लगे थे! ब्रिटिश इतिहासकार ह्युग टींकर ने बाद में गिरमिटिया-प्रथा को सच ही 'नव्यदास-प्रथा' की संज्ञा दी थी, क्योंकि गिरमिटियों का किसी भी रूप में स्लेवों से कम शोषण नहीं हुआ था! सभी उपनिवेशों पर शासन करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज गवर्नरों की नियुक्ति की थी! इसी संदर्भ में गिरमिटियों के कुछ शुभचिंतक ऐसे गवर्नर हुए, जिन्होंने ट्रिनिडाड, मॉरीशस और फिजी में भी शासन किया था! उनके कारण आज 2023 में भी विशेष रूप से मॉरीशस और फिजी का इतिहास जुड़ा नजर आता है!

ऐतिहासिक संदर्भ—औपनिवेशिक काल में उपनिवेशों में नियुक्त सभी ब्रिटिश गवर्नरों में तीन गवर्नरों के नाम उनकी विद्वता, कार्यकुशलता

---

* मॉरीशस में पूर्व हिंदी प्राध्यापक।

एवं सहृदयता के कारण इतिहास में अमर हैं। वे हैं—सर आलफ्रेद रिफल्स, सर जॉर्ज ग्रे और सर आर्च्युर हामिल्टन गोर्डोन। सर गोर्डोन पहले-पहल ट्रिनिडाड में नियुक्त हुए थे। वहाँ उन्होंने भारतीय गिरमिटियों के पक्ष में कार्य करना प्रारंभ किया था कि उनका विरोध इस बात को लेकर होना प्रारंभ हुआ कि वे अंग्रेज जमींदारों की अपेक्षा भारतीय गिरमिटियों के पक्ष में और अपने हमवतन अंग्रेजों के विरोध में काम कर रहे थे! संभवत: वे निलंबित होने से मात्र इस कारण बच गए थे, क्योंकि वे ब्रिटेन के एक प्रधानमंत्री के विद्वान् और कार्यकुशल सुपुत्र थे, उनका तबादला मॉरीशस में 1971 में हुआ था। उन्होंने 1974 तक मॉरीशस में शासन किया था। उनकी विद्वता, कार्यकुशलता एवं सहृदयता से प्रभावित होकर ही भारतीय गिरमिटियों के उद्धार के लिए एक ऐसे मसीहे का 'उदय' हुआ था, जिनका नाम आदोल्फ दे प्लेवित्ज था। बाद के वर्षों में दे प्लेवित्ज भी मॉरीशस के फ्रेंचगोरे जमींदारों द्वारा गिरमिटियों के पक्षधर होने के कारण सताए जाते रहने के फलस्वरूप गवर्नर गोर्डोन का अनुसरण करते हुए फिजी चले गए थे। गोर्डोन और दे प्लेवित्ज द्वारा मॉरीशस के हमारे पूर्वज गिरमिटियों पर किए गए प्राणदायक उपकारों को आज 2023 में हम मॉरीशसीय नागरिक भुलाए नहीं भूल सकते हैं! यह उस समय की बात है जब मॉरीशस नामक उपनिवेश में अंग्रेजी शासन की छत्रच्छाया में फ्रेंच गोरे धनकुबेर भारतीयों के साथ मनमाने ढंग से जो जी में आता था, करते थे··· दासों से भी बदतर तरीकों से। शासन, प्रशासन, न्याय विभाग, पुलिस विभाग, शक्कर उद्योग में खेतों और कारखानों में, शिक्षा और स्वास्थ्य विभागों में··· मॉरीशसीय जीवन के हर क्षेत्र में मात्र फ्रेंच गोरे जमींदारों और उनके वंशजों की इच्छाएँ कानून बनकर देश भर में प्रतिबिंबित एवं कार्यान्वित होती थीं! सभी मौसेरे-चचेरे भाइयों के मध्य भारतीय गिरमिटियों को मात्र 'सफेद सोना' उत्पन्न करने वाले निर्जीव कल-पुर्जों से तनिक भी अधिक कहीं भी महत्त्व नहीं था! गवर्नर गोर्डोन से पूर्व मात्र गवर्नर हिग्गिनसन ने 1850-60 में गिरमिटियों के बच्चों को उनकी मातृ-भाषा में शिक्षा दिलाने की बात की थी। और ऊपर से फ्रेंच गोरा होकर भी आदोल्फ दे प्लेवित्ज का अपने ही जमींदार जाति भाइयों का विरोध करते हुए दीन-हीन भारतीय गिरमिटियों का पक्ष लेना··· भला कैसे सहन किया जाता।

आदोल्फ दे प्लेवित्ज के पेटीशन में भारतीय लिपियों में हस्ताक्षर—आदोल्फ दे प्लेवित्ज का जन्म फ्रांस में हुआ था। वे एक फ्रेंच सैनिक थे। बाद में वे इंग्लैंड चले गए थे। मॉरीशस 4 सितंबर, 1858 में आने से पहले वे अंग्रेजों की सेना में थे; मॉरीशस में वे वन विभाग में गार्ड थे; एक वर्ष बाद उन्होंने त्याग-पत्र देकर मॉरीशसीय फ्रेंच गोरे जमींदार मिस्टर फ्रांस्वा रीवे की पुत्री कुमारी रीवे से शादी कर ली थी; अपने श्वसुर का शुगर स्टेट सँभालते हुए उन्होंने भारतीय गिरमिटियों की दुर्दशाएँ अपनी आँखों से देखीं; यथासंभव वे अपने अधीन शुगर स्टेट के गिरमिटिया मजदूरों से मानवोचित व्यवहार करते रहे; उनके बच्चों के लिए नुवेल देकुवेर्त में एक पाठशाला स्टेट के खर्चे पर खुलवाई थी, जिसमें हिंदी और तमिल भी पढ़ाई जाती थी। पास-पड़ोस के स्टेटों के मजदूरों तक जंगल की आग की तरह वह खुशखबरी फैल गई थी। अनेकों श्रमिक उनके स्टेट में काम करने आना चाहते थे; उस समय के कानूनों के आधार पर ऐसा होना संभव नहीं था; दे प्लेवित्ज गवर्नर गोर्डोन के ट्रिनिडाड से मॉरीशस 1871 में आने के बाद उनसे मिले थे; एक अंग्रेज गवर्नर और दूसरे फ्रेंच गोरे जमींदार—इनका ऐतिहासिक मिलन भारतीय वंशज गिरमिटियों के भावी जीवन में

अपूर्व प्रकाश लाने वाला था; उस समय जब शासकों और श्रमिकों के शोषक मालिकों का उद्देश्य एक ही था—"बिना किसी कायदे-कानून के गिरमिटियों को दिन-रात बैलों की तरह श्रम करवाकर अधिक-से-अधिक सफेद सोना अर्थात् शक्कर पैदा करना!" जब गिरमिटियों की खोज-खबर रखनेवाला संसार भर में कहीं भी कोई नहीं था, तब गोरी चमड़ीवाले शोषक वर्ग से उन दो देव-दूतों तुल्य महामानवों को मानो ईश्वर ने मॉरीशस की भूमि पर मिलाया था। गवर्नर गोर्डोन ने परोक्ष रूप से और दे प्लेवित्ज ने प्रत्यक्ष रूप से—दोनों ने मिलकर भारतीय गिरमिटियों के जीवन में रोशनी भरने के लिए पुलिस डिपार्टमेंट पर इन्क्वायरी और रॉयल कमीशन ऑव इन्क्वायरी की माँग की थी; गोर्डोन ने उर्वर जमीन (अवसर) प्रदान की थी और दे प्लेवित्ज ने खेती (कार्यान्वित) की थी। जून 1871 में पुलिस पर इन्क्वायरी की पेटीशन में 9410 अंगूठों की छाप और हिंदी-तमिल में हस्ताक्षर किए गए थे। यही मॉरीशस का पहला दस्तावेज है, जिसपर हिंदी दृष्टिगोचर होती है, गिरमिटियों में साक्षरता का यह अकाट्य प्रमाण आज (2023) में भी मॉरीशस आर्काइव्ज में सुरक्षित है! पुलिस की ज्यादतियों पर कानूनन कुछ हद तक रोक तो लगी थी! वर्ष 1872 में कमिश्नर फ्रेर और विलियम्सन ने 18 महीनों तक मॉरीशस भर में पूछ-ताछ करने के बाद इन्क्वायरी पूरी की थी, जिसका प्रकाशन 1875 में गवर्नर गोर्डोन के 1874 में फिजी में तबादला हो जाने के वर्ष भर बाद हुआ था; कमीशन ऑफ इन्क्वायरी के अधिकतर सुझावों को कार्यान्वित किया गया था! गोर्डोन ही थे जिन्होंने कहा था कि ट्रिनिडाड के गिरमिटियों को जो सैलरी मिलती थी, उसकी आधी भी मॉरीशस के गिरमिटियों को नहीं मिलती! बाद में प्रमाणित हुआ था कि 1834 से 1907 तक उनकी सैलरी में कोई वृद्धि नहीं हुई थी; रॉयल कमीशन के फलस्वरूप एक दिन की अनुपस्थिति के लिए दो दिनों की सैलरी नहीं कटती थी! रविवार के दिन मालिक की कोठी पर मुफ्त में आधे दिन श्रम नहीं करना पड़ता था, समय पर सैलरी मिलने लगी थी, 1967 के दमनकारी लेबर लॉ की जगह 1878 में गिरमिटियों के पक्ष में नया लॉ बना था।

दूसरी ओर आदोल्फ दे प्लेवित्ज के गोरे फ्रेंच होकर भी गिरमिटियों के पक्ष में और गोरे जमींदारों और पुलिस के विरोध में चलाए गए अपने अभियानों के कारण दो बार प्राणघातक हमले 19 और 21 अक्तूबर, 1871 में हुए थे। निष्ठुर जमींदारों द्वारा उन पर थोपे लाँछन, कि वे जर्मन जासूस थे को गवर्नर गोर्डोन ने पहले ही निराधार बताकर अस्वीकार कर दिया था। गवर्नर गोर्डोन के 1874 में फिजी उपनिवेश में तबादले के साथ-साथ दे प्लेवित्ज की पुत्री भी वहाँ चली गई थी। जब दे प्लेवित्ज के संरक्षक गवर्नर गोर्डोन की मॉरीशस में उपस्थिति में ही उनके प्राण संकट में थे, तब उनकी अनुपस्थिति में कुछ भी होने की आशंका के कारण दे प्लेवित्ज भी गोर्डोन और अपनी पुत्री के पास 1874 ही में मॉरीशस को और अपने प्रिय भारतीय गिरमिटियों को सदा के लिए छोड़कर फिजी चले गये थे। अत: ऊपर चर्चित प्रमाणों से स्पष्ट हो ही जाता है कि औपनिवेशिक कारणों के अलावा ऐतिहासिक कारणों से भी मॉरीशस और फिजी के बीच अविस्मरणीय संबंध है, इन तथ्यों को फिजी में सम्पन्न हो रहे 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के शुभ अवसर पर समस्त हिंदी जगत् के समक्ष उजागर करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

मॉरीशस और फिजी में हिंदी पत्रिकाओं के प्रथम जनक—न मॉरीशस में, न फिजी में

और न ही संसार के किसी भी अन्य देश की किसी भी भाषा में किसी पत्रिका का प्रकाशन मात्र पत्रिका-प्रकाशन के कारण हुआ होगा, बल्कि किसी महत उद्देश्य की संप्राप्ति को ध्यान में रखकर आम जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए पत्रिका-प्रकाशन को माध्यम बनाया गया होगा; बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी (तब वे महात्मा नहीं थे!) 1901 में मॉरीशस पधारे थे। उन्होंने गिरमिटियों की दयनीय दशा देखी थी; उनके ही सुझाव मानकर बैरिस्टर मणिलाल मगनलाल डॉक्टर 1907 में मॉरीशस के गिरमिटियों की सेवा करने के लिए पधारे थे। उन्होंने हरसंभव प्रयास करके गिरमिटियों की सेवाएँ की थीं। अपने सुधारवादी विचारों को उन तक पहुँचाने के लिए उन्होंने 'हिंदुस्तानी' साप्ताहिक का हिंदी और अंग्रेजी में 1909 में अपने आगमन के दो वर्ष बाद प्रकाशन प्रारंभ किया था; यही साप्ताहिक मॉरीशस की प्रथम हिंदी पत्रिका है! उन्होंने पत्रिका के शीर्षक के ठीक नीचे बड़े अक्षरों में "Liberty of individuals, Fraternity of men, Equality of races" छापकर मानो वे मॉरीशस के शोषक फ्रेंच गोरे जमींदारों को फ्रांस देश में 1789 में हुई महाक्रांति को स्मरण करवाना चाह रहे थे; उन क्रांतिकारियों के वंशज मॉरीशस में शोषक जो बन गए थे। गांधीजी ने तो 1901 में उत्थान के बीज बो दिए थे—संतानों को शिक्षित करना और राजनीति में भाग लेना—संदेश देकर चले गए थे; मणिलाल डॉक्टर ने उन संदेशों को सींचकर हरे-भरे पौधे बना दिए थे। बाद में उपवन महक उठा था; और आज वर्ष 2023 में 1909 के रोपे उस 'हिंदुस्तानी' नामक कोमल पौधे ने रंग-बिरंगे और सुगंधित पुष्पों का लहलहाता उपवन बन गया है, हिंदी मॉरीशस की अपनी भाषा है, मॉरीशस के हिंदी साहित्य में प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल, जयनारायण राय, सोमदत्त बखोरी, प्रह्लाद रामशरण, अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, बीरसेन जागासिंह आदि रंग-बिरंगे और सुगंधित फूल खिलते रहे हैं; मॉरीशस में हिंदी का बीज बोनेवाले हमारे प्रपितामह बैरिस्टर मणिलाल मगनलाल डॉक्टर ही यश: शरीर से अमर हैं; यह बात दूसरी है कि गांधीजी की आज्ञा मानकर वे भी वर्ष 1912 में फिजी के गिरमिटियों की सेवा करने चले गए थे, जैसे वर्ष 1974 में मॉरीशस से गिरमिटियों के शुभचिंतक गवर्नर गोर्डोन और उद्धारक दे प्लेवित्ज भी फिजी चले गए थे। इन तीनों महापुरुषों का गहरा संबंध पहले मॉरीशस से था और बाद में फिजी से हुआ; मणिलाल डॉक्टर ने तो अपने मॉरीशसीय-प्रवास (1907–1912) से अर्जित अनुभवों को अक्षरश: फिजी में लागू करते हुए अपने फिजी-गमन के चार साल बाद ही 1916 में 'जइंडियन सैटलर' का प्रकाशन अंग्रेजी और हिंदी में प्रारंभ कर दिया था! 'ज इंडियन सैटलर' पत्रिका के शीर्षक के ठीक नीचे मानो मणिलाल डॉक्टर निम्न वाक्य को बड़े अक्षरों में छापते थे—"A medium for the advocacy of the Indian cause in Fiji!" दोनों देशों के शोषित भारत वंशी गिरमिटियों का उद्धार करते हुए मॉरीशस और फिजी में भी उनकी अनेकानेक प्रकार से दुर्गति होती रही; मॉरीशस में हिंदी के जनक तो वे थे ही, यही सच उनके लिए फिजी को लेकर भी कहा जाता है। वर्ष 1920 में फिजी की सरकार ने राजनीतिक कारणों से उन्हें सपरिवार 'देश निकाला' दिया था; तब वहाँ गवर्नर गोर्डोन जैसे न्यायप्रिय शासक नहीं थे, गोर्डोन तो 1874 से 1880 तक फिजी का शासन सँभालने के बाद लंदन लौट गए थे, जहाँ वे राजनीति में नाम कमा कर लॉर्ड गोर्डोन बन गए थे।

□

beersen.jugasing@icloud.com

हिंदी का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ : जर्मन में हिंदी

—डॉ. राम प्रसाद भट्ट

पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं सदी में जहाँ एक ओर डच, फ्रेंच और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत से गिरमिटिया मजदूरों को कृषि कार्य के लिए अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और मॉरीशस ले जा रहे थे, वहीं दूसरी ओर जर्मनी में उन्नसवीं सदी के आठवें दशक में भारतीय एवं पूर्व की अन्य भाषाओं के अध्ययन पर राजनीतिक एवं आर्थिक विचार किया जा रहा था और परिणामस्वरूप 1887 में हिंदुस्तानी और गुजराती भारतीय भाषाओं के साथ ही चीनी, जापानी, फारसी और अरबी इत्यादि भाषाओं का शिक्षण ऑरिएंटल इंस्टीट्यूट में विधिवत् शुरू किया गया। हिंदुस्तानी एवं गुजराती के शिक्षण की शुरुआत बर्लिन ऑरिएंटल इंस्टीट्यूट में 1888 में हुई। आमतौर पर यह माना जाता है कि चूँकि जर्मनी का भारतीय उपमहाद्वीप में प्रत्यक्ष रूप से इंग्लैंड, फ्रांस, नीदरलैंड और पुर्तगाल के जैसे कोई उपनिवेशवादी इरादा नहीं था, अतः जर्मन विद्वानों ने विशेषकर ईसाई मिशनरियों ने अपनी ऊर्जा भारतीय भाषाओं, साहित्य, दर्शनशास्त्र और धर्म संबंधी अध्ययन एवं शोध-कार्यों में लगाई और परिणामस्वरूप जर्मनी भारत-विद्या पर कार्य करनेवाले देशों की अग्रगण्य श्रेणी में आ गया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि जर्मनी में भी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई थी, लेकिन शायद वह भारत जाने में सफल नहीं हुई।

जर्मन विश्वविद्यालयों में प्रथम भारत-विद्यापीठ की स्थापना बॉन विश्वविद्यालय में 1818 में की गई, जिसके पहले प्रोफेसर औगुस्ट विल्हेल्म फॉन श्लेगल थे। प्रोफेसर श्लेगल ने भगवद्गीता का जर्मन अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी पुस्तक 'भारतीयों की भाषा एवं उनकी विद्वत्ता' सभी भारतविदों के लिए मुख्य संदर्भ ग्रंथों में से एक है। उन्नीसवीं सदी की प्रथम अर्ध-शताब्दी में फ्रांत्स बॉप्प ने संस्कृत, जर्मेनिक एवं ईरानी के भाषा वैज्ञानिक संबंध को स्थापित करके भारतीय भाषाओं एवं साहित्य में यूरोपीय विद्वानों की रुचि को और भी प्रगाढ़ किया, जिसके फलस्वरूप इस दिशा में तुलनात्मक अध्ययन को दिशा मिल पाई। आधुनिक भारतीय साहित्य की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान मुख्यतः गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर को 1913 में नोबेल पुरस्कार मिलने के पश्चात् ही गया। इसी के माध्यम से शास्त्रीय भारतीय साहित्य के समानांतर आधुनिक भारतीय साहित्य की जीवंतता, स्पष्टता, निरंतरता एवं परंपरागत साहित्य की सृजनात्मकता के स्वरूप की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान गया। हिंदी (हिंदुस्तानी) का व्यवस्थित एवं अनुशासनात्मक अध्यापन

* भारत-विद्या विभाग, हैंबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी में प्राध्यापक।

लगभग बीसवीं सदी के दूसरे दशक से शुरू हो पाया और 1980 तक आते-आते हिंदी के शिक्षण का विस्तार जर्मनी के सोलह विश्वविद्यालयों में हो गया था।

उल्लेखनीय है कि जर्मनी में भारत-विद्या का इतिहास काफी पुराना है। आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि जर्मन विद्वानों और लेखकों ने भारतीय संस्कृति, साहित्य, धर्म एवं भाषाओं का अध्ययन मुख्य रूप से उन्नीसवीं सदी में शुरू किया यद्यपि छिटपुट कार्य पहले से ही हो रहे थे, जैसे कि साहित्यिक कृतियों का अनुवाद, मिथकों, किंवदंतियों पर विचार और यात्रा-वृत्तांत एवं विश्व-ज्ञानकोश इत्यादि। दूसरी तरफ कुछ लोग भारतीय भाषाओं के व्याकरण और शब्दकोश तैयार कर रहे थे। योआन योसुआ केटेलार ने 1698 में संभवतः पहला हिंदुस्तानी व्याकरण और फ्रांस्वा मारी दे तूर ने 1703 में हिंदुस्तानी शब्दकोश एवं 1704 में हिंदी (हिंदुस्तानी) व्याकरण लिखा। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में यूरोपीय विद्वानों ने विशेषकर ईसाई मिशनरियों ने भारतीय भाषाओं के दस्तावेजीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सत्रहवीं सदी के मध्य में डच ईसाई मिशनरी अब्राहम रोजर ने भारत में किसी ब्राह्मण से भर्तृहरि की कुछ कविताओं का अनुवाद पुर्तगाली में करवाकर उसे प्रकाशित करवाया और संस्कृत साहित्य की महत्ता पर विचार किया। भारतीय साहित्य के यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद को गति मुख्य रूप से 1784 में सर विलियम जोन्स द्वारा कोलकाता में दि एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना किए जाने के पश्चात् मिली। सन् 1776 में हिंदू लॉ 'विवादार्णवसेतु' के अंग्रेजी अनुवाद और 1785 में चार्ल्स विलकिंस द्वारा भगवद्गीता तथा सर विलियम जोन्स द्वारा अभिज्ञान शाकुंतलम् के अंग्रेजी अनुवाद के बाद अठारहवीं सदी के अंत में यूरोपीय विद्वानों एवं लेखकों की भारतीय भाषाओं एवं साहित्य में रुचि और भी प्रखरता से बढ़ी। विशेष तौर पर जब योहान गोटफ्रीड हेर्डर और योहान वॉल्फगांग फॉन गोएथे जैसे महान् जर्मन विद्वान् और कविगण भारतीय साहित्य में रुचि रखते हों, तो निश्चित तौर पर अन्य लोगों की भी भारतीय साहित्य में दिलचस्पी बढ़ी होगी। हेर्डर ने अठारहवीं सदी में 'इंडियन' नाम की कविता लिखी, जिसमें उन्होंने भारतीय समाज एवं उसके साहित्यिक सौष्ठव और कालिदास के साहित्य को रेखांकित किया है।

हाइनरिश हाइने लिखते हैं कि "संस्कृत अध्ययन के महत्त्व को समय अपने आप रेखांकित करेगा। पुर्तगाली, डच और अंग्रेज लोग लंबे समय तक साल-दर-साल अपने बड़े-बड़े जहाजों से बहुमूल्य भारतीय चीजों को अपने-अपने देशों में लाते रहे हैं, लेकिन हम जर्मन लोग इसे हमेशा सिर्फ देखते ही रह गए। हमें भारतीय बौद्धिक निधियों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। श्लेगल, बॉप्प, हुम्बोल्ट, फ्रांक इत्यादि वर्तमान में हमारे दिशा निर्देशक हैं।" इससे स्पष्ट होता है कि जर्मनी में विद्वानों की भारतीय ज्ञान परंपरा एवं भारतीय भाषाओं और साहित्य में कितनी गंभीर रुचि थी।

यद्यपि हिंदी भाषा का अध्यापन जर्मनी में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से शुरू हो गया था (बर्लिन 1888 और हैम्बर्ग 1922 इत्यादि) तथापि हिंदी साहित्य का सुनियोजित अध्यापन मुख्य रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बीसवीं शताब्दी के छठे दशक से ही शुरू हो पाया। साठ से अस्सी के दशकों में जर्मनी में हिंदी शब्दकोश और हिंदी व्याकरण पर काफी कार्य हुआ और अनेक हिंदी कृतियों का जर्मन अनुवाद भी किया गया। शास्त्रीय भारत-विद्या के कुछ विद्वानों, जैसे—फ्रीडरिश रोजन, हेल्मूट फॉन ग्लासनाप्प, लुडविग अल्सडोर्फ, पॉल हाकर ने भी बीसवीं सदी में हिंदी पर शोध किया। इस दौरान लोथार

लुत्से, हेल्मूट नेस्पिताल, आर्येंद्र शर्मा, कृष्णमुरारि शर्मा, हान्स फेरमेर, हान्स पीटर गैफ्फके, मारगोट गत्सलाफ्फ-हैलसिग, मोनिका ब्योह्म-टेटलबाख जैसे विद्वानों ने हिंदी भाषा और साहित्य पर गंभीर शोध किया और हिंदी की कुछ कृतियों का जर्मन अनुवाद किया, जिसका प्रसार दुर्भाग्य से सिर्फ विश्वविद्यालय स्तर तक ही सीमित रहा। सन् 1953 में डॉयचे वेले रेडियो की स्थापना हुई और फिर भारत की स्वतंत्रता की 17वीं वर्षगाँठ पर 15 अगस्त, 1964 को रेडियो डॉयचे वेले के हिंदी कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

इक्कीसवीं सदी में आते-आते हिंदी का प्रसार काफी सुदृढ़ हो गया था। हिंदी साहित्य के जर्मन अनुवाद के साथ-साथ हिंदी फिल्मों का भी जर्मन अनुवाद होने लगा। पश्चिम यूरोप में बॉलीवुड के प्रभाव का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि लगभग पिछले पंद्रह वर्षों से हिंदी फिल्मों का प्रसारण जर्मनी और हॉलैंड आदि देशों के टेलीविजन चैनलों पर होने लगा, जो पहले काफी असंभव-सा लगता था। हिंदी सिनेमा की बढ़ती लोकप्रियता का प्रभाव यह भी हुआ कि कई छात्रों ने बॉलीवुड से प्रेरित होकर भारत-विद्या और हिंदी का अध्ययन शुरू किया और यह सिलसिला बढ़ता जा रहा है, यद्यपि छात्रों की विषय संबंधी प्रवृत्ति और वरण व्यवहार में परिवर्तन देखा गया है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे कि रोजगार संबंधी प्रश्न इत्यादि। सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति के बाद भाषा सीखने की अनेक ऑनलाइन संभावनाएँ भी बढ़ गई हैं। भारत में आई सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति का परिणाम यह हुआ कि जर्मनी में शिक्षकों एवं छात्र-छात्राओं को अनेक जानकारियाँ और शिक्षण सामग्री अब घर बैठे ऑनलाइन उपलब्ध होने लगी है, जबकि इससे पहले शिक्षकों को शिक्षण सामग्री इकट्ठी करने के लिए भारत जाना पड़ता था।

भारत-विद्या विभागों में पढ़ाई की शुरुआत भाषा सीखने से की जाती है और उसके बाद भाषा के माध्यम से ही साहित्य, भाषा-विज्ञान, समाज, संस्कृति और इतिहास का अध्ययन किया जाता है।

बोलचाल की भाषा को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि जरूरी नहीं है कि किसी छात्र को हिंदी भाषा उतनी ही अच्छी तरह से बोलनी भी आए, जितनी अच्छी तरह से वह भाषा को पढ़-लिख सकता है और उसका सटीक अनुवाद कर सकता है। अधिकतर विश्वविद्यालयों में भारत-विद्या का अध्ययन भाषा, साहित्य, संस्कृति और इतिहास तक ही सीमित रहता है। हिंदी मीडिया और हिंदी सिनेमा भी कुछ विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है। और अनुवाद इन सबके केंद्र में रहता है। सही और सटीक अनुवाद पर बहुत ध्यान दिया जाता है ताकि सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अंतर को भी ठीक से समझा जा सके।

हैम्बर्ग विवि. के छात्र-छात्राएँ अब तक अनेक हिंदी कहानियों, कविताओं और एकांकियों का जर्मन अनुवाद कर चुके हैं और एकांकियों का मंचन भी। इससे छात्रों को भारतीय जीवन, समाज, संस्कृति एवं इतिहास की उचित जानकारी मिलती है और छात्रों में भारत-विद्या और हिंदी के प्रति जिज्ञासा बढ़ती है।

हैम्बर्ग विवि. में हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन को अप्रैल 2022 में सौ वर्ष हो चुके हैं। इन सौ वर्षों में हिंदी ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं, लेकिन हैम्बर्ग विवि. के भारत-विद्या विभाग में लोगों की जिज्ञासा बराबर बनी रही। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण पिछले दो दशकों से हर वर्ष अगस्त माह में होनेवाला हमारा 'हिंदी गहन अध्ययन पाठ्यक्रम' भी है, जिसमें यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शहरों के लगभग छह सौ से भी अधिक छात्र भाग ले चुके हैं। हमारे लिए भाषा पाठ्यक्रम सिर्फ भाषा तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि भाषा के माध्यम

से हम भारतीय समाज, संस्कृति एवं इतिहास का भी गहन अध्ययन करते हैं। पिछले डेढ़ दशकों से हैम्बर्ग सरकार द्वारा मनाए जानेवाले इंडिया वीक में भी हिंदी की ऐसी ही झलक दिखाई देती है। विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर भी हमारे छात्र बढ़-चढ़कर कार्यक्रम में भाग लेते हैं और हिंदी में अपनी प्रस्तुतियाँ देते हैं—हिंदी निबंध, एकांकी से लेकर हिंदी कविता और क्विज तक। भारतीय डायस्पोरा के बच्चे भी हमारे कार्यक्रमों में उत्सुकतापूर्वक भाग लेते हैं और हिंदी में अपनी प्रस्तुतियाँ देते हैं। इसमें हमें दूतावास एवं कौंसलावास का बड़ा सहयोग मिलता है।

सन् 1991 में भारतीय बाजार को दुनिया के लिए खोले जाने के साथ ही नई संभावनाएँ भी पैदा हुईं। दुनिया में भारत की स्थिति मजबूत हुई और भारत की उपस्थिति अनेक क्षेत्रों में बढ़ी। चाहे वह आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से हो अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से या फिर सिनेमा एवं पर्यटन-पर्यटकों, भोजन-भोजनालयों की दृष्टि से। हर सुपर मार्केट में भारतीय उत्पाद मिल जाते हैं। यही नहीं, भारत में कार्यरत जर्मन कंपनियों और जर्मनी में कार्यरत भारतीय कंपनियों की संख्या में पिछले कुछ वर्षों में काफी बढ़ोतरी हुई है। साथ ही भारत सरकार द्वारा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माध्यम से दुनियाभर में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार के लिए दर्जनों हिंदी अध्ययन पीठ और विश्व हिंदी दिवस जैसे कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं। यूरोप में एक और नई शुरुआत हिंदी और देवनागरी लिपि को लेकर हुई है और वह है सार्वजनिक स्थलों पर देवनागरी में लिखे गए संकेतकों का प्रयोग और सार्वजनिक बहस में राजनेताओं द्वारा हिंदी नारों का प्रयोग। अब यूरोप के हवाई अड्डों, भारतीय भोजनालयों और पर्यटक स्थलों (विशेषकर स्विट्जरलैंड में) देवनागरी लिपि में लिखा हुआ दिख जाता है।

सन् 2006 में फ्रैंकफर्ट में लगी पुस्तक प्रदर्शनी में भारत ने जब सहभागी देश के रूप में भागीदारी की, तो उससे भी जर्मनी के आमजन में हिंदी और भारत के प्रति दिलचस्पी बढ़ी। उस समय लगभग सोलह हिंदी कृतियों को जर्मन अनुवाद के लिए औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया था। अनुवाद वास्तव में सांस्कृतिक व्यापार की प्रकृति का एक विश्वसनीय सूचक माना जाता है, जो विभिन्न सांस्कृतिक वर्गों के मध्य घटित होता है। अतः साहित्य के अनुवाद को और अधिक प्रोत्साहन दिए जाने की परमावश्यकता है। किंतु ऐसा संभवतः अभी नहीं होने जा रहा। योग और आयुर्वेद ने भी पश्चिमी देशों में भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा के प्रति लोगों में रुचि पैदा की है। निजी संस्थानों में एवं फॉक्सहोखशूले (आम वयस्कों और मुख्यतः गैर-छात्रों के लिए हर शहर में स्थापित गैर-लाभकारी राजकीय शिक्षा केंद्र) जैसी शिक्षण संस्थाओं ने भी हिंदी भाषा के पाठ्यक्रम शुरू कर लिये हैं। कुछ निजी संस्थान भी हिंदी भाषा का शिक्षण कर रहे हैं। क्या इन सकारात्मक परिवर्तनों से भारत-विद्या के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है? इसे अभी निश्चित तौर पर कहना संभव नहीं, क्योंकि इस बारे में कम-से-कम मेरी जानकारी में अभी कोई डेटा उपलब्ध नहीं है। कोरोनाकाल से ऑनलाइन शिक्षण और सेमिनारों की शुरुआत होने से एक अलग तरह की स्थिति बनी है। वेबिनारों के माध्यम से हम और अधिक छात्रों और सहभागियों तक पहुँच रहे हैं, लेकिन इससे अध्ययन-अध्यापन की गुणवत्ता पर कैसा और कितना असर हुआ, यह कहना अभी मुश्किल है, क्योंकि विषय पर अभी डाटा उपलब्ध नहीं है। छात्रों की दृष्टि से भाषा शिक्षण के लिए ऑनलाइन शिक्षण इतना प्रभावी तो नहीं दिख रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी का दायरा बढ़ रहा है, लेकिन इन सकारात्मक पहलुओं से हिंदी भाषा और साहित्य के प्रसार में कितना लाभ होगा, यह भविष्य ही बताएगा।

इसे विरोधाभास नहीं तो और क्या कहा जाए कि एक तरफ तो जर्मनी में भारतीय संस्कृति और भाषा एवं साहित्य का प्रसार बढ़ रहा है और दूसरी तरफ भारत-विद्या के संस्थान बंद होते जा रहे हैं। पिछले पंद्रह-बीस वर्षों में कम-से-कम पाँच विश्वविद्यालयों में भारत-विद्या की पढ़ाई बंद कर दी गई है और दो-तीन अन्य विश्वविद्यालयों में भविष्य में बंद होने की चर्चा चल रही है।

भविष्य में हिंदीभाषी प्रवासी और अधिक संख्या में अगर जर्मनी आए, तो निश्चित तौर पर हिंदी भी अधिक प्रसारित होगी। अगर भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है, तो दुनिया की सरकारों को हिंदी पर भी ध्यान देना पड़ेगा, क्योंकि बिना हिंदी ज्ञान के विदेशियों के लिए भारत, भारतीय लोगों को और उनकी संस्कृति को समझना इतना आसान नहीं होगा। अंग्रेजी के माध्यम से भारत और भारतीयों को बहुत सीमित एवं संकीर्ण रूप से ही समझा जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे विकास का भी हिंदी की लोकप्रियता एवं उसके महत्त्व पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जो विचार स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान दिए—"राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।" उसका पूर्वाभास हमें अठारहवीं सदी के आरंभ में लैटिन और हिंदी का प्रयोग करके हिंदी का व्याकरण एवं शब्दकोश लिखने वाले फ्रेंच मिशनरी फ्रांस्वाँ मरी दे तूर करवा देते हैं। सनद रहे, उस समय उत्तर भारत पर क्रूर मुगल शासक औरंगजेब का शासन था और उस समय मुगल शासन की राजभाषा फारसी थी, फिर भी हिंदी की तरफ विदेशियों का ध्यान गया और उन्होंने गंभीरता से हिंदी के व्याकरण एवं शब्दकोश का प्रलेखन किया। हिंदी मात्र संप्रेषण का माध्यम ही नहीं बल्कि उसके बोलनेवालों की सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भाषिक पहचान भी है और वह अपने आप में पूरी सभ्यता है। इसलिए आशा यही की जानी चाहिए कि हिंदी जर्मनी में बिल्कुल जीवित रहेगी और उसका प्रसार बढ़ेगा।

□

Ram.Prasad.Bhatt@uni-hamburg.de

संसार में सच्चरित्र मनुष्य ही प्रगति कर सकता है।

—चेस्टर फील्ड

सच्चरित्रता ही वह सर्वोत्तम संपत्ति है जो कोई भी व्यक्ति आनेवाली संतानों के लाभ के लिए दे सकता है।

—विवेकानंद

यदि हमारे मन में सच्चाई है, तो उसका प्रभाव अपने आप लोगों पर पड़ेगा।

—महात्मा गांधी

त्रिनिदाद के हिंदी साधक : प्रो. हरिशंकर आदेश

—डॉ. दीपक पांडेय

"जिंदगी को गीत मानता हूँ मैं
मृत्यु को मीत मानता हूँ मैं
हार कहना असत्य, जीवन को
कर्म की जीत मानता हूँ मैं।"

इन पंक्तियों के कवि प्रो. हरिशंकर आदेश हैं, जिन्होंने त्रिनिदाद, कनाडा और अमेरिका को अपनी कर्मस्थली बनाकर हिंदी भाषा, भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति के वैभव से स्थानीय लोगों के जीवन को चमत्कृत कर, उनके मध्य भारतीय संस्कृति के लोकमंगल भाव को प्रतिस्थापित करने का महनीय कार्य किया। प्रो. आदेश ने 'भारतीय विद्या संस्थान' की स्थापना कर हिंदी, संस्कृत, भारतीय धर्म-दर्शन, आध्यात्मिक, भारतीय संगीत एवं वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन और भारतीय संस्कृति के संवर्धन में समर्पण भाव से कार्य किया। इसलिए उन्हें 'गुरुजी' नाम से जाना जाता है। 'भारतीय विद्या संस्थान' त्रिनिदाद के साथ-साथ अमेरिका, कनाडा एवं अन्य देशों में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के साथ 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना से लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए सक्रिय हैं।

पारिवारिक संस्कारों और परिस्थितियों की प्रेरणास्वरुप आदेश जी की सृजनशीलता से हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू भाषाओं में साहित्य, संगीत-कला आदि विविध विधाओं में तीन सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति पौराणिक कथाओं पर आधारित उपदेशों, संगीत-विद्या से संबंधित दृश्य-श्रव्य आडियो-वीडियो सामगी भी तैयार की जो विद्यार्थियों और उनके शिष्यों में बहुत लोकप्रिय हैं। महाकाव्यों में—अनुराग, शकुंतला, महारानी दमयंती, ललित गीत रामायण, देवी सावित्री, रघुवंश शिरोमणी श्रीराम, रविनंदन कर्ण; खंडकाव्यों में—मनोव्यथा, सावित्री, महाभारत कथा, देवी उपाख्यान, जनगीता, निष्पाप, निर्मल सप्तशती, आदेश सप्तशती, जीवन सप्तशती, जमुना सप्तशती, विवेक सप्तशती, सुरभि सप्तशती, पत्नी सप्तशती, प्रवासी सप्तशती आदि कृतियाँ हिंदी जगत् में उल्लेखनीय स्थान रखती हैं। महाकाव्य पौराणिक चरित्रों पर आधारित हैं और उन्होंने स्वीकार भी किया है—"मैं गर्व से कहता हूँ कि मैंने भारतीय संस्कृति के जिन महान् नारी-पुरुष पात्रों के कथानक अपने महाकाव्यों में चित्रित किए हैं, उन पर हिंदी साहित्य में कोई महाकाव्य सृजित नहीं हुआ है। आप ही बताइए, हिंदी साहित्य में गंगा, सत्यवती, शांतनु, शकुंतला-दुष्यंत, दमयंती-नल, यशोधरा-महात्मा बुद्ध तथा देवी सावित्री-सत्यवान, सूर्यपुत्र कर्ण पर कोई महाकाव्य सामने आता है? मैंने हिंदी कवियों

---

* केंद्रीय हिंदी निदेशालय में सहायक निदेशक।

द्वारा उपेक्षित इन पात्रों को सजीवता प्रदान करने का प्रयास किया है।" आदेश जी को उनके गहन, गंभीर और समाजोपरक कार्यों में समर्पण के लिए देश-विदेश के उच्चतर सम्मान प्राप्त हुए, जिनमें—हमिंग वर्ड गोल्ड मेडल; विश्व हिंदी सम्मान; इंटर्नेशनल पीस प्राइस, अमेरिका; युनाइटेड किंगडम का इंटरनेशनल मैन ऑफ द ईयर 2002 ग्रेटेस्ट लिविंग लेजेंड प्रमुख हैं।

आदेश जी का साहित्य समाजोन्मुख कार्यों के प्रति सभी को ऊर्जा भाव व्यंजना की अभिव्यक्ति करता है। मानव के जीवन का उद्देश्य शांति के साथ जीवन यापन होता है, यही संदेश कवि ह्रदय आदेश की लेखनी भी बयाँ करती है।

आदेश जी अपने साहित्य में शिक्षा के महत्त्व और उपयोगिता की बारंबार अनेक रूपों में अभिव्यक्ति करते हैं, क्योंकि उनका इस बात पर विश्वास था कि शिक्षा किसी समाज में सदैव चलनेवाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाने में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य के रचनाकाल के दौरान मैं त्रिनिदाद स्थित भारतीय उच्चयोग में द्वितीय सचिव के पद पर पदस्थ था और अनेक बार मुझे गुरुवर से इस महाकाव्य के अंश सुनने और विचार-विमर्श का मौका मिला। यह रचना रामकाव्य-परंपरा का पौराणिक धरातल पर आधुनिक अथवा नव्यतम परिप्रेक्ष्य में श्रीराम भक्त कवि के गंभीर ज्ञान, कर्म, श्रद्धा तथा भक्ति की सहज अभिव्यक्ति में सफल हुआ है। इस महाकाव्य के प्रतिपाद्य के संबंध में उन्होंने भूमिका में लिखा है—"यह व्यक्ति का काव्य है; समाज का काव्य है; विश्व का काव्य है; यह विगत का काव्य है। आगत एवं वर्तमान का काव्य है। यह केवल हिंदुओं का काव्य नहीं, अपितु प्रत्येक धर्मावलंबी के लिए हितकारी एवं अनुकरणीय काव्य है।" (पुरोवाक् पृ 50) 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य में सर्वत्र वैश्विक परिवार की भावना की अभिव्यक्ति हुई है, कवि आदेश की दृष्टि में राम-राज्य का अर्थ ही सार्वभौमिक स्वर्ग सदृश्य राज्य है—

सुर प्रवृतियों को आश्रय दें, असुर भाव बिसराएँ।
जननी वसुंधरा को, सब मिल-जुलकर स्वर्ग बनाएँ।
जल को स्वस्छ रखें, धरनी से अधिक न रत्न निकालें।
रखें प्रदूषण-मुक्त वयं, जीवन को स्वर्ग बनाएँ।

हरिशंकर आदेश रचित 'निर्वाण' महाकाव्य अद्वितीय काव्य रचना है, इसमें कवि आदेश ने बुद्ध के संपूर्ण जीवन को अर्थात उनके जन्म से लेकर परिनिर्माण प्राप्त करने की कथा को काव्य-माला के रूप में पिरोया है। यह पूर्णतया इतिहास पर आधारित है, जिसमें महात्मा बुद्ध के जीवन काल से संबंधित अंगुलिमाल, आम्रपाली आदि अंतर्कथाओं के अतिरिक्त नचिकेता की भी कथा दी गई है। जैसा आप सभी जानते हैं कि महात्मा बुद्ध का दर्शन शताब्दियों से मानवता को करुणा अर्थात् सत्य-प्रेम-अहिंसा का संदेश देता रहा है और मानवीय जीवन को आनंद की अनुभूति कराता रहा है। कवि आदेश ने इस मूल भावना को लोक कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत कर स्तुत्य प्रयास किया है। महापुरुष बुद्ध ने सारे संसार को प्रेम एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाकर एक कर दिया।

यह महाकाव्य विश्व-कल्याण की भावना को अपने अंचल में छुपाए हुए है।

त्रिनिदाद अंग्रेजी भाषा-भाषी देश है और इस देश में सामान्य-से-सामान्य कार्य उसकी भाषा में निष्पादित किए जाते हैं। ऐसे वातावरण में आदेश जी ने हिंदी से स्थानीय लोगों को जुड़ने और उन्हें उनके पूर्वजों के शब्दों से जोड़कर हिंदी के प्रचार-

प्रसार में नवीन उपाए किए, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। जहाँ उन्होंने स्वयं हिंदी अध्ययन-अध्यापन को अपनाया वहीं हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अध्यापन के लिए नए अध्यापकों को भी प्रशिक्षित किया और देश के अनेक भागों में हिंदी कक्षाओं के लिए भारतीय विद्या संस्थान के केंद्र भी खोले। उन्होंने 'सावित्री' महाकाव्य की भूमिका में स्वीकार किया है कि "मैं हिंदी का पुत्र हूँ सेवक हूँ। मेरी मातृभाषा हिंदी है, ध्यान देनेवाली बात है कि उत्तरी अमेरिका, कनाडा आदि में पर्याप्त हिंदी भाषी प्रवासी मिल जाते हैं, परंतु त्रिनिदाद जैसे सर्वथा आँग्ल भाषी देश में पूरे पाँच दशक व्यतीत करने के उपरांत भी मैंने हिंदी का वर्चस्व बनाए रखा है।

हरिशंकर आदेश के काव्य-संसार के अध्ययन से हम पाते हैं कि कवि का पोर-पोर भारतीयता में पगा है और वे विश्व परिवार की बात करते हुए अपने भाव-बोध में भारत और भारतीय दर्शन को ही वैश्विक दर्शन की धुरी बनाने के पक्षधर रहे हैं। हरिशंकर आदेश जी ने अपनी प्रतिभा से काव्य में लयात्मकता, रस, छंद एवं अलंकारों का वैविध्य प्रस्तुत किया है। किसी विद्वान् ने उनके काव्य पर टिप्पणी की है—'आदेश जी के काव्य में ज्ञान है, भक्ति है, उपासना है, प्रेम है, वैराग्य है, नव रसों की सरिता है, छंदों का सागर है।' इस कथन की सत्यता उनके काव्य ग्रंथों में समाहित परिशिष्ट के अंतर्गत विवेचन से स्पष्टतया मिल जाती है। कविता में रस-छंद-अलंकार के संयोजन के संबंध में उन्होंने कहा भी है कि 'जिस प्रकार एक कामिनी बिना सुंदर वेश-भूषा एवं अलंकारादि के अभाव में आकर्षक नहीं लगती, उसी प्रकार कविता-कामिनी भी रस, छंद, अलंकारों के प्रयोग बिना नीरस, अनाकर्षक तथा प्रभावहीन लगती है। छंदबद्ध कविता कभी मरती नहीं, वह जनता के स्मृति-लोक तथा अधरों पर सदा बनी रहती है।'

आदेश जी छह-सात दशक से विदेश में रह रहे थे और वहाँ रहते हुए उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य का सृजन किया। प्रवास के दौरान व्यक्ति अपनी जड़ों से ज्यादा जुड़ा रहना चाहता है, यही भावना आदेश जी की भी है, हम पाते हैं, उनके काव्य में ये भावनाएँ भारत माता के प्रति उमड़ती रही हैं।

'विवेक सप्तशती' में कवि आदेश अगले जन्म में भारत भूमि पर जीवन प्रारंभ करने की कामना करते हैं—

"जब-जब ईश्वर जन्म दे
भारत में हो प्राण रवि
चाहे अस्त कहीं पर कर दे।"

इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति 'प्रवासी की पाती भारत माता के नाम' कविता में हुई है—

"जिसका नाम अमर है, मित्रो वसुधा के इतिहास में।
बसा हुआ है वह भारत, मेरी हर धड़कन विश्वास में।"

भारतभूमि पर कुदृष्टि रखनेवालों के प्रति संघर्ष का संदेश देता कवि कहता है—

"भारत माँ पर आँख गढ़ाए जो
उसकी दें हम आँख निकाल
प्राणों की बलि दे सदा रखें
भारत माँ का उज्ज्वल भाल।"

कवि आदेश निराशा को त्यागकर, कर्म पर बल देते हैं—तुलसीदास की पंक्ति है—हुई है वही जो राम रची राखा। इन्हीं भावों की प्रतिच्छाया आदेश जी की इन पंक्तियों में देखें—

"सोचो मत परिणाम को, रखो काम से अर्थ
जो होना वह होएगा, अश्रुपात है व्यर्थ।"

कबीर के दोहे—'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब, पल···' की ही संवेदना आदेश जी के दोहे में देखें—

"कल-कल-कल, कल क्यों करे,
करना कर तत्काल
नहीं भरोसा काल का,
चले तस्करी चाल।"

लोककल्याण, मानवतावाद और 'वसुधैव कुटुम्बकं' की भावना आदेश जी के काव्य का मुख्य विषय है। तभी तो उनकी लेखनी इन भावनाओं की सरिता प्रवाहित करती है। कवि की मानवतावादी विचारधारा को निम्न पक्तियों में देखिए—

"मानवता का हो सदा, संस्कृति में साम्राज्य
मानव-मानव प्रेम हो, अमर और अविभाज्य।"

हिंदी भाषा के प्रति आदेश जी का अगाध प्रेम है, और आपको जानकर अच्छा लगेगा कि उन्होंने बातचीत के दौरान बताया कि वे अपने संगीत के विद्यार्थियों को पहले हिंदी सीखने को अनिवार्य बनाते हैं और हिंदी को स्वाति स्वर कहकर अपनाने का आह्वान करते हैं।

आदेशजी का काव्य-साहित्य रस, छंद और अलंकारों का अद्भुत संयोजन का दस्तावेज है। 'प्रवासी सप्तसती' से भाषा चमत्कार को यमक अलंकार के उदाहरण रूप में देखिए—

"ईश्वर-ईश्वर शत्रु है, ईश्वर-ईश्वर मित्र
ईश्वर-ईश्वर दंभयुत, ईश्वर पूजा पवित्र।"

आदेश जी का साहित्य इतना बोधगम्य, सहज, गंभीर और विशद है कि बहुत कुछ कहा जा सकता है। उपर्युक्त विवरण में आदेश जी के वृहद् काव्य-पक्ष के महाकाव्य और खंडकाव्य में से सप्तशती पर ही चर्चा की गई है। आज प्रवासी हिंदी साहित्य की काव्य-विधा में हरिशंकर आदेश के अलावा कोई दूसरा रचनाकार ऐसा नहीं होगा, जिसके काव्य में आदेश जी के साहित्य सा वैविध्य हो। इस प्रकार हम पाते हैं कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी, भारतीयता को समर्पित साधक का साहित्य जितना बहुरंगी है, उनका व्यक्तित्व भी उतना ही बहुआयामी है। वे भारतीय कला-साहित्य और संस्कृति के उन्नायक होने के साथ-साथ, संगीत शास्त्र के उद्भट ज्ञाता, पिंगलशास्त्र के मर्मज्ञ हैं और साहित्यकार, गायक, प्रबंधकार, कलाकार, निबंधकार, संस्मरण लेखक, अनुवादक, समीक्षक, नाटककार आदि अनेक विधाओं में अपनी प्रतिभा कौशल से विश्व हिंदी जगत् में उच्च स्थान पाते हैं। प्रो. हरिशंकर आदेश ने 'भारतीय विद्या संस्थान', 'आदेश आश्रम' जैसी संस्थाओं की स्थापना कर और उन संस्थाओं के माध्यम से भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति से संबंधित ज्ञान का जो संचार किया है, वह अनेकों वर्षों तक कैरेबियन देशों, अमेरिका, कनाडा जैसे देशों में प्रवाहित होता रहेगा। आदेश जी का रचना संसार जहाँ समाज सापेक्ष, मानवीय मूल्यों के पोषक, जन्मभूमि के प्रति समर्पण, विश्वबंधुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिन: भावनाओं और विचारों का गहन और गंभीर विश्लेषण कर मानव कल्याण के लिए कृत संकल्पित है, वहीं संगीत का गहन ज्ञान के कारण उनके काव्य में सहजता, सरलता के कारण लयात्मकता और प्रभाव उत्पन्न करने की अद्भुत संयोजन क्षमता भी मिलती है।

□

dkp410@gmail.com

इस विशाल प्रदेश के हर भाग में शिक्षित-अशिक्षित,
नागरिक और ग्रामीण सभी हिंदी को समझते हैं।

—राहुल सांकृत्यायन

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी

—प्रो. खेमसिंह डहेरिया

भारतवर्ष सदैव से ही बहुभाषी है। किसी-न-किसी रूप में उसकी एक संपर्क भाषा या राष्ट्रभाषा रही है। भले ही हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा न मिला हो, परंतु वह राष्ट्रभाषा ही नहीं, विश्वभाषा से कम नहीं है। पूर्वकाल में यह कार्य संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं ने किया है। सात-आठ सौ वर्षों से यह कार्य हिंदी ने किसी-न-किसी रूप में सँभाला है। हिंदी ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि रूपों में रँगी रही है। कहीं वह संतों, फकीरों की खिचड़ी या सधुक्कड़ी रूप में तो कहीं रेख्ता या दक्खिनी के रूप में। महाराष्ट्र में भी मराठी के आदिकवि मुकंदराज, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत समर्थ गुरु रामदास, संत श्रेष्ठ तुकाराम की रचनाओं में इसे देख सकते हैं।

शिवाजी के दरबार में हिंदी कवि भूषण का सम्मान इस बात का द्योतक है। हिंदी और मराठी की लिपि देवनागरी ही है। महाराष्ट्र में वारकरी कीर्तन की लंबी परंपरा है। कीर्तनकार बीच-बीच में कबीर, मीरा, तुलसी आदि संत कवियों के पदों का गायन करते हैं। दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए गांधीजी ने 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य का 25वाँ अधिवेशन 1936 में डॉ. राजेंद्र प्रसाद के सभापतित्व में नागपुर में हुआ था। गांधीजी की प्रेरणा से इसी सम्मेलन में देश के अहिंदी राज्यों में हिंदी के प्रचार के लिए 21 व्यक्तियों को सदस्य के रूप में शामिल करके हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समिति गठित की गई, जिसमें सदस्य थे—महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पं. जवाहर लाल नेहरू, पुरुषोत्तम दास टंडन, सेठ जमना लाल बजाज, ब्रिजलाल बियाणी, आचार्य नरेंद्रदेव, काका कालेलकर, पं. हरिहर शर्मा, वियोगी हरि, बाबा राघव दास, शंकरदेव राव, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, सरदार नर्मदा प्रसाद सिंह, श्रीमती लोक सुंदरी राम, श्रीमती रमादेवी चौधरानी, श्रीमती पेरीन वेन, पीतांबर देव गोस्वामी, मन्नानारायण अग्रवाल, मोटूरी सत्यनारायण एवं श्रीनाथ सिंह।

आज पूर्वोत्तर में छोटे-बड़े लगभग 1500 राष्ट्रभाषा विद्यालय हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। पूर्वोत्तर में हिंदी की महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ इस प्रकार हैं—असम राज्य राष्ट्रभाषा समिति, जोहराट-1936, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-1948, उत्तर पूर्वांचल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-1975, मेघालय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलाँग-1972, मिजोरम हिंदी प्रचार

---

* अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश के कुलपति।

सभा, आइजोल-1972, मिजोरम हिंदी विकास केंद्र-2000, मणिपुर हिंदी परिषद्, इंफाल-1958, मणिपुर हिंदी प्रचार सभा, इंफाल-1961, मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इंफाल-1963, नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा-1971, नागालैंड भाषा अकादमी दीमापुर-1993, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रशिक्षण विद्यालय, उंगमा-1993, हिंदी साहित्य सम्मेलन परीक्षा केंद्र-1993, त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-1994, त्रिपुरा राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-2000। आज इन्ही संस्थाओं और प्रचारकों के कारण हिंदी पूर्वोत्तर में एक लोकप्रिय भाषा बन गई है। पूर्वोत्तर के सभी विश्वविद्यालयों में आज हिंदी विभाग की स्थापना हो चुकी है।

जापान में कई विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण केवल प्राध्यापकीय व्याख्यानों तक सीमित नहीं हैं, कई सांस्कृतिक गतिविधियों से इसे जोड़ा गया है। इसमें नाट्य प्रस्तुति एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि है। विश्व के भाषाई परिदृश्य में दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जानेवाली चालीस भाषाओं में एक-चौथाई भाषाएँ भारतीय हैं।

इंग्लैंड और फ्रांस की संसदों द्वारा 19 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में गुलामी उन्मूलन विधेयक के पास हो जाने के बाद अंग्रेजों और फ्रांसीसियों द्वारा अधिकृत अफ्रीकी और दक्षिण अमेरिका के टापू देशों में मूलतः नीग्रो गुलामों का अकाल सा पड़ गया और उन टापुओं पर होनेवाली गन्ने की खेती लगभग बंद हो गई, तब 1834 और 1884 के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से लाखों की संख्या में हट्टे-कट्ठे नवयुवक और नवयुवतियों को, जो मूलतः भूमिहीन खेतिहर मजदूर थे, 'एग्रीमेंट' पर पानी के जहाजों से विभिन्न टापू देशों में भेजा गया। चूँकि इनके साथ 'एग्रीमेंट' करके इन्हें ले जाया गया था, अतः अपभ्रंश भाषा में इन्हें 'गिरमिटिया' कहा गया और जिन टापू देशों में इन्हें ले जाया गया, उसे गिरमिटिया देशों के नाम से जाना जाने लगा। जो गिरमिटिया बंधु उन दिनों मॉरीशस, ब्रिटिश गुयाना, दक्षिणी अफ्रीका, युगांडा, त्रिनिदाद और टोबैगो, सूरीनाम, फिजी आदि देशों में गए, वे अपने साथ मात्र 'रामचरित मानस' और 'हनुमान चालीसा' लेकर गए थे। साथ में कुछ लोग राम दरबार, राधा-कृष्ण, बजरंगबली हनुमान, शिव-पार्वती तथा दुर्गा-काली आदि के चित्र भी साथ ले गए थे। सूरदास, रहीम, कबीर के भजन भी थे। बटोहिया के गीत थे और रामलीला तथा रासलीला के संवाद थे। गिरमिटिया भाइयों में पढ़े-लिखे कम थे, लेकिन श्रुति और स्मृति के माध्यम से ही उन्होंने न केवल हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार किया, बल्कि पिछली ढाई शताब्दियों में उत्कृष्ट हिंदी साहित्य का निर्माण भी किया। शुरू के वर्षों यानी 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तो हमारे गिरमिटिया भाई पत्थर ही ढोते रहे और अपनी कड़ी मेहनत से पथरीले और बंजर टापुओं में खेती योग्य भूमि का निर्माण करते रहे। आज भी जब आप मॉरीशस आदि टापू देशों में जाएँगे तो बड़े-बड़े ईख के खेतों के बीचोबीच एक पहाड़नुमा आकृति के दर्शन होंगे, लेकिन नजदीक जाने पर आप आश्चर्यचकित रह जाएँगे कि वे स्वाभाविक पहाड़ नहीं हैं, बल्कि खेतों से खोदकर निकाली गई बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं, जिनको खेत के बीच में लाकर और एक के ऊपर एक सजाकर पहाड़ की शक्ल दे दी गई है। इतनी बड़ी-बड़ी चट्टान को खिसकाने में पचासों नहीं, बल्कि सैकड़ों लोगों की आवश्यकता पड़ी होगी। इसी से यह बोध होता है कि हमारे पूर्वजों ने कितना कठोर श्रम करके टापू देशों को समृद्ध, सुखी और संपन्न बनाया।

देश के विभिन्न कोने से एकत्रित होकर किसी एक अनजान जगह पर पहुँचनेवाले लोगों, समूहों को वर्तमान में भारतीय डायस्पोरा या प्रवासी

भारतीय कहा जाता है। भारतीय डायस्पोरा की पहचान, अस्तित्व और अस्मिता का सवाल उसकी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि और ऐतिहासिकता से जुड़ा हुआ है। डायस्पोरा जितना प्राचीन होगा, वह अपनी पहचान और अस्मिता को लेकर उतना ही अधिक संवेदनशील होगा। विश्व के 150 से अधिक देशों में भारतीय डायस्पोरा की आबादी करीबन ढाई करोड़ मानी जाती है। प्रतिशत की दृष्टि से मॉरीशस में अधिक है। इसके पश्चात् गुयाना, फिजी, त्रिनिदाद, टोबैगो, सूरीनाम, मलेशिया, कनाडा आदि देशों का स्थान है। हिंदी एक भाषा भर नहीं है, वह एक विचार, एक संस्कार और संस्कृति है, जिसमें देश की झलक होती है, वह हिंदी है।

विश्व के अनेक देशों में हिंदी पढ़ाई जाती है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिंदी में शोध कार्य करने, पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने की भी व्यवस्था है। अमेरिका के 75 तथा इंग्लैंड के कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन, यार्क विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा में अध्यापन हो रहा है। नीदरलैंड में 4, कोरिया में 2, पौलेंड में 2, बुलगरिया में 1, विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन कार्य हो रहा है। हिंदी ने अपना परचम अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया, महाद्वीपों के 93 देशों में फहरा रखा है।

आज हिंदी विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों, जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है, में किसी-न-किसी रूप में प्रयुक्त होती है। आज हिंदी बोलनेवालों की संख्या के आधार पर वह मंदारिन के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन् 1999 में मशीन ट्रांसलेशन समिट अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े प्रस्तुत कर सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार विश्व भर में मंदारिन भाषा बोलनेवालों का स्थान प्रथम और हिंदी का दूसरा है। अंग्रेजी तीसरे स्थान पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान् शोधार्थी भी सक्रिय हैं, जो हिंदी को मंदारिन के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सन् 1975 ई. में हिंदी भाषा का व्याकरण अमेरिकी सैमुल कैलाग ने हिंदी का अनुशीलन करके तैयार किया। हिंदी व्याकरण की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

आज हिंदी भारत के अलावा संपूर्ण विश्व में बोली जानेवाली, समझी जानेवाली, पढ़ी जानेवाली, साहित्यिक रचना एवं पत्र-पत्रिकाओं में भी अपना स्थान रखनेवाली भाषा बन गई है। हिंदी विश्व के कोने-कोने में बोली जानेवाली भाषा है। हिंदी का वैश्विक परिदृश्य व्यापक है। हम यहाँ विदेशों में हिंदी की स्थिति का अवलोकन करेंगे—

फिजी में हिंदी—फिजी एक बहुभाषी देश है, जहाँ विभिन्न जाति मूल के लोग रहते हैं। फिजी के मूल निवासी 'काईबीती' कहे जाते हैं। वह काईबीती भाषा का प्रयोग करते हैं। भारतीयों के अतिरिक्त फिजी में ऑस्ट्रेलियन, न्यूजीलैंड, चीनी, रोटुमन तथा अन्य द्वीपों के रहनेवाले व्यक्ति हैं, इनकी भाषाओं को देश में संवैधानिक संसदीय मान्यता भी प्राप्त है। भारतीय मूल के लोग जो आज वहाँ की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग हैं, उनके पूर्वज फिजी तट पर सबसे पहले 15 मई, 1879 को लेवनीदास जहाज से शर्तबंदी प्रथा के अधीन 463 मजदूरों के जत्थे के रूप में पहुँचे थे। इसके बाद 11 नवंबर, 1916 तक 85,459

भारतीय फिजी द्वीप में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए ले जाए गए। लगभग 94 प्रतिशत भारतीय हिंदी प्रदेशों से ले जाए गए थे तथा उनकी मातृभाषा हिंदी थी। स्वाभाविक ही था कि बहुसंख्यक भारतीयों की बोलचाल की भाषा हिंदी प्रवासी भारतीयों के मध्य भावाभिव्यक्ति की भाषा बनती। तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, गुजरात और पंजाब से आनेवाले भारतीय फिजी द्वीप समूह में बहुत बाद में आए। इस समय तक गिरमिटिए मजदूरों के मध्य एक संपर्क भाषा वस्तुतः विकसित हो चुकी थी, जो प्रधानतः भोजपुरी मिश्रित अवधी थी, जिसमें काईबीती तथा अंग्रेजी के शब्द भी सम्मिलित हो गए थे।

दिन भर गन्ने के खेतों में कड़ा परिश्रम करने के बाद रात को टिमटिमाते दीए के प्रकाश में वे थके-हारे गिरमिटिए, गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' का पाठ करते और श्रद्धा से मानस को 'रामायण महारानी' कहते। उन्हें लगता जैसे राम को वनवास मिला था और नियत अवधि समाप्त कर वे वापस अयोध्या लौट आए थे, उसी प्रकार इनके भी वनवास 'फिजी वास' के कठिन दिन कट जाएँगे और वे फिर अपने देश भारत जा सकेंगे। वे रोज रात रामायण पढ़ते, कबीर, मीरा, सूर, नानक के भजन गाते और सब जहाजी भाई मिल जुलकर अपने कष्ट बाँट-लेते।

फिजी में आज हिंदी के दो रूप हैं—पहला रूप बोलचाल की हिंदी का है और भारतीय उसका मातृभाषा के रूप में बड़ी सहजता से परिवार के बीच प्रयोग करते हैं। यह रूप वह है, जिसका विकास फिजी के भारतीयों के मध्य पिछले सौ सालों में हुआ है, जिसे उन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पूर्वजों से सीखा है। हिंदी का दूसरा रूप औपचारिक हिंदी का है, जो संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित हिंदी है। आदर्श हिंदी के रूप में जिसका प्रयोग वे राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवसरों पर करते हैं, रेडियो, समाचार-पत्रों तथा कक्षाओं में भी इसी हिंदी का प्रयोग होता है। एक फिजी वासी भारतीय अपनी बोलचाल की हिंदी को अशुद्ध, अपरिष्कृत, टूटी-फूटी तथा गँवार कहकर औपचारिक अवसरों पर उसका प्रयोग करने में संकोच करता है। फिजी बात या फिजी हिंदी न तो शुद्ध भोजपुरी है और न ही शुद्ध अवधी, वह हिंदी की एक नई विकसित भाषिक शैली है, इसमें अंग्रेजी, काईबीती आदि भाषाओं के साथ विविध भारतीय भाषाओं के शब्द भी घुल-मिल गए हैं। कुछ विदेशी भाषा शब्द तो इतने बदल गए हैं कि उनको आज पहचानना भी मुश्किल हो गया है। गिरमिट (एग्रीमेंट के अधीन आनेवाला व्यक्ति), कोलंबर (काल नंबर-नंबर देकर बुलाया जाना) आदि शब्द ऐसे ही हैं।

फिजी हिंदी	अंग्रेजी	हिंदी
पलेट	Plate	प्लेट
मेरिट	Marriage	विवाह
श्रीराम	Surinam	सूरीनाम
साकिस	Cinema	सिनेमा
हामा	Hammer	हथौड़ी
आपुल	Apple	सेब
गिरास	Grass	घास
चिनीटाट	Trinidad	त्रिनिदाद
मिरिच	Mauritius	मॉरीशस
मोटर	Car	मोटर
साट	Shirt	कमीज

संख्यावाची अभिव्यक्ति का तुलनात्मक स्वरूप

फिजी	हिंदी
बीस और एक	इक्कीस
तीस और दुइ	बत्तीस
चालीस और तीन	तैंतालीस
चालीस और दुई	बयालीस

भाषिक अभिव्यक्तियों के उदाहरण—

फिजी हिंदी	परिनिष्ठित हिंदी
आपके नाम कौन ची है ?	आपका क्या नाम है?
आपके लगे कितना मोटर है?	आपके पास कितनी मोटर हैं?
तुम मार्केट गया रहा।	तुम मार्केट गए थे।
हम थक गया।	मैं थक गया।
दाम थोरा कमती करो।	दाम थोड़ा कम कीजिए।
खाली देखता	मैं केवल देख रहा हूँ।

फिजीबात या फिजी हिंदी रोमन तथा देवनागरी दोनों ही लिपियों में लिखी जाती है। रोमन लिपि में फिजी हिंदी का लिखा जाना इस बात का प्रमाण है कि फिजी हिंदी का भाषिक क्षेत्र बहुत व्यापक है।

फिजी में हिंदी-फिजी द्वीप में प्रवासी भारतीयों का इतिहास लगभग 140 वर्ष पुराना है। फिजी में हिंदी का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में भारत से आए प्रवासी भारतीयों द्वारा हुआ। इन गिरमिटिया मजदूरों ने अपना देश तो त्यागा, परंतु अपनी भाषा और संस्कृति को कठिन काल में भी कायम रखा। हिंदी भाषा ही इन प्रवासी भारतीयों को एकसूत्र में बाँधनेवाली संपर्क भाषा बनी। देश की आबादी लगभग 09 लाख है, जिसमें से 57 प्रतिशत फीजियन, 38 प्रतिशत हिंदुस्तानी और 5 प्रतिशत अन्य जाति हैं। (फिजी जनसंख्या, 2016) हिंदी के प्रचार के लिए वहाँ लोक साहित्य का काफी सहारा लिया गया।

कैरेबियन देशों में हिंदी-1492 में पहली बार कोलंबस ने कैरेबियन देशों को खोजा था, ऐसा कहा जाता है। ऐसा भी अनुमान है कि इन देशों का पता 1421-23 में लग चुका था, बाद में अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाल और स्पेनिश सभी कैरेबियन देशों पर अधिकार जमाने के लिए आपस में लड़ने लगे। भारतीय मजदूर ने किसी-न-किसी तरह पाँच वर्ष की शर्तबंदी ठेका की अवधि बिताने के बाद या तो वहीं के निवासी बन गए या फिर भारत लौट गए। कैरेबियन देशों में हिंदी की स्थिति इस प्रकार रही है—

गुयाना-गुयाना (ब्रिटिश गुयाना) पूर्व में सूरीनाम, पश्चिम में वेनेजुएला, दक्षिण में ब्राजील और उत्तर में कैरेबियन समुद्र से घिरा है। 1616 में गुयाना डच अधिकार में आया था। अंग्रेजों ने इसे सन् 1796 में अपने अधिकार में लिया। नेपोलियन की लड़ाइयों के बाद 1814 में अंग्रेजों ने इसे डच सरकार से खरीद लिया और 'पेरिस संधि' के अनुसार सूरीनाम डचों की और कायेन (Cayane) या फ्रांसीसी गुयाना फ्रांस को दे दिया गया था। अंग्रेजी औपचारिक भाषा बनी। 1838 से 1917 तक 2,39,000 प्रवासी भारतीय ब्रिटिश गुयाना पहुँच चुके थे। यहाँ भी 5 वर्ष की ठेके की शर्तबंदी स्थापित हो गई। सभी ने टूटी-फूटी हिंदी का उपयोग किया, बोलचाल की भाषा क्रियोल ही रही। शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। पढ़ानेवाले क्रियोल थे, जो ईसाई थे। गुयाना में भारतवंशियों की आबादी लगभग 55 प्रतिशत है। इन्हें 'इंडोगायनीज' कहा जाता है। भारतीय

सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने हिंदी अध्यापन में काफी मदद की। यहाँ से प्रकाशित होनेवाली अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आर्य ज्योति, अमर, ज्ञानदा, भारत समाचार आदि पत्रिकाएँ काफी लोकप्रिय हैं। यहाँ हिंदी प्रायः रोमन में लिखी जाती है, फिर भी बोलचाल और धार्मिक आयोजनों में आज भी वहाँ हिंदी का पर्याप्त प्रचलन है। रेडियो, टी.वी. और फिल्मों में हिंदी प्रभावी है। हिंदी फिल्मी गीतों की धूम है।

त्रिनिदाद और टोबैगो—त्रिनिदाद द्वीप, गुयाना के उत्तर पश्चिम में और वेनजुएला के पूर्व-उत्तर में कैरेबियन समुद्र में स्थित है। टोबागो द्वीप छोटा है और उत्तर-पूर्व में स्थित है। आजकल टोबैगो में अधिकतर अफ्रीकी क्रियोल रहते हैं। 1797 में त्रिनिदाद पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। बाद में टोबैगो भी त्रिनिदाद का भाग बन गया। 1845 से 1917 तक कुल 143000 भारतीय त्रिनिदाद में पहुँचे। 1897 से 1970 तक, 6,804 भारतीयों ने जमीन खरीदकर त्रिनिदाद में अपने घर बसाए। (रामसरन, 1993)। हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'सनातन धर्म महासभा', 'त्रिनिदाद अकादमी ऑफ हिंदुइज्म', 'विश्व ज्योति और गनाइजेशन', 'सनातन विद्वत विद्यालय', 'हिंदू प्रचार केंद्र', 'हिंदू टीचर्स एसोसिएशन', 'वैदिक मिशन', 'सेकंडरी स्कूल सांस्कृतिक संगम', तथा 'आर्य प्रतिनिधि सभा' आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान था। (महाराज, 1919) त्रिनिदाद में हिंदी (त्रिनी हिंदी) बोलनेवालों की संख्या 40 प्रतिशत है। 'हनुमान चालीसा' तथा 'आल्हा' आदि उनके प्रिय ग्रंथ हैं। यहाँ 1996 में पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया था। यहाँ की पत्रिकाओं में 'आर्य संदेश', 'हिंदू, कोहिनूर' तथा 'ज्योति' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस देश में हिंदी भाषा, भारतीय संस्कृति तथा अपनी अस्मिता की पहचान है।

इन कैरबियन देशों को चार श्रेणियों में रखा जा सकता है—

(अ) ब्रिटिश औपनिवेशिक प्लांटेशन द्वीप समूह।
(ब) फ्रांसीसी डिपाटमेंट द्वीप समूह।
(स) डच औपनिवेशिक द्वीप समूह।
(द) स्पेनिश देश।

नेटाली हिंदी—1860 में उत्तर भारत से हिंदी भाषा अपने ग्रामीण स्वरूप में नेटाल, दक्षिण अफ्रीका आई। अवधी तथा भोजपुरी अधिकांश लोगों की बोलियाँ थीं, अतः यहाँ पर विकसित हो रही सामान्य संपर्क भाषा का नाम 'नेटाली हिंदी' पड़ गया। गिरमिटिया मजदूरों के रूप में मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में गए। भारतीयों की 'रामचरितमानस' पढ़ने की लालसा ने हिंदी अध्ययन के लिए प्रेरित किया। अवधी में लिखे 'रामचरितमानस' ने हिंदी शिक्षण को विशेष प्रोत्साहित किया।

नेपाल में हिंदी—नेपाली और हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है और दोनों भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। हिंदी के बहुत नजदीक अगर कोई भाषा है तो नेपाली ही है। इसलिए नेपाल हो या कोई अन्य देश, एक नेपाली भाषी व्यक्ति को हिंदी पढ़ने और समझने में थोड़ी भी दिक्कत नहीं होती है। नेपाल से हिंदी दैनिक 'नेपाल', साहित्यिक पत्रिका 'साहित्य लोक' द्वारा हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। नेपाल में हिंदी कविता के अतिरिक्त हिंदी गद्य का विकास भी आरंभ हुआ है।

थाईलैंड में हिंदी—थाईलैंड में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के यात्रा करने पर स्वामी सत्यानंदपुरी को थाईलैंड में भारतीय संस्कृति,

धर्म, दर्शन आदि का प्रचार करने भेजा गया। 1934 में स्वामी ने बैंकॉक में थाई-भारत संस्कृत आश्रम स्थापित किया। डॉ. करुणा उनको थाईलैंड का प्रथम हिंदी अध्यापक मानते हैं। 1983 में दिल्ली में तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन पर उनको सम्मानित किया गया। आजकल थाईलैंड में 5-6 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है।

सूरीनाम में हिंदी—सूरीनाम की औपचारिक भाषा डच है। सूरीनाम के समाज में हिंदी, जो भोजपुरी हिंदी है, भी बोली जाती है। वर्तमान में भारतीय यहाँ की कुल आबादी का 38 प्रतिशत है। सूरीनाम का समाज बहुसांस्कृतिक है, जहाँ अलग-अलग जाति, भाषा और धर्मवाले लोग रहते है। सूरीनाम में सृजनरत् कवि और लेखकों की एक लंबी सूची हैं, जो हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य की निरंतर सेवा में लगे हुए हैं। सूरीनाम के हिंदी लेखकों में भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा के प्रति विशिष्ट प्रकार का जुड़ाव दिखता है। सूरीनाम में वहाँ के गवर्नर लोहमन ने हिंदी स्कूल खुलवाए।

ब्रिटेन में हिंदी—ब्रिटेन में विद्वानों की हिंदी में रुचि 19वीं शताब्दी में हो चुकी थी। गिलक्राइस्ट, ग्राहम वेली जैसे विद्वानों ने हिंदी कोश, व्याकरण आदि में अपना योगदान दिया है। लंदन हिंदी प्रचार परिषद् द्वारा 'प्रवासिनी' साप्ताहिक 'अमरदीप', 'मिलाप', पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया जाता है।

बांग्लादेश में हिंदी—बांग्लादेश भी हिंदी समझनेवाला एक महत्त्वपूर्ण देश है। वहाँ के महाकवि नजरूल इस्लाम का बँगला के माध्यम से हिंदी पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अन्य कवियों में दाऊद हैदर, रफीद आजाद आदि कवि उल्लेखनीय हैं।

श्रीलंका में हिंदी—श्रीलंका के कोलंबो विश्वविद्यालय और जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है। 'हिंदी निकेतन' नामक संस्था इस क्षेत्र में सक्रिय है। डॉ. इंद्रा दशनायके, रत्नगिरि आदि हिंदी लेखन से जुड़े हुए हैं।

मॉरीशस में हिंदी—विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय सचिवालय मॉरीशस में स्थापित है। यहाँ 70 प्रतिशत भारतवंशी निवास करते हैं, जो हिंदी का प्रयोग करते हैं। दर्जनों की संख्या में पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। अनेक विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों में हिंदी में एम.ए. और पी-एच. डी. आदि की उपाधि प्राप्त करने की व्यवस्था है। रेडियो, टी.वी. में हिंदी प्रचलित है तथा हिंदी फिल्मों का बोलबाला है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत्, रामदेव धुरंधर, वासुदेव विष्णुदयाल, सोमदत्त बखौरी, जागा सिंह, बृजेंद्र मधुकर आदि हिंदी के प्रसिद्ध रचनाकार हैं।

विश्व के समुन्नत राष्ट्रों में भी हिंदी अप्रवासियों का बहुत बड़ा वर्ग है। यह हिंदी भाषी समाज यूरोप, अमेरिका और खाड़ी के अनेक विकसित राष्ट्रों में फैला हुआ है।

□

khemsingh.daheriya@gmail.com

क्या संसार में कहीं का भी आप एक दृष्टांत उद्धृत कर सकते हैं, जहाँ बालकों की शिक्षा विदेशी भाषाओं द्वारा होती हो।

—डॉ. श्यामसुंदर दास

भारत–चीन साहित्यिक संबंध में हिंदी का योगदान

—डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

संस्कृति किसी भी देश की आत्मा होती है तथा भाषा व साहित्य उस संस्कृति की वाहक। यदि किसी देश की सभ्यता–संस्कृति को समझना है तो सबसे अच्छा माध्यम साहित्य है। हम इतिहास से भी किसी सभ्यता संस्कृति को समझ सकते हैं।

भारत–चीन विश्व के दो सबसे प्राचीन सभ्यतावाले देश हैं, जिनके मध्य दो सहस्त्र वर्षों के आदान–प्रदान का गौरवशाली इतिहास रहा है। इतिहासकार भारत–चीन के मध्य आदान–प्रदान का प्रमाणिक समय पहली शताब्दी मानते हैं, जब बौद्ध धर्म का चीन में प्रवेश हुआ, परंतु ईसा पूर्व लिखे ग्रंथों में भी भारत–चीन संबंध का उल्लेख मिलता हैं। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में चीन के महान् इतिहासकार श माछ्येन द्वारा लिखित पुस्तक 'ऐतिहासिक अभिलेख' में भारत–चीन संबंध का वर्णन है। भारत के संस्कृत महाकाव्य रामायण में 'चीन' शब्द का प्रयोग हुआ है, महाभारत में 'चीनी घोड़े' का उल्लेख है, 'मनुस्मृति' में 'चीनी व्यक्ति' का उल्लेख है, कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में 'चिनपट्ट' का उल्लेख है, जिसका अर्थ चीनी वस्त्र होता है। ये सभी ग्रंथ ईसा पूर्व में लिखे गए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत–चीन सांस्कृतिक संबंध ईसा पूर्व में ही प्रारंभ हो चूका था। संस्कृत में इस्पात के लिए 'चीनज' शब्द का उपयोग हुआ है, नाशपाती को 'चिनराजपुत्र' कहा जाता था। कालिदास के 'कुमारसंभव' में 'चीनांशुक' का प्रयोग चीनी रेशम के लिए हुआ है।

चीन के पूर्वी हान राजवंश के सम्राट् हान मिन्गती के समय भारत से बौद्ध का धर्म का चीन में प्रवेश होता है, उसके उपरांत असंख्य भारतीय विद्वानों का भी चीन में आगमन होता है। चीन जानेवाले भारतीय ऋषि–मुनि केवल धर्म के ज्ञाता नहीं थे, अपितु उनमें से प्रत्येक ऋषि किसी–न–किसी विशेष विद्या में पारंगत थे। इस प्रकार भारतीय ऋषियों के साथ भारतीय दर्शन, भाषा विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान (नेत्ररोग, प्रसूतिरोग, गुदारोग, शिशुरोग), ध्वनि विज्ञान, व्याकरण, छंदशास्त्र आदि चीन पहुँचा, जिसका चीनी संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय विद्वान् धर्मरुची ने चीन पहुँचने के बाद नक्षत्र विज्ञान से संबंधित ग्रंथों का चीनी अनुवाद किया। ज्ञानभद्र और यशोगुप्त ने 'पंचविद्या' का अनुवाद किया। इस पंचविद्या में ध्वनि विज्ञान, प्रोद्योगिकी विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा व्याकरण शामिल था। उपशून्य ने छंदशास्त्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया। ज्ञानगुप्त अपने उत्कृष्ट चीनी भाषा के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे, उनके अनुवाद में थोड़ी भी त्रुटि नहीं रहती थी। उन्होंने 'फो पन शिंग ची

* क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन में सहायक प्रोफेसर।

चिंग (गौतम बुद्ध का जीवन चरित)' का अनुवाद किया। चीन जाकर भारतीय साहित्य का अनुवाद करने भारतीय मनीषियों में कुमार जीव का स्थान सर्वोपरि है। चौथी शताब्दी में चीन पहुँचते हैं और भारतीय ग्रंथों का चीनी अनुवाद कार्य शुरू करते हैं। कुमार जीव ने लगभग 50 से अधिक बौद्ध साहित्य के ग्रंथो का संस्कृत/पालि से चीनी भाषा में अनुवाद किया, जिनमें प्रमुख हैं विनयपिटक, महाप्रज्ञा पारमितासूत शास्त्र तथा दशभूमिकासुत्र का चीनी अनुवाद। चीन में इनकी ख्याति न केवल अनुवादक के रूप में थी। बल्कि बौद्ध दर्शन के गुरु के रूप में भी थी, इनके तीन हजार से अधिक शिष्य थे। परमार्थ छठी शताब्दी में चीन पहुँचे, इन्होनें 64 दार्शनिक ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसी काल में बोधिरूचि चीन के ल्वयाँग पहुँचे, इन्होनें 39 ग्रंथो का चीनी भाषा में अनुवाद किया। छठी शताब्दी में ही रत्नमती, बुद्धशांत, प्रज्ञारुचि, विमोक्षसेन आदि भारतीय विद्वान् भरत से चीन पहुँचे। इन विद्वानों का अलग-अलग मत था, अतः इन्होनें अलग-अलग अनुवाद ग्रंथ तैयार किए।

भारत चीन के इस साहित्यिक आदान-प्रदान में न केवल असंख्य भारतीय विद्वान् चीन पहुँचे, बल्कि अनगिनत चीनी विद्वतजनों भी अपनी अतृप्त ज्ञानपिपासा को संतृप्त करने के उदेश्य से ज्ञानभूमि भारत की यात्रा की। चौथी शताब्दी में पूर्वी चिन राजवंश काल में 38 चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने भारत की यात्रा के लिए प्रस्थान किया, इनमें से अधिकतर मार्ग में ही काल को प्राप्त हो गए। उसी काल में बौद्ध भिक्षु चिंग मंग के नेतृत्व में 15 भिक्षुओं का दल भारत यात्रा पर निकला, जिनमें से 9 भिक्षु पामेर पर्वत से आगे नहीं जा सके। एक यात्री की मार्ग में ही मृत्यु हो गई, चिंग मंग और उनके साथ गए चार यात्री ही भारत पहुँच सके। दसवीं शताब्दी में 457 बौद्ध भिक्षु भारत गए। पहली शताब्दी से शुरू होकर दसवीं शताब्दी तक भारत-चीन के मध्य विद्वानों का आना-जाना लगा रहा तथा दोनों महान् सभ्यताओं के मध्य साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान अनवरत जारी रहा। ग्यारहवीं शताब्दी में भारत इसलामी आक्रमण सफल होने के बाद तथा चीन में अल्पसंख्यक शासकों के द्वारा शासन के उपरांत दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान अवरुद्ध हो गया, आंशिक मात्रा में व्यावसायिक आदान-प्रदान जारी रहा।

भारत जानेवाले चीनी बौद्ध यात्रियों में सबसे प्रमुख फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग हैं। चौथी सदी के प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान अपनी यात्रा वृतांत लिखनेवाले चीनी यात्रियों में वे सर्वप्रथम चीनी यात्री हैं, भारत आने का उनका मुख्य उदेश्य विनयपिटक को चीन लाना। सातवीं शताब्दी में महान् चीनी बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेनसांग भारत से 657 संस्कृत ग्रंथों के साथ वापस चीन पहुँचे, जिनमें महायान सूत्र-224, महायान शास्त्र-192, स्थविरा सूत्र, शास्त्र एवं विनय-14, महासंगिका सूत्र, शास्त्र एवं विनय-15, महिसका शास्त्र एवं विनय-22, सम्मित्य सूत्र, शास्त्र एवं विनय-17, धर्मगुप्त का सूत्र, शास्त्र एवं विनय-42, सर्वास्तिवादसूत्र, शास्त्र एवं विनय-67 शामिल थे। 15 वर्षों के उपरांत ह्वेनसांग वापस चीन लौटने पर वृहद् स्तर पर बौद्ध सूत्रों के चीनी अनुवाद कार्य में लग गए और कुल 75 ग्रंथों का 1335 भागों में अनुवाद कार्य पूरा किया, जिसमें 'अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता' का चीनी अनुवाद सबसे महत्त्वपूर्ण है, जो 600 भाग में उपलब्ध है, उनके द्वारा 'योगकरा' का भी चीनी अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है, साथ ही चीनी संस्कृति का भारत में परिचय की दृष्टि से ह्वेनसांग ने चीन के महान् दार्शनिक ग्रंथ 'ताओज' का चीनी से संस्कृत अनुवाद किया। ह्वेनसांग के यात्रा-वृतांत के आधार पर ही भारत के अधिकतर बौद्ध स्थलों का खोज संभव हो सका,

जो मुसलिम आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दी गई थी, लगभग अस्सी प्रतिशत बौद्ध स्थल ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों के आधार पर खोजे गए हैं, जिनमें नालंदा, सारनाथ आदि प्रमुख हैं।

भारत से आए इन साहित्यिक ग्रंथों के चीनी भाषा में अनुवाद से चीनी संस्कृति अत्यंत समृद्ध हुई। उदहारणस्वरूप संस्कृत भाषा के स्वर विज्ञान के अध्ययन उपरांत चीनी विद्वानों ने चीनी भाषा के चार स्वारघात को निश्चित किया। चीनी भाषा में संस्कृत से लगभग बीस हजार से अधिक शब्द हैं, जिनमें से अधिकतर धर्म और दर्शन से संबंधित हैं, जैसे फो (बुद्ध), येनवांग (यमराज), शा (क्षण), छ्यान (ध्यान), था (स्तूप), नी (भिक्षुणी), फुसा (बोधिसत्व) थान श्यांग (चंदन) आदि हैं।

ग्यारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक भारत-चीन के मध्य सांस्कृतिक-साहित्यिक आदान-प्रदान लगभग अवरुद्ध रहा। बीसवीं सदी में भारत चीन के मध्य सांस्कृतिक-साहित्यिक आदान-प्रदान पुनः प्रारंभ होता है। रवींद्रनाथ ठाकुर की चार कविताओं का वर्ष 1915 में चीनी साम्यवादी दल के संस्थापकों में से एक छन तु श्यु ने चीनी भाषा में अनुवाद के बाद उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'शिन छिंग निएन' में प्रकाशित कराया। वर्ष 1924 और 1929 में उनकी चीन यात्रा भी हुई, तब उनके साथ चीन के प्रसिद्ध कवि श्वी चिडमो और प्रसिद्ध विद्वान् ल्यांग छी छाओ उनके साथ रहे, श्वी चिडमो की कविताओं पर ठाकुर का प्रभाव भी दृष्टिगोचर है।

1935 में चीन के युवा विद्वान् ची श्येन लिन जर्मनी जाते हैं, वहाँ संस्कृत और पाली भाषा का गहन अध्ययन करते हैं, वापस आकर चीन के प्रसिद्ध पेइचिंग विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा एवं संस्कृति का अध्यापन शुरू करते हैं तथा साथ संस्कृत साहित्य के ग्रंथों के अनुवाद का भगीरथी कार्य भी शुरू किया। इन्होंनें अभिज्ञानशाकुंतल, विक्रमोर्यवशियम्, वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य पर दर्जनों पुस्तक एवं सैकड़ों आलेख प्रकाशित कराया। प्रो. श्वी फान छंग वर्ष 1929 में जर्मनी जाकर संस्कृत एवं पालि का अध्ययन करते हैं। वापस चीन आकर भारतीय साहित्यिक कृतियों का चीनी में अनुवाद करते हैं। इनके द्वारा संस्कृत से चीनी में अनुदित कृतियों में से प्रमुख हैं—'श्री अरबिंदो की रचनाएँ', 'संपूर्ण योग', 'भारतीय दर्शन-पचास उपनिषद्', 'प्राचीन ब्राह्मण धर्म', 'भगवद्गीता' आदि। इनकी भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रति अगाध श्रद्धा का ही परिणाम था कि मृत्युशैया पर होते हुए भी 'भगवद्गीता' की चीनी में अनुदित पांडुलिपि को सौंपकर ही शरीर का त्याग किया।

1943 में चीन के विद्वान् चिन ख मु भारत आते हैं, भारत में संस्कृत और पालि के अध्ययन के उपरांत प्राचीन भारतीय दर्शन, संस्कृत साहित्य, बौद्ध धर्म पर शोध अध्ययन करना शुरू करते हैं, वापस चीन जाने के बाद अनुवाद कार्यों में अपना महती योगदान देते हैं। उनके द्वारा अनुदित कृतियों में से महत्त्वपूर्ण हैं—महाभारत, मेघदूत, सावित्री, गांधी दर्शन, संस्कृत साहित्य का इतिहास, खगोल विज्ञान आदि। साथ ही इन्होनें मूल पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें प्रमुख हैं—'संस्कृत साहित्य का इतिहास', 'भारतीय संस्कृति', 'कला विज्ञान वार्ता', 'तुलनात्मक सांस्कृतिक निबंध', 'चीनी-भारतीय लोगों की मित्रता का इतिहास' आदि। 1918 में छन यिन ख अमेरिका के प्रसिद्ध हॉवर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत और पाली का पालि का अध्ययन करने जाते हैं। 1942 में जनमे ह्वांग पाओ शंग संस्कृत एवं पालि के प्रसिद्ध चीनी विद्वान् हैं। इनकी प्रसिद्ध अनुवादित कृतियों में 'भारतीय दर्शन', 'बौद्ध जातक की चयनित कहानियाँ', 'संस्कृत-चीनी बौद्ध शास्त्र', 'संस्कृत-चीनी

वार्तालाप', आदि प्रमुख हैं। उनकी पुस्तकों में 'भारतीय शास्त्रीय काव्यशास्त्र', 'महाभारत का परिचय' 'संस्कृत काव्यशास्त्र का संकलन' आदि प्रसिद्ध हैं। 1902 में जनमे प्रो. लिन ली क्वांग फ्रांस में जाकर संस्कृत एवं पालि का अध्ययन करते हैं। प्रो. छ्येन वन चोंग वर्ष 1984 में चीन के प्रसिद्ध पेइचिंग विश्वविद्यालय में संस्कृत और पालि का अध्यापन कार्य में लगते हैं।

बीसवीं शताब्दी में भारत-चीन के मध्य साहित्यिक आदान-प्रदान को पुनर्जीवित करने के लिए चीन में हिंदी शिक्षण प्रारंभ होता है। 1942 में चीन के युन्नान प्रांत के राष्ट्रीय पूर्वी भाषा महाविद्यालय में हिंदी शिक्षण प्रारंभ हुआ, लेकिन उस समय चीन में जापान विरोधी युद्ध विजय को देखते हुए हिंदी विभाग को सिछ्वान प्रांत के छोंग्छिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया और 1946 में नानचिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया, 1949 में चीनी जनवादी गणराज्य की स्थापना हुई और पूर्वी भाषा महाविद्यालय को नानचिंग शहर से राजधानी पेइचिंग के पेइचिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा महाविद्यालय में मिला दिया गया जो कालांतर में चीन में हिंदी अध्ययन का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया।

चीन में हिंदी शिक्षण को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है, पहला वर्ष 1942 से वर्ष 1948 तक, यह समय हिंदी शिक्षण का प्रारंभिक काल था, उस समय चीन राजनीतिक रूप से बहुत ही उथल-पुथल से गुजर रहा था, परिणामतः इस काल में हिंदी भाषा शिक्षण में ज्यादा प्रगति नहीं हुई। चीन में हिंदी शिक्षण का दूसरा काल वर्ष 1949 से 1968 तक था, यह काल चीन में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत ही अच्छा रहा। इसी समय नए भारत और नए चीन की स्थापना हुई। दोनों देशों के मित्रता की नई कहानी शुरू हुई। तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चऊ एन लाय ने चीनी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने लिए प्रेरित किया, उस समय के भारतीय राजदूत महोदय की पत्नी को पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के निमंत्रित किया गया, फलतः हिंदी का भी विकास द्रुतगति से हुआ। इस काल के हिंदी विद्वानों ने चीन के हिंदी शिक्षण की मजबूत नींव रखी, लेकिन 1962 में हुए भारत-चीन युद्ध ने हिंदी की विकास-यात्रा पर विराम लगा दिया।

तीसरा काल वर्ष 1966 से 1976 तक था, यह काल चीन में सांस्कृतिक क्रांति का काल था, सांस्कृतिक क्रांति के समय चीन में बहुत असमान्य काल था, विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा की प्रणाली को बंद कर दिया गया था, विद्यार्थियों को अनुशंसा के आधार पर प्रवेश मिलने लगा, जिसके कारण शैक्षिक रूप से असामान्य लोग विश्वविद्यालय में प्रवेश करने लगे, जिसका प्रभाव हिंदी शिक्षण पर भी पड़ा प्रवेश लेनेवाले विद्यार्थी मुख्यतः किसान और सैनिक होते थे, जिनकी अकादमिक क्षेत्र में कोई विशेष रुचि नहीं थी,फलतः उनका चीन के हिंदी अध्ययन -शोध में कोई विशेष योगदान नहीं रहा।

चौथा काल 1976 से 2005 और पाँचवां काल 2005 से वर्तमान समय तक। यह समय चीन के आर्थिक विकास के प्रारंभ का समय था, अस्सी के अंत का दशक चीन के आधुनिकतावाद और आर्थिक सुधारवाद में प्रवेश का समय था। यह चीन में चतुर्दिक सकारात्मक परिवर्तन का समय था। आर्थिक प्रगति के साथ चीन के कई नए विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई।

पाँचवां काल 2005 से वर्तमान समय तक। वर्ष 2005 में चीनी राष्ट्रपति का भारत आगमन हुआ, दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार बढ़ने लगा, व्यापार के साथ-साथ भाषाई संबंध भी प्रगाढ़ करने की आवश्यकता को दोनों देशों के नेताओं ने समझा और इस काल में चीन में सबसे ज्यादा

विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई और लगभग 10 नए विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम में स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठयक्रम शुरू की गई। वर्तमान में चीन के सत्रह विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य की पढ़ाई हो रही है। चीनी विद्यार्थी स्नातक एवं स्नातकोत्तर में भी लघु शोध निबंध लिखते है, इन लघु शोध निबंधों के माध्यम से चीनी विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, दर्शन, वाणिज्य, भारतीय नारी की स्थिति आदि को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही चीनी युवा भी अपने तथ्यपरक शोधों से हिंदी भाषा एवं साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

भारत चीन के मध्य साहित्यिक आदान-प्रदान को एक नई दिशा देते हुए चीन में हिंदी अनुवाद भी व्यापक स्तर पर हो रहे हैं, अभिज्ञानशाकुंतलम, पंचतंत्र, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, सूरसागर, मैला आँचल, निर्मला आदि भारतीय साहित्यिक कृतियों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चूका है I भारत के चीनी भाषा के विद्वान् प्रो.बाली राम दीपक ने चीन के महान् दार्शनिक ग्रंथ 'कन्फ्यूशियस के सूक्ति संग्रह', 'मेंसिअस' आदि का चीनी भाषा से हिंदी में अनुवाद किया है। वर्ष 2016 में भारत-चीन सरकर ने सयुंक्त अनुवाद कार्यक्रम की घोषणा की, जिसमें चीनी सरकार 25 भारतीय साहित्यिक कृतियों का हिंदी से चीनी में अनुवाद करेगी तथा भारत सरकार 25 चीनी साहित्यिक कृतियों का चीनी से हिंदी भाषा में अनुवाद करेगी। उदेश्य है— भारत-चीन के वैसे पाठक, जिन्हें चीनी-हिंदी नहीं आती, वे इस अनुवाद कार्यक्रम के माध्यम से एक-दूसरे की संस्कृति को समझ सकें। हिंदी से चीनी में अनुवादित होनेवाली साहित्यिक रचनाओं में सूरदास-ग्रंथावली, मुंशी प्रेमचंद रचना संचयन (गोदान उपन्यास और लघुकथाएँ), अज्ञेय रचना संचयन (उनकी कविताएँ और लघु कहानियाँ), भीष्म साहनी रचना संचयन (तमस उपन्यास और लघुकथाएँ), महादेवी वर्मा रचना संचयन (कविताएँ) आदि हिंदी साहित्यिक कृतियाँ शामिल हैं। इस प्रकार के अनुवाद कार्यक्रम के माध्यम से भारत-चीन के मध्य दो हजार वर्षों के साहित्यिक आदान-प्रदान को पुरानी गौरव प्रदान करना तथा एक नई दिशा देना है।

वाल्मीकि रामायण, पंचतंत्र, अभिज्ञानशाकुंतलम् का चीनी भाषा में पद्यानुवाद करनेवाले प्रो. चि श्येनलिन को वर्ष 2008 भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया। उस समय के अस्पताल में थे, भारत आने की स्थिति में नहीं थे, तब भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री श्री प्रणब मुखर्जी ने स्वयं चीन जाकर अस्पताल में प्रो. चि श्येनलिन को पद्मभूषण से सम्मानित किया, पद्मभूषण से सम्मानित होनेवाले वे प्रथम एवं एकमात्र चीनी विद्वान हैं। हिंदी में उनके योगदान को देखते हुए प्रसिद्ध चीनी शिक्षक प्रोफेसर यू लोंग यू को वर्ष 2016 में भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा भारत अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए 'भारत विद् पुरस्कार' प्रदान किया गया। बीजिंग विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर च्यांग चिंग ख्वेई, जिनका सूरदास पर विशेष शोध कार्य हैं, को हिंदी में विशेष योगदान के लिए वर्ष 2018 में भारत सरकार द्वारा 'डॉ. जार्ज ग्रयर्सन पुरस्कार' प्रदान किया गया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भारत-चीन के मध्य साहित्यिक आदान-प्रदान में जो योगदान संस्कृत, पालि भाषा ने दिया है, वर्तमान समय में वहीं कार्य हिंदी भाषा के माध्यम से हो रहा है। आशा है, भविष्य में भारत- चीन के मध्य साहित्यिक संबंध हिंदी के द्वारा और प्रगाढ़ होंगे।

□

vivekmani.bhu@gmail.com

फिजी हिंदी भाषा, साहित्य और सामाजिक सरोकार

—डॉ. सुभाषिनी कुमार/खमेंद्रा कमल कुमार

फिजी में भारतीय मूल के फीजियन, जिनकी आबादी 37.5% हैं, मुख्य रूप से हिंदी के एक स्थानीय संस्करण 'फिजी हिंदी' या 'फिजीबात' में अपने भावों को सरलता से अभिव्यक्त करते हैं। गिरमिट काल के दौरान फिजी ब्रिटिश सरकार के अधीन था और औपनिवेशक प्रभाव के कारण हिंदी की उपभाषाओं और बोलियों में अंग्रेजी, ई-तऊकई और देशज शब्दों का मिश्रण हुआ। फलस्वरूप इसकी प्रकृति और स्वरूप में परिवर्तन हुआ और यह एक धरा की ओर मुड़ने लगी, जिससे यहाँ 'फिजी हिंदी' भाषा की उत्पत्ति हुई (जे.एस. कँवल, 1980) अ हंड्रेड इयर्स ऑफ हिंदी इन फिजी)। अतः हिंदी ने, जैसा देश वैसा अपना वेष बनाया। इसकी साज-सज्जा तो बदली, किंतु इसने अपने भाषिक संस्कार को सुरक्षित रखा।

सन् 1879 से 1916 के बीच भारत में तत्कालीन ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा लगभग साठ हजार भारतीयों को गन्ने, नारियल और कपास के बागानों में काम करने के लिए फिजी द्वीप समूह लाया गया था। चूँकि ये भारतीय विविध भारतीय क्षेत्रों से थे, इसलिए उन्हें संवाद करने के लिए एक संपर्क भाषा की आवश्यकता थी। उन दिनों फिजी पर ब्रिटिश सरकार का राज था और औपनिवेशक प्रभाव के कारण यहाँ हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों में अंग्रेजी तथा फीजियन देशज शब्दों का मिश्रण हुआ। फिजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी, भोजपुरी और हिंदी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न भाषा है, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं के अलावा फीजियन और अंग्रेजी भाषा से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिये गए हैं। फिजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द हैं, जो गिरमिट काल के दौरान कृषि जीवन और नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे।

हालाँकि, फिजी हिंदी फिजी के लगभग सभी भारतवंशियों की मातृभाषा है, लेकिन अंग्रेजी और खड़ी बोली हिंदी की तुलना में इसे निम्न कोटि की भाषा समझा जाता है। जहाँ शिक्षण और औपचारिक स्थलों पर मानक हिंदी को मान्यता दी जा रही है, वहीं अनौपचारिक स्थलों पर फिजी हिंदी अभिव्यक्ति का माध्यम है। फिजी हिंदी भाषा के साथ अकसर यह संदेह रहा है कि वह एक अपूर्ण, टूटी-फूटी, व्याकरणहीन भाषा है और इसका प्रयोग सिर्फ बोल-चाल के लिए ही उपयुक्त है। इस वजह से इसके संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया।

आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के दौर में

* फिजी नेशनल यूनिवर्सिटी में सहायक प्रोफेसर।

अंग्रेजी भाषा का निरंतर प्रभाव फिजी के प्रवासी भारतीय समाज पर देखा जा सकता है। जैसे-जैसे लोग गाँवों से शहर की ओर बढ़ रहे हैं और शहर से विदेश की ओर प्रवास कर रहे हैं, तो इसके साथ उनकी भाषा एवं संस्कृति में परिवर्तन आ रहे हैं और धीरे-धीरे वे अपने इतिहास, पूर्वजों की भाषा एवं संस्कृति से कटते जा रहे हैं। फिजी के प्रसिद्ध इतिहासकार, प्रो. बृज विलाश लाल कहते हैं—"हम लोग के चाही कि आनेवाले संतान के लिए हम लोग पुराना जमाना के बारे में लिखी, ताकी उनके मालूम होई कि हम लोग कौन रास्ता से गुजरा···। हम लोग के अपना इतिहास बचाए के रखे के चाही। काहे कि बिना इतिहास के हम लोग एक बिना पेंदी के लोटा रहीब।" उनका मत है कि मानव को अपने सांस्कृतिक, शैक्षणिक, जातीय और सामाजिक मूल्यों को कायम रखने के लिए अपने पूर्वजों की भाषा को संजोकर रखना है। जहाँ भाषा अल्पसंख्यक समूह की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक मानी जाती है, वहाँ भाषा के लंबे समय तक बनाए रहने की संभावना रहती है, वरन् उसके लुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

जातीय पहचान के सबसे महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक भाषा है। लोगों की पहचान उस भाषा से परिभाषित होती है, जिसे वे बोलते और लिखते हैं। यदि अल्पज्ञात भाषाएँ विलुप्त हो जाती हैं, तो अल्पज्ञात भाषा का उपयोग करनेवालों की जातीय पहचान भी गायब हो जाएगी। इसलिए जिस प्रकार प्राचीन पुरातत्व स्थलों, वास्तुकला, वनस्पतियों और जीवों की लुप्तप्राय प्रजातियों आदि का संरक्षण जरूरी है, वैसे ही अल्पज्ञात भाषाओं के संरक्षण के लिए उनका प्रलेखन महत्त्वपूर्ण है, जो हमारी वैश्विक विरासत का एक अनूठा हिस्सा हैं।

डॉ. विमलेश कांति वर्मा का यह मत है कि "भाषा सुरक्षित और सबल तब होती है, जब वह सृजनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। लिखित अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर अच्छा अधिकार होना आवश्यक है। यह अधिकार सीखी हुई भाषा पर उतना कभी नहीं होता, जितना अपनी मातृभाषा पर अधिकार होता है। ये भाषा रूप ही उनकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के प्रभावशाली भाषा रूप हो सकते हैं।"

इक्कीसवीं शताब्दी में फिजी हिंदी भाषा के प्रलेखन की ओर प्रो. सुब्रमनी का ध्यान गया और उन्होंने अंग्रेजी भाषा के मोह को छोड़कर फिजी हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखनी प्रारंभ कीं। गिरमिटियों की भाषा, जीवन शैली, संस्कृति, परंपरा, अनुभव आदि का यथार्थ चित्रण 'डउका पुरान' (2001) और 'फिजी माँ' (2018) जैसी औपन्यासिक कृतियों में अंकित है। इस प्रकार प्रो. सुब्रमनी अपने पूर्वजों के इतिहास तथा अपने समूह के अस्तित्व को बनाए रखने में सफल हुए। अंग्रेजी के प्रतिष्ठित और चर्चित साहित्यकार होते हुए भी प्रो. सुब्रमनी ने अंग्रेजी भाषा के मोह को त्यागकर फिजी हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखना प्रारंभ किया, वे फिजी हिंदी भाषा को अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अधिक समर्थ मानते हैं। फिजी के प्रवासी भारतीय मानक हिंदी की तुलना में, फिजी हिंदी भाषा में अपनी भाव-व्यंजनाओं को अच्छी तरह से अभिव्यक्त कर पाते हैं।

प्रो. सुब्रमनी फिजी हिंदी लेखन के संबंध में कहते हैं—

"वर्नाकुलर भाषाओं में लिखने का मेरा सिर्फ एक ही उद्देश्य था और वह ये कि देश में इन भाषाओं का प्रचार-प्रसार हो सके। ऐसा करने से न हम केवल इन प्रचीन भाषाओं के बारे में जानकारियाँ हासिल कर पाएँगे, बल्कि इसके माध्यम से पाठकों को एक अलग तरह का बौद्धिक समाज और जीवन देखने को मिलेगा, जो अभी तक उनकी नजरों और दिलों से अदृश्य था। फिजी हिंदी में लिखकर मैं लोगों को यह दिखाना चाहता था कि फिजी हिंदी में न केवल लिखा जा सकता है, बल्कि बहुत ही बेहतरीन ढंग से लिखा जा सकता है।"

'फिजी माँ : हजारों की माँ' में लेखक ने अपनी निजी यादों और जीवनकाल की स्मृतियों को नायिका बेदमती के द्वारा अभिव्यक्त किया है। उपन्यास के मूल तत्त्व में महिलाओं की मुक्ति, सबाल्टर्न (subaltern) इतिहास, मदर इंडिया का वैश्विक विस्तार, सुदूर द्वीपों का ग्रामीण जीवन, विदेशी भूमि में भारतीय संस्कृति और प्रवास का आघात शामिल हैं। उपन्यास की कथा बेदमती के बचपन, उसकी स्कूली शिक्षा, दांपत्य जीवन, लंबासा गाँव से शहरी विधवा और नायिका एवं उसके सामाज की गद्यात्मक गाथा है। उक्त उपन्यास के संबंध में डॉ. दानेश्वर शर्मा का कहना है कि "जैसे फिजी हिंदी को साहित्यिक सृजन की भाषा के रूप में मान्यता मिल रही है, वैसे ही सुब्रमनी द्वारा लिखित उनके उपन्यास 'फिजी माँ' को भी मान्यता दी जाए, क्योंकि फिजी हिंदी की यात्रा में यह उपन्यास एक और मील का पत्थर है" तथा डॉ. विमलेश कांति वर्मा इसे फिजी हिंदी का महाकाव्य मानते हैं। सुब्रमनी का 'डउका पुरान' और 'फिजी माँ : हजारों की माँ' दोनों उपन्यास गिरमिट काल से चले आ रहे भारतवंशियों की जीवन-यात्रा का एक अनमोल संग्रह है। इन उपन्यासों में उनके अनुष्ठानों, प्रथाओं और रीति-रिवाजों को दर्ज किया गया है, ताकि भावी पीढ़ी साहित्यिक मनोरंजन के अलावा, इसका महत्त्व एक ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय दस्तावेज के रूप में भी उठा सके।

यूनेस्को का मानना है कि हर दो हफ्ते में दुनिया में एक भाषा विलुप्त हो जाती है, और उसके साथ ही उससे जुड़ा मानवीय इतिहास और सांस्कृतिक विरासत भी खो जाती है। इसलिए भाषा को संरक्षित करना बहुत जरूरी है। किसी भी समाज की भाषा उस अंचल की रीढ़ होती है और उसके खत्म होने का सवाल सिर्फ भाषाई नहीं है, बल्कि, बोली के नष्ट होने के साथ ही जनजातीय संस्कृति, तकनीक और उसमें अर्जित बेशकीमती परंपरागत ज्ञान भी तहस-नहस हो जाता है। बाजार, रोजगार और शिक्षा जैसी वजहों से जनजातीय बोलियों में बाहर के शब्द तो प्रचलित हो रहे हैं, लेकिन उनकी अपनी मातृभाषा के स्थानिक शब्द प्रचलन से बाहर हो रहे हैं, जो दुखद है। इसलिए हर भाषा को पहचान मिलनी चाहिए और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका विशिष्ट हिस्सा होना चाहिए। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता है। जबकि भाषा ही अकसर समुदाय के गीतों, कहानियों और कविताओं को व्यक्त करने का एकमात्र माध्यम है। इस विचार हेतु प्रो. सुब्रमनीजी ने 'डउका पुरान' (2001) और 'फिजी माँ' (2018) में फिजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को संग्रहित किया है, जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे थे, जैसे 'मनहई', 'छीछर लेदर', 'बजर भट्ट', 'टिर्राई', 'नारियल के बूलू', 'टिबोली', 'झाप', 'निपोरिस', 'ठिनकही', 'गोदना' 'झाप' आदि फिजी हिंदी शब्दों का पुरालेख है। इसके अतिरिक्त इसमें फीजियन भाषा के बहुत से शब्द उधार लिए गए हैं जैसे—

बकेड़ा	- केकड़ा	लोलो	- नारियल दूध
वनुवा	- गाँव	तबाले	- साला
मातंगाली	- सामंत	नगोना	- पेय पदार्थ
सूलु	- लुंगी	तईतई	- खेत

भाषा न केवल लोगों के बीच संवाद करने का एक तरीका है, बल्कि एक संस्कृति भी है। 'डउका पुरान' में फिजी की ग्रामीण संस्कृति का जोरदार चित्रण प्रस्तुत किया गया है। फिजी के खेत-खलिहान भारतीय संस्कृति के गढ़ रहे हैं, पर अब वे संकट में घिरे हुए हैं। किसानों के विस्थापन और राजनैतिक अस्थिरता के कारण भारतीय समुदाय की जीवन शैली बिखरने लगी है। उपन्यासकार ने 'डउका पुरान' में फिजी के प्रवासी भारतीयों की जीवन शैली एवं संस्कृतियों का प्रभावी चित्र खींचा है। 'डउका पुरान' में

नायक फिजीलाल अपने गाँव में होली पर्व का वर्णन इन शब्दों में करते हैं—

"ऊ साल हम लोग खूब जम कै होली मनावा। नवा टोलिक उप्पर पहाड़ पे हम लोग होलिका फूँका। मंडली वाले पहली दफा चौताल गाइन। कोइक सहूरे न रहा गावेक। अउरतियन खूब हंसै। बोले, 'चौताल गावें की सोहर!' लल्ला थोरा जानत रहा। आयक चौताल उठाय दे। भागीरथ के भी फगुवाम सउक रहा। खजड़ी या झीका उठाय लेवै। बाप हमार लइक बइठ जाय डंडताल।"

उपर्युक्त अंश में फिजी के गाँवों में किस प्रकार मंडलियों द्वारा होली का पर्व मनाया जाता है, दरशाया गया है। होली के महीने में लोग चौताल गाने का प्रयास करते हैं तथा होलिका दहन की रस्म निभाते हैं। अतः भाषाएँ इन अनोखी संस्कृतियों को भी व्यक्त करती हैं। ये सभी चीजें संस्कृति, मानव व्यवहार और भावना की व्याख्या करने का एक तरीका है, जो अंग्रेजी भाषा में उस सजीवता से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

फिजी माँ के माध्यम से सुब्रमनी ने अपने पूर्वजों की भाषा को पुनर्जीवित करने की सार्थक पहल की है, जिसमें उनका अपना जीवन है और इस जीवन को गति देनेवाली उनकी अपनी संस्कृति, अपनी परंपरा और अपने संस्कार हैं। उन्होंने अपने बाल काल के उस ग्रामीण समाज को फिर से समझने की चेष्टा की है, जिससे उनकी कृतियों में ग्रामीण समाज की सच्ची झलक हमारी आँखों के सामने दिखाई देती है। उदाहरण के लिए 'फिजी माँ' (पृष्ठ 246-248) का यह अंश प्रस्तुत हैं—

"रमायन लाल तूल में बंधा टेबल पे धरान, छोटा परचारक गए रमायन खोल के सिंगहासन् पे रखिस अउर खोजे लगा कहाँ बाँचे के है। मंडलीवाले लड़का के अगल बगल खड़ा होय गइन। सीतल जल्दी से फूल बाटिस। रसीका लपक के गई रूम से गेंदा के वास लई आई। टेबल पे रख के मूंड निच्चे करे, मुस्कात, आपन जगहा पे बइठ गई।"

उक्त अंश फिजी में 'रामचरितमानस' की परंपरा को रेखांकित करता है। फिजी में तुलसी की 'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का परम द्योतक है। यहाँ बड़े आदर और श्रद्धा के साथ रामकथा पढ़ी जाती है और तुलसी की रामकथा का आनंद उठाया जाता है। गिरमिट काल से यहाँ हर मंगलवार को रामायण पाठ करने की लोक परंपरा जारी है, जिसका सुंदर शब्दचित्र लेखक 'फिजी माँ' में खींचते हैं।

भाषा लोक मान्यताओं व प्राचीन संस्कृतियों की वाहक है। प्रो. सुब्रमनी का उपन्यास 'फिजी माँ' अपनी तरह की एक अलग कृति है। यह वृहद औपन्यासिक कृति 1026 पृष्ठों की है, जिसमें लेखक ने फिजी के भारतीय समाज के संबंध में ऐसी जानकारियाँ दी हैं, जो पाठक को स्तब्ध करती हैं। 'फिजी माँ' उपन्यास में प्रो. सुब्रमनी ने देवी पूजा, भूमि पूजा, लोकगीत, बकड़ी पूजन, पियरी झाड़ना, पूर्वजों के अंधविश्वास, पूर्वजों के खान-पान की चीजें, शादी-बियाह आदि को उपन्यास की कथा में समाहित किया है। उदाहरण के लिए, 'सतवा' एक प्रकार का मिष्ठान है, जो फिजी के लंबासा ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित था, पर वर्तमान पीढ़ी इसके बारे में बहुत कम जानती है और आज के अधिकांश युवा वर्ग ने इस मिष्ठान को चखा तक नहीं है। 'फिजी माँ' में नायिका बेदमती अपनी माँ से 'सतवा' के विषय में पूछती है—

"मइया थरिया में रकम-रकम के दाल निकारे रही सबेरे पीसे के खातिर- उर्दी,
मटर, तूर, मकई। माँ, सतुवा कइसे बने?…

सन् 2018 में 'गिरमिट दिवस समारोह' के अवसर पर फिजी हिंदी के प्रथम कहानी संग्रह 'कोई किस्सा बताव' का लोकार्पण लौतोका शहर में हुआ। यह पुस्तक श्री प्रवीण चंद्रा द्वारा संपादित तथा फिजी के लब्धप्रतिष्ठ वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. सुब्रमनी, प्रो. सतेंद्र नंदन, डॉ. ब्रिज लाल, डॉ.

रामलखन प्रसाद, श्रीमान खेमेंद्रा कुमार, श्रीमती सरिता चंद, श्रीमान नरेश चंद, डॉ. सुभाषिनी कुमार आदि लेखकों द्वारा फिजी हिंदी भाषा में रचित कहानियों का अनोखा संग्रह है। इन कहानियों के माध्यम से लेखकों ने अपने पूर्वजों, अपने माता-पिता, भाई बंधुओं के सुख-दुःख को देखा और अपनी रचनाओं में उनके जीवन की यथार्थता का परिचय दिया है। 'कोई किस्सा बताव' कहानी संग्रह एक ऐसी कृति है, जिसमें फिजी के प्रवासी भारतीयों की जीवन शैली को कहानी की विधा में बाँधा गया है। इस 191 पृष्ठों के संकलन में सोलह कहानियाँ, एक कविता और एक अप्रकाशित उपन्यास का अंश भी शामिल किया गया है।

हर व्यक्ति को अपने अनुभव, भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। 'कोई किस्सा बताव' कहानी संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता इसकी भाषा है। फिजी के प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने फिजी हिंदी के महत्त्व को समझा और उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना; यह इस बात का प्रमाण है कि फिजी के सृजनात्मक हिंदी लेखन में लेखकों का सम्मान अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रति निरंतर बढ़ता जा रहा है और फिजी हिंदी प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

इस प्रकार फिजी हिंदी साहित्य लेखन एक ओर प्रवासी भारतीयों की भाषा, रीति-रिवाज, उनके आचार-विचार, आशा-आकांशाओं और उनके उत्थान एवं पतन का आख्यान है, वहीं दूसरी ओर फिजी में बसे भारतवंशियों के मनोविनोद, जमीन, खेती-बारी, पशुओं, परंपरा-गत विश्वास आदि प्रवृत्तियों का अनोखा भाषागत संकलन है। यदि हम इन भाषाओं को खो देते हैं तो हम अपना प्राचीन ज्ञान भी खो देते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि फिजी हिंदी भाषा हमारी भाषिक पहचान और संस्कृति का महत्त्वपूर्ण आधार है।

□

Subashni.Kumar@fnu.ac.fj

आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी न होनी चाहिए।

—महावीर प्रसाद द्विवेदी

मनुष्य सदा अपनी मातृभाषा में ही विचार करता है।

—मुकुंदस्वरूप वर्मा

भाषा ही राष्ट्र का जीवन है।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

विश्व-भाषा की ओर अग्रसर हिंदी

—अतुल कोठारी

भारत अपनी भाषाई विविधता और भाषिक समृद्धि हेतु वैश्विक स्तर पर पहचान रखता है। भारतीय भाषा हिंदी भारत की अन्य भाषाओं को एक संपर्क भाषा के रूप में जोड़ने का काम करती है। जब कोई भाषा संपर्क भाषा के रूप में काम करती है तो कहीं-न-कहीं वह सांस्कृतिक एकत्व को स्थापित करने का भी कार्य पूर्ण करती है। आज के परिप्रेक्ष्य में हिंदी ने पूरे भारत के भाषा समाज को जोड़ने का काम किया है। भारत में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा के साथ-साथ यह पूरे भारत को जोड़नेवाली भाषा है। अपने इसी सहज स्वभाव के कारण यह विश्व भाषा की ओर अग्रसर है। दीर्घकाल तक भारतवर्ष परतंत्र रहा, लेकिन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के समय से हिंदी ने जो अपना स्वरूप और स्वभाव विकसित किया, उसके कारण आज यह सर्वाधिक शीघ्रता से विश्व भाषा बनने की ओर उन्मुख है। विश्व भाषा बनने की समस्त कसौटियों पर हिंदी खरी उतरती है। परंतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि अपने देश में यह शिक्षा, अनुसंधान, शासन-प्रशासन, न्याय और कामकाज की भाषा सम्यक् तरीके से बने। हिंदी को विश्व भाषा बनाना एक आदर्श हो सकता है।

विश्व हिंदी दिवस पहली बार 2006 में मनाया गया था। 10 जनवरी की तारीख इसलिए चुनी गई, क्योंकि 10 जनवरी, 1949 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में पहली बार हिंदी बोली गई थी। तबसे हिंदी ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं, फिर भी हिंदी देश एवं दुनिया में सतत आगे बढ़ती रही है। आज हिंदी केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका विस्तार विश्व के सैकड़ों देशों में है। अस्सी करोड़ से ज्यादा लोग पूरे विश्व में हिंदी बोलनेवाले हैं। हिंदी भारत के साथ-साथ फिजी की भी राजभाषा है तथा मॉरिशस, त्रिनिदाद, गुयाना और सूरीनाम में क्षेत्रीय भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी को न्यायालय की भाषा के रूप में वर्ष 2019 में मान्यता प्रदान की गई। साथ-ही-साथ संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, साउथ अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जर्मनी, सिंगापुर, कनाडा, यू.ए.ई. जैसे देशों में भी हिंदीभाषी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। यह विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। जहाँ विकिपीडिया हिंदी को मंदारिन (चीनी) तथा अंग्रेजी के बाद तृतीय स्थान देता है, वहीं शोधकर्ता डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल हिंदी का प्रथम स्थान अपने शोध में सिद्ध कर चुके हैं। विज्ञान के इस युग में भारत जैसे विशाल देश की राजभाषा के जानकारों की संख्या का सुनिश्चित न होना बड़ी विडंबना है। 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का

---

* शिक्षा, संस्कृति उत्थान न्यास के राष्ट्रीय सचिव।

उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि 2011 के आँकड़े के अनुसार लगभग 53 करोड़ लोग इसका प्रयोग करते हैं। एथनोलॉग : लैंगुएजेस ऑफ द वर्ल्ड, 2022 के अनुसार विश्व में हिंदी का स्थान इंग्लिश एवं मंदारिन (चीनी) के बाद तीसरे नंबर पर आता है। इस शोध के अनुसार मातृभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करनेवालों की संख्या 34 करोड़ है और द्वितीय भाषा के रूप में प्रयोग करनेवालों की संख्या 26 करोड़ है। दूसरी ओर के.पी.एम.जी. की वर्ष 2021 की रिपोर्ट के अनुसार मातृभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करनेवालों की संख्या लगभग 53 करोड़ है। मंदारिन बोलनेवालों की संख्या लगभग 112 करोड़ है, परंतु एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जहाँ मंदारिन भाषा समूह की सिंचुआनीस एवं लोअर यांग्तजे जैसी भाषाओं की एकत्र रूप में गणना की जाती है, वहीं हिंदी समूह की राजस्थानी, मैथिली, अवधी, ब्रजभाषा को जोड़कर संयुक्त रूप से नहीं दरशाया जाता। इस प्रकार विश्व की दो प्रमुख भाषाओं की गणना के लिए अलग-अलग पैमाने अपनाना न्यायपूर्ण नहीं है।

विश्व में दैनिक समाचार-पत्रों की दृष्टि से प्रथम बीस समाचार-पत्रों में हिंदी के पाँच समाचार-पत्र दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिंदुस्तान एवं राजस्थान पत्रिका प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। {वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ न्यूज पब्लिशर्स (वैन-इफ्रा) द्वारा प्रकाशित 'वर्ल्ड प्रेस ट्रेंड्स-2016' रिपोर्ट}

विभिन्न देशों के 200 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है तथा हिंदी के 91 चेयर भी स्थापित किए गए हैं। आई.सी.सी.आर. द्वारा विश्व के 14 देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा चेयर की स्थापना की गई है। मॉस्को (रशिया) को दुनिया में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के प्रमुख केंद्रों में से एक माना जाता है। वहाँ हिंदी भाषा का अध्ययन और शिक्षण मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के साथ-साथ दो अन्य विश्वविद्यालयों में हिंदी में बी.ए., एम.ए. और पी-एच.डी. की जा सकती है। (http://india.spbu.ru/Indology-centers-en.html)। रूस स्थित भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक केंद्र में हिंदी भाषा निःशुल्क पढ़ाई जाती है। मॉस्को में ऐसा विद्यालय भी है, जहाँ बच्चों को छठी कक्षा से ही हिंदी पढ़ाई जाती है। रूसी वैज्ञानिकों द्वारा हिंदी भाषा के अनेक शब्दकोशों, पाठ्य-पुस्तकों की रचना एवं हिंदी साहित्य का अनुवाद बड़ी मात्रा में किया जाता रहा है। रूस के ही सेंट पीटर्सबर्ग राजकीय विश्वविद्यालय के हिंदी के प्राध्यापकों ने अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन में हिंदी की नई पाठ्य-पुस्तकें प्रस्तुत की थीं।

अमेरिका के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों की वेबसाइट का सर्वेक्षण करने पर ध्यान आता है कि हार्वर्ड, येल, शिकागो, वाशिंगटन, मोंटाना, टेक्सास एवं कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयों सहित कई अन्य विश्वविद्यालयों में भी हिंदी के पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। अमेरिका के अनेक राज्यों के विद्यालयों में भी हिंदी का विकल्प दिया जा रहा है। (https://www.thehindu.com/news/cities/Visakhapatnam/Hindi-lessons-a-hitabroad/article17019700.ece)। पडोसी देश चीन के पीकिंग विश्वविद्यालय, गुआंडोंग विश्वविद्यालय सहित अनेक महाविद्यालयों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। इसी प्रकार इंग्लैंड तथा सिंगापुर के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। सुदूर पूर्व के देश फिजी में हिंदी को विद्यालयों में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है। हाल ही में प्रकाशित के.पी.एम.जी. की वर्ष 2021 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 38 प्रतिशत इंटरनेट उपयोग की भाषा हिंदी है।

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि हिंदी पूर्णरूप से वैज्ञानिक भाषा है। राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान

केंद्र (जो कि डीड विश्वविद्यालय भी है), गुरुग्राम की डॉ. नंदिनी सिंह के अध्ययन के अनुसार अंग्रेजी लिखने, बोलने, पढ़ने से मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा सक्रिय होता है, जबकि हिंदी लिखने, बोलने, पढ़ने से मस्तिष्क के दोनों हिस्से सक्रिय होते हैं। किसी भी भाषा की वैज्ञानिकता में लिपि की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी पूर्ण वैज्ञानिक है। सर आइजैक पिटमैन ने कहा है कि संसार में यदि कोई सर्वांगपूर्ण लिपि है, तो वह देवनागरी है।

एक तरफ देश और दुनिया में हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ती हुई दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा के स्तर पर हिंदी एवं भारतीय भाषाएँ लगातार पिछड़ती जा रही हैं। देश भर में विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालयों तक अंग्रेजी माध्यम का आकर्षण बढ़ रहा है।

आधुनिक विश्व में हर बात को हम तर्क एवं विज्ञान के आधार पर तौल रहे हैं। श्रीराम का जन्म अयोध्या में हुआ था या नहीं? इसके प्रमाण माँगे जाते रहे हैं। दूसरी ओर, हमारा पढ़ा-लिखा एवं बुद्धिजीवी वर्ग भाषा के संदर्भ में वैज्ञानिकता, तार्किकता एवं प्रमाण क्यों भूल जाता है! विश्व में भाषा के क्षेत्र में जितने भी अध्ययन एवं शोध हुए हैं, सबका निष्कर्ष एक ही है कि शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए। शैक्षिक आयोगों की अनुसंशाएँ भी इसी बात को दोहराती रही हैं। महात्मा गांधी से लेकर अब्दुल कलाम जैसे महापुरुषों ने भी इस बात का समर्थन किया है। जब डॉ. अब्दुल कलाम को धरमपेठ कॉलेज नागपुर में एक छात्र ने प्रश्न किया कि आप इतने महान् वैज्ञानिक कैसे बने, तब डॉ. कलाम का उत्तर था कि मैंने विद्यालय की संपूर्ण पढ़ाई मातृभाषा में की है। इसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी कहा था—"बच्चों के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है, जितना शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।"

किसी भी भाषा के संरक्षण हेतु उस भाषा में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक का उपलब्ध होना एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। देश के उच्च शिक्षा तंत्र में करीब 60 लाख से अधिक छात्र गैर-महानगरीय क्षेत्रों से प्रवेश लेते हैं, वे अंग्रेजी से तालमेल नहीं बैठा पाते। भाषा की इस खाई के परिणामस्वरूप देश की उच्च शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रही है। उच्च शिक्षा के अलग-अलग संकायों का हम विश्लेषण करें तो विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं। उदाहरणार्थ, दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि संकाय की प्रवेश परीक्षा, शिक्षा का माध्यम एवं पाठ्यसामग्री केवल अंग्रेजी में है, जबकि वार्षिक परीक्षा में हिंदी अथवा अंग्रेजी में उत्तर देने का प्रावधान है। प्रश्न यह उठता है कि जब सारी बातें मात्र अंग्रेजी में हैं, तब आगे के चरणों में हिंदी एवं भारतीय भाषा के छात्र कैसे पहुँच पाएँगे?

दूसरी ओर ध्यान में आता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् देश में हिंदी के विकास एवं विस्तार हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। संविधान के अनुच्छेद-351 में कहा गया है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। परंतु शासन-प्रशासन के स्तर पर हिंदी के साथ सतत अन्याय होता रहा है। अरब देश यू.ए.ई. में विगत वर्ष से न्यायालयों की तीसरी भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दी गई, परंतु भारत के न्यायालयों में हिंदी का प्रवेश मुश्किल है।

देश में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के विकास में कुछ आधारभूत रुकावटें हैं। प्रथम, स्वतंत्रता के पश्चात् उच्च शिक्षा विशेष कर व्यावसायिक शिक्षा एवं शोध कार्य का माध्यम मात्र अंग्रेजी रहा है। दूसरी बात प्रतियोगी परीक्षाओं का माध्यम अंग्रेजी है या अंग्रेजी का एक प्रश्न-पत्र अनिवार्य है। उदाहरण के लिए कर्मचारी चयन आयोग (SSC) के द्वारा माली, कार्यालय सहायक आदि की परीक्षा के प्रथम चरण में 25 प्रतिशत अंग्रेजी अनिवार्य है, और उसको मेरिट में भी जोड़ा जाता है। इसी प्रकार, न्यायालय से लेकर शासन-प्रशासन का अधिकतर कार्य अंग्रेजी में हो रहा है। मेरा यह सुझाव कतई नहीं है कि कल से अंग्रेजी में होनेवाले सारे कार्य हिंदी में कर दिए जाएँ, परंतु हिंदी एवं भारतीय भाषाओं को बढ़ाने हेतु प्रयास क्रमबद्ध रूप से प्रारंभ किए जाने चाहिए। उच्च, व्यावसायिक शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का हर स्तर पर विकल्प दिया जाना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षाओं का माध्यम भारतीय भाषाओं में हो एवं अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त की जाए। इसी प्रकार शासन-प्रशासन के सारे कार्य हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में किए जाने चाहिए।

इसी प्रकार, हिंदी को राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने एवं आगे बढ़ाने हेतु कंप्यूटर में हिंदी को अपने फॉण्ट का सृजन करना होगा, जिससे वर्तमान तकनीकी-युग में इसे युवा पीढ़ी के लिए सुगम बनाया जा सके। हिंदी में युवा पीढ़ी केंद्रित मौलिक लेखन को बढ़ावा देना, विदेश स्थित भारतीयों एवं अन्य विदेशी नागरिकों को हिंदी सिखाने की उचित व्यवस्था करना, प्रत्येक राज्य में उस राज्य की भाषा का विशेष विश्वविद्यालय प्रारंभ करना, जिसमें आर्ट्स, कॉमर्स से लेकर इंजीनियरिंग, मेडिकल आदि व्यावसायिक पाठ्यक्रम वहीं की भाषा में पढ़ाए जाए। इस प्रकार समग्रता से प्रयासों को प्रारंभ करने से हिंदी को हम विश्व भाषा बनाने में सफल हो सकेंगे, लेकिन इसके लिए देश के नागरिकों में अपनी भाषा का स्वाभिमान जगाना होगा।

यह अत्यंत आनंद का विषय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में उपरोक्त में से कुछ बातों को स्वीकार किया गया है। नीति में कहा गया है कि उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा के स्तर पर द्विभाषा का विकल्प होना चाहिए। यह सिर्फ अनुशंसा तक सीमित नहीं है, बल्कि उनका क्रियान्वयन भी प्रारंभ हो गया है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE) ने 8 भाषाओं में इंजीनियरिंग की पढ़ाई प्रारंभ कर दी है, इस प्रकार कुछ भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (NIT) आदि में भी भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम पर कार्य प्रारंभ हो गया है। मध्य प्रदेश में चिकित्सा शिक्षा को हिंदी में पढ़ाने की घोषणा राज्य सरकार के द्वारा की गई है। इस क्रम में उत्तर प्रदेश एवं गुजरात की राज्य सरकारों ने सारे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को अपनी राजभाषा में तैयार करने हेतु समितियों का गठन कर दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की घोषणा के बाद जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी और भारतीय भाषाओं में पाठ्यक्रम का कार्य प्रारंभ किया गया है, उसी प्रकार प्रतियोगी परीक्षा एवं शासन-प्रशासन के क्षेत्र में भी क्रमबद्ध रूप से सारा कार्य हिंदी और भारतीय भाषाओं में हो, इस दिशा में ठोस प्रयास प्रारंभ करने की आवश्यकता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि जब भारतवर्ष में हिंदी शिक्षा, न्याय, शासन-प्रशासन और सभी प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं की भाषा बनकर उभरेगी, तभी सही अर्थों में विश्व भाषा के रूप में इसकी सार्थकता सिद्ध होगी।

□

atulssun@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय : बीज से वृक्ष तक

—प्रो. विनोद कुमार मिश्र

'विश्व हिंदी सचिवालय' भारत और मॉरीशस सरकार की एक द्विपक्षीय अंतरराष्ट्रीय संस्था है, जो वैश्विक स्तर पर हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य में संलग्न है। 1975 में नागपुर में आयोजित 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मलेन' में मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने 'विश्व हिंदी केंद्र' की स्थापना का प्रस्ताव रखा था, जिसका समर्थन तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा किया गया। इस प्रस्ताव ने 1976 में मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मलेन में साकार रूप लिया और मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना का प्रस्ताव दृढ़ संकल्प के साथ पारित हुआ। तदनुसार पाँच विश्व हिंदी सम्मेलनों के बाद मॉरीशस में एक विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना का मंतव्य पारित किया गया। 1996 में मॉरीशस सरकार ने सचिवालय के निर्माण से संबंधित कार्यों के लिए डॉ. सरिता बुद्धु को शिक्षा मंत्रालय में बतौर सलाहकार नियुक्त किया। चार वर्षों के लंबे अंतराल के बाद मॉरीशस स्थित भारतीय उच्चायोग के सहयोग से 'विश्व हिंदी सचिवालय' की इकाई का गठन किया गया तथा 20 अगस्त, 1999 को दोनों सरकारों की ओर से सचिवालय के उद्देश्यों, संचालन एवं वित्तपोषण संबंधित एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। उक्त समझौते के अंतर्गत मॉरीशस सरकार की ओर से सचिवालय निर्माण हेतु भूमि का आवंटन तथा भारत सरकार की ओर से भवन के प्रारूप तथा निर्माण के खर्च की जिम्मेदारी ली गई। 17 सितंबर, 2001 को सचिवालय का अस्थायी कार्यालय किराये के एक भवन के रूप में बना और कार्य आरंभ हुआ, इसी भवन से सचिवालय की गतिविधियों का संचालन प्रारंभ हुआ। विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय का शिलान्यास नवंबर 2001 में भारत गणराज्य के तत्कालीन मानव संसाधन विकास, विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्री माननीय प्रो. मुरली मनोहर जोशी द्वारा फेनिक्स, मॉरीशस में किया गया।

12 नवंबर, 2002 को मॉरीशस की नेशनल असेंबली द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय अधिनियम-2002 पारित किया गया तथा 21 नवंबर, 2003 को मॉरीशस तथा भारत सरकार के बीच एक द्विपक्षीय करार पर हस्ताक्षर किये गए। 12 सितंबर, 2005 को नेशनल असेंबली द्वारा पारित अधिनियम की औपचारिक उद्घोषणा की गई। विश्व हिंदी सचिवालय के कुशल संचालन हेतु 'शासी परिषद्' का गठन किया गया है, जिसमें दोनों देशों के विदेश, शिक्षा व संस्कृति मंत्री सहित दोनो देशों के प्रधानमंत्रियों द्वारा नामित दो-दो हिंदी विद्वानों को शामिल किया गया है। इसके अलावा कार्यकारिणी

* पूर्व महासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस।

मंडल का गठन किया गया है, जिसमें दोनों देशों के शिक्षा, विदेश व संस्कृति सचिव शामिल होते हैं प्रशानिक व अकादमिक गतिविधियों के कुशल संचालन हेतु तीन उप-समितियों के गठन व मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में एक महासचिव व उनके सहयोगी के रूप में एक उप-महासचिव की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। महासचिव शासी परिषद् व कार्यकारी मंडल में सदस्य सचिव के रूप में कार्य करेगा। मॉरीशस की ओर से प्रथम महासचिव डॉ. विनोद बाला अरुण जी की नियुक्ति 18 जनवरी, 2007 को की गई तथा 11 फरवरी, 2008 से विश्व हिंदी सचिवालय ने औपचारिक रूप से किराए के भवन से कार्य आरंभ किया। 12 मार्च, 2015 को भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी तथा मॉरीशस गणराज्य के प्रधानमंत्री माननीय सर अनिरुद्ध जगन्नाथ के द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय निर्माण का आधिकारिक शुभारंभ किया गया। दिनांक 8 अक्तूबर, 2016 को औपचारिक भूमि पूजन के साथ निर्माण कार्य आरंभ हुआ और दो वर्ष से भी कम समय में 34 करोड़ रुपये की लागत से सचिवालय मुख्यालय का निर्माण कार्य संपन्न हुआ और दिनांक 13 मार्च, 2018 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम रामनाथ कोविंद के कर-कमलों द्वारा सचिवालय का उद्घाटन किसी चमत्कार से कम न था। सचिवालय संकल्प से सिद्धि के मार्ग पर अग्रसर हुआ। तत्पश्चात् लगभग 10 वर्षों तक किराए के भवन से संचालित सचिवालय ने अपने नवनिर्मित मुख्यालय भवन से काम करना प्रारंभ किया।

सचिवालय हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रोन्नत करना, संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के संकल्प के साथ एक सशक्त मंच प्रदान करने व अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन एवं विकास करने में सतत् संलग्न है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विस्तार करने की दिशा में भी सचिवालय की प्रतिबद्धता रही है। इसके अतिरिक्त यह वैश्विक स्तर पर हिंदी की गतिविधियों का समन्वयन, विभिन्न सरकारी, स्वायत्तशासी एवं स्वयंसेवी संस्थानों को आर्थिक, रचनात्मक एवं अकादमिक सहयोग प्रदान करते हुए, हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का दायरा, परिमाण और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सतत सहयोग करता रहा है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कारगर नीतियों का निर्माण, स्तरीय प्रकाशन, सूचना तथा संचार तकनीकों के माध्यम से हिंदी से जुड़ी सूचनाओं को विश्व भर में प्रचारित एवं प्रसारित करना भी सचिवालय का लक्ष्य रहा है। निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सचिवालय की निर्धारित मुख्य गतिविधियाँ हैं—हिंदी में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, गोष्ठियों और सामूहिक चर्चा-परिचर्चा तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों, कवि-सम्मेलनों आदि का आयोजन व विश्व भर में हिंदी के उन्नयन से जुड़े विद्वानों को उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार व सम्मान प्रदान करना, मल्टीमीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षण व शोध करने और हिंदी लेखकों, कवियों, विद्वानों, संस्थाओं, विश्वविद्यालयों तथा हिंदी के संवर्धन में लगे गैर-सरकारी संगठनों के डाटा-बैंक के रूप में कार्य करने के लिए 'प्रलेखन केंद्र' की स्थापना की गई है। अंतरराष्ट्रीय हिंदी पुस्तकालय की स्थापना व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पुस्तक मेलों और कंप्यूटर प्रदर्शनियों का आयोजन करने की दिशा सचिवालय का प्रयत्नशील है।

सचिवालय को नियमित रूप से विश्व हिंदी दिवस, आधिकारिक कार्यारंभ दिवस व हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित किए गए विविध अकादमिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सफल आयोजन से आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है। नियमित रूप से एक त्रैमासिक सूचना-पत्र 'विश्व

हिंदी समाचार' के प्रकाशन के द्वारा हिंदी जगत् में घटित घटनाओं, कार्यक्रमों व अन्य अकादमिक गतिविधियों की जानकारियाँ व रिपोर्ट प्रकाशित की जाती हैं। इसकी दो हजार प्रतियों का वितरण पूरे विश्व में नियमित रूप से किया जाता है। सचिवालय की वेबसाईट पर इसकी सॉफ्ट कॉपी भी अपलोड की जाती है। सचिवालय एक वार्षिक शोध पत्रिका 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन करता है, जिसमें विश्व भर में हिंदी की स्थिति, उपस्थिति, विकास, हिंदी के क्षेत्र में हो रही गतिविधियों तथा अनुसंधान, हिंदी शिक्षण और अधिगम से संबंधित शोध आलेख प्रकाशित होते हैं। यह पत्रिका वैचारिक आदान-प्रदान के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में कार्यरत है। इसका विमोचन प्रतिवर्ष 10 जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम के दौरान मॉरीशस गणराज्य के राष्ट्रपति/प्रधानमंत्री अथवा शिक्षामंत्री व भारतीय उच्चायुक्त के द्वारा किया जाता है। इस अवसर पर विदेशी मूल के एक हिंदी विद्वान् द्वारा बीज वक्तव्य, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वैश्विक स्तर पर आयोजित लेखन प्रतियोगिता के परिणाम की घोषणा तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबंधित सचिवालय की वर्ष भर की गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है।

वैश्विक स्तर पर सृजन कर्म को बढ़ावा देने के लिए सचिवालय द्वारा एक अन्य वार्षिक पत्रिका 'विश्व हिंदी साहित्य' का प्रकाशन 2018 में मॉरीशस में संपन्न एक सफल और सार्थक विश्व हिंदी सम्मलेन के अवसर पर किया गया था। इसका प्रकाशन नियमित रूप से किया जा रहा है। इस पत्रिका में नियमित रूप से— कविता, कहानी, नाटक, एकांकी सहित गद्य की अन्य तमाम विधाओं को स्थान दिया जाता है। इसमें विश्वभर से रचनाएँ आमंत्रित की जाती हैं। अनुच्छेद परिवर्तन सचिवालय प्रतिवर्ष 11 फरवरी को अपना आधिकारिक कार्यारंभ दिवस मनाता है। इस अवसर पर भारत से एक हिंदी विद्वान् को वक्तव्य व भाषा संवर्धन हेतु आयोजित कार्यशाला संचालन आदि के लिए आमंत्रित किया जाता है। सूचना और जनसंचार के माध्यम से हिंदी प्रशिक्षण का आयोजन सचिवालय प्रवासी देशों में करता रहा है और भविष्य में करने की योजना भी है। मॉरीशस प्रसारण निगम के द्वारा नियमित रूप से हिंदी के पाक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण नियमित रूप से किया जाता है। 'विचार मंच' के आयोजन के द्वारा हिंदी के विविध कार्यक्रमों का आयोजन सचिवालय द्वारा नियमित रूप से किया जा रहा है। नई पीढ़ी को रचनाधर्मिता से जोड़े रखने व उनमें रचनात्मकता की शक्ति विकसित करने के लिए सचिवालय द्वारा समय-समय पर विभिन्न विधाओं में दक्षता हासिल करने हेतु विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है, जिसमें विश्व के चर्चित रचनाकारों व विशेषज्ञों को कार्यशालाओं के कुशल संचालन हेतु आमंत्रित किया जाता है। व्याख्यान-माला कार्यक्रम के अंतर्गत समय-समय पर हिंदी के विद्वानों को व्याख्यान के लिए आमंत्रित जाता है। मॉरीशस रेडियो द्वारा पाक्षिक कार्यक्रम 'क्षितिज' के माध्यम से सचिवालय की गतिविधयों को प्रचारित प्रसारित करने की अद्भुत पहल की गई है। सचिवालय प्रति वर्ष वैश्विक स्तर साहित्य लेखन प्रतियोगिता का आयोजन करता है, जिसमें पाँच क्षेत्रों में विभक्त विश्वभर से रचनाएँ आमंत्रित की जाती हैं। पाँचों क्षेत्रों के प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त प्रतिभागियों को आर्थिक पुरस्कार दिया जाता है। 'हिंदी दिवस' के अवसर पर दुनिया के कई देशों में कार्यरत हिंदी की सरकारी व गैर सरकारी हिंदी प्रचारक संस्थाओं को 'हिंदी दिवस' के सफल आयोजन के लिए सचिवालय आर्थिक सहयोग भी प्रदान करता है।

18 से 20 अगस्त, 2018 को मॉरीशस में 11वें

विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ। पहली बार भारत के बाहर विश्व हिंदी सम्मेलन का इतना भव्य और सफल आयोजन किया गया। 50 से भी अधिक देशों से सैकड़ों लेखक, कवि, अध्येता, राजनयिक व पत्रकार शामिल हुए। इस अवसर पर सम्मलेन के दौरान आयोजित गतिविधियों पर केंद्रित 'हिंदी विश्व' नामक एक समाचार-पत्र के लगातार चार दिनों तक चार अंक प्रकाशित कर विश्व हिंदी सचिवालय ने अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की तथा अपने अन्य गुरुतर दायित्व का पालन करते हुए सम्मलेन को सफल बनाने में अपनी रचनात्मक भूमिका भी निभाई। उक्त सम्मलेन का सफल आयोजन इसलिए हो सका क्योंकि हिंदी और भारतीय संस्कृति उन्नयन के लिए समर्पित यशस्वी प्रधानमंत्री मोदीजी और काबिल विदेशमंत्री स्व. सुषमा स्वराजजी थीं।

सचिवालय सूचना एवं प्रौद्योगिकी से संचालित इस ज्ञान की सदी में चिंतन और अनुसंधान की वैकल्पिक भाषा के रूप में हिंदी की दावेदारी पेश करने, विचार, संचार, व्यवहार व विस्तार के लिए सर्वदा कटिबद्ध है। तथाकथित 'विश्व भाषा' के खुमार से बाहर निकाल उदात्त सांस्कृतिक एवं भाषाई विरासतवाली हिंदी को ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए हिंदी को सक्षम बनाने संबंधी कार्ययोजना को कारगर ढंग से लागू करने की दिशा में सचिवालय निरंतर प्रयत्नशील है। भारत की अर्थव्यवस्था तीव्रगामी है। विश्व बाजार में आनेवाले दिनों में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रहनेवाली है, फिर निश्चित रूप से हिंदी वैश्विक भाषाई विकल्प के रूप में उभरेगी। दुनिया में भारत की उभरती पेशेवर युवा-शक्ति ने भी हिंदी की हैसियत को ठोस जमीन और विस्तृत आकाश दिया है। हिंदी विचार, संचार व संवाद की मशाल ले अग्रिम पंक्ति में खड़ी भावनात्मकता से व्यावसायिकता की ओर एवं धार्मिकता से कार्मिकता की ओर नई ऊर्जा एवं नई रोशनी के साथ अग्रसर है। इसकी आधुनिकता न तो उधार की है और न ही आयातित है। इसमें विश्व मानव की सशक्त उपस्थिति है, जो इसे और विशिष्ट बनाती है। यह सहजता का कहीं त्याग नहीं करती, बल्कि इसमें दूसरे को सहभागी बनाते हुए सामान्य से जुड़ने की ललक सर्वाधिक है। यह विग्रह नहीं संधि की भाषा है। ये सारी क्षमताएँ इसे सहज रूप से विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त हैं। सचिवालय के सद्प्रयास से विश्व जन-मन की आशा-आकांक्षा के अनुरूप उदारमना हिंदी एक सक्षम विकल्प पेश करते हुए सार्वभौमिक विस्तार एवं स्वीकृति को प्रामाणिकता प्रदान करने की दिशा में अग्रसर हिंदी प्रौद्योगिकी के घोड़े पर सवार हो, विश्व-विजय की ओर अवश्य उन्मुख होगी तथा हिंदी की वैचारिकी एवं समृद्ध शब्द-संपदा, ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सहित अन्य विधाओं को मुखरता प्रदान करेगी। यदि भविष्य में किन्हीं दो-तीन भाषाओं में विश्व को संबोधित करने की स्थिति आएगी तो निश्चित रूप से हिंदी उनमें से एक अवश्य होगी। यही हिंदी की ताकत है और यह संभव इसलिए हो सका है कि भारत एक नई ताकत के रूप में उभरकर आया है, क्योंकि वर्तमान सरकार हिंदी और भारतीय भाषाओं के संवर्धन के लिए कटिबद्ध है। अब हिंदी की उपयोगिता एवं बाजार-स्वीकार्यता अवश्यंभावी है। निस्संदेह हिंदी मीडिया (प्रिंट/इलेक्ट्रॉनिक), विज्ञापन, मनोरंजन आदि की माध्यम भाषा बन चुकी है। प्रौद्योगिकी प्रदत्त यांत्रिकी के साथ सहज हो चुकी हिंदी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर रही है। हिंदी जैसी सक्षम वैज्ञानिक भाषा का भविष्य 26 अक्षरोंवाली भाषा अवैज्ञानिक सुनिश्चित नहीं कर सकती। हिंदी की गौरव और गरिमा से परिपूर्ण मेधा किसी भाषा का मोहताज नहीं हो सकती। हिंदी रचना और विमर्श

दोनों मोरचों पर अपने लोक आधार संपृक्त है। लोक चेतना व देशज चिंतन में में भी काफी आगे है और सांस्कृतिक अर्थबोध की भाषा बनने और स्वयं एक 'संस्कृति' बनने की राह में काफी आगे निकल चुकी है।

यद्यपि आज की बदली हुई फिजा में हिंदी के अच्छे दिनों की आहट सुनाई दे रही है, फिर भी विश्व बाजार में तथाकथित विश्वभाषा की चौधराहट अभी भी कायम है। किंतु अब समय आ गया है, जब भारतीय बाजार में वर्चस्व बनाए रखने के लिए उस भाषा का सहारा लेना ही पड़ेगा, जो देश की अस्मिता हो। वह भाषा हिंदी ही हो सकती है। हिंदी में उनके भाषाई साम्राज्यवाद के मंसूबों पर पानी फेर देने की क्षमता भी है। यद्यपि बदली हुई परिस्थिति में भाषा में संस्कृति और संस्कृति में भाषा की तलाश करना टेढ़ी खीर है, फिर भी हिंदी में इसकी सार्थक उपस्थिति दिखती है। इसमें ग्रहण और त्याग की प्रवृत्ति भी है। अब उत्कृष्ट सांस्कृतिक विरासत के आलोक में हिंदी को सुदृढ़ बनाकर राष्ट्रीय वैशिष्ट्य की अर्थवत्ता को विस्तार की अनंत संभावनाओं तक ले जाने का समय आ गया है तथा इसे मूल्यबोध, सौंदर्य की वैचारिक भाव भूमि और अखंड चिंतन से सुसज्जित परिवेश भी मिल रहा है। एक ओर हजार वर्षों से अधिक की लंबी यात्रा इसकी सफलता का जयगान करती है, तो वहीं दूसरी ओर नित नई चुनौतियों के कई गवाक्ष भी खुलते हैं, जो अवसर में बदलने के लिए हिंदी की बुद्धि-सभा को आवाज देते हैं। हिंदी स्वामिनी के बजाय सेविका बन सहोदरा भाषाओं के साथ कदम-से-कदम मिलाते हुए भारतीयता का परचम वैश्विक स्तर पर लहराने को तैयार है। धीरे-धीरे इनकी संतानों की ताकत से ही इन्हें महिमामंडित किया जा सकेगा। बाजार सापेक्ष हिंदी समय की माँग हो सकती है, किंतु संस्कृति निरपेक्ष हिंदी समय के शाश्वत मानदंडों पर खरी नहीं उतर सकती। संस्कृति निरपेक्ष भाषा में जीना, उसके स्पंदन और उद्वेलन को आत्मसात् करना तभी संभव है, जब वह निर्धारित मानदंडों पर अपनी विश्वसनीयता कायम रख सके तथा भाषाई अस्मिता को खंडित होने से बचाए रखे। आज अजन्मे, किंतु अनगिनत खुशियों के उधार लिये हुए सपने, भाषाई अधिकार के मुकुट की बाट जोह रहे हैं। उनके साकार होने का समय आ गया है। हिंदी मध्याह्न का सूरज बन आकाश में अपनी आभा बिखेर रही है। समय आ गया है, जब आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक भाव-बोध से प्रेरित हो 'सा विद्या या विमुक्तेय' के उद्घोष को गगनचुंबी ऊँचाई प्रदान कर हिंदी के विश्वस्तरीय विद्या केंद्रों का निर्माण एवं विस्तार की कल्पना साकार हो सकेगी। विश्व जनमन की यही आकांक्षा है कि विश्व हिंदी सचिवालय ऐसी तक्षशिला बने, जहाँ हिंदी के चाणक्य अनगिनत चंद्रगुप्त पैदा करें, जो हिंदी की वैश्विक सीमा का विस्तार करें। हिंदी की प्रकाश-पौध को रोप व सींचकर वटवृक्ष बनाने का मार्ग प्रशस्त करें, उत्सवधर्मी बन प्राणवान् ऊर्जा से अभिषेक करें तथा स्नेहाचमन से टूटती-दुखती साँसों को समेटते हुए लालिमा के अक्षरों का आलिंगन कर शाश्वत् प्राण में ओज लाकर बौद्धिक पीठिका के हवाले करें, ताकि रचनात्मकता व सृजनधर्मिता के सरगम के तार बज उठें। हिंदी वह आधार बने, जहाँ विश्व संस्कृति की बुनियाद रखने में सफलता मिले तथा आनेवाले दिनों में 'विश्वबंधुत्व' का परचम 'विश्वग्राम' में लहराने में कामयाबी मिले। हिंदी का ज्ञान भंडार आधुनिक प्रौद्योगिकी से मिलकर विचाराभिव्यक्ति का साधन बन अपनी सार्थकता सिद्ध करे तथा आज की सभी वैश्विक जरूरतों को पूरा करने में सक्षम भी बने और अतीत का सम्मान, वर्तमान का समाधान और भविष्य के दिशा-निर्देश हेतु विमर्श के गवाक्ष खुलें।

□

vkmgci@gmail.com

प्रवासी चेतना बनाम राष्ट्रीय चेतना

—आचार्य हरमहेंद्र सिंह बेदी

बीसवीं शताब्दी में विश्व चेतना कई संदर्भों में विलक्षण बन पड़ी है। इसी विलक्षणता में विश्व समुदाय के कई महत्त्वपूर्ण रूप भी सामने आए हैं। जहाँ इन रूपों में दो संस्कृतियों की अन्योन्याश्रितता पर जोर दिया गया है, वहीं अपनी सभ्यता, राष्ट्रीयता और अपने राष्ट्र के प्रति एक विशेष प्रकार का प्रेम और सम्मान भी जाग्रत् हुआ। इस सभ्यता का यह सामाजिक विकास कई देशों को एक-दूसरे के नजदीक ले आया है। इसमें उत्पादन के साधनों की भी प्रमुख भूमिका रही है। यह झुकाव भले ही एक पक्षीय क्यों न हो, परंतु इसके परिणामों ने दोनों पक्षों को प्रभावित किया।

कृषि संसाधनों का सीमित होना, औद्योगीकरण की तीव्रता और बेहतर जीवन स्तर का आनंद लेने की इच्छा ने राष्ट्र की पारस्परिक दूरी को व्यक्ति की पहुँच से बाहर नहीं रहने दिया। भौतिक प्रगति का यह मार्ग आर्थिक रूप से पिछड़े देशों का राष्ट्रीय मार्ग बन गया है। विशेष रूप से एशिया के विकासशील देशों के लोगों को पश्चिम की अमीरी ने इतना भ्रमित किया कि देश के प्रति एक अलगाव, रोजगार के प्रति उदासीनता और बढ़ रहे आर्थिक अंतराल को असफलता मानकर आधुनिकता को अपनी किस्मत समझकर विदेशों की गोद में जा बैठे। फिर उनके साथ कई विशेषण जुड़े। कभी प्रवासी मजदूर, कभी एशियाई अल्पसंख्यक, तो कभी नस्लीय भेदभाव का शिकार काले लोग। अपने देश से विमुख व्यक्ति कभी भी अपनी संस्कृति से अलग नहीं हो सकता। मानसिक रूप से अपनी संस्कृति और क्षेत्र में बिताया गया समय उनके भावी जीवन पर भी हावी रहता है। मनोवैज्ञानिक तो यहाँ तक मानते हैं कि बीस वर्ष की आयु तक मनुष्य का सांस्कृतिक क्षेत्र/प्रभाव मानसिक स्तर पर निश्चित हो जाता है। शेष वर्ष इन अभिरुचियों के विकास के वर्ष होते हैं। इस बात को यदि दूसरे ढंग से देखा जाए, तो एक भौगोलिक क्षेत्र में रहनेवाला एक जागरूक नागरिक स्वाभाविक रूप से ही अपने राज्य अथवा राष्ट्र की चेतना को अपना लेता है। चाहे वह सामूहिक संस्कारों के अंतर्गत हो या अपने परिवेश के उन मूल्यों के कारण, जिसमें वह पैदा हुआ और संस्कारित हुआ। प्रवास में रहते हुए भी बीता हुआ जीवन उसके अवचेतन मन में समाहित रहता है। बर्ट्रेंड रसेल तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस तरह एक मनुष्य अपने मनुष्य होने से इनकार नहीं कर

* कुलाधिपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय।

सकता, उसी प्रकार वह अपनी राष्ट्रीयता से अलग नहीं हो सकता। राष्ट्रीय चेतना का सीधा सा अर्थ है—एक ऐसी परंपरा, जिसकी अपनी विरासत हो और वह विरासत किसी देश-काल की सीमाओं से जुड़कर किसी विशेष संस्कृति के अंतर्गत न केवल उसके मूल्यों को पहचानती है, बल्कि उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान भी देती है। ऐसी राष्ट्रीय चेतना को कोई सहज रूप से बेघर हुआ व्यक्ति मोह भंग के नाम पर भुला नहीं सकता। विदेश की बात तो छोड़िए, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बसनेवाला जनसमूह अपनी परंपराओं को जीवित रखने के लिए सदैव प्रयासरत रहता है। इन प्रयासों को संस्कृति और साहित्य के माध्यम से आगे बढ़ाया जाता है। पंजाब में बिकने वाले भोजपुरी गीतों या नैनीताल के दूर-दराज के इलाकों में रहनेवाले पंजाबी घरों में बजने वाले पंजाबी गीतों से आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है।

राष्ट्रीय चेतना विशाल होती है। इस चेतना में राष्ट्रीय अनुभव अपना अनूठा स्वर पैदा करते हैं। इसमें विभिन्न भाषाएँ, रंग-रूप जातियों के लोग, उनके रीति-रिवाज एक ऐसा सह-अस्तित्व स्थापित करते हैं, जिसे संश्लिष्ट रूप में भी देखा जा सकता है और इकाई रूप में भी। प्रवासी चेतना भी इसी समग्र रूप की एक लघु इकाई होती है। यह इकाई आगे कई रूपों में अंकुरित, प्रफुल्लित और स्वीकृत होते हुए सफल होती दिख रही है। संस्कृति पर विचार करनेवाले विद्वान् अकसर इस इकाई को देश-काल से अलग देखने का प्रयास करते हैं। उस समय प्रवासी चेतना स्वतंत्र इकाई तो अवश्य बन जाती है, परंतु उसकी जड़ें मिट्टी विहीन हो जाती हैं। सब ऐसी इकाइयों को स्वतंत्र ही मानना है, तो रोमन लोगों को अपने पंजाबीयत को पहचानने की क्या आवश्यकता है? यह राष्ट्रीय चेतना का ही प्रभाव है कि आज भी ये लोग अपने पूर्वजों को अपने लेखन, अपने अनुभवों और अपनी भाषाशैली में ढूँढ़ते हैं। राष्ट्रीय चेतना यद्यपि भौगोलिक होती है, तथापि इसकी समृद्ध विरासत जनमानस के मन में वह भावना है, जो शताब्दियों से उनके रक्त में प्रवाहमान है। भारतीय साहित्य में उपजी आँचलिक प्रवृत्ति को इस संदर्भ में और भी गहनता से समझा जा सकता है। राष्ट्रीय चेतना एक प्रकार की सांस्कृतिक चेतना है, जिसका आधार समाज के मानसिक विकास से जुड़ा है। विश्व इतिहास की झलक प्रस्तुत करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू यह अनुभव करते हैं कि विदेशी सभ्यता और संस्कृति को राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से देखने की जरूरत है, क्योंकि यह दृष्टि एक ऐसा नजरिया प्रदान करती है, जिससे हम अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को कई अन्य विलक्षण दृष्टिकोणों से देख सकते हैं। महात्मा गांधी ने भी अपनी आत्मकथा में इस तथ्य को स्वीकार किया कि विदेशों में रहकर, प्रवासी बनकर मैं राष्ट्रप्रेम को बेहतर ढंग से जान पाया। उनका यही राष्ट्रप्रेम उन्हें न केवल राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति सचेत करता रहा, बल्कि उनमें आत्म-बलिदान की भावना भी पैदा करता रहा। यद्यपि आज ऐसी राष्ट्रीय चेतना की आवश्यकता नहीं है, तथापि प्रवासी चेतना में से ऐसी भावनाओं को पहचानने की आवश्यकता है। विदेशों में बसे लेखकों की रचनाओं में ऐसा है अथवा नहीं, यह विमर्श का अलग विषय है, लेकिन व्यक्तिगत अलगाव इस साहित्य में अवश्य ही उपलब्ध है। विदेशी पंजाबी साहित्यकारों में यह अलगाव की भावना भावनात्मक स्तर पर भी ऊपर उठी है। राष्ट्रीय चेतना की संवेदना यद्यपि इस अलगाव का स्थूल अंग बन गई तथापि सूक्ष्म रूप में यह प्रेम पूर्वदीप्ति के रूप में अधिक प्रकट हुआ है। एक बात और बड़ी दिलचस्प है कि अन्य राज्यों से

गए भारतीय लेखकों की कृतियों में ऐसी उदासीनता और अलगाव बहुत कम देखने को मिलता है। हम यह बात निश्चित रूप से तो नहीं कह सकते, लेकिन फिर भी हिंदी प्रदेशों से गए भारतीय प्रवासी लेखक इस अलगाव से लगभग मुक्त हैं। मॉरीशस की धरती पर रहनेवाले हिंदुस्तानी लोग अब भारतीय अतीत की गाथा को इस तरह नहीं दोहराते कि जिससे उनके जज्बात या अनचाहा प्रेम जाग जाए, बल्कि ऐतिहासिक संदर्भ में वहाँ की समस्याओं से अपनी प्राचीन संस्कृति के परिवर्तन को रेखांकित करना चाहते हैं। एक उदाहरण अभिमन्यु अनत शबनम की प्रसिद्ध कृति 'लाल पसीना' से दिया जा सकता है। इस कृति में प्रवासी चेतना अपनी राष्ट्रीय चेतना के समकक्ष बन पड़ी है। प्रवासी चेतना दोहरी प्रक्रिया से गुजरकर अपना क्षेत्र निर्धारित करती है। जिस क्षेत्र में जाकर प्रवासी रहते हैं, उस इलाके के रीति-रिवाज, रस्में, बोल-चाल, खान-पान, पहनावा और वहाँ की जीवन शैली धीरे-धीरे उनके लेखन का आधार बन जाते हैं। दूसरी ओर आसन्न वर्तमान अथवा पीछे छूटे भूतकाल इन रचनाओं की स्रोत-सामग्री बन जाते हैं। तुलनात्मक साहित्य-लेखन की पद्धति रचनात्मक स्तर पर रचना प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन जाती है। यह सांस्कृतिक अवलंबन मिश्रित संस्कृति का निर्माण करती है। इस पूरी प्रक्रिया में दो संस्कृतियों के प्रमुख तत्त्व अपने अस्तित्व के अनुसार अपनी सत्ता स्थापित करते हैं। डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ऐसी क्रियाशीलता को इसीलिए स्वाभाविक मानते हैं, क्योंकि बीसवीं शताब्दी की विश्व-चेतना ऐसी चुनौतियों को स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर रही है। इसी से मानव विकास का आदान-प्रदान भी संभव बना रहता है। प्रवासी नवीन क्षेत्रों में जाकर अपना संघर्ष जारी रखते हैं। यह संघर्ष रोजी-रोटी का भी होता है और उस क्षेत्र में पहले से रह रहे निवासियों के साथ सह-अस्तित्व का भी।

विदेशी पंजाबी साहित्य का अध्ययन और लेखन कुछ ऐसे बिंदुओं पर ही आधारित है। विदेश में रहनेवाले पंजाबी लेखकों के लेखन में उपर्युक्त संवेदना ऐतिहासिक स्थिति के कई सवालों को साकार रूप प्रदान करती है। विदेशी पंजाबी साहित्य इसी विशेष सामाजिक पृष्ठभूमि से संबंधित है। इन कृतियों में चित्रित सामाजिक सत्य भी उस बड़े ऐतिहासिक सत्य का हिस्सा है, जो वैश्विक स्तर पर मनुष्य की नियति से जुड़ा है। इस सत्य का गहन संबंध मानवीय रिश्तों से भी जुड़ा है। ये मानवीय संबंध साहित्य के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक चेतना से अछूते नहीं रहे।

विदेशी पंजाबी साहित्य कई मायनों में पाकिस्तानी पंजाबी साहित्य और भारतीय पंजाबी साहित्य से अलग है। पाकिस्तानी पंजाबी साहित्य अभी तक लोक संस्कृति की एक प्रमुख पहचान बना हुआ है। इसका अनुभव हम पाकिस्तानी पंजाबी साहित्य की भाषा, शैली और लोक संस्कृति के प्रतीकों के प्रयोग से कर सकते हैं कि विदेशों में रचित पंजाबी साहित्य नवीन आविष्कारों, वैज्ञानिक प्रयोगों और विश्व में हो रही घटनाओं के प्रभाव से मुक्त नहीं है। इस साहित्य में वैज्ञानिक ज्ञान की प्रधानता है। अजायब कमल और रविंद्र रवि की रचनाओं से इस बोध को उजागर किया जा सकता है। भारतीय पंजाबी साहित्य प्रतिनिधि पंजाबी साहित्य है। भाषा और विषय-वस्तु की दृष्टि से इस साहित्य में आए परिवर्तन और इसके विकसित रूप इसकी साहित्यिक संवेदना को एक विशेष क्रम में प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि दूसरे क्षेत्रों में लिखा साहित्य इस साहित्य की ओर आकर्षित होता है।

सन् 1947 से पहले का पंजाबी साहित्य एक विशेष ऐतिहासिक चेतना के साथ रचा गया था,

जिसमें स्वतंत्रता के लिए एक जुनून संरक्षित था। इस साहित्य का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे वर्गों के पक्ष में आवाज उठाना था। विदेशों में लिखा जा रहा आज का पंजाबी साहित्य दूसरी आजादी की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। यह जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता है, वहीं जातीय भेदभाव को समाप्त करने का संघर्ष भी है। तीसरी दुनिया के लोग किसी-न-किसी रूप में इस संघर्ष में सहभागी हैं। यह देशभक्ति की भावना नहीं, अपितु वहाँ की छोटी-बड़ी समस्याओं को समाप्त करने का रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रयास है।

इस साहित्य में वर्णित समस्याएँ अधिक व्यापक एवं गंभीर हैं, जैसे यह साहित्य विश्व बंधुत्व का सकारात्मक रूप भी प्रस्तुत करता है। यह साहित्य विश्व शांति की संवेदना जाग्रत् करता है। ये कवि या लेखक उन घटनाओं के प्रति अधिक जागरूक होते हैं, जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विश्व समुदाय पर पड़ता है। वैचारिक स्तर पर भी यह साहित्य ऐसी संभावनाओं और स्थितियों का पुनर्सृजन करता है, जिससे वैचारिक समझ बढ़ती है। प्रवासी चेतना की ऐसी विशेषताएँ, जहाँ इस साहित्य को बहुआयामी बनाती हैं, वहीं इसकी सीमाओं से भी भारतीय पंजाबी पाठक जागरूक होते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर पंजाबी साहित्य के इतिहास में इस साहित्य को कोई स्थान नहीं दिया गया है, जबकि गुणवत्ता और मात्रा की दृष्टि से इस साहित्य का योगदान किसी भी प्रकार से कम नहीं है। साहित्येतिहास दर्शन की दृष्टि से कोई भी साहित्येतिहास लेखन तब तक पूर्ण नहीं होता, जब तक कि उसमें प्राथमिक और गौण साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्थान न दिया जाए। विगत दो दशकों से विदेशी पंजाबी साहित्य अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका है। अब तो भारतीय साहित्य के संदर्भ में भी इस साहित्य को उच्च स्थान दिया जा रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भी विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य को मान्यता प्राप्त होने के साथ-साथ इसका मूल्यांकन हो रहा है।

भारतीय साहित्य के संदर्भ में आज यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय भाषाओं में विदेशी साहित्य से जो वृद्धि एवं परिवर्तन हुआ है, उसे नवीन ज्ञान-विषयों से जोड़कर साहित्य-इतिहास का अंग बना दिया जाए, ताकि अपनी संस्कृति के गौरव को नवीन क्षितिजों तक न केवल फैलाया जा सके, बल्कि नए रंगों में रँगी यह संस्कृति फिर से हमारी विरासत से जुड़ सके।

□

harmohinderbedi@gmail.com

लगा रहे प्रेम हिंदी में, पढ़ूँ हिंदी, लिखूँ हिंदी
चलन हिंदी चलूँ, हिंदी पहरना, ओढ़ना-खाना।
भवन में रोशनी मेरे हिंदी चिरागों की
स्वदेशी ही रहे बाजा बजाना, राग का गाना।

—राम प्रसाद बिस्मिल

हिंदी का विश्व और विश्व की हिंदी

—गिरीश्वर मिश्र

वाक् या वाणी की शक्ति किसी से भी छिपी नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के वाक् सूक्त में वाक् को राष्ट्र को धारण करने और समस्त संपदा देनेवाले देव तत्त्व के रूप में चित्रित करते हुए बड़े ही सुंदर ढंग से कहा गया है—अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्। यह वाक् की जीवन और सृष्टि में भूमिका को रेखांकित करनेवाला प्राचीनतम भारतीय संकेत है। हम सब यह देखते हैं कि दैनंदिन जीवन के क्रम में हमारे अनुभव वाचिक कोड बनकर एक ओर स्मृति के हवाले होते रहते हैं तो दूसरी ओर स्मृतियाँ नए-नए सृजन के लिए खाद-पानी देती रहती हैं। अनुभव, भाषा, स्मृति और सृजन की यह अनोखी सह-यात्रा अनवरत चलती रहती है और उसके साथ ही हमारी दुनिया भी बदलती रहती है। यह हिंदी भाषा का सौभाग्य रहा है कि कई सदियों से वह कोटि-कोटि भारतवासियों की अभिव्यक्ति, संचार और सृजन के लिए एक प्रमुख और सशक्त माध्यम का कार्य करती आ रही है। वह बृहत्तर समाज के जीवन में उसके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और राग-विराग की विभिन्न छटाओं के साथ जुड़ी रही। संवाद को संभव बनाते हुए हिंदी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जान भरने का काम भी किया था और हर कदम पर आगे बढ़कर सबको जोड़ती रही। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो यही पता चलता है कि हिंदी में रचे गए साहित्य का समाज के साथ समकालिक रिश्ता बना रहा और वह समाज को प्रेरित-अनुप्राणित करता रहा। यदि भक्त कवियों की वाणी में मुखरित होकर कठिन क्षणों में आत्मिक और नैतिक बल देकर समाज को शक्ति दी थी तो बीसवीं सदी के आरंभ में शुरू हुई हिंदी की पत्रकारिता भी कुछ कम तेजस्वी न थी। वह 'स्वाधीन भारत' का उद्घोष करते हुए अंग्रेजों की गुलामी के खिलाफ जन-जागरण का कार्य करती रही और समाज के मानस का निर्माण करती रही। इस तरह देशभक्ति, स्वराज्य और स्वतंत्र भारत की संकल्पना को गढ़ने और आम जन तक पहुँचाने में हिंदी की विशेष भूमिका थी, जिसे देश के अधिकांश नायकों ने अनुभव किया था। सन् 1914 में कविवर मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' का प्रकाशन हुआ था। निराला जी ने 1930 में ' प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव भारत में भर दे' के गान से नए भारत की परिकल्पना की थी। जहाँ स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की बहुमूल्य भूमिका थी, वहीं इस विराट् घटना ने हिंदी साहित्य में भी संवेदना, प्रस्तुति और विषय विस्तार की दृष्टि से प्रभावित और समृद्ध किया। आज सर्जनात्मक साहित्य की दृष्टि से हिंदी समृद्ध दिखती है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिंदी की उल्लेखनीय उपस्थिति है, जो संभवतः

* महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति।

पाठकों और दर्शकों की बड़ी संख्या के कारण है। शास्त्रीय (अकादमिक) साहित्य की दृष्टि से जरूर हिंदी की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती क्योंकि अकादमिक दुनिया के मन में हिंदी को लेकर संशय की एक गाँठ बनी हुई है और अंग्रेजी का ही प्राबल्य बना हुआ है। शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी की स्वीकृति और उपयोग न होने से हिंदी की सामग्री की गुणवत्ता भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है, पर उससे भी अधिक चिंता की बात यह है कि हिंदी की पृष्ठभूमि से आनेवाले छात्र-छात्राओं की प्रतिभा का विकास बाधित हो रहा है। दस बारह प्रतिशत लोगों द्वारा बोली-समझी जाने वाली अंग्रेजी की बलिवेदी पर ज्ञान, प्रतिभा और योग्यता आदि की लगातार अनदेखी करते रहना किसी भी तरह से क्षम्य नहीं ठहराया जा सकता। सरकारी क्षेत्र में हिंदी को 'राज भाषा' घोषित करने के बावजूद उसे पूर्वप्रचलित अंग्रेजी के अनुवाद के काम के लिए सुरक्षित कर दिया गया और यह तरकीब राज-काज में वर्ग विशेष की सामर्थ्य बनाए रखने तथा प्रजा को तंत्र से दूर रखने में सफल रही। भाषा-भेद से मन की दूरियाँ भी बढ़ती हैं।

स्मृति और भाषा के बीच जैसे बड़ा गहरा रिश्ता है, उसी तरह स्मृति हमारी अपनी पहचान से भी जुड़ी हुई है। विश्व के अनेक देशों में फैले भारत मूल के लोगों का हिंदी से लगाव और भारतीय संस्कृति के संरक्षण में रुचि इसकी पुष्टि करती है। विदेशों के कई विश्वविद्यालय हिंदी के अध्यापन और अनुसंधान में लगे हुए हैं। हिंदीभाषी जन समुदाय के संख्या बल को देखते हुए एक बड़े बाजार का अवसर भी दिखता है और हिंदी के प्रसार को बल मिलता है।

यहाँ पर यह उल्लेख करना उचित होगा कि सभ्यता के स्तर पर भारतीय अस्मिता को ओझल होने से बचाने में भाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। पहचान बदलने के लिए भाषा को बदलना एक प्रभावी तरकीब बन जाती है, जो स्मृतियों को गढ़ती चलती है। हिंदी लोक-भाषा रही पर जब संभ्रांत या अभिजात को संवाद की जरूरत हुई तो उनको भी इसके शरण में आने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं होता था। यह स्थिति आज भी है। पर शासन और शिक्षा की भाषा के रूप में ब्रिटेन के औपनिवेशिक राज के दौर में अंग्रेजी को भारत में कुछ इस तरह रोपा और स्थापित किया गया कि उसने देश की मानसिकता, ज्ञान के अभ्यास और संस्कृति-चर्या सब कुछ को उलट-पलट दिया। इसका परिणाम हुआ कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोजन की दिशा बदल गई। यह सब ऐसे किया गया कि जो कुछ भारतीय था, वह न केवल अपरिचित होता गया बल्कि उसके प्रति संदेह और अविश्वास भी बड़े पैमाने पर फैलता गया। इस बदलाव को संस्थागत रूप देकर इस तरह चिरस्थायी बना दिया गया कि वह यथार्थ की सीमा बनता गया और हमारा निजी सांस्कृतिक विवेक खोता गया। यह सब तब हुआ, जब ज्ञान के देशज स्रोत प्रचुर मात्रा में मौजूद थे और उपयोगी भी थे। प्राचीन इतिहास में भारत की आर्थिक-भौतिक उन्नति होने के अकाट्य साक्ष्य कुछ ऐसा ही प्रमाणित करते हैं। यह सब देश की भाषा में हुआ था और प्राप्त ग्रंथों तथा पांडुलिपियों की प्रचुर मात्रा इसकी पुष्टि करती हैं। यह बात स्पष्ट हो चुकी गई कि भारत के सांस्कृतिक आत्मविश्वास को सदैव के लिए डाँवाँडोल करने के लिए अंग्रेजों द्वारा कई उपाय किए गए। उनके द्वारा इतिहास से छेड़छाड़ की गई, सामाजिक रचना को तनावग्रस्त बनाया गया और लगातार घोर आर्थिक शोषण किया गया। संशय और संदेह 'प्राचीन' का पर्याय बन गया और 'आधुनिक' (यानी पश्चिमी!) को निर्विवाद और विश्वस्त घोषित कर दिया गया। इसे 'वैज्ञानिक' (साइंटिफिक) कहकर और भारतीय को 'वैज्ञानिकेतर' (नान साइंटिफिक) कहकर

सबको निरुत्तर कर दिया गया। आलोचक विवेक को छोड़ वैज्ञानिक मनोभाव (साइंटिफिक टेंपर) को आँख मूँदकर आवश्यक करार दिया गया। विज्ञान को धर्म और ईश्वर की जगह दे दी गई और अब सारे विज्ञापन 'वैज्ञानिक' का (झूठा) सहारा लेकर व्यापार में नफा कमाने को बढ़ावा दे रहे हैं।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा मनुष्य जीवन की अनिवार्यता है और वह न केवल सत्य को प्रस्तुत करती है बल्कि उसे रचती भी है। वह इतनी सघनता के साथ जीवन में घुलमिल जाती है कि हमारा देखना-सुनना, समझना और विभिन्न कार्यों में प्रवृत्त होना, यानी जीवन का बरतना उसी की बदौलत होता है। जल और वायु की तरह आधारभूत यह मानवीय रचना सामर्थ्य और संभावना में अद्भुत है। भारत एक भाग्यशाली देश है, जहाँ संस्कृत, तमिल, मराठी, हिंदी, गुजराती, मलयालम, पंजाबी आदि जैसी अनेक भाषाएँ कई सदियों से भारतीय संस्कृति, परंपरा और जीवन-संघर्षों को आत्मसात् करते हुए अपनी भाषिक यात्रा में निरंतर आगे बढ़ रही है। भाषाओं की विविधता देश की अनोखी और अकूत संपदा है, जिसकी शक्ति कदाचित् तरह-तरह के कोलाहल में उपेक्षित ही रहती है। इन सब के बीच व्यापक क्षेत्र में संवाद की भूमिका निभानेवाली हिंदी का जन्म एक लोक-भाषा के रूप में हुआ था। वह असंदिग्ध रूप से एक समृद्ध लोक भाषा थी, जिसमें न केवल आम जन बोलते थे बल्कि खुसरो, सूर, कबीर, विद्यापति, तुलसी, जायसी, मीरा, रैदास, रहीम, रसखान और जाने कितने ही महान् कवियों ने ऐसा अमर साहित्य रचा, जो समय बीतने के साथ भी अर्थवत्ता में निरंतर ताजा बना रहा। 'भाखा' वाला उनका काव्य एक साथ ग्रामीण आम जन से लेकर निपुण साहित्यकार तक सब के लिए अजस्र रस का स्रोत बना रहा और उसको सबने अपनाया। वह सुर-सरि 'गंगा' की भाँति सबको रसार्द्र करनेवाला बन गया। परंतु भाषा स्वभाव से ही समय-संदर्भ में परिचालित होती है। वह विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् करते हुए रूप बदलती रहती है। समय बदला और अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि विविध छवियों वाला समृद्ध 'लोक' खिसककर अनौपचारिक परिधि पर चला गया और ठेठ खड़ी बोली औपचारिक केंद्र में आकर व्यवहार और साहित्य में काबिज हुई। 'भाषा' का युग आया और 'भाखा' बोली हो गई, पर इनके बीच कोई दुराव और वैमनस्य नहीं था। जन-संवाद के सभी रूपों में भारत और भारतीयता को सुदृढ़ करती रही, हिंदी भाषा को संवैधानिक दर्जा मिला और उसके प्रयोग क्षेत्र का विस्तार होता रहा। तथापि सत्ता की भाषा अंग्रेजी के आगे उसे ठिठकना पड़ा। अंग्रेजों के जाने के बाद भी औपनिवेशिक मानसिकता टिकी रही, क्योंकि नौकरशाही को उसका अभ्यास हो चुका था और निहित हित के चलते उसकी श्रेष्ठता की पैरवी भी कई-कई कोनों से होती रही। स्वराज का स्वाभिमान, दायित्व और गौरव 'इंडिपेंडेंस' के अर्थ में जो स्वच्छंदता का रूप लेने लगा, प्रतिफलित होने लगा। परिणाम यह हुआ कि हिंदी, जो एक व्यापक जन समुदाय कि भाषा थी, सारे देश को जोड़नेवाली थी, अपनी सामर्थ्य, सम्मान और प्रसार को नहीं पा सकी और उसके साथ ही हिंदीभाषी जन भी उपेक्षा का शिकार हुआ। भाषा के प्रति कामचलाऊ नजरिए ने लगातार समाज को देश की पहचान करने, उसके साथ जुड़ने और संस्कृति के प्रवाह में शामिल होने, भारत भाव को अपनाने की दृष्टि से कमजोर किया। भाषा को लेकर भेद-भाव का विषय उलझता गया और राजनीति के स्वार्थ के बीच भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी की तुलना में न केवल अधिकारहीन होती गईं, बल्कि आपस में भी उलझ गईं। शिक्षा के माध्यम के सवाल को मुल्तबी रखा गया और अंग्रेजी के वर्चस्व को अक्षुण्ण रखा गया। ज्ञान, विज्ञान, नीति आदि के क्षेत्रों में

भारतीय भाषाओं में विचार-दृष्टि से क्षमता बढ़ाने की कोशिशें सतही बनी रहीं।

सन् 1837 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत की अदालत और शासन के काम के लिए फारसी की जगह अंग्रेजी को लागू किया था। इसकी बेड़ी कुछ इस तरह जकड़ी कि अंग्रेजी मानसिक गुलामी की द्योतक है और उसी के साथ सांस्कृतिक दुर्बलताएँ भी शामिल हुई हैं। इसके चलते उपभोक्तावाद को शह मिली और प्रकृति तथा पर्यावरण से दूरी बढ़ती गई है, जिसका खामियाजा सभी भुगत रहे हैं। अंग्रेजी के प्रचलन से गैर-बराबरी, भेद-भाव और जीवन जीने में असुविधा बढ़ी है। भारत में भाषा के सत्य से मुँह मोड़कर अंग्रेजी को जिस तरह एक अकाट्य विकल्प की तरह बैठा दिया गया, उसने विचार और कार्य को अंग्रेजी के माध्यम (केयर आफ) पर आश्रित बना दिया। द्वारपाल की तरह अंग्रेजी अंदर (विहित/स्वीकृत) और बाहर (अविहित/अस्वीकृत) की श्रेणियों में कार्य, ज्ञान, व्यवहार और अस्तित्व को बाँटने लगी। वास्तव में अंग्रेजी एक ऐसी सीढ़ी बन गई, जिस पर चढ़कर ही किसी को व्यवसाय और कमाई आदि विभिन्न जीवन-व्यापारों की राह पर चलना संभव हो पाता है। अंग्रेजी औपनिवेशिकता का माध्यम भी रही और उन्नति का पर्याय भी बन गई। यह सब इस तरह चलता रहा कि औपनिवेशिकता बने रहते हुए भी बहुत हद तक अप्रकट ही रही। इस तरह अंग्रेजी साम्राज्य के दौर से चली आ रही अंग्रेजी के भ्रमजाल के आवरण में रहते हुए अंग्रेजी को विश्व की सार्वभौम भाषा मान लेना भी हमारी अंग्रेजी की पक्षधरतावाली मानसिकता का एक प्रमुख कारण था। यह अलग बात है कि अंग्रेजी ही नहीं, अधिकाधिक भाषाओं को जानना समझना श्रेयस्कर है, परंतु ज्ञान के माध्यम और औपनिवेशिकता के पोषक की भूमिकाओं के बीच अंतर करना जरूरी है। यह इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि अंग्रेजी कहीं-न-कहीं कुशलता, मौलिकता और सृजनात्मकता को भी कुंठित करती सी दिख रही है।

इन सब चुनौतियों के बावजूद हिंदी की चेतना विस्तृत होती रही। आज हिंदी की भूमिका ज्ञान, कला-कौशल और सामाजिक जीवन के संयोजन आदि में कितनी प्रभावी है, यह सुविदित है। उसे रेखांकित करने के लिए भारत और विदेश में अनेक स्तरों पर प्रयास चलते रहे। अनेक प्रकार के उपक्रम राष्ट्रीय स्तर पर होते रहे। हिंदी के व्यापक परिदृश्य को आकार देते हुए विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन एक केंद्रीय घटना के रूप में उभरा। इसकी जीवन यात्रा वर्ष 1975 में नागपुर 'भारत में आरंभ हुई थी', जब श्री अनंत गोपाल शेवड़े की संकल्पना सफल हुई। तब इस आयोजन में मॉरीशस के यशस्वी जननायक सर शिव सागर राम गुलाम और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भी ने भी शिरकत की थी। 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस की धरती पर आयोजित हुआ था। इस बीच की अवधि वैश्विक स्तर पर अनेक परिवर्तनों की साक्षी रही है। आर्थिक-राजनैतिक मोर्चों पर नए समीकरण उभरे हैं और सहयोग के नए आयाम भी उद्घाटित हुए हैं। हिंदी की वैश्विक उपस्थिति को संबर्धित करने के लिए हिंदी का विश्व सचिवालय भी मॉरीशस में स्थापित हुआ। अनेक देशों से इ-पत्रिकाएँ और उनके मुद्रित संस्करण भी आ रहे हैं, जो हिंदी प्रेमीजनों द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उत्साहपूर्वक प्रकाशित किए जा रहे हैं। हिंदी के बाजार का भी विस्तार हो रहा है और विदेश की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी हिंदी की इस क्षमता को पहचान रही हैं। इस दृष्टि से दक्षिण कोरिया और चीन जैसे देशों ने विशेष रुचि ली है। भारत की संस्कृति में अनेक देशों कि रुचि बढ़ी है। भारतवंशी जनोंवाले फिजी, त्रिनिदाद, गुयाना, मॉरीशस, सूरीनाम और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है। भारतीय

सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने विदेशों में अनेक हिंदी पीठों की स्थापना कर भारतीय संस्कृति और हिंदी के अध्ययन को प्रोत्साहित किया है। भारतीय राजनय में प्रधान मंत्री मोदी के नेतृत्व में हिंदी का प्रयोग बढ़ा है। अनेक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वे भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए हिंदी में अपनी बात रखते हैं। विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने अपने कार्यकाल में विदेश मंत्रालय के कार्य-कलाप में हिंदी के उपयोग को प्रोत्साहित-संवर्धित किया था। उनके अथक प्रयास से हिंदी की देश और विदेश में सशक्त छवि का निर्माण हुआ। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की देख-रेख में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, अनुवाद ब्यूरो, केंद्रीय हिंदी संस्थान तथा हिंदी प्रशिक्षण केंद्र आदि अनेक उपक्रम संचालित हैं, जो हिंदी के सरकारी क्षेत्र में उपयोग को सक्षम बनाने का काम कर रहे हैं। हिंदी विश्व सम्मेलन के संकल्प के परिणामस्वरूप वर्धा में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय भी वर्ष 1997 में स्थापित हुआ, जो हिंदी को ज्ञान की भाषा और संस्कृति की संवाहिका के रूप में स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है।

चूँकि देशकाल स्थिर नहीं रहते, इसलिए भाषा का मानवीय उद्यम अनेक रूप लेता रहता है। जीवन-व्यापार में बदलाव आने के साथ-साथ भाषा की भूमिका में भी अनिवार्य रूप से बदलाव आता है। अतः समय बीतने के साथ संचार तकनीक में जो परिवर्तन हुआ, उसके अंतर्गत भाषा के भी कई संस्करण होते गए। भाषिक उत्पादों की वाचिक से हस्तलिखित, फिर मुद्रित और अब डिजिटल प्रस्तुति ने न केवल उनके संकलन और संग्रह के उपायों को बदला है, बल्कि उसी के साथ भाषा-प्रयोग के रूप भी चमत्कारी रूप से बदले हैं। संवाद भी दृश्य और श्रव्य विधाओं के अनेक रूपों में उपलब्ध होने लगा। संप्रेषण की प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी बदलाव भाषा के साथ हमारे दैनंदिन बर्ताव को तेजी से बदल रहा है। इस बदलाव से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। ब्लॉग, फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर और इ-पत्रिका जैसे किस्म-किस्म के सोशल माध्यम अभिव्यक्ति के साहित्यिक और गैर-साहित्यिक 'फॉर्म' में सीधी पैठ कर रहे हैं। अनुवाद के सॉफ्ट वेयर भाषांतर को सुगम बना रहे हैं। रचना और उसके पाठक के बीच का अंतराल घटता जा रहा है। कभी प्रकाशन की प्रक्रिया बड़ी थकाऊ, उलझाऊ और कई तरह से दुःखी करनेवाली हुआ करती थी और प्रकाशन के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। अब रचनाकर और पाठक के बीच का रिश्ता तात्कालिक हुआ जा रहा है। यह परिदृश्य आकर्षक और विकर्षक, दोनों ही प्रकार का है। रचना में त्वरा के अपने खतरे हैं, पर आज के समय का यथार्थ कुछ ऐसा ही हुआ जा रहा है। भाषा-व्यवहार के अनेक आयामों में परिवर्तन आ रहा है। साथ ही भाषा के प्रति गैर-जिम्मेदार रवैया भाषा-लोप की चुनौती भी खड़ा करनेवाला है। आज स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत की दिशा में मुखर रूप से विचार किया जा रहा है। यह उद्यम देश को सशक्त बना सके, इसके लिए देश को उसकी भाषा लौटाने की जरूरत है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में राष्ट्र भाषा के अभाव में गूँगा राष्ट्र स्वतंत्रता और स्वाधीनता के स्वप्न को साकार नहीं कर सकता। विश्व में अनेक देशों का अनुभव यही संकेत देता है कि देश की अखंडता, एकता, समृद्धि और गतिशीलता सब के मूल में भाषा की शक्ति काम करती है। न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य और नागरिक जीवन के क्षेत्रों में स्वभाषा से ही जन-जीवन सुखी हो सकेगा और भाषाओं के बीच सौहार्द से ही अमृत काल का संकल्प देश को समृद्धि के पथ पर आगे ले जा सकेगा।

□

misragirishwar@gmail.com

रामकथा भारत एवं विश्व

श्रीराम की करुणा के दो मधुर प्रसंग

—चंद्रभूषण पांडेय

पौराणिक कथाओं के विशाल भंडार को छोड़ दें तो भारतीय मनीषा द्वारा सृजित मात्र चार ही स्तुत्य ग्रंथावलियाँ हैं, जिनके अध्ययन से सृष्टि को संचालित व नियंत्रित करनेवाली परम सत्ता का बोध होता है। ये ग्रंथ हैं, वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् व श्रीमद्भगवत गीता। इन चारों के सार तत्त्व का विश्लेषण करें तो परम सत्ता के तीन नाम सामने आते हैं। प्रथम नाम पूर्णब्रह्म का है, जो अनंग, अकर्म और मात्र अनुभूति का शून्य समान विषय है। इसी सत्ता की इच्छा से ईश्वर और भगवान कही जानेवाली दो विराट् सत्ताओं के उदय व कर्मशील होने की बात उपरोक्त ग्रंथों में कही गई है। सामान्यतया, श्रद्धा, भक्ति, परंपरा और विश्वास में डूबे हुए जन तीनों को एक मान लेते हैं। मेरा अनुभव भिन्न है। ब्रह्म अरूप, अनंग, अकर्म होने के कारण परम स्तुत्य तो है, पर वह केवल द्रष्टा ही रहता है। वह कृपा, करुणा, क्रोध किसी भी भाव-दशा को लिए नहीं रहता। इसलिए वह न किसी पर दया कर शरण में बुलाता है, न किसी को लीलावश ही सही, मारता या पालता है। भला कोई महासागर किसी सरिता, सरोवर, कूप या बूँद को बुलाता है? इन्हें तो स्वयं ही श्रमेच्छा से प्रेरित होकर बहते हुए सागर तक जाना है।

ब्रह्म से उद्भूत ईश्वर और भगवान के पास अलग स्वभाव है। वे रूप, अंग, कर्म और भाव से भरे होते हैं। परंपरा से इतर कुछ कहने के लिए क्षमा माँगता हुआ मैं अपना विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूँ। आकर्षण, विकर्षण, समाकर्षण ये तीन प्रकार के संयोग हैं। समाकर्षण का स्वभाव है, अपनी ही प्रकृति के तत्त्व या जीव की ओर खिंच जाना। जैसे पानी, पानी की ओर, अग्नि, अग्नि की ओर, वायु, वायु की ओर। ठीक ऐसे ही। ईश्वर नाम सत्ता ऐश्वर्य-स्वामी है। वह उन भक्तों पर करुणा करती है, जो ऐश्वर्य युक्त होते हैं। सोना, चाँदी व नौ-निधि के उपादानों से ईश्वर को प्रसन्न करता है। यह एक प्रकार से ऐश्वर्यशालियों का वर्ग है, जिस पर ईश्वर नाम की सत्ता की सहायता-दृष्टि संभव होती है।

ठीक इसके उलट भगवान् राम की सत्ता दीनानाथ, अनाथनाथ हैं, जो इसके चरण में दीनता देख के हाथ फैलाकर—'देहिमाम करुणानिधे' कहकर रिरियाये, उस पर इसकी दृष्टि जाती है। जो कहे—दीन दयाल बिरिदु संभारी।। हरहु नाथ मम संकट भारी। उसको यह कृपा देने की बात करता है। इस तरह ईश्वर और भगवान की अवधारणा वर्गवादी है। वहीं ब्रह्म परम समतावादी सत्ता है,

---

* प्रख्यात साहित्यकार, वाराणसी।

जो मौन ही सही, सबको वचन देता है कि मेरे लिए धनवान, निर्धन, जाति, लिंग, मनुष्य, देव, असुर का भेद नहीं। सज्जन और दुष्ट का भी अंतर नहीं। गंदी, विषैली, छोटी-बड़ी, सुरसरि—जो भी नदी हृदय से इच्छा कर महासागर की ओर आती है, बिना प्रश्न किए, उसे अपनी गोद में समा लेता है। ठीक ऐसे ही ब्रह्म-सत्ता का स्वभाव है। जो भी चाहे उसके लिए ब्रह्म का द्वार सदा खुला रहता है। श्रीराम का स्वभाव इन तीनों सत्ताओं का संतुलन है। श्रीराम ब्रह्म भी हैं, ईश्वर और भगवान् भी। वे ऐश्वर्ययुक्त राजा दशरथ को आप्त काम करते हैं, मल्लाह राजा निषाद के घर-सम्मान देने जाते हैं तो माँ शबरी को माँ कह सम्मानित करके, मुक्ति-पद प्रदान करते हैं। साथ ही जटायु की सेवा तक करते हैं। दूसरी ओर वाल्मीकि, अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण व महर्षि अगस्त के प्रतीक्षारत हृदय में निर्गुण-सगुण सर्वव्यापी ब्रह्म का बोध कराते हैं। श्रीराम के इन स्वरूपों को एक में मिलाकर देखने-समझनेवाले महात्माओं ने प्रसंगानुसार इनको ब्रह्म, ईश्वर और भगवान् तीनों नामों से पुकारा है। ऐसे श्रीरामजी का समस्त जीवन-विस्तार करुणा और आदर्श-दया से भरा है। हम यहाँ उनकी करुणा के दो आचरणों का वर्णन करेंगे।

प्रथम प्रसंग : (शबरी रामायण के अनुसार)

मंथरा नाम कैकेयी की दासी के षड्यंत्र से राजा दशरथ का समस्त परिवार विकल है। राम के साथ सीता व लक्ष्मण भी वन जाने को तैयार हैं। तभी मंथरा कैकेयी का नाम लेकर राजाज्ञा सुनाती है, ''वन के लिए प्रस्थान करते समय किसी के तन पर या पास में कोई भी ऐसी वस्तु, उपकरण या आयुध नहीं होना चाहिए, जिस पर कौशलेश राज्य का राजचिह्न हो।'' यह सुनकर श्रीराम, लक्ष्मण व सीताजी ने ऐसी समस्त वस्तुएँ आँगन में ही उतार दीं। सीताजी ने अपने पति और देवर के साथ वल्कल वसन धारण कर लिये। माँ कौशल्या और सुमित्रा उदास-सी इस अनहोनी को देख रही थीं।

सीताजी ने माताओं को समझाते हुए कहा, "जब राज्य के शासक ही इस अत्याचार के विरुद्ध कुछ नहीं कहते तो आप सब क्यों दुःखी हैं।" माताओं ने एक साथ उत्तर दिया, "बेटी, हम रानियाँ नहीं दुःखी हैं, हमारे भीतर जो माँ है न, वह दुःखी है।"

सुनकर सीता के भीतर का पत्नीत्व जाग गया। सोचने लगी, 'मेरे पति की सेवा-सहायता में लक्ष्मण भैया तनिक भी ढील नहीं देंगे। परंतु पति के चरण की सेवा का दायित्व तो मुझ अर्धांगिनी का है। उनके पैर से पदत्राण उतर गए हैं। वन का दुर्गम पथ कुश-कंकर से भरा है।' उनसे पति के कोमल पैरों की कैसे रक्षा हो। यह विचार कर मंथरा से छिपकर उन्होंने श्रीराम की काष्ठ-पादुका को अपने आँचल में छिपा लिया। अपने उपनयन संस्कार के समय से ही श्रीराम इनको पहनते थे।

वन यात्रा आरंभ हो गई। वाल्मीकि आश्रम के पास पहुँचते ही विंध्य पर्वत का पथरीला-कँटीला मार्ग खड़ा हो गया। सीताजी ने चुपके से आँचल में से पदत्राण निकाला। श्रीराम के चरणों में पहना दिया। ऋषि-दर्शन के बाद यात्रा चित्रकूट के घोर जंगलों को पार करते हुए कामदागिरि की ओर बढ़ने लगी। रास्ते में वन-जनों के गाँव मिलते तो वन-जन इन शौर्य-सौंदर्य संगम का दर्शन करने को जुट जाते। प्रणाम के बाद वे पूछते, 'आप सब कौन हैं?' चित्रकूट पहुँचते-पहुँचते भारी दर्शक-भीड़ उमड़ पड़ी। पहले तो लोग इस अलौकिक मंडल के दर्शनार्थ आते थे, फिर राम के पैर में पड़े पदत्राण के पीछे छपे कोशल राज्य के राजचिह्न को देखकर समझ जाते कि ये अवतारी राम-लक्ष्मण और बहू जानकी हैं। बस, श्रद्धा

और प्रजा धर्म के चलते लोग सेवा भाव से श्रीराम के पास जुटने लगे।

श्रीराम ने यह स्थिति देख सीता और लक्ष्मण को समझाया कि इस तरह जन-भीड़ के जुटने से हम सबकी एकांत वन-साधना पूरी न हो सकेगी। अस्तु हमें अब अपना नाम व राज-परिचय नहीं बताना चाहिए। लक्ष्मण ने विनीत स्वर में कहा- "भइया, हम सबने अपना परिचय अपने मुख से किसी को नहीं बताया। बस एक ही कारण है जिससे जन-समुदाय हमें पहचान लेता है।" सीताजी ने जिज्ञासा की, "कौन सा कारण है?" लक्ष्मण ने अपना अनुमान सामने रखा, "भइया के पैर में पड़ा पदत्राण (खड़ाऊँ)। "वह कैसे?" सीता ने जानना चाहा। लक्ष्मण ने बताया, "खड़ाऊँ के पिछले भाग में कोशल राज्य का चिह्न छपा है। उसी को देखकर जनता जान लेती है कि हम कौन हैं।" मौन राम ने चुप्पी तोड़ी, कहा, "तब खड़ाऊँ को इस सघन वन में निश्चय ही फेंक देना चाहिए।" यह सुनते ही वन विचलित हो गया। वृक्ष हहर उठे। सामान्य मनुष्य ऐसे फेंकने की बात करें तो समझ में आती है। पर ब्रह्म रूप लीला पुरुष फेंकने की बात करें तो हमारी रक्षा कौन करेगा? वृक्ष चिल्ला उठे, श्रीराम, जिस वन की छाया में आप रहने आए हैं, उसी वन की संतान खड़ाऊँ को फेंकने का निर्णय सुनाकर आप हमें कौन सा उपहार दे रहे हैं?

श्रीराम दल यह आवाज सुनकर चकचक। कौन इतना जटिल प्रश्न उठा रहा है? वृक्षों ने इस बार समवेत स्वर में कहा, "श्रीराम, कुछ ही दिनों की आई सीता को आप प्रीति सहित रक्षा करते हुए अपने साथ रखे हैं। पर वर्षों से पैरों की सेवा में लगी वृक्षों की संतति खड़ाऊँ को फेंकने का निर्णय ले रहे हैं। स्मरण है न आपको। सात वर्ष पूर्व, जब आपका उपनयन संस्कार हुआ था, तब से यह खड़ाऊँ युगल आपके चरणों में रहकर आपकी सेवा करता रहा है। क्या ऐसे साथी/सेवक को फेंकना न्याय है? सुना है आप करुणा और न्याय के पूर्णावतार हैं। हमारी संतति के साथ न्याय करिए।" श्रीराम मौन मंथन के बाद मुखर हुए। बोले, "हे वनवृक्ष! आपको मेरा धन्यवाद। आपने मेरी बंद न्याय की आँख को खोल दिया है। हम खड़ाऊँ के साथ न्याय करेंगे।" वृक्ष जय-जय बोलने लगे।

फिर श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण की सहमति से कहा, "मेरे दोनों पैरों में इन दोनों खड़ाऊँ ने सात वर्ष तक साथ-साथ रहकर मेरी सेवा की है। दोनों पैरों की सेवा चौदह वर्ष के बराबर होती है।" इतना कहकर श्रीराम किसी गहन विचार में डूब गए। फिर कहा, "हे वृक्षों, अभी तो मैं देश निकाला, राज्यच्युत और अधिकारविहीन हूँ। फिर भी मैं समय और संयोग से प्रार्थना करता हूँ कि इस चौदह वर्ष की सेवा के बदले, इन दोनों खड़ाऊँओं को कोशल राज्य के राजपद पर राजा की तरह आसीन होने का वरदान मिले। चौदह वर्षों के लिए।"

कहते हैं, राम की इसी इच्छा के चलते, श्रीराम को चरम परम चाहनेवाले भ्रातान्भक्त भरत ने, सरस्वती की सहायता से, कामद वन में राज्य पर स्थापित करने के लिए श्रीराम से खड़ाऊँओं को माँगा था।

राम की इच्छा-न्याय को जानकर वन के वृक्ष गद्गद हो गए। उनकी डालियाँ श्रद्धा से झुक गईं। वृक्षों ने विनत स्वर में कहा, "हे करुणेश श्रीराम, हम तो जड़ जीव हैं। असमर्थ। आपके इस काष्ठ-प्रतिष्ठा न्याय के लिए कुछ भी नहीं दे सकते, सिवाय एक वचन के। इस वन-भ्रमण की अवधि में जब कभी आपको विश्राम न मिले तो वृक्षों की छाया में आ जाना। सोने के लिए भूमि की व्यवस्था न हो सके तो हमारी डालियों पर आ जाना। भोजन की जब कभी कमी हो जाए तो हे प्रभो, इशारा कर

देना, हम फल की ऋतु न रहने पर भी आपकी सेवा में फल देने का प्रयत्न करेंगे। आप पर कभी कोई विपत्ति न आए, पर यदि कोई संकट आ ही गया तो आप हमें आवाज अवश्य दीजिएगा।"

माता शबरी कहती है कि वृक्षों के इसी वचन को याद कर, सीता की खोज में भटक रहे श्रीराम ने वन-वृक्षों को पुकारा था। पुकार सुनकर वन के वृक्षों ने अपनी शाखों पर रहनेवाले पंछी, बंदर और भालुओं से निवेदन किया था कि हे शाखनिवासियो, श्रीराम की सहायता करिए। माता सीता की खोज में, आप सबसे जो भी हो सके, शीघ्र करिए। हमने श्रीराम को वचन दिया है। राम की ऐसी अगाध करुणा इतिहास की अनूठी घटना है, जिसने वन वृक्ष और वन्यजीवों में भी सात्विक चेतना का विस्तार कर दिया।

दूसरी आदर्श करुणा कथा (शबरी रामायण के आधार पर)

लंका विजय के पश्चात् श्रीराम बहुत विकल और दुःखी होकर अकेले ही बैठे थे। वे इतने दुःखी थे, जितने कि सीताहरण या लक्ष्मण के शक्तिबाण लगने पर भी दुःखी नहीं हुए थे। वे जल गई सोने की लंका व युद्ध में मरे सैनिकों की जलाई गई देहों की राख की ढेरियों को देख संतप्त होकर सोच रहे थे कि मनुष्य का लोभी और युद्धप्रिय स्वभाव कब बदलेगा। वह जानता है और देख भी रहा है कि जिस धन, दौलत, भूमि, भोग, स्त्री और अन्य पागलपन भरे लोभ के लिए वह संघर्ष और युद्ध करता है, उसमें से कुछ भी साथ नहीं जाता है। तब वह युद्ध करने को क्यों प्रेरित होता है। मनुष्य को, विशेषकर शक्तिसंपन्न राष्ट्रों में यह करुणावृत्ति क्यों नहीं जगती कि जो धन, साधन हथियार बनाने, युद्ध करने में, प्राणियों का प्राण लेने में लगाया जाता है, वह जीव जगत् की रक्षा, भूखों की भूख मिटाने, शिक्षा, औषधि और कल्याण के लिए प्रयोग में लाकर उत्तम आदर्श स्थापित किया जाए। चिंता, दुःख और चिंतन की धारा चल रही थी कि श्रीहनुमानजी का प्रवेश हुआ। उन्होंने श्रीरामजी को सूचित किया कि लंका नरेश महाराज विभीषण आपसे मिलना चाहते हैं। उनके साथ माता मंदोदरी भी हैं। यह सूचना पाते ही श्रीराम सीताजी को साथ लेकर स्वयं ही विभीषणजी के पास पहुँच गए। अभिवादन के बाद विभीषण ने रामजी से विनम्र शब्दों में पूछा, "प्रभु, आपने क्यों कष्ट किया ? मैं तो स्वयं ही आपके चरणों में उपस्थित होकर धन्य होता।"

श्रीराम ने कहा, "महाराज विभीषण, आप अब चक्रवर्ती सम्राट हैं। मैं एक सामान्य नागरिक। मेरा आपके पास आना नीति और नैतिकता है। फिर, जब महारानी मंदोदरी एक स्तुति योग्य नारी का आगमन हुआ हो तो मेरा आना ही धर्म है। आचरण की श्रेष्ठता इसमें है कि जब कोई सामान्य स्त्री भी पुकारे तो पुरुष को, यहाँ तक कि राजा और न्यायाधीश को भी, यदि वे न्याय के आसन पर बैठे हों तो अवसर देखकर स्वयं स्त्री के पास जाना चाहिए।

यह आदर्श कथन सुनकर विभीषण विनत हो गए और कहा, "प्रभु, मैंने पहली बार असुर और सुसंस्कृत मानव समाज के आचरण का भेद समझा है। मैं आपसे कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहता हूँ।"

श्रीराम ने कहा, "विभीषणजी, आपको आज्ञा लेने की कभी भी आवश्यकता नहीं है। कहें, क्या कहना है ?"

विभीषण ने कहा, "भगवन्, मैं आपके समक्ष असुर कुल की मान्य रीति का पालन करना चाहता हूँ।" श्रीराम ने मधुर स्मृति के साथ प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि आपके रीति-पालन में

सम्मिलित होकर आनंदित होऊँगा। पर मित्र, स्मरण रखिए, मेरा भाई भरत और मेरी जन्मभूमि मुझे पुकार रहे हैं। सो, जो करना हो, शीघ्रता के साथ करिए।

महाराज विभीषण ने सहमति पाते ही सोने के थाल में सजे अक्षत व दही से राम का ललाट-मंडन किया। माता सीता के चरण स्पर्श किए। फिर थाल को राम की ओर बढ़ाते हुए कहा, "महाराज, असुर कुल की रीति रही है कि जो इस कुल पर विजय प्राप्त करता है, उसका राजकोष पर भी अधिकार हो जाता है, सो स्वीकारिए। ये राजकोष की कुंजियाँ हैं।"

श्रीराम ने झिझकते हुए उन्हें स्वीकार कर लिया। तब विभीषण ने अगला प्रस्ताव रखा, "भगवन्, असुर कुल की एक महत्त्वपूर्ण रीति भी आपको पूरी करनी है।"

श्रीराम ने पूछा, "वह क्या है ?"

"यह कि जो भी असुर कुल पर विजय प्राप्त करता है, राजमहिषी पर भी उसका अधिकार हो जाता है। सो मैं महारानी मंदोदरी-राजमहिषी को आपके कृपा करों में सौंपना चाहता हूँ। इन्हें श्रीशिवजी का वरदान है। ये सदा ही जगत्-सौंदर्य की श्रेष्ठ नारी, अठारह वर्ष की शाश्वत-युवती बनी रहेंगी।"

इसी क्षण सीताजी के आनन पर आत्मविश्वास और विषाद की रेखाएँ आ उभरीं। पति के चरित्र पर आत्मविश्वास और नारी की नियति पर विषाद।

श्रीराम ने बिना विलंब किए जोर से कहा, "हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ। चौदह वर्ष हो गए मेरी माँ को छूटे हुए। आज फिर एक माँ के दर्शन हुए।" इतना कह वे मंदोदरी की छाती से जा लगे। दोनों ओर से आँसू। उस क्षण गंगा-यमुना के संगम का अभूतपूर्व दृश्य उभर आया।

बंदर और असुर, देव और अन्य धन्य-धन्य कह चिल्ला उठे, "श्रीराम की जय। राम की करुणा की जय।"

खाली हाथ लंका में आए श्रीराम अपनी करुणा सुधा बाँटकर खाली हाथ ही चले गए।

□

gyanesh.c.pandey@gmail.com

राष्ट्रभाषा के बिना आजादी बेकार है।

—अवनींद्र कुमार विद्यालंकार

राष्ट्रीय एकता की कड़ी हिंदी ही जोड़ सकती है।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

भाषा देश की एकता का प्रधान साधन है।

—(आचार्य) चतुरसेन शास्त्री

राम और राष्ट्र की अवधारणा

—प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल

साहित्य, संगीत और कला इन तीनों की त्रिवेणी है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि जब साहित्य, संगीत और कला तीनों होती हैं तभी मनुष्य होता है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य होने के यही लक्षण हैं। जिसमें यह नहीं है, वह पशु है तथा जिसमें यह है, वह मनुष्य है और मनुष्य होना कठिन है। जब हम राष्ट्र की चर्चा राम के आलोक में करते हैं, तो सबसे बड़ी बात यह है कि भारत की राष्ट्रीयता केवल भारतीय बनाने के यत्न तक सीमित नहीं है। अपितु यह उसको भी अतिक्रांत करती हुई, उसको भी पीछे छोड़ती हुई संपूर्ण मनुष्य बनाने की है। क्योंकि इसके आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। मनुष्य होना सहज नहीं है। भारतीय संदर्भ में राष्ट्र की अवधारणा को समझें, इससे पहले दो चीजें समझना जरूरी है। दुनिया भर में राष्ट्र की जो चर्चा है, इस राष्ट्र शब्द का नेशन अनुवाद करते हुए जो संदर्भ है, वह संदर्भ क्या है और भारत में, विशेषकर अयोध्या में राम की चर्चा करते हुए राष्ट्र को समझने का यत्न कर रहे हों तो राष्ट्र का अर्थ समझना और जरूरी हो जाता है। उस शब्द से हम सब परिचित हैं, वह है—सभ्यता और संस्कृति।

पूरी दुनिया में राष्ट्र की चर्चा सभ्यता के संदर्भ में होती है। पूरी दुनिया की समस्या मनुष्य को केवल सभ्य बनाना है। सभ्य बनाने की प्रक्रिया एक 'टेलरमेड निर्मित की प्रक्रिया' है, जिसे काट-छाँट करके बनाया जा सकता है। विवेकानंद ने पूरी दुनिया को समझाते हुए बहुत साफ-साफ शब्दों में कहा था कि जो यूरोप की सभ्यता दृष्टि है, वह दर्जी के द्वारा बनाई हुई सभ्यता है। सभ्यता और संस्कृति के बीच थोड़ा अंतर तो होता है किंतु हमारा जीवन दोनों के बीच साथ-साथ चलता रहता है। जब मैं सभ्यता की बात कर रहा हूँ तो व्यक्ति के रूप में, समाज के रूप में या राष्ट्र के रूप में हमारे पास जो है, वह सभ्यता है।

मैं जब संस्कृति शब्द का प्रयोग कहीं भी करूँगा तो उसका अर्थ बहुत ही स्पष्ट था 'होगा'। मैं जो हूँ, व्यक्ति के रूप में, एक समाज के रूप में और एक राष्ट्र के रूप में मेरी अस्मिता, मेरी पहचान और मेरी विशिष्टता है। जिनको देख करके मुझे दूसरों से अलग किया जाता है, वह सब कुछ संस्कृति है। अब जब यह स्पष्ट है तो इस देश को किसको देखकर के अलग किया जाता है? विवेकानंदजी ने तो बहुत पहले ही बता दिया था कि भारत की पहचान तो तब से है जब राम का नाम लेना प्रतिबंधित था। ऐसा सैकड़ों वर्षों का

---

* महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) के कुलपति।

कालखंड इस देश ने विशेषकर इधर की भूमि ने देखा था। उन यातना के दिनों में भी जिनके विवाह के गीतों में, जन्म के गीत में और मृत्यु के रुदन में भी राम सम्मिलित हैं। तो उनकी पहचान राम के बिना नहीं हो सकती हैं। इस दृष्टि से एक समाज के रूप में, श्रेष्ठ समाज के रूप में, सभी काल खंडों में दुनिया की अन्य सभ्यताओं ने स्वीकार किया है, उस समाज की जो अस्मिता है, वह अस्मिता राम है और यह राम बनता कैसे है? राजाराम से नहीं बनता है, राजाराम से रामराज्य तो बनता है। एक ऐसी व्यवस्था की निर्मिति तो बनती है जिसको विश्व की अन्य सभ्यताओं ने अभी कल्पना के स्तर पर भी परिभाषित करने में सफलता नहीं पाई है। वह सभ्यताएँ जब श्रेष्ठ स्थिति की कल्पना करती हैं तो अधिकतम ग्रुप की अवधारणा पर जाकर सिमट जाती है। लेकिन हम एक ऐसी सभ्यता में हैं जिस सभ्यता में अधिकतम उत्कृष्ट, यह शब्द अत्यंत छोटा पड़ता है। जहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं है, केवल शुभ है, केवल सुचिता है, केवल श्रेय है।

इस प्रकार की व्यवस्था की कल्पना करते हुए उसको यथार्थ रूप में अनुभूत किया गया समाज यदि दुनिया में दिखाई देता है तो वह भारतीय समाज है। वह भारत है, वह राम का देश है, वह राम की भूमि है। यह होता कैसे है? 19वीं शताब्दी में नेशन स्टेट की अवधारणा यूरोप में जब विकसित हो रही थी, हम गुलाम थे, तब भी एक राष्ट्र के रूप में हम अस्तित्ववान ही नहीं थे अपितु पूरी दुनिया इसकी स्वीकृति भी देती थी। जिन्होंने हमें गुलाम बनाया था, उन्होंने भी हमें घास तोड़ने के औजारों से अपने यहाँ ही प्रयोग नहीं किया। यहाँ की किताबों में भी दिखाया है। लेकिन जो अपने यहाँ वे कर रहे थे, जो अपने ग्रामर स्कूल में ब्रिटिशर्स पढ़ा रहे थे, हमें पढ़ाने की कोशिश जरूर उन्होंने की और जो आगे से पढ़ाने की कोशिश चली आ रही थी, कारवाँ आता गया, हिंदुस्तान बसता गया। लेकिन वह अपने ग्रामर स्कूलों में पढ़ा रहे थे तो एक राष्ट्र के रूप में पढ़ा रहे थे। वह जिस राष्ट्र को पढ़ा रहे थे, वह राज्य की प्रभुसत्ता और सत्ता दोनों प्रतियोग होने के बाद भी पढ़ा रहे थे। वह किसके आधार पर था? तो स्वाभाविक है, हम जो हैं, हम जो उस समय भी थे, उससे पूर्व भी थे और आनेवाले कालखंड में हजारों वर्षों बाद भी रहेंगे। उनकी पहचान कैसे होती है? उसकी पहचान का प्रश्न जब खड़ा होता है, हर कालखंड में खड़ा होता है। स्वयं जब ब्रह्मा और देवर्षि नारद ने वाल्मीकि से सत्य और धर्म का इतिहास लिखने का आग्रह किया तो वाल्मीकि का प्रश्न था—वह कौन ऐसा है विग्रहवान धर्म, सत्यमूर्ति जिसको सामने रख करके जिसकी कथा की मैं सत्य और धर्म का इतिहास लिखूँगा। यहाँ दो-तीन बातें बहुत स्पष्ट हैं—भारत में जो इतिहास लिखे जाने की परंपरा है, वह पुराण, रामायण और महाभारत की परंपरा है। बाद में कश्मीर में लंबी परंपरा दिखाई देती है।

'राजतरंगिणी' में आकर इतिहास लेखन पूर्णता को प्राप्त करती है। यह सब राजाओं को सामने रखकर राज्य का या राज का इतिहास न लिख कर वस्तुतः धर्म का इतिहास यानी राष्ट्र का इतिहास लिखा गया है। धर्म का जब मूर्तिवान विग्रह होता है व्यक्ति में, समाज में, राज्य में तब राष्ट्र की निष्पत्ति होती है। वस्तुतः राष्ट्र शब्द संस्कृत में 'राज शासते' से नहीं बनता है। जो राष्ट्र शासित हो रहा हो, उसमें राष्ट्र प्रस्फुटित नहीं होता। अमरकोशकार के अनुसार राष्ट्र शब्द 'राज हितव' से बनता है। उस राज शब्द से राष्ट्र बनता है, दीप्तिवान अर्थ में बनता है, समंजित अर्थ में बनता है। जो दीप्तिवान है, समंजित है, श्रेष्ठ, है वही राष्ट्र है। अब मनुष्य के रूप में, व्यक्ति के रूप में, पुत्र के रूप में, पति के रूप में, पिता के रूप

में, विद्यार्थी के रूप में, योद्धा के रूप में, राजा के रूप में, सभी रूपों में कोई एक व्यक्ति दुनिया के इतिहास में निष्कलंक रूप से, अद्वितीय रूप से सर्वत्र दीप्तिवान है, सुभाषित है, श्रेष्ठता की पूर्णता है, तो वह राम है। इसलिए भारत की राष्ट्रीयता को हमने इस नाम से पहचानने की कोशिश नहीं की है।

मैं इस अवसर पर कुछ दिन इंग्लैंड में और लंबे समय तक अमेरिका में भारत विद्या के रूप में काम करनेवाले आनंद कुमार स्वामी को जरूर याद करना चाहूँगा। उन्होंने भारत में जन्म नहीं लिया था और न ही भारतीय थे। उनके पिता सिंघली थे और माँ फ्रेंच थीं। लेकिन आजीवन राम को केंद्रित करके वह यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों में सभ्यताओं का अध्ययन कर रहे थे। वह भी उस कालखंड में, जब भारत के अंदर स्वदेशी की बात चल रही थी। तो वे एक ऐसे विचारक हैं, भारतविद्ध हैं, जो स्वदेशी आर्ट्स की बात कर रहे थे। उनकी कला का सिद्धांत कृष्ण कथाओं से नहीं, राम के जीवन से उपजता है। क्योंकि कृष्ण को अपनाना, कृष्णमय हो जाना, कृष्ण भक्त हो जाना सहज है, आसान है। लेकिन राम को अपनाना, राम की आराधना करना, राममय होना, राम-सा जीवन जीना, स्वयं में अपने जीवन में कर ले तो यह समग्र तप है। भारत के संदर्भ में हम जब भी चर्चा करते हैं, संपूर्ण इतिहास में, तो वास्तव में एक तप की संस्कृति का विचार आता ही है। इसको समझना होगा।

राम कठोर हैं, लेकिन स्वयं के लिए कितने कठोर हैं? तो इसका उत्तर करुणा से परिपूर्ण ग्रंथ 'उत्तर रामचरित' में है। वह प्रतिज्ञा है, स्नेह है, दया है, ये जो राम के लक्षण हैं। इनको हटा दिया जाए तो राम बनता ही नहीं है। हम सभी राम की जो कथा कहते हैं, उसमें राम स्नेही राम हैं, मित्रों के लिए कुछ भी कर-गुजरनेवाले राम हैं। सुग्रीव के लिए पेड़ की ओट में भी जाने पर जिनको संकोच नहीं होता है, वे राम हैं। एक नंगे पैर वल्कलधारी मनुष्य उस त्रिलोक विजेता शक्ति से जानकी के पुनरावर्तन के लिए टकरा जाता है, वे राम हैं। लेकिन 'उत्तर रामचरित' का राम क्या प्रतिज्ञा कर रहा है—स्नेह, शोक, दया इत्यादि को मैं छोड़ ही दूँगा, इन चीजों से मुझे कोई लगाव नहीं है। जानकी को भी छोड़ दूँगा। इस लोक की आराधना हो सके, इस लोक में सुव्यवस्था हो सके, मर्यादाओं की स्थापना हो, सबको न्याय प्राप्त हो, विविध प्रकार की समस्याओं से समाज को मुक्ति प्राप्त हो, इसके लिए उस जानकी को भी छोड़ दूँगा, जिस जानकी के लिए जब राजा राम नहीं है, वनवासी राम है, वल्कलधारी राम है, सैन्यविहीन राम है। वह संपूर्ण दक्षिणा अपने राक्षसों से लड़ते हुए अंततः लंका में असंभव कार्य सेतु निर्माण करके लंका जाता है, त्रिलोक के विजयी रावण को पराजित करता है। लोकारत्नाकर की यह दृष्टि दुनिया में अन्य कहीं अप्राप्त है।

अभी एक महारानी के जाने पर हमने भी शोक मनाया है। वहाँ रानी के लिए राज छोड़ने का इतिहास तो मिलता है, परंतु कोई इतिहास राज के लिए, व्यक्ति के कल्याण के लिए रानी छोड़ने का नहीं प्राप्त होता है। भारत की राष्ट्रीयता अन्य राज्य व्यवस्थाओं से, अन्य सभ्यता दृष्टियों से उसे अलग करती है। उसे इस दृष्टि से अलग करती है कि राजा को भी प्रजा के रंजन के लिए, प्रजा के कल्याण के लिए, प्रजा के सुख के लिए अपने परिजनों का त्याग करना या उन्हें दंडित करने की जरूरत होती है तो करे। लेकिन व्यक्ति के तौर पर जो दंड सीता को दिया है, वह दंड राज करते हुए भी स्वयं स्वीकार करके वल्कलधारी कुश के बिस्तर पर सोनेवाले राम के रूप में स्वयं को परिवर्तित भी

करता है। यानी दो भूमिकाओं पर एक साथ मनुष्य किस रूप में चल सकता है। एक उसकी लोक के प्रति जो भूमिका है, दूसरी स्वयं के प्रति जो भूमिका है, व्यक्ति के तौर पर परिवार के प्रति जो भूमिका है। एक परिवार के सदस्य के तौर पर और इनके बीच सुसंगति की निर्मिति कैसे हो सकती है? इसके उदाहरण के रूप में भी राम को देखा जाना चाहिए।

भारत की राष्ट्रीयता का संदर्भ इतने से ही समाप्त नहीं होता है। श्लोक की परंपरा में हजारों-हजार वर्ष से लगातार दोहराया जा रहा है। 'अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' आकर्षित ही नहीं करती है दुनिया, दुनिया की संपत्तियाँ, लेकिन तृण भाव भी भारत के प्रति, मेरी मातृभूमि के प्रति कुदृष्टि रखनेवाला बर्दाश्त भी नहीं होगा। सेतु बंधन होगा और रावण मारा जाएगा। राम को समझना है तो यह भी समझना पड़ेगा। इस कालखंड में विशेष रूप से समझने की आवश्यकता है, जब हम दुनिया की पाँचवीं अर्थव्यवस्था हो गए हैं। दुनिया की पाँचवीं अर्थव्यवस्था होने के नाते विशेष रूप से समझने की जरूरत है कि भारत राम के नाते भाषित है। इसलिए नहीं कि अयोध्या में श्रीलंका-सा वैभव भी था। अब भौतिकता की कल्पना तो उससे अधिक कोई कर भी नहीं सकता है कि एक ऐसा राज्य बना था, एक ऐसा राष्ट्र बना था जिसकी दोनों दीवार भी सोने की थीं। मनुष्य इसके बारे में सर्वोत्तम सिर्फ सोच सकता है। रावण को सेतु बाँधने की जरूरत नहीं पड़ती थी, वह वायु मार्ग से समुद्र को पार करता था। लेकिन राम को इससे भी समझना पड़ेगा कि उसको जीतते हैं। उस काल के सर्वाधिक समर्थक सेना को जीतते हैं। उस काल की सर्वाधिक भौतिक संसाधनों से संपन्न सेना को जीतते हैं। जिसमें दुनियाभर से खून शुल्क लेकर के संपत्तियाँ जुटाई थीं, उस राष्ट्र को जीतते हैं। आज भी दुनिया में खून का शुल्क लेनेवाले राष्ट्र बहुत हैं। हम उनसे लड़ भी रहे हैं। उस राम से हमारी पहचान स्मरण कराते हैं कि खून से शुल्क लेनेवाले राज्यों से लड़ने की जो परंपरा है, निरंतरता में जो परंपरा दिखाई दे रही है, वो परंपरा भारत के जल में, भारत की इन हवाओं में जो जिंदा है और वह राम के कारण जिंदा है।

आपको लग सकता है कि आज का भारत पूरी दुनिया में इस प्रकार की कल्पना कैसे कर सकता है? भारत के राष्ट्र की पहचान इस दृष्टि से भी राम के नाते ही क्यों बनती है? तो महाराष्ट्र में एक स्थान है, जो कभी मध्य भारत का केंद्र था, उसे रामटेक कहते हैं। कालिदास ने उसे रामगिरि कहा है, वे वहाँ मेघदूत देख रहे थे। लेकिन उनसे पहले राम वहाँ गए थे, अगस्त ऋषि के आश्रम में। आश्रम के इर्द-गिर्द दंडकारण्य का क्षेत्र, उसके इर्द-गिर्द की अस्थियों को देखकर राम ने प्रतिज्ञा की थी, 'निसिचर हीन करऊँ महि' वो राम कौन थे? वही नंगे पाँव वल्कलधारी चित्रकूट को छोड़कर पंचवटी की ओर प्रस्थान कर रहे राम, किसलिए चित्रकूट से पंचवटी की ओर प्रस्थान कर रहे थे? क्योंकि अयोध्या से लोगों का आने-जाने का क्रम इतना बढ़ गया था कि चित्रकूट में उन्हें शांति नहीं मिल रही थी, कारण तो यही बताते हैं। लेकिन अगर शांति के लिए जा रहा कोई व्यक्ति बीच रास्ते में रुक करके शांति के लिए आश्रम तलाशने के बजाय युद्ध का आगाज नहीं करता। मेरे जीवन में शांति प्राप्त हो जाए, इससे शांति फलित नहीं होती है। जब तक संपूर्ण परिवेश में शांति नहीं आती है, संपूर्ण परिवेश सुव्यवस्थित नहीं होता है, हमारे सर्वत्र नैतिकता का, स्नेह का, सौख्य का, करुण जीवन दृष्टि का संस्थापन नहीं होता है।

श्रीराम को जानने का तात्पर्य क्या है? जिस प्रकार से वाल्मीकि ने कहा था कि मुझे संप्रति

काल में जो व्यक्ति दिखाई दे रहा है, उसको सामने रख करके धर्म और सत्य की कथा कहनी है। भारत के हर कालखंड में राम संप्रतिक हैं। राम हर कालखंड में वर्तमान हैं। ऐसा कोई कालखंड नहीं है जिसमें राम हुए थे, इस प्रकार की कथा कही गई हो। तुलसी के राम हैं, इस विश्वास के साथ कथा कह रहे हैं। वह रैदास हो, चाहे भील हो, वह गुरु गोविंद सिंह हो या समर्थ रामदास। वो सब राम का जब विचार करते हैं तो राम को राष्ट्र की आत्मतत्त्व के रूप में, राष्ट्र की चेतना के रूप में, राष्ट्रीय धर्म की पहचान के रूप में, राष्ट्रीय सत्य के रूप में सामने रखकर राम के बारे में चर्चा करते हैं। इस देश में एक कालखंड ऐसा आया था जब कभी एक कालखंड का इतिहास लिखना था—सत्य और धर्म का। तो राम कथा लिखी जा रही थी, जो वाल्मीकि ने किया। इतिहास लिखने का एक कालखंड ऐसा भी आया जिसमें जिसको दाम दिया गया, उसने राम को काल्पनिक बताने का काम किया। उस संस्था में मुझे भी 2 वर्ष काम करने का अनुभव है। हमारा इतिहास महज स्टोरी नहीं है। यह अन्य पुरुष की कहानी भी नहीं है। यह हमारी कहानी है, हमारी कथा है। इतिहास का तात्पर्य भी यही होता है 'इति ह अस'। जो होता है, उसको कहना इतिहास है, जो होता है, वही होगा। ईश्वर ने सृष्टि को बनाते हुए कोई चौसर नहीं खेला है। इसे वह एक निश्चित प्रयोजन के साथ बनाया है। भगवान् राम उस निश्चित प्रयोजन को बार-बार उच्चरित करते रहते हैं। वह निश्चित प्रयोजन अधर्म का नाश, धर्म की स्थापना, प्राणी मात्र के कल्याण के लिए मनुष्य की श्रेष्ठतम भूमिका की स्थापना है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

भारत की राष्ट्रीयता सिर्फ मनुष्य की, भारत के लोगों की श्रेष्ठता की स्थापना का सिद्धांत नहीं रहा है। अपनी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए, आचरण से इसको चरितार्थ करते हुए अन्यों में इस श्रेष्ठता का आधान किस प्रकार से होगा? हम पूरी दुनिया को श्रेष्ठ कैसे बना सकते हैं? पूरी दुनिया को जानना, उसको समझना ही वस्तुतः इस राष्ट्र को समझना, जानना है। राम और राष्ट्र को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। स्वामी विवेकानंद ने 1896 ई. में कहा था कि यह राष्ट्र ही एकमात्र जागृत देवता है, तो राष्ट्रदेव राम की ही बात कर रहे थे। भारत माता, राम, राष्ट्र इन तीनों को अलग-अलग करके जिसने देखा है, वस्तुतः उन्होंने भारत को नहीं समझा है। इसी नाते महर्षि अरविंद कहते हैं कि जो दुर्गा है, वही भारत माता है, जो जगत्-जननी है, वही भारत माता है। इन दोनों में भेद नहीं है। जो राष्ट्र है, वही राम सहित हमारे पूर्वजों की महान् परंपरा, श्रेष्ठ परंपरा, जागृत परंपरा है। उसको स्वीकार करना, उसको जानना, उसे पहचानना, उस परंपरा के अनुरूप बनना, इसके सिवाय राष्ट्र तत्त्व के स्व में, अपने व्यक्तित्व में, परिवार में, समाज में और संपूर्ण देश के स्तर पर स्थापित करने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

राम को जानना राष्ट्र को जानना है, लेकिन राम केवल ज्ञान से तो नहीं जाने जा सकते। ज्ञान के चक्कर में जगत् जननी सती ने परीक्षा करने की कोशिश की थी और परिणाम शिव के क्रोध के क्षोभ के रूप में उत्पन्न हुआ था। इसलिए श्रीराम को जानने का जो तरीका है, या किसी भी ज्ञान का जो तरीका है, वह तरीका भगवत गीता में बताया गया है—'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'। इसको गोस्वामी तुलसीदासजी मंगलाचरण में ही स्पष्ट करते हैं 'भवानी शंकरो वंदे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ'। वस्तुतः राम के प्रति और राष्ट्र के प्रति सबसे पहले आस्था निर्माण करने की आवश्यकता है। आस्था निर्मिति का सैकड़ों वर्षों का इतिहास रहा है। जिसने इस देश के कण-कण के प्रति

आस्था की निर्मिति की है। वह अयोध्या में बन रहा भगवान् राम का श्रेष्ठ मंदिर हो या पूरे देश में भारत के पराक्रम की विशिष्ट हुंकारों से भारत का जागृत होना। भारत का राष्ट्र भाव जागृत होगा। भारतीयों के अंदर राष्ट्र चेतना जागृत होगी। इसके प्रति श्रद्धा की आवश्यकता है, विश्वास की आवश्यकता है। तब आपकी युक्तियाँ फलदायी होंगी। अन्यथा कोरे कुतर्कों की बात करें तो राम ने उस कोरे कुतर्कों का जवाब देते हुए चित्रकूट में भरत को बताया था कि भरत देखो यह जो गौतम है, न्यायशास्त्र का विद्वान् है, लेकिन परम नास्तिक है। नास्तिक तो वह है जिसके पास मति नहीं होती है, जिसकी मति श्रद्धा संपन्न नहीं होती है।

श्रद्धा संपन्न, विश्वास संपन्न, स्वचेतना संपन्न, अपने प्रति विश्वास, अपने पूर्वजों के प्रति विश्वास, श्रद्धा का भाव निर्मित करते हुए जो ज्ञान चेतना निर्मित होगी, वह ज्ञान चेतना राम के अनुरूप राष्ट्र की निर्मिति का संकल्प आज के युवाओं को लेना है। क्योंकि भारत के इतिहास में आज जिस युवा को यह अवसर प्राप्त हुआ है, उससे पहले किसी युवा को प्राप्त नहीं हुआ था। देश के लिए मरने के अवसर बहुत थे, लेकिन देश के लिए हर समय जीने का अवसर पहली बार आया है। इस राष्ट्र के लिए जीने का, इस राष्ट्र के लिए बनने और बनाने का अवसर पहली बार आया है। जिस राष्ट्र के लिए बनने और बनाने का अवसर आता है तो वह अवसर वही है जो वनवास के बाद लौटकर राम अयोध्या आते हैं। दुनिया भी सोच नहीं पाती है उस राम राज्य की स्थापना पूरे भारत के अंदर होती है। राम राज्य की स्थापना का कालखंड हमारे जीवन में दस्तक दे रहा है। विशिष्ट धर्म सृष्टि के साथ अपना श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए प्रेरित कर रहा है।

□

vcoffice.mgahv@gmail.com

भारत की परंपरागत राष्ट्रभाषा हिंदी है।

—नलिनविलोचन शर्मा

भारतीय एकता के लक्ष्य का साधन हिंदी भाषा का प्रचार है।

—टी. माधवराव

हिंदी हिंद की, हिंदियों की भाषा है।

—र.रा. दिवाकर

रामकथा के प्रसार में गीता प्रेस की भूमिका

—डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त

गीता प्रेस केवल पुस्तक प्रकाशित करने या उसका वितरण करनेवाली संस्था नहीं है, अपितु देश के नागरिकों के चरित्र और संस्कार का निर्माण करनेवाली संस्था है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि गीता प्रेस ने वेद और स्मृति ग्रंथों को छोड़कर उपनिषद्, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, कृतिवास रामायण, अन्य पौराणिक साहित्य, समस्त तुलसी साहित्य तथा अनेक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना करनेवाली लगभग दो हजार तीन सौ पुस्तकें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की हैं और इन्हें विश्व के विभिन्न भागों में पहुँचाया है। संस्कृत साहित्य के विलुप्त भंडार को प्रकाशित कर देशभर में प्रसारित करने का श्रेय चौखंबा प्रकाशन तथा मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी को तथा भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे तथा खेमराज कृष्णदास प्रेस, मुंबई और अन्य संस्थाओं को भी जाता है पर बहुत ही अल्प मूल्य में प्रामाणिक पाठ के साथ विपुल संख्या में प्रकाशित कर सरलता से सर्वत्र उपलब्ध कराने का कार्य गीता प्रेस ने ही किया है। इसके पुस्तकों की प्रसार संख्या भी अकल्पनीय है। अब तक कुल बहत्तर करोड़ से अधिक पुस्तकें गीता प्रेस से छप चुकी हैं।

गीता प्रेस का उदय बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक (1923 ई.) में ऐसे समय हुआ, जब अंग्रेजी राज भारत में पूर्णतया प्रतिष्ठित था और पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति का व्यापक प्रभाव अभिजात कहे जानेवाले लोगों पर पड़ चुका था। प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक एवं विचारक धर्मपाल का मानना है कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त ऐसे लोगों का एक समूह तैयार हो गया था, जो यूरोप को ही अंतिम गंतव्य मान चुका था। दिग्भ्रांत भारतीय जनमानस का यह समूह अपनी परंपरागत संस्कृति से पराङ्मुख होकर पश्चिमी संस्कृति के साँचे में ढलना ही जीवन का लक्ष्य मान बैठा था। गीता प्रेस के आदर्शों को आगे बढ़ाने का कार्य उस संस्था से प्रकाशित 'कल्याण' नामक मासिक पत्रिका ने भी किया। 'कल्याण' के माध्यम से गीता प्रेस ने भारतीय साहित्य और संस्कृति की अविस्मरणीय सेवा की। गीता प्रेस ने यथार्थतः धर्मग्लानिग्रस्त समाज में धर्म एवं अध्यात्म के प्रति नई चेतना तथा नया उत्साह उत्पन्न किया। गीता प्रेस ने लोकोत्थान का यह पुनीत अनुष्ठान देश के संतों-विद्वानों तथा साधकों का सक्रिय योगदान लेकर पूरा किया।

---

* दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पूर्व प्रोफेसर।

इस प्रकार गीता प्रेस का अनन्य महत्त्व सनातन धर्म के रक्षण में स्पष्ट है। इनमें एक बड़ा कारक श्रीराम साहित्य एवं रामकथा का गीता प्रेस द्वारा किया जानेवाला व्यापक प्रसार है। रामकथा का व्यापक प्रसार गीता प्रेस द्वारा दो स्तरों पर किया गया—एक, गीता प्रेस ने रामकथा से संबंधित विभिन्न साहित्य प्रकाशित किए और दूसरा, रामकथा से संबंधित 'कल्याण' के विभिन्न विशेषांक प्रकाशित कर जनता को उसके महत्त्व से परिचित कराया।

आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' का हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। अब तक मूल वाल्मीकि रामायण हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन की संख्या तेरह लाख बत्तीस हजार (13,32,000) है। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण के अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तेलुगु, तमिल तथा बांग्ला अनुवाद भी प्रकाशित हैं, जिनकी कुल संख्या छह लाख अड़तीस हजार पाँच सौ (6,38,500) है। 'वाल्मीकि रामायण' के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में रचित 'अध्यात्म रामायण' भी गीता प्रेस से प्रकाशित हुआ है। इसके हिंदी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। इसकी कुल संख्या चार लाख चौहत्तर हजार सात सौ पचास (474750) है। इसके अतिरिक्त बांग्ला 'कृतिवास रामायण' का प्रकाशन भी गीता प्रेस के द्वारा हुआ है। इसकी अब तक बयालीस हजार (42,000) प्रतियाँ छपी हैं।

गीता प्रेस ने रामकथा के प्रसार में जो सबसे उल्लेखनीय कार्य किया है, वह है 'श्रीरामचरितमानस' का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन। गीता प्रेस से हिंदी, गुजराती, उड़िया, तेलुगु, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी, नेपाली और असमिया भाषा में तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करणों की अब तक कुल तीन करोड़ सड़सठ लाख पचपन हजार दो सौ पचास (36755250) प्रतियाँ प्रकाशित हुई है। इनमें हिंदी (अवधी) में प्रकाशित मूल मानस की संख्या तीन करोड़ सत्तावन लाख बीस हजार दो सौ पचास (3,57,20,250) है, शेष अन्य भाषाओं में किए गए अनुवाद प्रकाशित हैं। इससे देश के अन्य भाषा भाषी प्रांतों की ग्रामीण जनता तक मानस की पहुँच बढ़ी है। यह गीता प्रेस के व्यापक दृष्टिकोण और निष्ठा का परिचायक है। मानस के विभिन्न संस्करणों के अतिरिक्त बालकांड, अयोध्याकांड तथा सुंदरकांड अलग से प्रकाशित हुए हैं, जिनकी संख्या चार करोड़ छप्पन लाख पैंतीस हजार पाँच सौ (4,56,35,500) है। अन्य भाषाओं में भी विभिन्न कांडों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, जिनकी संख्या बयालीस लाख ग्यारह हजार (42,11,000) है। रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास की 'हनुमान चालीसा' सहित सभी रचनाएँ गीता प्रेस ने प्रकाशित की हैं, जिनकी कुल संख्या छिहत्तर लाख तीन हजार सात सौ पचास (76,03,750) है।

गीता प्रेस ने रामकथा से संबद्ध आदिकवि वाल्मीकि विरचित रामायण, अध्यात्म रामायण, कृतिवास रामायण तथा रामचरितमानस एवं गोस्वामी तुलसीदास कृत अन्य ग्रंथों का तो प्रकाशन किया ही है, रामकथा से संबद्ध अपने मासिक पत्र 'कल्याण' के विशेष अंक भी प्रकाशित किए हैं। 'कल्याण' की यात्रा 1926 ई. से आरंभ हुई और इसके पाँचवें वर्ष अर्थात् सं. 1987 (सन् 1930 ई.) में 'श्रीरामायणांक' का प्रकाशन हुआ। इसकी उस समय कुल पंद्रह हजार दो सौ पचास प्रतियाँ (15,250) छपी थीं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये 'कल्याण' के प्रकाशन के आरंभिक दिन थे। इस विशेष अंक में रामायण

से संबद्ध विभिन्न विषयों पर विवेचनात्मक और शोधपूर्ण आलेख दिए गए हैं। इस अंक का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए संपादकीय में लिखा गया है—"भगवान् श्रीराम का चरित्र लोक परलोक में नित्य परम कल्याणकारी है। इससे इहलौकिक मनवांछित सुख और परम आनंदस्वरूप श्रेय की प्राप्ति हो सकती है।"

श्रीराम कथा के प्रचार-प्रसार के लिए गीता प्रेस ने वाल्मीकि-रामायण पर केंद्रित विशेष अंक निकाले ही, साथ ही रामचरितमानस पहली बार 'कल्याण' के विशेषांक के रूप में ही प्रकाशित हुआ। यह 'कल्याण' की 13वें वर्ष की यात्रा का आरंभ था। यह सं. 1995 वि. के श्रावण मास (सन् 1938 ई.) में प्रकाशित हुआ, जिसकी कुल संख्या चालीस हजार छह सौ (40,600) थी। इसमें विभिन्न प्राचीन पांडुलिपियों की खोज करके यथासंभव प्रामाणिक पाठ देने का प्रयास किया गया है। मानस के प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक हस्तलेखों के आधार पर पाठ तैयार करने का कार्य 'कल्याण' संपादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनन्य सहयोगी तथा अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'कल्याण कल्पतरु' के संपादक प्रकांड विद्वान् पंडित चिमन लाल गोस्वामी और हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पंडित नंददुलारे वाजपेयी ने किया था। यह कहना सही है कि गीता प्रेस के द्वारा निर्धारित पाठ त्रुटिरहित नहीं है। विद्वानों तथा विज्ञ पाठकों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है, फिर भी यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि मानस के जितने भी संस्करण भारतवर्ष में प्रकाशित हुए हैं, उनमें सर्वाधिक सुलभ और लोकप्रिय संस्करण गीता प्रेस का ही है। अंत में रामकथा के महत्त्वपूर्ण पात्रों के चरित की विवेचना की गई है। इस अंक का प्रमुख उद्देश्य है, संस्कृत भाषा ज्ञान से अपरिचित पाठकों तक आदि कवि की रचना का मर्म पहुँचाना। 'कल्याण' के 41वें वर्ष अर्थात् सं. 2023 वि. (सन् 1967 ई.) में 'श्रीरामवचनामृतांक' प्रकाशित हुआ, जिसकी कुल संख्या एक लाख पचास हजार (1,50,000) थी। इस अंक का सहज उद्देश्य है, विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित राम से संबद्ध साहित्य के अंतर्गत आए हुए राम के वचनों का एक स्थान पर संकलन कर पाठकों तक पहुँचाना। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की लोक में प्रतिष्ठा का मुख्य आधार है, उनका आदर्श चरित्र। भगवान् श्रीराम को धर्म का मूर्तिमान स्वरूप कहा गया है। ऐसे राम के वचनामृत का संकलन आसुरी भाव को रोकने के लिए किया गया है। इसमें वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, स्कंद पुराण, पद्मपुराण, श्रीरामचरितमानस, अद्भुत रामायण, राम गीता, रघुवंश, उत्तर रामचरित, हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघव, चंपू रामायण, अनर्धराघम्, सूरसागर, रामचंद्रिका, राम रसायन, साकेत आदि ग्रंथों से राम के लोकोपकारी कथनों को संकलित किया गया है। इसके अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, बांग्ला, असमिया, मराठी, नेपाली, पंजाबी, सिंधी आदि भारतीय भाषाओं के साहित्य से भी राम के प्रेरक वचनों के हिंदी अनुवाद उद्धृत किए गए हैं। इससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र की व्यापकता का बोध होता है।

पोद्दारजी के निधन के बाद राम-साहित्य से संबंधित दो विशेषांक प्रकाशित हुए—पंडित चिमन लाल गोस्वामी के संपादकत्व में 'कल्याण' के 46वें वर्ष के विशेषांक के रूप में सं. 2028 वि. (सन् 1972 ई.) में 'श्रीरामांक' का प्रकाशन हुआ, जिसकी प्रकाशन संख्या थी एक लाख पैंसठ हजार (1,65,000)। इस अंक में देशभर के विभिन्न ख्यात विद्वानों के महत्त्वपूर्ण आलेख संकलित हैं, जिसमें प्रमुख हैं—राम नाम की अपार महिमा (पंडित गोपीनाथ कविराज), भगवान्

श्रीरामचंद्र-सर्वमान्य आदर्श (माधव राव सदाशिव गोलवलकर), भारतीय संस्कृति के शाश्वत धर्म स्कंध भगवान् श्रीराम (मंगल देव शास्त्री), श्रीरामचंद्रजी की युद्धनीति एवं रण कौशल (भवानी शंकर पंचारिया), योगिराज अरविंद की दृष्टि में भगवान् श्रीराम (चंद्रदीप त्रिपाठी), संत कबीर के राम (परशुराम चतुर्वेदी), असमिया साहित्य में श्रीराम (कुबेरनाथ राय) विदेशों में रामकथा की कुछ झलकियाँ (लल्लन प्रसाद व्यास) भारतीय भाषाओं में रामचरित (श्री रंजन सूरिदेव), राम साहित्य से संबद्ध 'कल्याण' का एक विशेष अंक 68वें वर्ष अर्थात् सन् 1994 ई. में 'श्रीराम भक्ति अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रकाशन संख्या थी दो लाख पाँच हजार (2,05,000)। इसके संपादक थे राधेश्याम खेमका। इसमें भारतीय लोक मर्यादा के परम आदर्श भगवान श्रीराम (डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री), राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीक भगवान् श्रीराम (विनायक दामोदर सावरकर), वेदों में राम कथा (श्री लाल बिहारी मिश्र), वैदिक साहित्य में श्रीराम (प्रभु लाल गोस्वामी), जैन परंपरा में रामकथा (डॉ. कृष्ण पाल त्रिपाठी), दक्षिणी-पूर्वी एशिया में रामकथा (केशव प्रसाद गुप्त) जैसी उल्लेखनीय सामग्री दी गई है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण तथा विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि रामकथा के व्यापक प्रसार में गीता प्रेस की कितनी बड़ी भूमिका है।

□

guptasadanand52@gmail.com

यदि हम प्रसन्न हैं तो सारी प्रकृति ही हमारे साथ मुसकराती प्रतीत होती है।

—स्वेट मार्डेन

प्रसन्नता आत्मा को शक्ति देती है।

—सैमुअल स्माइल्स

अधिकार केवल एक है और वह है सेवा का अधिकार, कर्तव्य-पालन का अधिकार।

—संपूर्णानंद

अच्छी पुस्तक पढ़ने के बाद आप सदैव मनोवृत्ति के उन्नयन के साथ उठते हैं।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

मॉरीशस में श्रीराम और रामचरितमानस

—डॉ. विनोद बाला अरुण

भारतीय वांङ्मय अत्यंत पुरातन, समृद्ध एवं विशाल है। वेदों से लेकर अब तक अनगिनत ग्रंथ भारतीय चेतना को अनुप्राणित करते रहे हैं, परंतु इनमें जो स्थान महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण को उपलब्ध है, वह किसी अन्य को नहीं प्राप्त हो सका। आश्चर्य होता है कि एक लाख श्लोकवाले जिस विशाल ग्रंथ महाभारत के लिए कहा गया—'यदिहास्ति तदंयत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्', जो यहाँ वर्णित है, वही अन्य ग्रंथों में है, जो विषय यहाँ वर्णित नहीं है, वह अंयत्र उपलब्ध नहीं होगा; उसे भी वह गौरव प्राप्त नहीं हो सका, जो रामायण को प्राप्त है। प्रश्न उठता है—ऐसा क्यों? इसका उत्तर महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित उनके काव्य के शीर्षक 'रामायण' में ही निहित है।

'रामायण' उच्च आदर्शों और श्रेष्ठ मूल्यों से परिपूर्ण यात्रा की उस गतिशीलता को व्यक्त करती है, जो मानव जीवन के लिए उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मार्ग निर्धारित करती है। शास्त्रों में सिद्धांत और सूत्र रूप में श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए जो निर्देश दिए गए हैं—सत्यं वद, धर्मं चर, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव आदि इन सबको श्रीराम ने अपने व्यावहारिक जीवन और दैनिक आचरण में प्रतिफलित किया।

श्रीराम ने अपने आचरण द्वारा एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया, जो दूसरों के लिए अनुकरणीय बन गया। उन्होंने धर्ममय जीवन के दो महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रस्तुत किए—(1) वही कर्म धर्म बनता है, जिसे करने से गुरु, माता-पिता, संत और देवता प्रसन्न होते हैं; तथा (2) जो कर्म आदरपूर्वक और सुख मानकर किया जाता है, वही धर्म बनता है।

श्रीराम ने कभी अपना जीवन अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं जिया। वे सदा मूल्यों और मर्यादाओं के प्रति समर्पित रहे। पारिवारिक संबंधों की सुरक्षा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। श्रीराम से प्रेरित होनेवाले हर पात्र ने श्रीराम की प्रतिबद्धता से अपने आपको जोड़ा।

यह ग्रंथ आचरण की श्रेष्ठता का प्रतिमान है, मानव मूल्यों एवं आदर्शों का कीर्तिस्तंभ है, जीवन के समरस विकास का मूल मंत्र है, पारिवारिक संबंधों की गरिमा का अक्षय कोष है, मानव संबंधों का समाजशास्त्र है, अर्थशास्त्र और राजनीति का अनुपम आगार है, साहित्यिक दृष्टि से सर्वोत्तम महाकाव्य है, मनुष्य के अभ्युदय और नि:श्रेयस का परम सोपान है, धार्मिक चेतना का मेरुदंड है और हमारी सभ्यता-संस्कृति का निर्मल दर्पण है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य रामायण में श्रीराम के महिमामंडित और गरिमामय चरित्र को

---

* रामायण सेंटर, मॉरीशस की अध्यक्षा।

इतने सुललित, आकर्षक और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया कि आनेवाली पीढ़ियों के लिए यह प्रेरणा का ग्रंथ बना। इसने भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को विश्वव्यापी बनाया।

इससे प्रेरित एवं प्रभावित होकर न केवल संस्कृत, बल्कि भारत की अन्य प्राचीन भाषाओं; जैसे—पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में विस्तृत राम साहित्य की रचना हुई। इसकी सर्वप्रियता भारत तक ही सीमित नहीं रही। दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में भी विपुल राम साहित्य रचा गया। कालांतर में भारत की प्राय: सभी क्षेत्रीय भाषाओं में अनेक रामायण लिखी गईं। रामायण के कथानक पर अनेक महाकाव्य, नाटक और चंपू काव्य आदि लिखे गए। कला, संगीत, नृत्य, नाटक, साहित्य, स्थापत्य और लोक जीवन के हर क्षेत्र पर इसका अमिट प्रभाव देखने को मिलता है।

नानापुराण निगमागम सम्मत होने के कारण तुलसीदासजी ने इसमें वेदों, उपनिषदों, पुराणों, विभिन्न शास्त्रों, संस्कृत काव्यों, नाटकों तथा 'वाल्मीकि रामायण' और अध्यात्म रामायण के साथ ही अन्य उपलब्ध रामायणों, नीति ग्रंथों, 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' जैसे अनेक ग्रंथों से प्रभाव ग्रहण कर इसे भारतीय वांग्मय का विश्वकोश बना दिया। उन्होंने एक मधुप की तरह अनेक ग्रंथों रूपी पुष्पों का रस ग्रहण करके उसे रामचरितमानस मधु बनाकर सबके लिए सुस्वादु और स्पृहणीय बना दिया। भारत की चिरंतन विचारधारा, महत आदर्शों और सुदृढ़ विश्वासों को अपनी अनूठी एवं अद्भुत काव्य कला से इस तरह प्रस्तुत किया कि यह रामकाव्य परंपरा की अति विशिष्ट रचना बन गई।

'रामचरितमानस' इस दृष्टि से भी विशिष्ट है कि इसमें सांख्यवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत जैसे प्रमुख दार्शनिक विचारों का समन्वित एवं हृदयग्राही स्वरूप प्राप्त होता है।

ब्रह्म, जीव एवं माया जैसी गूढ़ दार्शनिक अवधारणा को तुलसीदासजी इतने सरल और सहज रूप में प्रस्तुत करते हैं कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है—

'आगें राम अनुज पुनि पाछें।
मुनि बर बेष बने अति काछें॥
उभय बीच सिय सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥'

आगे श्रीराम हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेश बनाए अत्यंत सुशोभित हैं। दोनों के बीच में जानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो।

मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवों को अपने वश में कर रखा है।

परमात्मा के निर्गुण-सगुण व उनकी प्राप्ति के तीनों प्रमुख मार्गों—ज्ञान, कर्म और भक्ति का भी अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करके उन्होंने इस ग्रंथ को सर्वप्रिय बना दिया।

उनकी रामकथा आध्यात्मिक, धार्मिक और लोकरंजन भावनाओं से परिपूर्ण होते हुए—मंगल करनि कलि मल हरनि, जन-जन का कल्याण करनेवाली और कलियुग के कलुश को नष्ट करनेवाली है।

तुलसीदासजी से पूर्व जितनी भी राम कथाएँ लिखी गई थीं, प्राय: उन सबके शीर्षक में रामायण शब्द अवश्य आया; जैसे—अध्यात्म रामायण, आर्ष रामायण, अद्भुत रामायण, आनंद रामायण आदि परंतु अपने पूर्ववर्ती रामायण रचनाकारों से अलग हटकर तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथ का नाम रखा—रामचरितमानस।

रामचरितमानस के दो अर्थ हैं—(1) यह शिव के मानस से निकला है, और (2) यह रामचरित

का मानसरोवर है। दोनों दृष्टियों से इसमें श्रीराम के अलौकिक और दिव्य गुणों की गाथा है। शिवजी के हृदय से निकलने के कारण रामचरितमानस पवित्र और पावन है तथा मानसरोवर के रूप में वह सभी पारंपरिक राम कथाओं का संगम भी है। जैसे सरोवर के चारों घाटों से जाकर उसमें अवगाहन किया जा सकता है, उसी तरह तुलसी की रामकथा में चतुर्दिश से प्रवेश संभव है। प्रथम घाट पर तुलसीदासजी 'सुजनों' को, दूसरे घाट पर मुनि याज्ञवल्क्यजी, भारद्वाजजी को, तीसरे घाट पर भगवान् शिव-पार्वतीजी को और चौथे घाट पर काकभुशुंडि गरुड़जी को रामकथा सुना रहे हैं। परब्रह्म और भगवान् विष्णु के अवतार श्रीराम की कथा शिवजी, पार्वतीजी को सुनाते हैं, जिससे प्रकारांतर से तुलसीदासजी ने शाक्त, वैष्णव और शैव जैसे मुख्य संप्रदायों का समन्वय करके अपने समय के सांप्रदायिक कलह और वैमनस्य को विराम देने का स्तुत्य प्रयास किया।

ऐसा अद्भुत और अद्वितीय ग्रंथ भारत में तो हिंदू जनमानस के हृदय-सिंहासन् पर आसीन हुआ ही, भारत की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके यह सुदूर देशों में पहुँचा और वहाँ के जनमानस पर भी इसने चिरस्थायी प्रभाव डाला।

19वीं शताब्दी में शर्त बंद प्रथा के अंतर्गत भारतीय मजदूरों का प्रवासन मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, गुयाना, फिजी, सूरीनाम और त्रिनिडाड-टोबागो आदि देशों में हुआ। ये श्रमिक अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से गए थे। इन्हें 5 वर्ष के एग्रीमेंट पर ले जाया गया था।

'एग्रीमेंट' शब्द भोजपुरीकरण के कारण गिरमिटिया बन गया और इसके तहत जानेवाले श्रमिक गिरमिटिया मजदूर कहलाने लगे।

ये श्रमिक अपने साथ लिखित या मौखिक रूप में 'रामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' ले गए। इन्हीं के सहारे उन्होंने अपना सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक उत्थान और अपनी भाषा का संरक्षण किया।

दिनभर खेतों में कोड़ों की मार खाकर काम करनेवाले ये मजदूर रात में सामूहिक रूप से बैठकर दोहों- चौपाइयों के गायन का मरहम अपने घाव पर लगा लेते थे। भगवान् राम के जीवन में उन्हें अपना जीवन परिलक्षित होता दिखता था। उन्हें लगता था कि जैसे कैकेयी के षड्यंत्र के कारण श्रीराम को वनवास मिला, वैसे ही गोरों के छलावे से उन्हें देश निष्कासन मिला है; परंतु जैसे श्रीराम का वनवास समाप्त हुआ, वैसे ही एक दिन उनका दुःख भी दुःख दूर होगा—

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा॥'

परिवार की एकता और समरसता के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने की सीख और पारिवारिक संबंधों में उत्कृष्ट ढंग से जीवन जीने की सीख उन्हें 'रामचरितमानस' से मिलती थी।

'रामचरितमानस' ही उनके धर्म, मनोरंजन और महोत्सव का साधन था। मॉरीशस के लोक जीवन पर 'रामचरितमानस' का प्रभाव आज भी सर्वत्र देखने को मिलता है। हर हिंदू माँ-बाप अपनी संतान में श्रीराम की छवि देखते हैं, अतः संतान के जन्म पर रामजन्म संबंधी गीत गाए जाते हैं।

विवाह के समय हर वर श्रीराम और हर वधू सीता मानी जाती है। अतः उस समय भी श्रीसीताराम विवाह संबंधी गीत ही गाए जाते हैं—

'गावहु मंगलचारजी राम ब्याहन आए। प्रेम से अरती उतारुजी राम ब्याहन आए।' गाकर वे मानो सीता-राम के विवाह का ही उत्सव मनाते हैं।

शरीर की अंतिम यात्रा 'राम नाम सत्य है' के बिना पूरी नहीं होती।किसी की मृत्यु होने पर 'रामचरितमानस' का पाठ लगभग अनिवार्य-सा ही माना जाता है और उसके बाद बारह दिनों तक प्रतिदिन सायं काल कुछ लोग मिलकर मानस का

पाठ करते हैं, जिससे दिवंगत आत्मा की आगे की यात्रा श्रीराम के नाम के साथ हो और परिवार के लोगों तथा आत्मीय जनों को दुःख सहने की शक्ति प्राप्त हो।

हिंदू मन श्रीराम से अपनी निकटता इतनी अधिक महसूस करता है कि वह न केवल उनसे ही गहराई से जुड़ा है, बल्कि जिसने भी श्रीराम की सहायता की, उसे भी हिंदू समाज ने अपना आदरणीय और पूज्य बना लिया। हनुमानजी ने तरह-तरह से श्रीराम की सहायता की थी, इसीलिए हिंदू मानस उनके प्रति अपने आपको इतना कृतज्ञ मानता है कि अपने मंदिरों में श्रीराम से ऊँचा स्थान हनुमानजी को दे दिया।

मॉरीशस की एक और विशेषता है कि यहाँ मंदिर को शिवालय कहते हैं, लेकिन हर मंदिर में शिवजी के साथ ही श्रीराम विराजमान हैं। इसके पीछे भी रामचरितमानस का प्रभाव ही मुख्य कारण है। रामचरितमानस में शिवजी श्रीराम की कथा सुनाते हैं और सदा उनके नाम का जप करते हैं। शिवजी स्वयं सतीजी से कहते हैं—

जासु कथा कुंभज रिषि गाई।
भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई।
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥'

जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई, वे वही मेरे इष्टदेव श्रीरघुबीरजी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

और श्रीराम शिवजी को सर्वोपरि मानते हुए कहते हैं—

'औरउ एक गुपुत मत सबहि कहऊँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥'

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन के बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।

'रामचरितमानस' में वर्णित यह श्रीराम और शिवजी का परस्पर प्रेम, सम्मान और पूजा भाव मॉरीशस के हर 'शिवालय' में दिखाई देता है।

'रामचरितमानस' की लोकप्रियता के कारण लोग इसे पढ़ना चाहते थे और इसके लिए वे हिंदी सीखते थे। यदि हमारे पूर्वज अपने प्रवास के देशों में यह ग्रंथ न ले गए होते तो वे अपनी संस्कृति और भाषा से वंचित रह जाते। मॉरीशस में हिंदी को जीवित-जाग्रत् रखने में इस ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

वर्तमान परिदृष्य में

मॉरीशस में रामचरितमानस की स्थिति पर दृष्टि डाली जाय तो मॉरीशस को रामायण का देश कहना इस बात का संकेत है कि यहाँ यह रामकाव्य कितना समाहत है।

रामायण-वाचन

यहाँ रामचरितमानस के लिए भी प्रायः रामायण शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। अतः इस आलेख में मॉरीशस के संदर्भ में जहाँ रामायण शब्द का प्रयोग हुआ है, उसे रामचरितमानस ही समझें।

रामायण वाचन की जो परंपरा हमारे पूर्वजों ने आरंभ की थी, स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् उसमें बहुत विकास हुआ। वर्तमान में तरह-तरह के रागों और संपुटों का सहारा लेकर रामायण गान को और अधिक सरस और मधुर बनाया जा रहा है। लगभग हर गाँव और शहर में एकाधिक मंडलियाँ हैं, जो रामायण सत्संग में लगी हुई हैं। स्थानीय रूप से ये मंडलियाँ सांस्कृतिक जागरण की दूत हैं।

सन् 1969 में स्वामी कृष्णानंदजी ने रामचरितमानस की एक लाख प्रतियों को घर-घर में वितरित करके रामायण के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट ने स्वामी कृष्णानंद

की प्रेरणा से रामायण का सस्वर पाठ आरंभ किया, जो आज अत्यंत लोकप्रिय हो गया है।

अनेक संस्थाएँ प्रतियोगिताएँ आयोजित करके रामायण गान को प्रोत्साहित कर रही है।

रामायण को औपचारिक शिक्षण में स्थान प्राप्त हुआ। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं तथा हिंदूइज्म के पाठ्यक्रम में रामायण और रामचरितमानस के कुछ अंशों को स्थान मिला। डिप्लोमा, बी.ए. और एम.ए. के भारतीय दर्शन, हिंदी और संस्कृत आदि भाषाओं के पाठ्यक्रम में रामायण के मॉड्यूल को सम्मिलित किया गया। इससे नई पीढ़ी को रामायण से जुड़ने और उसे समझने का अवसर प्राप्त होता है।

मॉरीशस के रेडियो और टेलीविजन पर रामायण संबंधित फिल्में और धारावाहिक तथा स्थानीय कलाकारों द्वारा नाटक, रामायण गान और अन्य अनेक कार्यक्रम भी समय-समय पर प्रस्तुत किए जाते हैं। रामानंद सागर के रामायण धारावाहिक ने भारत की ही तरह यहाँ भी धूम मचा दी थी।

राष्ट्रीय स्तर पर रामायण की आधुनिक रूप में व्याख्या मई 1982 से आरंभ हुई, जब मॉरीशस के प्रतिष्ठित रामायण-मर्मज्ञ राजेंद्र अरुण ने मॉरीशस ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन (एम.बी.सी.) रेडियो पर 'मंथन कार्यक्रम' रामायण की व्याख्या के लिए प्रस्तुत करना आरंभ किया। हर गुरुवार को 30 मिनट के इस कार्यक्रम में रामायण के दोहे-चौपाइयों की व्याख्या वे अत्यंत व्यावहारिक और जीवन से जुड़ी पद्धति से करते थे। (यह कार्यक्रम आज भी 'मानस मंथन' नाम से चल रहा है और पिछले कुछ वर्षों से इसे इस आलेख की लेखिका प्रस्तुत कर रही हैं।) नूतनता और आकर्षण के तत्त्व को ध्यान में रखकर उन्होंने श्रीराम के नित्य नूतन चरित्र को विभिन्न शीर्षकों में बाँटकर सुनाना शुरू किया। दोहों और चौपाइयों के अर्थ से अधिक उन्होंने उनकी व्यंजना को पकड़ने की कोशिश की। लोगों को यह शैली और व्याख्या-दृष्टि बहुत पसंद आई। इस कार्यक्रम ने बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त की। लोग रेडियो सुनते समय इसे रिकॉर्ड कर लेते थे, जिससे दोबारा फिर सुन सकें।

इन कार्यक्रमों से प्रेरित और प्रभावित होकर लोगों ने पंडित राजेंद्र अरुणजी से रामकथा करने का निवेदन किया। 1984 से उन्होंने देपिने गाँव से रामकथा का आरंभ भागवत कथा के अनुरूप बड़े रूप में किया, जो इतना लोकप्रिय हुआ कि उसे स्थानीय सभी कथा वाचकों ने अपना लिया है। विदेशों में भी उन्होंने अनेक रामकथाएँ कीं। रामायण पर उनके व्याख्यान पूरे देश में निरंतर होते रहे।

अरुणजी की कथा की विशेषता यह थी कि व्यास पद्धति की अति श्रद्धामयी भावुकता और अकादमिक विश्लेषण के अतिवादी चीर-फाड़ से वे अपने को बचाकर चलते थे। अपनी पुस्तक 'हरि कथा अनंता' की भूमिका में उन्होंने लिखा—"मेरे राम सर्वप्रथम एक अनुकरणीय मनुष्य हैं। आज के बिखरे तनावग्रस्त मानव-समाज के लिए राम का मर्यादामय चरित्र मलय समीर है। आधुनिक सभ्यता के ताप से जलते हुए मनुष्य तक राम के इस शीतल चरित्र को पहुँचाने की मेरी कोशिश है। राम यदि ब्रह्म हैं, तो उन्हें मेरा सादर नमस्कार है। यदि ब्रह्म नहीं हैं तो और वंदनीय हैं, क्योंकि मनुष्य के जीवन को उन्होंने अपने चरित्र से दैवी सार्थकता प्रदान की है।"

रामायण पर आधारित साहित्य सृजन ने भी इसकी लोकप्रियता को बढ़ाने में सहायता दी।

मॉरीशस में पर्व-त्योहार के अवसर पर रामायण संबंधित लेख कभी-कभी छपते रहते हैं, लेकिन रामायण पर आधारित मौलिक पुस्तक का

लेखन रामायण सेंटर के अध्यक्ष पंडित राजेंद्र अरुण ने आरंभ किया। उन्होंने रामायण के विभिन्न पात्रों पर 8 पुस्तकें लिखीं—हरि कथा अनंता, रोम-रोम में राम, भरत गुन गाथा, जग जननि जानकी, रघुकुल रीति सदा, अथ कैकई कथा, तजु संसय भजु राम और मानस में नारी इनमें सम्मिलित हैं। इन पुस्तकों को न केवल मॉरीशस, बल्कि भारत और विदेशों में भी अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त हुई। उनकी 5 पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी हो चुका है।

मॉरीशस के कुछ लेखकों ने रामायण के प्रसंगों या पात्रों पर नाटक और छुटपुट लेख-लिखकर भी सराहनीय योगदान दिया है। अभिमन्यु अनत ने कुछ अच्छे नाटक लिखे, जिनका मंचन भी हुआ। श्री किशन बदधु ने रामचरितमानस का फ्रेंच में अनुवाद किया है। रामायण पर आधारित कुछ अन्य लेखन अंग्रेजी और फ्रेंच में भी हुए हैं।

1968 में मॉरीशस की स्वतंत्रता के बाद युवा एवं क्रीडा मंत्रालय के अंतर्गत नाट्यकला के विकास के लिए एक विभाग बना, जो प्रतिवर्ष नाट्य प्रतियोगिताएँ करके स्थानीय रंगकर्मियों को प्रोत्साहन देता था। अब यह विभाग कला एवं सांस्कृतिक धरोहर मंत्रालय के अंतर्गत है। नाट्य प्रतियोगिताओं में कुछ नाटक रामायण के प्रसंगों के आधार पर मंचित हुए। मॉरीशस के मूर्धन्य लेखक अभिमन्यु अनत के लिखे नाटक 'मीठे बेर' ने 1973 में नाट्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्होंने 'भरत सम भाई' और 'उर्मिला' नाटकों का लेखन व निर्देशन करके 'महात्मा गांधी संस्थान' में मंचित किया। रामायण पर एक नृत्य नाटिका 'रामायण सेंटर' के संयुक्त सहयोग से डॉ. संतोष पदारथ के निर्देशन में 'महात्मा गांधी संस्थान' में प्रस्तुत की गई।

2015 के अगस्त में 'रामायण सेंटर' द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मलेन के अवसर पर 'रामायण सेंटर' के विशेष आग्रह पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने श्रीराम भारतीय कला केंद्र के रामलीला-कलाकारों को मॉरीशस भेजा था। उनके तीन प्रदर्शन हुए, जिन्हें खूब सराहा गया।

सन् 2019 में रामायण सेंटर के अनुरोध पर अयोध्या शोध संस्थान, भारत की ओर से 17 कलाकारों की एक टोली आई, जिसने पूरी रामकथा का अति सुंदर मंचन मॉरीशस के विभिन्न स्थानों पर किया और इन कलाकारों ने स्थानीय कलाकारों को प्रशिक्षण भी दिया।

रामायण के प्रति इतने गहन आत्मीय भाग को सुदृढ़ और संगठनात्मक रूप देने और विश्व स्तर पर इसमें निहित सनातन मूल्यों के सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित प्रचार-प्रसार के लिए मॉरीशस में एक ऐतिहासिक कार्य संपन्न हुआ। सन् 2001 में मॉरीशस में रामायण के विद्वान् पं. राजेंद्र अरुण के सदप्रयत्नों के फलस्वरूप मॉरीशस की संसद् ने सर्वसम्मति से विधेयक पारित करके रामायण सेंटर की स्थापना की। विश्व में रामायण के क्षेत्र में यह एक अद्भुत घटना है।

रामायण सेंटर रामायण के प्रचार-प्रसार में अथक परिश्रम कर रहा है। बच्चों से लेकर बड़ों तक सबके लिए रामायण की कक्षाएँ चलाई जाती हैं, जिनमें न केवल रामायण-वाचन, बल्कि उसके अर्थ और उसमें निहित संदेश पर अधिक बल दिया जाता है। बच्चों को रामायण पर आधारित प्रसंगों को नाटक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

रामायण सेंटर मौलिक रामायण साहित्य सृजन एवं प्रकाशन द्वारा भी रामायण के प्रचार-प्रसार में संलग्न है।

□

vinoo.arun@gmail.com

रामकथा के साथ हिंदी की पताका

— डॉ. राजेश श्रीवास्तव

विश्व में भारत की गूँज अप्रत्याशित नहीं है। ऐसे समय में, जबकि विज्ञान, तकनीक और रोजगार के क्षेत्र में अंग्रेजी ने समूचे विश्व में अपना एकाधिकार कर रखा है, भारत और हिंदी का वैश्विक परिदृश्य और उसके प्रभाव के आँकड़े चैंकाने वाले हैं। मेरे संपर्क में अनेक देशों के लोग हैं। वे हिंदी सीखने के लिए लालायित हो रहे हैं। स्मरण कीजिए, देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चंद्रकांता को, उसे पढ़ने के लिए लोगों में हिंदी सीखने की अभिरुचि यकायक बढ़ गई थी। अनुवाद को पढ़ने से कहानी तो समझी जा सकती है, किंतु भावगंगा में स्नान असंभव है। संस्कृत में रचित ज्ञान-ग्रंथों को भी अनुवाद की अपेक्षा संस्कृत सीखकर पढ़नेवालों की संख्या में भी लगातार वृद्धि हो रही है। तो यह भाषा के प्रचार-प्रसार का विषय मात्र नहीं है। वास्तव में हिंदी के माध्यम से विश्व के लोग उस ज्ञानसंपदा से परिचित होना चाहते हैं, जिसका उत्स भारत में है। धर्म, अध्यात्म, दर्शन, ज्योतिष आदि कितने ही विषय हैं, जिनकी पृष्ठभूमि भारतीय वाङ्मय की गंगोत्री के पास संरक्षित है। वृक्ष की हरीतिमा भले ही विदेशी आसमानों में रंग बिखेरती हो, किंतु उसके बीज और जड़ें भारतीय वसुंधरा में अपने अस्तित्व और विकास की कथा कहती हैं।

विश्व के जितने भी देशों में भारतीयों का प्रवेश हुआ, वह व्यापार हो या नौकरी, उसमें हिंदी की भूमिका कहाँ है? यह विचारणीय है। हम किसी दूसरे देश की भाषा क्यों सीखें? यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न मात्र लोकप्रियता और आँकड़ों का नहीं, ज्ञानसंपदा के प्रसार का है और आर्थिक उपार्जन का भी। भाषा हमारे संपर्क माध्यम से भी अधिक अपने सांस्कृतिक अवदान के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। भाषा के साथ लोक-संस्कृति, आचार-विचार, इतिहास, कला और ज्ञान-विज्ञान का संचरण भी होता है।

विश्व के अनेक देशों में मुझे विभिन्न कारणों से भ्रमण के अवसर प्राप्त हुए हैं। मेरा अपना मत है कि हिंदी के वैश्विक संदर्भों के प्रचार-प्रसार के तीन महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं। पहला आर्थिक पक्ष है, जिसके कारण बहुत से प्रतिभाशाली भारतीय युवा भारत और हिंदी दोनों को छोड़कर विदेशों में बस गए हैं। उनमें बहुत कम प्रतिशत ऐसा है, जो अपनी भाषा को भी साथ ले गया है। किंतु आरंभिक शिक्षा और संस्कारों के प्रभाव का अंश अभी उनमें विद्यमान है। दूसरा, विदेशी विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं में भारतीय शास्त्र को समझने की ललक के चलते हिंदी और संस्कृत के लिए रुझान बढ़ा है। शासकीय नीतियों के अनुरूप विदेशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक प्रभावशाली उपाय किए गए

* रामायण केंद्र, भोपाल।

हैं। वर्तमान में लगभग 175 विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी को एक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। संख्या और आँकड़ों को छोड़ भी दें, तो भी अनेक सकारात्मक संकेत इसमें निहित हैं।

और तीसरा और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बिंदु विदेशों में रामकथा का प्रसार है। मैं इसे इस रूप में भी कहना चाहता हूँ कि विश्व में भारत की पहचान का सबसे बड़ा कारण रामकथा है। राम और रामायण की यात्रा में किसी को भी भारतीय चेतस की यात्रा करनी होगी। राम को समझना है तो तुलसी को भी समझना होगा और तुलसी की भाषा को भी। अभी हाल में ही त्रिनिदाद एवं टौबेगो में 'रामचरितमानस' के अनुवाद को लेकर कार्य आरंभ हुआ है। मुझे उस परियोजना में सम्मिलित किया गया है। मैं मानस के मर्म को समझने के लिए उसके अनुवाद की अपेक्षा भावग्राह्य हेतु तुलसी की भाषा को संरक्षित करने का पक्षधर हूँ।

हम सब जानते हैं कि भारतीय सिनेमा ने हिंदी के लिए बहुत बड़ा काम किया है। हिंदी गाने विश्व में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। ठीक उसी तरह रामकथा ने विदेशी मानस को बहुत प्रभावित किया है। विदेशों में रामलीलाओं का प्रचलन बढ़ा है। रामकथा वाचकों द्वारा विश्व के समस्त देशों में रामकथा का गायन होने लगा है और विश्वविद्यालयों में शोध की कहानी तो निराली ही है, जहाँ बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के को हम इसलिए जानते हैं कि उन्होंने रामकथा पर शोध की परंपरा को विकसित किया, और वह भी हिंदी में। यूरोप में रामायण पर जितने उच्चस्तरीय शोध कार्य हुए, उनकी सूची बहुत ही लंबी है। विश्व में रामकथा की पताका लहरा रही है तो कहीं उसके साथ हिंदी भी गुँजायमान है।

रामकथा की तीन धाराएँ भारत से समूचे विश्व की और प्रवाहित हुईं। पहली आध्यात्मिक, दूसरी सांस्कृतिक और तीसरी शैक्षणिक। आध्यात्मिक धारा मुख्यतः रामचरित मानस के माध्यम से गई, जिसे प्रवासी भारतीय ले गए—मजदूर, व्यापारी या पेशेवर अधिकारी बनकर। यह धारा बहुत सशक्त है, जो फिजी, मॉरीशस, ट्रिनिदाद, गुयाना, सूरीनाम आदि प्रवासी भारतीय देशों के अतिरिक्त अमेरिका, यूरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया महाद्वीप के देशों में विद्यमान है और निरंतर विकासमान है। सांस्कृतिक धारा भारत के पड़ोसी देशों थाईलैंड, म्याँमार, कंबोडिया, लाओस, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि में प्रवाहित है, जिसमें रामकथा के महानायक श्रीराम को भगवान् न मानकर सर्वगुण संपन्न महापुरुष माना गया है। तीसरी धारा को हम शैक्षणिक मान सकते हैं, जो मुख्यतः अमरीकी, यूरोपीय और एशियाई देशों की उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन, अध्यापन, शोध और अनुवाद के माध्यम से पहुँची। ये तीनों धाराएँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। किंतु यह बात भी ध्यान में रखने की है कि रूस में रामचरितमानस का अनुवाद भारत की स्वतंत्रता के तुरंत बाद हुआ और चीन में 'वाल्मीकि रामायण' तथा मानस का अनुवाद क्रमशः सत्तर और अस्सी के दशक में हो सका।

नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में 'वाल्मीकि रामायण' की दो प्राचीन पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से एक पांडुलिपि के किष्किंधाकांड की पुष्पिका पर तत्कालीन नेपाल नरेश गांगेय देव और लिपिकार तीरमुक्ति निवासी कायस्थ पंडित गोपति का नाम अंकित है। इसकी तिथि सं. 1076 (1019 ई.) है। दूसरी पांडुलिपि की तिथि नेपाली सं. 795 अर्थात् 1674 ई. है। नेपाल में रामकथा का विकास 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' के आधार पर हुआ है, तथापि हिंदी समझने और तुलसीकृत 'रामचरित मानस' के प्रति भी रुझान बढ़ा है।

मलेशिया में रामकथा के ग्रंथ का नाम है 'हिकायत सिरी राम'। मुसलिम बहुल मलेशिया में रामकथा पर आधारित नाटकों का मंचन बहुत

लोकप्रिय है। मलेशिया के लोकजीवन में नगरों, व्यक्तियों, नदियों तथा अन्य स्थानों के नाम रामायण से लिये गए लगते हैं। मलेशिया के जनजीवन में रामायण मनोरंजन व प्रेरणा का सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। यहाँ चमड़े की पुतलियों द्वारा रात्रि में रामायण के प्रसंगों का मंचन किया जाता है। विश्व पर्यटन और विशेष रामलीला के कारण यहाँ हिंदी के प्रचार प्रसार के आँकड़े बहुत तेजी से बढ़े हैं।

थाईलैंड के अधिकांश निवासी बौद्ध धर्म के उपासक हैं, फिर भी यहाँ राम को भक्तिभावना के साथ देखा जाता है। यहाँ के अनेक मंदिरों में राम की मूर्तियाँ स्थापित हैं। थाईलैंड के लोगों का यह विश्वास है कि रामायण की कई घटनाएँ उनके अपने देश में घटी थी। थाईलैंड की सांस्कृतिक जीवनधारा श्रीराम की जीवनदृष्टि में पूर्णतः समाहित है। थाईलैंड की एक नदी का नाम भी सरयू है। ठीक भारत की तरह वहाँ भी सरयू अयोध्या के निकट ही बहती है। थाईलैंड में एक स्थान का नाम अयोध्या भी है। यही नहीं, यहाँ श्रीराम के पुत्र लव के नाम पर लवपुरी (लोपबुरी) भी है। यहाँ के एक मंदिर की दीवारों पर संपूर्ण रामकथा चित्रित है। थाईलैंड की अपनी स्थानीय रामायण भी है, जिसे 'रामकियेन' के नाम से जाना जाता है। इस रामायण के रचयिता नरेश राम प्रथम थे। उन्हीं के वंशज आज भी थाईलैंड में शासक हैं। थाईलैंड के विश्व प्रसिद्ध नेशनल म्यूजियम में भी श्रीराम के दर्शन सुगमतापूर्वक किए जा सकते हैं। वहाँ खड़े धनुर्धारी राम की आकर्षक प्रतिमा आगंतुकों को मंत्रमुग्ध करती है। वहाँ प्रस्तुत होनेवाले शास्त्रीय नृत्यों में भी राम कथा के अनेक प्रसंग प्रदर्शित किए जाते हैं। यहाँ पर स्वागतकर्ता जब हिंदी में 'जय श्रीराम' कहकर प्रणाम की मुद्रा में अभिवादन करते हैं, तो हिंदी का मस्तक गौरवान्वित हो उठता है। यह भी मात्र आँकड़ा नहीं है कि विश्व में सबसे लोकप्रिय अभिवादन 'नमस्ते' हिंदी का ही शब्द है।

कंबोडिया में हिंदू धर्म और रामकथा का विशेष प्रभाव है, यहाँ रामकथा के ग्रंथ का नाम है 'रामकेर', (रामकीर्ति नामक गद्यग्रंथ), जिसका पाठ भी किया जाता है। विश्व में भगवान विष्णु का सर्वाधिक विशाल मंदिर 'अंगकोर वाट' कंबोड़िया में ही है। इस मंदिर में भगवान् बुद्ध, शिव और श्रीराम की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं तथा रामायण के कई प्रसंगों सीता की अग्निपरीक्षा, अशोक वाटिका में हनुमान का आगमन, लंका में श्रीराम-रावण युद्ध, बालि-सुग्रीव युद्ध तथा रावण के दरबार में अंगद द्वारा पैर जमाने आदि के दृश्यों की सजीवता देखते ही बनती है।

इंडोनेशिया में बाली द्वीप हिंदू संस्कृति का उत्तम उदाहरण है। बाली के हर गाँव में तीन मंदिर होते हैं, जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को समर्पित हैं, देखने में ये सभी एक तरह के ही होते हैं। पूरे बाली में हनुमान, राम तथा भीम की मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। इन प्रतिमाओं के निचले हिस्से पर सफेद-काले चेकदार कपड़े पहनाए जाते हैं, जो अच्छाई व बुराई के प्रतीक हैं। जावा में राम को पुरुषोत्तम के रूप में सम्मानित किया जाता है। वहाँ अनेक मंदिरों में वाल्मीकि-रामायण के श्लोक उद्धृत हैं। वहाँ 'सरयू' नाम से एक नदी भी है। लाओस में रामकथा पर दो ग्रंथ उपलब्ध हैं— प्रथम 'फालाक फालाम' तथा दूसरा 'फोमचक्र'। लाओस के कई बौद्ध विहारों में भी राम कथा के चित्र उकेरे गए हैं। लाओस का उपमु बौद्ध विहार राम कथा-चित्रों के लिए विख्यात है। उपमुंग विहार की चित्रावली में रामकथा का आरंभ लाओ रामायण के अनुसार रावण के जन्म से हुआ है और लंका युद्ध के बाद राम की अयोध्या वापसी तक की कथा का संक्षेप में निर्वाह भी हुआ है। भ्रमण के लिए जाते लोगों को गाइड के द्वारा हिंदी में यहाँ की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई जाती है।

वियतनाम (प्राचीन नाम चंपा) में प्राचीन

काल में हिंदू राज्य स्थापित था। उस समय वहाँ रामकथा का बहुत अधिक प्रभाव था, जिसके प्रमाण हमें आज भी यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं।

बर्मा में ई. 1800 के लगभग 'रामायागन' के नाम से रामकथा लिखी गई। इस ग्रंथ ने वहाँ पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की है। बर्मा में राम पर आधारित नाम मिलते हैं। वहाँ एक गाँव का नाम रामवती है। वहाँ कई स्थानों पर राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान के चित्र भी अंकित मिलते हैं। रामकथा का प्रचार-प्रसार चीन और जापान में भी बहुत हुआ है। मैक्सिको और मध्य अमरीका में भी रामकथा की चर्चा होती है। पेरू में तो राजा अपने को सूर्यवंशीय राम के वंशज ही मानते थे।

हालैंड, जर्मनी और पुर्तगाल में भी रामकथा के अनुवाद हुए हैं। रूस के प्रसिद्ध हिंदी समर्थक अलैक्सेई बारान्निकोव ने रामचरितमानस का रूसी भाषा में अनुवाद किया और संपूर्ण रूस तथा निकटवर्ती अन्य देशों में रामकथा का प्रचार किया। सोवियत लेखिका श्रीमती नतलिया गुलेवा ने रामकथा पर बच्चों के लिए रंगमंचीय नाटक तैयार किए हैं और अब हिंदी में भी रंगमंच विकसित किए जा रहे हैं।

रूस में तीसरी से नौवीं शताब्दी के बीच तिब्बती और खेतानी भाषा में लिखी संक्षिप्त रामकथाएँ प्राप्त होती हैं। अमरीकी विद्वान् मीलो क्लेवलैंड ने बाल साहित्य के रूप में 'एडवेंचर ऑफ राम' शीर्षक से रामकथा की रचना की है।

चीनी साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई मौलिक रचना नहीं है। बौद्ध धर्म के ग्रंथ त्रिपिटक के चीनी संस्करण में रामायण से संबंधित दो रचनाएँ देखने को मिलती हैं—'अनामकं जातकम' और 'दशरथ कथानम'। तीसरी शताब्दी में अनामकं जातकम का काँग-साँग-हुई ने चीनी भाषा में अनुवाद किया था, जिसका मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। चीनी अनुवाद लिएऊ-तुत्सी-किंग नामक पुस्तक में सुरक्षित है। इसके भी हिंदी संस्करण की प्रतीक्षा है।

फिजी में पहुँचे अप्रवासी भारतीयों के घरों में आरती और हनुमान चालीसा के पाठ आमतौर पर सुने जा सकते हैं। कैनेडा के घनी आबादीवाले व्यावसायिक शहर टोरंटो में भगवान् राम, शिव, गणेश एवं माँ काली के कई मंदिर हैं। कैनेडा के ब्रैंप्टन, मिसिसागा, मारकहम, नॉर्थ यॉर्क, ओकविले, रिचमंडहिल, स्केरबरो आदि कई शहरों में कई हिंदू मंदिर हैं। यहाँ हिंदी में आरतियों का प्रचलन है।

मॉरीशस पर लंबे समय तक फ्रांस का आधिपत्य रहा है, यहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच के साथ क्रियोल भाषा बोली जाती है। क्रियोल भाषा हिंदी और फ्रेंच को मिलाकर बनाई गई भाषा है, जो यहाँ के निवासियों की बहुत पसंद की भाषा है। हिंदी और भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या भी बहुत है। बोलने में कठिनाई भले हो, पर यहाँ के लोग हिंदी को खूब समझते हैं।

इतिहास में रुचि रखनेवाले लोग जानते हैं कि भारत में जब अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष चल रहा था, तब अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए अंग्रेजों की नजर मॉरीशस पर गई। उन्होंने मॉरीशस पर आक्रमण किया और इसे फ्रांसीसियों से छीन लिया। फ्रांसीसियों ने हारकर सत्ता तो अंग्रेजों के हवाले कर दी, पर अपनी सांस्कृतिक शक्ति को बचाए रखा। उन्होंने यहाँ के भारतीयों के साथ हिंदी व फ्रेंच को मिलाकर नई बोली का आविर्भाव किया, उसे ही अब क्रियोल के नाम से जानते हैं। भारतीय संस्कृति को पुष्पित-पल्लवित होने देने में फ्रांसीसियों ने परोक्ष योगदान किया। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जब भारतीय यहाँ पहुँचे, तो उन्होंने इसे 'मारीच देश' कहा था। रामायण की अनुगूँज आज भी यहाँ भारतीयों की आस्था का केंद्र है।

□

urvashibhopal@gmail.com

फिजी में रामकथा का स्वरूप और साहित्यिक प्रभाव

—डॉ. सुभाषिनी लता कुमार

भक्तिकाल की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदासजी की 'रामचरितमानस' का फिजी से गहरा संबंध है। यहाँ सन् 1879 से 1916 में शर्तबंधी प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों ने एक ओर जहाँ विदेशी धरती को अपनी कर्मभूमि बनाया तो वहीं हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की ध्वजा भी लहराई। आज भारत से इतर देशों में जैसे फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका आदि में अपनी-अपनी रामायण हैं, अपनी-अपनी रामकथाएँ भी हैं। विदेशों में भारतवंशियों की प्रवासन की प्रक्रिया के कारण आज 'रामचरितमानस' महाकाव्य का सांस्कृतिक महत्त्व और प्रभाव विश्व में विभिन्न कथाओं के माध्यम से फैला हुआ है।

फिजी में तुलसी कृत 'रामचरितमानस', रामायण का पर्याय बन गई है और हितकारक रचना होने के कारण उसे प्रसद्धि भी प्राप्त हुई है। गोस्वामी तुलसीदास ने न केवल राम भक्ति को ही अपनी कविता का उद्देश्य बनाया अपितु समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप श्री राम के आदर्शों को दरशाया है। फिजी में तुलसी की 'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का परम द्योतक है। यहाँ बड़े आदर और श्रद्धा से रामकथा पढ़ी जाती है और तुलसी के कवित्व का आनंद उठाया जाता है। भारत में आध्यात्मिक समृद्धि के लिए इसका पठन होता है, पर फिजी में इसका प्रयोग मान, सम्मान, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन के आधारस्वरूप होता है।

हिंदी भारतीय एकता की सूत्रधार है और फिजी में इसका जीवंत स्वरूप मिलता है। यहाँ के गाँवों, बाजारों, धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में हिंदी का बोलबाला है। इनकी हिंदी में रुचि का एकमात्र कारण रामायण पाठ है। यहाँ के लोग आरती के रूप में 'ओम जय जगदीश हरे' ही नहीं बल्कि रामायण की आरती गाते हैं, इतना ही नहीं, कोर्ट में शपथ के लिए हिंदू रामायण का उपयोग करते हैं। वर्ष 2000 में फिजी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री महेंद्र चौधरीजी ने रामायण पर हाथ रखकर प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। इस प्रकार फिजी की रामायण के प्रति आस्था को देख पता चल जाता है कि यह विश्व का सबसे लोकप्रिय काव्य है। भारत की भाँति विदेशों में मानस को बाँचा और उस पर आस्था रखी जाती है। यह इस बात का संकेत है कि विदेशों में भी मानस लोकमंगल की कामना का अद्भुत ग्रंथ है। महाभारत और रामायण भी भारतीय संस्कारों, मान्यताओं के मार्गदर्शक हैं।

---

* फिजी नेशनल यूनिवर्सिटी में सहायक प्रोफेसर।

फिजी द्वीप ऑस्ट्रेलिया के पूर्व में और न्यूजीलैंड के उत्तर में स्थित है। उल्लेख करने योग्य यह बात भी है कि फिजी ही वह देश है जहाँ सूरज की पहली किरण पड़ती है, क्योंकि इंटरनेशनल डेटलाइन फिजी के तवयूनी द्वीप से होकर गुजरती है। शर्तबंदी प्रथा के आरंभिक काल में अधिकांश गिरमिटिया मजदूर बिहार, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की ओर से कठिन परिस्थितियों में आए थे। किंतु, इनमें से कुछ मजदूर अपनी पोटली में बाँधकर तुलसी की रामायण, सूर के पद, कबीर के भजन, आल्हा की तान के साथ फिजी पहुँचे। इन पुस्तकों के पहुँचने से भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि राम, कृष्ण की स्मृति इन मजदूरों के संस्कारों में बँधी थी। जिसके फलस्वरूप पुस्तकों का अभाव होते हुए भी स्मृति के सहारे इन महान् ग्रंथों और उनके महानायकों ने उन्हें संकट के समय में अटूट धैर्य, विश्वास और संघर्ष करने की सतत प्रेरणा प्रदान की। गिरमिट काल में पराजय और निराशा की चरम स्थितियों में साहस और सांत्वना देने के अलावा "गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करनेवाली प्रहरी है।" यहाँ सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ऑफ फिजी के मार्गदर्शन में 2000 से अधिक रामायण मंडलियाँ हैं, जिनके माध्यम से रामकथा तथा पारंपरिक त्योहार जैसे होली, रामनवमी, महाशिवरात्रि, नवरात्रि, दीपावली आदि पर्व उत्साह के साथ मनाए जाते हैं।

इस संबंध में कवि पं. प्रताप चंद्र शर्मा 'रामनवमी' कविता में लिखते हैं—

अनोखी शान से सजकर जो आई रामनवमी है।
बड़ी सेवा में स्वागत है बधाई रामनवमी है॥
हुआ आनंद है घर-घर सजे फूल-पत्तों से।
धरा पर धर्म की धारा बहाई रामनवमी है॥

कवि राम की वंदना करते हैं और उन्हें आमंत्रित करते हैं—

रामजी भक्तों की इच्छा है पुनः अवतार हो।
हो तरण तारण जगत् के तुम हरण महि भार हो॥
हो रहा है लोप जग से आपके विश्वास का।
इसलिए अनिवार्य है एक बार फिर साकार हो॥

गिरमिट काल से फिजी में हर मंगलवार को रामायण मंडलियों द्वारा नियमित रूप से रामायण पाठ करने की परंपरा चली आ रही है। भूतपूर्व भारतीय उच्चायुक्त फिजी श्री विश्वास सपकल रामायण परंपरा पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"साप्ताहिक रूप से हजारों स्थानों पर रामायण का पाठ होता है। ऐसी जीवंत परंपरा किसी भी देश में नहीं मिलेगी। यहाँ लगभग 2000 से अधिक रामायण मंडलियाँ हैं, प्रारंभ में स्कूल और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना इन्हीं मंडलियों के माध्यम से हुई हैं।" तुलसीदास की रामचरितमानस का गायन-पठन, भजन-कीर्तन, ढोलक, झाँझ, मँजीरे के साथ होता है, जो विशेषतः लोक रीतियों को पुष्ट करता हुआ उनका संरक्षण और संवर्धन करता आ रहा है।

धार्मिक पर्वों और उत्सवों की अभिवृद्धि के साथ-साथ, फिजी के अनेक इलाकों में रामलीला मंचन का भी आयोजन किया जाता है। फिजी का लंबासा शहर रामलीला मंचन के लिए प्रसिद्ध है। लंबासा शहर में 'बुलिलेका रामलीला मंदिर' पिछले 116 वर्षों से रामलीला का मंचन मंदिर के मैदान में करता आ रहा है। श्री राम के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण फिजी के अन्य शहरों से लोग आकर दस दिनों के इस उत्सव में भाग लेते हैं और रामायण की कथा, चौपाइयाँ, नाट्य कला, गीत-संगीत, अभिनय आदि का भरपूर आनंद उठाते हैं। रामायण के मंचन के दौरान दर्शक कलाकारों में अपने राम-सीता के चेहरे को श्रद्धा और आस्था से निहारते हैं और अपने जीवन में उनके आदर्शों को ढालने का प्रयास करते हैं। इस परंपरा को बल देने के लिए 2016 में अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन

का सफल आयोजन आई.सी.सी.आर. द्वारा फिजी की राजधानी सूवा में हुआ। जिसके प्रभाव से बाल तथा महिला मंडलों में राम कथा का विकास देखने को मिला है।

गिरमिटिया देश फिजी में रामायण केवल धर्मभीरु लोगों की आस्था का ग्रंथ नहीं है, बल्कि गुलामी से लड़ने का अस्त्र भी बना है। "दिनभर गोरे ओवरसियर कोलंबरों, सरदारों के कोड़ों और गालियों की बौछारों के नीचे ये गिरमिटिया मजदूर कठिन परिश्रम करते थे और रात में अपनी कुली लेन के आसपास इकट्ठे होकर रामायण की चौपाइयाँ गाकर दिनभर की थकान उतारते थे।" गिरमिटकाल का समय इन मजदूरों के लिए राम वनवास जैसा ही था। वस्तुतः राम का वनवास उनके लिए कथा प्रसंग न होकर यथार्थ प्रतीत होता था। राम के वनवास के पीछे पिता की आज्ञा और रघुकुल की रीत का गौरवशाली पक्ष था, लेकिन इन मजदूरों के वनवास के पीछे विवशता, संघर्ष और गरीबी थी, जो इन्हें सात समुद्र पार एक अनजान देश फिजी ले आई थी। वतन से छूटे और तन से टूटे हुए इन लोगों का मन नहीं टूट सका तो केवल तुलसी रामायण के प्रताप से।'रामायण सुर तरु की छाया दुःख भय दूर निकट जो आया'— यह चौपाई सुनकर वे अपने दुःखों को भूलकर रामायण महारानी की कथाओं में डूब जाते और कष्टों से लड़ने की शक्ति पाते।

प्रवासी व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। अपनी समस्याओं के समाधान पाने के लिए वहाँ के समाज के साथ मित्रता करना, अपने बल और बुद्धि के आधार पर समस्याओं का निवारण करना एक प्रवासी के जीवन के हिस्से हो जाते हैं। रामचरितमानस में राम को भी जंगलों से जुड़ी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसमें सीताहरण प्रमुख है। उन्हें अनेक लोगों से मित्रता करके कार्य निकालने पड़े। जिस तरह तुलसी के राम ने अपने प्रवासी जीवन के दौरान विषम परिस्थितियों के बावजूद अपने संस्कारों को नहीं खोया, ठीक ऐसा ही फिजी के प्रवासी भारतीयों ने किया, वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी फिजी में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की परंपरा को कायम रखने में सक्षम रहे। अतः कहा जा सकता है कि राम के प्रवासी जीवन से प्रेरणा पाकर उन्होंने गिरमिटिया जीवन के संघर्षों को झेला और उपलब्धियाँ भी हासिल कीं।

रामायण महारानी की जय-जयकार गिरमिट काल से चली आ रही है। यह उतनी ही पूजनीय है जितने उनके आराध्य राम। फिजी के राष्ट्रकवि पं. कमला प्रसाद की कविता का यह अंश गिरमिटिया मजदूरों की आस्था को दरशाता है—"कोई रामायण बाँच रहा कोई लेकर सत्यनारायण आया। खूब किया सम्मान कोई अनजान जो आँगन आया।" कवि राघवानंद शर्मा भी रामायण के महत्त्व को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करते हैं—

हर गाँव में रामायण की गूँज सुनाना
घर-घर पे हनुमान के झंडे फहराना
भारतीयों का शान से भारतीय कहना
फख्र से हर कौम में अपने सर को उठाना
शायद हमारे नसीब में ये न होते
अगर जड़ मजबूती से जमाए न होते॥

तथा फिजी के प्रमुख हिंदी कवि जोगिंद्र सिंह केवल की कविताओं में पौराणिक संदर्भ का सफल प्रयोग देखने को मिलता हैं। इससे वर्तमान स्थितियों को नई चमक दी गई है। यथाः कवि जोगिंद्र सिंह कँवल अपनी एक लंबी कविता में लिखते हैं—

आ तुलसीदास तू, छेड़ अनोखा गायन
इन रामों की आज फिर, लिख नई रामायण
तेरे राम को मिला था, चौदह वर्ष वनवास
रामचरितमानस लिख दिया, बनकर उनका दास
अपने रामों को बीत गए, सौ से ऊपर साल

फिर भी भटकन भाग्य में, कैसी समय की चाल।

फिजी के शहरों और गाँवों में राम के नाम पर कई सत्संग होते हैं जिनके द्वारा मानव जीनव के सौंदर्य, शक्ति, सत्य आदि विषयों पर दार्शनिक विचार-विमर्श किए जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास के भाषा संबंधी विचारों का प्रभाव प्रो. सुब्रमनी के उपन्यास 'डउका पुरान' में परिलक्षित है। सिर्फ ग्यारह वर्ष की छोटी सी आयु में सुब्रमनीजी रामायण मंडली के लोकप्रिय तथा होनहार प्रचारक सिद्ध हुए। इतनी कम उम्र में ही सुब्रमनीजी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के पदों को पढ़कर लय में गाते, जिसे सुन श्रोतागण मदमस्त हो जाते थे। सुब्रमनीजी की इस प्रतिभा पर उनके परिवार तथा गाँववालों को हर्ष तथा गर्व था। इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप वह नियमित रूप से तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के कथावाचक और तुलसीदास के पदों के भाष्यकार बन गए। 'रामचरितमानस' की धार्मिकता और नैतिक शिक्षा का पूरा प्रभाव बालक सुब्रमनी के मन पर पड़ा। भक्तिकालीन प्रसिद्ध महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' ने लेखक सुब्रमनी को सबसे अधिक प्रभावित किया है। उनका कहना है कि रामायण ने जैसे उनके लिए किताबों की दुनिया ही खोल दी हो।

'डउका पुरान' फिजी हिंदी साहित्य की एक ऐतिहासिक तथा महत्त्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने पूर्वजों की भाषा, जो उनकी भी मातृभाषा है, उसे ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, क्योंकि इस पर उनका पूर्ण अधिकार रहा है। वे फिजी को 'रामचरितमानस का देश' कहकर संबोधित करते हैं और अपने धाम लंबासा को अयोध्यापुरी मानते हैं। 'डउका पुरान' में सुब्रमनीजी ने फिजी के भारतवंशियों की जनभाषा 'फिजी हिंदी' को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। भाषा के साथ ही सुब्रमनीजी ने उपन्यास के शिल्पविधान में भी गोस्वामी तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' का समन्वय किया है। जिस प्रकार 'रामचरितमानस' की कथा सात कांडों में विभाजित है, उसी प्रकार 'डउका पुरान' की कथावस्तु को सुब्रमनीजी ने सात अध्यायों में विभक्त किया है। अंतः इस महाकाव्य ने यहाँ के प्रवासी भारतीयों के मन में हिंदी की अलख जगाई और साथ-साथ साहित्य सृजन की ओर प्रेरित किया।

भारत से लगभग 12 हजार किलोमीटर की दूरी पर स्थित फिजी में हिंदी को विकसित करने में तुलसी के धार्मिक-सांस्कृतिक ग्रंथ 'रामचरितमानस' ने अहम भूमिका निभाई है। 'रामचरितमानस' के फलस्वरूप फिजी में पूरे गिरमिट काल से अब तक हिंदी भाषा साँस लेती रही है और प्रवाहित है। जिस प्रकार तुलसी के काव्य में जगह-जगह अवधी और ब्रजभाषा का अनूठा मिश्रण है, उसी तरह फिजी हिंदी में प्रचुर मात्रा में अवधी शब्द मिलते हैं। फिजी हिंदी भाषा न तो पूर्णतः अवधी है और न ही भोजपुरी। यह मुख्य रूप से अवधी और हिंदी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न है, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं का भी समावेश है।

रामचरितमानस में नायक राम मर्यादा पुरुषोत्तम तथा एक महाशक्ति के रूप में दरशाए गए हैं। रामचरितमानस एक चरित्र-काव्य है, जिसमें राम का संपूर्ण जीवन-चरित्र वर्णित हुआ है। इसमें 'चरित' और 'काव्य' दोनों के गुण समान रूप से मिलते हैं। राम किसी के लिए भगवान् हैं तो किसी के लिए आदर्श शासक, आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श मानव हैं। इस तरह श्रीराम वह मापन है जिससे फिजी के लोग खुद का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन के दोषों को मिटाते हैं और खुद को समाज में रहने योग्य बनाते हैं। शादी-विवाह

के अवसर पर वर-वधू को राम-सीता की उपमा दी जाती है और उन्हें राम-सीता की तरह मर्यादित जीवन व्यतीत करने की सीख दी जाती है।

21वीं सदी के वर्तमान समय के बदलते पारिवारिक, सामाजिक परिवेश में 'रामचरितमानस' का महत्त्व और भी अधिक हो गया है। आध्यात्मिक चिंतन के इस गूढ़ रहस्य से शायद सभी लोग परिचित न हों, परंतु धार्मिक एकता के द्वारा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की छाप फिजी के गाँवों और शहर की गलियों में दिखाई देती है। भले ही रस्मों-रिवाजों में कुछ भिन्नता है, परंतु संस्कृति एक है और वह है भारतीय संस्कृति। फिजी सही मायने में बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश कहलाता है क्योंकि यहाँ फिजीयन और भारतीय संस्कृति का अद्भुत संगम है।

आज मानव तेजी से आधुनिक आकर्षण की ओर खिंच रहा है और अपने सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों से दूर हो रहा है तो वहीं फिजी के प्रवासी भारतीय अपनी सांस्कृतिक पहचान और हिंदी भाषा की सुरक्षा तथा सम्मान के लिए सजग हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि फिजी में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति प्रगति के पथ पर अग्रसर है जिसका मूल कारण रामचरितमानस है। तुलसी की रामायण की परंपरा का बीज जो गिरमिटिया पूर्वजों ने बोया था, वह अब एक विशाल वृक्ष बन गया है, जिसकी छाया में भारतीय संस्कृति समृद्धि पा रही है तथा भावी पीढ़ी में भारतीयता झलक रही है।

□

Subashni.Kumar@fnu.ac.fj

हिंदी भाषा अपनी अनेक धाराओं के साथ प्रशस्त क्षेत्र में प्रखर गति से प्रकाशित हो रही है।

—छविनाथ पांडेय

हिंदी और नागरी का प्रचार तथा विकास कोई भी रोक नहीं सकता।

—गोविंदवल्लभ पंत

हमारी हिंदी भाषा का साहित्य किसी भी दूसरी भारतीय भाषा से किसी अंश में कम नहीं है।

—(रायबहादुर) रामरणविजय सिंह

विश्व में सबके अपने-अपने राम

—डॉ. राकेश पांडेय

विश्व में 'रामायण' मात्र एक धर्मगाथा नहीं है और न ही केवल आस्था का ग्रंथ है। रामायण तो संपूर्ण जगत् में मानवीय जीवन को लय देनेवाली शब्दगंगा है। जीवन में मर्यादित आदर्शों को रोपनेवाला आधारग्रंथ है। रामायण का सांस्कृतिक प्रभाव संपूर्ण विश्व में विभिन्न स्थानीय कथाओं के माध्यम से देखा जाता है। भारत में भी अनेक प्रकार के रामायण-ग्रंथों का प्रचलन है। विभिन्न आस्थाओं से युक्त भारत में ही तीन सौ प्रकार की रामायण होने की बात कही जाती है। संपूर्ण भारत की लोकसंस्कृति में रामायण का प्रभाव विद्यमान है।

तुलसीदास के राम तो लोकव्यापित सर्वज्ञ हैं। तुलसीदास वर्तमान समय में विश्व के सर्वाधिक पढ़े जानेवाले और गाए जानेवाले कवि हैं। कहा जाता है शब्द ब्रह्म होता है, जिसे तुलसीदास ने सिद्ध कर दिया। तुलसीदास ने जो भी लिखा, वह ब्रह्मस्वरूप हो गया, जिस कागज पर लिखा गया, वह पूज्य हो गया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तुलसीदास ने अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'रामचरितमानस' में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मैं यह स्वांतः सुखाय के लिए लिख रहा हूँ और यही रचना स्वांतः से मुक्त हो, सर्वस्व हो गई। आज तुलसीकृत रामायण, रामायण का पर्याय बन गई है। जार्ज ग्रियर्सन का कथन है कि 'महात्मा बुद्ध के बाद भारत ही नहीं, एशिया भर में यदि किसी को इतनी लोकप्रियता मिली है, तो वे है तुलसीदास।' तुलसीदासजी ने अपने राम के स्तुत्य रूप को यों वर्णित किया है कि जब वह वृंदावन में श्यामजी के दर्शन कर रहे थे तो मूर्ति में उन्हें अपने आराध्य के स्वरूप का भाव उत्पन्न नहीं हुआ, तो उन्होंने कहा—

"कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लो हाथ॥"

लोक मान्यताओं के अनुसार, मूर्ति ने प्रभु राम के स्वरूप में तुलसीदास को दर्शन दिए। राम के इसी स्वरूप की पूजा समस्त संसार करता है। हम अपनी संस्कृति में परिवार की कल्पना राम-परिवार सी करते हैं, सरकार से रामराज्य की अपेक्षा करते हैं और जीवन की अंतिम यात्रा भी राम के नाम को सत्य कहते हुए ही पूर्ण होती है। रामायण की व्याप्ति हमारे जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक है। भारत में गैर-हिंदीभाषी राज्यों में भी अनेक प्रकार की रामायण प्रचलित हैं; जैसे कि तमिल में 'कम्ब रामायण,' कन्नड़ में 'पंप रामायण', तेलुगू में 'रंगनाथ रामायण', 'भास्कर रामायण', 'सरस्वती रामायण', 'मोल्ल रामायण', 'रघुनाथ रामायण', 'सुभद्रा रामायण' प्रचलित हैं। इसी प्रकार बंगाल में 'रामायण पांचाली' मराठी में 'भावार्थ रामायण',

---

* 'प्रवासी संसार' के संपादक।

मलयालम में 'कणिश्श रामायण', असम, गुजरात सहित सभी प्रांतों में व्याप्त जन संस्कृति में रामायण विद्यमान है। फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध ग्रंथ 'रामकथा : उद्भव और विकास' में रामकथा के एक हजार से ज्यादा रूपों का उल्लेख किया है।

अब बात करें, भारत के बाहर विश्व की, तो अनेक देशों में अपनी-अपनी रामायण हैं, उनकी अपनी कथाएँ हैं और अपने-अपने राम हैं और वहाँ की संस्कृति पर वहाँ प्रचलित रामायण का प्रभाव है। भारत से बाहर समूचे विश्व को रामायण के सांस्कृतिक प्रभाव की दृष्टि से तीन वर्गों में बाँट सकते है। सर्वप्रथम वे गिरमिटिया भारतवंशी देश, जैसे कि मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम व गयाना आदि देश। दूसरे एशियाई व अन्य देश, जैसे कि थाईलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया, श्रीलंका, भूटान, नेपाल, फिलीपींस, जापान आदि देश। तीसरा वर्ग आजादी के बाद पश्चिमी, खाड़ी व अन्य देशों में बसे प्रवासी भारतीयों का है। इन सभी देशों के कारण रामायण का सूर्य विश्व में कहीं अस्त नहीं होता है।

गिरमिटिया भारतवंशी देशों में तो रामायण केवल धर्मभीरु लोगों की आस्था का ग्रंथ नहीं रहा था, बल्कि गुलामी से लड़ने का अस्त्र भी था। गुलामी के दिनों में श्रम-साधकों की कलाइयाँ दिनभर खेतों में गन्ने काटती थीं और वहीं रात के समय बैठकाओं में 'मंगल भवन अमंगल हारी' की चौपाई के साथ ढोल, मंजीरे और करताल को लय देती थीं। गुलाम भारतीयों के मंगल की कामना में समस्त भारतीय समाज एकजुट हुआ और गुलामी की जंजीरों को काटते हुए आज वह उन देशों में शासक की भूमिका में है। मॉरीशस की संसद् में तो रामायण सेंटर एक्ट तक पारित हो चुका है, जिसके अंतर्गत वहाँ पर भव्य रामायण केंद्र का निर्माण हो चुका है। पूरे मॉरीशस में अवध संस्कृति व्याप्त है। जैसे अयोध्या में हर घर के बाहर एक हनुमानजी का चौरा/छोटा मंदिर है, उसी प्रकार मॉरीशस में भी प्रत्येक घर के बाहर एक लघु मंदिर मिलेगा। अवध क्षेत्र फैजाबाद से वहाँ मॉरीशसवासी हुए श्री राजेंद्र अरुणजी की वाणी प्रतिदिन सुबह रामकथा करते हुए रेडियो और टेलीविजन पर सुनाई और दिखाई देती है। यहाँ पर अवधी मिश्रित भोजपुरी बोली जाती है, अत: अनेक संस्कार गीत भी राममय होते हैं।

गिरमिटिया देशों में रामायण का सर्वाधिक प्रभाव फिजी में देखने को मिलता है। यहाँ पर लंबासा क्षेत्र तो पूरा अयोध्या ही कहा जाता है। रामायण के आम जनजीवन पर प्रभाव का मूल कारण यहाँ पर भारतीय डायस्पोरा का बहुत बड़ा वर्ग अयोध्या क्षेत्र से आया हुआ है। उदाहरण के लिए यहाँ के राष्ट्रकवि कहे जानेवाले पंडित कमला प्रसाद मिश्रा फैजाबाद के रहनेवाले थे। इसी प्रकार विवेकानंद शर्मा, जो मंत्री भी रहे, वे सुल्तानपुर से थे। इसी प्रकार मेरी मुलाकात सतेंद्र नंदनजी से हुई। उनके पूर्वज भी सुल्तानपुर से आए हुए हैं। मुझे अपनी यात्रा में अनेक लोग अवध क्षेत्र के मिले और यही कारण है कि बोली जानेवाली 'फिजी बात' रामायण की भाषा अवधी के अधिक निकट है। फिजी देश की संस्कृति राममय है। यहाँ नौ लाख की जनसंख्या में लगभग 2000 रामायण मंडलियाँ हैं। रामायण का गायन व मंचन होता है। 'हनुमान चालीसा' आपको ढोल-मंजीरे के साथ सुनाई देगी। पूर्व प्रधानमंत्री श्री महेंद्र चौधरी ने रामायण पर हाथ रखकर प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। फिजी में रामायण का बहुत महत्त्व है। जब अंग्रेजों अपने साम्राज्य में ब्रिटेन की महारानी का वैभवगान किया तो जवाब में भारतीय समुदाय ने कहा कि हमारी महारानी तो रामायण महारानी है। तभी से आज तक फिजी में रामायण को रामायण महारानी कहा जाता है। फिजी में कुछ वर्ष पूर्व 'अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन' का भी आयोजन

हुआ। सौभाग्य से मैं भी सम्मिलित हुआ। देश के विश्वप्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर सुब्रमनी बातचीत में कहते हैं कि उन्होंने लिखना तो तुलसी से सीखा है। उनके दो वृहद उपन्यास 'डउका पुरान' और 'फिजी माँ' की भाषा भी तुलसी की भाषा है, जिसे यहाँ 'फिजीबात' कहते हैं, भारत में अवधी कहते हैं।

इस प्रकार फिजी में 'रामचरितमानस' के प्रति जनमानस में अटूट श्रद्धा है। स्थानीय भाषा में भी रामायण का अनुवाद हुआ है। मार्क ट्वेन ने मॉरीशस को देखकर कहा था कि ईश्वर ने पहले मॉरीशस को बनाया, फिर उसकी नकल करते हुए स्वर्ग की रचना की। लेकिन मैं यह कहना चाहूँगा की मार्क टिविन ने फिजी को नहीं देखा था, अन्यथा वह शायद केवल मॉरीशस के लिए कहने से रुक जाते।

त्रिनिदाद एवं टोबेगो में तो पूरा दिवाली नगर ही बना हुआ है। जहाँ पर भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए अनेक कार्यक्रम होते रहते हैं। जब मैं वहाँ पहुँचा तो देख लगा ही नहीं कि ये भारत से अलग कोई देश है! यहाँ पर भारतीय संस्कृति की महान् परंपरा आज भी जीवंत है। यहाँ पर रामायण का बहुत प्रभाव है। लोगों ने टेलीविजन पर रामायण सीरियल में जो देखा है, उसी प्रकार स्नेह और हाथ उठाकर आशीर्वाद देने की परंपरा देखी जाती है। यहाँ भारतीय समुदाय के लोग विशेष छुट्टी और त्योहार के दिनों में भारतीय परिधान पहनते हैं और मंदिर जाते है। त्रिनिदाद में मैदानी रामायण का प्रचलन है, जो बिना मंच के खुले मैदान में खेली जाती है। यहाँ पर सभी लोग सड़कों पर रामायण झाँकी निकालते हैं, जैसा कि यहाँ पर कार्निवाल बहुत प्रचलित है रामायण को भी एक बड़े उत्सव रूप में मनाया जाता है। त्रिनिदाद में कहावत है कि 'एक त्रिनिदादियन चम्मच गिरने पर भी नाच लेता है।' अब कल्पना कीजिए कि यहाँ की रामायण कितनी संगीतमय होती होगी! यहाँ भी रामायण की बहुत पुरानी परंपरा है, किंतु खेद है कि भाषा मर गई है और संवाद अंग्रेजी में होते हैं। अब त्रिनिदाद में रामायण के माध्यम से हिंदी शिक्षण की योजना बन गई है।

सूरीनाम भारतीय डायस्पोरा का एक महत्त्वपूर्ण देश है। यहाँ पर जब मैं सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में गया तो देखा कि वहाँ भी कई मंदिर बने हुए हैं, जहाँ पर रामायण का पाठ होता है। यहाँ पर भी रामायण का भरपूर प्रभाव है। एक बार सूरीनाम के तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री सरजूदीन साक्षात्कार का लेते हुए मैंने पूछा कि आपके यहाँ आपकी पत्नी का नाम क्रिश्चियन कैसे है, जबकि वह बातचीत में हिंदू लग रही हैं? तो उन्होंने एक चौंकानेवाला सच बताया, जो कि मैंने पहले कभी नहीं सुना था। उन्होंने बताया कि वहाँ पर एक परंपरा रही है, जो नर्स बच्चे का प्रसव कराएगी, उसके साथ उसका नाम जुड़ जाएगा। इसलिए वहाँ पर अनेक लोगो के नाम के साथ क्रिश्चियन नाम जुड़े हुए हैं, जबकि वे सब भारतीय ही हैं। इन सभी का अस्तित्व रामायण के कारण ही बचा हुआ है, क्योंकि यहाँ पर रामायण मंडलियों का काफी प्रभाव है।

गयाना में रामायण का रामलीला के माध्यम से बहुत ही गहरा प्रभाव है। यहाँ पर भारतीय समुदाय के सभी बच्चे अपने बड़ों के साथ रामायण में दिए गए संस्कारों का व्यवहार करते है। गयाना में भी रामलीला का मंचन काफी प्रचलित है। कुछ वर्ष पूर्व गयाना के तत्कालीन राष्टपति श्री भरत जगदेव अपने पूर्वजों के गाँव 'ठकुराइन का पुरवा', निकट गौरीगंज, अमेठी में मिलने के लिए आए, तो उन्होंने अपने परिवार की एक बड़ी उम्र की महिला से मुलाकात की। वह बहुत ही भारतीय संस्कारों के साथ मिले; किंतु समस्या भाषा बन गई, इन्हें केवल अंग्रेजी आती थी और वृद्धा को केवल

अवधी आती थी! कुछ लोगों ने दोनों के संवाद में सहायता की, लेकिन अतृप्तता बनी रही। रामायण से सीखे संस्कारों से श्री भरत जगदेव ने चरण छूकर संवादहीनता की खाई को पाट दिया।

इसके अतिरिक्त, रीयूनियन आईलैंड में काफी भारतीय लोग रहते हैं। वह भी रामायण से संस्कार पाते हैं। मैंने वहाँ देखा कि गुजरती समाज के सुनार लोग काफी हैं और वे भारतीय संस्कृति को जीवंत बनाए रखे हुए हैं। यही हाल बगल के देश मेडागास्कर का है।

दक्षिण अफ्रीका में भी भारतीय समाज में रामायण का बहुत प्रभाव है। डरबन के प्रोफेसर रामभजन सीताराम और प्रोफेसर उषा देवी शुक्ल ने तो रामायण पर शोध किया हुआ है और उनकी पुस्तकें प्रकाशित हैं, साथ ही रामायण पर मेरी पत्रिका 'प्रवासी संसार' में इन सभी के लेख भी प्रकाशित हैं। वहाँ के रेडियो 'हिंदवाणी' पर रामायण के कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं। वहाँ कार में बैठकर चलने पर लगता ही नहीं कि हम भारत में नहीं हैं, क्योंकि ये रेडियो स्टेशन निरंतर भारतीय संगीत प्रसारित करता रहता है।

अब बात करते है कंबोडिया की, तो आप इसी तथ्य से अंदाजा लगा सकते हैं कि यह एक बौद्ध देश है, किंतु इसके राष्ट्रीय ध्वज में अंकोरवाट मंदिर बना हुआ है, जैसे कि भारत के राष्ट्रीय ध्वज में अशोक चक्र बना हुआ है। कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर विश्व धरोहर है, यह 12वीं शताब्दी का विष्णु मंदिर है, बाद में इसमें बुद्ध की मूर्ति भी स्थापित कर दी गई। इसकी दीवारों पर पौराणिक कथाओं को उकेरा गया है। कंबोडिया में भारतीय संस्कृति का अंदाजा आप मंदिर से ही नहीं, बल्कि यहाँ की राजधानी नामपेन्ह में बने नागा कसीनो से भी लगा सकते हैं, जिसे लगभग सभी पर्यटक देखने जाते हैं। इस कसीनो के प्रवेशद्वार पर ही बड़ी आदमकद, भव्य, हमारे सभी देवताओं की मूर्ति लगी हुई हैं और अंदर कुबेर की विशालकाय प्रतिमा प्रदर्शित है। वहाँ पे थाउजेंड लिंगास मंदिर का उल्लेख भी आवश्यक है, जहाँ पर एक हजार शिवलिंग बने हुए हैं और उन पर से पानी बहता रहता है। कंबोडिया प्रतिदिन रामायण मंचन होता है। यहाँ पर सड़क के किनारे सार्वजनिक दीवारों पर समुद्र-मंथन के चित्र उत्कीर्ण हैं। यहाँ पर भी रामायण का संस्कृति पर गहरा प्रभाव है।

मलेशिया, वैसे तो यह एक मुसलिम राष्ट्र है, किंतु रामकथा की विद्यमानता यहाँ भी है। यहाँ भी रामायण का सांस्कृतिक प्रभाव देखा जा सकता है, यहाँ रामायण को 'हिकायत सेरी राम' कहते हैं, अर्थात् श्रीराम की कथा। 'हिकायत सेरी राम' की कथा में सीता मिलन की कथा में भिन्नता है। यदि वह निर्दोष होंगी तो राम से अलग होने पर सारे पशु-पक्षी शांत हो जाएँगे। इसी प्रकार घटित होने के बाद जब राम सीता का पुनर्मिलन होता है तो सारे पशु-पक्षी बोलने लगते हैं और इस प्रकार सीता निर्दोष सिद्ध होती हैं।

इसी प्रकार तिब्बत में रामायण की व्याप्ति है। तिब्बत के ये लोग प्राचीन काल से ही वाल्मीकि रचित रामायण की कथा से परिचित थे। तिब्बती रामायण की प्रतियाँ तुन-हुआंग नामक जगह से प्राप्त हुई हैं। तिब्बत की सबसे प्रामाणिक राम कथा किरंस-पुंस-पा की है, जिसमें कहा गया है कि शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण द्वारा सभी सर अर्पित करने के बाद उसकी दस गरदनें रह जाती हैं। इसी कारण उसे 'दशग्रीव' कहा जाता है। रावण एक सुंदर लड़की का पिता बनता है, किंतु उसे जब चलता है कि उसकी पुत्री के कारण उसके राज्य पर संकट आ सकता है, वह उसे एक बक्से में बंद करके एक नदी में फेंक देता है। एक किसान को वह बक्सा मिलता है और लड़की का बड़ा होने पर राम के साथ विवाह कर देता है, तब उसका

नाम सीता रख दिया जाता है। दसग्रीव ही सीता का हरण करता है। इस प्रकार पूरे अलग प्रकार के घटनाक्रमों से यह रामकथा भरी हुई है।

इसी प्रकार जापान के कथा-संग्रह 'होबूतसुशू' में संचित रामकथा संकलित मिलती है। इसे तैरानो यसुयोरी ने 12वीं शताब्दी में रचा था। इसे चीनी भाषा पर आधारित कहा जाता है।

चीनी भाषा में राम पर आधारित कोई मौलिक रचना तो नहीं मिलती है लेकिन बौद्ध धर्म की पुस्तक 'त्रिपिटक' के चीनी मूल में रामायण संबंधित दो रचनाएँ उल्लेखित है। फादर कामिल बुल्के के अनुसार, तीसरी शताब्दी में अनामकं जातकम का काँग-सेंग हुई द्वारा चीनी अनुवाद हुआ था, जिसके पात्रों में रामायण के संकेत मिलते हैं। 'दशरथ कथानम' में अलग कथानक के साथ रामायण का वर्णन है।

इसी प्रकार लाओस में भी रामायण की विद्यमानता है। फिलीपींस में भी रामायण की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। डॉक्टर जान.आर. फ्रांसिस्को ने फिलीपींस की मारवन भाषा में एक रामकथा की खोज की है, जिसका नाम 'मसलादिया लाबन' है। फिलीपींस की रामायण में स्वयंवर की कथा में धनुष तोड़ने की बजाय राजकुमारी के कक्ष में एक बॉल फेंकने की प्रतिस्पर्धा के रूप में हैं। उसमें जो खिड़की से बॉल फेंकने में सफल हो जाएगा, विवाह करेगा। इस प्रकार फिलिपींस की रामायण का अपना स्वरूप है। एक कथा में राम और सुग्रीव के मिलन का प्रसंग इस प्रकार है कि राम-लक्ष्मण को प्यास लगती है और वे बगल में बह रही छोटी नदी में जब पानी को पीने के लिए अँजुरी में लेते हैं तो जल खारा होता है। इसका रहस्य जानने के लिए वे विपरीत दिशा में चल पड़ते हैं। वे कुछ दूर जाकर देखते हैं कि वहाँ सुग्रीव रो रहे होते हैं और उनके अश्रुओं की धारा से ही वह नदी बनी होती है।

मंगोलिया की रामकथा में भगवान् और पूजा का विशेष स्थान है। दमदिनसुएरेन ने मंगल ओई भाषा में रचित चार राम कथाओं की खोज की है। इनमें दो कथाएँ राजा जीव की कथा के विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनकी पांडुलिपि लेकिन गार्ड में सुरक्षित है। इनमें एक मृतक का प्रसंग रोचक है, की लंका के एक राक्षस ने उम्र के का रूप धारण कर लिया, जिसका सिर तो सोने का था और बाकी शरीर चाँदी का था। वह ऋषि-मुनियों की तपस्या में बाधा पहुँचाता था। सभी ऋषि मुनियों ने राम से इस समस्या की मुक्ति हेतु आग्रह किया। राम ने पत्थर से उसकी आँख फोड़ दी। इस प्रकार प्रसन्न होकर ऋषि-मुनियों ने राम को अजय शक्तियाँ प्रदान कीं।

अनेक विदेशी विद्वान् भी रामायणमय होने से नहीं बच पाए। पोलैंड से प्रोफेसर ब्रिस्की और बेल्जियम के कामिल बुल्के उल्लेखनीय रामायण विद्वान् हैं। इसी के साथ फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख साद मसीहा का उल्लेख करना आवश्यक है, उन्होंने 'दास्ताने राम व सीता' ग्रंथ की रचना की। रामायण ने अनेक भाषाओं में अनुदित होकर तमाम विश्व संस्कृतियों पर अपना प्रभाव छोड़ा है।

भारतीय डायस्पोरा की युवा पीढ़ी को पश्चिमी संस्कृति के कुप्रभावों से बचने के लिए रामायण की शरण में आना ही पड़ेगा। मैंने अमेरिका, ब्रिटेन व खाड़ी के अनेक घरों में देखा है कि बच्चों को संस्कार देने के लिए रामकथा का सहारा लिया जाता है। इन देशों में प्रत्येक सप्ताह सपरिवार मंदिर जाने का प्रचलन है। यहाँ प्राय: रामायण का पाठ होता है। बात लंबी हो रही है, इसे समेटते हुए यही निष्कर्ष है कि समस्त विश्व में रामायण का सांस्कृतिक प्रभाव है, भले ही कथाएँ भिन्न-भिन्न हों, विश्व में सबके अपने-अपने राम हैं।

□

pravasisansar@gmail.com

रामकथा का यथार्थ

—डॉ. सीतेश आलोक

रामकथा के विषय में सोचने बैठें तो आर-पार नहीं सूझता···आज से हजारों साल पहले, न जाने कैसे एक अभूतपूर्व कथा ने मानव इतिहास में कविता का रूप पाया होगा—अकस्मात् एक ऋषि के माध्यम से! मानव सभ्यता का वह प्रथम महाकाव्य मुखरित ही नहीं हुआ, श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध करता हुआ न केवल उनकी स्मृति में घर बनाता रहा, उन्हें दूसरों को सुनाने के लिए विवश भी करता रहा।

उस समय जब संचार के साधन, आज की अपेक्षा 'न' के बराबर ही थे—एक अनाम वनवासी तपस्वी के मुख से निकली उसकी वाणी कैसे पवन-तरंगों के साथ प्रवाहित होती रही और निर्बाध गति से विस्तार पाती गई, यह समझ से परे है। आज के युग में भी, जिसमें ज्ञान, तकनीक, विज्ञान आदि का अप्रतिम योगदान है, संसार की कोई भी साहित्यिक कृति संभवतः इतनी दूर नहीं पहुँच सकी इतना व्यापक प्रभाव नहीं डाल सकी जितना कि, संभवतः केवल व्यक्ति-से-व्यक्ति के बीच संवाद के रूप में प्रसारित होकर, रामकथा अनेकानेक देशों में पहुँची, पहुँची ही नहीं, देश-विदेश के जन-मानस के हृदय में भी जा बसी।

हाँ, यह अवश्य सच है कि इस मौखिक प्रसारण-पुनर्प्रसारण के क्रम में मूल रचना में रूपांतर होता रहा। किसी ने किसी प्रकरण-विशेष को अधिक महत्त्व दिया तो किसी अन्य को कोई दूसरा प्रसंग अधिक महत्त्वपूर्ण लगा। व्यक्ति से व्यक्ति के बीच संप्रेषण, अनेकानेक प्रसंगों को अपेक्षाकृत अधिक अथवा कम महत्त्वपूर्ण दिखाने लगे। यह आसानी से समझा जा सकता है कि जहाँ युवा वर्ग को वीर-रसपूर्ण युद्ध आदि के वर्णनों में अधिक रुचि दिखी हो, वहीं तरुण अथवा मध्य आयु के श्रोताओं का ध्यान रावण के कर्म-कुकर्म की ओर अधिक गया हो···और बड़ी आयु के श्रोताओं को दशरथ की व्यथा ने अधिक विदीर्ण किया हो··· नारियाँ, सीता की पीड़ा से अधिक विचलित हुई हों और रोमांच-मनोरंजन के ग्राहकों को हनुमान, सुग्रीव आदि ने अधिक प्रेरणा दी हो। वैसे रामायण में विशुद्ध मनोरंजन-स्वरूप कुंभकर्ण का चरित्र भी है, जो अपनी अतिरंजना के कारण श्रोताओं के मनोरंजन का कारण बना।

यह आदिकवि वाल्मीकि की वाणी का ही चमत्कार था कि रामकथा देखते-ही-देखते कहीं वाङ्मय तो कहीं रोचक कथा के रूप में भारत के कोने-कोने में ही नहीं, पूर्व दिशा में देश की थल सीमा को पार करती हुई, इंडोनेशिया, कंबोडिया, लाओस, जावा, थाइलैंड, बाली आदि तक जा पहुँची। हाँ, यह अवश्य हुआ कि अनेकानेक देशों

---

* प्रसिद्ध लेखक एवं संस्कृतिधर्मी।

में स्थानीय भाषाओं एवं नामों के आधार पर कहीं प्रमुख चरित्रों के नाम, वर्णन आदि बदले, तो कहीं कुछ घटनाओं-परिस्थितियों आदि में बड़ा रूपांतर हुआ। यह स्वाभाविक है, क्योंकि कथा सुनाने और सुननेवाले की स्मृति तथा समझ के आधार पर कथानक के यथार्थ में परिवर्तन आ जाना असंभव नहीं है।

विदेशी संस्करणों के कुछ प्रमुख चरित्र ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहते। कंबोडिया की रामाकेर्ति के अनुसार सीता राम से विवाद के कारण नागलोक में जा बसी थीं। इसी प्रकार थाइलैंड की रामाकियन में अयोध्या अयुथ्या बन जाती है; कुश तथा लव के नाम मोंगकुट तथा लोप हो जाते हैं। उसमें राम तथा रावण दोनों ही राजा मालीवराज के पौत्र हैं; विभीषण का नाम भिपेक है, रावण का तोसकन और दुंदभी का तोरापी। लक्ष्मण कुंभकर्ण के भल्ल-प्रहार द्वारा अचेत हुए थे और हनुमान जब पर्वत से उनके लिए औषधियाँ लेकर आ रहे थे, तब मार्ग में कुछ पर्वत-खंड लोप बूरी में गिरे, जहाँ आज भी औषधियाँ उपजती हैं। ग्वाय द्वोरभि के अनुसार, इंद्र ने लोंग्का के राजा राफनासुआन ने रावण से प्रतिशोध लेने के लिए अपनी पटरानी नाँग सुजाता को राफनासुआन की पुत्री के रूप में जन्म लेने के लिए भेजा। किंतु राफनासुआन ने ज्योतिषियों के कहने पर उसे जल में प्रवाहित कर दिया, जहाँ से कसाय नाम के एक ऋषि ने प्राप्त करके उसका पालन-पोषण किया और कुरुरथ के राजा राम से उसका विवाह करा दिया। इसमें ओंखट (अंगद), वोरायोट, इंथासिक (इंद्रजीत) तथा होरामन (हनुमान) जैसे परिचित नाम समझ में आते हैं।

लाओस में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व भाग में फुट्टापोचन द्वारा रचित फ्रालाम की कथा-भूमि लाओस ही है, जिसमें वियतनाम का शक्तिशाली राजा राम निकटवर्ती क्षेत्रों में अपना प्रभाव फैलाने के लिए विवाह संबंध स्थापित करता रहता है। इसके अनुसार सीता का जन्म रावण के उपवन में एक वृक्ष से हुआ, जहाँ से कन्नक (जनक) ने उन्हें प्राप्त करके अपनी पुत्री बना लिया। राम तथा लक्ष्मण अपनी लंका-विजय से लौटते समय आयुथ्या, पिसानुलोक, नाखोन, सवन आदि नाम के अनेक नए नगर बसाते हैं और राम तथा लक्ष्मण के पुत्र पूर्वोत्तरी थाइलैंड के विशाल भागों पर शासन करते हैं। ग्वाय द्वेरभि में रामकथा का स्थानीकरण और भी अधिक है। संभवतः सत्रहवीं शताब्दी में तीन भागों में विभाजित लाओस के आधार पर इसमें राबनास्वन (रावणेश्वर), राम तथा बारी (वाली) का क्रमशः लंका, कुरूरथानंगन और काशी पर शासन है। इसमें हनुमान के जन्म के विषय में भी बड़ी विचित्र एवं ऊटपटाँग कथा है, राम तथा सीता के विवाह-पूर्व प्रेम का भी वर्णन है और यह भी संकेत है कि सीता-हरण में इंद्र ने स्वयं स्वर्ण-मृग बनकर रावण की सहायता की थी।

मलेशिया के वयांग कुलित में जहाँ श्रीराम सेरीराम कहलाए, सीता को सीती देवी और रावण को महाराजा वान नाम मिला। इसी प्रकार माहबाबू सनम (विभीषन), माहबाबू केनुंग (कुंभकर्ण), नेराजित (इंद्रजीत), बाल्याराजा (वाली), सागरीवा (सुग्रीव), महारिसि काला आपी (जनक) नाम भी मिलते हैं। कालांतर में मलयेशिया में रामायण के जो संस्करण आए, वे और भी भिन्नता लेकर लिखे गए, जैसे इस्लामीकरण के पश्चात् की कुछ कथाओं में रावण का पैगंबर आदम से संबंध का वर्णन है। इसके अनुसार, रावण द्वारा तपस्या से प्रसन्न होकर अल्लाह सुमनाह वाताला ने अपने पैगंबर आदम के द्वारा उसे, यदि वह न्यायपूर्वक राज करे तो धरती, सागर, आकाश तथा पाताल का स्वामी बनाया था। इसके अनुसार रावण को अजेय रहने का वरदान ब्रह्मा से नहीं, अल्लाह-ताला से प्राप्त हुआ था। दशरथ पैगंबर आदान के प्रपौत्र थे।

कहा जाता है कि जावा में रामकथा ने असंबद्ध एवं बिखरी हुई दशरथ-जातक कथाओं के रूप में ई.पू. 400 से 200 ई. के बीच जन्म लिया था। किंतु तीसरी शताब्दी के बाद की कथा में बहुत कुछ वाल्मीकीय रामायण से कथा-साम्य दिखता है। जावा एवं बाली के कथाकार तो राम-कथा की भूमि जावा में ही मानते हैं। रामायण में वर्णित नामों के अनेक स्थान वहाँ आज भी विद्यमान हैं।

बाली में प्रचलित 51 छंदों की रामकथा संभवतः सबसे छोटी है और बहुत कुछ वाल्मीकीय संस्करण के समान ही है। तथापि कुछ अंतर तो हैं ही—जैसे शूर्पणखा रावण की बहन नहीं, दूत थी; राम की सेना में 729 हाथी तथा बहुतेरे रथ भी थे और राम ने अयोध्या पर एक लाख वर्ष तक शासन किया था।

दशरथ जातक की कथाएँ चीन होते हुए जब जापान पहुँचीं तो कथा ने और भी विचित्र स्थानीयता ग्रहण की। वहाँ रामायण के प्रमुख चरित्र ने तथागत साक्यमुनि नाम पाया, जिसकी समृद्धि से निकटवर्ती राज्य क्यूशी का राजा ईर्ष्या के कारण उस पर आक्रमण कर देता है। साक्यमुनि अपनी प्रजा का रक्तपात बचाने के उद्देश्य से तथा धर्म-पालन के लिए पर्वतों पर तपस्या के लिए निकल जाता है। उसकी पत्नी भी उसका अनुसरण करती है। वहीं एक बार एक ब्राह्मण तपस्वी आकर उनके साथ रहने लगता है और साक्यमुनि की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी का अपहरण करके भाग जाता है। तब साक्यमुनि को एक अधमरे विशाल पक्षी द्वारा ज्ञात होता है कि एक तपस्वी उसकी पत्नी को ले गया और विरोध करने पर उसने उस पक्षी के पंख काट दिए। साक्यमुनि अपनी पत्नी को ढूँढ़ने दक्षिण की ओर गया तो राह में उसे सहस्त्रों वानर मिले, जिनका राज्य पड़ोसी राजा ने छीन लिया था। साक्यमुनि ने वानरों को उनका राज्य दिलाया और उनकी सहायता से सागर पार जाकर दानव राजा को मारा। इस प्रकार दोनों देशों पर तथागत साक्यमुनि का राज्य हो गया। इसमें इंद्र ने एक छोटे वानर का रूप धरकर साक्यमुनि की सहायता की थी और वे ही दानव राजा द्वारा मारे हुए वानरों को पुनर्जीवित करने के लिए पर्वत से औषध लेकर आए थे।

विदेश में ही नहीं, स्वयं भारत में, देश के लगभग सभी भाषा-भाषी प्रांतों में, रामकथा अपने विशिष्ट रूप में रची गई। इनका मूलाधार तो वाल्मीकि की कथा ही रहा, किंतु स्थानीय सोच हर जगह स्पष्ट झलकती है। स्पष्ट दिखाई देता है कि संभवतः कथावाचक को उदाहरण देने पड़े और कुछ ऐसी घटनाओं का सहारा लेना पड़ा, जिससे कोई विशेष स्थिति श्रोताओं के लिए स्पष्ट हो सके। उदाहरण तो अनेक हैं, किंतु कुछ इतने स्पष्ट हैं कि कोई भी उनके पीछे की मानसिकता को समझ सकता है।

किंतु यदि रामायण में ही उल्लिखित साक्ष्य को आधार मानें तो यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि के पास महर्षि नारद द्वारा सुनाई और बालकांड के प्रथम सर्ग में दी हुई राम से संबंधित कुछ प्रमुख घटनाएँ ही थीं, जिनके आधार पर संपूर्ण महाकाव्य के ताने-बाने बुनकर उन्होंने रामायण की रचना की। रामायण में इसका उल्लेख स्वयं वाल्मीकि ने ही किया है कि जब राम की जीवन-संबंधी घटनाओं को लेकर उनके मन में रामकथा को काव्य रूप में लिखने की इच्छा हुई और ब्रह्मा के अनुमोदन के रूप में उन्हें निश्चय प्राप्त हुआ तो वे 'विधिवत् आचमन करके स्थिर भाव में योगधर्म द्वारा राम आदि के चरित्रों का अनुसंधान करने लगे। सभी चरित्रों से संबंध रखनेवाली चेष्टाओं—हँसना, चलना, बोलना और सोचना, राज्यपालन आदि का उन्होंने योगधर्म द्वारा भलीभाँति साक्षात्कार किया' (बालकांड; 3; 2-4) और उसके अनुसार ही रामायण की रचना की।

स्वाभाविक भी यही है। किसी भी रचना के पीछे कोई मूल प्रसंग होता है, जो कथावस्तु के रूप में रचनाकार को सृजन के लिए पेरित करता है··· और उस कथावस्तु को तर्क-सम्मत विस्तार देने के लिए रचनाकार को तर्क एवं कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। अन्यथा यह कैसे संभव होता कि जो कुछ हुआ और जो पात्रों के मन पर बीता, वह वाल्मीकि जान पाए। वाल्मीकि न तो अयोध्या में जनमे और न हर समय उनके साथ रहे। राम ही क्या, रामायण के अनेकानेक पात्रों ने जो कुछ सोचा, वह वाल्मीकि कैसे समझ पाते!

रामायण का यह प्रसंग तो सर्वविदित है कि रावण छल द्वारा सीता का हरण करके ले गया था। किंतु उस 'छल' में वाल्मीकि द्वारा वर्णित 'सुनहरे' हिरण ने कथा-वाचन की शैली में विशुद्ध सोने से बने हिरण का रूप ले लिया। कालांतर में कहीं-कहीं लोग राम पर स्वर्ण-लोभी होने का आक्षेप भी लगाने लगे—यह भुलाकर भी कि राम स्वयं स्वर्णमय अयोध्या को त्याग आए थे और स्वर्ण से भरपूर लंका को जीतकर भी वहाँ से खाली हाथ ही लौटे थे।

सीता हरण के प्रसंग को संभवतः श्रोताओं के लिए और अधिक प्रासंगिक बनाने के उद्देश्य से कथाकारों ने एक विचित्र रूप दिया। कथा की शैली से यह धारणा बनी थी कि सीता पतिव्रता थीं और उनमें ऐसी विचित्र शक्ति थी कि अन्य कोई उन्हें हाथ भी लगाता तो भस्म हो जाता। संभवतः कुछ जिज्ञासुओं ने पूछा होगा कि यदि यही बात थी तो रावण सीता को उठाकर कैसे ले गया? कथा-वाचकों को इसका उत्तर भी देना था। तो तमिल में रची कंब रामायण में लिखा गया कि रावण ने सीता को छुए बिना ही उस भूमि-सहित उनको उठाकर अपने रथ पर बैठा दिया, जिस पर वह खड़ी थीं। इसी प्रकार मलयामल की अध्यात्म रामायण में वर्णन है कि रावण ने उस समूची कुटिया को ही उठाकर अपने रथ पर रख लिया, जिसमें वह रह रही थीं।

विदेशों में ही नहीं, समस्त भारत में देश के लगभग हर क्षेत्र में अनेकानेक रामकथा के संस्करण रचे गए। मूल कथा के मौखिक प्रसारण के कारण उनमें अनेकानेक रूपांतर मिलते हैं। एक कारण तो यही है कि भाँति-भाँति के इन विवरणों में समय का बड़ा अंतराल है—वर्षों का ही नहीं, शताब्दियों का भी, सुनानेवाले की स्मरणशक्ति का भी और सुननेवाले की जिज्ञासा का भी।

अधिकांश क्षेत्रीय संस्करणों में स्थानीय महत्त्व भी परिलक्षित होता है; जैसे बंगाल में प्रचलित कृत्तवास रामायण में देवी दुर्गा का महात्म है। वहाँ वर्णित है कि राम देवी दुर्गा के आशीर्वाद के बिना अशक्त थे। रावण पर विजय पाने के लिए उन्हें युद्ध छोड़कर देवी की आराधना करनी ही पड़ी थी, इसलिए युद्ध का भार उन्होंने लक्ष्मण और जांबवान पर छोड़ रखा था।

इसी प्रकार उड़ीसा की रामायण में वर्णन है कि राम ने अपने वनवास काल में, पत्नी एवं अनुज सहित पुरी पहुँचकर जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलराम के दर्शन किए थे। वे अपनी विजय के लिए उड़ीसा के मंदिर में गए थे, जहाँ उन्हें वह रथ प्राप्त हुआ था, जिस पर सवार होकर उन्होंने रावण का वध किया।

बिहार की एक रामायण में वर्णन है कि लक्ष्मण की पत्नी राम के वनवास-काल में चौदह वर्ष तक सोती रही थीं। यह प्रसंग भी संभवतः किसी जिज्ञासु के प्रश्न के उत्तर-स्वरूप ही उत्पन्न हुआ होगा। कहा जाता है कि लक्ष्मण ने वनवास-काल में लगातार जागकर राम की सेवा की। किसी ने पूछा होगा कि कोई चौदह वर्ष तक बिना सोए कैसे रह सकता है और यह भी कि लक्ष्मण के बिना उनकी पत्नी का क्या हाल हुआ होगा? वे कैसे जीवित रही होंगी? कथा-वाचकों को इसका समाधान भी ढूँढ़ना पड़ा। उर्मिला को वरदान मिला

कि वे लक्ष्मण के बदले चौदह वर्ष तक सोती रहेंगी। इस प्रकार स्थानीय कथा-वाचकों ने एक समाधान ढूँढ़ निकाला कि लक्ष्मण वन में राम की रक्षा करते रहे और इधर उर्मिला उनके वियोग का दुःख सह सकीं।

भगवंत पुराण की भाँति ही जैन रामायण में वर्णित है कि सीता मंदोदरी की बेटी थीं और स्वयं शिव ने हनुमान के रूप में अवतार लेकर राम की सहायता की थी।

इन रूपांतरों के चलते भी महर्षि वाल्मीकि की मूल रामकथा शताब्दियाँ-सहस्राब्दियाँ लाँघती हुई मानस-पटल पर अंकित होती रही। सुनिश्चित रूप से कहा तो नहीं जा सकता किंतु बहुत अधिक संभावना यही है कि रामायण की रचना महाभारत से बहुत पहले हुई थी। इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य तो यही है कि रामायण में कहीं महाभारत का उल्लेख नहीं मिलता, जबकि महाभारत में रामकथा का विस्तृत उल्लेख है—ऐसे कि एक बार जब पांडव अपने बारह-वर्षीय वनवास काल में विचलित होने लगे थे, तब एक महर्षि ने उन्हें सांत्वना देते हुए राम की कथा विस्तार से सुनाई थी—यह समझाते हुए कि दुःख तो जीवन का अभिन्न अंग है, इसमें निराश नहीं होना चाहिए। राम भी निराशा त्यागकर परिश्रम करते रहे। इसी कारण सफलता पा सके।

रामायण की विश्वव्यापी स्वीकृति के पीछे संभवतः रचना की काव्य-शैली का बहुत बड़ा योगदान रहा होगा। शैली···अर्थात् मुहावरों और अलंकारों से भरी भाषा। कविता में ही नहीं, हमारे जीवन में दिन-प्रति-दिन मुहावरों का बहुत प्रचलन रहता है। हम आज भी, जाने-अनजाने अतिरंजना भरे मुहावरे बोलते-सुनते रहते हैं, जैसे महँगाई या गरीबी हमें कुएँ में ढकेल रही है। ऐसे ही अनेकानेक मुहावरों का उपयोग रामायण में हुआ, जिनकी अतिरंजना ने श्रोताओं की कल्पना-शक्ति का भरपूर मनोरंजन किया होगा, इतना कि वे ऐसे अनेकानेक प्रसंगों के साथ चमत्कृत हो जाते होंगे और उसे बार-बार सुनने का अथवा उसे अन्य किसी को सुनाने का आग्रह करते होंगे। ऐसे प्रसंग उन्हें निरंतर विस्मय और कौतूहल से भरते रहते होंगे और उनको रामायण से जोड़े रखते होंगे, जैसे हनुमान उड़ सकते थे और उनमें इतनी शक्ति थी कि वे पूरा पहाड़ उखाड़कर हाथ में उठाए हुए कहाँ से कहाँ पहुँचा सकते थे। हनुमान उड़कर एक बड़ा सागर पार कर गए थे और लंका को अकेले ही जलाकर लौटे थे। राम और लक्ष्मण के बाणों में ऐसी अपूर्व शक्ति थी कि उनमें से कहीं भी आग लग जाती थी, कहीं पानी बरस जाता था या कभी भयंकर आँधी आ जाती थी।

इसी प्रकार की एक विचित्र अतिशयोक्ति रावण को दस सिर और बीस हाथ प्रदान करती है। वास्तव में क्या यह कहीं भी संभव है कि किसी के इतने सिर हों और इतने हाथ हों। स्वयं रामायण का ही साक्ष्य लें तो वर्णित है कि सीता का हरण करते समय उसने सीता को अपने दोनों हाथों में उठा लिया। सीता की खोज में जाकर हनुमान ने भी रावण को पहले-पहल जब सोते हुए देखा था तो वर्णित है कि उसकी दोनों भुजाएँ उसके दोनों ओर पड़ी थीं। अब यह तो संभव नहीं है कि वह कभी-कभी अपनी शेष भुजाएँ अन्य कहीं रख आता हो।

रावण के युद्ध में माया का वर्णन कथानक को बड़ा रोचक और रोमांचक बनाता है। रावण अनेक बार मरके भी युद्ध के लिए प्रकट हो जाता है। मेघनाद कभी दाएँ तो कभी बाएँ प्रकट होकर ऐसे वार करता है कि लक्ष्मण चकराकर उसके बाणों से आहत हो जाते हैं। रावण-मेघनाद अपने रथ-सहित आकाश में उड़कर युद्ध करते हैं।

ऐसे अनेकानेक प्रकरण पूर्वकाल में श्रोताओं को अलंकारों और मुहावरों से बाँधे रहते थे। फिर वही श्रोता बारंबार न केवल उसका मनन-चिंतन

करते थे, उन्हें अन्य सभी को सुनाते थे।

आज शताब्दियों बाद समय बहुत बदल चुका है। तकनीक और आधुनिक संप्रेषण माध्यमों के बाद कथाएँ मौखिक संप्रेषण की मोहताज नहीं हैं। आज रामायण अनेक बार अनेक निर्माताओं द्वारा चलचित्र के रूप में रची जा चुकी है और दर्शकों के मन में ही नहीं, उनकी बुद्धि पर भी छा चुकी है। रामायण के चामत्कारिक मुहावरे अब उनकी बुद्धि को नहीं जगाते, मात्र उन्हें विस्मित करके तालियाँ बजाने के लिए उकसाते हैं। तकनीक के पीछे रामकथा का मूल संदेश—राम की पितृ-भक्ति, धर्म के प्रति समर्पण, लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम, सीता का सतीत्व, राम का अन्याय के विरुद्ध संग्राम, हनुमान की स्वामिभक्ति आदि सब कुछ हृदयंगम करने का विषय नहीं रहे—मात्र मनोरंजन का विषय बनकर रह गए हैं।

विदेशी सोच में रामकथा मात्र एक मिथक है, कोरी कल्पना है। आज का भारतीय 'राम-भक्त' भी राम को उनके चमत्कारों के नाते याद करता है, शायद वैसे ही जैसे वह किसी 'कॉमिक' के नायक को जनता-मानता है। आज आवश्यकता है कि रामकथा की चामत्कारिक घटनाओं को, यथार्थ के संदर्भ में पाठकों एवं श्रोताओं तक पहुँचाया जाए, ऐसे कि वे सभी चामत्कारिक एवं अविश्सनीय प्रसंग यथार्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकें। यह कार्य किसी भी प्रकार से न तो कठिन है और न किसी की समझ से परे। हम सहज ही समझ सकते हैं कि हनुमान केवल मुहावरे में ही उड़ सकते थे, किसी सिद्धि से नहीं। स्वयं वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि 'हनुमान तेज चलने में गरुड़ के समान थे।' (बा. का, 17) उनके उड़ने की बात तो मात्र आलंकारिक है, जैसे पी.टी. उषा ने 'उड़न परी' या मिल्खा सिंह ने 'फ्लाइंग सिख' नाम पाया और अमेरिका के धावक कार्ल लुई को 'फ्लाइंग मैन' का नाम मिला। हनुमान पहाड़ भी आलंकारिक भाषा में ही लेकर आए थे, जैसे हम आज भी किसी को बड़ा सामान लाते देखकर कह बैठते हैं कि 'यह क्या पहाड़ का पहाड़ उठा लाए?' किसी की तो जिंदगी भी पहाड़ ही बन जाती है।

रावण के दस सिर और बीस हाथ उसकी अप्रतिम बुद्धिमत्ता तथा पौरुष के प्रतीक थे, और राक्षसों की 'माया' उनके छल की प्रतीक थी। आज हम फिल्मों में अनेकानेक छल देखते रहते हैं। नायक भाँति-भाँति के अविश्वसनीय कारनामे करता रहता है, किसी 'डबल' के सहारे। नायक कहीं दस मंजिल भवन से गिरकर भी जीवित बच जाता है और कहीं एक लाठी के बल पर अकेले ही सौ-पचास लोगों को मार गिराता है।

आज दूर देशों में रामकथा को प्रचारित-प्रसारित करने के साथ ही यह भी परम आवश्यक है कि अपने ही देशवासियों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए कि वे समझ सकें कि राम कोई भगवान् अथवा देवता नहीं, हमारे जैसे ही मानव थे। वे जन-नायक बने और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए, क्योंकि उन्होंने जीवन में आने वाली विपत्तियों से विचलित हुए बिना साहस और सत्कर्म का मार्ग अपनाया। संकट के आगे कभी घुटने टेके बिना वे धैर्य के साथ विपदाओं का सामना करते रहे।

इस महायज्ञ का शुभारंभ हमारे देश में ही नहीं, समस्त विश्व में भाषा के माध्यम से ही हो सकता है और हमारी भाषा सशक्त होगी तो रामकथा का मर्म भी अपने वास्तविक स्वरूप में जनसाधारण तक पहुँचकर इस अनर्गल भ्रम को दूर कर पाएगा कि रामकथा कोई 'मिथक' नहीं, वह वास्तव में एक ऐसे महामानव के साहस और अभूतपूर्व शौर्य की गाथा है, जिसने उन्हें परमात्मा का अवतार बना दिया।

□

drsialok@gmail.com

मैथिलीशरण गुप्त के राम और भारत-राष्ट्र की अभिकल्पना

—प्रियंका मिश्र

भारत ही नहीं, वरन् विश्व-समाज में यह प्रचलित है कि 'भारत ही राम है और राम ही भारत हैं'। राम के बिना भारत के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुराकाल से ही लीलापुरुष राम के चरित को अवधार्य करके साहित्य सृजन का पुनीत कार्य किया जाता रहा है, लेकिन इनमें जिस एक रचनाकार ने अपने विशिष्ट बोध से विशेष स्थान प्राप्त किया है, वे आदरणीय 'दद्दा' मैथिलीशरण गुप्त हैं।

"राम तुम्हें यह देश न भूले
धाम धरा धन जाए भले ही
यह अपना उद्देश्य न भूले"

मैथिलीशरण गुप्त ने इन पंक्तियों में देश के साथ राम को जोड़ने का जो काव्यात्मक प्रयास किया, वह इसलिए उल्लेखनीय है कि यहाँ देश के लिए केवल एक कर्तव्य सुनिश्चित किया जा रहा है और वह है, प्रभु राम का निरंतर अवगाहन। यह सात्त्विक भाव मैथिलीशरण गुप्त की सभी रचनाओं में पाया जाता है।

अपने देश को मात्र भौगोलिक इकाई से बढ़कर एक जैविक इकाई के तौर पर ग्रहण करने और उस पुण्य-भू के सभी निवासियों के प्रति समरसता और शिवत्व की ऐसी निश्छल अभिव्यक्ति दुर्लभ है। गुप्तजी की यह कविता देखें—

"भारत माता का मंदिर यह, समता का संवाद जहाँ,
सबका शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ।

x x x x

नहीं चाहिए बुद्धि बैर की, भला प्रेम का उन्माद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ।"

आज आधुनिक बोध के नागरिकों को यह बात स्वीकार करने में किंचित कठिनाई हो सकती है कि भारत भूमि पर एक युग ऐसा भी अवतरित हुआ था, जब यहाँ कोई किसी का शत्रु नहीं था, जब यहाँ किसी का किसी से कोई बैर नहीं था, बैर चेतना का हिस्सा ही नहीं था, बैर की बुद्धि ही नहीं थी, समाज में विरोध की नफरत की शत्रुता की जरूरत ही नहीं थी, सब सुखी थे सर्वत्र मंगल था। जन्म से मरण तक सभी लोग अध्यात्म के रंग में रँगे हुए रहते थे। न तो भौतिकता की कोई जगह थी, न ही किसी व्यापार युग का कोई क्लेश था। इस कविता में गुप्तजी आगे कहते हैं—

---

* दूरशिक्षा निदेशालय महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र) में एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी)।

**"सब तीर्थों का एक तीर्थ यह, हृदय पवित्र बना लें हम
आओ यहाँ अजातशत्रु बन, सबको मित्र बना लें हम।**

x x x x

**कोटि-कोटि कंठों से मिलकर उठे एक जयनाद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ।"**

कवि का कहना है कि पुण्य-भू के उच्चतम आदर्शों की उपलब्धि के लिए सौ-सौ आदर्शों को समन्वित करके एक चरित्र का गठन होगा। यह चरित्र जाति, धर्म के भेद व्यवधान तो समाप्त करेगा ही, बैर-बुद्धि का भी नाश करेगा और सभी के हृदय को पवित्र बनाकर इस पुण्य-भू को सभी तीर्थों का तीर्थ बनाएगा। सेवा का पुजारी यह चरित्र परात्पर ब्रह्म का अवतार होगा। भारतमाता के इस मंदिर में सबका सम्मान होगा, सबका कल्याण होगा, सबसे आपस में समता का संवाद होगा। कवि मैथिलीशरण गुप्त की इस कविता को आप 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' से भी जोड़कर देख सकते हैं। यही विचार तो रामराज्य की अवधारणा का मुख्य सूत्र रहा है। जहाँ राम का सा आदर्श चरित्र निस्स्वार्थ भाव से अपने राज में सभी के सुख और मंगल की कामना करता है, ऐसे राजा के नेतृत्व से ही राष्ट्र शिवत्व की भावना से युक्त होता है।

अपनी मातृभूमि के प्रति प्रणीत भाव व्यक्त करते हुए हिंदी में ही नहीं, दूसरी भाषाओं में भी कवियों ने एक से एक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें गुप्तजी का वैशिष्ट्य उनकी बालसुलभ निश्छलता और काव्यात्मक प्रौढ़ता के कारण है। विभवशालिनी, भयनिवारिणी मातृभूमि से कवि प्रार्थना कर रहा है कि भव के बंधनों से मुक्त कर हमारी गौरवशाली अस्मिता से हमें आपूरित करो—

**"विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुःखहर्त्री है
भय निवारिणी, शांतिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सबका त्राण है
हे मातृभूमि! संतान हम, तू जननी, तू प्राण है।"**

इस धरती पर अवतार एक से एक हुए हैं, लेकिन हमारा देश भारत पुण्य-भू इसलिए है, क्योंकि यहाँ पर प्रभु ने स्वयं पूर्ण अवतार लिया। अपने लीला-क्षेत्र के लिए प्रभु ने हमारी भारतभूमि को चुना। हमारा यह भारतवर्ष हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र है। यहाँ जन्म लेने पर ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है, सारे भवबंधन सहज ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

**"मस्तक ऊँचा हुआ मही का, धन्य हिमालय का उत्कर्ष
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष।**

x x x x

**"जय भारत-भूमि-भवानी!
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी।"**

x x x x

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य बोध की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उनकी कविता में सत्य, धर्म, राष्ट्र और राम एकाकार होकर प्रकट होते हैं। राम, धर्म के आत्म तत्त्व हैं। धर्म, राष्ट्र का प्राण तत्त्व है। सत्य, धर्म का अपर तत्त्व है। राम, राष्ट्र के जीवन तत्त्व हैं। इन चारों तत्त्वों के परस्पर सहमेल से जो समाज बनता है वही राम राज्य है, जहाँ कोई भेद नहीं है, कोई दुःख नहीं है, जहाँ कोई संताप नहीं है, कोई बैर नहीं है। भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर ब्रह्म की पूर्णकला का ऐसा सगुण साकार निदर्शन काव्य में दुर्लभ है। रामराज्य की परिकल्पना में केवल स्वतंत्रता और स्वायत्तता की भावना मात्र नहीं है, उसमें सकल विश्व को सुख, समृद्धि और समरसता के दिशादर्शन का मनोहारी चिंतन भी है। धर्म और सत्य की पूर्णता केवल रामराज्य में संभव है, वह रामराज्य, जिसके अधिष्ठान स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम हैं।

जननायक राम के त्याग को, उनकी तपस्या को और सबसे बढ़कर उनके पुरुषार्थ को चित्रित करने के बहुविध प्रयास हिंदी में और भारत की दूसरी सभी भाषाओं में सभी महत्त्वपूर्ण कवियों

की ओर से किया गया है। अपने पितृवचन के अनुपालन में प्रभु राम ने जिस प्रकार संन्यास का वरण किया और तमाम विघ्न-बाधा का सामना करते हुए चौदह वर्ष तक वनवास में व्यतीत किया, वह मर्यादा का, शौर्य का, धैर्य का, साख्य भाव का एक नया मानक स्थापित करना था। खास तौर पर सीता-हरण के बाद जंगल के आदिमवासियों को अपने साथ जोड़कर जिस प्रकार अपनी प्रिया परिणीता को दुष्ट रावण के कब्जे से मुक्त कराया, वह किसी साधारण पुरुष की उपलब्धि नहीं हो सकती। निश्चय ही वह एक महामानव की उपलब्धि थी, जिसके कारण इस देश में और इस देश के आम जनमानस ने उन्हें भगवान् के तौर पर स्वीकार किया है।

वीर प्रसूता भारत की इस पवित्र भूमि पर धर्म के, धैर्य के, शौर्य के, श्रेष्ठता के प्रतिमान एक से एक महापुरुष जन्म लेते आए हैं, लेकिन इन सब में राम का चरित्र अपनी जिस विशिष्टता के कारण अन्य सभी से अलग और ऊपर है, वह विरोधी गुणों के दुर्लभ समवाय के कारण है। क्रोध के साथ दया, शौर्य के साथ क्षमा, दृढ़ता के साथ पर-दुःख कातरता, वीरता के साथ लोककल्याण की भावना का ऐसा समुच्चय अन्यत्र कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। ये गुण मैथिलीशरण गुप्त की कविता में इस देश की मिट्टी के कण-कण में व्याप्त दिखलाई पड़ते हैं। भगवान् राम की भारतीय राष्ट्र के साथ जो तदाकारिता है, उसकी जड़ें इसीलिए इतनी गहराई तक फैली हुई हैं। पुत्र के रूप में, पति के रूप में, भाई के रूप में, योद्धा के रूप में, यहाँ तक कि शत्रु के रूप में राम मनुष्यता का ऐसा मानक स्थापित करते हैं कि जो जन-जन के लिए सदा-सर्वदा के लिए अनुकरणीय हो गया है—

"उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति गूँजती।

यह बात कितने लोगों को मालूम है कि भारतभूमि पर विवाह के जो आयोजन होते हैं, उन सभी में आज भी हर दूलहा राम होता है और हर दुलहन सीता होती है। विवाह के उत्सव में जितने कर्मकांड आयोजित किए जाते हैं, वे सब राम-सीता को प्रत्यक्ष मानकर किए जाते हैं और जितना गीतगान प्रस्तुत किया जाता है, उन सभी में राम-सीता का ही मंगल गाया जाता है और केवल विवाह के अवसर पर नहीं, जीवन का कोई भी ऐसा मौका नहीं है, चाहे वह सुख का क्षण हो या दुःख का, जब वहाँ राम की उपस्थिति न हो। वे सच्चे अर्थों में सर्वगुणसंपन्न आर्यपुत्र हैं। मैथिलीशरण गुप्त 'हमारे पूर्वज' शीर्षक अपनी कविता में कहते हैं—

"वे आर्य ही थे, जो कभी अपने लिए जीते न थे
वे स्वार्थरत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त का अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रबंध काव्य है। मंगलाचरण से लेकर इसके आठ सर्गों में राम के अभिषेक से लेकर चित्रकूट में राम-भरत मिलन तक की कथा वर्णित है। आखिर के दो सर्ग में उर्मिला की वियोगावस्था का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। 'साकेत' में कवि ने अपने मंतव्य का सारतत्त्व इस प्रकार प्रकट कर दिया है—

"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन-सन्मुख धन को तुच्छ जताने आया

x x x x x

भव में नव वैभव प्राप्त करने आया
नर को ईश्वरता प्राप्त करने आया।"

यह गुप्तजी की विशिष्टता ही है कि उन्होंने राम को अपने जीवन का अनन्य पक्ष बना लिया। राम के बिना तो उनकी रचना धार्मिता का भी कोई अंश आरंभ ही नहीं होता था। अपने सभी काव्य ग्रंथों का मंगलाचरण उन्होंने राम के नाम से किया है। राम के अतिरिक्त उन पर और कोई दूसरा रंग चढ़ ही नहीं सकता। 'द्वापर' में तो उन्होंने लिखा भी है—

'धनुर्वान या वेणु लो श्यामरूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा राम, दूसरा रंग।'

वास्तव में मैथिलीशरण गुप्त के राम का स्वरूप केवल देवत्व की भावना से ही युक्त नहीं था, वरन् वह मानवीय राम के द्वारा भी राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति लोगों में जागरण का भाव लाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी लिखा है कि—'गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदीभाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं। भारतेंदु के समय से स्वदेश-प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी, उसका विकास 'भारत भारती' में दिखाई पड़ता है।'

इस तरह देखा जाए तो मैथिलीशरण गुप्त की कविता में राम और राष्ट्र जिस रूप में एकाकार होकर होकर अभिव्यक्ति पाते हैं, वह खड़ी बोली की कविता से बढ़कर हिंदी भाषा के लिए एक चमत्कार की तरह है। राष्ट्र के साथ, पुण्य-भू के साथ राम के चरित को जोड़ने का यह काव्यात्मक प्रयास न केवल उल्लेखनीय है, बल्कि हमारी अनुवर्ती पीढ़ियों के लिए एक मिसाल भी है। राम के चरित्र को केंद्र में रखकर प्रबंधात्मक काव्य रचनाएँ पहले भी की गई हैं और गुप्तजी के बाद भी ऐसे प्रयास आज तक जारी हैं—अब प्रबंध काव्य की जगह प्रबंध गीत लिखे जा रहे हैं, जैसे निराला की 'राम की शक्ति पूजा' एक प्रबंध गीत है—लेकिन गुप्तजी ने पावन भारतभूमि के संग भगवान् राम के साहचर्य को जिस आत्मीयता से निरूपित किया है, उसका महत्त्व कोई चाहे तो आज अपनी आँखों से साक्षात् देख सकता है। 'भारत का झंडा' शीर्षक कविता में मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं—

"भारत का झंडा फहरै
छोर मुक्ति-पट का क्षोणी पर, छाया करके छहरै।"

x x x x

सत्तासीन होने के साथ श्रीयुत नरेंद्र मोदी ने अपने साहसिक फैसलों से और अपने दृढ़-संकल्प से बारंबार प्रमाणित करके दिखा दिया है कि रामराज्य केवल सपना नहीं, बल्कि नित्यप्रति आकार ले रहा सगुण साकार यथार्थ है। उन्हीं के प्रताप का फल है कि—

"नजर बिछाए पथ में बैठे
केवट, सबरी द्वार तुम्हारे
वर्षों बाद लौटकर आए,
अवधपुरी में राम हमारे।"

समग्र रूप से कहा जाए तो मैथिलीशरण गुप्त के राम का रामत्व ही भारतीय जीवन-दर्शन का मूल स्वर है। राम की गाथा केवल राम के जीवन की गाथा नहीं है, वरन् यह भारत की महागाथा है। जैसे राम ही भारत के प्रतीक पुरुष हैं, उसी तरह मैथिलीशरण गुप्त के राम का स्वरूप भारत के महानायक आदर्श पुरुष के रूप में चरितार्थ होता है। उनके चरित्र की भव्यता और शुचिता ने ही भारत-राष्ट्र की विराट् संकल्पना को यथार्थ रूप प्रदत्त किया है। भारत को पुनः विश्व-गुरुत्व तक पहुँचाने के लिए राम की जीवनी-शक्ति ही सर्वोत्तम निधि है। इस दिशा में मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' और 'पंचवटी' जैसी रचनाओं के अतिरिक्त उनकी 'भारत-भारती' और 'यशोधरा' जैसी कृतियाँ भी इस निधि को बहुमूल्य बनाती हैं।

□

priyankamgahv@gmail.com

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—स्वामी दयानंद

विश्व हिंदी साहित्य तथा संस्कृति के आलोक में, विश्वात्मा श्रीराम और विश्वमंगल की अक्षय निधि गोस्वामी तुलसीदास

—योगेंद्र मिश्र

"मुक्ति जन्ममय जानि ज्ञान खानि अघ हानि कर,
जहँ बस शम्भु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥"

विश्व का सबसे प्राचीनतम जीवित जाग्रत् शहर काशी, बनारस, वाराणसी, सनातन काल से आध्यात्मिक ऊर्जा से युक्त भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी, सनातन धर्म का केंद्र काशी योग, अवधूत, औघड़पन, फक्कड़पन का तंत्र, मंत्र, निगम, आगम, वेद वेदांग सबकी धुरी है। काशी निर्बंध है।

चिर चैतन्य काशी की चेतना में अलग स्पंदन है, आभा है, काशी शब्दों की नहीं संवेदनाओं की सृष्टि है। काशी जब करवट लेती है, विश्व का भाग्योदय होता है। काशी में मृत्यु भी मङ्गल है।काशी में सत्य ही संस्कार है, काशी जगन्यिंता, पंचभूतों के नियंत्रक, सृष्टि के संहारक डमरूवाले का रमणीक धाम है। त्रेतायुग में त्रिपथगामिनी माँ भागीरथी ने काशी की चौहद्दी में आते ही अपनी धारा उत्तरवाहिनी बदल ली।

काशी में सर्वत्र जड़ चेतन विश्वेश्वरमय है।काशी अनंत है। काशी पूर्ण है। प्रेरणा की, जिज्ञासा की, समाधान की भूमि है, जिसका पृथ्वी से कोई संबंध नहीं है। काशी शिव के त्रिशूल के ऊपर अवस्थित है। तभी तो स्वप्न में समूची धरती दान करनेवाले इक्ष्वाकु वंशज चक्रवर्ती सम्राट् राजा हरिश्चंद्र राजदरबार के ज्योतिषियों की सलाह पर काशी में राजा डोम की चौकीदारी की।

काशी सबके सोपानों का गंतव्य है। जगतगुरु शंकराचार्य को चांडाल से अद्वैत की सिद्धि मिली। बुद्ध को बुद्धत्व, रामानंदाचार्य को रामत्व, रैदास को गंगा का गंगत्व, कबीर को निर्गुण राम, वल्लभाचार्य को श्रेष्ठत्व, नानकदेव को चंद्रदेव, चैतन्य महाप्रभु को रामतापनीयोपनिषद्, समर्थ रामदास को शिवाजी, शिवाजी को हिंदूपद पातशाही, गोस्वामी तुलसीदासजी को राम रसायन, विवेकानंद को ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, महामना मदनमोहन मालवीय को हिंदू विश्वविद्यालय, दयानंद को कीर्ति, रानी लक्ष्मीबाई को वीरत्व, महारानी अहिल्याबाई को शिवत्व, महाराजा रणजीतसिंह को शौर्य, बंगाल की रानी भवानी को सर्वस्व, चंद्रशेखर आजाद को आजादी, भारतेंदु हरिश्चंद्र को काशी नरेश द्वारा 'भारतेंदु' की उपाधि, जयशंकर प्रसाद को कामायनी, प्रेमचंद

* समन्वयक, एम.आई.टी. विश्व शांति विश्वविद्यालय, पुणे।

को गोदान, पंडित रविशंकर को चौदहवीं विद्या, बिस्मिल्लाह खान को भारत रत्न जैसे अप्रतिम अवदान मिले, जिनसे व्यक्ति न होकर एक संस्था, एक विचार, एक आंदोलन बन गए।

काशी विश्वनाथ धाम एक नए कलेवर में राष्ट्रीयता का प्रतीक बनने जा रहा है। बाबा दरबार में अहिल्याबाई, भारत माता, कार्तिकेय आदि शंकराचार्य के विग्रह की प्रतिष्ठा भारत को परम वैभव की ओर ले जाएँगे।

8 मार्च, 2019 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र दामोदर दास मोदी ने जिस धाम परियोजना का शिलान्यास किया। 13 दिसंबर, 2021 को लोकार्पण करके इतिहास रचा।

मोहनदास करमचंद गांधी के 100 सालों के स्वप्न को साकार किया।

352 वर्ष बाद विश्वनाथ दरबार का पुनरुद्धार, 5,27,734 वर्गफीट में धाम का विस्तार, 400 भवनों का अधिग्रहण कर समर्पण के साथ सबकुछ अचंभित करनेवाला, 175 सी.सी.टी.वी. निगरानी कैमरे, लगभग 6 करोड़ रुपए के सुरक्षा उपकरण से युक्त विश्वनाथ मंदिर संसार के लिए एक मॉडल का काम करेगा।

मुख्य परिसर के चारों दिशाओं में बने चार द्वार सर्वकल्याण के भाव को अभिव्यक्त करते हैं। गंगधार छोर पर तनकर खडा गेटवे ऑफ कॉरिडोर इस अवसर का प्रदाता है। मंदिर चौक के विशाल द्वार पर बना स्थान बाबा के स्वर्ण शिखर और गंगधार का एक साथ दर्शन कराता है।

शिव के धाम में रुद्राक्ष, नीम, अशोक, करंज, अपराजिता के पेड़-पौधों से निखरी हरियाली और सुवास आनंद कानन में प्रफुल्लता का भान कराएगी। बनारस गैलरी, सिटी म्यूजियम, इंपोरियम बनारस की कला, संस्कृति, रीति-रिवाज का दर्शन कराएगी। वैदिक केंद्र, मुमुक्षु भवन बाबा दरबार के सेवा के संस्कारों से सरोकार जगाते दिखेंगे।

त्रैलोक्य से न्यारी काशी में 33 कोटि देवताओं के वास होने की प्रतीति, गर्भगृह में स्थापित ज्योतिर्लिंग प्रकृति व पुरुष के ऐक्य का सूचक, चारों दीवारों पर सप्त अश्व के चक्रीय रथ पर आरूढ़ सूर्यदेव, शंख चक्रधारी श्रीहरि, गणपति देव और शक्ति के विग्रह पंचदेव पूजन की समन्वय परंपरा की साक्षी बन जाती हैं। शिवत्व लोक-कल्याणक कृपा बरसती है।

24 घंटे अहर्निश मुक्ति का भंडारा जहाँ चलता है, ऐसे बाबा का दरबार दृष्टि-पथ गंगधार से एकाकार और मोक्ष तीर्थ मणिकर्णिका से जुड़ जाता है। जहाँ बाबा से 'राम' नाम तारक मंत्र पाकर जीव भवसागर के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

विश्वनाथ धाम दुनिया का अकेला देवस्थान होगा, जहाँ राग-विराग का मिलन दृष्टिगोचर होगा। अनूठी दिव्य युति के मध्य दिव्य अनुभूति कराएगी। देव गैलरी में 145 शिवलिंग व 97 देव विग्रह एक जगह पर देखना आश्चर्य होगा।

"काश्याम मरणान्न मुक्तिः।" काशी प्रकाशिका नगरी भी है। इसीलिए भा+रत ज्ञान के देश है। सूर्योपासना का देश है, अग्नि व शक्ति अर्जन का देश है। वरुणा व असि के मध्य धनुषाकार गंगा के प्रवाह में अपना आलोक बिखेरती काशी स्वयं मार्ग निर्देशिका है, विश्वकर्मा द्वारा गढ़ी गई काशी सर्व विद्या की, सर्व सृष्टि की, सत्य शिक्षा की, ब्रह्म विद्या की, राज ऋषियों की, वाग्विद्या की, विश्वविद्या की, कर्मवीरों की, तपःपूतों की, काशी अद्भुत है। ऐसी काशी को वंदन, जिसे नया आकार दिया नर काया में दिखनेवाले महामानव श्री नरेंद्र मोदी ने।भारत के भवितव्य को जिस ललाट पर उकेरा है।

सनातन तीर्थ ललाट : शूकरक्षेत्र सोरों

शूकर क्षेत्र सोरों एक सनातन तीर्थ है। यह पुण्य-तीर्थ भारत के उत्तर प्रदेश के कासगंज जिला

मुख्यालय से 12 किमी. दूर मथुरा-बरेली राजमार्ग पर, सातवें-वैवस्वत-मन्वंतर में अवतरित भागीरथी गंगा के तट पर अवस्थित है।

यह पावन तीर्थ पृथ्वी उत्पत्ति स्थल, वैश्विक संकल्प—'श्री श्वेत वराह कल्पे, आदि वराह श्री शूकर क्षेत्रे' की उद्घाटन भूमि, श्री वेदव्यास प्रणीत विविध पुराणों में अनेक विधि रूपेण वर्णित भगवान् वराह के आदि वराह, महावराह, यज्ञवराह, श्वेत वराह, नर वराह, लिंग वराह आदि अवतारों का प्रादुर्भाव एवं तिरोभाव भूमि, छठवें चाक्षुष मन्वंतर में आदि गंगा की प्राकट्य भूमि, मासानाम मार्गशीर्षोहम्' (गीता-10.35) 'एकाऽम मार्गशीर्ष्याम च द्वादश्याम सितवैष्णवम् (व.पु. 179)' से एकादशी उत्पत्ति भूमि, इसी दिन उपोसित भगवान् वराह का द्वादशी के दिन लीलाधाम गमन भूमि, सांख्य शास्त्र प्रणेता महर्षि कपिलमुनि तथा सहस्त्रों देव-ऋषि गणों की तपोभूमि, भगवान श्रीकृष्ण, बुद्ध, पांडवों, सिखों के छठवें गुरु हिंदू पद सच्चा पातशाह हरगोविंद साहब, पुष्टिमार्ग प्रवर्तक विष्णुस्वामी प्रज्ञाचक्षु स्वामी बिरजानंद, महाकवि पद्माकर, चैतन्य महाप्रभु की यात्रा एवं विहारभूमि, आचार्य वल्लभ की २३वीं भागवत भूमि, श्रीरामचरितमानस के कालजयी कवि, सनातन धर्म के चल विश्वविद्यालय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी, उनकी पत्नी रत्नावली, उनके चचेरे भाई अष्टछाप कवि नंददास की जन्म-क्रीड़ा एवं विद्याभूमि, आर्यसमाज प्रवर्तक स्वामी दयानंद व बदरिया निवासी पंडित अंगदराम शास्त्री की शास्त्रार्थ भूमि, पांडव पौत्र राजा जनमेजय की साधना भूमि, भारत के साढ़े तीन वटों में से एक 'गृद्धवट' भारत के साढ़े तीन श्मशानों में से एक महाश्मशान {जहाँ नित्य लगभग 1000 श्मशानों से अस्थियाँ विसर्जन हेतु आती हैं}, भारत के सप्तक्षेत्रों में से एक परमपावन शूकर क्षेत्र, मुगल सम्राट् अकबर को पीने हेतु गंगाजल की निर्यात भूमि, थानेश्वराधिपति राज्यवर्धन का शशांक के साथ शरीरांत भूमि, कन्नोजाधिपति जयचंद व दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता की स्वयंवर भूमि, नाथ संप्रदाय से अनुस्यूत तथा सनातनकाल से अनेकानेक ऐतिहासिक, पौराणिक, पुरातात्त्विक, साहित्यिक, सांस्कृतिक महानताओं से ओतप्रोत गंगातटवर्ती शूकर क्षेत्र सोरों सनातन तीर्थ ललाट धरती पर एकमेव है, जहाँ आज भी घोर कलिकाल में विसर्जित अस्थियाँ ७२ घंटों में रेणु रूप होती हैं, ऐसा विज्ञान सम्मत प्रयुक्त है।

ऐसे दिव्य मुक्ततीर्थ 'परम सौकरवमस्थानम् सर्वसंसारम् मोक्षणम्', (व.पु.137) में लगभग एक हजार तीर्थयात्रियों द्वारा पिंडदान-श्राद्ध-तर्पण-कर्म आदि नित्य होते हैं। जहाँ नेपालनरेश द्वारा जीर्णोद्धारित श्रीवराहमंदिर शोभित है तथा वराहपुराणोक्त चौंसठ मोहल्ले आज भी हैं।

'यत्र भागीरथी गङ्गा मम सौकरवेस्थिता'

मेवाड़नरेश महाराणा प्रताप ने सोरों में तुलादान किया था, जयपुर नरेश ने पितृदोष निवृत्ति हेतु हरिपदी गंगा के घाटों का जीर्णोद्धार कराया था, ऐसे 'युगयुगीन शूकर क्षेत्र सोरों' में भारतीय सांस्कृतिक रिक्थ का अपरिमेय भंडार है, सामाजिक इतिहास की सुदीर्घ थाती है, पौरोहित्य कर्म का प्रधानकेंद्र है, आगम-निगम, हिंदी-संस्कृत वाङ्मय के शताधिक ग्रंथों में सोरों का सविस्तार उल्लेख है।

श्री अटलबिहारी वाजपेयी का सोरों से आत्मीय लगाव था, उनके हाथों पश्चिमी तटों के घाटों का उद्घाटन हुआ था, राजमाता सिंधिया ने जनसंघ संस्थापक श्यामाप्रसाद मुखर्जी की प्रतिमा का अनावरण किया था। दीनदयाल उपाध्याय का भी सोरों से नैकट्य रहा। संघ के चतुर्थ व पंचम सरसंघचालक का इस तीर्थ से नेह रहा, रज्जू भैया व अटलजी की तो अस्थियाँ भी यहीं विसर्जित हुईं, प्रधानमंत्री निवास में अटलजी ने लेखक की पुस्तक

'कथा सु सूकरखेत' का विमोचन किया था।

संजय खान द्वारा निर्देशित धारावाहिक 'जय हनुमान' में गलत प्रसारण पर क्षमा माँगी, तत्कालीन सूचनामंत्री अरुण जेटली ने लेखक को सलाहकार बनाया, मलाया विश्वविद्यालय, मलेशिया तथा भारत सरकार के प्रतिनिधि रूप में 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस में 'सोरों तीर्थ' पर शोध प्रपत्र वाचन किया। 22/7/2018 को मुख्यमंत्रीजी ने शूकर क्षेत्र सोरों को पर्यटन, तीर्थ रूप में विकसित करने की घोषणा भी की थी। उ.प्र. सरकार द्वारा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में इसी वर्ष तीर्थ विषयक संगोष्ठी में विशेष व्याख्यान दिया।

ऐसे सनातन तीर्थ को सरकार यथाशीघ्र पर्यटन तथा तीर्थ सूची में समायोजित करने का शासनादेश जारी करे। साथ ही कासगंज जिला का नामकरण 'तुलसीदास नगर', शूकरक्षेत्र सोरों शोध संस्थान, गोस्वामी तुलसीदास अकादमी, रत्नावली राजकीय कन्या महाविद्यालय, शूकरक्षेत्र सोरों विकास प्राधिकरण का गठन, पंचक्रोशी-परिक्रमा मार्ग का समग्र गिरिराज परिक्रमा की तर्ज पर विकास, पुरोहित प्रशिक्षण केंद्र, तुलसीदास वेद-वेदांग पाठशाला, रामायण सर्किट के अधीन समायोजन, इंडोनेशिया की तरह रामकथा केंद्र, रूस की तरह दैनिक रामलीला केंद्र, मॉरीशस की तरह रामायण सेंटर की स्थापना, संस्कृति विभाग द्वारा वार्षिक कुंभ : शूकरक्षेत्र महोत्सव 'मेला मार्गशीर्ष, का संयोजन हो। 'व्रज तीर्थ विकास परिषद' के साथ सन्नद्ध हो, गर्ग सहिंता में यह तीर्थ मथुरा व्रज प्रदेशांतर्गत उपव्रज में ही है।

'सोलहवीं सदी में तुलसीदास सनातन धर्म के प्रचारार्थ ही विरक्त हुए। उन्होंने जनभाषा में 'श्रीरामचरितमानस' लिखकर समूची मानवता को एक सूत्र में पिरोया। उनकी विरक्ति एवं 'मानस' की नींव हैं—उनकी धर्मपत्नी रत्नावली, जिनके त्याग के प्रकाश से तुलसी और 'मानस' प्रकाशित है, यह प्रकाशन ही राम-भारत है और भारत-राम है, इस सद्भाव को ध्वनित करता है।

तुलसी एवं उनका साहित्य भारतीय जीवन-पद्धति की आधार शिला है।विश्व की वे अनमोल धरोहर हैं, जिन्होंने मानवता, समरसता तथा ममत्व की अमरबेल को फैलाया। 'रामहिं केवल प्रेम पियारा'। राम संस्कृति वाले देशों इंडोनेशिया, ब्रह्मदेश (म्याँमार), थाई देश, मलेशिया, बर्मा, कंबोडिया, लाओस, श्रीलंका, चीन, फिजी, मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद-टुबैको, सूरीनाम, कांबोज, जावा, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, अर्जेंटीना, मेक्सिको आदि में तुलसीदास देवता रूप में पूजित हैं।

तुलसी का मानस 'न भूतो न भविष्यति' पंचम वेद-स्वरूप जीवन शास्त्र है। जिस 'मानस' में सप्त-सोपान एवं नवाह्न पारायण के साथ 'प्रस्थानत्रयी' (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता) को पादुका बनाकर श्रीरामकथा को आधारिका स्वरूप स्वीकारा है। जिसमें ब्रह्मसूत्र के 'उपदेश-सूत्र', उपनिषद् के 'संदेश-मंत्र', गीता के 'आदेश-तंत्र' तथा पुराणों का सार—'नानापुराणनिगमागमसम्मतंयद' समाहित है। इस 'तुलसी-त्रयी' के स्तंभ पर 'तुलसी वेदांत' का विशाल प्रासाद संपूर्ण मानवता के लिए प्रसाद रूप में सिद्ध है। यह मान सही विश्व-परिवार की आचार संहिता है। लोक चेतना से संपृक्त हिंदू समाज की संजीवनी है और लोक-मंगल की प्रति-स्थापना की महौषधि है। भारतीय मनीषा का यह विश्वकोश, सांस्कृतिक संवेदनाओं का सुसंस्कृत महाकाव्य है। विश्व में परिव्याप्त कोलाहल (महामारी) से संत्रस्त मानव को 'मानस' का अमृत ही चिरशांति प्रदाता है। मानसकार तुलसी ने मूल्यबोध पीठिका की संस्थापना की। उनकी प्रपत्ति अलौकिक दृष्टि चिरकाम्य है। गोस्वामी तुलसीदास सनातन धर्म के चल विश्वविद्यालय हैं, जिसमें पठन-पाठन से प्राणी-मात्र को कैवल्य

धाम (मोक्ष) की उपाधि तथा साकेत में सनातन वास सम्प्राप्त होता है। उनकी इस अनुभव गम्य प्रयोगशाला में श्रीरामानुभूति सत्यं-शिवं-सुन्दरम् एवं अमोघ' की अभिव्यक्ति है। सद्-असद् की मीमांसा है। प्रकाश-पुंज का सिद्धांत-शास्त्र है, जिसके वे स्वयंभू परमाचार्य हैं। इस कार्यशाला में स्वयं का आत्म-परिष्कार कर रामत्व को आत्मसात् करना ही 'संवाद' है। जो वैश्विक कल्मष को 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' रूप में जीव को निष्कलंक बना देता है। उनके संपूर्ण शिक्षा ग्रंथों में अवगाहन से अभीष्ट ही प्राप्त होता है।

'मानस' में गति-तरंगों के द्वारा जीवात्मा को तन्मय, तदाकार तथा झंकृत करने की अपूर्व शक्ति है। जो दानव को मानव में परिवर्तित करती है। वस्तुतः तुलसी सनातन भारतीय संस्कृति के व्यास-स्तरीय उद्गाता और व्याख्याता तो हैं ही, शंकराचार्य स्तरीय संरक्षक व संप्रसारक भी हैं। वे भावनाओं और विचारों के ऐसे महासागर हैं कि समग्र और शाश्वत मानवीय भाव-विचार सरिताएँ अंततः उनमें लीन हो जाती हैं। तुलसी प्रत्येक सदी के प्रधान पुरुष के रूप में प्रासंगिक हैं।

समग्र कलाओं के पुँजीभूत तुलसी का जीवन (पारिवारिक पृष्ठभूमि) परिशीलन का ही नहीं, समवेत स्वीकृति का भी विषय है, जिनके जीवन के श्रीराम ही प्राण हैं। श्रीराम हमारी राष्ट्र काया की आत्म-सत्ता हैं। वे समस्त व्यवस्था चक्रों के नाभिक और प्रवर्तक हैं, विचारों के मूलाधार हैं। श्रीराम का कहीं भी कोई भी विकल्प नहीं है और न ही तुलसीदासजी का।

तुलसीदास पर सबका अधिकार है। संपूर्ण भारत का ही नहीं, विश्व के सभी वैचारिक रूप से साझीदार लोगों का भी अधिकार है। तुलसी को अहंमन्यवादियों के शिकार करने का, पूर्वग्रही लोगों के कल्पित स्थान विशेष से जोड़ने का, क्षेत्रीय-स्वार्थी जनों के सीमा में आबद्ध करने का, तुलसी के नाम पर साहित्यकार बनने का, समन्वय के पुरोधा की सृजन शक्ति को संकीर्णता में परिवर्तित होने का, इस सबसे बचाने के उपाय करने का और तुलसी के नाम पर तरह-तरह के प्रपंच करने का सबको पूरा अधिकार है। हाँ, तुलसी के साथ छल-कपट का मन भाव रुके, वे पृथ्वी उत्पत्ति स्थल भगवान् श्रीवराह की प्राकट्य भूमि आदि व भागीरथी गंगा तटवर्ती सनातन तीर्थ है के थे, रहेंगे। तुलसी का यह अधिकार 'मानस मूल मिली सुरसरिहिं' तथा दियो सुकुल जनम शरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को (विनय पत्रिका) सनाढ्य विप्र शुक्ल आस्पदीय आत्माराम-हुलसी के औसर से श्रावण शुक्ल सप्तमी शुक्रवार संवत् 1568 अर्थात् 01 अगस्त, 1511 को शूकर क्षेत्र सोरों के मोहल्ला योगमार्ग में जनमे। यह सत्य सभी को मुक्त भाव से स्वीकारना होगा। गीताप्रेस का जब धरती पर अस्तित्व भी नहीं था, तब भी यही सत्य था, इस सत्य को छीनने का अधिकार किसी को नहीं होना चाहिए। तुलसी किसके, कहाँ के हैं। इसका महत्त्व उतना नहीं, जितना कि इसका कि तुलसी के कौन-कौन हैं। 'राजवीर अहीर उपाख्य राजा साधु' की स्मृति में संवत् 1652 में तुलसी ने 'राजापुर' स्थापित किया।अंग्रेजकालीन गजेटियर्स व मध्यकालीन साहित्य में सर्वत्र प्रमाण हैं।

तुलसी 36 वर्ष की अवस्था में शूकर क्षेत्र सोरों से प्रयाण कर 63 वर्ष की अवस्था तक अयोध्या, प्रयाग, मथुरा, काशी (27 वर्ष अवध में) आदि स्थानों में भ्रमण और 89 वर्ष की अवस्था तक चित्रकूट व यमुना किनारे (यशस्विनी, पयस्विनी नदी), (26 वर्ष बुंदेलखंड में) निवास करते रहे, बाद में 112 वर्ष की आयु तक (23 वर्ष) काशीवास किया, संवत् 1680 में कैवल्य (साकेत गमन) प्राप्त किया।

20 फरवरी, 1595 को गोस्वामी तुलसीदास ने नंदवंशी राजवीर सिंह अहीर उपाख्य राजा साधु

(निवासी ग्राम औगासी, तहसील बबेरू, जिला बाँदा) की स्मृति में 'राजापुर' बसाया।कालिंजर, ओरछा, सिंहुडा के राज्याश्रित कवि 'अविनाश राय ब्रह्मभट्ट' जो तुलसी के मित्र थे, ने 'तुलसीप्रकाश' में जो प्रत्यक्ष देखा, वही लिखा। 'राजापुर स्थापना चतु:शती' का आयोजन हिंदी जगत् ने सन् 1995 में मनाया।

सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलिया सल्तनत के सभी फरमान जाली हैं। सरकारी रिकॉर्ड में सन् 1874 में 'राजापुर' अभिलेख में आया।'राजापुर' के तुलसी मंदिर में 'राजासाधु' की प्रतिमा है, जिसकी मूर्ति संलग्न है।'राजापुर' में तुलसी की न कोई शिष्य परंपरा है न उनके द्वारा लिखित 'श्री रामचरित मानस' की प्रति। सब रेत-बालू पर भवन बनाए हैं। कलि के कालनेमियों ने महज उदरपूर्ति का साधन, माध्यम बना लिया है।

1985 में नारायण दत्त तिवारी की सरकार में तुलसी जन्मभूमि सोरों सूचना विभाग के गजट में भी सोरों के रूप में छपा।

2018 की उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद की कक्षा 7 की हिंदी पाठ्य पुस्तक 'मंजरी' में भी तुलसी जन्मभूमि सोरों ही बच्चों ने पढ़ा।

अंग्रेज कालीन गजेटियर्स 1874, 1886, 1908, 1909, सभी में स्पष्ट लिखा है कि अकबर के शासन काल में सोरों, परगना अलीगंज, जिला एटा के निवासी थे, यमुना किनारे उस जंगल में आए, जहाँ अब राजापुर स्थित है। सोरों से आकर तुलसी ने राजापुर बसाया।

1947 से आज तक किसी मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री ने सरकारी अभिलेखों की अवहेलना नहीं की, इन्हीं गजेटियर्स के आधार पर श्री रामजन्मभूमि मंदिर का 500 साल बाद निर्णय हुआ।

सन् 1810 में कलकत्ता से श्री रामचरित मानस का प्रथम प्रकाशन हुआ, बाद में वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित तुलसी साहित्य में जीवनी में शूकर क्षेत्र सोरों ही छपता रहा।

100 साल पहले जब गीताप्रेस नहीं थी, गीताप्रेस ने प्रारंभ में तो सोरों ही तुलसी जन्मस्थान छापा, बाद में पूर्वांचल की कल्मष युक्त राजनीति के कारण 'राजापुर' का झूठा प्रचार-प्रसार करना शुरू किया, जो अभी जारी है। हिंदी जगत् सोरों ही तुलसी जन्मभूमि है, को जानता, मानता रहा।

सरकारें संत महापुरुष की जन्मभूमि का निर्णय किसी के कहने या सरकारी पुरस्कृत संत पीठाधीश्वर के अहं युक्त दुराग्रह को पुष्ट करने हेतु नहीं दे सकतीं।इससे विभ्रम पैदा होता है, जनमन की आस्था भगवाधारी शासक के प्रति कुंठित होती है, जिन्होंने तुलसी पर जीवन भर शोध किया है, स्वयं तुलसी ने अपनी सभी बारह रचनाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष सोरों तथा अपने परिवार को रेखांकित किया है।

सौभाग्य से 'गोस्वामी तुलसीदास निर्वाण चतु:शती' (विक्रम संवत् 1680-2080) वर्ष का प्रारंभ है। चैत्र शुक्ल राम नवमी 'श्री रामचरित मानस सार्ध चतु:शती' विक्रम संवत् (1631-2081) प्रारंभ हो रही है, जिसकी वैश्विक कार्य योजना तैयार है। दोनों चतु:शती की अग्रणी भूमिका 'गोस्वामी तुलसीदास प्रतिष्ठान' निर्वाह कर रहा है। हिंदी के शिल्पी गोस्वामी तुलसीदास की जन्मविद्या एवं क्रीडाभूमि शूकरक्षेत्र सोरों से सनातनत्व का, हिंदी की राजधानी तथा गोस्वामी तुलसीदास की कर्मभूमि काशी से रामत्व का तथा श्रीराम जन्मभूमि मंदिर निर्माण (अयोध्या) से हिंदुत्व का जयघोष दिग्दिगंत गुँजायमान होगा।

'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सुसूकरषेत' (बालकांड)

□

ymishra1967@gmail.com

विविध

सिंधी एवं हिंदी अंतर्संबंध

—डॉ. रवि प्रकाश टेकचंदानी

भारतीय भाषाओं के मध्य अंतर्संबंध बहुआयामी होता है। एक भाषा से दूसरी भाषा का बहनापा भौगोलिक भाषाओं, सांस्कृतिक सूत्रों, सामाजिक संदर्भों में दृष्टिगोचर होता है। सिंधी एंव हिंदी का अप्रतिम संबंध भाषा की व्याकरणिक संरचना के बिंदुओं, साहित्यिक धाराओं, अनुवाद के आयामों, शब्द भंडार के आदान-प्रदान में समरस भाव से प्रकट होता है। प्रस्तुत आलेख में भारत के माथे की बिंदी हिंदी का सिंधी के साथ अंतर्संबंध रेखांकित किया गया है।

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से सिंधी भाषा का प्रमुख केंद्र सिंध प्रदेश है। जिस भूमि पर सिंधी भाषा, साहित्य, संस्कृति का जन्म हुआ; संवर्धन-प्रवर्धन एवं विकास हुआ, वह संपूर्ण सिंध प्रदेश सन् 1947 में भारत देश की स्वतंत्रता के पश्चात् नव-निर्मित देश पाकिस्तान में समाहित हो गया। दुर्भाग्य से लाखों हिंदू सिंधी अपनी जन्मभूमि से परिस्थितिवश निर्वासित होकर निकले और भारत देश के विशाल प्रांगण में आकर बस गए।

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित बाईस भारतीय भाषाओं में से 'सिंधी' का वर्तमान भारत में अपना कोई प्रांत नहीं है। इस विशाल देश में सिंधी भाषा भूमिहीन-राज्यविहीन भाषा है। आज इस भाषा को दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त करनेवाले संपूर्ण भारत में टूटी हुई माला के मोतियों के समान बिखरे हुए हैं। हाँ, यह सत्य है कि पाकिस्तान में तो सिंधी भाषा को केवल सिंध प्रांत में ही मान्यता प्राप्त है, जबकि भारत में सिंधी भाषा क्षेत्रीय संकीर्णता से स्वतंत्र होकर संपूर्ण देश की भाषा बन चुकी है। अब भारत में सिंधी भाषा का सीधा संपर्क अन्य प्रांतीय भाषाओं और विशेष तौर पर राष्ट्रभाषा-राजभाषा हिंदी से हो रहा है। आजकल भारत में प्रत्येक सिंधीभाषी हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान रखता है।

यहाँ यह उल्लेख करना भी उचित है कि सिंधी-हिंदी के बीच संपर्क सेतु का निर्माण कई सदियों पूर्व हो चुका था। चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी से लेकर भारत भर में जिस भक्ति काव्य की धारा का प्रसार हुआ, उससे कुछ समय के उपरांत सिंध भी प्रभावित हुआ था। इसके प्रमाण हमें सोलहवीं सदी की सिंधी काव्यधारा में प्राप्त होते हैं। संत-भक्त कवियों ने क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ हिंदी को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। इसलिए मध्यकाल में सिंधी-हिंदी के बीच संपर्क सूत्र सहजता से प्राप्त होते हैं।

जिन सिंधी संत-भक्त कवियों ने हिंदी में काव्यधारा प्रवाहित की, उनमें सर्वप्रथम संत रोहल (1734-1804) का उल्लेख मिलता है। वे सिंध के

* केंद्रीय हिंदी निदेशालय, (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) के पूर्व निदेशक।

सखर जिले के रोहड़ी डिविजन के 'कंडडी' गाँव के निवासी थे। संत रोहल की दरगाह भी यहीं है। संत रोहल के हिंदी भाषा में चार काव्य ग्रंथ उपलब्ध हैं—'मन प्रबोध', 'अधिबुद्धि ग्रंथ', 'सर्वज्ञान' और 'अगम वार्त्ता'। डॉ. रमेशचंद्र मिश्र ने अपनी पुस्तक 'सिंधी संत कवि रोहल की हिंदी बानी' के 'प्राक्कथन' में लिखा है कि संत रोहल सिंध क्षेत्र के समाजचेता सूफी संत रचनाकार हैं। समाज चेतना की दृष्टि से रोहल के विचार, आडंबर-पाखंड का तिरस्कार करनेवाले, चमत्कार प्रदर्शन को निरस्त करनेवाले और 'न हिंदू न मुसलमान' वाली कबीर सम्मत सार्वभौम चेतना का प्रतिपादन करनेवाले हैं। संत रोहल की हिंदी में रचित कविता के भाव देखिए—

सदगुरु पाँव पड़त हूँ, जिन संग उपज्यौ ग्यान।
दया जु भई दयाल की, जौत्यौ मद अभिमान॥
(पृ. 16)

× × × ×

बारह पंथ हिंदू सकल, बहत्तर मुसलमान।
जहँ जिस पद पै पाइयो, (सो) ताकी करे बखान॥
(पृ. 35)

रोहल की परंपरा में उनके पुत्र शाहू (1820 ई.), गुलाम अली (1839 ई.), दारिया खान (1790-1850) एवं प्रमुख शिष्य मुराद फकीर (1743-1798) का नाम हिंदी काव्य रचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मध्यकाल में ही सिंधी हिंदुओं में दलपत (1769-1849) का सिंधी के साथ-साथ हिंदी काव्य रचना की दृष्टि से प्रशंसनीय योगदान रहा है।

यहाँ इस तथ्य को भी रेखांकित करना चाहता हूँ कि हिंदी भाषा-भाषी संत कवियों ने भी क्षेत्रीय भाषाओं का स्वाध्याय कर उनमें पदों की रचना की है। संत दादू दयाल (1544-1603 ई.) के लगभग 80 दोहे सिंधी में रचे हुए प्राप्त होते हैं। दादू के समान सौराष्ट्र के संत कवि स्वामी प्राणनाथ (1618-1694) ने भी सिंधी में लगभग 600 पदों में भावाभिव्यक्ति की है। स्वामी प्राणनाथ के सिंधी काव्य की भाषा वास्तव में दक्षिण सिंध और कच्छ की भाषा है जिस पर थरपारकर की ढाटकी एवं गुजरात का प्रभाव है। इसलिए सिंधी समाज स्वामी प्राणनाथ को सिंधी कवि ही मानता है।

डॉ. रणजीत साहा ने अपनी पुस्तक 'महाकवि प्राणनाथ' में लिखा है कि "सिंधी वाणी प्राणनाथ के वाणी संग्रह की चौदहवीं रचना है, जिसका प्रणयन संवत 1740 और 1748 के बीच पन्ना में हुआ। इसमें 16 प्रकरण और 600 चौपाइयाँ हैं। यह रचना सिंधी भाषा में ही लिखी गई। इसीलिए इसका यही नाम पड़ा। ···सिंधी वाणी महामति के जीवन की सांध्य वेला में प्रियतम मिलन की उद्ग्रीव प्रतीक्षा में विरहिणी प्रियतमा के विरहोद्गार से समृद्ध ऐसी अमृत वाणी है, जो अपनी भावानुभूति में अनूठी और अभिव्यक्ति में अप्रतिम है।" (पृ. 52-53)

मध्यकाल में सिंधी-हिंदी के मध्य स्थापित साहित्यिक संपर्क सेतु को आधुनिक काल में संतों, भक्तों, लेखकों के साथ-साथ विविध संस्थाओं में भी निर्मित किया। सन् 1843 में सिंध में अंग्रेजों का शासन स्थापित होने के बाद आर्य समाज, सनातन धर्म, सिख पंथ, ब्रह्म समाज आदि के प्रचारक सिंध में आने लगे। उनके प्रचार का माध्यम प्रायः हिंदी भाषा थी। इस काल में सिंधीभाषियों का हिंदी से संपर्क घनिष्ठ होने लगा। शिक्षाविदों ने सिंध में संस्कृत और हिंदी का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ कर दिया। सन् 1936 के बाद वर्धा स्थित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हिंदी परीक्षाओं के केंद्र भी सिंध में खोले गए। इसके प्रभाव में आकर सिंधी साहित्यकारों ने हिंदी में अनुवाद और मूल लेखन प्रारंभ किया। उनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—निहालचंद (1798-1865), जीवत सिंह (1831-1891), स्वामी धर्मदास (1854-1947), भोजल (1874-1920), नयनराम शर्मा (1875-

1918), सूरत सिंह (1832-1877), जयकृष्ण दास (1875), महाराज ठाकुरदास (1868-1906), महाराज बसंतराम (1872-1917) आदि।

महाराज बसंतराम ने सन् 1917 में देहांत से पूर्व 'कृष्णायन' शीर्षक से ब्रजभाषा में प्रबंध काव्य की रचना पूर्ण की, जो सन् 1936 में उनके शिष्य श्याम सनेही श्यामाशरण द्वारा प्रकाशित की गई।इसके पश्चात् सन् 1910 में जनमे और सिंधी के राष्ट्रकवि की उपाधि से भूषित हूंदराज दुखायल ने अपनी युवा अवस्था में हिंदी में राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत गीत रचे। एक गीत के भाव देखिए—

सुलग रही है आग रे बापू, सुलग रही है आग
भैरव शंख फूँक गाता है बलिदान के राग
कौन जाने कब घोर क्रांति की भड़क उठेगी आग
सुलग रही है आग रे बापू, सुलग रही है आग।

सिंध में ब्रिटिश शासन स्थापित होने के उपरांत सिंधी साहित्य का आधुनिक काल प्रारंभ होता है। सन् 1853 में बहुसंख्यक मुसलमानों को केंद्र में रखते हुए सिंधी भाषा के लिए लिपि के रूप में अरबी-फारसी अक्षरों को परिलक्षित करके पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ होता है। इस कालखंड में ही अनूदित रचनाएँ बाजार में आती हैं। इतिहास, भुगोल, समाज विज्ञान आदि विषयों की पुस्तकें हिंदी एवं अन्य भाषाओं से अनूदित की जाती हैं। इनके अतिरिक्त, कहानी के क्षेत्र में पंडित बंसीधर की हिंदी कहानी के आधार पर गुलाम हुसैन कुरैशी 'भंभे जमींदार की गाल्हि' (भंभे जमींदार की वार्त्ता) तथा पंडितजी की दूसरी कहानी 'कुबुद्धि और सुबुद्धि' सैयद मीर मुहम्मदशाह की 'सुधातूरे ऐं, कुधातूरेजी गाल्हि' शीर्षक से सन् 1855 में प्रकाशित होती है। वहीं उपन्यास के क्षेत्र में बाबू देवकीनंदन खत्री के प्रसिद्ध उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' का सिंधी अनुवाद मुखिया सीरूमल सागराणी द्वारा प्रकाशित किया जाता है। उल्लेखनीय है कि इस उपन्यास की कथावस्तु ने सिंधी पाठकों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया, क्योंकि सिंधी पाठक इसे मूल हिंदी में पढ़कर आनंद लेना चाहते थे। कराची स्थित सनातन धर्म प्रचार सभा ने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवद् का सिंधी में अनुवाद छापा तो सन् 1912 में आर्य समाजियों ने 'सत्यार्थ प्रकाश' का अनुवाद प्रकाशित किया। अनुवाद की इस पौध को लघु पत्रिकाओं ने काफी सींचा। सन् 1947 तक प्रेमचंद, सुदर्शन, अश्क, यशपाल जैसे हिंदी के प्रसिद्ध लेखकों का कथा साहित्य सिंधी में अनूदित हुआ।

डॉ. मुरलीधर जैतली ने अपने आलेख 'सिंधी और हिंदी : आदान-प्रदान' में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि "भारत की स्वतंत्रता व विभाजन के पश्चात् सिंध से भारत में प्रव्रजन करके आने पर सिंधी हिंदुओं ने पुनर्वास की समस्याओं को हल करने के साथ-साथ अपने सिंधी साहित्य और भाषा के विकास की ओर ध्यान दिया। सन् 1947 से पूर्व हिंदी का प्रचार, जो सिंध से प्रारंभ हुआ था, उसे फिर भारत में शुरू किया गया। दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में बसे हुए सिंधियों में हिंदी के प्रचारार्थ केंद्र भी खोले गए।"

सन् 1947 के पश्चात् आज तक हिंदी से सिंधी तथा सिंधी से हिंदी में अनूदित रचनाओं का प्रचार निरंतर प्रवाहित हो रहा है।

यहाँ अनुवाद के सदंर्भ में लक्ष्मण भंभाणी द्वारा संपादित पत्रिका 'सिंधी साहित्य सुरभि' का उल्लेख आवश्यक है। सिंधी साहित्य को हिंदी में प्रस्तुत करने वाली इस पत्रिका ने पाठकों के मन को मोहा है। 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'नया ज्ञानोदय', 'वागर्थ', 'साहित्य अमृत', 'साक्षात्कार', 'भाषा', 'साहित्य परिक्रमा' आदि हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ भी सिंधी साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित कर रही हैं।

□

ravitekchandanidu@gmail.com

हिंदी की व्याप्ति बढ़ाते मनोरंजन के नए माध्यम

—अनंत विजय

जोहांसबर्ग के सैंडटन सिटी में विश्व हिंदी सम्मेलन का मंच सजा हुआ था।काफी बड़े सभागार में कई देशों के हिंदी प्रेमी वहाँ जमा थे। शुभारंभ सत्र की तैयारी चल रही थी। सब लोग इस बात से उत्साहित थे कि महात्मा गांधी ने जिस धरती पर कार्य किया था, वहाँ एक बार फिर से हिंदी भाषा को विश्वभाषा बनाने के लिए मंथन होनेवाला था। हिंदी के तमाम दिग्गजों की उपस्थिति के बीच मॉरीशस के उस समय के कला और संस्कृति मंत्री चुन्नी रामप्रकाश बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने जैसे ही हाथ जोड़कर नमस्कार कहा तो पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। चुन्नी रामप्रकाश ने अपने संबोधन में इस बात को रेखांकित किया कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में भारतीय हिंदी फिल्मों और टेलीविजन पर चलनेवाले सीरियल्स का बड़ा योगदान है। वो इतने रोचक होते हैं, उनका कहानी कहने का अंदाज इतना सधा हुआ होता है कि उसको देखने और समझने के लिए विदेश के लोग हिंदी सीखते हैं। उन्होंने अपना पूरा वक्तव्य हिंदी में देकर मजमे के साथ-साथ वहाँ मौजूद तमाम हिंदीभाषियों का दिल जीत लिया। उन्होंने इस बात को मंच से स्वीकार किया कि हिंदी फिल्मों और टीवी सीरियल्स के कारण ही उन्होंने हिंदी सीखी। अपने वक्तव्य में उन्होंने भारत में बननेवाले टीवी सीरियल्स के नाम भी लिये और कहा कि उनकी लोकप्रियता की वजह से विदेश में गैर-हिंदीभाषी भी उसको देखते हैं। संवाद के रूप में जब उनके कानों में हिंदी के शब्द पहुँचते हैं तो वो उन शब्दों के अर्थ को समझने का प्रयास करते हैं। समझने का यह प्रयास ही उनको हिंदी के करीब लेकर आता है। दक्षिण अफ्रीका में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में उपस्थित वहाँ के स्थानीय लोगों से बात करने पर एक और महत्त्वपूर्ण बात उभरकर सामने आई। उनमें से अधिकतर लोगों ने माना कि हिंदी टीवी चैनलों और बॉलीवुड ने हिंदी के प्रसार के लिए बगैर शोर मचाए बहुत बड़ा काम किया है। हिंदी भाषा का दायरा बढ़ाने में बॉलीवुड ने बेहद महत्त्वपूर्ण लेकिन खामोश भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में कई लोगों ने अमिताभ बच्चन और 'कौन बनेगा करोड़पति' से लेकर बेहद लोकप्रिय सीरियल 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' का नाम लिया था।

जोहांसबर्ग में ही एक टैक्सी ड्राइवर को वहाँ के लोकल एफ.एम. चैनल लोट्स पर हिंदी गाना सुनते हुए हमने उनसे जानना चाहा कि क्या ये गाने उनकी समझ में आते हैं या ये सोचकर कि भारतीय ग्राहक हैं तो आपने हिंदी गाने बजा दिए हैं।टैक्सी

---

* दैनिक जागरण के एसोसिएट संपादक।

चालक का उत्तर आनंददायक था। उन्होंने अंग्रेजी में इसका उत्तर दिया, कहा कि वी डोंट अंडरस्टैंड हिंदी बट वी एंजॉय हिंदी सॉन्ग्स। कोई भी भाषा जब किसी दूसरी भाषा के लोगों को आनंद देने लगे तो समझिए कि उसकी संप्रेषणीयता अपने उरूज पर है। लेकिन हिंदी के शुद्धतावादी इस बात को कभी नहीं मानेंगे। उनको लगता है कि हिंदी सीरियल्स और फिल्मों में इस्तेमाल होनेवाली भाषा हिंदी को नष्ट कर रही है। इस तरह की धारणा ही हिंदी की सबसे बड़ी शत्रु है। हिंदी इतनी कमजोर नहीं है कि उसको दूसरी भाषा के शब्द आकर दूषित कर दें, भ्रष्ट कर दें। हिंदी के नीति नियंताओं को यह बात समझनी होगी कि उसको जितना उदार बनाया जाएगा, उसका उतना ही फैलाव होगा। भाषा को शब्दों की चौहद्दी में बाँधने से उसका विकास अवरुद्ध हो सकता है।

इस तरह के कई और उदाहरण हैं। पिछले दिनों सिंगापुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की संध्या सिंहजी से बात हो रही थी तो उन्होंने फिल्मों और वेब सीरीज को लेकर बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। संध्या सिंह ने बताया कि हिंदी भाषा शिक्षण में हिंदी फिल्मों से काफी मदद मिलती है। अगर छात्रों को रंग के बारे में बताना होता है तो वो फिल्म 'चेन्नई एक्सप्रेस' के 'दिल तितली' गाने को दिखाती हैं। इस गाने में दीपिका पादुकोण ने अनेक रंगों की साड़ियाँ और लहँगा पहना हुआ है। गाने में जब अलग-अलग रंग आते हैं तो छात्रों को उन रंगों के नाम जल्दी समझ में आ जाते हैं। हिंदी व्याकरण के बारे में, लिंग भेद के बारे में या फिर वाक्य संरचना के बारे में पढ़ाने में भी भारतीय फिल्मों के संवाद मददगार साबित होते हैं। फिल्मों के संवाद को इस प्रकार से तैयार करके कक्षा में छात्रों को बताया जाता है कि वो आसानी से हिंदी भाषा की बारीकियों को समझ लेते हैं। सिर्फ संध्या सिंह ही नहीं बल्कि हैंबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी के शिक्षक राम प्रसाद भट्ट ने भी हिंदी शिक्षण में फिल्मों और टेलीविजन सीरियल के अलावा ऑर द टॉप प्लेटफॉर्म पर चलनेवाली वेब सीरीज की महत्ता को रेखांकित किया। उनके मुताबिक भारतीय संस्कृति के आकर्षण में विदेशी छात्र हिंदी पढ़ने आते हैं। भारत में परिवार की अवधारणा से यूरोप की नई पीढ़ी प्रभावित है। वे फिल्मों में या फिर वेब सीरीज में जब देखते हैं कि पूरा परिवार साथ बैठता है, साथ खाना खाता है, त्योहार में सब इकट्ठे होते हैं, तो उनको बहुत अच्छा लगता है। वे इस मानसिकता को समझने के लिए हिंदी सीखना चाहते हैं। वो भारत के त्योहारों के बारे में जानना चाहते हैं। होली, दीवाली के अलावा जन्माष्टमी और शिवरात्रि के बारे में जानना चाहते हैं। कुछ छात्र भारत की ज्ञान परंपरा को जानने के लिए भी हिंदी सीखते हैं। इन चीजों को समझने के लिए वे पुस्तकें तो पढ़ते ही हैं लेकिन आरंभिक दौर में वे भारतीय हिंदी फिल्मों से इसके बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। राम प्रसाद भट्ट के अनुसार उनके विश्वविद्यालय में 12 से 15 प्रतिशत छात्र हिंदी फिल्मों के आकर्षण की वजह से हिंदी सीखने आते हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी फिल्मों की भूमिका को भट्ट रेखांकित करते हैं। उन्होंने बताया कि यूरोप और अफ्रीका में हिंदी फिल्मों ने हिंदी भाषा को विस्तार दिया है। अब तो जर्मनी में टेलीविजन पर भी हिंदी फिल्में दिखाई जाने लगी हैं। उन्होंने हिंदी शिक्षण में भी फिल्मों के मददगार होने का दिलचस्प अनुभव साझा किया। भट्ट के मुताबिक वे लोग छात्रों को हिंदी की गिनती सिखाने के लिए 'तेजाब' फिल्म में माधुरी दीक्षित के 'एक-दो-तीन' गाने का उपयोग करते हैं। कई बार फिल्म 'थ्री इडियट्स' के क्लासरूम सीन को रिक्रिएट करते हैं। इसका लाभ यह होता है कि छात्र भाषा से बँध जाते हैं। ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं

जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी में जो मनोरंजन की दुनिया है, उसने विदेश में इस भाषा के विस्तार का आधार प्रदान किया है।

कोरोना संकट के दौरान लॉकडाउन की वजह से जब पूरी दुनिया में फिल्मों और मनोरंजन की दुनिया संकट में थी तो ऑन डिमांड वीडियो स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म्स या ओवर द टॉप (ओ.टी.टी.) प्लेटफॉर्म्स ने इसको उबारने का काम किया। जब सिनेमा हॉल बंद हो गए और लोगों का घरों से निकलना बंद हुआ तब लोगों ने मनोरंजन के लिए ओ.टी.टी. को चुना। ओ.टी.टी. पर नजर रखनेवालों और इंटरनेट सर्च के आँकड़ों ने इसकी पुष्टि की। सिर्फ देश ही नहीं बल्कि विदेश में भी दर्शकों ने इस माध्यम पर अपना प्यार लुटाया। अगर सिर्फ भारत के आँकड़ों पर गौर करें तो अप्रैल से लेकर जुलाई 2020 तक चार महीनों में करीब तीन करोड़ लोगों ने इन प्लेटफॉर्म्स को डाउनलोड किया। आपदा के दौरान मनोरंजन का यह माध्यम लोकप्रिय हुआ, लेकिन इसके कंटेंट को लेकर विवाद भी हुए। हिंसा, यौनिकता, गालियों की भरमार और धर्म के चित्रण को लेकर केस-मुकदमे हुए। विवाद अपनी जगह हैं, लेकिन इस माध्यम ने लोगों को मनोरंजन का एक ऐसा विकल्प दिया जिसमें विविधता बहुत अधिक है। छोटे शहरों की कहानियों को लेकर कई वेब सीरीज बनी जिसे दर्शकों ने खूब पसंद किया। एक और बात जिसको रेखांकित करना आवश्यक है वह यह कि सिनेमा हॉल बंद होने के दौर में लगभग हर भाषा की फिल्में ओ.टी.टी. पर रिलीज हुईं, बड़े से लेकर छोटे सितारों तक की। इस तरह से अगर देखें तो इस माध्यम ने देश के मनोरंजन के कैनवास में एक अलग ही रंग भरा। कंसलटेंसी फर्म प्राइसवाटर हाउस कूपर्स के आकलन के मुताबिक भारत दुनिया का सबसे तेजी से बढ़ता हुआ ओ.टी.टी. बाजार बन गया है। 2024 तक भारत में इंटरनेट की सुविधावाले मोबाइल की संख्या अस्सी करोड़ से अधिक हो जाने का अनुमान है, तब हमारे देश में मनोरंजन की यह नई संस्कृति और विस्तार पाएगी जिसका व्यापक प्रभाव भी देखने को मिलेगा। ओ.टी.टी. का एक दूसरा असर यह हुआ कि भारतीय कहानियाँ दूसरे देशों में हिंदी में उपलब्ध हो गईं। एक अनुमान के मुताबिक कोई भी वेब सीरीज अगर नेटफ्लिक्स या अमेजन या हॉटस्टार पर रिलीज होती है तो वो करीब 190 देशों में एक साथ उपलब्ध हो जाती है। हिंदी फिल्मों का दायरा काफी छोटा था और उसको अलग-अलग देशों में प्रदर्शित करने का खर्च भी अलग और अधिक होता था, लेकिन ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म के रूप में हिंदी के वेब सीरीज को या फिल्मों को एक ऐसा मंच मिल गया जहाँ से उसको वैश्विक दर्शक एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं।

भारत हमेशा से कथावाचकों का देश रहा है। हमारे देश में कथावाचन की परंपरा बहुत पुरानी है। हमारे देश में तो कहानी कहने की परंपरा भी प्राचीन काल से चल रही है। कहानी सुनाने के अलग-अलग तरीके हैं। अलग-अलग क्षेत्र में, अलग-अलग विधा में, अलग-अलग कलाओं में कहानी कहने की अपनी एक परंपरा रही है। अगर हम याद करें तो महाभारत में संजय जब तक युद्ध चलता रहता है तब तक वे हर रोज नियम से युद्ध की आँखों देखी धृतराष्ट्र को सुनाते रहते हैं। यह कहानी कहने की ही तो कला है। श्रीरामचरितमानस भी तो कथावाचन की शैली में ही है। श्रीरामचरितमानस की इन पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए, उमा कहिउं सब कथा सुहाई/ जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई। इसका अर्थ ये है कि शंकरजी पार्वती से कहते हैं कि हे उमा! मैंने वह सब सुंदर कथा कही जो काकभुशुंडिजी ने गरुड़जी

को सुनाई थी। यहाँ गौर करने की बात है कि कथा सुनाने या कहने की बात की गई है। बात सिर्फ श्रीरामचरितमानस या महाभारत की नहीं है। सैकड़ों ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जिससे यह साबित होता है कि भारत में कहानी कहने की परंपरा बहुत पुरानी है। हम संस्कृत नाट्यशास्त्र की बात करें तो वहाँ जिस सूत्रधार का उल्लेख मिलता है, वह क्या करता है? वह भी तो कहानी ही सुनाता है। मंच पर खड़े होकर कहानी सुनाता है। पूर्वोत्तर में भी तकिए पर बैठकर एक व्यक्ति भाव भंगिमाओं के साथ महाभारत की कथा सुनाता है। यह परंपरा बहुत पुरानी है। इसके अलावा अगर हम गुजरात की बात करें तो वहाँ के बाणभट्ट गायक विष्णु कथा को 'हरिकथाकालक्षेपम' की परंपरा में सदियों से गाते रहे हैं। राजस्थान में भी 'कहन' की परंपरा कितने समय से चली आ रही है, इसका आकलन करना मुश्किल है। दादा-दादी की कहानियाँ सुनाने की बात तो हमारे देश के हर घर-परिवार में सुनी जा सकती है। राजाओं के दरबार में भाँड भी तो किस्सा ही सुनाते थे। यह सूची बहुत लंबी हो सकती है, लेकिन यहाँ मकसद सिर्फ यह बताना है कि भारत में कहानी कहने की कला उसके लोक में व्याप्त है। ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म की वजह से जब भारत के लोक की कहानियाँ अपने विशेष अंदाज में वेब सीरीज बनकर वैश्विक दर्शकों के सामने आती हैं तो लोगों को काफी पसंद आती है। हिंदी क्षेत्र की कहानियों में एक खास किस्म की विविधता भी होती है। गाँवों में खासकर जिस तरह से जीवन है या जीवन का संघर्ष है, वह विदेश में रह रहे दर्शकों को एक नए तरह का आस्वाद देता है।

हमारे देश में कथावाचन की जो परंपरा रही है, वो अलग-अलग फॉर्मेट की रही है। संजय ने तो अठारह दिन तक सुबह से शाम तक धृतराष्ट्र को कथा सुनाई थी। कई बार कथावाचन सात दिन तो कई बार दस दिन तक भी चलती है। राधेश्याम कथावाचक कई दिनों तक राम कथा कहते थे। उनकी शैली अद्भुत होती थी और वे स्थानीय बोलियों के शब्दों को भी अपनी कथा का हिस्सा बनाते थे। आज के दौर में भी मोरारी बापू कथावाचन ही करते हैं और वह भी कई दिनों तक चलता है। फॉर्मेट और फॉर्म की बात करके दास्तानगोई को विदेश से आई अनूठी विधा के तौर पर स्थापित करने की कोशिशें भले ही की जाएँ, पर दरअसल वे भारतीय कथावाचन का ही एक रूप है। नाटककार और निर्देशक सलीम आरिफ से पटना साहित्य महोत्सव के दौरान दास्तानगोई पर एक अनौपचारिक चर्चा हुई थी। चर्चा में उन्होंने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था कि 'फॉर्म से कंटेंट पैदा नहीं किया जा सकता है, कटेंट से फॉर्म बनाया जा सकता है।' दास्तानगोई के साथ यही दिक्कत है कि इसमें फॉर्म से कंटेंट बनाने की कोशिश हो रही है, जो संभव नहीं है। वह भारतीय कथावाचन का उर्दू संस्करण है। खैर, इस पर चर्चा विषयांतर होगी। कथावाचन के विभिन्न रूपों पर चर्चा इस वजह से, क्योंकि इन दिनों जो वेब सीरीज बन रही हैं या जो टीवी सीरियल्स बन रहे हैं उनमें भारतीय कथावाचन का ही रूप तो दिखता है। कोई लॉन्ग फॉर्मेट में बन रहा है तो कोई शॉर्ट फॉर्मेट में। ओ.टी.टी. पर उपलब्ध यह कथावाचन का नया रूप है, जो अपनी बोली और अपनी भाषा के कारण विशिष्ट हो जाता है।

आज जब पूरी दुनिया अपनी जड़ों की ओर लौट रही है। अपनी परंपराओं को फिर से अपनाने के लिए आतुर दिखाई दे रही है, ऐसे में भारत की कहानी कहने की या किस्सागोई की शानदार परंपरा को ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म नए तरीके से तकनीक के आधार पर और व्यापक बना रही है। मनोरंजन की दुनिया में कथावाचन का यह नया स्वरूप भाषा

यानी हिंदी को भी लेकर आगे बढ़ रही है। भारत में किस्से-कहानियाँ सुनाने की विधा लोकमानस में इस तरह से रची बसी है कि उसको किसी आयातित विधा से चुनौती नहीं दी जा सकती है। नवरात्र के दौरान देशभर के अलग-अलग हिस्सों में रामलीला का आयोजन होता है। अलग-अलग तरीके से नौ दिनों तक रामकथा का वाचन या मंचन होता है। रामलीला में जाकर देखना चाहिए कि वहाँ किस तरह से कथा सुनाई जाती है और कितनी लोकप्रिय है। आज रामलीला का प्रसारण इन ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म के माध्यम से हो रहा है। जब विदेश में लोग श्रीराम के बारे में जानना चाहते हैं तो वे सबसे पहले वे फिल्म या सीरियल या वेब सीरीज देखते हैं। श्रीराम के चरित्र को समझने के लिए उनको परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हिंदी सीखनी ही पड़ती है। भारत की सांस्कृतिक विविधता के उत्सव के बारे में जानने के लिए भी पूरी दुनिया के विभिन्न भाषा-भाषी लोग वेब सीरीज के माध्यम से हिंदी को सुनते और सीखते हैं।

आज भारत एक बड़े बाजार के तौर पर पूरी दुनिया में स्थापित है। पिछले दिनों टी-20 क्रिकेट मैच भी इन ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म पर दिखाया गया। यह पूरी दुनिया को अचंभित करनेवाला आँकड़ा था जब टी-20 मैच को दिखानेवाले ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म का सर्वर हैंग हो गया। बाद में उसकी क्षमता बढ़ाई गई तो पता चला कि भारत और पाकिस्तान के बीच हुए मैच को एक समय में डेढ़ करोड़ से अधिक दर्शकों ने देखा था। उस मैच की कमेंट्री हिंदी में भी हो रही थी और पूरी दुनिया के लोग मैच देख रहे थे। यह तय है कि सभी दर्शक हिंदीभाषी नहीं होंगे लेकिन अगर उसमें से कुछ प्रतिशत भी मैच के बहाने से हिंदी के चंद शब्द भी सीखते हैं तो ये हिंदी के विस्तार को मदद देने जैसा ही है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मनोरंजन के इन प्लेटफॉर्म ने जिस तरह से हिंदी को पूरी दुनिया में विस्तारित करने में भूमिका निभाई है, उसके हिसाब से उसका मूल्यांकन होना शेष है। जब भाषा का विस्तार हो रहा है तो जाहिर तौर पर इसका व्यावसायिक पक्ष भी होगा। आज जिस तरह से भारत में ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म की संख्या बढ़ रही है या इनमें से स्थापित प्लेटफॉर्म भारत में निवेश बढ़ा रहे हैं, उससे साफ है कि उससे इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं। इन क्षेत्रों में काम करनेवाले कुशल तकनीशियन से लेकर बेहतर लेखकों तक की माँग बढ़ रही है। इन सभी को इनके काम के आधार पर पहले से काफी अधिक मानदेय या मेहनताना मिलने लगा है। इन सबको देखते हुए लगता है कि मनोरंजन की दुनिया के इस माध्यम के कई आयाम हैं जिसमें सामाजिक, भाषिक और व्यावसायिक आयाम प्रमुख हैं।

□

anantindelhi@gmail.com

सच्चा अर्थशास्त्र तो न्याय-बुद्धि पर आधारित अर्थशास्त्र है।

—महात्मा गांधी

दूसरों को जीतने की इच्छावाले श्रेष्ठ पुरुष पहले स्वयं को जीतते हैं।

—अभिनंद

राष्ट्रीयता के शिखर कवि : मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारतियार

—डॉ. वी. पद्मावती

संपूर्ण भारतीय साहित्य के लिए हिंदी के सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और तमिल के कालजयी राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारतियार दोनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आकर 'सरस्वती' के माध्यम से अपनी काव्य-रचना की गति को उन्होंने आगे बढ़ाया था। उनका विवाह 1895 में श्रीमती सरजू देवी से हुआ था। गुप्तजी की कविताओं का मुख्य विषय और उनके अधिकांश नाटकों के कथानक 'रामायण' और 'महाभारत' के पौराणिक कथानकों पर आधारित थे। उनके काव्यों में भारतीय संस्कृति का आख्यान ही मुखरित होता था। मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्यों में 'साकेत' एवं 'यशोधरा' भारतीय परंपरा में उपेक्षित 'उर्मिला' और 'यशोधरा' की व्यथा को वाणी देते हैं। खंडकाव्यों में भारतीय संस्कृति एवं उसके प्रमुख आख्यानों के महत्त्व को ही गुप्तजी ने व्याख्यायित किया है। एक कवि के रूप में ही नहीं, एक नाटककार के रूप में भी गुप्तजी का अद्वितीय योगदान रहा है। रंग में भंग, राजा-प्रजा, वन वैभव, विकट भट, विरहिणी, वैतालिक, शक्ति, सैरंध्री, स्वदेश संगीत, हिडिंबा, हिंदू, चंद्रहास आदि इनके उल्लेखनीय नाटक हैं।

सी. सुब्रह्मण्य भारतियार की प्रसिद्धि तमिल साहित्यिक क्षेत्र या प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। सुब्रह्मण्य भारतियार ने कभी भी खुद को एक सीमित परिधि में नहीं बाँधा था। वैसे सुब्रह्मण्य भारतियार को 'गौरव' के साथ 'भारती' की उपाधि दी गई थी। इससे आगे 'महाकवि' की संज्ञा से भी वे विभूषित थे। पर भारतियार जैसे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार, पत्रकार, स्वतंत्र सेनानी, महान् चिंतक और समाज सुधारक को 'महाकवि' की उपाधि देने से उनकी बहुमुखी प्रतिभा सीमित दायरे में बँध जाने का खतरा है। बहुभाषा विध भारतियार की जिह्वा में अपनी मातृभाषा तमिल को ही नहीं बल्कि संस्कृत, तेलुगू, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, अरबी आदि को भी स्थान प्राप्त था। भारतियार के जीवन में बनारस में रहते समय नया मोड़ उपस्थित हुआ। इसी पावन भूमि के कारण उनके मन में आध्यात्मिकता और राष्ट्रीयता का बीजारोपण हुआ, जो वटवृक्ष की भाँति उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के द्वारा संपूर्ण राष्ट्र में फैल गया।

आधुनिक तमिल साहित्य की कई विधाओं के पथ-प्रदर्शक के रूप में भारतियार का नाम

* पी.एस.जी.आर. कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयंबत्तूर।

लिया जाता है। उनकी साहित्यिक सृजन की क्षमता अत्यंत नव्य एवं प्रेरणादायक है। भारतियार के व्यक्तित्व में प्राचीनता एवं संस्कारजन्य मूल्यों के प्रति अटूट संबंध था। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण वर्णाश्रम धर्म, वेदों की शिक्षा, संस्कृत का ज्ञान, पुराणों एवं इतिहासों का मनन आदि पारिवारिक संस्कार के माध्यम से उन्हें प्राप्त हुआ। लेकिन अंग्रेजी शिक्षा, उत्तर भारत की यात्रा, पत्रकारिता के जरिए प्राप्त राजनीतिक एवं सामाजिक जागरूकता आदि के कारण उनके संस्कारजन्य मूल्यों में परिवर्तन आने लगे। सुब्रह्मण्य भारतियार अपनी व्यापक दृष्टि, मानव प्रेम एवं राष्ट्रप्रेम के कारण सीमित दायरे से निकलकर खुद विशाल नव्य जगत् में पदार्पण करने के साथ-साथ सामान्य जनता को भी इस दिशा में अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रेरित कर पाए। धनुर्धारी अर्जुन, सहनशील धर्मराज, चीरहरण का शिकार होनेवाली पांचाली, ब्रह्मांड को गेंद के रूप में नचानेवाली महाशक्ति, कृष्ण के विविध रूप आदि के वर्णनों से इस बात का पता चलता है कि भारतियार अपनी प्राचीन संस्कृति की डोर को पकड़ते हुए नवीन चेतना के साँचे में उन्हें ढालने में सक्षम हो गए हैं। पराधीन भारत माता की दयनीय स्थिति की तुलना पांचाली से करते हुए उन्होंने 'पांचाली शपथम' की रचना की। इसके आगे कण्णन पाट्टु, पुदिय आत्तिच्चूडि आदि में उन्होंने फुटकर कविताओं के द्वारा अद्भुत भावाभिव्यक्ति दी है। भारतियार की साहित्यिक यात्रा में प्राचीन-नवीन संस्कारों के बीच रस्साकशी तो चली थी। लेकिन इसी यात्रा के अगले पड़ाव में भारतियार की दार्शनिक मुद्रा लेते ही इसका अंत हो गया। इसी के परिणामस्वरूप 'कुयिलपाट्टु' गूँजती रही।

भारतियार के गीतों को हर क्षेत्र में स्थान मिला है। उनके गीतों के भाव, वस्तु एवं शिल्प पक्ष से भी अधिक संगीतात्मकता का आकर्षण है। भारतियार का संगीत के क्षेत्र में भी अपार ज्ञान है। शास्त्रीय संगीत के ज्ञान के साथ-साथ सपेरे, धोबी, कृषक स्त्रियों, मछुआरे आदि के लोक गीत का भी उन्हें सम्यक् ज्ञान है। उनके गीतों की लोकप्रियता यह है कि उनमें से अधिक गाए गए हैं। अरुणाचल कविरायर, चेन्निकुळम् अण्णामलै रेड्डियार, तत्तुवराय स्वामिगळ, रामलिंग स्वामीगल, गोपालकृष्ण भारतियार, तिरिकूड रासप्प कविरायर आदि संगीतविदों के प्रभाव के कारण सुब्रह्मण्य भारतियार की संगीत ज्ञान में वृद्धि हुई है। विट्मैन जैसे पाश्चात्य कवियों का प्रभाव भारतियार में देखा जा सकता है। भारतियार ने अपनी 'वचन कविता' के माध्यम से तमिल साहित्य में प्राचीन काव्य परंपरा के विविध पहलुओं से मुक्त 'नई कविता' का बीज बोया था।

भारतियार एक उत्कृष्ट निबंधकार थे। 'पुनर्जन्म' शीर्षक निबंध में भारतियार ने देश भर के साहित्यकारों के लिए एक सार्वकालिक संदेश दिया है, जो सर्वदा अनुकरणीय है, "प्राचीन रचनाओं की भाषा तत्कालीन समय के लिए उचित है। समय के साथ भाषा भी बदलती है। पुराने पदों के स्थान पर नवीन पदों का जन्म होता है। एक कवि का यही कर्म है कि वह समय के साथ अपनी जनता के लिए सुलभ एवं स्पष्ट पदों का ही प्रयोग करे। अद्भुत मानसिक दृश्यों को सरल शैली में लिखना ही कविता है…"

सुब्रह्मणय भारतियार का दृढ़ विश्वास था कि जब तक भारतीय समाज में निहित जड़ता, रूढ़ियाँ, पाखंड, कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास समाप्त नहीं होते तब तक भारत की आजादी संभव ही नहीं है। वास्तव में इस समुचित स्वतंत्रता की ओर भारतीय जनमानस को तैयार करने का बीड़ा उन्होंने उठाया था और काफी हद तक उसमें वे सफल भी हुए। पर इस सफलता की प्राप्ति के लिए काव्य-सृजन ही उनके लिए पर्याप्त नहीं था। इस सफलता की

प्राप्ति के लिए उन्हें कई तरह के रूपों को अपनाना पड़ा। कई तरह की क्षमताएँ एवं कौशल विकसित करने पड़े। उनका अंतिम ध्येय भारतीय जनमानस के मन में परिवर्तन लाना ही था। उनके सृजन पथ पर 'महाकवि' की उनकी छवि अत्यंत प्रबल ढंग से उभरकर आ गई थी। इस हद तक उनकी 'महाकवि' की छवि प्रबल होकर उभर आई कि उसके सामने उनके व्यक्तित्व के अन्य रूप मंद पड़ गए जैसे सूरज के सामने महाकार तारे भी अदृश्य रह जाते हैं।

एट्टयपुरम् के राजा के दरबारी कवि के रूप में कुछ साल रहने के पश्चात् भारतियार 1904 ई. में मदुरै स्थित सेतुपति हाई स्कूल में तमिल अध्यापक के रूप में कुछ महीनों के लिए कार्यरत थे। तत्पश्चात् उन्हें लगा कि विश्व को व्यापक दृष्टि से समझने के लिए पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है और इस क्षेत्र में उन पर पाश्चात्य प्रभाव रहा। 1904 ई. 'सुदेशमित्तिरन' पत्रिका के उपसंपादक के रूप में उन्होंने कार्यभार सँभाला था।

गुप्तजी का काव्य-सृजन भी 'सरस्वती' जैसी पत्रिकाओं से ही लोक प्रचलित होने लगा। 'इंडिया' पत्रिका में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध अपने आग भरे शब्दों से सुब्रह्मण्य भारतियार ने कठोर प्रहार किया। 'इंडिया' पत्रिका में काम करते समय अंग्रेजी सरकार के हस्तक्षेप के कारण उचित समय पर पत्रिका की रकम नहीं आती थी। इसलिए भारतियार को समय पर वेतन भी नहीं मिलता था। एक ओर आर्थिक संकट था तो दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार उन्हें गिरफ्तार करने में जुट गई और अपने मित्रों के सुझावानुसार वे फ्रांसीसी सरकार द्वारा शासित पुदुच्चेरी में आश्रय लेने लगे। उनके जीवन में पुदुच्चेरी में बिताया गया समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। महर्षि अरविंद व वे.सु. अय्यर आदि महानुभावों के सान्निध्य में उनके चिंतन में भारी परिवर्तन आया। 'कण्णन पाट्टु', 'कुयिल पाट्टु' एवं 'पांचाली शपथम' आदि कई उत्कृष्ट रचनाओं की जन्मभूमि के रूप में पुदुच्चेरी को श्रेय प्राप्त है। परवर्ती कवि भारतीदासन् जैसी अगली पीढ़ी को प्रेरित करने का काम किया। 1908 ई. में पुदुच्चेरी से निकलने पर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया और उन्हें डेढ़ साल कारावास की कठोर यातना सहनी पड़ी।

यह उल्लेखनीय है कि तमिल साहित्य के क्षेत्र में सुब्रह्मण्य भारतियार के अमूल्य योगदान की नींव में पत्रकारिता ही रही। एक पत्रकार के रूप में भारतियार को अपने समाज, देश, विश्व की राजनीति आदि कई मुद्दों को कम समय में समझने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। वे जन्मजात सर्जक तो थे। संपूर्ण जीवन गरीबी के घोर पाश में खुद प्रताड़ित होकर अपने परिवार को दुर्दशा से उभारने में अक्षम होने पर भी भारतियार अपनी इस सृजनात्मक शक्ति के कारण हमेशा अपनी ऊर्जा को लेखन के द्वारा लोगों के बीच वितरित करते रहे। सामान्य जनता के मन में भी अपने लेखन के माध्यम से राष्ट्रीयता का संचार कराने में वे सफल रहे।

'कर्मयोगी' नामक पत्रिका का प्रारंभ करते हुए भारतियार ने 1910 ई. में जब लिखना शुरू किया तो देश भर में राजनीतिक क्रांति तेज हो गई। एक पत्रकार के रूप में कार्यरत भारतियार के अनुवादक का रूप भी उभरकर आने लगा। सुदेशमित्तिरन, पत्रिका के संपादक श्री सुब्रह्मण्य अय्यर उन्हें इस तरह के अनुवाद के कार्य सौंपते थे। स्रोत भाषा के समाचार को लक्ष्य भाषा तमिल में स्वाभाविक एवं सरस शैली में प्रस्तुत करने में भारतियार निपुण थे। इसलिए अकसर उन्हें पत्रिका से जुड़े हुए अनुवाद के कार्य को अपने घर ले जाकर करना पड़ता था। भारतियार द्वारा तमिल में अनूदित पतंजलि के योगशास्त्र के अनुवाद कौशल की सराहना महर्षि अरविंद ने की है। वैदिक साहित्य, पतंजलि के योग सूत्र और भगवद्गीता को

उन्होंने तमिल में अनूदित किया था। यहाँ एक और बात उल्लेखनीय है कि तमिल पत्रिका के क्षेत्र में सर्वप्रथम 'कार्टूनों' के प्रयोग का श्रेय सुब्रह्मण्य भारतियार को ही दिया जाता है।

गुप्तजी यशोधरा के माध्यम से प्राचीन काल से भारतीय धरती पर स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से होनेवाली वीरता एवं त्याग की भावना का चित्रण करते हैं—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को हमीं भेजती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते
सखी वे मुझसे कहकर जाते।

सुब्रह्मणय भारतियार एक कर्मठ समाज सुधारक थे। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने पर भी उन्होंने परैयर एवं पळ्ळर जैसे दलितों के लिए गीत गाया था। नारी मुक्ति के प्रबल समर्थक थे। जाति-पाँति का विरोध करते थे। समन्वयकारी दृष्टि के धनी थे। नारी-शक्ति को उद्बोधन देते हुए कवि लिखते हैं—

क्रूर हैं वे जो हमें दासी बताकर
स्वयं को स्वामी मान लेते हैं।
उस पाखंड का सर्वनाश हो
सर्वज्ञान संपन्न हो
स्वदेश की वीरांगनाओ!
साहस सहित निज कर्तव्य करो!

गुप्तजी अपने काव्य में प्रकृति के सौंदर्य के साथ मानवीय सौंदर्य का भी सम्यक् चित्रण करते हैं।

सुब्रह्मण्य भारतियार की सौंदर्य चेतना उनकी हर साहित्यिक कृति में प्रतिबिंबित है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि गरीबी एवं अज्ञान से घिरे हुए माहौल में किसी भी मनुष्य की सौंदर्य-चेतना चुक जाती है। 'कर्मयोगी' नामक पत्रिका में भारतियार ने इस बात की अभिव्यक्ति दी है कि हमारे लोगों की सौंदर्यात्मक चेतना जड़वत् हो गई है, "हमारे देश में वेदकालीन ऋषियों ने प्राकृतिक सौंदर्य को देखते हुए उनके प्रति मोहित होते हुए कई अद्भुत गीतों की रचना की है। प्रकृति के सौंदर्य से आनंदित होकर कालिदास जैसे महाकवियों ने अद्भुत कविताओं का सृजन किया है। आज के समय में तो यह दुर्भाग्य की स्थिति आ गई है कि हमारे देश में आकाश को भी सिर उठाकर न देखनेवाले लोग अपने आप को कवि के रूप में घोषित कर लेते हैं।"

गुप्तजी का मनुष्यता संबंधी नारा 'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरें के अनुसार अपने सह-मानवों के प्रति भारतियार के मन में अगाध प्रेम था। भारतियार के चारों ओर हमेशा लोग घिरे हुए रहते थे। पुदुच्चेरी में रहते समय भारतियार के घर के आसपास के बुश गाड़ीवाले कभी भी उन्हें पैदल नहीं चलने देते थे। अपनी गाड़ी में ही उन्हें हमेशा ले जाते थे और उनके प्रेम के बदले में भारतियार हमेशा अपने अंगवस्त्र दे देते थे। अपने पास कुछ न होते हुए भी दीन दलित गाड़ीवालों के प्रति वे बहुत प्रेम रखते थे।

मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व में आर्यसमाजी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। उनकी 'भारत भारती' में यह प्रभाव पूर्णरूपेण मिलता है। "वैज्ञानिक तथ्यों के प्रति झुकाव रखनेवाले भारतियार अपने देश के विकास के लिए उद्योग एवं वैज्ञानिक-तकनीकी को महत्त्वपूर्ण मानते थे। साथ ही हमारी प्राचीन संस्कृति एवं वेदों पर भारतियार दृढ़ आस्था एवं निष्ठा रखते थे। अपने संकुचित क्षेत्र-विस्तार एवं भारतीय विरासत से जरा हट जाने के कारण ब्रह्मसमाज सामान्य जनता की पहुँच से दूर होने लगा। लेकिन सरलता, लोक-जीवन पर आश्रित विचार, आडंबरहीनता आदि के कारण आर्य समाज में साधु, संत, ब्रह्मचारी, देशभक्त शामिल होने लगे। भारतियार ऐसे लोगों से संबद्ध थे। ब्रह्म समाज के प्रति भारतियार का झुकाव होने पर भी तमिल विद्वान् कैलाशपति ने अपने लेख 'भारतीयुम वेद मरबुम' में भारतियार

को आर्य समाजी के रूप में स्थापित किया है।

वैष्णव भक्ति परंपरा को मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपने काव्य-लोक का केंद्र बनाया था। राम और कृष्ण की भक्ति के साथ-साथ गुप्तजी ने राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना का पुट भी मिला दिया था। 'साकेत' में उर्मिला के माध्यम से गुप्तजी की चिंता अभिव्यक्त होती है—

राज्य लिए मरते हैं!
सच्चा राज्य परंतु हमारे कर्षक ही करते हैं,
जिनके खेतों में है अन्न
कौन अधिक उनसे संपन्न?
पत्नी सहित विचरते हैं वे, वह-वैभव भरते हैं!

भारतियार ने 'भारतीय ज्ञान परंपरा' के विविध पहलुओं का खूब मंथन किया था। इस परंपरा के दौरान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि को मनुष्य के जीवन के ध्येय के रूप में माना जाता है। 'ब्रह्म का ज्ञान' इस परंपरा का अभिन्न अंग है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं एकात्मवाद आदि इस ज्ञान के साधन हैं। मूलतः भारतियार एक शाक्त थे। शक्ति का ही नहीं, कण्णन पाट्टु में भारतियार ने कान्हा के सभी रूपों की आराधना की है। अलौकिक चिंतन की ओर वे उन्मुख होते हुए दिखाई देते हैं। इस चिंतन-मंथन की प्रक्रिया में लगनेवाले भारतियार एक दृढ़ संकल्प से युक्त वैरागी भक्त के रूप में दिखाई देते हैं। अपनी आराध्य देवी योग शक्ति से भक्त सुब्रह्मण्य भारतियार कुछ वीरों की माँग करते हैं। दूसरे स्थान पर शक्ति के उपासक कवि अपने शत्रुओं को चेतावनी देते हुए लिखते हैं—

ओम शक्ति ओम शक्ति ओम-पराशक्ति
ओम शक्ति ओम शक्ति ओम
…घेरो मत भाग जाओ, हे मेरे शत्रु
उछलकर आती है वह बरछी।

हिंदी काव्य-जगत् में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का श्रेय गुप्तजी को दिया जाता है। तमिल काव्य-जगत् में गद्यात्मक शैली का प्रयोग भारतियार के काल में पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रचुर मात्रा में होने लगा। उस समय भारतियार ने इस नव्य शैली और पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार तो किया था, लेकिन भारतियार ने हमेशा अपने आप को भारतीय परंपरा से पूर्ण रूप से अलग नहीं किया। बंगला भाषा की कहानियों के प्रति सुब्रह्मण्य भारतियार आकृष्ट हुए। व.वे.सु. अय्यर के साथ मिलकर उन्होंने इन कहानियों को पढ़ा। कहानी लेखन के प्रति उन्मुख होकर कुछ कहानियों की रचना भी की थी। समय-समय पर उनकी कहानियाँ 'सुदेशमित्तिरन' पत्रिका में प्रकाशित भी होने लगीं। 1919 ई. में उन्होंने दो कहानियाँ प्रकाशित कीं, जिसमें तत्कालीन समाज की कटु आलोचना थी। 'भूलोक रंभै' शीर्षक उनकी कहानी में देवदासियों की त्रासदी का विशद वर्णन हुआ है। 'कांतामणि' कहानी में बेटी अपने पिता के दूसरे विवाह से असहमत होती हुई दिखाई दी। इसमें पुरुष प्रधान पारिवारिक व्यवस्था में स्त्रियों की दुर्दशा का सजीव चित्रण किया गया है। 'रेईल स्थानम्' कहानी में तीन पत्नियों के मुसलमान पति की दुर्दशा को अत्यंत हास्यात्मक ढंग से चित्रित करते हुए यह संदेश भी भारतियार ने दिया कि एक ही पत्नी से विवाह करने से वह शांतिपूर्वक जीवन बिता सकता है। नहीं तो किसी भी पति को प्रतिदिन पत्नियों के मनमुटाव से जूझना पड़ेगा। उन्होंने 'प्रेतों का समूह' शीर्षक कहानी में तीव्र वीरता एवं धैर्य की बात करनेवाले तथा वास्तविक जीवन में कथनी और करनी में तालमेल न बैठानेवाले लेखक पर व्यंग्य करते हुए अत्यंत रोचक ढंग से कहानी को आगे बढ़ाया है। 'आरिल ओरु पंगु (छह में एक भाग)' शीर्षक कहानी में भारतियार ने भारत देश में जड़ जमानेवाली जाति-व्यवस्था और तज्जनित

ईसाई मिशनरियों द्वारा दलितों के धर्म-परिवर्तन की समस्या की ओर हिंदुओं को सचेत किया था।

गुप्तजी भी देश के विकास के लिए किसानों के योगदान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं—

तो भी कृषक ईंधन
जलाकर खेत पर हैं जागते,
यह लाभ कैसा है, न जिसका
मोह अब भी त्यागते॥

भारतियार की विशेषता यह है कि प्राचीन संस्कृति एवं वैदिक जीवन के पक्षधर होने पर भी उनकी दृष्टि हमेशा ही वैज्ञानिक रही है। उनका विचार था कि भारत जैसा कृषि प्रधान देश विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में नवाचारों को न अपनाने के कारण ही पश्चिमी देशों की तुलना में पिछड़ गया था। उनका विचार था कि देश के हित और विकास के लिए हमें ज्ञान-विज्ञान की खोज करते हुए उन्हें अपनाना चाहिए।

लोहे को पिघलाकर द्रववत् करें
यंत्रों का उत्पादन करें
ईख को कसकर रस निकालें
समुद्र में पैठकर मोती निकालें।

राष्ट्रीय ध्वज की वंदना दोनों ही कवियों ने की है—

भारत का झंडा फहरे
छोर मुक्तिपट का क्षोणी पर
छाया काके छहरै।
(मैथिलीशरण गुप्त)

माँ का दीप्तिमान ध्वज देखो-उसे
शीश झुकाकर नमन करो
प्रशस्ति गीत गाओ
ध्वज का खंभ ऊँचा है।
(सुब्रह्मण्य भारतियार)

साहित्य सर्जक होने के साथ-साथ गुप्तजी राजनीति के क्षेत्र में कुछ समय तक पदार्पण कर चुके थे। उपेक्षित नारी-पात्रों को वाणी देते हुए अपनी नारीवादी चेतना की झलक गुप्तजी ने दिखाई है। वे 'पद्मभूषण' से विभूषित थे। महान् सर्जक, साहित्यकार, देशप्रेमी, तत्त्वद्रष्टा, मानव प्रेमी, समाज सुधारक इत्यादि बहुआयामी रूपों व गुणों से युक्त महाकवि भारतियार जैसे महानुभाव का जन्म अकसर नहीं होता। गरीबी एवं अभाव से लड़नेवाला यह परम योद्धा अपने पौरुष, आदर्श जीवन, सुसंस्कृत जीवन-शैली आदि अद्भुत गुणों के कारण अनुकरणीय है। उनके सृजनलोक से प्रभावित परवर्ती साहित्यकार इस युगसृष्टा के पथ के अनुयायी बनकर आज भी भारतियार की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। कालजयी सुब्रह्मण्य भारतियार तमिल प्रदेश के लिए ही नहीं बल्कि समस्त भारत के लिए अत्यंत बहुमूल्य धरोहर हैं। भारतियार को महाकवि एवं राष्ट्रीय कवि के रूप में जो प्रतिष्ठा मिली है, वह हर एक भारतवासी के लिए गौरव की बात है। उनके पत्रकार, गद्यकार, संगीतज्ञ, समाज-सुधारक, तत्त्वज्ञानी आदि रूपों को भी उभारना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

गुप्तजी और सुब्रह्मण्य भारतियार के साहित्य-लोक में सौंदर्य-चेतना भरपूर है। दोनों ही कवि सैद्धांतिक तौर पर आर्यसमाज की ओर अधिक झुके थे। गुप्तजी ही नहीं, भारतियार भी हिंदी के प्रति झुकाव रखनेवाले थे। दोनों की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में वैष्णव भक्ति का पुट मिलने पर भी भारतियार के व्यक्तित्व में शक्ति की उपासना प्रबल रूप से दिखाई देती है। गुप्तजी की रचनाओं में वैष्णव भक्ति का बाहुल्य है। दोनों ही भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। दोनों की कविताओं में एक ओर प्राचीन विरासत के प्रति गर्व है तो दूसरी ओर उसके पतन की चिंता भी व्यक्त है।

□

vpadmavathy@psgrkcw.ac.in

पंडित विद्यानिवास मिश्र का हिंदी मन

—प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी

पं. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, "भाषा स्थिर न होकर सर्जनात्मक मानवीय प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ती रहती है। जहाँ तक सिद्ध वस्तु के रूप में भाषा के विश्लेषण की बात है, वह सामान्य व्याकरण या सामान्य भाषाशास्त्र के अंतर्गत लाई जा सकती है, किंतु जहाँ नियमों के परिधि के विस्तार की बातें आती हैं या पूर्व निश्चित संकेतों के द्वारा द्योतित अर्थों या दूसरे शब्दों में अभिधेय संदेशों की परिधि के बाहर जाकर अभिधेयतर या वाच्येतर नवसर्जित संदर्भ के उन्मीलन का प्रश्न उठता है, वहाँ भाषा का एक अतिरिक्त प्रयोजन जुड़ जाता है।" इसी संदर्भ को लक्ष्य कर पंडितजी ने दूसरी जगह उद्धृत किया है—"साहित्य का उद्देश्य सामाजिक संप्रेषण है। इस विषय में कोई भी मतभेद नहीं हो सकता, क्योंकि साहित्य का माध्यम भाषा है और भाषा समाज की देन है।" इस रूप में साहित्य का माध्यम भाषा है और "भाषा समाज को परिभाषित करने वाला उसका एक मुख्य अभिलक्षण है, भाषा समाज के समस्त व्यवहार का प्रकृष्ट साधन भी है। इससे भी आगे जाकर यह कहा जा सकता है कि समाज और भाषा एक-दूसरे के बिना कोई अस्तित्व नहीं रखते।" और ऐसी स्थिति में ही "भाषा जीवन की संवेदना से घुल-मिल जानेवाली भाषा होगी। वह एक कदम आगे ले जानेवाली होगी। उसकी लय ऐसी बरबस मोहक लय होगी, आधी परिचित होगी, आधी अपरिचित और इसीलिए आदमी को अनायास आगे खींच ले जाने में समर्थ होगी।"

पं. विद्यानिवास मिश्र संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी के बहुत बड़े विद्वान् हैं। व्याकरण, भाषाविज्ञान और समाजशास्त्रीय शाखाओं के ज्ञान में भी निष्णात हैं। यद्यपि उनके अध्ययन की पृष्ठभूमि संस्कृत ही थी, लेकिन उन्होंने पंडिताई को अपने जीवन का लक्ष्य न मानकर सर्जना का वरण किया। शास्त्र का ज्ञान जड़ होकर नहीं, अपितु समकालीन जीवन-संदर्भों में रस बनकर उनकी सर्जना में गतिशील होता रहा, प्रवाहित होता रहा। अपने समय से गहरे जुड़े होने के कारण उन्होंने लोक को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। वे इस बात को भली-भाँति समझते थे कि ज्ञान, संवेदना, भाषा सभी लोक में ही जीवंत रूप से मूर्तिमान होती हैं। अस्तु, उनका संस्कार भी लोक निर्मित ही होता है। अति पिछड़े हुए विपन्न, कछार में उत्पन्न और पले-बढ़े उन्होंने गाँव को भरपूर जिया, उसे बखूबी जाना-पहचाना, उसकी विपन्नता में से प्रस्फुटित होती समृद्ध छवियों और प्रकृति-सौंदर्य को लिया इसके पश्चात् अर्जित किए हुए ज्ञान के भीतर उनका अनुभूत लोक गुंजायमान होता रहा और उसका मधुर स्वर प्रस्फुटित होता रहा।

हिंदी को लेकर पंडितजी के जो निबंध हैं, उनमें

---

* तेजपुर विश्वविद्यालय, असम में प्रोफेसर।

उनकी मौलिक चिंतन दृष्टि हर समस्या के भीतर गहराई से प्रविष्ट है और उसे परत-दर-परत खोलती चली जाती है। साथ ही किसी समाधान की ओर इंगित भी करती है। पंडितजी की ईमानदारी सही बात की पहचान तो करती ही है, उसे निर्व्याज भाव से कहती भी है, बिना किसी भय, दबाव, किसी भी प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परवाह किए। उन्हें जो जँचा, जैसा लगा, उसे कहने में वह कभी संकोच नहीं करते। ऐसा करते समय वे किसी नफा-नुकसान के बारे में सोचते ही नहीं। हिंदी की अस्मिता पर विचार करते हुए उन्होंने उसकी समकालीन दुर्दशा को पहचाना। राजनीति के पूर्व और समकालीन परिप्रेक्ष्य को तोलते हुए वे कहते हैं कि "पहले राजनीति में जो हिंदी नहीं बोल पाता था, क्षमा-याचना करता था। अब उलटी स्थिति है। जो अंग्रेजी नहीं जानता, वह क्षमा-याचना करता है। हिंदी का प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न विरोध कई रूपों में होता है। एक रूप यह भी है कि हिंदी अब भारतीय भाषाओं के महत्त्व को कम कर देगी। पंडितजी का उत्तर है कि हिंदी स्वाधीनता की वाणी है, इसलिए कई दूसरी भाषाओं की स्वाधीनता और उनकी गरिमा का आदर करती है। हिंदी, अंगेजी की तरह प्रभु भाषा नहीं बनना चाहती, वह सख्य भाषा बनना चाहती है। यही उसका मज्जागत संस्कार है।"

उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय के साथ अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में भी देखा है और हिंदी में व्याप्त चेतना की विशद पहचान करते हुए इस बात की घोषणा की है—"हिंदी में एक अंतरराष्ट्रीय भाषा होने की पूर्ण क्षमता है। इस क्षमता की पहचान अगर नहीं की जाएगी तो हिंदी तकनीकी प्रगति की दौड़ में काफी पीछे रह जाएगी। अपने देश में लोग हिंदी के बारे में कितने ही उदासीन हों, किंतु जो विद्वान् भाषा के प्रवाह की गति को पहचानते हैं और जो भाषाविज्ञान के सामाजिक पक्ष के पंडित हैं, वे अच्छी तरह समझने लगे हैं कि बीसवीं शताब्दी का अंत होते-होते विश्व में कुल दस भाषाएँ अंतरराष्ट्रीय महत्त्व की रह जाएँगी, जिनमें आपसी आदान-प्रदान सहज और स्वयंचालित बनाने के लिए यांत्रिकीय सुविधाएँ सुलभ हो सकेंगी, उनमें हिंदी का प्रमुख स्थान होगा। इस निष्कर्ष पर जो पहुँचे हैं, वे अपनों के पीछे दौड़नेवाले प्रेमी हैं, वे वस्तुपरक दृष्टि से भाषा की क्षमता पहचाननेवाले भाषाशास्त्री हैं।"

आगे फिर वे कहते हैं कि हिंदी में अंतरराष्ट्रीय भूमिका के लिए जो शक्ति है, वह व्यापक स्तर पर ग्राह्य भाषा के रूप में उसकी मान्यता, शक्ति और उसकी संख्या से नहीं आई है और न केवल उसके साहित्य के महत्त्व से आई है, वरन् जिन कारणों से आई है, उनमें पहला कारण तो यही है कि "वह सदियों से अंतःप्रांतीय व्यवहार की भाषा थी। किसी भाषा का व्यवहार जहाँ तीर्थों व व्यापारिक केंद्रों में होता था, वहीं रमते योगियों के सत्संग में भी होता था। यह भाषा बहता नीर थी। दूसरा कारण हिंदी की वह विरासत थी, जो उसने अप्रत्यक्ष रूप में संस्कृत से और प्रत्यक्ष रूप से मध्यदेशीय प्राकृत से भी, न संस्कृत का कोई प्रदेश का न प्राकृत का। ये समस्त प्रदेशों को जोड़ने वाली भाषाएँ थीं। हिंदी भी इसी प्रकार की संस्कृत की तरह केंद्रोन्मुख शक्ति की स्थापना करनेवाली भाषा रही। हिंदी भाषा का देश पूरा हिंदुस्तान है, कोई एक प्रांत या राज्य नहीं। हिंदी की शक्ति का तीसरा कारण है, उसका जन भाषाओं से गहरा संबंध। हिंदी क्षेत्र में लगभग अट्ठारह जन भाषाएँ हैं और इस क्षेत्र के व्यक्ति एक विचित्र प्रकार के द्विभाषी हैं। ये बहुत निजी पारिवारिक परिवेश में एक भाषा बोलते हैं और एक व्यापक परिवेश में दूसरी भाषा। इस प्रकार दोनों को साधते चलते हैं, क्योंकि दोनों के प्रयोजन महत्त्वपूर्ण हैं—एक सीमित क्षेत्र की आत्मीयता और एक बड़े क्षेत्र के होने का भाव। हिंदीभाषी जन इसमें किसी का मोह छोड़ नहीं सकता, इसीलिए वह निरंतर संतुलन बनाए रहता है, वह जनपद जीवन का संस्पर्श देता है। साथ ही, पूरे देश की भावना को उभार देती है-जनपद की

भाषा। यह आकस्मिक संयोग मात्र नहीं है कि हिंदी में तद्भव और तत्सम शब्दों का संतुलन है। वह हिंदी में निरंतर सामान्य जीवन से लेने तथा उन्हें जीवन में ढालने की क्षमता देता है और उसके साहित्य में छोटे-छोटे ग्रामांचल की पीड़ा को अंकित करने की तीव्र आकांक्षा भरता है।"

हिंदी पर यह अँगुली उठाई जाती है कि तकनीकी ज्ञान को अभिव्यक्त करने की क्षमता उसमें नहीं है। पंडितजी ने इस आरोप को सिरे से नकारते हुए उदाहरण पेश किया है कि "मानव सभ्यता के आदिकाल से ही भारतीय प्रौद्योगिकी की उन्नत अवस्था के प्रमाण आज भी मिलते हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण श्रृंगवेरपुर में उपलब्ध प्रथम शताब्दी की जल प्रणाली है। धातु विज्ञान के क्षेत्र में भी पुरातन भारत की उपलब्धियाँ भारतीयों की तत्कालीन आविष्कार और अन्वेषण क्षमता को पूर्णतः सिद्ध करती हैं। मुगलकाल के मध्य तक भारत की आर्थिक समृद्धि स्पृहणीय थी। भारत तब दुनिया का सबसे बड़ा बाजार था। उसकी हुंडी की साख विश्वभर में बहुत ऊँची थी। उन्होंने अपनी चिंता व्यक्त करते हुए आगे लिखा है—"दुर्भाग्यवश, अंग्रेजी के मोह और अतिशय पश्चिमीकरण के मोह के छल-छद्म से आई आधुनिकीकरण की आँधी में हमने अपनी बौद्धिक विरासत की परंपरा से प्राप्त चिंतन की प्रणालियों, मानकों एवं वैज्ञानिक व तकनीकी पृष्ठभूमि की पूरी तरह उपेक्षा की। हमारे पास भी पदार्थों का वस्तुओं की परस्पर संबद्धता एवं उनकी परस्पर पूरकता का ज्ञान था। हमने इसको एकदम भुला दिया। इकाइयों के विखंडन से कहीं अधिक महत्त्व हमने उनकी परस्पर संबद्धता व परस्पर आश्रित होने की समझ को दिया था। आज हमारा ज्यादा ध्यान अंग्रेजी के वाग्जाल में ही लगा रहता है और हमारा अधिकांश समय इस वाग्जाल को सुलझाने में ही चला जाता है। इस भाषिक जकड़ से ग्रस्त होकर बहुत सारी रचनात्मकता कुंठित हो जाती है। अपने क्षेत्र में (जिसमें अध्ययन एवं दक्षता अर्जित करना हमारा अभिष्ट होता है) इसीलिए आगे काम करने का उत्साह शेष नहीं रह जाता है। आज देश के इंजीनियरिंग शिक्षा प्राप्त अधिकतर नवयुवक, जो अपने विशिष्ट ज्ञान को छोड़कर मात्र मैनेजर बनने की होड़ में दौड़ रहे हैं, इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।" हमारी बिडंबना यह है कि हम बाहर से आए ज्ञान को विदेशी भाषा में प्राप्त करते हैं और अभिव्यक्ति देते हैं, जिसमें हमारी बुद्धि और कार्यक्षमता आहत होती है। हिंदी में नए ज्ञान को वहन करने की पूरी क्षमता है। पंडितजी के शब्दों में से यदि हम हिंदी में अपना काम करें तो यह हिंदी पर हमारी अनुकंपा नहीं होगी। इससे हमारा कार्य ही अपेक्षाकृत आसानी से सहज, द्रुतगति से संपन्न हो सकेगा। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की तरुण प्रतिभा का समय नष्ट न हो और यह अंग्रेजी को उतना ही जाने, जितना की अत्यंत आवश्यक हो। अंग्रेजी बोलना सीखने के प्रयत्न में हमारा अनावश्यक समय लगता ही है, हम उसके द्वारा बने विचार अथवा कार्य के दायरे में सिकुड़ते और बँधते चले जाते हैं। उन्होंने अपने लेख में इस बात को हमेशा रेखांकित किया है कि "हिंदी को महत्त्व देना है। उसके सामान्य जन की मेधा और हित की कद्र करना है। हिंदी देश के उत्कर्षपूर्ण कारकों में से एक है।"

पंडितजी ने अपने हिंदीपरक निबंधों में सरकार व देश के विभाजनों द्वारा जो हिंदी की उपेक्षा हुई है और हो रही है, उस पर भी प्रहार किया है, साथ ही उन्होंने यह भी महसूसा है कि हिंदी तो अपनों से ही हारी है, देश की अनेक भाषाओं के बीच वर्तमान एकसूत्रता की पहचान की है तथा हिंदी और उसकी बोलियों के मध्य के संबंधों को भी पहचाना है। 'हिंदी और उर्दू की प्रकृति' नामक निबंध में हिंदी और उर्दू के अपने-अपने स्वरूप तथा स्रोतों की पहचान करते हुए उन्होंने यह पाया है कि उर्दू के हित की नहीं, बल्कि उसके वोट बैंक की चिंता रही है। राजनीतिज्ञों

द्वारा एक तरफ तो यह बात कही जाती है कि किसी भाषा का किसी जाति से संबंध नहीं होता, अर्थात् उर्दू भी मुसलमानों की भाषा न होकर सबकी भाषा है, तो इसकी तरफ मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए उर्दू को औजार बनाया जाता रहा है। इन सबसे हटकर भाषिक स्तर पर पंडितजी ने उर्दू के साथ हिंदी की तुलना करते हुए यह बताया है कि "आप अगर उर्दू के साथ हिंदी की तुलना करें तो आपको अंतर स्पष्ट हो जाएगा कि उर्दू ने पूरा-पूरा व्याकरण ढाला है फारसी और अरबी के वजन पर, हिंदी ने संस्कृत के वनजन पर अपना व्याकरण नहीं बनाया है। संस्कृत के शब्द लिये हैं, फारसी से लिये है, तुर्की से लिये हैं किंतु अपना व्याकरण नहीं ढाला है। जिन शब्दों को लिया है, उन्हें खपाकर लिया है। लेने में हिंदी उदार है, हाथ पसार करके लिया है। किसी को हीन नहीं समझा हैं, किंतु अपनी सत्ता, अपनी अस्मिता खोकर नहीं। जैसे गाँव का आदमी कर्ज लेता है, तो कर्ज देता है, कर्ज बाकी नहीं रखता। हिंदी ने कर्ज लिया है, दिया है और हिंदी को जब-जब आवश्यकता महसूस होती है, खुलकर कर्ज लेती है—गाँव की भाषा से, बाजार की भाषा से, बोलियों से खुलकर लेती है, तभी उसमें प्राण हैं। न ले तो वह ठहर जाएगी। आज के डेढ़ सौ वर्षों के बाद हिंदी का जो रूप निखरा है, वह केवल संस्कृत के शब्दों से नहीं निखरा है। तमाम बोलियों के शब्द उसमें आए हैं। साहित्यिक ब्रजभाषा में मुहावरों की रवानगी थी, लेकिन उसे प्राप्त करने में काफी समय लगा।

भिलाई में मजदूरी करनेवाला तुलसीदास की भाषा समझता है और गन्ने की खेती करनेवाला मॉरीशस या फिजी का आदमी तुलसी की भाषा समझता है और उसमें जीता है। इसीलिए वह आज भी अपनी सांस्कृतिक महत्ता या अपना सांस्कृतिक व्यक्तित्व रखता है। वह तुलसी से जुड़ा हुआ है। बाँग्ला में आप देखिए, वहाँ भद्रलोक की भाषा एक और सामान्य लोक की दूसरी। तमिल में ब्राह्मण तमिल अलग होती है। कहीं हिंदी ब्राह्मण देखी है? शुरू से हिंदी में यह प्रवृत्ति नहीं थी।" इसी प्रकार भाषिक बनावट के आधार पर भी पंडितजी ने हिंदी को अन्य भाषाओं के साथ तौलने व मापने का यत्न किया है। बतौर उदाहरण, हिंदी में शब्द-निर्माण की प्रक्रिया की सहूलियत का विवेचन करते हुए उन्होंने यह समझाने का यत्न किया है कि "अगर हिंदी को केंद्र में रखकर आप मशीनी अनुवाद के उपकरण तैयार करना चाहें तो कहीं अधिक आसान हैं। बनावट के धरातल पर भारत की सभी भाषाएँ समान हैं, सबका सोचने का तरीका समान है।

अंत में पंडितजी की ही बात से इस लेख का समापन इस रूप में द्रष्टव्य है— "हिंदी की बात करता हूँ तो मन में बड़ा दुःख होता है, कुछ भी उत्साह नहीं होता। हिंदी की शक्ति, हिंदी का इतिहास, इसकी उदारता, इसका लचीलापन, इसकी समृद्धि, इसकी जनभावना, इसकी लोक शक्ति और इसमें व्याप्त एक व्यापक नारायण भाव, सब जानते हुए, जो वर्तमान स्थिति है, सांस्कृतिक गिरावट या मूल्यों की पहचान की, उसमें हिंदी की बात करते समय बड़ा दुःख होता है, पर वह दुःख भी मैं बाँटना चाहता था। आशा करता हूँ कि आप एक क्षण ही सही, किंतु सोचेंगे, अपने भीतर सोचेंगे कि आप कहाँ है, कहाँ से आए हैं ?"

□

drskt74@gmail.com

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।

—सुमित्रानंदन पंत

हिंदी में विज्ञान लेखन की परंपरा : स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात्

—डॉ. राकेश कुमार दूबे

हिंदी में विज्ञान लेखन का आरंभ आधुनिक भारत की एक अति महत्त्वपूर्ण घटना थी। हिंदी में विज्ञान-लेखन का आरंभ 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध से आरंभ होता है, परंतु इसने तीव्रता 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ग्रहण की। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से संपर्क के क्रिया एवं प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीयों ने सब उन्नतियों के मूल विज्ञान को लोकभाषा हिंदी में लिखकर आम जनता तक पहुँचाने एवं उससे आम आदमी को लाभ पहुँचाने का उद्योग आरंभ किया।

आधुनिक भारतीय इतिहास में विज्ञान का अध्ययन एक उपेक्षित विषय रहा है जिसके संबंध में प्रख्यात इतिहासकार डॉ. कालीदास नाग का भी स्पष्ट मत रहा है कि 'हमारे देश में बहुत कम इतिहासकारों ने विज्ञान का अध्ययन किया है और बहुत ही कम वैज्ञानिकों ने विज्ञान के इतिहास पर ध्यान दिया है।' 19वीं सदी में भारत में हुए पुनर्जागरण में पश्चिमी शिक्षा एवं पश्चिमी विचारों के साथ ही पश्चिमी विज्ञान का योगदान भी काफी महत्त्वपूर्ण था। 19वीं शताब्दी के भारतीय जीवन में प्रेस और बारूद ने तो अपना प्रभाव दिखाया ही, किंतु कंपास, दूरबीन आदि ने यह भावना भी उत्पन्न कर दी कि मनुष्य अपने चारो ओर की परिस्थितियों पर काबू पाने की क्षमता भी रख सकता है। नित्य नए आविष्कारों के युग में भारतीय मन का नई दिशाएँ खोजना स्वाभाविक था। अपनी प्राचीन समृद्ध संस्कृति का संबल लेकर उसने नवीन से प्रेरणा ग्रहण की। भारत यूरोप के साथ आनेवाले धर्म से नहीं डरा, बल्कि भय उसे यूरोप के विज्ञान को देखकर हुआ, उसकी बुद्धिवादिता, साहस और कर्मठता से हुआ, अतएव भारत में नवोत्थान का जो आंदोलन उठा, उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परंपरा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युत, यूरोप की विशिष्टताओं के साथ उसका सामंजस्य बिठाना था जैसा कि लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने बहुत ही सटीक टिप्पणी इस संदर्भ में की थी कि 'वास्तव में कोपरनिकस, मोर्ले तथा अन्य यूरोपीय विद्वानों के विचारों ने भारतीय मध्ययुगीन जीवन की जड़ हिला दी। यहीं उन्नीसवीं शताब्दी का वास्तविक महत्त्व है, नहीं तो राजनीतिक उत्थान-पतन तो पहले भी हो चुके थे।'

पुनर्जागरण का आरंभ 14वीं सदी में यूरोप में हुआ तो इसकी आखिरी यात्रा 19वीं शताब्दी में बंगाल में हुई और यह बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग ही

---

* पुस्तक भारती रिसर्च जनरल, टोरंटो, कनाडा के सह-संपादक।

था जिसने ज्ञान की इस मशाल को इस उपमहाद्वीप में धारण किया। बंगाल से यह महाराष्ट्र और मद्रास में गई। आर्य समाज ने पश्चिमोत्तर प्रांतों, विशेषकर गुजरात, पंजाब व आधुनिक उत्तर प्रदेश को विशेष रूप से प्रभावित किया। इस जागरण का स्वरूप यह था कि इसकी चेतना का बीज वपन धर्म के क्षेत्र में हुआ, सामाजिक क्षेत्र में यह चेतना पल्लवित-पुष्पित हुई और इसमें फल राष्ट्रीय राजनीतिक भूमिका पर लगा। इस तरह यह चेतना अपने संकुचित दायरे से निरंतर व्यापक होती गई है और इसकी प्रारंभिक धार्मिक चेतना अंततः राष्ट्रीय भूमिका ग्रहण करती चली गई।

(कोलकाता) कलकत्ता के साथ पूरे उत्तर भारत तथा मध्य भारत में बनारस में, इस जागरण की लहरें सबसे पहले आईं। उस समय इस जागरण का नेतृत्व यहाँ भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने किया। भारतेंदुजी (1850-1885 ई.) ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व द्वारा जन सामान्य में उठ रही नवीन भावनाओं को दशा एवं दिशा दी। इस सार्वभौम ऐतिहासिक प्रक्रिया में भारतेंदु तथा उनके नेतृत्त्व में हिंदी प्रदेश ने सक्रिय भाग लेकर गतिशीलता का परिचय दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक हिंदी प्रदेश में परंपरागत भारतीय सभ्यता और यूरोपीय सभ्यता में पारस्परिक संघर्ष चलता रहा, परंतु उत्तरार्द्ध में भारतेंदुजी ने भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी में रहते हुए दोनों में समन्वय स्थापित करने एवं जनता में चेतना लाने का प्रयास किया।

उत्तर भारत में नवजागरण का उन्मेष भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है और इसका सबसे सशक्त माध्यम बनी—हिंदी भाषा। परंतु विज्ञान के क्षेत्र में उत्तर भारत में जो नवजागरण हुआ उसका चरित्र संपूर्ण भारत में हुए नवजागरण से काफी भिन्न तो था ही, साथ ही विज्ञान के क्षेत्र में हुआ यह नवजागरण उस नवजागरण से काफी पहले ही आरंभ हो चुका था, और वह भी काफी सशक्त रूप में। 19वीं सदी के चौथे दशक से ही हिंदीभाषी क्षेत्रों के बुद्धिजीवियों ने विज्ञान के महत्त्व को जान लिया था और साथ ही यहाँ की प्रांतीय सरकार की भी यही मंशा थी कि यहाँ के लोगों में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हो, परंतु दोनों के उद्देश्य भिन्न थे। हिंदी भाषी क्षेत्रों के बुद्धिजीवियों का जहाँ यह उद्देश्य था कि इस क्षेत्र के लोग पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषा में जान सकें और उससे अपनी उन्नति कर सकें; वहीं, यहाँ की सरकार की मंशा थी कि सिंचाई, पैमाइश और लोक-निर्माण विभागों के लिए उपयुक्त व्यक्ति मिल सकें। यहीं कारण था कि हिंदीभाषी क्षेत्र में विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रयास आरंभ हुआ, उसमें यह अंतर्द्वंद्व स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

उपलब्ध स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि हिंदीभाषी क्षेत्र में विज्ञान-लेखन का आरंभ 1840 ई. से आरंभ होता है। हिंदीभाषी क्षेत्र में विज्ञान-लेखन का जो क्रम आरंभ हुआ, इस संदर्भ में तीन बातें विशेष उल्लेख करने योग्य हैं—प्रथम, हिंदी में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका ईसाई मिशनरियों की थी। द्वितीय, हिंदीभाषी क्षेत्र में अव्यवस्थित सबसे प्रमुख प्रदेश पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की राजभाषा तो यद्यपि उर्दू थी, परंतु जनता का अधिकांश काम हिंदी भाषा में चलता था और सिंचाई एवं लोक निर्माण विभागों के लिए ऐसे लोगों की नितांत आवश्यकता थी, जो कि हिंदी भाषा भी जानते हों और ज्ञान-विज्ञान से भी परिचित हों। और तृतीय, 1843 ई. का वर्ष इस संदर्भ में एक विभाजक रेखा मानी जाती है, क्योंकि इस वर्ष दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिसने विज्ञान आंदोलन को काफी बल प्रदान किया।

विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका ईसाई मिशनरियों की थी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि, मिशनरियों का

उद्देश्य ईसाइयत का प्रचार और आधिकाधिक भारतीयों को ईसाई बनाना था, फिर भी उन्होंने भारतीय भाषाओं में लेखन और प्रकाशन का कार्य आरंभ किया। इस कार्य हेतु भारत के कई भागों में सोसाइटियों की स्थापना की गई जिनमें कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (1817 ई.), आगरा स्कूल बुक सोसाइटी (1833 ई.) और नॉर्थ इंडिया क्रिश्चियन ट्रक्ट ऐंड बुक सोसाइटी, इलाहाबाद (1848ई.) इत्यादि प्रमुख थीं। इन संस्थाओं से ईसाइयत के अलावा अन्य विषयों की भी पाठ्य पुस्तकें, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं, भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हुईं।

हिंदी में विज्ञान विषयक जो आरंभिक पुस्तकें लिखी गईं, उनमें 'भूगोलसार' अथवा 'ज्योतिष चंद्रिका' (ओंकार भट्ट जोशी) 1840 ई. में, 'रसायन शास्त्र प्रश्नोत्तरी' 1847 ई. में, 'कृषि कौमुदी' (लालप्रताप सिंह) 1856 ई. में; 'सरल त्रिकोणमिति' (पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र) 1873 ई. में; 'सुलभ बीजगणित' (कुंजबिहारी लाल) 1875 ई. में; 'रसायन शास्त्र' (मुंशी नवलकिशोर) 1883 ई. में; 'गति विद्या' (पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र) 1885 ई. में, 'स्थिति विद्या' (पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र) 1886 ई. में, 'रसायन संग्रह' (विश्वंभरनाथ शर्मा) 1896 ई. में, इत्यादि प्रमुख थीं। हिंदी भाषा में विज्ञान-लेखन का आरंभ मालवा के आष्टा ग्राम निवासी ओंकार भट्ट ज्योतिषी के 'भूगोलसार' अर्थात् 'ज्योतिष चंद्रिका' से माना जाता है, जो आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के लिए आगरा के छापेखाने से दिसंबर, 1840 ई. में प्रकाशित हुई थी। इस ग्रंथ को लिखने का क्या कारण था, इसको बतलाते हुए ग्रंथकार ने स्वयं ही ग्रंथ की भूमिका में बड़ा ही स्पष्ट लिखा है, उन्हीं के शब्दों में, "मालव देश में भूपाल प्रदेश के अजंठ, श्रीलान्सिलट विल्किन्सन साहिब ने सीहोर छावनी में आज्ञा दी कि भूगोल विषय में श्रीमद्भागवत, सिद्धांत शिरोमणि और जैनमत इत्यादिक और अंग्रेज लोगों के जानने में क्या भेद है, सो इन चारों मत का अंतर निकालो; प्रत्येक में जो ठीक नहीं, दृष्टि में आवे उसको वैसा ही लिखो, और जो विद्या, बुद्धि और गणित से ठीक निकले, वह भी लिखो, किसी मत का पक्षपात न करो। ये बातें सुन साहिब की आज्ञा को सिर पर धरके आष्टा ग्रामवासी ब्रांह्मण गुजराती औदुंबर जाति के ज्योतिषी ओंकार भट्ट ने सब मतों का विचार करके इस ग्रंथ को आरंभ किया; और नाम इसका 'भूगोल सार' रखा।"[5] आगरा स्कूल बुक सोसाइटी, जिसके सचिव जे. जे. मूर थे, के आदेश पर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया था और प्रथम आवृत्ति में इसकी एक हजार प्रतियाँ प्रकाशित हुई थीं। इस पुस्तक में पुराण और सिद्धांत को कोपरनिकस की ज्योतिष से परीक्षा की गई है और संपूर्ण पुस्तक गुरु-शिष्य संवाद की परंपरा में प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है।

1843 ई. का वर्ष हिंदी में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में एक विभाजक रेखा मानी जाती है, जिसके दो कारण थे—प्रथम, पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध (वर्तमान उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) की शिक्षा संस्था का नियंत्रण बंगाल से निकलकर प्रांतीय सरकार के हाथ में आया और द्वितीय, इसी वर्ष मातृभाषा के परम हितैषी जेम्स थॉमसन् की नियुक्ति पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर के रूप में हुई। थॉमसन् (1843-53 ई.) भी बंबई के गवर्नर एलफिंस्टन के समान भारतीय जनता के हितैषी थे। बंगाल में सारा जोर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनाने पर था, पर थॉमसन् की शिक्षा योजना मातृभाषा पर आधारित थी। उनके समय की पश्चिमोत्तर प्रदेश की शिक्षा संबंधी एक रिपोर्ट में कहा गया कि 'इस भू-भाग में बंगाल की तरह अंग्रेज अधिक नहीं हैं। जो हैं भी, उनकी माली हालत अच्छी नहीं है। विदेश से भी यहाँ अंग्रेज कम आते हैं और विदेशी उपकरणों का भी यहाँ प्रचलन

कम है। अतएव, अंग्रेजी के अनुकूल वातावरण का यहाँ अभाव है।' इस आधार पर थॉमसन् ने देशी भाषाओं द्वारा ग्राम शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई ताकि भूमिकर और लोक निर्माण विभागों के लिए शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध कराए जा सकें।

पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के लेफ्टिनेंट गवर्नर जेम्स थॉमसन् मातृभाषा के हितैषी होने के साथ ही ज्ञान-विज्ञान के भी मातृभाषा में ही प्रचार-प्रसार के समर्थक थे, यद्यपि इसके पीछे ब्रिटिश सरकार का हित भी छिपा था। जेम्स थॉमसन् ने रुड़की में एक सिविल इंजिनियरिंग कॉलेज खोलने का प्रस्ताव रखा और 1847 ई. में यह कॉलेज खुल भी गया। कॉलेज की अनिवार्यता और सरकार का हित कितना महत्त्वपूर्ण था, इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि कॉलेज तो 1847 ई. में खोला गया, पर सरकारी विभागों में कार्यरत लोगों के प्रशिक्षण का कार्य 1845 ई. से ही यहाँ आरंभ हो गया था। पश्चिमोत्तर प्रदेश में उन दिनों महाराष्ट्र की तरह जन-शिक्षा का कार्य देशी भाषाओं—हिंदी और उर्दू में चलता था तथा इन भाषाओं में विविध पुस्तकें भी प्रकाशित होती थीं। थॉमसन् महोदय ने हिंदी में पाठ्य पुस्तकों हेतु मूल ग्रंथ लिखने या संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने के लिए, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं; पुरस्कार देने की घोषणा कर रखी थी, के फलस्वरूप जो साहित्य तैयार हुआ वह बहुत उच्चकोटि का नहीं था, किंतु उससे हिंदी प्रदेश में हिंदी में लेखन को बल मिला और इसी बात का प्रभाव था कि पश्चिमोत्तर प्रदेश में अगले 25 वर्षों में जो विज्ञान विषयक पुस्तकें लिखीं गईं, उनमें अधिकांश गणित, पैमाइश और हिसाब से संबंधित थीं। आरंभिक दौर में जो पुस्तकें लिखी गईं, उनमें से अधिकांश अनूदित थीं, पर कुछ मौलिक पुस्तकें भी लिखी गईं, जिसका उद्देश्य स्कूल के विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराना और वैज्ञानिक ज्ञान को जनता की भाषा में जनता तक पहुँचाना था।

विज्ञान विषयक पुस्तकों के लेखन एवं प्रकाशन में मिर्जापुर की ईसाई मिशनरियों का योगदान भी आरंभिक दौर में काफी महत्त्वपूर्ण था। 1838 ई. में ही मिर्जापुर में ईसाई मिशनरियों ने 'आरफन प्रेस' नामक मुद्रणालय स्थापित किया था, जहाँ से शिक्षा संबंधी कई महत्त्वपूर्ण हिंदी पुस्तकें, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं, प्रकाशित हुईं। इस मुद्रणालय से जो विज्ञान विषयक पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वह अधिकांशतः 1850 ई. के बाद शेरिंग महोदय के संपादन में निकलीं, जिनमें 'भूगोल विद्या', भूचरित्र-दर्पण', 'जंतु-प्रबंध' (1864 ई.), 'विद्वान् संग्रह', 'मनोरंजक वृत्तांत' और 'विद्यासागर' इत्यादि उल्लेखनीय थीं।

हिंदी में विज्ञान-लेखन एवं प्रकाशन का क्रम तो 1840 ई. से ही आरंभ होता है, पर हिंदी पत्रकारिता ने इस क्षेत्र में पदार्पण एक दशक बाद, वह भी काफी सशक्त रूप में किया और पदार्पण के साथ ही हिंदी पत्रकारिता ने विज्ञान विषयक जानकारी के प्रकाशन एवं लोकप्रियकरण का ऐसा क्रम आरंभ किया कि वह पूरी 19वीं सदी में चलता रहा और 20वीं सदी में वह और भी सशक्त होता गया।

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 'बुद्धिप्रकाश' वह पहला हिंदी का पत्र था जिसने अपने प्रारंभिक काल से ही बहुत ही सशक्त ढंग से हिंदी में विज्ञान विषयक सामग्री के प्रकाशन एवं लोकप्रियकरण का कार्य किया। इस पत्र का प्रकाशन 1852 ई. में आगरा से हुआ था, जिसमें विविध समाचार छपते थे। हिंदी भाषा के पत्रों का इतिहास लिखनेवाले प्रथम लेखक बाबू राधाकृष्णदास ने अपनी पुस्तक में जिस प्रकार हिंदी के प्रथम समाचार-पत्र 'उदंत मार्तंड' का

कोई उल्लेख नहीं किया है, उसी प्रकार 1857 ई. के विद्रोह से पूर्व प्रकाशित होनेवाले बहुत ही प्रमुख समाचार-पत्र 'बुद्धिप्रकाश' का भी कोई उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक के अंत में ज्ञात-अज्ञात सभी हिंदी समाचार-पत्रों का विवरण दिया है, परंतु उसमें 1852 ई. से प्रकाशित 'बुद्धिप्रकाश' का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि उन्होंने अपनी पुस्तक की पृष्ठ संख्या 63 पर 'बुद्धिप्रकाश', जिसके संपादक पंडित चंद्रशेखर गौड़ थे और जो लखनऊ से 1888 ई. से प्रकाशित होता था, का उल्लेख किया है, परंतु आगरा से प्रकाशित 'बुद्धिप्रकाश' का उल्लेख नहीं किया है।

'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन 1852 ई. में हुआ था और इसके प्रबंधक मुंशी सदासुखलाल थे। यह पत्र साप्ताहिक रूप में प्रत्येक बुधवार को आगरा के नुरूल अवसार छापेखाने में मोतीकटरा मुहल्ले से छपता था। वह समय हिंदी पत्रकारिता का आरंभिक दौर था, इसलिए इस पत्र में बहुत ही साधारण ढंग से समाचार लिखे जाते थे, परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि न केवल अपने प्रदेश, बल्कि देश और विदेश के समाचार भी इसमें प्रकाशित होते थे।

'बुद्धिप्रकाश' में विविध प्रकार के समाचार और जानकारियाँ प्रकाशित होती थीं। इस अखबार में इतिहास और भूगोल सहित विज्ञान, शिक्षा और गणित पर कई महत्त्वपूर्ण लेख छपे थे और साथ ही पाश्चात्य जगत् में हो रही विज्ञान की प्रगति संबंधी काफी जानकारियाँ भी इस पत्र ने प्रकाशित कीं। "प्रकृति ज्ञान विद्या का विषय' शीर्षक लेख में लिखा गया कि 'जानना चाहिए कि प्रकृतिज्ञान विद्या वह है जिसमें संपूर्ण संसार की दृश्य वस्तुओं के गुणों का वर्णन है जितनी वस्तु संसार में हैं, उनमें कोई-कोई गुण ऐसे हैं, जो सबमें पाए जाते हैं अर्थात् कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिनमें वे गुण न हों।"

इस पत्र ने ज्ञान-विज्ञान विषयक बहुत सारी जानकारी का प्रकाशन तो किया ही, पर साथ ही इसकी एक बहुत ही बड़ी देन यह थी कि इस पत्र ने पाश्चात्य जगत् में हो रही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति एवं साथ ही वह जिस प्रकार भारत आ रही थी, उस पर भी अपनी पैनी दृष्टि रखता था और उससे हमेशा ही देशवासियों को अवगत कराता रहता था। जैसा कि सर्वज्ञात है कि भारत में टेलीग्राफिक सेवा 1853 ई. में शुरू की गई थी और उसके बाद ही पूरे भारत में इसका जाल फैला था। जब यह भारत में आनेवाला था, तभीं इस पत्र ने इसकी सूचना प्रकाशित कर दी और 'इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ के समाचार' शीर्षक स्तंभ में लिखा कि "बनारस रिकॉर्डर नामक समाचार-पत्र से प्रगट है कि इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ अर्थात् वह युक्ति जिसके द्वारा एक स्थान के समाचार दूसरे स्थान में एक पलभर में पहुँचते हैं, हिंदुस्तान में भी शीघ्र ही बनेगी और उसके पाँच भाग होंगे—एक कलकत्ता से बनारस तक, दूसरा बनारस से कानपुर तक परंतु लिखनेवाले ने यह नहीं लिखा कि और तीन भाग कौन से होंगे।"

1870 ई. का वर्ष हिंदी में विज्ञान-लेखन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस वर्ष पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र (1849 ई.-1906 ई.) की नियुक्ति बनारस संस्कृत कॉलेज में गणित के प्रोफेसर पद पर हुई और बाद में वे भौतिक विज्ञान के भी प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन्होंने 'गणित कौमुदी' चार भागों में—'पदार्थ विज्ञान विटप', 'प्राकृतिक भूगोल चंद्रिका', 'वायुचक्र विज्ञान', 'स्थिति विद्या', 'गतिविद्या' और 'सरल त्रिकोणमिति' आदि कई पुस्तकें हिंदी में लिखकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की।

1876 ई. से बाबू बलेश्वरप्रसाद ने काशी से जिस 'काशी पत्रिका' को निकालना आरंभ किया, लक्ष्मीशंकर मिश्र ही बाद में उसके संपादक हुए।

आरंभ में यह पत्रिका पाक्षिक थी, परंतु जब 1882 ई. में मिश्रजी ने इसे ग्रहण किया तो उन्होंने उसे साप्ताहिक कर दिया और उसे अपना चंद्रप्रभा प्रेस से निकालने लगे। इस पत्रिका में गणित, विज्ञान, साहित्य, नीति और शिक्षा आदि विषयों पर उपयोगी सामग्री का प्रकाशन होता था। पत्रिका के मुखपृष्ठ पर ही हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी में विशेष वाक्य छपा रहता था, 'ए वीकली एजूकेशनल जर्नल ऑफ साइंस, लिटरेचर ऐंड न्यूज इन हिंदुस्तानी।'

19वीं शताब्दी में, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक युग की पहली शताब्दी कहा जाता है कि अंत तक हिंदी में विज्ञान-लेखन बहुत ही कम हुआ था। उस समय तक हिंदी में कोई वैज्ञानिक शब्दकोश भी नही था और हिंदी को 'गँवारू भाषा' कहा जाता था। हिंदी में विज्ञान-लेखन की क्या अवस्था थी? यह बात 'एलीमेंट्री प्लेन ट्रिगोनोमेट्री इन हिंदी' (1873 ई.) एवं 'हिंदी साइंटिफिक ग्लॉसरी' (1906 ई.) की भूमिकाओं के साथ ही हरिश्चंद्र मैगजीन (1873 ई.) और 1889, 1894 और 1899 ई. की पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की प्रशासनिक रिपोर्टों से ज्ञात होती है। ऐसी अवस्था में भी हिंदी प्रेमियों ने विज्ञान लेखन जारी रखा।

1893 ई. में काशी में 'नागरीप्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई। यद्यपि इस संस्था की स्थापना नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) के प्रचारार्थ हुई थी, परंतु विज्ञान के क्षेत्र में भी इसका योगदान ऐतिहासिक रहा। 1896 ई. से सभा से प्रकाशित 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में विज्ञान को अतिशय प्रमुखता दी गई। पत्रिका का प्रथम लेख 'केतु तारों का संक्षिप्त वृत्तांत' ही विज्ञान विषय पर था। इस पत्रिका के द्वारा ही हिंदी भाषा में विज्ञान के क्षेत्र में शोध का महत्त्वपूर्ण कार्य आरंभ हुआ। 1898 ई. से आरंभ और 1906 ई.में हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण पूर्ण कर सभा ने विज्ञान के क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया। 1900 ई. से सभा के अनुमोदन से प्रकाशित पत्रिका 'सरस्वती' में 1900 ई. से 1950 ई. तक अनेक लेख विज्ञान विषयों पर लिखे गए।

'सरस्वती' पत्रिका और हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रेरणा ग्रहण करते हुए प्रयाग में 10 मार्च, 1913 ई. को 'विज्ञान परिषद्' स्थापना की हुई जिसका उद्देश्य देशी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रचार करना था। 1913 ई. से ही इस संस्था ने व्याख्यानों का आयोजन आरंभ किया। प्रथम वर्ष से ही विज्ञान विषयक ग्रंथों का प्रकाशन शुरू किया। अप्रैल 1915 ई. से 'विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन किया जिसके प्रारंभिक संपादक क्रमशः पं. श्रीधर पाठक और लाला सीताराम हिंदी के प्रख्यात लेखकों में से थे। इस पत्रिका ने हिंदी भाषा में विज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं विस्तार में निर्णायक भूमिका निभाई।

जैसा कि सर्वज्ञात ही है कि भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना, विस्तार एवं उसे स्थायित्व प्रदान करने में विज्ञान का योगदान निर्णायक था और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही हिंदी लेखकों ने इस सत्य को समझा, आत्मसात् किया और ब्रिटिश सरकार की विज्ञान के क्षेत्र में अपनाई जानेवाली 'भेदभावपूर्ण नीति' का विरोध करते हुए विज्ञान के महत्त्व को जनता की भाषा में जनता तक पहुँचाने का हरसंभव प्रयास किया। 1858 ई. के बाद से ही हिंदी लेखकों ने पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञान से संबंधित लाभप्रद बातों को एवं साथ ही पाश्चात्य जगत् में हो रही विज्ञान की प्रगति और विज्ञान के बल पर पश्चिमी जातियों की राष्ट्रोन्नति को भी जनता तक पहुँचाने का गुरुतर कार्य किया। हिंदी पत्रिकाओं ने भी विज्ञान विषयक लेख प्रकाशित कर भारतीयों में जागृति लाने और भारतीय राष्ट्रवाद को पुष्ट करने के साथ ही एक समृद्ध एवं अखंड भारत के निर्माण का उद्योग किया, क्योंकि किसी देश की आर्थिक समृद्धि

विज्ञान, प्रौद्योगिकी और लाभप्रद व्यापार पर निर्भर करती है और हिंदी लेखकों ने इस तथ्य को जनता के समक्ष रखा और भारतीयों के बीच इस बात का भी उद्घाटन किया कि भारत की भी प्रगति विज्ञान के बल पर ही हो सकती है। विज्ञान लेखकों ने हिंदी में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में सराहनीय कार्य करते हुए उसके साहित्य को परिपूर्ण करने का हरसंभव प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक हिंदी में विज्ञान का इतना साहित्य तैयार कर दिया था कि यदि पूरे मनोयोग से प्रयास किया गया होता तो विज्ञान की पूरी शिक्षा हिंदी भाषा में दी जा सकती थी।

आजादी से पूर्व हिंदी पत्रिकाओं का एक सामान्य चरित्र यह था कि अधिकांश पत्रिकाओं में विज्ञान विषयक सुंदर-सुंदर लेख प्रकाशित होते थे, परंतु आजादी के बाद यह परंपरा एक प्रकार से समाप्त हो गई। आजादी के बाद हिंदी में विज्ञान विषयक बहुत ही कम पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ बल्कि उल्टे पहले से प्रकाशित हो रही कई पत्रिकाएँ बंद अवश्य हो गईं। अहिंदीभाषी क्षेत्रों को तो छोड़ दीजिए, हिंदीभाषी क्षेत्रों में भी विज्ञान विषयक पाठ्य पुस्तकें अधिकतम 12वीं तक ही हिंदी में होती हैं। उसके बाद सभीं पुस्तकें आज भी अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध हैं। 2014 के बाद इस क्षेत्र में परिवर्तन दिखलाई पड़ा है और आशा की जा रही है कि आनेवाले समय में हिंदी साहित्य के इस सबसे कमजोर पक्ष को हिंदी के विद्वान् सबल बनाने का प्रयास करेंगे।

□

rkdhistory@gmail.com

अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों के लोग भी सरलता से टूटी-फूटी हिंदी बोलकर अपना काम चला लेते हैं।

—अनंतशयनम आयंगर

मैं महाराष्ट्री हूँ, परंतु हिंदी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है, जितना किसी हिंदीभाषी को हो सकता है।

—माधवराव सप्रे

विदेशी भाषा के शब्द, उसके भाव तथा दृष्टांत हमारे हृदय पर वह प्रभाव नहीं डाल सकते जो मातृभाषा के चिरपरिचित तथा हृदयग्राही वाक्य।

—मन्नन द्विवेदी

एक अमूल्य धरोहर छोड़कर गए हैं नरेंद्र कोहली

—प्रेम जनमेजय

जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों के बीच नरेंद्र कोहली के जीवन में उनका लेखन निरंतर रहा। लेखन उनकी प्राथमिकता रहा। लेखन में किसी प्रकार का गतिरोध उन्हें बेचैन कर देता। अपनी इस प्राथमिकता के लिए वे विदेश यात्रा, पद आदि किसी भी मोह को छोड़ सकते थे। इसके लिए ही उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के एसोसिएट प्रोफेसर की सुविधाजनक नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। वे एक अनुशासित लेखक थे। नरेंद्र कोहली में लेखन की भूख निरंतर बढ़ती रही। उन्होंने अपने समय के लेखकों की तुलना में, विविध विधाओं में निरंतर लिखा और हिंदी साहित्य को ज्ञान का विपुल भंडार दिया। विविध विधाओं में उनकी अब तक गुणवत्तापूर्ण 94 कृतियाँ आ चुकी हैं। यदि मूल्यांकन की बात करें तो एक रेगिस्तान-सा दिखाई देता है। नरेंद्र कोहली साहित्य पर विश्वविद्यालयों में हुए शोध को अलग कर दें तो उनके लेखन की तुलना में उन पर आलोचनात्मक बीस प्रतिशत भी नहीं लिखा गया। यह आलोचकों का धृतराष्ट्रीय दृष्टिकोण है, जिसके दोषी नरेंद्र कोहली स्वयं रहे। प्रायोजित, दृष्टिबद्ध एवं गिरोहयुक्त आलोचना के जिस युग में अपठनीय कृतियों की अपठनीयता भी चर्चा का विषय बन एक गुण के रूप में प्रशंसित हो सकती हो, उसमें निरंतर लिखते जाना और अपनी कृति पर आलोचनात्मक लिखवाने के प्रयत्न न करना कोई अच्छा गुण नहीं है जिसकी प्रशंसा की जाए। अब आलोचक प्रवर के यदि आप चरण नहीं गहेंगे तो मुख्यधारा में कैसे आएँगे और यदि मुख्यधारा में नहीं होंगे तो आपका मूल्यांकन कैसे होगा। और उनके जाने के बाद तो अपने ही…।

वैसे तो प्रायः सभी जीवों की आंतरिक और बाह्य दृष्टि होती हैं, परंतु उसका प्रयोग व्यक्ति अपनी प्रकृति और ज्ञान के आधार पर करता है। कुछ बाह्य दृष्टि के 'स्वामी' होते हैं और कुछ गहरी अंतःदृष्टि के। कुछ दोनों के स्वामी होते हैं और आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग कर लेते हैं। श्रेष्ठ आलोचक वही है, जो आवश्यकतानुसार, कभी बाह्य दृष्टि डालकर लेखक की मौखिक प्रशंसा करे और अंतःदृष्टि को अवरुद्ध कर ले अथवा प्रतिबद्ध पठ्ठे की बाह्य और अंतरिक दृष्टि से न केवल मौखिक-लिखित प्रशंसा करे अपितु उसे बाई वन गेट वन फ्री की शैली में सम्मान मिले, इसका भी उद्योग करे। नरेंद्र कोहली को 'श्रेष्ठी' आलोचक नहीं मिले हैं, क्योकि नरेंद्र कोहली ने इसके लिए प्रयत्न ही नहीं किए। तो फिर काहे

---

* प्रसिद्ध व्यंग्यकार, 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक।

को यह सोचना कि नरेंद्र कोहली आलोचकों की उपेक्षा का शिकार रहे हैं। जब आप अछूत हो गए तो आपका छुआ खाना-पीना तो वर्जित होता ही है, आपके विचार भी तो अछूत हो जाते हैं। दूसरे क्यों अपना 'धर्म' भ्रष्ट करें? यह एक अजीब विसंगति है कि हम दूसरे पर आरोप लगाते हैं कि उसने अपनी दृष्टि को सीमित कर लिया है और 'सांप्रदायिक हो गया हैं। और अपना यह मंतव्य प्रस्तुत करते हुए हम स्वयं ही दृष्टिबद्ध हो जाते हैं।

'सुधीजन' कहते हैं कि यह 'कम लिखने का दौर है, क्योंकि आलोचकों के पास पढ़ने का समय नहीं हैं। विभिन्न गोष्ठियों की अध्यक्षताएँ, समितियों की बैठकें समय नहीं देती हैं और आप हैं कि एक के बाद एक महाग्रंथ बाजार में 'फेंके' चले जा रहें हैं। इतने विशालकाय ग्रंथ आजकल कौन पढ़ता है। वैसे यह कहना अधिक उचित होगा कि कौन आलोचक पढ़ता हैं। आलोचक के पास पढ़ने का समय नहीं है, पर पाठक के पास है। समय नहीं होता तो पाठक आपकी एक कृति पढ़ने के बाद क्यों आपकी दूसरी कृति की प्रतीक्षा करता है? और क्यों अपनी शर्तों पर आपको प्रकाशित करनेवाला प्रकाशक आपको न केवल सर्वाधिक रॉयल्टी देता है अपितु हाथ बाँधे आपके अगले विशालकाय ग्रंथ की प्रतीक्षा करता है? आपका पाठक पटरी का पाठक भी तो नहीं है।

1975 में 'दीक्षा' जब प्रकाशित होकर आई थी तो इसका भरपूर स्वागत हुआ। भगवती चरण वर्मा, यशपाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, डॉ. धर्मवीर भारती आदि ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रामकथा को एकदम नई दृष्टि से देखनेवाली कृति कहा। भगवती चरण वर्मा ने लिखा—"मैंने आपमें वह प्रतिभा देखी है, जो आपको हिंदी के अग्रणी साहित्यकारों में ला देती है।" जैनेंद्र कुमार ने कहा—"आपकी रचना उपन्यास के धर्म से ऊँचे उठकर कुछ शास्त्र की कथा तक बड़ जाती है।" पर प्रकाशन से पूर्व इस कृति को अत्यधिक उपेक्षा झेलनी पड़ी थी। उन दिनों 'धर्मयुग' ने न केवल नरेंद्र कोहली की 'परिणति' जैसी कहानियों को प्रकाशित किया अपितु 'परिणति' संकलन की समीक्षा भी प्रकाशित की। 'बैठे ठाले' में वे उन दिनों छाए हुए थे। पर विडंबना देखिए 'मानस का हंस' छापनेवाले उसी 'धर्मयुग' ने 'दीक्षा' यह कहकर लौटाई कि हम ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यास छापने की स्थिति में नहीं हैं। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' को कुछ अंश भेजे तो लौटती डाक से लौट आए। इसके बाद नरेंद्र कोहली लघु पत्रिकाओं की ओर मुड़े। 'कहानी', 'कहानीकार', 'नया प्रतीक', 'शब्द' आदि डेढ़ दर्जन पत्रिकाओं में अंश भेजे। इन सबने ससम्मान अंश प्रकाशित किए। यही नहीं, 'दीक्षा' की पांडुलिपि प्रकाशकों के द्वारे-द्वारे उपेक्षित होने को विवश हुई। इसी 'दीक्षा' की पांडुलिपि सभी महत्त्वपूर्ण प्रकाशकों द्वारा लौटाई गई थी। 'एक पांडुलिपि की यात्रा' में नरेंद्र कोहली ने अपने फ्रस्टेशन, आक्रोश, अवसाद आदि का विस्तार से वर्णन किया है। नरेंद्र कोहली ने दीक्षा की भूमिका में अपना लक्ष्य लिखा—"एक महत्त्वपूर्ण बात और थी राम का चरित्र। अनेक उद्भट विद्वानों ने इस चरित्र की विभिन्न संभावनाओं को देखने से इनकार कर उसे एक आदर्श जड़ चरित्र घोषित किया था और मैंने शैशव से राम को एक अत्यंत सहज मानवीय चरित्र के रूप में देखा था। मेरे मन के राम ने मुझे सदा एक जनवादी, समता तथा न्याय पर आधृत चेतना दी थी। सामंती और पूँजीवादी चेतनाओं के सर्वथा विरुद्ध राम मुझे सदा जनवादी नैतिकता के ध्वजवाहक दिखे थे। वानर-भालू जैसी पिछड़ी हुई आदिम जातियों को गले लगाकर, उन्हें अपने भाइयों के

समान मानकर, उन्हें शून्य से उठाकर पूँजीवादी, साम्राज्यवादी राक्षस रावण के सम्मुख खड़ा कर, उसे पराजित कर देनेवाले राम को जाति, संप्रदाय, तथा अध्यात्म की श्रृंखलाओं में बँधे देख पीड़ा का ही अनुभव हुआ था।"

नरेंद्र कोहली ने तुलसी की तरह राम की दास्य-भक्ति में डूबकर आदर्श चरित्रों की रचना के लिए कलम नहीं उठाई अपितु राम कथा लेखन को सायास योजनाबद्ध रूप में लिखने का संकल्प लिया और राम के ऐसे चरित्र का निर्माण किया जो रावण की पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध वानर भालू जैसी जनजातियों को एकत्रित कर उन्हें क्रांतिकारी नेतृत्व प्रदान करता है तथा आधुनिक सोच के पाठक के अधिक समीप है। नरेंद्र कोहली अपने वर्तमान समाज की शोषणयुक्त व्यवस्था से क्षुब्ध दिखाई देते हैं और उसे राम-कथा के माध्यम से व्यक्त करना चाहते हैं। यही नहीं, अपने पारिवारिक जीवन में उन्हें जो चरित्र दिखाई देते हैं, उन्हें भी आज से वर्षों पूर्व के चरित्रों पर आरोपित कर लेते हैं। नरेंद्र कोहली अपनी रचना-प्रक्रिया में लिखते हैं— "मेरे सामने राम का परिवार था और उनकी शैशव कथाएँ। कौशल्या कामुक राजा दशरथ की प्रथम पत्नी थीं और राम उनके पुत्र, लक्ष्मण अडिग प्रेम करनेवाले भाई। मेरा मन पुनरारंभ की ओर चला गया। मेरे दादा ने तीन विवाह किए थे—कामुकतावश। मेरी दादी उनकी पहली और उपेक्षित पत्नी थीं, जो उनके साथ कम, उनसे अलग ज्यादा रहीं। मेरे पिता और चाचा ही नहीं, हमारे बड़े भाई-बहन भी दूसरी दादी से खासे पीड़ित-प्रताड़ित रहे थे। मेरे सामने राम तथा लक्ष्मण का दूसरा रूप क्या हो सकता था। मेरे पिता, छोटी दादी के हाथों पिटे थे, तो राम को कैकेयी ने क्यों न पीटा होगा। कौशल्या और कैकेयी के चरित्रों में मेरी दोनों दादियाँ ही उभरकर आ गई।"

यह नरेंद्र कोहली के विचारों का आरंभिक समय था। कालांतर में, नरेंद्र कोहली को एक पक्ष से मिली उपेक्षा और दूसरे से मिले अतिरिक्त सम्मान ने उनकी वैचारिक सोच को बदल दिया। उस दौर को याद करते हुए एक साक्षात्कार में नरेंद्र कोहली कहते हैं—"एक ओर वे लोग थे, जो यह कह रहे थे कि रामायण को नए ढंग से, हमारे युगानुकूल बनाकर, रामकथा को हमारी वेवलेंग्थ पर उपलब्ध करा दिया गया है, इसलिए हमको यह प्रीतिकर है। दूसरी ओर वे लोग थे, जो यह कह रहे थे कि हमारी धार्मिक कथा को परिवर्तित कर उसे विकृत और भ्रष्ट किया गया है। वे प्रसन्न नहीं थे। एक ओर वे लोग थे, जो यह कह रहे थे कि यह सामंती, साम्राज्यवादी, पुरानी मान्यताओं को स्थापित करनेवाला लेखक है, इसलिए यह प्रगतिशील नहीं है। दूसरी तरफ वे लोग थे, जो यह कह रहे थे कि यह तो कम्युनिस्ट रामायण हो गई, इसमें तो आज के वे सारे सिद्धांत आ गए। तो मैं स्वयं नहीं जानता था कि यह किस पाठक के लिए है, किस उम्र के पाठक के लिए है, किस विचार के पाठक के लिए है। मुझे लगता है कि यह जीवन तो एक यात्रा है, इसका विकास होता है। अलग-अलग समय में अलग-अलग तरह के लोग साथ आते रहते हैं। एक समय था कि जब मैं प्रगतिशील लेखक संघ का उपाध्यक्ष था, एक वह समय था जब मैं सी.पी.एम. (कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी) के प्रत्याशियों के लिए वोट माँगता फिरता था। लेकिन अब मैं दूसरी तरह का व्यक्ति हूँ और मुझे लगता है कि मेरी अपनी स्वाभाविक दिशा यही थी और है।"

राम कथा को मैं नरेंद्र कोहली द्वारा नर से नारायण तक पहुँचने के प्रयत्न का पहला सोपान मानता हूँ। बिंदु अग्रवाल को दिए गए साक्षात्कार में, महाभारत के कथ्य में भिन्नता के प्रश्न का उत्तर देते हुए नरेंद्र कोहली कहते हैं— "रामायण और

महाभारत कथ्य के लिखने में दस वर्ष का अंतराल है। इन दस वर्षों में मेरे भीतर भी बहुत-कुछ बदला है। दूसरे मुझे लगता है कि रामायण की तुलना में महाभारत में कहीं अधिक आध्यात्मिकता है। तुलसी की बात मैं नहीं कर रहा, वाल्मीकि की रामायण की कर रहा हूँ। मेरी रामकथा में जैसे धर्म, अध्यात्म भक्ति इत्यादि को निकालकर अलग रख दिया गया है, वैसे महाभारत में नहीं। इस प्रकार महाभारत पर आधारित मेरे उपन्यासों के चरित्रों और कथ्यों में परिवर्तन कुछ ग्रंथ के कारण है और कुछ मेरे मानसिक परिवर्तन के कारण।"

मेरा मन इस बात को तो स्वीकार कर लेता है कि नरेंद्र कोहली के लेखन में अध्यात्म का स्वर मानसिक परिवर्तन के कारण सुनाई देने लगा, पर यह मानने को तैयार नहीं होता है कि रामायण की तुलना में महाभारत में कहीं अधिक आध्यात्मिकता है। नरेंद्र कोहली ने जब अभिज्ञान लिखना आरंभ किया तो सुदामा के रूप में उनके मन में बाबा नागार्जुन का चरित्र परोक्ष रूप में विद्यमान था और वे सुदामा के अभिज्ञान की कथा ही लिखने के लिए बैठे थे, परंतु लिखते-लिखते वह कृष्ण की कथा बन गई और इस बात को तो नरेंद्र कोहली ने स्वीकार भी किया है। "मैंने अभिज्ञान लिखना आरंभ किया। सुदामा की कथा अच्छी-खासी चल रही थी कि द्वारका में वे कृष्ण के पास पहुँचे। मैं अपनी कथा लिखता रहा। पर इसी लेखन के दौरान मुझे कृष्ण के विराट् रूप का आभास मिला। तब बेचारे सुदामा कहाँ टिकते! उपन्यास में भी कृष्ण और उनका कर्म-सिद्धांत प्रधान हो गया। अब मुझे लगता है कि अभिज्ञान में चाहे कथा सुदामा की हो, किंतु उसका मेरुदंड कर्म-सिद्धांत ही है।"

ध्यान दीजिए, लेखक कह रहा है कि इसी लेखन के दौरान मुझे कृष्ण के विराट् रूप का आभास मिला। यह आभास केवल लिखते हुए या कृष्ण संबंधी ग्रंथ पढ़ते हुए नहीं हुआ है अपितु इसके पीछे व्यक्तिगत कारण भी हैं। लेखक के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुईं जिन्होंने उस विराट् शक्ति का आभास करवाया। नरेंद्र कोहली की एक विशेषता है, वे दूसरे के बहकावे में जल्दी से नहीं आते हैं, तर्क करते हैं और जब तक स्वयं अनुभव नहीं कर लेते, स्वीकार नहीं करते हैं। यही कारण है कि तुलसी के अनुभव को, उनके लिखे को उनके तार्किक मन ने नहीं माना, परंतु जब जीवन में अनुभव हुआ तो नरेंद्र कोहली ने लिखकर स्वीकार किया, "मुझे अनुभव हुआ, जो ईश्वर यहाँ है, वह वहाँ भी है।" मन ने प्रश्न किया, "क्या यह भयभीत मन की आस्था मात्र है? जब कोई सहारा नहीं मिला तो संयोग को ही ईश्वर मान लिया?" पर मैं देख रहा था कि मेरी स्थिति इससे भिन्न थी। वह एक विचित्र मनोदशा थी। ईश्वर मेरे सम्मुख उपस्थित नहीं था, किंतु वह मेरे चारों ओर वर्तमान था। मैं उसे देख नहीं सकता था। किंतु उसका अनुभव कर सकता था। मेरा मन कृतज्ञता से भरा हुआ था। मैं समझ रहा था कि मेरे लिए जो नहीं हो सकता था, वह भी घटित हो रहा था। मेरे लेखन में अकस्मात् श्रीकृष्ण चले आए थे। मन जिस सात्विकता का अनुभव कर रहा था, वह कोई असामान्य, इंद्रियातीत, पारलौकिक अनुभव नहीं था। इस एक प्रकार की स्वच्छता और उदात्तता से परिचय मात्र था, जो पहले सुनी और पढ़ी तो थी, किंतु मेरे अनुभव संसार का अंग नहीं थी।"

'तोड़ो कारा तोड़ो' रवींद्रनाथ टैगोर के गीत की एक पंक्ति का अनुवाद है। नरेंद्र कोहली ने विवेकानंद के माध्यम से उस कारा को तोड़ने की बात कही, जो प्रकृति, समाज, राजनीति, धर्म आदि के रूप में विद्यमान है। इस उपन्यास श्रृंखला का पहला भाग 1992 में 'निर्माण' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसके बाद इसके 'साधना', 'परिव्राजक', 'निर्देश', 'संदेश',

'प्रसार' छह खंड आए। 'संदेश' में विवेकानंद संदेश देते हैं—जो कुछ भी हम लोगों के प्रति करुणा-संपन्न है, जो कुछ कल्याणप्रद है, या जो कुछ हमारा सहायक है, ईश्वर उस सबका समष्टि रूप है। यही एकमात्र धारणा उचित है। आत्मा-रूप में हमारा कोई शरीर नहीं होता। अतएव 'हम ब्रह्म हैं, विष भी हमारी कोई क्षति नहीं कर सकता।' यह कथन ही स्वविरोधी है। जब तक हमारा शरीर रहता है और हम उस शरीर को देखते हैं, तब तक ईश्वरोपलब्धि नहीं होती। नदी का ही जब लोप हो गया, तब क्या उसके भीतर का कोई आवर्त रह सकता है? सहायता के लिए रुदन करो। ऐसा करने पर सहायता पाओगे। अंत में देखोगे कि सहायता के लिए रोना भी चला गया। सहायता देनेवाले भी चले गए। खेल समाप्त हो गया। शेष रह गई है, केवल आत्मा। एक बार यह हो जाने पर, लौटकर यथेच्छ खेल कर सकते हो। तब फिर देह के द्वारा कोई बुरा कार्य नहीं हो सकेगा। कारण, जब तक हमारे भीतर की कुवृत्तियाँ जलकर भस्म नहीं हो जातीं, तब तक मुक्ति-लाभ नहीं होगा। जब यह अवस्था प्राप्त होती है, तब हमारे सभी पाप भस्म हो जाते हैं और शेष रह जाता है। ज्योतिरिव अधूमकम् तथा दग्धेन्धानमिवानलम्। उस समय प्रारब्ध हमारे शरीर को संचालित करता है। किंतु उस समय उसके द्वारा केवल शुभ कर्म ही हो सकता है। मुक्ति-लाभ होने से पहले सारा अशुभ चला जाता है। चोर ने क्रूस पर बिद्ध होकर, मरने के समय अपने प्राक्तन कर्म का फल-लाभ किया था। वह निश्चित ही पूर्व-जन्म में योगी था। योगभ्रष्ट हो जाने के कारण उसे यह जन्म लेना पड़ा। उसका इस प्रकार पतन होने से, उसे पर-जन्म में चोर होना पड़ा। किंतु पूर्व-जन्म में उसने जो शुभ कर्म किया था, वह फलित हुआ। मुक्ति प्राप्त करने का उसका जब समय आया, तभी उसकी ईसा से भेंट हुई। और वह उनके एक शब्द से ही मुक्त हो गया।

सन् 2000 में महासमर श्रृंखला के आठवें खंड के रूप में 'निर्बंध' आया। महासमर की श्रृंखला का तो अंत हो गया, पर श्रीकृष्ण का चरित्र उन्हें अभी भी बहुत-कुछ कहने को प्रेरित कर रहा था। मुझसे बातचीत करते हुए उन्होंने कहा था—"व्यक्ति के रूप में कृष्ण को नारायण मानने में मुझे कोई समस्या नहीं है, परंतु एक उपन्यासकार के रूप में मेरी संवेदना अभी इतनी समर्थ नहीं हुई कि कृष्ण को उपन्यास में पूर्ण नारायण के रूप में चित्रित कर सकूँ। मैंने कृष्ण की असाधारण क्षमताओं का निषेध नहीं किया है। न ही उन्हें एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है। उनके सगे-संबंधियों तथा आसपास के लोगों के माध्यम से एक संशय छोड़ा है कि कृष्ण जो कर रहा है, वह किसी साधारण मानव का कार्य नहीं है। तो कृष्ण क्या है, एक साधारण मानव या कुछ और? कुछ लोग उन्हें तांत्रिक मानते हैं, कुछ समर्थ ऋषि मानते हैं। संशय सभी के मन में है।" संभवतः यही संशय है जो उनसे लगातार प्रश्न करता रहता है और समाधान के लिए पहले 'वसुदेव' और बाद में 2015 में 'शरणम्' लिखवाता है।

'शरणम्' के सृजन का कारण नई पीढ़ी के प्रश्न हैं, जो गीता पढ़ते समय उत्पन्न हुए हैं। नरेंद्र कोहली अपने पोतों को संस्कार देने के लिए परिवार में निश्चय करते हैं कि बच्चों के साथ बैठकर गीता पढ़ी जाए। वे स्वीकार करते हैं कि उन्हें संस्कृत भाषा का अल्पज्ञान है। फिर भी उन्होंने प्रतिदिन पाँच श्लोक की गति से गीता को पढ़ना आरंभ किया। उन्हें यह भी लगा कि पढ़ने से कोई ग्रंथ उतना समझ नहीं आता है जितना पढ़ाने से। उनके तेरह वर्ष के पोते ने जब जटिल प्रश्न करने आरंभ किए तो प्रश्नों के उत्तर खोजनेवाले उनके खोजी मन ने उपन्यास का ताना-बाना बुनना आंरभ कर

दिया। वे उपन्यासकार थे, इसलिए प्रश्नों के हल खोजने के लिए उपन्यास का ही ताना-बाना बुन सकते थे। इस उपन्यास में मुख्य प्रश्नकर्ता अर्जुन हैं। केवल अर्जुन के पास ही प्रश्न नहीं हैं, धृतराष्ट्र, गांधारी, विदुर, पारंसवी, कुंती, भानुमती आदि के पास भी अपने-अपने प्रश्न हैं। सबके प्रश्न एक जैसे नहीं हैं। अपनी-अपनी प्रकृति, चरित्र और उद्देश्य से संचालित प्रश्न हैं। और इन सब प्रश्नों के उत्तर एक ही व्यक्ति के पास हैं जिनका नाम है—श्रीकृष्ण।

मैंने जब उपन्यास पढ़ना आरंभ किया तो आंरभ में ही धृतराष्ट्र और गांधारी को आज के समय के वृद्ध दंपति की तरह लड़ते-झगड़ते, बहस करते देख लगा कि नरेंद्र कोहली किस प्रकार का उपन्यास लिख रहे हैं। अजीब लगता है जब एक सामान्य वृद्ध पति से धृतराष्ट्र गांधारी के लिए कहते हैं—किंतु अब क्या हो सकता था, बुढ़िया तो स्वयं ही आकर सिर पर सवार हो गई थी। पर जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है चिंतन के नए कोण प्रस्तुत करने लगता है।

'शरणम्' को मैं ज्ञान का विपुल भंडार कहना चाहूँगा। ज्ञान का यह विपुल भंडार नरेंद्र कोहली साहित्य में विपुल है। ज्ञान का विपुल भंडार 'वरुण पुत्री' में अलग रूप से मिलता है। ज्ञान का विपुल भंडार 'सागर मंथन' में मिलता है, जो शीर्षक की दृष्टि से पौराणिक लगता है, पर जिसमें विदेशी धरती के लोगों की विडंबनाओं का चित्रण करता है। बहुत वर्षों बाद, 2019 में, नरेंद्र कोहली ने सामाजिक उपन्यास की रचना की है।

जिस निरंतरता के साथ नरेंद्र कोहली ने प्रख्यात कथा पर आधारित उपन्यासों का सृजन किया है, उसी निरंतरता के साथ व्यंग्य रचनाओं का सृजन भी जारी रखा है। यह दीगर बात है कि व्यंग्य-लेखन के अपने आरंभिक काल में उन्होंने 'आश्रितों का विद्रोह', 'शंबूक की हत्या' और 'पाँच एब्सर्ड उपन्यास' जैसी आकार में बड़ी व्यंग्य रचनाओं का सृजन किया, पर बाद में वे 'महासमर' और 'तोड़ो कारा तोड़ो' जैसी वृहद् उपन्यास-श्रृंखला का सृजन तो करते रहे, पर व्यंग्य के क्षेत्र में उन्होंने किसी वृहद् श्रृंखला का सृजन नहीं किया। पर विसंगतियों पर प्रहार करनेवाली उनकी सजग व्यंग्य दृष्टि रुकी नहीं। सन् 2012 में उनका व्यंग्य संकलन 'हुए मर के हम जो रुसवा' एवं 2014 में उनका व्यंग्य उपन्यास 'देश के हित में' प्रकाशित हुआ। नरेंद्र कोहली के अभी तक ग्यारह व्यंग्य-संकलन—एक और लाल तिकोन, जगाने का अपराध, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, परेशानियाँ, आत्मा की पवित्रता, गणतंत्र का गणित, मेरे मोहल्ले के फूल, सबसे बड़ा सत्य, आत्मरक्षा का अधिकार, हुए मर के हम जो रुसवा' प्रकाशित हुए हैं।

व्यंग्य लेखन में जिस स्पष्टवादिता की आवश्यकता होती है, वह नरेंद्र कोहली के लेखन और व्यक्तित्व में है। वे जो हैं, उसे छिपाते नहीं हैं और अपनी विचारधारा के प्रति शर्मिंदा नहीं हैं, अपितु उसके प्रति दृढ़ हैं। इस दृढ़ता के फलस्वरूप उनके वैचारिक शत्रु (वे ऐसा ही मानते हैं) स्पष्ट हैं। ऐसे में वे न तो यह अपेक्षा करते हैं कि उनके 'शत्रु' उनके प्रति नम्र हों और न ही उनसे नम्र रहने की अपेक्षा रखें। आप कह सकते हैं कि इस मामले में वे असहिष्णु हैं। संभवतः इसी कारण उनकी व्यंग्य रचनाओं में आत्म-व्यंग्य की कमी है।

नरेंद्र कोहली के साहित्यिक व्यक्तित्व के मुख्यतः तीन कोण हैं—पुराकथाओं के शीर्षस्थ चितेरे, सामाजिक संबंधों एवं सरोकारों के कथाकार तथा विसंगतियों पर निर्मम प्रहार करनेवाले व्यंग्यकार। नरेंद्र कोहली के व्यंग्य

संकलन 'एक और लाल तिकोन' की पैरोडी में इसे नरेंद्र कोहली का एक तिकोन माना जा सकता है। शिल्पगत वैविध्य का हिंदी व्यंग्य साहित्य में अभाव रहा है, परंतु इस अभाव की नरेंद्र कोहली के व्यंग्य साहित्य ने पूर्ति की है। वस्तुतः यह व्यंग्य रचनाओं के शिल्प की विशिष्टता थी जिसने उसे परंपरागत निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं कविता से अलग किया। आलोचकों को 'रानी नागफनी' की कहानी में कहानी एवं उपन्यास के परंपरागत तत्त्वों से भिन्नता दिखाई दी। 'राग दरबारी' उपन्यास होते हुए भी उपन्यास की सीमाओं को कथ्य और शिल्प के धरातल पर तोड़ता हुआ दृष्टिगत हुआ। व्यंग्य रचनाओं को परंपरागत कहानी, निबंध, नाटक, कविता अथवा उपन्यास के प्रतिमानों पर कसने में आलोचकों को आलोचनात्मक सृजनशील तृप्ति नहीं मिली। उन्हें निरंतर एक ऐसा अभाव अनुभव होता रहा जिसके कारण उन्हें लगा कि इन रचनाओं के साथ न्याय नहीं हो पा रहा है। शिल्प और कथ्य के इसी वैशिष्ट्य ने 'व्यंग्य' के स्वरूप का निर्माण किया है।

नरेंद्र कोहली ने जब लिखना आरंभ किया था, उस समय व्यंग्य के क्षेत्र में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी ही छाए हुए थे और ऐसे चुनौतीपूर्ण समय में, किसी नए व्यंग्य लेखक के सामने न केवल इनको दोहराने के खतरे से बचने की अपितु विषय और शिल्प के धरातल पर कुछ नया प्रस्तुत करने की चुनौती थी। नरेंद्र कोहली ने इस चुनौती का सफलता के साथ सामना किया। शिल्पगत वैविध्य का हिंदी व्यंग्य साहित्य में अभाव रहा है, पर इस अभाव को नरेंद्र कोहली ने पूरा किया। हिंदी व्यंग्य वस्तुनिष्ठ अधिक रहा है। यही कारण है कि हिंदी व्यंग्य के रचनाकारों ने कथ्य की विविधता पर अधिक बल दिया है। व्यंग्य के संबंध में नरेंद्र कोहली का मत है कि वह पीड़ा से उत्पन्न होता है। हिंदी व्यंग्य साहित्य में एब्सर्ड उपन्यासों के वे एकमात्र सर्जक हैं, इतने मात्र कि वे एब्सर्ड रचनाओं का पुनः सृजन नहीं कर पाए। पाँच एब्सर्ड उपन्यास प्रयोग-मात्र ही रह गए।

व्यक्ति चाहे कितनी भी खुली किताब हो, उसके अनेक अलिखित पन्ने बाँचने से रह जाते हैं। नरेंद्र कोहली के साहित्यिक व्यक्तित्व के विभिन्न कोण हैं। मुख्यतः तीन कोण हैं—पुराकथाओं के शीर्षस्थ चितेरे, सामाजिक संबंधों एवं सरोकारों के कथाकार तथा विसंगतियों पर निर्मम प्रहार करनेवाले व्यंग्यकार। इन तीनों कोणों के अनेक स्मृति चित्र अनेक ज्यामिति का लगभग हर कोण बनाए मेरे अंदर जिंदा हैं।

आदरणीय गुरुवर, उनका साहित्य और उनसे अकसर हुआ संवाद, मेरी पाठशाला रहे हैं। इस पाठशाला में मैंने बहुत कुछ सीखा है। आज वे नहीं हैं पर उनकी सीख मेरे साथ है। वैसे तो बहुत-कुछ सीखा, पर एक बात मैंने गाँठ बाँध ली कि कभी याचक न बनो। गुरुवर न तो कभी किसी प्रकार की सत्ता के समक्ष और न कभी प्रकाशकों के समक्ष याचक बने। उन्हें जो भी मिला, उसे उन्होंने किसी कृपा नहीं, रामजी की इच्छा मानकर स्वीकार किया।

वर्तमान सरकार और सत्ताधारी दल से उनके मधुर संबंध जगजाहिर हैं, पर यह भी जगजाहिर है कि वे याचक नहीं बने। एक पुस्तक लोकार्पण कार्यक्रम में तो उन्होंने एक मंत्री के समक्ष स्पष्ट कह दिया था कि मैं कभी याचक नहीं बना और मुझे जो मिला रामजी की इच्छा से मिला।

अपने अनुभव संसार को रचनेवाले गुरुवर असमय मृत्यु का ग्रास न बनते तो मानवीय सभ्यता और संस्कृति के रक्षार्थ बहुत-कुछ और रचते। उनका जाना मानव समाज की क्षति है।

□

premjanmejai@gmail.com

माधवराव सप्रे : हिंदी के अनन्य साधक

—सच्चिदानंद जोशी

(श्री माधवराव सप्रे के जन्म को 150 वर्ष 2021 में पूरे हुए। हिंदी के इस अनन्य साधक को श्रद्धांजलि स्वरूप यह लेख प्रस्तुत है।)

श्री माधवराव सप्रे प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक, विचारक और पत्रकार तो थे ही, साथ ही अद्वितीय साहित्यकार भी थे। उन्होंने हिंदी की सेवा उस समय की, जब हिंदी को अंग्रेजी राज में सम्मानजनक स्थान पाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा था। बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो साहित्य की तमाम विधाओं में समान अधिकार से रचनात्मक लेखन कर सकते हैं। श्री माधवराव सप्रे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। माधवराव सप्रे ऐसे विरले रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना का अलख जगाने के साथ-साथ साहित्य क्षेत्र में भी अपनी धाक जमाई। हिंदी भाषा के विकास में उनका योगदान अतुलनीय था। उन्होंने आजन्म हिंदी भाषा की सेवा की तथा किसी भी मंच या सम्मान की प्रत्याशा किए बिना वे सतत् हिंदी की सेवा में लगे रहे। सन् 1900 से लेकर उनके अवसान 1926 तक उनके द्वारा हिंदी की अहर्निश सेवा की गई, जो कई लोगों के लिए प्रेरणापुंज थी।

सप्रेजी ने अपनी बहुआयामी रचनात्मकता के माध्यम से हिंदी साहित्य की कई विधाओं को प्रारंभ अथवा पुनर्जीवित किया। इसमें वे विधाएँ भी शामिल हैं, जिन्हें साहित्यप्रेमी भूल चुके थे या जिन पर लेखन करने में कोई रुचि नहीं दिखा रहे थे।

सप्रेजी का निबंध साहित्य

निबंध साहित्य को निबंध के रूप में जानने का कार्य भारतेंदु युग में प्रारंभ हुआ। निबंध लेखन को और भी कई नामों से जाना जाता है, जैसे—प्रस्ताव, आशय, लेख प्रबंध आदि। लेकिन यह सभी प्रमुख रूप से निबंध के दायरे में ही आते हैं।

सप्रेजी जिस समय निबंधों की रचना कर रहे थे, वह सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से काफी चुनौतीपूर्ण समय था। उस समय के कुछ नामी निबंध लेखकों में हम सप्रेजी के साथ-साथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, बाबू श्याम सुंदर दास, पं. सूर्य नारायण शर्मा, कृष्णकांत मालवीय, प्रयाग दत्त शुक्ल जैसे महानुभावों के नाम ले सकते हैं। वह नवजागरण का काल था। इसी समय विभिन्न चिंतनधाराएँ भी बहना प्रारंभ हुई थीं। राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार भी धीरे-धीरे व्यापक होता चला जा रहा था। इसी समय भाषा और बोलियाँ भी नई-नई करवटें ले रही थीं।

सप्रेजी ने विभिन्न विषयों पर अनेक निबंध लिखे, जो उस समय की जानी-मानी पत्रिकाओं—'सरस्वती', 'मर्यादा', 'विद्यार्थी' आदि में प्रकाशित

* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, भारत के सदस्य सचिव।

हुए। उन्होंने विभिन्न देशी और यूरोपियन भाषाओं के साहित्य का भी अध्ययन किया। इसीलिए उन्हें विदेशी साहित्य की गहनता का सही ज्ञान था।

सप्रेजी ने निबंध लेखन का प्रारंभ 'छत्तीसगढ़ मित्र' से ही किया था। फरवरी 1900 के अंक में लिखा निबंध 'भाषा में ग्रंथ लेखन की आवश्यकता' उनका पहला साहित्यिक निबंध माना जा सकता है, क्योंकि इसके पूर्व लिखा उनका कोई निबंध उपलब्ध दस्तावेजों में प्राप्त नहीं होता है।

सप्रेजी ने लगभग तीन सौ निबंध लिखे हैं। उनके निबंध 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'सरस्वती', 'विद्यार्थी', 'मर्यादा' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। उन्होंने समाज, शिक्षा, इतिहास, अर्थनीति, राजनीति, धर्म, मनोविकार और साहित्य संबंधी विषयों पर निबंध लिखे।

अपने निबंध 'वर्तमान समय में हिंदी का साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए' में उन्होंने लिखा है, "जबकि यह बात भली-भाँति विदित हो चुकी है कि इस समय यह देश किस प्रकार की संकटावस्था में है, तब इस बात का निर्णय सहज किया जा सकता है कि इस देश को वर्तमान संकट से मुक्त करने के लिए देश, काल, पात्र के अनुसार हिंदी साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए? यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि जिस प्रकार का संकट है, उसी प्रकार का संकट निवारण का उपाय भी होना चाहिए, अर्थात् हिंदी में वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार जिन-जिन विषयों का अभाव है, उन सब विषयों की पूर्ति का यत्न किया जाना चाहिए।"

हिंदी में प्रथम बार मनोविकारों पर तर्कसंगत चिंतन के साथ निबंध लिखने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को दिया जाता है। दुःख की बात यह है कि सप्रेजी ने विभिन्न विधाओं में जो मौलिक लेखन किया, उसका अधिक प्रचार-प्रसार नहीं हो सका। सप्रेजी का अधिकांश लेखन ऐसे क्षेत्र से प्रकाशित हुआ जहाँ न हिंदी के जाने-माने मूर्धन्य लेखक थे, न ऐसी संस्थाएँ ही थीं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में तल्लीन हों।

हिंदी साहित्य जगत् में उनके इस अविस्मरणीय योगदान की चर्चा भी नहीं होती। माधवराव सप्रे हिंदी के पत्रकार के अलावा साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित थे। साहित्यकार के रूप में भी उनका कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों मे उनके नाम का उल्लेख तक नहीं मिलता।

'सरस्वती' के सितंबर अंक में छपा 'राष्ट्रीयता की हानि का कारण' वे लिखते हैं—

"यदि इस देश के लिए किसी एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, तो वह अंग्रेजी कदापि नहीं हो सकती। यह अधिकार हिंदी भाषा ही का है। हाँ, यह बात सच है कि इसे समझने और बोलने में दक्षिण के कुछ लोगों को कठिनता मालूम होती है, परंतु यह कठिनाई थोड़े ही परिश्रम से दूर की जा सकती है। हिंदी ऐसी सरल भाषा है कि इसे साधारण बुद्धिवाला मनुष्य भी प्रायः छह महीने में सीख सकता है। सामयिक साहित्य के पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदी इस देश की राष्ट्रभाषा हो चुकी है। अतएव, राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह कम-से-कम दो भाषाएँ अवश्य सीखे— एक अपनी मातृभाषा और दूसरी राष्ट्रभाषा (हिंदी)।"

सप्रेजी ने कुछ ऐतिहासिक निबंध भी लिखे हैं। सप्रेजी चूँकि अपनी लेखनी से भारतवासियों को जाग्रत् करना चाहते थे और अंग्रेजों की कुटिल चालें उनकी सहनशक्ति से बाहर होती जा रही थीं, अतः उन्होंने कुछ ऐसे ऐतिहासिक निबंध लिखे, जो परोक्ष रूप से अंगरेज सरकार की कूटनीतिक चालों पर कटाक्ष करते हों या किसी महान् दर्शन के माध्यम से जागरण करने में सक्षम हों। 'यूरोप के इतिहास में सीखने योग्य बातें', 'फ्रांस की राज्य क्रांति', 'सोमनाथ पर महमूद गजनवी की चढ़ाई', 'इंग्लैंड की राज्य क्रांति', 'ग्रीस और रोम' आदि

प्रमुख ऐतिहासिक निबंध हैं, जिनके माध्यम से सप्रेजी ने जनजागरण का कार्य किया।

सप्रेजी का कथा-साहित्य

सप्रेजी ने छह कहानियाँ लिखीं, जो सन् 1900-1901 के दौरान 'छत्तीसगढ मित्र' में प्रकाशित हुई। यह कहानियाँ अप्रतिम हैं और कई मायनों में विशिष्ट हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में मौलिक कहानियाँ लिखने के क्रम को 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियों से मान लिया गया है। इसका कारण यह है कि सप्रेजी द्वारा 'छत्तीसगढ मित्र' में लिखी कहानियों की जानकारी साहित्य संशोधकों तक नहीं पहुँच सकी और उन्होंने इसके लिए पूरी छानबीन भी नहीं की और एकांगी विश्लेषण कर डाला। ये छह कहानियाँ हैं—(1) सुभाषित रत्न 1, (2) सुभाषित रत्न 2, (3) एक पथिक का स्वप्न, (4) सम्मान किसे कहते हैं? (5) आजम, और (6) एक टोकरी भर मिट्टी। यदि 'छत्तीसगढ मित्र' निकलता रहता और सप्रेजी को नागपुर न जाना पड़ता तो हिंदी साहित्य को सप्रेजी की अन्य कहानियाँ भी मिल सकती थीं। सप्रेजी ने लंबी और छोटी कहानियाँ लिखीं। जहाँ एक ओर उनकी कहानी 'एक पथिक का स्वप्न' तीन भागोंवाली लंबी कहानी है वहीं 'एक टोकरी भर मिट्टी' काफी छोटी और सुगठित कहानी है। 'सुभाषित रत्न' में सात छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। 'सारिका' में जब 1968 में 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी को हिंदी की प्रथम कहानी निरूपित किया गया, तब इस विषय पर काफी बहस भी चली। कई आलोचकों का कहना है कि हिंदी की प्रथम कही जानेवाली कहानी 'इंदुमती' से 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी सभी प्रकार से अग्रणी है।

'एक पथिक का स्वप्न' तथा 'सम्मान किसे कहते हैं?' कहानियाँ 'छत्तीसगढ मित्र' के मार्च-अप्रैल सन् 1900 के एक ही अंक में प्रकाशित की गई हैं। इन दो कहानियों के जरिए सप्रेजी भारतीय समाज के मानवतावाद पर दृष्टिक्षेप करते हैं और मानव स्वतंत्रता के नए आयामों की सृष्टि करते है।

'एक पथिक का स्वप्न' नाटकीय तत्त्वों से भरी सत्रह पृष्ठों की लंबी कहानी है, जो तीन भागों में विभाजित है।

'आजम' कहानीकार के शब्दों में गोल्ड स्मिथ के आधार पर रची एक कहानी है। इस कहानी रचना की मूल भावना जीवन रूप दर्शन है। आजम को कहानी का नायक बनाकर कहानीकार ने विभिन्न धर्मों की विद्वेषता की जड़ निष्ठा के बीज को नष्ट कर देने का प्रयास किया है।

'एक टोकरी भर मिट्टी' दो पेजी मर्मस्पर्शी कहानी है। कहानी के क्षेत्र में संवेदनशील भावना का उदय तथा मानवीय दायित्व को रूपायित कर लेने की परिकल्पना यहीं से आरंभ होती है।

कई लेखों में सप्रेजी के कल्पित नाम छपते थे, जैसे 'माधवराव रामदासी', 'त्रिमूर्ति शर्मा', 'त्रिमूर्ति' इत्यादि।

सप्रेजी और समालोचना

'छत्तीसगढ मित्र' में पहली समालोचना मार्च 1900 के अंक में प्रकाशित हुई, जो पं. कामताप्रसाद गुरु की पुस्तक 'भाषा काव्य पृथक्करण' नाटक पुस्तक की थी। इसके बाद में उन्होंने समालोचना लिखने का काम निरंतर जारी रखा। मिश्र बंधुओं के 'लवकुश चरित्र' की समालोचना 35 पृष्ठों में लिखकर तो उन्होंने एक कीर्तिमान ही रच डाला। यह 'छत्तीसगढ मित्र' के पाँच अंकों में प्रकाशित हुई। (वर्ष 2, अंक 8, छत्तीसगढ मित्र)

सप्रेजी समालोचना करते समय तटस्थ और निष्पक्ष भाव को अपनाते थे। उनकी समालोचना में कहीं भी पक्षपात या दुराग्रह नहीं झलकता था। इसी कारण उनकी समालोचनाएँ कुछ ही समय में लोकप्रिय एवं ग्राह्य हो गई हैं। समालोचना में इतनी

जल्दी इतना प्रतिष्ठापूर्ण स्थान बना पाना किसी रचनात्मक चमत्कार से कम नहीं है।

सप्रेजी ने आधुनिक समालोचना विधा को स्थापित कर उसे पूर्णता प्रदान करने का अथक परिश्रम किया। खेद की बात है कि हिंदी साहित्य के विद्वानों ने सप्रेजी के इस योगदान का मूल्यांकन नहीं किया।

सप्रेजी का अनुवाद साहित्य

हिंदी साहित्य में अनुवाद की परंपरा दो सौ साल पुरानी है। इसमें संस्कृत, अरबी, फारसी से लेकर अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश आदि भाषाओं की साहित्यिक कृतियाँ, काव्य रचनाओं के अनुवाद शामिल हैं। संस्कृत भाषा के अनुवादकों में विशेष रूप से योगदान राय बहादुर लाला सीताराम बी.ए. का है, जिन्होंने मेघदूत, नागानंद, मृच्छकटिकम्, महावीरचरित, उत्तररामचरितम्, मालतीमाधव, मालविकाग्निमित्र आदि के अनुवाद किए।

सप्रेजी के बहुआयामी रचना जगत् में अनुवाद साहित्य भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। सप्रेजी ने मराठी भाषा के श्रेष्ठ ग्रंथों एवं रचनाओं का हिंदी में अनुवाद उपलब्ध कराया। साथ ही कई विदेशी भाषाओं की रचनाओं का भी अनुवाद उन्होंने सुलभ कराया। अपनी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने अनुवाद कला को प्रोत्साहन भी दिया और अपने साथ लक्ष्मीधर वाजपेयी और लल्लीप्रसाद पांडेय को भी अनुवाद के लिए प्रेरित किया।

सप्रेजी ने हिंदी में 'हिंदी ग्रंथमाला' तथा 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन किया। 'हिंदी केसरी' मूलतः मराठी में प्रकाशित होनेवाले 'केसरी' को हिंदी जगत् में व्यापक करने की दृष्टि से अनुवाद पत्र के रूप में ही प्रकाशित हुआ था। ग्रंथमाला में मराठी से अनूदित प्रसिद्ध निबंध का प्रकाशन होता था।

सप्रेजी ने अनुवाद करते समय मूल ग्रंथ की प्राण-रक्षा, भाषा का प्रवाह और संप्रेषण शक्ति का ध्यान रखा। 'महाभारत मीमांसा' का प्रकाशन 1920 में हुआ। अपने अन्य अनुवादों की तरह इस अनुवाद के साथ भी सप्रेजी ने महाभारत के रचयिता, महाभारत के काल, उसके रचना विधान और महत्त्व का विस्तार से विवेचन किया, जिसको पढ़ने पर मालूम होता है कि सप्रेजी का संस्कृत ज्ञान कितना गहरा था!

सप्रेजी और हिंदी-सेवा

माधवराव सप्रेजी की 1902 में 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा 'विज्ञान कोश' बनाने के कार्य में संपादकों में शामिल किया गया। साथ ही उन्होंने अर्थशास्त्र वाले खंड का लेखन-संपादन भी किया। विभिन्न संपादकों द्वारा किए गए कार्य को जाँचने के लिए बाबूश्याम सुंदरदास ने जो समिति बनाई थी, सप्रेजी उसके भी सदस्य रहे। यह ग्रंथ 1906 में प्रकाशित हुआ।

सप्रेजी ने 1905 में 'हिंदी प्रकाशक मंडली' की स्थापनाा नागपुर में की जिसका मुख्य उद्देश्य था, हिंदी भाषा पढ़नेवाले को देशोन्नति के मूल विचारों के लिए जाग्रत् करना। लोकमान्य तिलक के विचारों को व्यापकता देने की दृष्टि से 1907 में सप्रेजी ने नागपुर से 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन प्रारंभ किया। 1920 में जबलपुर में 'हिंदी मंदिर' की स्थापना के मूल में भी सप्रेजी की ही प्रेरणा रही। 11 नवंबर, 1924 के देहरादून में हुए 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' में सभापति सप्रेजी बने और उन्होंने उस समय उपस्थित हिंदी साहित्य साधकों में नई ऊर्जा का संचार किया।

सप्रेजी के 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर उनके साहित्य और हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान को जन-जन तक पहुँचाना चाहिए, ताकि भारत के इस महान् हिंदी सेवा के विराट् स्वरूप का दर्शन हिंदी जगत् को हो सके।

□

sjoshi09@yahoo.com

राष्ट्र संवाद के लिए हो सर्वमान्य भाषा

—प्रो. बृज किशोर कुठियाला

राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा एवं संस्कृति से होती है। भाषा ही समाज को अपने राष्ट्र के साथ जोड़ती है। राष्ट्र की भाषा ही उसकी शक्ति होती है। भाषा के कारण न केवल संस्कृति का संरक्षण होता है, अपितु राष्ट्र के साथ अनन्य संबंध भी स्थापित होता है। अपनी भाषा के प्रति स्वाभिमान, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान को जाग्रत करता है। यही कारण है कि विश्व के अनेक राष्ट्र अपनी भाषा के प्रति समर्पित होने के लिए जाने जाते हैं। भाषा एक विषय नहीं है, यह व्यक्ति विकास के समग्र स्वरूप का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत तेजी से विश्व पटल पर आगे आ रहा है। इसमें सभी भारतीय भाषाओं का योगदान है। हमारे जनमानस की भाषा संस्कृत, पालि, प्राकृत से होती हुई आज की हिंदी तक एक सुदीर्घ परंपरा में चलती चली आ रही है। इस तरह से देखें तो भारत में भाषाओं की विभिन्नता के बावजूद एक समानता देखने को मिलती है, जो अन्यत्र कहीं नहीं है। भारतीय भाषाओं में परस्पर एकात्मकता का भाव देखने को मिलता है यहाँ एकात्मकता का अर्थ वैचारिकता के भाव को प्रदर्शित करता है। इसी एकात्मकता के बोध के कारण ही अनेक झंझावातों को झेलने के बाद भी हमारा राष्ट्रहित का भाव सार्वभौमिक रहता है। एक ही भूखंड की भाषाएँ होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में प्रकृति एवं प्रत्यय में, शब्द धातु में, कथन शैली में, भाव धारा में एवं चिंतन प्रणाली में यत्र-तत्र-सर्वत्र समानता मिलती है। परवर्ती तमिल सिद्धों की 'बानी' उत्तरापथ के संतों की 'वाणी' से मिलती-जुलती है। अवधी से पूरब चलें तो क्रमशः भोजपुरी, बज्जिका, मैथिली, बँगला, असमिया आदि में अंतर और एकत्व की छटाएँ दिखेंगी। इसी प्रकार अवधी से दक्षिण चलें तो कुछ परिवर्तन के साथ बुंदेली, बघेली से छत्तीसगढ़ी जुड़ी हुई मिलेंगी। छत्तीसगढ़ की एक भाषा का रूप कलिंगा उड़िया से जुड़ा हुआ है, दूसरा बस्तर का भाषा रूप हाल्वी तेलुगु के निकट पहुँचता है। भाषा की पाश्चात्य अवधारणा से अलग भारत की भाषा संबंधी अवधारणा अपनी रही है, जिसमें एकात्म दृष्टि है और अंतर्भाषिक संबंध की स्वीकृति भी। भाषा की भारतीय अवधारणा ने भाषाओं के मध्य संगमन को हमेशा जोर दिया है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं में एकात्मकता की अनुभूति होती रही है।

वर्तमान में देश में सर्वाधिक बोली और समझी जानेवाली भाषा हिंदी है। अपनी सहयोगी बोलियों के साथ साधु-संतों, भक्तों और कवियों के हृदय से यह स्रोतस्विनी निरंतर निर्झरित और निस्सृत होती

* कुठियाला, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद के अध्यक्ष।

रही है। लेकिन दुर्भाग्य से जिस देश में यह कहावत हो कि 'कोस-कोस पर पानी बदले और चार कोस पर वानी', उस देश में भाषाओं व बोलियों की अनेकता व विविधता शक्ति बनने के बजाय दुर्बलता बनने लगी है। क्योंकि भाषा का सवाल जितना सीधा व सरल है, उसका उत्तर उतना ही कठिन व जटिल। हम क्यों बोलते हैं, क्या बोलते हैं से आज अधिक महत्त्वपूर्ण यह होता जा रहा है कि हम किस भाषा में बोल रहे हैं। हम अपनी बोली व लिखी जानेवाली भाषा को ही सार्वभौमिक बना देखना चाहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो समझ में आता है कि शासन बदलने के साथ-साथ भाषा भी बदलती गई है। सम्राट् अशोक के समय उपयोग में आई लिपि को अब तक हम लोग ठीक से समझ नहीं पाए हैं। उससे भी पहले हड़प्पा-युगीन लिपि भी हमारे लिए रहस्य बनी हुई है। समय के साथ संस्कृत, पाली, प्राकृत, फारसी, अरबी, उर्दू, हिंदी और अंत में अंग्रेजी समय-समय पर प्रमुखता पाती गई, जिससे राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार प्रभावित हुआ और स्थानीय भावनाओं का कारण बनता गया। इसके कारण ही अलगाववाद जैसे विषय को जन्म मिला, जिससे राष्ट्रीय एकता को प्रभावित करने की कोशिश की गई। जिससे भाषायी और क्षेत्रीय निष्ठा के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का क्षरण होता गया। राष्ट्रीय भावना के क्षरण के परिणामस्वरूप देश की संप्रभुता को संकट हो जाता है।

अखंड भारत की परिकल्पना में उपरोक्त वर्णित सारी भाषाओं का सहअस्तित्व बहुत कठिन था। दरअसल जो प्रतिस्पर्धा व संघर्ष देशी बनाम विदेशी होना था और हिंदी बनाम अन्य भारतीय भाषाओं का हो गया। साठ के दशक में लोहिया की अगुआई में 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन चला। उसका मकसद अंग्रेजी से ज्यादा अंग्रेजी मानसिकता को हटाना रहा। लेकिन दुर्भाग्यवश वह हिंदी बनाम अंग्रेजी में तब्दील हो गया और कतिपय राजनैतिक तंत्र के 'नव अंग्रेजों' ने धीमे से इसे हिंदी बनाम अन्य भारतीय भाषाओं का रूप दे दिया। इससे वह आंदोलन सफल नहीं हो पाया और भारतीय भाषाओं की बनिस्बत अंग्रेजी चिरकाल के लिए भारतीय उच्च मानस के प्रतीक के रूप में स्थापित हो गई। इसकी वजह से राजनैतिक वर्ग भी इस सवाल को छेड़ने से बचने लगा। यह भी सच है कि जिस आर्थिकी ने भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी की शक्ति और अधिक बढ़ाई, अब वही आर्थिकी भारतीय भाषाओं की क्षमता को और गहराई से समझने लगी है। यह सही है कि अंग्रेजों ने जिस तरह की शिक्षा व्यवस्था को भारत में विकसित किया, उसका प्रभाव स्वतंत्रता के बाद भी रहा। हमारी सोच पर औपनिवेशिक मानसिकता हावी रही। इसका दैनंदिन जीवन में असर भी दिखा। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को जिंदगी के तमाम मोर्चों पर भारतीय भाषाएँ जानने-बूझनेवालों की तुलना में ऊँचा स्थान प्राप्त होता रहा। इससे सभी भारतीय भाषाओं की हानि हुई एवं लाभ केवल अंग्रेजी को मिला। आज हिंदीतर राज्यों में हिंदी को ही स्थानीय भाषाओं के लिए बड़े खतरे के रूप में प्रचारित किया जाता है, जबकि हिंदी में धड़ाधड़ अंग्रेजी के शब्द उपयोग करने का रुझान भी बढ़ रहा है, जिससे हिंदी के कई शब्द अप्रचलित और आम स्मृति से बाहर हो रहे हैं। इसके साथ ही शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का बढ़ता प्रसार हिंदी और भारतीय भाषाओं को शिक्षा, शोध और रोजगार के क्षेत्र में हाशिए पर ला रहा है।

हमें यह बात भी समझनी चाहिए कि स्वतंत्रता मिलने पर यह आशा थी कि भारत को भाषायी परतंत्रता से भी मुक्ति मिलेगी, लेकिन सच यह है कि अंग्रेजी ने सारे तंत्र पर अपनी जड़ें मजबूती से जमा ली हैं। हमारी न्याय-व्यवस्था, प्रशासन और

शिक्षा के तौर-तरीकों ने स्वतंत्रता के बाद के 75 वर्षों में अंग्रेजी को मजबूत करने का ही कार्य किया है। हालात यह है कि आज यह बात आम लोगों के दिलों में बैठ गई है कि उन्हें और उनके बच्चों को यदि अंग्रेजी नहीं मिलेगी तो वे पिछड़ जाएँगे। अंग्रेजी का यह मोह ही वस्तुतः हिंदी समेत सभी भारतीय भाषाओं के लिए खतरा बन गया है। निस्संदेह भारतीय भाषाओं के समक्ष भी कुछ समस्याएँ हैं, लेकिन ये समस्याएँ मुख्यतः अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण कम बल्कि सत्ता प्रतिष्ठान के हिंदी तथा अन्य भाषाओं के लिए उपेक्षा के कारण ज्यादा हैं। हम हिंदी ही नहीं बल्कि हिंदुस्तान की सभी भाषाओं को अंग्रेजी के घेरे में बंद रखना चाहते हैं और ऊपर से दिखाने के लिए बात मातृभाषा में करते हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि देश को आर्थिक और राजनैतिक गुलामी से मुक्त कर लेने से ही स्वातंत्र्य की साधना सिद्धि नहीं हो सकती। उसके लिए मानसिक दासता की समाप्ति भी आवश्यक है। और यह कार्य स्वभाषा के प्रति स्वाभिमान जाग्रत् करके ही किया जा सकता है। आज यह स्थिति है कि जो अंग्रेजी जानते हैं, उन्हें भारतीय साहित्य की जानकारी नहीं है और जो भारतीय साहित्य के पंडित हैं, वे अपनी बात अंग्रेजी में नहीं कह सकते। अंग्रेजी की अनिवार्यता का ढकोसला समाज में खड़ा किया गया और व्यवस्था व सत्ता दोनों ने इसे प्रोत्साहित किया।

आज देश में जिस प्रकार का वातावरण दिखाई दे रहा है, उसका मूल कारण हमारा अपनी भाषा से दूर होना है। इस ओर अगर हमारा ध्यान नहीं गया तो स्थिति और भी भयावह हो सकती है, क्योंकि प्रत्येक भाषा का अपना संस्कार होता है। भाषा में उस देश की मिट्टी की खुशबू होती है। वह जहाँ-जहाँ फैलती है, समाज के मन-मस्तिष्क को अपनी महक से आप्लावित कर लेती है और समाज अपने देश की मिट्टी की खुशबू को भूल जाता है। उसे अपने देश की मिट्टी से बदबू आने लगती है। हमारे देश में आज यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। वैश्वीकरण की दुहाई देकर भले ही हम इससे मुँह मोड़ लें, परंतु यह स्थिति समाज को देश की मिट्टी और देश की परंपराओं से दूर ले जा रही है। ईसाई धर्म प्रचारक इस बात को शीघ्र ही समझ गए थे कि जब तक भारत में संस्कृत भाषा का प्रभाव रहेगा, तब तक इस देश में ईसाई धर्म का काम नहीं किया जा सकता। संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में स्थापित करने का कार्य यदि कोई भाषा कर सकती है तो वह संस्कृत भाषा है। संस्कृत के विद्वानों ने भारतीय एकात्मता को अपने ग्रंथों में दरशाया है। संस्कृत न केवल भारतीय ज्ञान-विज्ञान की भाषा है, अपितु भारत की आत्मा संस्कृत ग्रंथों में निहित है। भारत की चिति को समझने के लिए भारतीय साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। वेद, उपनिषद्, आरण्यक, पुराण, धर्मग्रंथ, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र कामसूत्र, अष्टाध्यायी आदि भारतीय ज्ञान मीमांसा के अनुपम ग्रंथ हैं। भारत की सांस्कृतिक धरोहर हजारों वर्षों से अटूट चली आ रही है। जैसे हिमालय से गंगा निकलती है और निरंतर बहती चली जाती है, उसी प्रकार हिमालय से ही हमारे सांस्कृतिक दार्शनिक और आध्यात्मिक स्रोत उभरते हैं। संस्कृत भाषा की शक्ति से भयभीत होकर ही मैकाले ने इस भाषा को समाज से दूर करने का कुत्सित षड्यंत्र रचा और भारतीय समाज उस कुचक्र में फँस गया। सभी इस बात पर सहमत होंगे कि संस्कृत की अक्षर ऊर्जा से दुनिया में ढेर सारी भाषाओं का विकास हुआ। लोक-आकांक्षाओं के अनुरूप संस्कृत ने अनेक रूप पाए। भारत में वह वैदिक से लोकसंस्कृत बनी, पालि बनी, प्राकृत बनी, अपभ्रंश होकर हिंदी बनी। सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है, इसलिए अक्षर, शब्द, वाक्य रचना व व्याकरण में समानताएँ हैं।

हर भाषा सिर्फ भाषा नहीं होती है, वह अनुभव के आधार पर ज्ञान-सृजन का भंडार भी होती है। यह बात हम न सिर्फ हर भाषाओं की अपनी-अपनी कहावतों में देख सकते हैं, बल्कि उनके अपने अनोखे शब्दों में भी देख सकते हैं, जैसे वन में निवास करनेवाले और आस-पास के परिवेश को लेकर जो अनेक शब्द वनवासी बंधुओं की भाषा में हैं, वे देश की अन्य उन्नत कही जानेवाली भाषा में नहीं हैं। इसलिए आज सारी दुनिया में इस मुद्दे पर बहस हो रही है कि विद्यार्थियों को उनकी अपनी मातृभाषा में कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा तो दी जाए। क्योंकि विद्यालयों में उनकी अपनी भाषा में उनकी अपनी संस्कृति, परिवेश और समुदाय की जरूरतों के बारे में बताया जाएगा तो इससे विद्यार्थियों के लिए पढ़ाई बोझ बनने की बजाय उसके प्रति उत्साह, कौतूहल, सक्रियता और उत्सुकता बढ़ती है, जो ज्ञान अर्जन करने की सबसे पहली सीढ़ी है। आज हिंदी भाषी राज्यों में भी हिंदी माध्यम के विद्यालय बंद होते जा रहे हैं और अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा देनेवाले बढ़ते जा रहे हैं। यही हाल तमिलनाडु सहित आस-पास के राज्यों का है। अब समय आ गया है कि हम भाषा के सवाल को हिंदी बनाम अनुसूचित भाषाएँ या दक्षिण भारतीय भाषाओं भर का मुद्दा न बनाएँ। हर राज्य की अपनी बोलचाल की अनेक भाषाएँ हैं, जैसे उत्तर प्रदेश में अवधी, ब्रज, बुंदेलखंडी, उर्दू बोली जाती है; बिहार में भोजपुरी, मगही, मैथिली, बज्जिका एवं अंगिका। उसी तरह राजस्थान में मारवाड़ी, मेवाती, शेखावटी। अगर आप छत्तीसगढ़ जाएँगे तो वहाँ छत्तीसगढ़ी भाषा को ही दर्जनों तरीके से बोला जाता है। मध्य प्रदेश में निमाड़ी, बुंदेलखंडी, बघेली। इसके अलावा वनवासी बाहुल्य राज्यों में कोरकू, गोंडी, भीलाली, पावरी आदि अनेक वनवासी भाषाएँ बोली जाती हैं। मध्य प्रदेश में आपस में सटे जिले बैतूल, छिंदवाड़ा, हरदा और खंडवा जिले में कोरकू भाषा को इतने अलग-अलग लहजे में बोला जाता है और उसमें इतने भिन्न-भिन्न शब्द हैं कि कोरकू आपस में भी एक-दूसरे की भाषा को इतनी आसानी से नहीं समझ पाते हैं। एक ही भाषा को अलग-अलग जगह के लोग अलग-अलग लहजे में बोलते है, उसमें बोलचाल के अनेक स्थानीय शब्द भी जुड़ जाते हैं। अगर आप किसी भी राज्य के सीमावर्ती इलाके के लोगों की भाषा देखेंगे, तो पाएँगे कि वे आस-पास के दोनों राज्यों की भाषा के मिश्रित शब्दों को बोलते हैं। वे भाषा को उसके शुद्ध रूप में कभी ही नहीं बोल पाते हैं। अगर हम अपने आस-पास देखें तो पाएँगे कि हिंदी सहित सभी प्रमुख भारतीय भाषा को शुद्ध रूप से बोलने वाला एक प्रबुद्ध वर्ग होता है। और जो लोग आर्थिक रूप से कमजोर तथा श्रम करनेवाले वर्ग से आते हैं, वे उसी भाषा को कुछ अलग तरह से बोलते हैं। उनकी भाषा में बोलचाल के अपने शब्द होते हैं और उनका व्याकरण पर कोई जोर नहीं होता। जैसे तमिलनाडु के चेन्नई शहर में 'तमिल भाषाई' ज्यादातर वहाँ के ग्रामीण बोलते हैं। वैसा ही मुंबइया हिंदी के साथ है। श्रम करने वाले ये गरीब और ग्रामीण परिवेश के व्यक्ति अपनी शिक्षा के दौरान सबसे पहले भाषा के लिखित स्वरूप से जूझते हैं। घर पर रोजमर्रा की बोलचाल में उस भाषा को बोलने का तरीका कुछ होता और पढ़ाई के दौरान लिखने का कुछ और। वे एक शब्द का कई तरह से उपयोग करते हैं और उनकी भाषा में सिर्फ प्रत्यक्ष अनुभव की चीजों के लिए शब्द होते हैं। इसलिए वे लिखते समय व्याकरण की अनेक गलतियाँ करते हैं। प्रतिभाशाली छात्र भाषा के चक्कर में ही मात खा जाते हैं। इसलिए भारतीय भाषाओं की एकात्मकता को बनाए रखते हुए नई संपर्क भाषा गढ़ने की आवश्यकता है। इसके लिए भारतीय भाषाओं का ऐसा पुलाव बने, जिसमें सभी की महक हो। वह एकता की महक हो, अलगाव

की नहीं। हमें समझना होगा कि कोई भी भाषा किसी पर भी थोपी नहीं जा सकती, सहजता से स्वीकार्यता बनानी होगी। हिंदी के समर्थन व विरोध और अंग्रेजी हटाओ आंदोलनों को बीते अब 60 वर्ष से भी अधिक हो गए हैं। शिक्षा की माध्यम-भाषा के रूप में अंग्रेजी के दबदबे और हिंदी विरोध को समाप्त करने का एक ही उपाय है कि भारतीय भाषाओं को एक समुच्चय में बदलकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पढ़ाई-लिखाई की भाषा बनाने के कठिन काम के लायक बनाया जाए। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाने की जरूरत पड़ेगी। अच्छी गुणवत्ता की पाठ्य-पुस्तकें, तकनीकी विषयों के शब्दकोश, संदर्भ सामग्रियों में सभी भारतीय भाषाओं के सर्वमान्य शब्दों को प्रमुखता से स्थान देना होगा।

किसी भाषा की प्रतिष्ठा केवल इसलिए नहीं होती कि वह व्याकरण, लिपि, साहित्य-संपदा, दृष्टि से कितनी संपन्न है, न ही इस आधार पर कि वह कितने लोगों द्वारा बोली जाती है। उसकी प्रतिष्ठा मूलतः इस आधार पर होती है कि जिनकी वह भाषा है, जो उसे बोलते हैं, उनमें तनकर खड़े हो सकने की रीढ़ है या नहीं? आज हिंदी का संकट यही है कि हिंदीभाषी जन रागात्मक निष्ठा के सांस्कृतिक स्तर पर भाषा से कटा हुआ है। यही कारण है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयास ऐतिहासक दुराग्रहों व पूर्वग्रहों के कारण असफल हुए और भविष्य में भी ऐसे ही होने की संभावना है। अकसर कहा जाता है कि करीब 140 करोड़ की जनसंख्या वाले भारत में 50 फीसदी से ज्यादा लोग हिंदी बोलते हैं। साथ ही गैरहिंदी भाषी जनसंख्या में भी करीब 20 फीसदी लोग हिंदी समझते हैं। इसलिए हिंदी भारत की आम भाषा है। लेकिन कई भाषाविदों का कहना है कि हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ के लोगों को हिंदीभाषियों में गिन लिया जाता है, वे लोग हिंदीभाषी नहीं हैं। उनमें से बहुत से लोगों की भाषा जनजातीय या क्षेत्रीय है। इसके अलावा भारत के दक्षिण में केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक। पश्चिम में गोवा, महाराष्ट्र और गुजरात। भारत के उत्तर-पश्चिम में पंजाब और जम्मू-कश्मीर। पूर्व में ओडिशा और पश्चिम बंगाल। उत्तरपूर्व में सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा, नगालैंड, मणिपुर, मेघालय और असम। ये इस देश के 29 में से 20 राज्य हैं, जिनमें हिंदीभाषी बहुत कम हैं। इसके अलावा भारत में ही हिंदी से कहीं पुरानी भाषाएँ तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, मराठी, गुजराती, सिंधी, कश्मीरी, ओड़िया, बांग्ला, नेपाली और असमिया हैं। मेरा मत है कि एक समान सांस्कृतिक भू-भाग के लोगों के बीच एक समान भाषा का स्तर होना ही चाहिए। भारतीय भाषाओं के लिए बहुभाषिक व्याकरण के विकास का लक्ष्य भारतीय भाषाओं को एक प्रारूप के तहत लाने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के बीच न सिर्फ उच्चारण, बल्कि व्याकरण और शब्द विन्यास तक के स्तर पर सहज एकता है। इसके लिए भारतीय भाषाओं के बीच प्रचलित तद्भव या देशज शब्दों की तरफ देखना होगा। इसके लिए निष्पक्ष विद्वानों का समूह सर्वसम्मति से तय करें कि सबसे अधिक उपयोगी लिपि कौन सी है और उसको अपनाया जाए। सबके सामंजस्य से व्याकरण सर्वश्रेष्ठ सूत्रों पर एक आम सहमति बने। आज की आवश्यकता है, एक ऐसा सर्वमान्य व्याकरण तैयार करने की, जिसके सहारे छात्र एक या उससे अधिक भारतीय भाषा सीख सकें। सभी भारतीय भाषाओं के समानार्थी शब्दों का एक शब्दकोश बनाया जाए। अगर ऐसा कर सकते हैं तो भाषाओं के विभाजन की रेखा समाप्त हो सकती है। यह कार्य बेहद चुनौतीपूर्ण लगता है, लेकिन जब इस पर विचार शुरू होगा तो इन भाषाओं के बीच एक सूत्र निकल जाने

की संभावना है। यह सूत्र भाषायी तौर पर राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को समर्पित होगा।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि देश को आर्थिक और राजनैतिक गुलामी से मुक्त कर लेने से ही स्वातंत्र्य की साधना सिद्धि नहीं हो सकती। उसके लिए मानसिक दासता की समाप्ति भी आवश्यक है। यह कार्य स्वभाषा के प्रति मोह त्याग कर और राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान जाग्रत् करके ही किया जा सकता है। एक बहुभाषी देश में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए देश पर एक आधिकारिक भाषा को लागू नहीं किया जा सकता है। इसके लिए सभी भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ शब्दों को मिलाकर एक नई भाषा बनाने की आवश्यकता होगी। देश में एक राष्ट्रभाषा की स्थापना पर जोर होना चाहिए। राष्ट्रभाषा में भारत की समृद्ध विविधता, विचारों, संस्कृतियों, भाषाओं और साहित्य का सम्मान होना चाहिए। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि संवाद के लिए राष्ट्र की एक माध्यम-भाषा बनाने के लिए ढेरों नवाचारों की आवश्यकता है। स्वाधीनता से स्वतंत्रता की यात्रा में नवीन तंत्रों को एक ही भाषा चलाएगी तो राष्ट्र की एकात्मकता प्रत्यक्ष जाग्रत् होगी। हिमाचल के किन्नौर का नागरिक यदि कर्नाटक के चिकमंगलूर के भाई के साथ सहज संवाद नहीं कर सकता तो इससे एकता और एकात्मकता की स्थितियाँ मजबूत होने के स्थान पर कमजोर होंगी एवं लोग संवाद के लिए पर भाषा पर निर्भर एवं मजबूर होंगे। यह विचार आज सोचनीय एवं प्रासंगिक है। भारतीय भाषाओं के पास विपुल शब्द-भंडार, साहित्य-भंडार, तकनीक का सहयोग है। बस आवश्यकता है उसे एक सकारात्मक रूप से सभी को स्वीकारने एवं उचित प्रतिष्ठा के साथ एक माला में पिरोने की। अगर ऐसा कर सकें तो बहुभाषा-भाषी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भाषायी एकात्मकता का वह वैश्विक उत्कर्ष होगा, जो हिंदी सहित सभी भाषा प्रेमियों के लिए गर्व और गौरव का विषय होगा।

□

kuthialabk@gmail.com

ईश्वर जीवन है, सत्य है और प्रकाश है। वही प्रेम है, वही परम मंगल है।

—महात्मा गांधी

उपवास करने से चित्त अंतर्मुख होता है,
दृष्टि निर्मल होती है और देह हलकी बनी रहती है।

—काका कालेलकर

ज्ञान मंत्र है। कर्म तंत्र है। उपासना दोनों को जोड़ देती है।

—विनोबा

हिंदी की सामर्थ्य अतुलनीय है

—डॉ. हिमांशु द्विवेदी

मान्यता है कि जिसे घर में सम्मान नहीं मिलता, उसे दुनिया में भी सम्मान हासिल नहीं होता। यह मान्यता हिंदी पर अक्षरश: लागू होती है। हिंदी को हम दुनिया की प्रमुख भाषा तो बनाना चाहते हैं, पर सच यह है कि हिंदी को हम आजादी के 75 साल बाद भी हिंदुस्तान में ही संपूर्ण स्वीकार्यता नहीं दिला पाए। जब अपने ही देश में हिंदी स्वीकार्य नहीं है तो विश्व में सम्मान कैसे मिलेगा? क्या हिंदी के विकास का रास्ता दुनिया ने रोका है? नहीं, चीन की आधिकारिक भाषा मंडारिन और अंग्रेजी के बाद दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा का विकास हमारे ही देशवासियों ने रोक रखा है। वजह कुछ तो क्षेत्रीय है और कुछ मानसिक।

भारत के संविधान में उल्लेखित है कि केंद्र सरकार की पत्राचार की भाषा हिंदी या अंग्रेजी होगी। लेकिन असलियत यह है कि हिंदी आज भी पत्राचार ही नहीं, किसी भी स्तर पर राजकीय कार्यों में वैकल्पिक भाषा ही बनकर रह गई है। सरकारी दस्तावेजों और न्यायालयों में अंग्रेजी ही प्रधान भाषा है। हिंदी की यह हालत हिंदी भाषी राज्यों में भी है। गैर-हिंदी भाषी राज्यों में राजकीय कार्यों में हिंदी में दस्तावेज मुश्किल से ही दिखते हैं। गैर-हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी के प्रति इतना दुराग्रह ही नजर आता है। ऐसा नहीं है कि हिंदी का विरोध आम आदमी के स्तर पर है। विरोध सियासी स्तर पर अधिक है। जाति, धर्म, प्रांत और भाषा के स्तर पर अलगाव पैदा कर अपनी सियासत करनेवालों ने ही हिंदी को वह सम्मान हासिल नहीं होने दिया, जो उसे मिलना चाहिए। अगर आम आदमी के स्तर पर हिंदी का विरोध होता तो दुनिया में चीन की आधिकारिक भाषा मंडारिन और अंग्रेजी के बाद यह तीसरी सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा नहीं होती। आम आदमी ने हिंदी को बाँहें फैलाकर स्वीकार किया है। उसका परिणाम भी है कि बीते दो दशकों में हिंदी ने खुद को वैश्विक भाषा के तौर पर स्थापित किया है। वेब, संगीत, सिनेमा और बाजार ने हिंदी की ताकत को समझा है। भारत के अलावा संयुक्त राज्य अमेरिका, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, यमन, यूगांडा, सिंगापुर, नेपाल, जर्मनी, न्यूजीलैंड, संयुक्त राज्य अमीरात जैसे देशों में करोड़ों लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। विडंबना है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर की हिंदी भाषा दुनिया में धीरे-धीरे अपनी जगह बना रही है, वहीं वह अपने ही देश में वैमनस्य का

---

* मीडिया विशेषज्ञ, 'हरिभूमि' समाचार-पत्र और जनता टी.वी. एवं आई.एन.एच. 24X7 के प्रधान संपादक।

शिकार होकर रह गई है। अपने ही देश में हिंदी के प्रचार की राह में अवरोध खड़ा करने में कोई कमी नहीं रखते। मौका मिलते ही वे भाषा के नाम पर जनता को भड़काते हैं और हिंदी को राष्ट्रीय रूप में स्वीकार्य भाषा के तौर पर स्थापित नहीं होने देते। यह हिंदी का दुर्भाग्य नहीं है तो क्या है?

प्रांतीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं की पहचान खो देने के नाम पर सियासत होती रही है। उसका दंश हमेशा हिंदी ने ही भुगता है। ऐसा आजादी के बाद से ही होता आया है। यह केवल वर्तमान की ही बात नहीं है। 1965 में जब दक्षिणी राज्यों में हिंदी को प्रमुख भाषा बनाने का प्रयास किया गया तो मदुरई में हिंदी के विरोध में हिंसक विरोध हुआ था। उसमें 70 लोगों की मौत हुई और सैकड़ों लोग घायल हुए। उस प्रदर्शन से कांग्रेस को राजनीतिक दृष्टि से भारी नुकसान उठाना पड़ा। शायद एक वजह यह भी है कि राजनीतिक पार्टियाँ उसके बाद राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को अनिवार्य करने जैसी पहल करने से बचती रही हैं। वर्तमान मोदी सरकार ने जरूर थोड़ी उम्मीद जगाई है। 2014 में सरकार ने आते ही अपने अधिकारियों और मंत्रियों को सरकारी पत्रों में हिंदी का प्रयोग करने का आदेश दिया था। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी बोलते दिखते हैं। केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने इसलिए कहा था कि भारत को दुनिया की ताकत बनाने के लिए जरूरी है कि राष्ट्र की भाषा भी एक हो। जब भाषा के स्तर पर राष्ट्र एक होगा तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उसकी पहचान एक राष्ट्र के तौर पर मजबूत होगी। लेकिन दुर्भाग्य से विपक्षियों ने उसकी मंशा पर ही सवाल उठा दिए। हिंदी विरोधियों के तर्क हैं कि गोवा, महाराष्ट्र और गुजरात; भारत के उत्तर-पश्चिम में पंजाब और जम्मू-कश्मीर, पूर्व में ओडिशा और पश्चिम बंगाल, उत्तर-पूर्व में सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय और असम में हिंदी भाषी बहुत कम हैं, ऐसे में हिंदी राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। जवाब तो यही है कि भारत हमारा एक परिवार है। हर परिवार में एक मुखिया होता है। जिस परिवार में कई मुखिया होते हैं, वहाँ एकजुटता और अनुशासन नहीं हो सकता। उस परिवार की प्रतिष्ठा भी नहीं होती। हिंदी देश की प्रमुख भाषा बने और प्रांतीय स्तर पर सभी अपनी-अपनी भाषाओं का उपयोग करें। एक देश को मजबूत करने के लिए इससे बेहतर क्या हो सकता है। हिंदी को अपने ही घर में सम्मान मिलेगा। जब घर में सम्मान मिलेगा तो दुनिया में भी सम्मानित होगी हिंदी।

□

dwivedih7@gmail.com

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है,
जिनके बल पर वह विश्व की साहित्य भाषाओं की
अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

—मैथिलीशरण गुप्त

देश के सांस्कृतिक विस्तार में हिंदी की भूमिका

—डॉ. कुंदन यादव

आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव और विकास के क्रम में भारत की सभी प्रांतीय भाषाओं के मध्य हिंदी का विस्तार सबसे अधिक व्यापक है। देश का कोई भी इलाका ऐसा नहीं है, जहाँ हिंदी भारतीय व्यक्ति को किसी भी तरह के संप्रेषण में दिक्कत का सामना करना पड़ता है। भारतीय भू-भाग में संस्कृत से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि स्वरूपों से गुजरकर वर्तमानकाल में हिंदी के भीतर वह सभी लक्षण दिखाई देते हैं, जिसमें हिंदुस्तान की व्यापक जनसंख्या अपने रोजमर्रा के कामकाज के अलावा अपनी जिजीविषा को अभिव्यक्त करती है। आज के मोबाइल युग में कोई भी चैनल हो या कोई भी प्रोग्राम हो हिंदी अपनाए बगैर उसका गुजारा संभव नहीं है। सनातन संस्कृति के विस्तार का आधार अब संस्कृत न होकर जन सामान्य के बीच में हिंदी ही है, क्योंकि संस्कृत अब बोलचाल की भाषा नहीं रह गई है। ऐसे में हिंदी न केवल विश्व स्तर पर, बल्कि देश में एक व्यापक संपर्क भाषा के रूप में भारतीय संस्कृति को विस्तार देती है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। साहित्य, कला, फिल्म, समाचार इत्यादि अनेक माध्यमों से विविधता में एकता की स्थापना हिंदी ने की है।

संस्कृति का सीधा सा मतलब है—संस्कारों के द्वारा पैदा होनेवाले कामकाज का तरीका। इसीलिए हमारी संस्कृति बार-बार विभिन्न संस्कारों के माध्यम से मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न मानदंडों के प्रति जवाबदेह बनाती है। हिंदुस्तान में इतने सारे नियम, कायदे-कानून के बावजूद भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संस्कार के प्रतिफलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसीलिए विविध संस्कृतियों का आपस में टकराव नहीं होता। वाद-विवाद होता है, बल्कि बहुत जल्दी संवाद हो जाता है। भारतीय परंपरा में हमेशा ही विद्या को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया, 'विद्या धनम सर्व धनम प्रधानम' और सबसे बड़ा सुख संतोष को बतलाया गया है—'चारि बइल्ला धेनु दुइ मिट्ठा बुल्लिय नारि काहू मुंज कुडुंबियहून गयवर बज्झई बारि'—अपभ्रंश कवि देवसेन।

मानव जीवन के विभिन्न गुणों को धारण करने और वैसा व्यवहार करने पर हमारी संस्कृति शुरू से ही जोर देती रही है। जैसे वीरता को ही लें तो एक स्त्री को उसका पति सबसे अधिक प्यारा होता है। हर स्त्री सुहागन रहना चाहती है, लेकिन वीरता की कीमत पर नहीं। भारतीय साहित्य की वीरांगना सहेलियों से कहती है—भल्ला हुआजू

---

* सी.जी.एस.टी. केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड राजस्व विभाग, वित्त मंत्रालय चंडीगढ़ में एडिशनल कमिश्नर।

मारिया बहिणी म्हारा कंतु लज्जेजंतु वायन्सिहउ जई भग्गा घर एंतु—हेमचंद।

शांतिप्रियता हमारी संस्कृति की विशेषता है। वैदिक शांति पाठ से लेकर आधुनिक विदेश नीति में भी पंचशील और गुटनिरपेक्षता तक हर तरफ कहीं-न-कहीं विश्व स्तर पर शांति की स्थापना का प्रयास हमारी भारतीयता का प्रमुख अंग रहा है। यही वजह है कि हम 'वसुधैव कुटुंबकम' की बात करते हैं। शांतिप्रियता की यह मनोदशा ही हमें सबसे अधिक स्वतंत्र समाज के रूप में विश्व के सामने लाती है। मानवीय चेतना के बारे में भारतीय मनीषा ने कोई एकवादी नहीं, बल्कि सनातन धर्म को विकसित किया, जो सार्वभौम है। इसीलिए शांतिपाठ में कहा गया है—

"ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शांतिः,पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शांतिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शांतिः,सर्वं शांतिः, शान्तिरेव शांतिः, सा मा शान्तिरेधि॥"

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

हमारे सर्वांगीण विकास के लिए शांति की आवश्यकता होती है और हमारी संस्कृति हमेशा से ही शांति का उपदेश देती आई है। संयुक्त राष्ट्र के मिशन पर हम सदियों से कार्यरत हैं। अगर ध्यान दें तो हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान इन तीनों में जितनी स्वतंत्रता है और जितनी शांति है, इतनी और कहीं नहीं है। आप हिंदी भाषा को ही देखें, भाषागत स्तर पर और व्याकरण स्तर पर दूसरी भाषाओं के शब्दों को स्नान आत्मसात् करने के स्तर पर जितनी अबाध स्वतंत्रता हिंदी भाषा में है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं है। इसी प्रकार संस्कार के तौर पर देखें तो हिंदी जगत् या हिंदू संस्कृति में सबको अपने हिसाब से अपने-अपने आध्यात्मिक क्रिया-कलाप, कर्मकाण्ड, वाद-विवाद-संवाद आदि की आजादी है। मैं आध्यात्मिकता की बात नहीं कर रहा। दैनिक जीवन जगत् में हम गाँव में देखते हैं कि भले ही बड़ी मुश्किल से खाना जुटाया जा रहा हो, लेकिन पहली रोटी गाय की, अंतिम रोटी कुत्ते की। चींटियों के बिल पर आटे का छिड़काव और दोपहर में आनेवाले भिखारी के लिए एक मुट्ठी आटा हर घर से निकल जाता है।

बाबा नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' को हम याद करें तो आँगन के ऊपर धुआँ उठते ही कौवा सबको बताने लगता है कि बस अब इंतजार खत्म हुआ। छिपकली, चूहा, कानी कुतिया सबके लिए आशा का संचार हो जाता है, जबकि घर में दाने आते हैं। ऐसा शायद ही विश्व में कहीं होता हो कि अकाल के बाद अनाज के दाने आने पर सिर्फ मनुष्य नहीं, बल्कि पूरा पर्यावरण खुश हो रहा हो।

विविधता में एकता राष्ट्र की विशेषता—यह स्वाधीनता के बाद ही दिया गया नारा नहीं है, बल्कि चिरकाल से चला आ रहा हमारा व्यवहार भी है और अगर ऐसा नहीं होता तो रामेश्वरम में चढ़ाने के लिए गंगोत्री का गंगाजल और बनारस में तमिल तीर्थयात्रियों का झुंड सांब सदाशिव करते हुए नंगे पाँव नहीं घूमता। कम-से-कम माता वैष्णो देवी को नारियल चढ़ाने के लिए अनिवार्यता तो नहीं होती। हमारी संस्कृति की विशेषता है कि विविधता के बावजूद भी कट्टरता का कोई स्थान नहीं। अजमल सुल्तानपुरी के शब्दों में कहें तो,

"जहाँ के तुलसी और कबीर, जायसी जैसे पीर फकीर
जहाँ थे मोमिन गालिब मीर, जहाँ थे रहमत और रसखान
जहाँ की पाक पवित्र जमीन, जहाँ की मिट्टी खुल्दनशीन
जहाँ महाराज मोइनुद्दीन वह पूरा-पूरा हिंदुस्तान
मैं उसको ढूँढ़ रहा हूँ"

अजमल सुल्तानपुरी ही नहीं, हम सब उसको ढूँढ़ रहे हैं और शायद ढूँढ़ने के लिए बार-बार विश्व की विभिन्न जगहों पर एक साथ एकत्रित होते हैं। इसलिए, नहीं कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ

में स्थान मिल जाए या इसलिए नहीं कि हिंदी का बहुत ज्यादा व्यापक प्रचार-प्रसार हो जाए। बल्कि मुझे विश्वास है कि इस सम्मेलन के माध्यम से हम हर चार वर्ष में एक बार ओलंपिक खेलों की तरह मिलते हैं कि अपना सबकुछ साझा कर सकें और अपनी हिंदुस्तानियत का प्रचार कर सकें। यहाँ की संस्कृति किसी झगड़े, युद्ध या किसी समुदाय को दबाकर या विजय प्राप्त करके नहीं बनाई गई। बल्कि, युगों-युगों से हमेशा शोर का मुकाबला शांति से करती हुई बुद्ध से गांधी तक हमारी हिंदुस्तानियत ने विभिन्न समाजों के आपसी अंतर्संबंधों, विचार प्रक्रियाओं और सामाजिक-आर्थिक आदान-प्रदान के माध्यम से जीवन जगत् के अनुभव के अनेक आयाम विकसित किए हैं, जिससे कि एक मानव के रूप में व्यक्ति अपनी परम प्रकृति को हासिल कर लेता है। युगों-युगों से विभिन्न आक्रमणकारी हमारी जमीन पर आते रहे। फिराक गोरखपुरी को याद करें,

"सरजमीन ए हिंद पर अकवाम ए आलम के फिराक काफिले बसते गए हिंदुस्तान बनता गया"

जाने कितने अलग-अलग काफिलों से हिंदुस्तान बना है और इसीलिए हिंदुस्तान में इतनी रंगीनियत है कि वह दुनिया के अन्य भू-भागों को जिंदगी की रंगीनियत से, आत्मोत्थान से रू-बरू करा सकता है। हिंदुस्तान के संविधान को देखें तो यहाँ आप जो भी चाहे करने को स्वतंत्र हैं। दुनिया भर में बहुत सी संस्कृतियाँ हैं, जो व्यक्ति की अभिव्यक्ति को एक बने-बनाए रास्ते या परिपाटी पर ले जाने की हिमायत करती हैं। धार्मिक स्तर पर किसी एक चीज में ही आस्था रखने की बात करती हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते तो आप विरोधी हैं। हमारे यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि किसी विशेष मत का कोई महत्त्व ही नहीं है। हमने बहुत पहले से मान लिया है कि—

"मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना कुंडे-कुंडे नवं पयः।
जातौ-जातौ नवाचाराः नवा वाणी मुखे-मुखे॥"

जितने मनुष्य हैं, उतने विचार हैं; एक ही गाँव के अंदर अलग-अलग कुएँ के पानी का स्वाद अलग-अलग होता है, एक ही संस्कार के लिए अलग-अलग जातियों में अलग-अलग रिवाज होता है तथा एक ही घटना का बयान हर व्यक्ति अपने-अपने तरीके से करता है। इसमें आश्चर्य करने या बुरा मानने की जरूरत नहीं है। (वायु पुराण)

लेकिन, इस प्रमेयात्मक सच के बावजूद

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु
विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे
असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥"

हमारे पास चारों ओर से ऐसे कल्याणकारी विचार आते रहें, जो किसी से न दबें, उन्हें कहीं से बाधित न किया जा सके एवं अज्ञात विषयों को प्रकट करनेवाले हों। प्रगति को न रोकनेवाले और सदैव रक्षा में तत्पर देवता प्रतिदिन हमारी वृद्धि के लिए तत्पर रहें।

इन सब मत-मतांतरों के बाद सूप का स्वभाव भी हमारी संस्कृति चाहती है ताकि सारि-सारि को गही रहे थोथा देइ उड़ाय। इसीलिए हमारा उपनिषद् कहता है—

"हिरण्मयेनपात्रेणसत्यस्यापिहितंमुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावणुसत्यधर्माय दृष्टए।"

अर्थात्, सोने के चमकदार लुभावने पात्र से सत्य (आदित्य मंडल के मध्य ब्रह्म) का मुख ढका हुआ है। पोषक सूर्यदेव मुझे सत्यान्वेषण करने के लिए, अर्थात् आत्मावलोकन के लिए आप उस आवरण को हटा दें।

यह तत्त्व अपने आप में बहुत विराट है। हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक चेतनाओं का परम तत्त्व है, जो कि हमारे सर्वांगीण विकास का अभिप्रेत भी है। ऐसा भी नहीं है कि इतने

मार्गों से किसी को भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो। हमने पहले ही तय कर लिया है कि, 'एके साधे सब सधे सब साधे एक जाए।' इसीलिए जो भी अपने हिसाब से जिस चीज को साधना चाहता है, वह साधता है और उसको साधते हुए अपना परम प्राप्त करता है, यहाँ तक कि हमारी संस्कृति एक मदिराप्रेमी को भी यही संदेश देती है कि—

"राह पकड़ तू एक चला चल पा जाएगा मधुशाला"

—बच्चन

हमारी संस्कृति ही थोड़े में गुजारा करनेवाली रही है, जिसको ज्यादा का लालच नहीं है। वह बार-बार कहती है, साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय, मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाए। और साधु को भूखा न रखने की जो कामना है, वह सीधे-सीधे अतिथि देवो भवः से जुड़ती है। सरलता और स्वतंत्रता से भरी-पूरी होने के कारण हिंदुस्तानी संस्कृति कभी भी कठोर नहीं होती, बल्कि इतनी तरल है कि सभी को साथ लेकर चलती है। यह दूसरी संस्कृतियों की विशेषताएँ आदि सब सही समय पर आत्मसात् कर लेती हैं और इस प्रक्रिया में यह निरंतर आधुनिक होती रहती हैं। जिसे कहते हैं कि समय के साथ चलना। महान् अभिनेता राज कपूरजी की फिल्म का एक गीत याद आता है ,"दुनिया के साथ जो बदलता जाए, जो इस के साँचे में भी चलता जाए, दुनिया उसी की है जो चलता जाए" तो हम किसी कुएँ के जल की तरह कभी कैद होकर नहीं रहे, बल्कि एक नदी की तरह हमेशा प्रवाहित होते रहे मनुष्यता के चरमोत्कर्ष के महासागर में मिलने के लिए। इस तरलता के कारण ही भारतीयता का विस्तार बड़े ही सहज तरीके से होता है। हिंदी में इसका विस्तार करने के सारे गुण हैं।

□

sunandaverma@yahoo.com

कैसे निज सोये भाग को कोई सकता है जगा, जो निज भाषा-अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा।

—अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

देश तथा जाति का उपकार उसके बालक तभी कर सकते हैं, जब उन्हें उनकी भाषा द्वारा शिक्षा मिली हो।

—पं. गिरधर शर्मा

भाषा का निर्माण सेक्रेटरियट में नहीं होता, भाषा गढ़ी जाती है जनता की जिह्वा पर।

—रामवृक्ष बेनीपुरी

एक भारत-श्रेष्ठ भारत : हिंदी की बिंदी

—डॉ. सोनल मानसिंह

भाषा तो माँ है, इसके सिवा नदियाँ, पेड़, मिट्टी अर्थात् प्रकृति माँ है। जैसे देवी सबकुछ है—शक्ति, बुद्धि, दया, निद्रा, क्षुधा, क्षमा, तृप्ति, विद्या, लक्ष्मी, शांति व मातृरूपेण संस्थिता, वैसे ही भाषा में सारे भाव-स्वरूप हैं। आत्मिक शक्ति का हर रूप हर भाषा में माँ ही है। प्रत्येक महाभाव एक माँ है!

भारतीय स्त्री की तरह हिंदी अपनी वेणी में नौ रस गूँथकर घर-घर घूमती है, रस भाव गाती है, नृत्य करती है, हँसती-हँसाती है, स्नेह की सरिता बहाती छम-छम बहती रहती है। जीवन के मूल्यों को उजागर करने का मार्ग दिखाती है। चाहे भक्ति की शक्ति, चाहे श्रृंगार, भक्ति अथवा निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, अध्यात्म की बातें हों, हिंदी में इन पर चर्चा विस्तारपूर्वक होती है, मन आह्लादित हो उठता है। गहन विषयों का अध्ययन कितनी सरलता से हो जाता है, जहाँ मीराबाई कहती है—

"सूली उपर सेज हमारी,
किस बिध सोवण होय ।
गगनमंडल में सेज पिया की
किस बिध मिलणो होय॥
एरी मैं तो प्रेम दीवानी
मेरो दरद न जाने कोय॥"

वहीं कबीरदास की निर्गुण वाणी में कहा गया है—

"एके साधै सब सधे
सब साधे सब जाय
जो यह एक न जानिया
बहु जाने क्या होय ?"

सारे धर्मों का सार प्रेम है, इसीलिए राधा-कृष्ण से प्रीति कलह करती हुई कहती हैं—

"आँख नचाय कहा मुसकाय लला, अब आवहूँ खेलन होरी" जीवन के बोली, बानी, खान-पान, पहरन-ओढ़न के अलग-अलग रंग वही रंग हैं, जो प्रेमजल में घुले मिले हैं, जिससे मन रंगीला बना रहता है, वरना तो "मन न रँगाए, रँगाए जोगी कपड़ा।"

राधा-कृष्ण की प्रेमगाथा हो अथवा गणेश की अद्भुत उत्पत्ति की कथा, आज की युवा पीढ़ी की कहानियाँ हों···हिंदी सभी को अपने आलिंगन में समा लेती है।

भारत की कला-परंपराओं में सौंदर्यवाद से लेकर समाज की टीका-टिप्पणी हिंदी भाषा की कहावतें व लोकोक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष होती दिखाई देती हैं, उदाहरणतया—

---

* श्रेष्ठ नृत्यांगना एवं राज्यसभा सदस्य।

बिंदु में सिंधु
गागर में सागर,
गधे के सींग,
मन चंगा तो कठौती में गंगा।

चंद शब्दों में सबकुछ बताना, यही भाषा की अपनी छटा है, अलंकार व शक्ति है। वर्षा ऋतु का वर्णन कुछ ऐसा हो तो—

"मेघ की छटा छाई,
बादल में बिजली गरजाई
हल्की बूँदें बरसन लागीं, मोर करे ता ता थैई॥"
(मेरी रचना!)

हिंदी बोलते समय मन स्पंदित हो उठता है। हिंदी खुली बाँहोंवाली भाषा है, उसने सबको स्वीकारा है।

परिवार की सबसे छोटी बेटी की तरह हिंदी भारत की हर भाषा घर में निर्द्वंद्व घूमती-फिरती है। हिंदी हँसमुख मित्रता की भाषा है, विचार-विमर्श व लोक व्यवहार की भाषा है ।

आधुनिकता के गर्भ से जन्मी हिंदी स्वाधीनता संग्राम की बेटी है, इसीलिए उसके संस्कार जनतांत्रिक हैं, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण गुजराती भाषी गांधीजी और सरदार पटेल के उद्बोधनों में मिलता है ।

स्वाधीनता संग्राम के अन्य सैनिक, जैसे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तमिल भाषी थे, रवींद्रनाथ टैगोर और सुनीतिचंद्र चट्टोपाध्याय बंगभाषी थे तो बाबा साहेब आंबेडकर की मातृभाषा मराठी और लाला लाजपत राय की पंजाबी थी, किंतु इन सभी ने अपने विचार हिंदी में भी व्यक्त किए।

हिंदी की भारतीयता का सबसे बड़ा प्रमाण है, इसकी सर्वग्राहकता।

महादेवी वर्मा ने जिन दिनों 'चाँद' के अंक निकाले थे, उन्होंने एक अद्भुत काम किया। हिंदुस्तानी हिंदी, मराठी हिंदी, मलयाली हिंदी, पंजाबी हिंदी, बाँग्ला हिंदी के कई मनहर आलेख, उन्होंने छापे व वहाँ की प्रबुद्ध लेखिकाओं से हिंदी में लेख लिखवाए या उनके लेखों के ऐसे अनुवाद संभव किए, जिनमें उनकी मातृभाषा की छटा बनी रही। इस सफल प्रयास से हिंदी पट्टी के कई विवाद सुलझ गए। हिंदी की भगिनी भाषा उर्दू और अपनी ही पितामही-मातामही भाषाओं अर्थात् बोलियों से जो झगड़ा सुलगाया जा रहा था, उसका प्रत्यक्ष समाधान हो गया।

भारत की कोई गली, कोई रास्ता, पथ ऐसा नहीं, जहाँ हिंदी बोलनेवाले व्यक्ति अपने आधारभूत विचार-मंतव्य सामनेवाले को समझा न सकें। कुंचम-कुंचम, एकटू-एकटू, थोड़ा-थोड़ा हिंदी का समावेशन हर भारतीय भाषा में हो चुका है ।

इसका नागर स्वरूप-खड़ी बोली से उभरा है, पर संवाद विवाद व सामाजिक व्यवहार में तत्सम-तद्भव-देशज-विदेशी, सब तरह के शब्दों को एक पंक्ति में बिठाने का जनतांत्रिक संस्कार भी इसमें है। हिंदी भारत के लिए सेतु-भाषा है, जैसे अंग्रेजी विश्व के लिए ।

आसन्न परिवेश में आमजन से गहनतम संवाद के लिए स्थानीय भाषा के साथ एक सूत्रधार भाषा या सेतु-भाषा को ठीक से जानना ही चाहिए और भाषा जानने का सबसे कारगर माध्यम साहित्य है, क्योंकि यह भाषा के सबसे सरस, बंकिम और स्मरणीय प्रयोगों की निधि है। कोई भाषा ठीक तरह से जाननी-समझनी हो तो उससे अंतरंग बातचीत कीजिए, साहित्य पढ़िए, उस भाषा के चलचित्र देखिए।

जो सरस प्रतीत हो, उसका अनुवाद बच्चों को सुनाइए, संभव हो तो वहाँ कुछ अंशों का मंचन भी कराइए। इतनी प्रतिश्रुति तो हर नागरिक से

इच्छित है। यह भी एक तरह का मातृऋण है, जो हमें चुकाना ही चाहिए ।

आजकल हिंदी अंग्रेजी लिपि में लिखी जा रही है, जिससे मुझे अत्यंत उद्वेग होता है। आज की पीढ़ी के बच्चों को मैं अपने संस्थान 'श्री कामाख्या कलापीठ' में नृत्य, संगीत, योग और संस्कृत श्लोकों के साथ हिंदी की शिक्षा भी दे रही हूँ, क्योंकि मूल से ही उन्हें हिंदी नहीं भाती, जिससे वर्णमाला और व्याकरण के सरल नियमों से वे अनभिज्ञ रहते हैं। स्वच्छ उच्चारण से तो कोई संबंध ही नहीं रहता। हिंदी भाषी घर-परिवारों में भी अंग्रेजी बोलने को प्रोत्साहन दिया जाना जरूरी है। समझना होगा कि हिंदी, अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली, मागधी, मारवाड़ी, हरियाणवी इत्यादि सभी सखियाँ हैं "सब सखियाँ मिलि मंगल गाये।"

मैं क्लिष्ट हिंदी का उपयोग किंचित ही करती हूँ, क्योंकि ऐसी भाषा मन को या हृदय को छू नहीं सकती। भाषा रसमय हो, रोमांचकारी हो, विचारों को व्यक्त करने का उचित व संवेदनशील साधन हो, तो उसके स्पंदन दूर-सुदूर पहुँचते हैं ।

हिंदी की वर्तमान दशा के कारण—

- बॉलीवुड व टेलीविजन धारावाहिकों की टपोरी भाषा का वृहद् चलन।
- क्लिष्ट हिंदी बोलने या लिखने का आग्रह।
- विद्यालय में समर्पित शिक्षकों का अभाव।
- कॉरपोरेट संस्थाओ में हिंदी भाषी व्यक्ति का अनादर।

निवारण

- विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सरल, सरस, रोचक हिंदी में प्रकरण लिखे हों।
- हिंदी भाषी व्यक्ति अंग्रेजी में भी दक्ष हों।
- हिंदी भाषी परिवारों में मातृभाषा में बातचीत हो।

संस्कृत, जिसकी माता हो, वह पुत्री (हिंदी) क्यों अपना अधिकृत स्थान ग्रहण न करे? भारत की दर्शनकारी कलाओं में भी हिंदी के गीत, काव्य इत्यादि के मंचन अत्यंत लोकप्रिय हैं। अठाहरवीं शताब्दी में त्रावणकोर (केरल) के महाराजा श्री स्वाति तिरुनाल की मातृभाषा मलयाली होते हुए भी उनकी हिंदी रचनाएँ 'पदम्', 'वर्णम्', 'गीतम्' इत्यादि आज प्राय: सभी शास्त्रीय नृत्यकारों में प्रचलित हैं।

आइए, हम हिंदी का संवर्धन करें, उत्सव मनाएँ, आदर-सम्मान करें!

हिंदी की बिंदी ललाट पर आज्ञाचक्र के स्थान में कुमकुम से लगाकर देखें, स्वत: ही उन्मुक्त अस्खलित रसमय वाणी की धारा बहने लगेगी।

□

sonaldance@yahoo.com

सत्पुरुष सभी दिशाओं को अपनी सुगंध से वासित कर देते हैं।

—गौतम बुद्ध

ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए जो हित, मित और ग्राह्य हो।

—महावीर स्वामी

सिक्किम में हिंदी की स्थिति : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

—डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं पर्यटन आदि की दृष्टि से सिक्किम राज्य की विशिष्ट पहचान है। यहाँ की भिन्न-भिन्न जनजातियों; मसलन लिंबू, लेप्चा, भूटिया, तामांङ एवं शेर्पा आदि की अपनी अनूठी संस्कृति, भाषाई संस्कार एवं सभ्यता के कारण भारतीय परिदृश्य में विशिष्ट पहचान है। भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता के मध्य यहाँ का जनमानस सामंजस्य एवं समरसता का एक दृष्टांत है। यहाँ तकरीबन एक दर्जन के करीब भाषाओं को राज्य स्तरीय भाषा का दर्जा प्राप्त है, जिसमें प्रमुख रूप से नेपाली, लेप्चा, तामाङ, भूटिया लिंबू, नेवारी, राई, गुरुङ, मंगर, सुनवार आदि उल्लेखनीय हैं। संपर्क भाषा के रूप में आम जनमानस में नेपाली भाषा सर्वप्रचलित है।

पूर्वोत्तर भारत के अन्य राज्यों की तुलना में (अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर) सिक्किम में हिंदी के प्रयोग अथवा व्यवहार को लेकर किसी भी प्रकार की दुरुहता नहीं दिखती। हिंदीतर प्रदेश होने के बावजूद यहाँ के जनमानस में हिंदी भाषा को लेकर सामान्यतया सहजता का भाव ही महसूस होता है। सिक्किम की संपर्क भाषा नेपाली होने के नाते यह बात दीगर है कि यहाँ का स्थानीय समुदाय प्रथम दृष्टया नेपाली भाषा में ही संपर्क स्थापित करने की कोशिश करता है, लेकिन भाषाई विविधता का बोध होते ही उन्हें हिंदी भाषा में संपर्क स्थापित करने में किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं होती है। यहाँ हिंदी बोलनेवाले लोगों में उनकी प्रादेशिक भाषाओं का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। मसलन पड़ोसी राज्य बंगाल से आनेवाले लोगों में बांग्ला भाषा, सिक्किम प्रांत के स्थानीय लोगों में नेपाली भाषा एवं असम प्रदेश से संबद्ध लोगों की असमिया भाषा की स्थानीयता (ट्यून) का हिंदी पर गहरा असर दिखता है।

शैक्षणिक स्तर पर देखा जाए तो सिक्किम में हिंदी की स्थिति उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। वर्तमान में सिक्किम में पहली कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक हिंदी भाषा को पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से शामिल किया गया है। नौवीं से बारहवीं कक्षा तक हिंदी को वैकल्पिक विषय/भाषा के रूप में चयन करने की विशेष छूट है। वर्ष 2022 से सिक्किम विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में स्नातक (बी.ए.) स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किया गया है। इसके अलावा सिक्किम प्रांत के संस्कृत महाविद्यालय में हिंदी एकल विषय के

* सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में सहायक प्रोफेसर, हिंदी।

रूप में पाठ्यक्रम का हिस्सा है, यह महाविद्यालय संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से संबद्ध है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केंद्र, गंगटोक में भी विगत कई वर्षों से स्नातकोत्तर (हिंदी) स्तर पर पाठ्यक्रम संचालित हो रहा है। मात्रात्मक स्तर पर देखा जाए तो यहाँ भी विद्यार्थियों की संख्या निराशाजनक है। इस केंद्र में अधिकांशतः उन्हीं विद्यार्थियों का दाखिला है, जो या तो अपनी प्रोन्नति के लिए प्रयासरत हैं (स्थायी रूप से रोजगार में संलग्न हैं) अथवा जिनका सरोकार महज डिग्री लेने से है।

सिक्किम राज्य में पहली से आठवीं कक्षा तक हिंदी विषय यहाँ के पाठ्यक्रमों में अनिवार्य भाषा के रूप से संचालित किया जाता रहा है। ध्यातव्य है, आगे की कक्षाओं में भाषाई अनिवार्यता खत्म होते ही यहाँ विद्यार्थियों द्वारा वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी भाषा का चयन नहीं के बराबर किया जाता है। इस आधार पर यह कहना तर्कसंगत है कि यहाँ के विद्यार्थियों में हिंदी के प्रति भाषाई प्रेम का भाव कम, अपितु इसका प्रयोग अधिकांशतः रोजगार, व्यापार अथवा व्यवसाय तक सीमित प्रतीत होता है।

साहित्यिक संस्था के रूप में हिंदी साहित्य सेवा समिति की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है। स्थानीय रचनाकारों में हिंदी भाषा में सृजनात्मक लेखन के प्रति अभिरुचि पैदा करने में इस समिति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संस्था के अध्यक्ष भीम ठठाल के अनूठे प्रयास से सिक्किम में हिंदी रचनाशीलता के प्रति लोगों में रुचि बढ़ी है। इस प्रांत का हिंदी की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रति लगाव अपेक्षाकृत बढ़ा है। हिंदी के कुछ समाचार-पत्र 'अनुगामिनी' एवं 'नित्य-समय' (गंगटोक) साहित्यिक संस्थाओं में उपलब्ध तो होते हैं, लेकिन हिंदीभाषियों अथवा हिंदी साहित्य के अध्येताओं के अलावा उनका कोई अतिरिक्त पाठक वर्ग नहीं है। तकरीबन तीन वर्ष पूर्व सिक्किम प्रांत से हिंदी की एक साहित्यिक पत्रिका 'कंचनजंघा' का शुभारंभ हुआ, जो प्रमुख रूप से पूर्वोत्तर भारत की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर केंद्रित है। इसे सिक्किम से प्रकाशित होनेवाली हिंदी की पहली साहित्यिक पत्रिका का दर्जा प्राप्त है।

गौरतलब है, हिंदी के प्रचार-प्रसार में यहाँ का राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (NSD), आकाशवाणी गंगटोक एवं नेहरू युवा केंद्र संगठन अपने-अपने स्तर पर सक्रिय हैं। निश्चित रूप से हिंदी के उन्नयन में इन संस्थानों की भूमिका सराहनीय है। सिक्किम राज्य में हिंदी सीखने एवं उसके संवर्धन में हिंदी सिनेमा, धारावाहिकों एवं गीतों की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदीतर प्रांतों के परिप्रेक्ष्य में इस बात को प्रमुखता से स्वीकार किया जाता है कि हिंदी के विकास में सर्वाधिक भूमिका हिंदी सिनेमा एवं हिंदी गीतों की ही रही है, सिक्किम प्रांत भी इससे अछूता नहीं है। निकटस्थ हिंदी प्रदेशों से आए हुए श्रमिक वर्ग, पर्यटक, सेना एवं व्यवसायियों के आपसी सामंजस्य से भी सिक्किम में हिंदी को विस्तार मिला है। आरंभ में हिंदी भाषा के प्रसार में ईसाई मिशनरियों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है। उल्लेखनीय है, नेपाली भाषा की लिपि देवनागरी होने के कारण व्याकरण एवं साहित्य की दृष्टि से हिंदी-नेपाली एक-दूसरे के निकटस्थ हैं, इसकी वजह से यहाँ के लोगों में हिंदी भाषा का व्यवहार अन्य राज्यों की तुलना में सुलभ एवं ग्राह्य है।

डॉ. चुकी भूटिया ने वर्ष 2016 में अपने प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'पूर्वोत्तर भारत में हिंदी सिक्किम के विशेष संदर्भ में' में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की

ओर संकेत किया है—"भाषा का संबंध व्यक्ति की संस्कृति और पहचान से जुड़ा है, इसलिए हर जाति अपनी भाषा और साहित्य के प्रति कार्यरत है। अपनी संस्कृति और अपनी भाषा को समष्टि या मुख्यधारा के साहित्य द्वारा निगल जाने का भय उनमें विद्यमान है।" इस बात को स्वीकार करने में हमें जरा भी गुरेज नहीं होना चाहिए कि भारत सरकार एवं राजभाषा विभाग की हिंदी के प्रति सक्रियता एवं द्विभाषी कामकाज करने के अनिवार्य दिशा-निर्देशों के बावजूद, विशेषत: अहिंदी भाषी राज्यों एवं वहाँ के संस्थानों में हिंदी भाषा कामकाज के स्तर पर केवल औपचारिकता बनकर रह गई है। अधिकांश संस्थानों में हिंदी भाषा महज हिंदी पखवाड़े तक ही सीमित है। यह कटु सत्य है, यदि सरकार द्वारा अनिवार्यताएँ खत्म कर दी जाएँ तो हिंदीतर प्रांतों में इसका प्रयोग नहीं के बराबर रह जाएगा। उल्लेखनीय है, सिक्किम प्रदेश में 2007 में स्थापित सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के प्रशासनिक सभी कार्य द्विभाषी होते हैं। पूर्वोत्तर भारत के अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में सिक्किम विश्वविद्यालय में सर्वाधिक कार्यालयी गतिविधियाँ हिंदी भाषा में क्रियान्वित होती हैं। इसे एक महत्त्वपूर्ण प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

सृजनात्मक स्तर पर देखें तो सिक्किम प्रांत में हिंदी लेखकों की संख्या बहुत सीमित है। हिंदी भाषा के संवर्धन में सिक्किम के प्रथम कथाकार के रूप में सुवास दीपक की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। यह कहना बेमानी नहीं होगा कि वरिष्ठ साहित्यकार सुवास दीपक के प्रतिनिधित्व एवं मार्गदर्शन में ही यहाँ के स्थानीय लेखकों ने हिंदी भाषा में साहित्य लेखन के साथ-साथ कई महत्त्वपूर्ण लेखन एवं अनुवाद कार्य किए हैं। हिंदी भाषा के विकास की गति को दृष्टिगत रखते हुए उक्त प्रयास नाकाफी हैं। इस दिशा में हमें यहाँ की स्थानीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का हिंदी अनुवाद एवं हिंदी भाषा की महत्त्वपूर्ण कृतियों का यहाँ की स्थानीय भाषाओं में अनुवाद के क्षेत्र में अद्यतन प्रयास करने की आवश्यकता है।

हिंदी के विकास एवं विस्तार में अनुसंधान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सिक्किम के स्थानीय लेखकों की हिंदी रचनाओं को संग्रहीत करने के साथ-साथ इन कृतियों पर अनुसंधान की दिशा में भी कार्य करना बहुत जरूरी है। निश्चित रूप से सिक्किम में हिंदी भाषा के प्रति रुचि को बढ़ाने एवं विस्तार देने में यह उपक्रम अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

हमें इस तथ्य को समझना आवश्यक है कि संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का फलक अत्यंत विस्तृत है। बाहर जाने की स्थिति में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की समझ अति आवश्यक है, ऐसे में हिंदीतर प्रांतों के लिए हिंदी संपर्क भाषा का एक सुलभ माध्यम बन सकती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारी युवा पीढ़ी के समक्ष रोजगारोन्मुखी भाषाओं की महत्ता अधिक है। स्पष्ट है, जिस भाषा का सरोकार रोजगार से जितना अधिक होगा, उस भाषा का विकास एवं विस्तार भी उतना अधिक होगा। विगत दशकों में हिंदीतर प्रांतों में हिंदी भाषा को रोजागारोन्मुखी भाषा के रूप में अधिक स्वीकार किया गया। इन प्रदेशों में आज भी हिंदी भाषा/विषय में अध्ययन एवं अध्यापन करनेवाले लोगों की संख्या कम है। बीते कुछ वर्षों में सिक्किम प्रदेश की युवा पीढ़ी ने हिंदी भाषा के महत्त्व एवं उपादेयता को समझा है। हिंदी को एक रोजगारोन्मुखी भाषा एवं उसकी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए नई पीढ़ी की हिंदी भाषा के प्रति रुचि बढ़ी है।

□

ptripathi@cus.ac.in

सामासिक-सांस्कृतिक एकता में हिंदी की भूमिका/योगदान

—डॉ. चक्रधर त्रिपाठी

भारत जननी एक हृदय हो,
एक राष्ट्रभाषा हिंदी में,
कोटि-कोटि जनता की जय हो,
भारत जननी एक हृदय हो।
स्नेहसिक्त मानस की वाणी,
गूँजे गिरा यही कल्याणी।
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो,सदा अजय हो,
भारत जननी एक हृदय हो।

पं. रामेश्वरदयाल दूबे ने अपनी कविता की उपर्युक्त पंक्तियों में जिस भाषा की जय और भारत जननी के एक हृदय होने की बात कही है—वह भारत की भारती, हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में सांस्कृतिक और वैचारिक विभिन्नताओं के बीच अनेकता में एकता को मूर्त करनेवाली शक्ति के रूप में हिंदी की भूमिका विशिष्ट रही है। विभिन्न जातियों, संप्रदायों और भाषा परिवारों के लोग इस देश में सांस्कृतिक स्तर पर एकीकृत हैं और सब मिलकर भारत राष्ट्र की कल्पना को साकार करते हैं। भारत में विभिन्न स्रोतों से आए सांस्कृतिक सूत्र इसी कारण बिखरावग्रस्त नहीं हो सके कि इस बहुभाषी राष्ट्र को, समूचे देश की जनता को सामासिक और सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधनेवाली कड़ी के रूप में हिंदी विद्यमान है। महाकवि डॉ. उमा शंकर चतुर्वेदी 'कंचन' ने अपने 'हिंदी' खंडकाव्य में इसी एकता की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि—

'संस्कृति को इक हार के रूप में,
जोड़ सके वो कड़ी है ये हिंदी।
ले के सहारा चले अन्हरा उस
अंधे के हाथ छड़ी है ये हिंदी।
जीवनदान मिले जिससे,
विष मार सके वो जड़ी है ये हिंदी।
प्यार से भारत माता कहें,
कि सुनो हमसे भी बड़ी है ये हिंदी।

कन्याकुमारी में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की जो एकता है, प्रयागराज (इलाहाबाद) में गंगा-यमुना और सरस्वती का जो संगम है, उसी के समानांतर हिंदी में इस विशाल देश की सांस्कृतिक परंपराओं, वैचारिक दिशाओं, भाषिक विविधताओं और भावात्मक परिकल्पनाओं को एकीकृत करने की विलक्षण सामासिकता है। हिंदी भाषा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने अनगिनत चिंतन धाराओं को अभिव्यक्ति

* ओड़िश केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट के कुलपति।

दी है, सभी संप्रदायों को वाणी दी है और विभिन्न भाषाओं की जातीय विशेषताओं के बीच अपनी विराट् सामासिक शक्ति का परिचय दिया है। यह सामासिकता किसी भी जीवंत भाषा की पहली पहचान होती है। इसी सामासिकता के कारण आज हिंदी विश्व मंच पर प्रतिष्ठित है। भारत के कोने-कोने में और भारत के मानचित्र से बाहर मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गुआना, ट्रिनीडाड, नेपाल, म्याँमार आदि देशों में हिंदी बोलने-समझने और लिखने वाले लोग उपलब्ध हैं। इन सबने मिलकर हिंदी की साहित्य-संपदा का विस्तार किया है, लेकिन इसका केंद्रीय कारण यही है कि हिंदी में अद्भुत सामासिक क्षमता है।

आप कन्याकुमारी के समुद्र तट पर खडे हों तो एक विचित्र दृश्य नजर आएगा। हिंद महासागर की जलराशि, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के पानी को अपने में समेटती दिखाई देगी। दूर-दूर से आनेवाली विभिन्न अंतर्धाराएँ जिस तरह महासमुद्र में पहुँचकर एक हो जाती हैं, उसी तरह भारत जैसे विशाल देश में फैली विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को हिंदी ने एकसूत्र में आबद्ध किया है। 'संस्कृति के चार अध्याय' में राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने भारत की जिस सामासिक संस्कृति की चर्चा की है, उसका निखरा हुआ रूप हिंदी में लक्षित होता है। प्राचीन आर्य भाषाओं की परंपरा से लेकर नई भारतीय भाषाओं तक की सारी उपलब्धियों को समेटने का कार्य हिंदी ने किया है।

अनेकता के बीच एकता के साम्राज्य को स्थापित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाली यह भाषा स्वाधीनता आंदोलन के दिनों से लेकर आज तक इस देश के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच एक सशक्त कड़ी है। यह किसी एक धर्म द्वारा स्वीकृत भाषा नहीं है, बल्कि इसने सभी प्रचलित धर्मों को वाणी दी है। दर्शन और विचारधारा की किसी एक लीक पर चलना भी हिंदी का स्वभाव नहीं है, बल्कि उसने मनुष्य की सुदीर्घ चिंतन-परंपरा की सारी विचार दिशाओं को अपने भीतर समेटा है। समन्वय की इस गंगा में न जाने कितनी देशी-विदेशी भाषाओं की शब्द-संपदा का समाहार हुआ है। पिछली अनेक शताब्दियों में विभिन्न संप्रदायों और देशों के भाषा साहित्य के संपर्क से हिंदी ने इतना अधिक ग्रहण किया है कि अब उन शब्दों के मूल स्रोतों को खोजना भी कठिन है।

संविधान के निर्देश के अनुसार, राजभाषा हिंदी के सामासिक रूप की चर्चा तो अब शुरू हुई है, जबकि हिंदी शताब्दियों से अपने विराट् सामासिक सांस्कृतिक रूप का परिचय दे रही है। वस्तुतः सांस्कृतिक समन्वय और राष्ट्रीय एकता की कड़ी के रूप में हिंदी ने जो स्थान प्राप्त किया, उसका आधार न तो कोई राजदरबार था और न कोई संविधान सभा थी। जिनकी मातृभाषा हिंदी है और जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है—उन सब लोगों ने सहज माध्यम के रूप में हिंदी को स्वीकारा है। यहाँ तक कि इस देश के तीर्थ-यात्रियों की भाषा हिंदी है। इस रूप में हिंदी न जाने कब से विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच व्यवहार में प्रचलित है। सैकड़ों वर्ष पहले मध्य काल के संतों और महात्माओं ने अपने विचारों को सारे देश में फैलाने के लिए हिंदी भाषा को ही माध्यम के रूप में अपनाया। इसके बाद हिंदी साधुओं और फकीरों की भाषा बनी। आजादी के बहुत पहले से कुछ देशी रियासतों में हिंदी को प्रशासन की भाषा बनने का सौभाग्य मिला था। स्वतंत्रता के बाद हिंदी को संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर, 1949 को राजभाषा का दर्जा दिया—यह हिंदी के लिए गौरव का संदर्भ है। इस नई भूमिका ने हिंदी के प्रयोजन मूलक रूप को समूचे राष्ट्र के धरातल पर स्थापित किया है।

हिंदी की अन्यतम विशेषता उसकी उदारता, सहजता और सहिष्णुता है। बेहद खुले मत के साथ हिंदी ने उन सारी संस्कृतियों और व्यवहारों को अपनाया है, जो उसके संपर्क में आईं। देश के

एक छोर से दूसरे छोर तक बसे लोगों को प्रेम और बंधुत्व की डोर से बाँधने वाली भाषा हिंदी ही है। अमीर खुसरो और तानसेन के समय से लेकर विष्णु दिगंबर पलुस्कर और बड़े गुलाम अली खाँ जैसे संगीतकारों ने प्रमाणित किया है कि हिंदी ही इस देश में राग, पाग और संगीत की समर्थ भाषा है। गीतकार मोहम्मद रफी, कुंदन लाल सहगल, लता मंगेशकर और किशोर कुमार के गाए हिंदी गीतों ने पंजाबी, मराठी और बंगाली की पहचान भुलाकर इन्हें भारतीय भाषा हिंदी का गायक सिद्ध किया है। हिंदी साहित्य के संपूर्ण इतिहास में अनगिनत ऐसे लोगों का अवदान है, जो मूलतः हिंदी भाषी नहीं थे। भक्ति और चिंतन, प्रेम और संगीत, संपर्क और व्यवहार के बहुत सारे आयामों को हिंदी ने स्वीकार किया है। नए तकनीकी संसाधनों, विज्ञान की उपलब्धियों और अत्याधुनिक संचार-माध्यमों ने एक बार फिर से हिंदी में छिपी भावनात्मक एकता को साकार किया है। हिंदी का द्वार सभी भाषाओं, सभी व्यवहारों और सभी अभिव्यक्तियों के लिए खुला है। केवल हिंदी में ही यह सामर्थ्य है कि वह इस देश की विभिन्न भाषाओं से छनकर आने वाली भारत की सामासिक संस्कृति को स्वस्थ स्वरूप दे सके। केवल हिंदी में ही यह क्षमता है कि वह विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों को समेटकर ईकार के रूप में भारत के सामासिक मानचित्र को तैयार कर सके। उसका संकल्प समन्वय की विराट् चेष्टा है। इस कारण युग के अनुरूप अभिव्यक्ति कौशल और परिवेश की आवश्यकताओं के साथ जुड़कर हिंदी ने निरंतर एकता और समन्वय की भावनाओं को प्रोत्साहित किया है।

शताब्दियों से इस देश के लोग भावनात्मक एकता के जिस सूत्र में बँधे हुए हैं, उस सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में हिंदी की क्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। हिंदी ने भारत की विभिन्न भाषाओं में संचित ज्ञान राशि को एकीकृत कर विभिन्न संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय एकता का विलक्षण प्रयास किया है। हिंदी के पास वह राष्ट्र-दृष्टि है, जिससे भारत की एकता के तंतु जुड़ते हैं। हिंदी के बिना न तो भारत की सामासिक संस्कृति की पहचान हो सकती है और न इस विराट् वैविध्यपूर्ण देश में एकता के मंत्र का संचार हो सकता है। इसी विशिष्टता के कारण आज हिंदी भारतभर में फैले महामानव समुद्र के स्नेह का पात्र बनी हुई है।

□

ctripathivb@gmail.com

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।

—महात्मा गांधी

भाषा के उत्थान में एक भाषा का होना आवश्यक है।
इसलिए हिंदी सबकी साझी भाषा है।

—पं. कृ. रंगनाथ पिल्लयार

हिंदी प्रकाशन के समक्ष चुनौतियाँ एवं अवसर

—प्रभात कुमार

पुस्तक प्रकाशन एक बड़ा ही पावन और पुनीत व्यवसाय है, सरस्वती यज्ञ है। प्रकाशक चाहे शैक्षिक, व्यावसायिक या किसी भी क्षेत्र की पुस्तकें प्रकाशित करें, समाज के प्रति उनका एक नैतिक दायित्व भी होता है। केवल धनोपार्जन के लिए कुछ भी प्रकाशित कर देना मात्र प्रकाशन नहीं है। पुस्तकों के माध्यम से समाज में सकारात्मकता तथा आशावाद जाग्रत् करना, राष्ट्र के प्रति गौरव-भाव विकसित करना, भारत की संस्कृति एवं गौरवशाली अतीत का यशोगान करना, अज्ञान का अँधेरा मिटाकर ज्ञान का आलोक उद्भासित करना भी प्रकाशक का दायित्व होना चाहिए।

हिंदी दुनिया की प्रमुख भाषाओं में से एक है। यह संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा है तथा भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जानेवाली भाषा भी। इसे विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा होने का भी गौरव प्राप्त है। भारत में हिंदी संपर्क भाषा का काम भी करती है। हिंदी भाषा का सुदीर्घ इतिहास है। हिंदी की महत्ता इस बात से आँकी जा सकती है कि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा में पहले ही दिन, यानी 9 दिसंबर, 1946 को, उस दिन के अस्थायी अध्यक्ष डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा से श्री रघुनाथ विष्णु धुलेकर ने आग्रह किया कि सदन की काररवाई हिंदी में होनी चाहिए।

हिंदी भाषा साहित्य में लेखकों की विस्तृत सूची है, जिन्होंने अपनी कालजयी कृतियों से हिंदी भाषा को समृद्ध किया है। ये गद्य और पद्य दोनों विधाओं में हैं, यथा—भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, रामचंद्र शुक्ल, हरिभाऊ उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', महादेवी वर्मा, काका कालेलकर, निहालचंद्र वर्मा, श्यामसुंदर दास, केशवदास, भूषण, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालकृष्ण भट्ट, लाला भगवानदीन गद्य साहित्य के सम्राट् कहे जाते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकांता संतति' पढ़ने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने हिंदी सीखी। अनेक लेखक हैं, जिन्हें हिंदी में प्रकाशित होने पर बड़ा पाठक वर्ग मिला और उनका यश बढ़ा। हिंदी के यशस्वी लेखकों की एक बड़ी शृंखला है, जिनकी कृतियों का प्रकाशन कर हिंदी प्रकाशकों ने साहित्यिक जगत् की सेवा की है।

विश्व में भी हिंदी के प्रति आकर्षण बढ़ा है। सन् 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी जनता पार्टी की सरकार में अटल बिहारी वाजपेयी विदेशमंत्री बने। उन्होंने पहली बार संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में हिंदी में अपना उद्बोधन देकर

---

* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली के निदेशक।

हिंदी का मान बढ़ाया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृहमंत्री अमित शाह अधिकांश कार्यक्रमों और मंचों से हिंदी में ही बोलते हैं, इसके कारण हिंदी के प्रति आकर्षण बढ़ा है। इस समय विश्व के चालीस से अधिक देशों में 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी के पठन-पाठन तथा शोध की व्यवस्था है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्ववद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अनेक देशों, जैसे कनाडा, अमरीका, इंग्लैंड, मॉरीशस, न्यूजीलैंड आदि में हिंदी में 'वसंत', 'पुरवाई' आदि पत्रिकाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। इ-पत्रिकाएँ भी बड़ी संख्या में निकल रही हैं, जैसे—प्रयास, अभिव्यक्ति, अनुभूति आदि।

विश्व भर में अनेक संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर अनेक कार्यक्रम कर रही हैं। यूरोप में हिंदी सीखनेवालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। भारतीय संस्कृति, योग, शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य को भलीभाँति समझने के लिए के बहुत से लोग हिंदीप्रेमी बन रहे हैं। जापान, फ्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, जर्मनी, रोमानिया, बल्गारिया, हंगरी, थाईलैंड जैसे देशों में भी हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है।

अनेक विदेशी विद्वान् हिंदी के प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभाते रहे हैं, जिनमें फादर कामिल बुल्के, ओदोनेल स्मेकेल, मधुजी, अभिमन्यु अनत, राजेंद्र अरुण, सुषम बेदी, रामदेव धुरंधर, दिव्या सक्सेना, तेजेंद्र खन्ना, कृष्ण कुमार, कादंबरी मेहरा, मार्कोजोली, लिऊअन्वू, सर्गेई सरेब्रियानी, पीटरगोरार्ड फेडलांडर, सरिता बुधु, भोलानाथ नारायण, इंदु प्रकाश पांडेय, तोर्माचो मिकुचि, कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या, बमरूग खाम उल्लेखनीय हैं।

हिंदी प्रकाशन ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। एक समय था, जब पुस्तकें सीधे पाठक क्रय किया करते थे और पुस्तकालयों में भी पुस्तकें खूब बिका करती थीं। सामान्यतया पुस्तकों की दो हजार प्रतियाँ प्रकाशित की जाती थीं। कालांतर में पुस्तकों के प्रति पाठकों की अभिरुचि कम होती गई और मुद्रित प्रतियों की संख्या दो हजार से घटकर एक हजार और कहीं-कहीं पाँच सौ तक सीमित हो गई। प्रतियाँ कम छपने और लागत में निरंतर वृद्धि होने के कारण पुस्तकों की लागत काफी बढ़ गई है। इस कारण भी पाठक पुस्तकों से दूर हो रहे हैं। साथ ही इतनी कम प्रतियाँ छपने के कारण लेखक भी बहुत परिश्रम और शोध करके लेखन नहीं कर रहे हैं। इस कारण भी पाठक आकर्षित नहीं हो पा रहे। अब तो तकनीकी प्रगति के साथ पुस्तकें 'पीओडी' तक की जाने लगी हैं। हिंदी प्रकाशन के लिए ये अच्छे संकेत नहीं हैं। लेखक के विचार, ज्ञान और लेखनी से समाज को दिशा मिलती है; पाठकों को रुचिकर साहित्य मिलता है और एक स्वस्थ व सुपठित समाज का निर्माण होता है। यदि पाठक पुस्तकें नहीं खरीदेंगे तो न केवल लेखक के विचार कुंद होंगे, प्रकाशक को आर्थिक हानि होगी और समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होगा। पाठकों में पुस्तक पढ़ने की रुचि जाग्रत् करना प्रकाशन उद्योग के सामने एक बड़ी चुनौती है।

पुस्तक मेलों में आनेवाले दर्शकों की भीड़ पुस्तकों के स्टॉल से अधिक फूडकोर्ट में रहती है। कोई बालक अपनी माँ से कहता है कि मुझे यह पुस्तक दिला दो तो माँ यह कहते हुए झिड़क देती है कि तेरे पास बहुत सी पुस्तकें हैं। बहुत तो उसके पास खिलौने भी हैं, चॉकलेट भी हैं पर केवल पुस्तकों के प्रति यह उदासीनता क्यों? यह विचारणीय प्रश्न है, जिसपर माता-पिता को गंभीरतापूर्वक सोचना होगा। शिक्षक भी छात्रों में पढ़ने के प्रति अभिरुचि जाग्रत् करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं; वे अपने छात्रों को

अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करें ताकि एक ज्ञानसंपन्न समाज बने। कुछ लोग हिंदी पुस्तकों को, उसके पढ़ने वालों को हेय दृष्टि से देखते हैं। इस स्थिति को बदलकर अपनी भाषा के प्रति सम्मान और स्वाभिमान का भाव जाग्रत करना सबसे आवश्यक करणीय कार्य है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता है कि समाज में 'पुस्तक संस्कृति' विकसित हो। इस चुनौती का एक उपाय यह भी हो सकता है कि हम एक ऐसे समाज का निर्माण करें, जहाँ पुस्तकें उपहार में दी जाएँ और पुस्तकें हमारे जीवन का एक उपयोगी हिस्सा बन जाएँ। इसके लिए हमें अपने घरों, विद्यालयों, महाविद्यालयों में छोटे बालकों और तरुणों को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। यदि बालपन में ही पढ़ने की आदत विकसित हो गई तो बड़े होते-होते कितनी भी व्यस्तता हो, व्यक्ति पढ़ने के लिए समय निकाल ही लेगा। जैसे किसी व्यक्ति को फिल्में देखने में रुचि हो तो वह कितना भी व्यस्त क्यों न हो, अपनी इस रुचि को पूरा करने के लिए समय निकाल ही लेता है। पुस्तकें क्रय करने में आर्थिक स्थिति भी कोई बाधा नहीं बनती, क्योंकि आज चार लोगों का एक परिवार यदि फिल्म देखने जाता है तो वह लगभग दो से तीन हजार रुपए खर्च कर देता है। अगर लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति बन जाए तो कोई कारण नहीं कि व्यक्ति पुस्तकें न पढ़े।

हिंदी की पुस्तकों की उत्कृष्ट गुणवत्ता के लिए अत्यंत आवश्यक है कि पांडुलिपियों का संपादन, परिमार्जन हो; साथ ही अच्छी तरह से प्रूफरीडिंग हो। पर हिंदी में दक्ष और कुशल संपादकों और प्रूफ पढ़नेवालों की बहुत कमी है। इसलिए प्रायः प्रकाशक लेखक से प्राप्त फाइल को जस-का-तस छाप देते हैं। इस दिशा में 'कौशल विकास विभाग' की पहल पर अच्छे संपादक-प्रूफ रीडर तैयार किए जा सकते हैं।

आज हिंदी के पाठकों के लिए न केवल साहित्य वरन् साहित्येतर विधाओं में भी खूब पुस्तकें उपलब्ध हैं। पहले हिंदी को केवल साहित्य की भाषा माना जाता था, पर अब उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, रेखाचित्र, संस्मरण, कविता के अलावा ज्ञान, विज्ञान, प्रबंधन, मानविकी, फिल्म, राजनीति, व्यक्तित्व विकास आदि बहुविध विषयों पर उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। बालक, युवक, गृहणियाँ, वृद्ध—सभी आयु वर्ग के पाठकों के लिए उनकी रुचि के अनुसार पुस्तकें उपलब्ध हैं; अब केवल इनमें पुस्तकें पढ़ने के प्रति अभिरुचि विकसित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नई पुस्तकों की जानकारी पाठकों तक पहुँच जाया करती थी, पर अब यह तंत्र लगभग निष्प्रभावी हो गया है। हाँ, इसके स्थान पर सोशल मीडिया, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि के माध्यम से पुस्तकों की सूचना और उनकी संक्षिप्त समीक्षा भी तत्काल पाठकों को मिल जाती है। इसलिए आश्चर्यजनक रूप से आज के युवा लेखक अतीत के ख्यातिप्राप्त लेखकों से ज्यादा पाठक वर्ग को आकर्षित कर रहे हैं और उनकी पुस्तकें अपेक्षाकृत अधिक बिक रही हैं। पाठकों की अभिरुचि को परिष्कृत करना और उस सुसंपन्न अभिरुचि के अनुरूप लेखन करके जो साहित्य सृजित होगा, वह पढ़ा भी जाएगा और दीर्घावधि तक मान्य होगा। यहाँ मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि पाठकों को उत्कृष्ट साहित्य उपलब्ध करवाना न केवल प्रकाशक वरन् लेखक का भी नैतिक दायित्व है। कुछ भी लिखकर प्रसिद्ध हो जाना या अपनी परंपरा और संस्कृति के विरुद्ध लिखकर मीडिया में सुर्खियाँ बटोरना, पुरस्कार प्राप्त करना लेखक का मंतव्य नहीं होना चाहिए।

पुस्तकों के वितरण में एक बड़ी समस्या है भारी डाक व्यय, जिस कारण पाठक को पुस्तक

और महँगी लगती है। 'भारतीय डाक विभाग' रियायती दरों पर पुस्तकें भेजने की योजना बनाए तो निश्चित रूप से पुस्तकों की बिक्री बढ़ेगी। विदेश में पुस्तकें भेजने के लिए केवल हवाई डाक या कूरियर की सुविधा उपलब्ध है, जो बहुत महँगी है। अतः कई बार पुस्तकों के मूल्य से कहीं अधिक व्यय उसे भेजने में आता है। इस दिशा में विशेष योजना बनाने की आवश्यकता है।

हिंदी में अनुवाद की पुस्तकें भी बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रही हैं—भारतीय भाषाओं, अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं से भी। पर हिंदी के प्रकाशकों को भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों को भी हिंदी के पाठकों को उपलब्ध करवाना चाहिए। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की जो परिकल्पना की है, उसके व्यावहारिक पक्ष को हिंदी के प्रकाशक अन्य भाषाओं के साहित्य को हिंदी में प्रकाशित करके पूरा कर सकते हैं। बांग्ला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, असमिया, ओड़िया आदि की कृतियों के माध्यम से वहाँ की परंपरा, रीति-रिवाज, संस्कृति, सामाजिक सरोकारों से हिंदी के पाठक भी परिचित होंगे। ऐसे ही भारत के सभी प्रांतों की लोककथाएँ भी प्रकाशित होनी चाहिए, ताकि हर प्रांत के लोकनृत्य, कला, गीत, परंपरा, संस्कृति एवं लोक-जीवन से हिंदी पाठक परिचित हों और 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की संकल्पना को मूर्त रूप दे सकें।

हिंदी में विदेशी लेखकों की पुस्तकों के भी खूब अनुवाद हुए हैं, पर उन्हें हिंदी पाठकों का बहुत अधिक प्रतिसाद नहीं मिला है। विश्वविख्यात हैरी पॉटर की पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित हुईं, पर पाठकों का उनके प्रति उत्साह नहीं दिखा। जिस हैरी पॉटर की पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित होने से पहले लाखों प्रतियाँ बुक हो जाएँ और बुकस्टोर में आने के दो दिन पहले से पाठक पंक्तियों में खड़े हो जाएँ, ऐसे लेखन का भी हिंदी के पाठकों से उत्साहवर्धक प्रतिसाद न मिलना हिंदी पाठकों की उदासीनता को ही दिखाता है। इसलिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हिंदी के पाठकों की पुस्तकें पढ़ने के प्रति अभिरुचि विकसित की जाए। हिंदीभाषी भारतवर्ष की जनसंख्या का लगभग साठ प्रतिशत होने के बावजूद हिंदी में मुद्रित प्रतियों की संख्या पाँच सौ या एक हजार होना बहुत ही चिंता का विषय है। इसलिए पुस्तकों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना आज की सबसे बड़ी प्राथमिकता है।

हालाँकि दूरसंचार और तकनीकी में हुई अभूतपूर्व क्रांति के चलते हिंदी की पुस्तकों की पहुँच और उपलब्धता अब बढ़ रही है। ऑनलाइन पोर्टल्स—अमेजॉन, फ्लिपकार्ट आदि के माध्यम से छोटे-छोटे गाँव, कस्बों तक में पाठक पुस्तकें मँगा रहे हैं। हाँ, इस कारण पुस्तक-विक्रेताओं और बुक-शॉप्स पर अस्तित्व का संकट गहरा रहा है, क्योंकि पाठक पुस्तकों की दुकान पर जा नहीं रहे।

प्रकाशक के पास इतना सामर्थ्य और साधन नहीं कि वह समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में पुस्तकों के विज्ञापन दे सके। ले-देकर पुस्तकों की जानकारी देने का माध्यम यही है, पर दुर्भाग्य से इनमें साहित्य का स्थान बहुत कम हो गया है। हिंदी प्रकाशकों के सामने यह भी एक बड़ी चुनौती है। अधिकांश अखबार समीक्षाएँ नहीं छापते; कुछ केवल पुस्तक प्राप्ति स्वीकार करते हैं। ऐसे में तटस्थ मूल्यांकन और निष्पक्ष समीक्षा के अभाव में पाठक को अच्छी पुस्तकों की जानकारी नहीं हो पाती है। इसमें सोशल मीडिया की बड़ी प्रभावी भूमिका है; युवा लेखक फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम पर अपनी नई पुस्तक की चर्चा करते हैं तो उनके प्रशंसक पुस्तक की जानकारी पाकर पुस्तक मँगा लेते हैं। ऐसे ही लगभग सभी टी.वी. चैनलों व

समाचार-पत्रों के डिजिटल चैनल भी पुस्तकों पर विशेष लेख दे रहे हैं। यह बड़ी क्रांतिकारी पहल है, क्योंकि इनके माध्यम से पुस्तकें चर्चित होंगी और पुस्तकों की बिक्री बढ़ेगी।

आज प्रकाशन उद्योग के सामने एक बड़ी चुनौती यह भी है कि पुस्तकें प्रकाशित करना बेहद महँगा हो गया है, क्योंकि कागज-छपाई-बाइंडिंग निरंतर महँगी होती जा रही हैं। वर्ष 2020-21 व 2021-22 में कागज के मूल्यों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, जिसके कारण प्रकाशकों की कमर टूट गई है। एक ऐसी नीति बननी चाहिए, जिसमें कागज बनानेवाली मिलों पर कुछ अंकुश लगे और वे मनमाने तथा बेलगाम ढंग से कागज के मूल्यों में वृद्धि न कर सकें।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की ओर पाठकों का बढ़ता आकर्षण अब हिंदी प्रकाशन उद्योग के सामने चुनौती पेश कर रहा है। पाठक पुस्तक खरीदने की बजाय गूगल पर कुछ भी अप्रामाणिक सामग्री से काम चला लेने की ओर उन्मुख हो रहे हैं। इसलिए सोशल मीडिया की लत लगने से बचाने के लिए भी कुछ ठोस कदम उठाने होंगे।

बहुप्रतीक्षित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जिस प्रकार मातृभाषा में शिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है, उससे हिंदी की सभी प्रकार की पुस्तकों की माँग में अभूतपूर्व वृद्धि होने की संभावना है। आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यिक के साथ-साथ ज्ञान, विज्ञान व भारतबोध करानेवाली सरल-सुबोध पुस्तकों का प्रकाशन हो और उनकी सहज उपलब्धता भी सुनिश्चित की जाए। भविष्य में सभी विषयों की प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर की पुस्तकें तथा शोध ग्रंथ भी हिंदी में उपलब्ध होंगे, यह एक संकल्प की पूर्ति का अवसर होगा, अपनी भाषा के प्रति आग्रह व सम्मान का आनंदबोध करवाने का गौरवशाली क्षण होगा। अब यू.पी.एस.सी. की परीक्षा में हिंदी माध्यम मान्य हो जाने तथा न्यायालयों में न्यायाधीशों द्वारा मामलों के निर्णय हिंदी में सुनाने की शुरुआत होने से हिंदी को काफी बल मिलेगा।

हिंदी में इ-बुक्स और ऑडियो बुक्स की उपलब्धता बड़े स्तर पर हो रही है; भविष्य में इनके प्रति कैसी रुचि दिखेगी—यह यक्षप्रश्न है, साथ ही एक चुनौती भी। पर हिंदी प्रकाशक किसी भी मायने में विदेशी भाषा के प्रकाशक से कम नहीं हैं, यह तो मान्य हो ही गया है। अब हिंदी की पुस्तकें गुणवत्ता की दृष्टि से किसी भी विदेशी प्रकाशक की पुस्तकों से कमतर नहीं हैं, बल्कि उनका मूल्य आनुपातिक रूप से काफी कम होता है।

अंत में मैं केवल इतना आशावाद जाग्रत् करना चाहता हूँ कि कई कठिन चुनौतियों के बावजूद हिंदी प्रकाशन का भविष्य उज्ज्वल है; हिंदी पुस्तकों का स्वर्णिम युग अब आनेवाला है, क्योंकि हिंदी के बिना समाज के किसी घटक की गति नहीं है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तक अपना सामान भारत में बेचने के लिए हिंदी में ही विज्ञापन बनाकर भारतीयों को लुभाती हैं। उनके स्लोगन हिंदी में होते हैं, वे हिंदी की स्वीकार्यता को दरशाते हैं। इसके लिए हिंदी से जुड़े हर व्यक्ति, संस्था, लेखक, पत्रकार, पाठक को उद्यत होना होगा और हिंदी की अलख जगाकर एक 'पुस्तक क्रांति' लानी होगी, ताकि समाज में पुस्तकों की उपादेयता स्थापित हो, पुस्तकें हमारे जीवन का हिस्सा बनें, अच्छी और लोकप्रिय पुस्तकें बड़ी संख्या में प्रकाशित होकर चर्चित हों तथा खूब पढ़ी जाएँ। हिंदी के लेखक-रचनाकारों का सम्मान और यश विदेशी और अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों की तरह बढ़े। जैसे-जैसे हिंदी का उपयोग बढ़ेगा, वैसे-वैसे पुस्तकों के प्रति रुचि विकसित होगी और हिंदी प्रकाशन उद्योग भी फलेगा-फूलेगा।

□

prabhatbooks@gmail.com

भारत की स्वतंत्रता का 'अमृत महोत्सव' एवं हिंदी की स्थिति

—डॉ. प्रकाश सी. बरतूनिया

भाषा किसी भी देश की संस्कृति की धारक और संवाहक होती है। हिंदी के विषय में भारत के संविधान के अनुच्छेद सं. 351 में लिखित है कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।" भाषा का संबंध देश की अस्मिता से जुड़ा है। इस नाते हिंदी भारत की अस्मिता का प्रतीक है। भारत की नदियों में जिस प्रकार गंगा का स्थान है, उसी प्रकार भारत की भाषाओं में हिंदी का स्थान कहा जा सकता है। यद्यपि भारत की संस्कृत और तमिल भाषा की गणना विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में की जाती है। इन दोनों भाषाओं के विश्व की 6 शास्त्रीय भाषाओं में सम्मिलित होने का गौरव भी भारत को प्राप्त है। किंतु हिंदी का प्रवाह इतना तेज है कि यह न केवल भारत, बल्कि विश्व के अनेक क्षेत्रों तक पहुँच गया है। इस धारा को आरंभ करने का सद्कार्य मध्यकाल के पूज्य संत महात्माओं ने जो किया है। इनमें हिंदी के साथ अहिंदी भाषी संतों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। संत नानक, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, नरसिंह मेहता ने अपनी वाणी, उपदेश, दोहे, अभंग आदि में हिंदी का खुलकर प्रयोग किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पॉल, लाला लाजपत राय, सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे महापुरुषों ने अपने कार्य एवं संदेशों में हिंदी को ही प्राथमिकता दी। हिंदी को राजभाषा बनाने में भी महात्मा गांधी जैसे अहिंदी भाषी का योगदान उल्लेखनीय है। वर्तमान में हिंदी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्कभाषा, जनभाषा, लोकप्रिय भाषा और प्रमुख भाषा है। यह देश के बहुत बड़े वर्ग की मातृभाषा और शिक्षा के माध्यम की भी भाषा है। हिंदी की विकास-यात्रा इस प्रकार हैं—

हिंदी की विकास यात्रा

स्वंतत्रता पूर्व-गुजराती के महान् कवि श्री नर्मद (1983-1986) ने इसे राष्ट्रभाषा बनाने का विचार रखा। सन् 1872 आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती कोलकाता में केशवचंद्र सेन से मिले तो उन्होंने स्वामीजी को यह सलाह दे डाली कि आप संस्कृत छोड़कर हिंदी बोलना आरंभ

* बाबा साहेब आंबेडकर केंद्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ (भारत) के कुलाधिपति।

कर दें। 1873 महेंद्र भट्टाचार्य द्वारा हिंदी में 'पदार्थ विज्ञान' की रचना, 1877 श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा उपन्यास 'भाग्यवती' की रचना की। 1818 लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस अध्यक्ष रहते घोषित किया कि हिंदी राजभाषा होगी। 1930 का दशक शैलेंद्र मेहता द्वारा हिंदी टाइपराइटर का विकास किया।

वर्तमान में एक अनुमान के अनुसार दुनिया में 80 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं। भारत के अतिरिक्त 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। चीन के 9, जर्मनी के 7, ब्रिटेन के 4, अमेरिका के 5, कनाड़ा के 3 और रूस, इटली, फ्रांस तथा जापान के 2-2 विश्वविद्यालयों सहित करीब 150 विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिंदी शामिल हैं। विश्व में क्रिकेट के 97 करोड़ दर्शकों में 56 करोड़ हिंदी भाषी है। दर्शकों की संख्या के अनुसार अंग्रेजी चौथे क्रम पर है।

हिंदी की विशेषताएँ

1. हिंदी का स्रोत लगभग 1500 वर्ष पुराना है। इसका संस्कृत से बहुत घनिष्ठ संबंध है।
2. हिंदी की लगभग 60 बोलियाँ है। इसका स्वरूप अन्य भारतीय भाषा रूपी मनकों से बनी सुंदर माला की भांति है।
3. हिंदी भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक अंतर धाराओं का स्रोत है।
4. भारत के अतिरिक्त विश्व में लगभग ढाई करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग रहते हैं, जो कि विश्व की जनसंख्या का लगभग 1.85 प्रतिशत हैं। इनमें अधिकांण हिंदी का उपयोग करते हैं।
5. हिंदी लिखने के प्रयोग में लाई जानेवाली देवनागरी लिपि विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि बताई गई है।
6. हिंदी के तद्भव शब्द इसे लोक भाषा का पुट देकर अधिक सरल बनाते हैं।
7. हिंदी में अन्य भाषाओं के अनेक शब्द सम्मिलित होने से यह अन्य भाषा भाषियों के लिए पढ़ने, सीखने, बोलने और समझने में सरल है। यही कारण है कि यह भारत के सभी भाषा-भाषियों से आसानी से जुड़ जाती है।
8. हिंदी बोलचाल और संपर्क भाषा के रूप में भारत की स्वाभाविक भाषा बनकर उभरी।
9. हिंदी मान-सम्मान की भाषा है। इसमें नाम के आगे-पीछे अनेक आदरसूचक शब्द लिखने की परंपरा है। सम्मान देने हेतु हिंदी में बहुवचन का प्रयोग किया जाता है।
10. हिंदी की भाँति भारत के संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भारतीय भाषाओं को भी राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

भारत में हिंदी—भारत के लगभग 33 प्रतिशत राज्य हिंदी भाषी राज्य हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, झारखंड, उत्तराखंड, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, केंद्रशासित प्रदेश अंडमान निकोबार हिंदी भाषी राज्य कहलाते हैं। यहाँ के निवासियों की मातृभाषा हिंदी मानी जाती है।

11. हिंदी में शिष्टाचार बरतने की अधिक परंपरा है। इसमें वार्त्तालाप में स्वयं को तुच्छ और सामनेवाले को महत्त्वपूर्ण बताने का चलन है।

महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब और केंद्रशासित प्रदेश चंडीगढ़ के अहिंदी भाषी राज्य होते हुए भी यहाँ के निवासी हिंदी अच्छी तरह से बोलने-समझने और पढ़ने में सक्षम हैं। इनके अतिरिक्त जम्मू-काश्मीर, पश्चिम बंगाल, असम, गोवा, उड़ीसा, दक्षिण के चारों राज्यों के निवासी भी हिंदी समझते-बोलते हैं। यही स्थिति लगभग स्तर पूर्वोत्तर राज्यों की भी है। अरुणाचल प्रदेश तो हिंदी का गढ़ बन गया है। राज्य में 90 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं। दक्षिण में 'दक्षिण भारत प्रचार सभा' के प्रयासों से लगभग दो लाख तमिल भाषी विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिंदी की परीक्षा में भाग लेते हैं।

विदेश में हिंदी—भारत के अतिरिक्त विदेशों में नेपाल, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, खाड़ी के देशों में भी हिंदी का प्रयोग होता है। विश्व के सभी भारतवंशी देश मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद एवं टोबेगो, गुआना में भी हिंदी बोली-समझी जाती है। भारतीय पर्यटकों के थाइलैंड, सिंगापुर, हाँगकाँग, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में आने-जाने के कारण यहाँ भी हिंदी भाषा का प्रयोग होता है। ऑस्ट्रेलिया, कनाड़ा, इंग्लैंड, दक्षिण अफ्रीका में भी हिंदी और पंजाबी भाषा का प्रयोग बढ़ रहा है।

हिंदी साहित्य जगत्—विश्व साहित्य में हिंदी साहित्य का एक विशेष स्थान है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में अनेक ख्यातिनाम साहित्यकार हुए हैं। इनमें चंदबरदाई, जगपति, विद्यापति, अमीर खुसरो, तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास, रहीम, मीराबाई, मलिक मोहम्मद जायसी, बिहारी, केशव, भूषण, पद्माकर, घनानंद, आलम, भारतेंदु हरिशचंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, मुंशी प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, भगवती चरण वर्मा, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री, रांगेयराघव के नाम प्रमुख हैं।

विदेशों में भी हिंदी साहित्य बहुत लोकप्रिय है। विदेशी हिंदी साहित्यकारों में चेक गणराज्य के आंदोलन स्मेकल, रूस के अलेक्सई बरान्निकोव, डॉ. चेलीशेव, सेक्सांद्र सेंकेविच, इंग्लैंड के आर.एस. मैकग्रेगर, जर्मनी के लोठार लुत्से, पोलैंड के प्रो. मारिया बृस्की, कनाड़ा की कैथरीनजी हेंसन के नाम प्रमुख हैं। इनके अतिरित रामकथा के मनीषी फादर कामिल बुल्के एवं हिंदी नाटकों के लिए जापान के तामिया मिजोकोमी भी बहुत प्रसिद्ध हैं। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यकारों का भी विश्व में उच्च स्थान है। नोबल पुरस्कार प्राप्त बंगला भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार गुरु रवींद्रनाथ टैगोर का तथा संस्कृत के महाकवि कालिदास का विश्व साहित्य में अद्वितीय योगदान रहा है। हिंदी फिल्म, गाने एवं टेलीविजन की भी इसमें महती भूमिका रही है। भारत में हिंदी फिल्में और हिंदी फिल्मी गाने, जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय है। इन्हें सभी भाषा-भाषी देखते, सुनते और गाते- गुनगुनाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग हजार फिल्में बनती हैं, जिनमें हिंदी फिल्मों की संख्या बहुत अधिक है। हिंदी फिल्में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, श्रीलंका तथा खाड़ी के देशों में भी पसंद की जाती हैं। इनके अतिरिक्त रूस, यूरोपीय देशों, अमेरिका, कनाड़ा तथा ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी फिल्मों का बाजार है। यही स्थिति भारतीय टेलीविजन की भी है। हिंदी के धारावाहिक, समाचार चैनल और अन्य कार्यक्रम अपनी लोकप्रियता के कारण भारत के अतिरिक्त आस-पास के देशों सहित अनेक देशों में देखे जाते हैं।

हिंदी आम आदमी की प्रिय भाषा है—भारत में और विदेशों में हिंदी के प्रयोग का सर्वाधिक श्रेय भारत के आम आदमी को जाता है। सार्वजनिक स्थलों, भारतीय सवारी रेल गाड़ियों, तीर्थस्थलों, मेलों, महाकुंभों, राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर की खेल-कूद प्रतियोगिताओं एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेनेवाले विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच हिंदी स्वतः ही सबकी भाषा का माध्यम बन जाती हैं। भारतीय समाज में कुली, दूधवाले, ब्रेडवाले, रद्दीवाले, सब्जीवाले, आटोवाले, रिक्शेवाले, वाहन चालक, छोटे मैकेनिक, छोटे व्यापारी, पर्यटन स्थलों के कारोबारी आदि हिंदी का प्रयोग करने एवं इसे बढ़ाने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान देते हैं। इस प्रकार हिंदी भाषा देशवासियों के विचारों के आदान-प्रदान के रूप में कार्य कर सभी को एक सूत्र में बाँधते हुए देश की एकता एवं अखंडता को सुदृढ़ बनाने में अपनी भूमिका निभाती है।

उपरोक्त दर्शाए गए बिंदुओं के अतिरिक्त हिंदी के अन्य और भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं, इनमें राजभाषा के रूप में कार्यालयीन हिंदी एवं हिंदी अनुवाद का क्षेत्र भी बहुत व्यापक हैं। इनके अतिरिक्त प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया सहित अनेक कंपनियों के उत्पादनों के प्रयोग के विवरण तथा विज्ञापन में भी हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं की फिल्मों के हिंदी रूपातरंण का बाजार भी बहुत बड़ा है।

उच्च शिक्षा में हिंदी—उच्च शिक्षा में हिंदी का निरंतर विस्तार होता जा रहा है। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। विदेशों में भारत की क्षेत्रीय भाषा संस्कृत, मराठी, गुजराती, पंजाबी की पढ़ाई की भी व्यवस्था है। पाकिस्तान में हिंदी में एम.फिल. आरंभ हो गई है। भारत में अटल बिहारी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास कर रहे हैं, किंतु अभी भी प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, प्रबंधन, विधि, विज्ञान, यांत्रिकी क्षेत्रों में हिंदी पाठ्यक्रम की शिक्षा हेतु बहुत कुछ किया जाना शेष है। इन क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए हिंदी के मौलिक लेखन एवं अनुवादक क्षेत्र में अत्यधिक कठिन परिश्रम किया जाना अपेक्षित है।

स्कूल शिक्षा में हिंदी माध्यम—भारत में हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती स्कूल शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के माध्यम की है। शहरी क्षेत्रों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। एक शैक्षिक सर्वेक्षण में बताया गया था कि वर्ष 2003 और 2006 के मध्य मात्र तीन वर्षों में भारतीय भाषा माध्यम के विद्यार्थी 24 प्रतिशत बढ़े, जबकि अंग्रेजी माध्यम में यह वृद्धि थी 74 प्रतिशत। जबकि मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने के पक्ष में अनेक तर्क, तथ्य, उदाहरण एवं वैज्ञानिक शोध विद्यमान है। शिशु के सीखने की प्रक्रिया, समझ का विकास एवं ज्ञानार्जन की क्षमता के अनुसार मातृभाषा में शिक्षा दिया जाना श्रेष्ठ है। पिछले 40 वर्षों में 100 से अधिक शोध यह बताते हैं कि मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने पर ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है।

भारत में अनेक आयोग, समितियों आदि ने भी मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने की अनुशंसा की है। विज्ञान कहता है कि हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी की पढ़ाई दिमाग के दाएँ-बाएँ दोनों हिस्सों को सक्रिय बनाती है, जबकि अंग्रेजी भाषा की रोमन लिपि को एक ही दिशा में पढ़ने के कारण सिर्फ दिमाग का बायाँ हिस्सा ही सक्रिय होता है। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, जगदीश चंद्र बसु, महापंडित राहुल सांकृत्यायन,

डब्ल्यू.वी. यीट्स, रायवर्न, ब्रेल्सफोर्ड एवं अन्य विद्वानों एवं महापुरुषों ने मातृभाषा में शिक्षा के माध्यम को स्वीकारा हैं। हमारे सामने फ्रांस, रूस, चीन, जापान, जर्मनी, स्पेन, नीदरलैंड, चेक गणराज, डेनमार्क, पोलैंड, स्वीट्जरलैंड जैसे अनेक देशों के उदाहरण विद्यमान हैं, जिन्होंने अपने-अपने देश की भाषा के माध्यम से देश का विकास किया हैं।

एक अध्ययन के अनुसार प्राथमिक शाला की कक्षा एक से चार तक सबसे अधिक 'ड्राप आऊट रेट' (बीच में स्कूल छोड़ने की दर) भी 4.8 प्रतिशत हैं। चिंता का विषय है। होना तो यह चाहिए कि ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्रों में प्रारंभिक कक्षाओं की बोलियों में शिक्षा की शुरुआत की जाए, ताकि बच्चों का अपनी परिचित भाषा की पढ़ाई में अपनापन अनुभव हो और वे शिक्षा के प्रति आकर्षित हो सके। बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा में ज्ञान प्रदान कर ज्ञानवान बनाया जाना प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए, न कि अंग्रेजी भाषा के कारण उन्हें रटंतू तोता बनाया जाना। भारत में हिंदी भाषा की स्थिति सुदृढ़ होगी तो विश्व में उसका प्रभाव एवं प्रयोग बढ़ेगा। हिंदी भाषा के माध्यम की पढ़ाई के क्षेत्र में देशभर में 'सरस्वती शिशु मंदिर' पाठशालाओं का सराहनीय योगदान है। देश के बुद्धिजीवी, शिक्षाविद्, साहित्यकार, हिंदी अनुरागी, हिंदी प्रचार के कार्य में लगी हुई स्वैच्छिक संस्थाओं के पदाधिकारी. हिंदी के अध्येता और विद्वानों को अपने परिजनों को हिंदी या मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दिलवाकर देश के समक्ष आदर्श उपस्थित करना चाहिए। केवल उपदेश, भाषण, सुझाव, प्रस्ताव, सम्मेलनों, संगोष्ठियों से काम नहीं चलेगा। यद्यपि यह सब भी हिंदी के प्रति तात्कालिक सकारात्मक वातावरण पैदा करने सहित आपसी संपर्क, आवाजाही और गतिविधियाँ अवश्य बढ़ाते हैं, किंतु हिंदी माध्यम की शिक्षा के बिना यह कार्य वृक्ष की जड़ों को सूखते देखते रहकर केवल तनों, शाखाओं, फूल और पत्तियों पर पानी छिड़कने जैसा ही होगा। कहीं ऐसा न हो कि आनेवाले समय में हिंदी की स्थिति भी संस्कृत की भाँति हो जाए, जिस प्रकार संस्कृत भाषा में संस्कृति एवं ज्ञान का अकूत भंडार होने तथा विश्व की प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ भाषाओं में से एक होने पर भी यह केवल कर्मकांड की भाषा होने तक सीमित हो गई। उसी प्रकार हिंदी भविष्य में मात्र सम्मेलनों, संगोष्ठियों, पुरस्कारों, सम्मानों, अकादमियों तक सीमित न रह जाए। हिंदी माध्यम की शिक्षा दिए बिना हिंदी को अधिक समय तक जीवित रखा जाना असंभव कार्य होगा। कम-से-कम हिंदी भाषी राज्यों में तो हिंदी माध्यम की शिक्षा को प्राथमिकता दिया जाना अत्यंत आवश्यक हैं। इसका आशय अंग्रेजी भाषा का विरोध या पढ़ाई बंद किया जाना बिल्कुल नहीं है। अंग्रेजी भी एक अच्छी एवं प्रभावी भाषा है तथा अंग्रेजी भाषा को पढ़ना, सीखना, समझना और उस पर अधिकार रखना भी अच्छा है। किंतु हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी को लाया जाना या हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं की कीमत पर अंग्रेजी माध्यम की पढ़ाई राष्ट्रहित एवं भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने तथा देशवासियों को शिक्षित बनाने के लक्ष्य की प्राप्ति को बाधित करेगी।

हिंदी एवं हमारी सभी भारतीय भाषाओं को देश की शिक्षा प्रणाली में अपना समुचित स्थान दिलवाने की दिशा में वर्तमान भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई, 2020 को जारी की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अवश्य उम्मीद जगाती हुई दिखाई देती है। मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा बहुभाषिकता और भाषा शक्ति के अंतर्गत बाल विकास, बाल मनोविज्ञान एवं भाषा विज्ञान में

इस विषय पर अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि बच्चे अपनी मातृभाषा में सबसे जल्दी सीखते हैं। दुर्भाग्य से विगत वर्षों में भारतीय भाषाओं को समुचित देखभाल नहीं मिल पाई, जिससे 50 वर्षों में ही 220 भाषाओं को देश ने खो दिया। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को 'लुप्तप्राय' घोषित किया है। विभिन्न भाषाओं विलुप्त होने की कगार पर हैं, विशेषकर वे भाषाएँ, जिनकी लिपि नहीं है। यहाँ तक कि संविधान की आठवीं अनुसूची की 22 भाषाएँ भी कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना कर रही हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षाक्रम में द्विभाषी प्रयासों को बढ़ावा दिया गया है। उनमें घर व स्कूल की भाषा अलग-अलग है। इन्हें स्कूल की भाषा में पारंगत होने में सहायता मिले इस हेतु शिक्षकों को प्रोत्साहित किए जाने का प्रयास भी है। यद्यपि स्कूलों में 'त्रिभाषा फॉर्मूले' को पूर्व की शिक्षा नीति में भी अपनाया गया था और 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा' (एन.सी.एफ.) में इस पर जोर भी दिया गया था। किंतु इन प्रयासों के बाद भी जमीनी स्तर पर ये सब कदम कारगर सिद्ध नहीं दिखाई दिए। अतः समृद्ध भाषाओं/संस्कृति की अभिव्यक्तियों को संरक्षित या उन्हें रिकॉर्ड करने के लिए ठोस कार्यवाही या उपाय की सख्त आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में इन सबकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

यदि हिंदी को विश्व भाषा बनाना है और भारत को एक विकसित, सक्षम एवं सुदृढ़ राष्ट्र बनाना है, तो सब मिलकर यह संकल्प लें कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मूल उद्देश्यों के अनुसार हम अपने परिजनों को हिंदी या भारतीय भाषा में शिक्षा दिलवाने का कार्य कर भारत की नई पीढ़ी को हिंदी की ओर प्रेरित करेंगे, तो हिंदी से अन्य अपेक्षाओं की पूर्ति स्वतः ही पूरी होना निश्चित है।

□

prakash.bartunia@gmail.com

जानो सज्जन की यही एकमात्र पहचान।
इनके होते तीन हैं—मन, वच, कर्म समान॥

—अनाम

सज्जनों का लक्षण यह है कि वे सदैव दयावान् और करुणाशील होते हैं।

—महाभारत

सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग है।

—प्रेमचंद

हिंदी नई चाल में ऐसे ढली

—विजयदत्त श्रीधर

हिंदी पत्रकारिता की कहानी 30 मई, 1826 को कोलकाता से आरंभ होती है। हिंदी के आद्य संपादक युगल किशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्त्तण्ड' साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित किया था। यह श्रम-साध्य, कष्ट-साध्य, व्यय-साध्य बीड़ा उठाने की ओर वे क्यों प्रवृत्त हुए; जिसमें लागत निकलने की भी कोई आश्वस्ति नहीं थी! इसका उल्लेख स्वयं शुक्लजी ने 'उदंत मार्त्तण्ड' के प्रवेशांक में किया है। वे लिखते हैं, "यह उदंत मार्त्तण्ड अब पहले-पहल हिंदुस्तानियों के हित जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेजी, फारसी, बँगला में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्नेर, पढ़नेवालों को ही होता है।…देश के सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़, समझ लें, पराई अपेक्षा, जो अपने भावों के उपज न छोड़ें, इसलिए बड़े दयावान् करुणा, गुणनि के निधान, सबके कल्याण के विषय श्रीमान् गवरनर जेनेरल बहादुर की आयस से ऐसे चाहत में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा…''

उपर्युक्त संकल्प में पहली बात यह स्पष्ट होती है कि तब तक हिंदी में कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं होता था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए युगल किशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्त्तण्ड' का प्रकाशन किया। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि 'हिंदुस्तानियों के हित के हेत' यह हिंदी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा है। उदंत मार्त्तण्ड के संपादक ने हिंदुस्तानियों को हिंदी भाषी के संदर्भ में लिया था। उनकी जानकारियों का विस्तार संपादक का अभीष्ट था। इसमें हिंदी भाषा की महत्ता भी समाचार-माध्यम के रूप में निहित है, 'अपनी भाषा'। उदन्त मार्त्तण्ड की अनगढ़ सी भाषा का एक नमूना देखिए—"जबते या कलकत्ता नगरी में उदन्तप मार्त्तण्ड को प्रकाश भयो तबते लै आज दिवस लों काहू प्रकार ते ढाढस बाँध विद्या के बीज बबै को हिन्दुस्तानियों के जड़ता के खेत को बहु विधि ज्योभतो पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहे को जुतै ताहू पै काया कष्टे कर जैसो तैसो हर चलाय वा खेत में गाँठ की ब्यूो बखेर बड़े यतन से सींच फल लुन्यों चाह्यो तो समय लोभ रूपी टाड़ी परिवा खेत के फल-फूल पाती सिगरी चरि गई, अब तो फिरि फिरि या नाशें क्षेत्र को गोडियो तो श्रम ही के फल फलेंगो।"

एक सौ छियान्नबे बरस पहले पत्रकारिता के शुरुआती दौर में बरती गई हिंदी अब निखरकर कितनी परिष्कृत और परिमार्जित हो गई है, यह भाषिक उन्ननयन की गौरव गाथा है। इस विकास-यात्रा में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, मदनमोहन मालवीय, प्रताप नारायण मिश्र,

---

* माधवराव सप्रे समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थासन के संस्थापक-संयोजक।

रुद्रदत्त शर्मा, मेहता लज्जा राम शर्मा, दुर्गाप्रसाद मिश्र, सदानंद मिश्र, छोटूलाल मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्ती प्रभृति अनेक विद्वान् संपादकों का महती योगदान है। भारतेदु युग के लिए यह मुहावरा प्रचलन में आया—'हिंदी नई चाल में ढली।' खड़ी बोली हिंदी के परिष्कार में युगांतकारी भूमिका निभाने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया जाएगा। हिंदीं साहित्य के इतिहास में एक कालखंड 'द्विवेदी-युग' के रूप में वर्णित है। उनके समकालीन माधवराव सप्रे, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, बालमुकुंद गुप्त, लक्ष्मण नारायण गर्दे का कृतित्व भी चिरस्मरणीय है। हिंदी पत्रकारिता के अध्यायन-अवलोकन से भाषा के क्रमिक विकास की श्रृंखला भी स्पष्ट होती है। यह भाषायी अस्मिता के साथ-साथ हिंदी भाषियों के स्वायत्व और स्वाभिमान की भी रोचक-रोमांचक गाथा है।

सन् 1854 में प्रकाशित हुए हिंदी के पहले दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' के 18 मई, 1855 के अंक में प्रकाशित एक समाचार की शब्दावली पर ध्यान दीजिए, 'एक विशेष बात सुनने में आई है कि नागपुर के महाराज की रानियाँ जिस महल में वास करती हैं, उनको उस महल से निकाल के दूर कहीं और एक क्षुद्र स्थान में वास करवाने की इच्छा करते हैं और उस राजमंदिर में कमिश्नर साहब को वास करने के लिए अनुमति देनेवाले हैं। लेकिन यह बात सत्य है कि 'नहीं' हम लोग नहीं कह सकते हैं, अगर यह बात सत्य है तो ब्रिटिश गवर्नमेंट ने भारतवर्ष निवासी राजों पर अन्याय-अत्याचार और जोरावरी करने को जो आरंभ किया है, सो अब उसका हद्द हो चुका, काहे से के धन गहना ओ कपड़ा लूट के फेर बैठने का झोपड़ा भी छीनने का जब इरादा किया, इससे अधिक और जोरावरी क्याओ करनी होती है।'

'उदन्त मार्त्तण्ड' और 'समाचार सुधावर्षण' के प्रकाशन के बीच 28 साल का फासला है। दोनों के समाचारों की भाषा बतलाती है कि तब तक हिंदी की कोई मानक शब्दावली विकसित नहीं हो पाई थी। यद्यपि शब्द भंडार बढ़ रहा था। शनै:-शनै: भाषा का स्वरूप सुघड़ हो रहा था। परंतु अद्र्ध विराम, पूर्ण विराम, शब्दों को मिलाकर लिखना जैसे प्रयोग अटपटी भाषा ही बना रहे थे।

भारतेंदु युग तक आते-आते हिंदी नई चाल में ढलने लगी थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र को 'खड़ी बोली हिंदी गद्य का जनक' कहा जाता है। लोक भाषाओं, बोलियों में बँटी हिंदी को एक उन्नत भाषा के रूप में गढ़ने की ठोस नींव भारतेंदु ने रखी। भारतेंदु हरिश्चंद्र के जन्मदिन पर सन् 1867 में काशी से प्रकाशित 'कविवचन सुधा' में भारतेंदुजी ने संपादकीय टिप्पणी में लिखा था—'प्राय: लोग कहते हैं कि हिंदी कोई भाषा नहीं है। क्यों भारतखण्ड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे' 'कविवचन सुधा' संपादक का मानना था—'भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसको संपूर्ण लोग बेप्रयास समझ जाएँ।'

हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता के अनेक मूर्धन्य दोनों माध्यमों में लेखनी चला रहे थे। साहित्य और पत्रकारिता को साथ-साथ साधनेवाले मनीषियों की सक्रिय उपस्थिति से दोनों माध्यमों का संस्कार और परिष्कार हो रहा था। इतना ही नहीं, भाषा के प्रयोग को लेकर पत्रों और संपादकों में शास्त्रार्थ भी चल पड़े थे। हिंदी पत्रकारिता तब तक भाषा के सौष्ठव के प्रति जागरूक हो गई थी। यह बहस भी चल पड़ी थी कि कौन-सी हिंदी ठीक है, उर्दू-फारसी के शब्दों के मेलवाली अथवा हिंदी में संस्कृत के समावेश वाली भाषा?

भारत के बहुत बड़े भू-भाग की लोक जीवन की भाषा हिंदी रही। लेकिन राज-काज में कचहरी

में अंग्रेजी का बोलबाला था अथवा उर्दू-फारसी चलती थी। सन् 1873 में प्रकाशित भारतेंदु की 'हरिश्चंद्र मैगजीन' ने यह आंदोलन चलाया कि हिंदी को न्यायालयों की भाषा बनाया जाए। कहना न होगा कि हरिश्चंद्र के बहुविध हस्तहक्षेप और बहुआयामी सक्रियता से हिंदी गद्य का स्वरूप परिमार्जित हो गया था। भाव, भाषा, शैली, वर्तनी, शब्दभंडार और वाक्य-विन्यास में भी निखार आया था। उस समय बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' और प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' भी हिंदी के उन्नयन में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। इलाहाबाद नगरपालिका में चुंगी का कामकाज उर्दू भाषा में होता था। व्यापारियों के बही-खाते हिंदी में रहते थे। इससे व्यापारियों को परेशानी होती थी। 'हिंदी प्रदीप' ने यह व्यावहारिक समाधान निकाला—'ऐसे अन्यासय नागरी के स्वच्छ अक्षरों के प्रचलित होने से मिट जाएँगे। जो लिखा रहेगा, वही पढ़ा जाएगा और सब तरह की आसानी होगी।'

'समाचार-पत्र प्रजा का प्रतिनिधिस्वरूप होता है', इस अवधारणा के साथ 1878 में 'भारतमित्र' का प्रादुर्भाव होता है। यह हिंदी पत्रकारिता, साहित्य और भाषा तीनों दृष्टियों से एक उल्लेखनीय परिघटना है। 'भारतमित्र' की भाषा नीति थी—'आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए। यही अच्छी भाषा की कसौटी है। जहाँ तक हो सके, वाक्य छोटे हों। क्लिष्ट शब्द न आने पाएँ। मुहावरे का ख्याल रखें।' 'सार सुधानिधि' और 'हिंदी बंगवासी' भी उसी कालखंड में प्रकाशित हुए। इनके मनीषी संपादकों ने हिंदी भाषा को समृद्ध करने में अहम भूमिका निभाई। बालमुकुंद गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' ने ऐसी धूम मचाई थी कि गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन उसका अंग्रेजी अनुवाद सुना करता था। हिंदी ने इस दौर में भाषिक तेवर के नए प्रतिमान गढ़े। हिंदी पत्रकारिता के युग निर्माता संपादकों का यशस्वी कृतित्व भविष्य की सुदृढ़ नींव रच गया।

'उचित वक्ता' के संपादक दुर्गाप्रसाद मिश्र की यह टिप्पणी दृष्टव्य है—'आजकल हिंदी साहित्य की विचित्र दशा वर्तमान है। इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं दीख पड़ती। विविध प्रकार के रंग-बिरंगे लेख प्रकाशित होते हैं। कोई तो संस्कृत शब्दों पर झुक रहे हैं और ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन होती है, कुछ सरल कीजिए कि पट पलटकर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए; फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत शब्दों के मिलाने से या उर्दू शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट न होगी, बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने में उतारु हो गए। सारांश यह कि ग्राहकों की खोज में भाषा भी भटकाते रहते हैं और लेख प्रणाली को स्थिर नहीं रख सकते। हिंदी के वर्तमान लेखकों में यही दोष विद्यमान है। अधिकांश लेखनदास लोग घर से सतुआ बाँधकर हिंदी लिखने का व्यापार करने को निकलते हैं। ये लेखक क्या हैं, मानो बहुरूपी स्वाँग हैं! इनको जब जैसा मालिक मिला और उसी प्रकार लिखने में उद्दत हो जाते हैं। सुतराँ ऐसे लेखों से हिंदी की यथेष्ठा हानि हो रही है।'

प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' में हिंदीभाषियों का आह्वान करते हैं—

'चहहु जो साँचहु निज कल्याहन।
तो सब मिलि भारत-संतान।
जपौ निरंतर एक जबान।
हिंदी-हिदू-हिंदुस्तान॥'

कालाकांकर का 'हिंदोस्थान' विशुद्ध हिंदी भाषा का पहला दैनिक समाचार-पत्र था। ('समाचार सुधावर्षण' में हिंदी के साथ-साथ बांग्ला में भी लिखा जाता था)। मदनमोहन मालवीय 'हिन्दोस्थान' के संपादक थे। उनकी

भाषा-नीति थी—'भाषा की उन्नति करने में हमारा सर्वप्रधान कर्तव्य यह है कि हम स्वच्छ भाषा में लिखें। पुस्तकें भी ऐसी ही भाषा में लिखी जाएँ। ऐसा यत्न हो, जिससे जो कुछ लिखा जाए, वह हिंदी भाषा में लिखा जाए। जब भाषा में शब्द न मिलें, तब संस्कृत से लीजिए या बनाइए।'

खड़ी बोली हिंदी के इस विकास काल में संपादक हिंदीं भाषी पाठकों को भाषा-प्रेम में कोताही के लिए फटकार लगाने से भी नहीं चूकते थे।

'हिंदी बंगवासी' में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि पूरे समाचार-पत्र की वर्तनी एक जैसी रहे। एक प्रयोग यह भी किया गया कि अंग्रेजी पदनामों को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्हें सरल रूप में लिखा जाता था। जैसे सेक्रेटरी का 'सिकतर, मजिस्ट्रेट का 'मजिस्टर' आदि। मूर्धन्य संपादक अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है—'पत्रकारी का वह प्राथमिक विद्यालय था। पत्रकार के लिए भाषा की एकरूपता पहली आवश्यकता है। एक शब्द 'जिस रूप में एक जगह लिखा गया है, उसी रूप में सर्वत्र लिखा जाना चाहिए, यह बात 'हिंदीं बंगवासी' में कुछ दिन काम करने से आ जाती थी।'

जब सन् 1896 में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन काशी से हुआ, तब भाषा के संबंध में यह निर्णय लिया गया—'इसके लेखों की भाषा ठेठ हिंदी हो। उसमें संस्कृत अथवा अरबी-फारसी के बड़े-बड़े शब्द न रखे जाएँ। जिन लेखों में अरबी-फारसी के बहुत से शब्द भरे हों, उन्हें परीक्षक समिति अस्वीरकार कर दे।' नागरी प्रचारिणी पत्रिका के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—'इसका उद्देश्य यह था कि इसके द्वारा हिंदी में गद्य साहित्य की कमी दूर हो और ऐसे लेखों की संख्या बढ़ती रहे, जिनका लक्ष्य केवल पाठकों का मनोरंजन करना नहीं, वरन् हिंदी बोलनेवालों के विचारों को कुछ बढ़ाना और उनकी दृष्टि को कुछ और दूर तक फैलाना हो।'

'शिक्षा' पत्रिका में हिंदी के शुद्ध स्वरूप पर ध्यान दिया जाता था। 'शिक्षा' ने ही बताया कि राजनैतिक शब्द गलत है, सही शब्द 'राजनीतिक' है। अंतरराष्ट्रीय के स्थान पर 'अंतरराष्ट्रीय' शब्द को सही निरूपित किया गया।

सरस्वती युग : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषा-अनुशासन

'इंडियन' प्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष के संकल्प से सन् 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन हुआ। जनवरी, 1903 से महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पत्रिका के संपादन का दायित्व ग्रहण किया। हिंदी व भाषा के नव-संस्कार का स्वर्णयुग यहाँ से आरंभ होता है। द्विवेदीजी के संपादन की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—'ऐसा लगता है जैसे आदि से अंत तक उसे एक ही व्यक्ति लिखता हो।' 'सरस्वती' की सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह मानी जाती है कि उसने हिंदी लेखन की वर्तनी को शुद्ध किया और भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया। हिंदी को मानक स्वरूप देने में 'सरस्वती' ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 18 वर्ष के संपादन काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अनेक रचनाकारों—कवि, कथाकार, निबंधकार, यात्रा-वृत्तांतकार, अनुवादक, साहित्येत्तर लेखकों को तराशा और आगे बढ़ाया। संपादन करते हुए बहुधा द्विवेदीजी पुनर्लेखन कर दिया करते थे, परंतु मूल भाव यथावत् रहता था।

द्विवेदीजी ने नवंबर, 1905 की 'सरस्वती' में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख में लेखकों की भाषा संबंधी भूलें बतलाईं। संस्कृत साहित्य में श्रृंगार रस की प्रधानता पर उन्होंने चोट की और 'कालिदास की निरंकुशता' शीर्षक लेख

लिखा। एक आलेख में उन्होंने 'अनस्थिरता' शब्द का प्रयोग किया। इस पर 'भारतमित्र' संपादक बालमुकुंद गुप्त ने आपत्ति की और बताया कि सही शब्द 'अस्थिरता' है। हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं और संपादकों में इसको लेकर शास्त्रार्थ छिड़ गया। आलोचना-प्रत्यालोचना के ऐसे सिलसिले ने हिंदी को मानक और जीवंत भाषा बनाने का वातावरण रचा। शब्द-मंथन और साहित्य-मंथन की लहर चल पड़ी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने सर्वथा सटीक मूल्यांकन किया है—'किसी भाषा के बारे में किसी एक व्यक्ति और एक पत्रिका ने उतना काम नहीं किया, जितना हिंदी के बारे में इन दोनों (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती') ने किया।'

जब प्रयाग जैसी उन्नत नगरी से 'सरस्वती' जन्म ले रही थी, तभी सुदूर छत्तीसगढ़ के पेण्ड्रा में मनीषी संपादक-साहित्याकार माधवराव सप्रे 'छत्तीसगढ़ मित्र' के माध्यम से हिंदी सेवा का अनुष्ठान आरंभ कर रहे थे। उनका संकल्प था—'इसमें कुछ संदेह नहीं कि सुसंपादित पत्रों के द्वारा हिंदी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव, यहाँ भी 'छत्तीसगढ़ मित्र' हिंदी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान दे। आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा-करकट जमा हो रहा है, वह न होने पावे, इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी कहे।' यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि हिंदी की पहली मौलिक कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' सप्रेजी ने लिखी। हिंदी समालोचना शास्त्र का विकास सप्रेजी ने किया। हिंदी की आर्थिक शब्दावली गढ़ने का कार्य माधवराव सप्रे ने किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली योजना में अर्थशास्त्र खंड का दायित्व सप्रेजी को सौंपा गया था। अर्थशास्त्र में अंग्रेजी के तब प्रचलित 1320 शब्दों के लिए सप्रेजी ने व्यापक अध्ययन और संवाद के उपरांत हिंदी के 2115 शब्द बनाए।

'भरतपुर हिंदी संपादक सम्मेलन' (1927) के अध्यक्षीय आसन से माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था—'आज के हिंदी भाषा के युग को पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीजी द्वारा निर्मित और तेज को पंडित माधवरावजी सप्रे द्वारा निर्मित कहना चाहिए। यह सेवाएँ सब सज्जनों की हैं, किंतु संपादकीय व्यवस्था, विचार प्रवाह और भाषा शैली के रूप में वर्तमान युग को द्विवेदीजी और सप्रेजी का ही युग कहना होगा।'

बीसवीं शताब्दी का आरंभ हिंदी उन्नयन के प्रयत्नों को फलीभूत करने के उपक्रमों के साथ हुआ। पत्रकारिता में सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हिंदी भाषा के प्रयोग के पक्षधर मदनमोहन मालवीय ने जब प्रयाग से 'अभ्युदय' का प्रकाशन आरंभ किया, तब उन्होंने एक नई और महत्वपूर्ण पहल की। अभ्युदय में यह अपील प्रकाशित की जाती थी कि 'कृपा कर पढ़ने के बाद 'अभ्युदय' किसी किसान भाई को दे दीजिए।'

समाज सुधारकों और राजनीतिक चिंतकों के नेतृत्ववाले 'बांग्ला नवजागरण' और 'मराठी नवजागरण' के बरअक्स 'हिंदी नवजागरण' की अगुवाई संपादक-साहित्यकार कर रहे थे। माधवराव सप्रे हिंदी नवजागरण के अग्रदूत थे। सप्रेजी के दीर्घ निबंध 'स्वेदेशी आंदोलन और बायकाट' ने पराधीनता के अभिशाप के विरुद्ध जनमानस को झकझोरा। 'भारत की एक राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्रीय जाग्रति की मीमांसा' जैसे निबंधों से स्वाधीनता की चेतना को बल दिया। हिंदी में राजनीतिक शब्दावली के विकास का पथ इससे प्रशस्त हुआ।

हिंदी भाषा के उन्नयन में सन् 1915 में प्रयाग से प्रकाशित पत्रिका 'विज्ञान' का उल्लेखनीय अवदान है। प्रवेशांक में 'विज्ञान' के संपादक

ने लिखा—'अधिकांश वैज्ञानिक विषय हमारी भाषा के लिए नवीन हैं, उसको पाठकों के सामने उपस्थित करने में हमें अनेक गढ़े हुए शब्दों का आश्रय लेना पड़ेगा।' 'विज्ञान' का प्रकाशन 107 वर्षों से अनवरत हो रहा है। इस सुदीर्घ अवधि में अनेक हिंदी विज्ञान लेखकों को पत्रिका ने प्रोन्नत-प्रोत्साहित किया। शब्दावली विकसित की और विज्ञान चेतना के प्रसार के अनुकूल साहित्य-निर्माण का पथ प्रशस्त किया।

हिंदी की मानक वर्तनी के निर्माण में 'आज' का योगदान

हिंदी वर्तनी को मानक रूप देने तथा आवश्यकतानुसार नए शब्द गढ़ने में 'आज' की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। 'आज' के संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर ने एक टिप्पणी लिखी थी—'साहित्यिक दृष्टि से आजकल के लेखक पंद्रह साल पहले के लेखकों से निम्न कोटि के ही ठहराए जाएँगे। कारण यह है कि साहित्य का अध्यन बहुत कम लोग करते हैं। अंग्रेजी साहित्य अथवा किसी विषय में विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र पा जाना ही हिंदी के लेखक बनने की योग्यता का द्योतक हो गया है। फलत: दिन-दिन हमारी पुस्तकों के शब्द तो हिंदी और संस्कृत, पर वाक्य-अंग्रेजी के बनते चले जाते हैं। भाषा में न जोर रह गया है, न हृदयग्राहिता। रचना कौशल घटता जा रहा है।' इसी चिंता ने 'आज' को भाषा उन्नयन की दिशा में प्रवृत्त किया। 'आज' के संपादक मंडल के वरिष्ठ साथियों-कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय और मुकुंदी लाल श्रीवास्तव ने विचारपूर्वक हिंदी वर्तनी की एकरूपता निर्धारित की। भाषिक शुद्धता का आग्रह, नए-नए शब्दों का गढ़ना भी इसी कार्यनीति का हिस्सा था। यह कहने में कतई अतिशयोक्ति नहीं कि 'आज' ने जो पथ प्रशस्त किया, जिस वर्तनी का प्रचलन किया, वही बाद के दशकों में देश भर के हिंदीं पत्रों ने अपनाई।

हिंदी में 'हड़ताल' शब्द का प्रचलन, इसी शीर्षक से माधवराव सप्रे का निबंध प्रकाशित 'सरस्वती' ने किया। अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने पहले-पहल 'नृसिंह' में अंग्रेजी के 'नेशन' के लिए 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया। पहले बांग्ला के प्रभाव से जातीय शब्द चलता था, जिसका स्थान मराठी प्रभाववाले 'राष्ट्र' ने लिया। भरतपुर संपादक सम्मेलन में सभापति माखनलाल चतुर्वेदी ने 'जर्नलिस्ट' के लिए 'पत्रकार' शब्द चुना था। यद्यपि वे स्वयं इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे।

सबसे ज्यादा नए शब्द 'आज' ने बनाए और प्रचलित किए। अंग्रेजी शब्द मिस्टर के लिए श्री, मेसर्स के लिए 'सर्वश्री,' ब्लैकआउट के लिए 'अंधकुप्पल,' इंटरनेशनल मॉनीटरी फंड के लिए 'अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष,' कोरम के लिए गणपूर्ति, हाई कमिश्नर के लिए 'उच्चायुक्त, सेशन कोर्ट के लिए 'सत्र न्यायालय', इन्फ्लेमशन के लिए 'मुद्रास्फीति', डेमोक्रेसी के लिए 'लोकतंत्र', ब्यूरोक्रेसी के लिए नौकरशाही, प्रेसीडेंट के लिए 'राष्ट्रपति', प्राइम मिनिस्टर के लिए 'प्रधानमंत्री,' पार्लियामेंट के लिए 'संसद्,' नॉन कोऑपरेशन के लिए 'असहयोग' शब्द' आज की देन हैं। ऐसे सैकड़ों शब्द पत्रों, संपादकों ने बनाए और सुसंगत होने के कारण वे प्रचलित भी हुए। अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से भी बहुत से शब्द हिंदी में आए। हिंदी ने उन्हें अपने रंग-रूप में ढालकर अपनाया। परंतु सहज स्वाभाविक रीति से, थोपे गए शब्दों के समान नहीं।

हिंदी साहित्य और संस्कृति में जनपदों की महत्ता के व्याख्याकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने कुंडेओश्वहर (टीकमगढ़) से 'मधुकर' का प्रकाशन कर हिंदी की प्राणवायु सदृश लोकभाषाओं और लोकसंस्कृतियों का अध्ययन तथा दस्तावेजीकरण

करने पर बल दिया। आँचलिक साहित्य और साहित्यकारों का महत्त्व स्थापित किया। उन्हें मान्यता दी। हिंदी साहित्य सम्मेलन के हरिद्वार अधिवेशन में जनपदों की साहित्यिक सांस्कृतिक महत्ता को सार्वजनिक स्वीकृति प्रदान की गई। प्रकारांतर से यह साहित्य जगत् में विकेंद्रीकरण का आंदोलन था। बनारसीदास चतुर्वेदी मानते थे कि बोलियों में बाँटकर हिंदी की लोकभाषाओं की उपेक्षा अथवा अवहेलना वास्तव में हिंदी को कमजोर करेगी। बिना लोकभाषाओं के समावेश के हिंदी एक प्रकार से अपाहिज हो जाएगी।

हिंदी पत्रकारिता में शब्द संधान का कार्य अनवरत है। सन् 1952 का एक दृष्टांत देखिए—दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में हॉकी टूर्नामेंट हुआ। यह बहस चली कि हैटट्रिक के लिए हिंदी का कौन-सा शब्द प्रयोग में लिया जाए? दूसरे दिन 'नवभारत टाइम्स' में प्रेमनाथ चतुर्वेदी का दिया 'तिकड़ी' शब्द छपा और सटीक होने के कारण चलन में भी आ गया।

हिंदी पत्रकारिता की शब्द-संपदा

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय ने 'स्वतंत्र भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता' शोध परियोजना (2005-09) के अंतर्गत 'हिंदी पत्रकारिता की शब्द-संपदा' का अध्ययन कराया था। कोशकार डॉ. बदरीनाथ कपूर, डॉ. रामाश्रय रत्नेश और डॉ. शिवकुमार अवस्थी ने परिश्रमपूर्वक महत्त्वपूर्ण हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में प्रयुक्त उन शब्दों, मुहावरों और कहावतों का कोश तैयार किया, जो प्रचलन से बाहर होते जा रहे हैं। जिस दौर में हिंदी पत्रकारिता पर अंग्रेजी शब्दों के अवांछनीय प्रयोगों की भरमार ने भाषा संकट उत्पन्न कर दिया है, उस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण काम हुआ। माधवराव सप्रे समाचारपत्र संग्रहालय, भोपाल में उपलब्ध दिनमान, धर्मयुग, कल्पना, साप्ताहिक हिंदुस्तान, रविवार, ज्ञानोदय नवनीत, कादंबिनी, चाँद, माधुरी, कर्मवीर, सुधा, सरस्वती, त्यागभूमि, मतवाला, हिंदी प्रदीप, विशाल भारत आदि पत्रिकाओं; स्वनामधन्य संपादकों की ग्रंथावलियों से शब्द-संचयन का कार्य किया गया। उनके अर्थ दिए गए। इससे सुस्पष्ट हुआ कि हिंदी में प्रभावी लेखन के लिए प्रचुर शब्द-संपदा विद्यमान हैं। जरूरी होने पर अन्य भाषाओं से केवल वही शब्द ग्रहण करना चाहिए, जो हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं। इसी श्रृंखला में 'हिंदी की वर्तनी' उपयोगी पुस्तक संत समीर ने तैयार की। इससे हिंदी के प्रवाहमयी प्रयोग का पथ प्रशस्त हुआ।

वर्तमान हिंदी पत्रकारिता में अंग्रेजी शब्दों की घुसपैठ का सिलसिला चल रहा है। इसे नई पीढ़ी की भाषा का नाम दिया जा रहा है। दरअसल, यह बाजार की भाषा गढ़ी जा रही है। भाषा बाजारु होते जाना संस्कृति संकट का कारण बन रहा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आगाह किया था—'हिंदी विकृत करना भी एक लाक्षणिक प्रयोग है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि हिंदी में अनुचित शब्दों का अनुचित ढंग से प्रयोग करके कोई उस भाषा को बिगाड़ता है। वस्तुत: बिगाड़ता है तो उस जन-समूह को, जिसकी भाषा हिंदी है।'

□

sapresangrahalaya@yahoo.com

हिंदी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—महर्षि दयानंद सरस्वती

शब्दांजलि

मृदुला सिन्हा

(27 नवंबर, 1942-18 नवंबर, 2020)

व्यक्तित्व और कृतित्व की धनी गोवा की पूर्व महिला (पहली) राज्यपाल, प्रसिद्ध लेखिका, सामाजिक कार्यकर्ता तथा भारतीय जनता पार्टी की सक्रिय सदस्या आदरणीया मृदुला सिन्हाजी का जन्म 27 नवंबर, 1942 ग्राम छपरा, जिला मुजफ्फरपुर बिहार में हुआ था।वे केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की पूर्व अध्यक्षा व भाजपा महिला मोर्चा की अध्यक्षा भी रहीं।आजीवन वे अपनी बहुमुखी प्रतिभा और अद्भुत व्यक्तित्व से प्रभावित करती रहीं। 2021 में उन्हें मरणोपरांत भारत के चौथे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्मश्री से सम्मानित किया गया। मृदुला सिन्हाजी का पार्थिव शरीर 18 नवंबर, 2020 को इस संसार से विदा हुआ।

मोतिहारी स्थित महिला कॉलेज से एक व्याख्याता के रूप में अपने कॅरियर का शुभारंभ करते हुए वे राजनीतिक दृष्टि से भी निरंतर सक्रिय रहीं। साहित्य और राजनीति में समान रूप से सक्रिय आदरणीया मृदुला सिन्हाजी ने अनेक उपन्यासों, कहानियों और विमर्शात्मक पुस्तकों की रचना की।'घरवास', 'नई देवयानी', ज्यों मेहँदी के रंग', 'सीता पुनि बोली' जैसे उपन्यास और 'देखन में छोटे लगें', 'बिहार की लोक-कथाएँ भाग-1, 2' तथा 'ढाई बीघा जमीन', 'साक्षात्कार' जैसी कहानियों की रचनाकार मृदुला सिन्हाजी ने जयप्रकाश नारायण की समग्र क्रांति में भी सक्रियता से भाग लिया था। उनकी रचनाएँ लोकजीवन के यथार्थ और सौंदर्य से सराबोर थीं। महिला कल्याण की दिशा में आजीवन सक्रिय एवं प्रतिबद्ध मृदुला सिन्हाजी ने अपने लेखों और पुस्तक 'मात्र देह नहीं है औरत' में स्त्री अस्मिता संबंधी प्रश्नों को भी उठाया है।

इस महत्त्वपूर्ण रचनाकार ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा द्वारा साहित्य जगत में एक विशिष्ट स्थान बनाया। उन्होंने 'पाँचवाँ स्तंभ' शीर्षक से समसामयिक विषयों पर केंद्रित सामाजिक पत्रिका भी निकाली। बिहार के लोकजीवन, लोक कथाओं को अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त किया, जीवंत किया। राजमाता विजया राजे सिंधिया की जीवनी 'एक थी रानी ऐसी भी' लिखी और इसी से इस पुस्तक पर फिल्म निर्माण का कार्य भी किया गया। यही नहीं, उनकी अनेक साहित्यिक कृतियों पर फिल्म और धारावाहिक के निर्माण का कार्य भी खूब हुआ है। 'ज्यों मेहँदी के रंग' उपन्यास को टीवी धारावाहिक में रूपांतरित किया गया।

उनके रचनात्मक योगदान के लिए उन्हें बाबा साहब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय द्वारा

डॉक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की गई और 2017 में उन्हें आचार्य तुलसी कृतित्व पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का साहित्य भूषण सम्मान, दीनदयाल उपाध्याय पुरस्कार सहित कई अन्य साहित्यिक मंचों से भी सम्मानित किया गया। जीवनपर्यंत राष्ट्र, समाज संगठन, संस्कृति और साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध एवं समर्पित मृदुला सिन्हाजी को सदैव उनके योगदान के लिए स्मरण किया जाएगा।

सिम्मी हर्षिता

(29 नवंबर, 1940-6 फरवरी, 2019)

समकालीन हिंदी रचनाकारों में सिम्मी हर्षिता की अपनी एक विशिष्ट पहचान रही।29 नवंबर, 1940 में रावलपिंडी के निकट देवी (अविभाजित भारत) नामक स्थान पर जनमी सिम्मी हर्षिताजी ने 6 फरवरी, 2019 को अंतिम साँस ली।हिंदी साहित्य के लिए यह अपूरणीय क्षति रही। आजीवन उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। पहले लंबे समय तक वे अध्यापन कार्य से जुड़ी रहीं तत्पश्चात् उन्होंने स्वतंत्र लेखन आरंभ किया और अनेक प्रसिद्ध कृतियों की रचना की और एक रचनाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। उनका विचार था कि जैसे हम हल से फसल बोते हैं और दिन-ब-दिन कड़ी मेहनत से उसका पालन-पोषण करते हैं, वैसे ही लिखना कठिन है और मेहनत उसी तरह काम करती है धीमी और स्थिर। अपने विचारानुसार एक समर्पित लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हुईं।

साहित्यिक जगत् में उनकी पहली कहानी 'अपने-अपने दायरे' 1969 में 'संचेतना' पत्रिका में प्रकाशित हुई और यह सिलसिला यहाँ से अनवरत चला। उनके अनेक कहानी-संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हुए।

कमरे में बंद आभास, धराशायी, तैंतीस कहानियाँ (पुरस्कृत), बनजारन हवा, इस तरह की बातें, प्रेम संबंधों की कहानियाँ, सिम्मी हर्षिता की लंबी कहानियाँ, चुनी हुई कहानियाँ आदि कहानी-संग्रह आए और संबंधों के किनारे, यातना शिविर, रंगशाला, जलतरंग (पुरस्कृत) आदि उपन्यास प्रसिद्ध हुए।

उनके दो उपन्यासों का पंजाबी में अनुवाद भी हुआ है।मेरे साक्षात्कार तथा कृति विमर्श पुस्तक भी प्रकाशित हुई।उनकी विभिन्न कृतियों पर अनेक शोधकार्य भी हुए तथा विभिन्न कहानियों पर दूरदर्शन के लिए टेलीफिल्म का निर्माण भी हुआ है। हर्षिताजी के साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें अनेक महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है। पंजाब भाषा विभाग द्वारा वर्ष '1997 के श्रेष्ठ कथा-साहित्य' के लिए '33 कहानियाँ' संग्रह; हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा वर्ष '2006 का साहित्यकार सम्मान'; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा वर्ष '2006 का सौहार्द सम्मान' तथा उपन्यास 'जलतरंग' के लिए उन्हें 2014 का कुसुमांजलि साहित्य सम्मान प्राप्त हुआ।

हिमांशु जोशी

(4 मई, 1935-23 नवंबर, 2019)

हिमांशु जोशीजी हिंदी के एक प्रसिद्ध पत्रकार, संपादक, उपन्यासकार और कहानीकार थे। पहाड़ी जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करनेवाले रचनाकारों में उनका नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। मानवीय संवेदना के इस कुशल शिल्पी का जन्म उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के जोसयूड़ा गाँव में 4 मई, 1935 को हुआ। बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस युवा रचनाकार ने हिंदी पत्रकारिता जगत् से अपने कॅरियर का शुभारंभ करते हुए साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा है। वे लंबे समय तक हिंदी पत्रिका 'कादम्बिनी' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादन से जुड़े रहे। बाद के दिनों में उन्होंने 'वागर्थ' के संपादन का भी दायित्व सँभाला। प्रेम, प्रकृति, अंचल, संवेदना, तपस्या, परिवार, करुणा, शोषण, स्नेह, वासना और तिरस्कार के कई रंगों से रँगी उनकी रचनाएँ जीवन यथार्थ के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करती हैं। गांधीजी की हत्या पर मात्र 13-14 साल की उम्र में उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी और फिर सालोसाल तक यह क्रम चलता ही रहा। हिंदी के इस लब्ध-प्रतिष्ठित कथाकार ने 23 नवंबर, 2019 में इस दुनिया को अलविदा कहा। लेकिन पहाड़ी जीवन के कुशल चितेरे के रूप में वे आज भी हम सबके बीच जीवित हैं।

देश की कई प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में वे लगातार छपते रहे। उन्होंने दूरदर्शन व आकाशवाणी के लिए भी काम किया। हिंदी फिल्मों के लिए भी लिखा। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—अरण्य (1965), महासागर (1971), छाया मत छूना मन (1974), कगार की आग (1975), समय साक्षी है (1976), तुम्हारे लिए (1978), सु-राज (1980)। अंतत: तथा अन्य कहानियाँ (1965), अथचक्र (1975), मनुष्य-चिह्न तथा अन्य कहानियाँ (1976), जलते हुए डैने तथा अन्य कहानियाँ (1980), तपस्या तथा अन्य कहानियाँ (1992), गंधर्व-गाथा (1994), नंगे पाँवों के निशान (2002), इस बार फिर बर्फ गिरी तो (2005), सागर तट के शहर (2005), अगला यथार्थ (2006), पाषाण-गाथा (2010) आदि प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। प्रकाशित कविता-संग्रह नील नदी का वृक्ष (2008), एक आँख की कविता और अग्नि-संभव।यात्रा-वृत्तांत यात्राएँ (1997), नॉर्वे: सूरज चमके आधी रात (1989) जोशीजी द्वारा लिखी जीवनी तथा खोजपरक किताब 'अमर शहीद अशफाक उल्ला खाँ' (1999) तथा 'यातना-शिविर में' (अंडमान की अनकही कहानी) 2001 में छपी। रेडियो नाटक सु-राज तथा अन्य एकांकी (2001), कागज की आग तथा अन्य एकांकी (2003), समय की शिला पर (2004); बाल साहित्य-अग्नि संतान (उपन्यास, 1975), विश्व की श्रेष्ठ लोककथाएँ (14 भाषाओं में, 1979), तीन तारे (बाल उपन्यास, 1985), बचपन की याद रही कहानियाँ (1985), भारतरत्न पं. गोविंद बल्लभ पंत (जीवनी, 1989), काला पानी (14 भाषाओं में, 1990), हिम का हाथी (कहानी संग्रह, 1995), अमर कैदी (2002), सुबह के सूरज (2007) उल्लेखनीय हैं।

उन्हें कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया था।'छाया मत छूना मन', 'मनुष्य चिह्न', 'श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ' तथा 'गंधर्व-गाथा' को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत। 'हिमांशु जोशी की कहानियाँ' तथा 'भारत रत्न : पं. गोविंद बल्लभ पंत' को हिंदी अकादमी से सम्मानित किया गया, दिल्ली का सम्मान; 'तीन तारे' राजभाषा विभाग बिहार सरकार द्वारा पुरस्कृत। इसके अतिरिक्त पत्रकारिता के

लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा 'स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

अनेक विद्यार्थियों ने हिमांशु जोशीजी के साहित्य पर शोध कार्य किया है।अनेक उपन्यासों, कहानियों के अनुवाद अधिकतर भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, नेपाली, बर्मी, चीनी, जापानी, इटैलियन, बल्गेरियाई, कोरियाई, नॉर्वेजियन, स्लाव, चैक आदि भाषाओं में भी हुए हैं। कई विश्वविद्यालयों में उनकी रचनाएँ पाठ्यक्रम में भी पढाई जाती हैं।

इसके अलावा उपन्यास 'सु-राज' पर फिल्म बनी और 'तुम्हारे लिए' को आधार बनाकर दूरदर्शन ने धारावाहिक बनाया। 'तर्पण', 'सूरज की ओर' आदि पर टीवी फिल्में बनीं। जोशीजी ने शरतचंद्र के उपन्यास 'चरित्रहीन' पर आधारित रेडियो धारावाहिक का निर्देशन किया और अनेक सरकारी, अर्द्धसरकारी समितियों में हिंदी सलाहकार रहे। वह नॉर्वे से प्रकाशित पत्रिका 'शांतिदूत' के विशेष सलाहकार व हिंदी अकादमी, दिल्ली की पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' के संपादक मंडल के सदस्य भी थे।

मन्नू भंडारी

(3 अप्रैल, 1931-15 नवंबर, 2021)

मन्नू भंडारी हिंदी की एक प्रसिद्ध लेखिका के रूप में जानी जाती हैं। वे एक प्रसिद्ध पटकथाकार, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार और शिक्षिका थीं। नई कहानी आंदोलन के दौरान वे लेखन कार्य में सक्रिय हुईं।

मध्य प्रदेश में मंदसौर जिले के भानपुरा गाँव में जनमी मन्नू का बचपन का नाम महेंद्र कुमारी था। लेखन के लिए उन्होंने 'मन्नू' नाम का चुनाव किया। मन्नू भंडारी ने शुरू में कोलकाता में हिंदी के व्याख्याता के रूप में काम किया। पहले प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय बालीगंज शिक्षा सदन में पढ़ाया और बाद में 1961-65 तक कोलकाता के रानी बिड़ला कॉलेज में पढ़ाया। फिर वे प्रसिद्ध लेखक-संपादक राजेंद्र यादव से विवाह के बाद दिल्ली आ गईं और दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा कॉलेज में हिंदी साहित्य की व्याख्याता बन गईं।

मन्नू भंडारी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य की प्रमुख हस्ताक्षर थीं। वे नई कहानी आंदोलन की अग्रणी थीं। उन्होंने अपनी रचनाओं में उभरते हुए भारतीय समाज की आकांक्षाओं पर ध्यान केंद्रित किया और मध्यम वर्ग के जीवन, विशेषकर महिलाओं के जीवन को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। साथ ही भारतीय समाज के यथार्थ को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। धर्मयुग में धारावाहिक रूप से प्रकाशित उपन्यास 'आपका बंटी' और 'महाभोज' से लोकप्रियता प्राप्त करने वाली मन्नू भंडारी विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजनपीठ की अध्यक्षा भी रहीं। लेखन का संस्कार उन्हें विरासत में मिला। उनके पिता सुखसंपत राय भी जाने-माने लेखक थे। उनके पिता एक स्वतंत्रता सेनानी, समाज-सुधारक और पहले अंग्रेजी से हिंदी और अंग्रेजी से मराठी शब्द कोशों के निर्माता थे।

मन्नू भंडारी ने कहानियाँ और उपन्यास दोनों लिखे हैं। 'एक प्लेट सैलाब','मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तसवीर', 'यही सच है', 'त्रिशंकु' और 'आँखों देखा झूठ' उनके महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं।

उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आपका बंटी' विवाह विच्छेद की त्रासदी में पिस रहे एक बच्चे को केंद्र में रखकर लिखा गया था। 'एक इंच मुस्कान' लेखक और पति राजेंद्र यादव के साथ लिखा गया यह उपन्यास पढ़े-लिखे आधुनिक लोगों की एक दुखांत प्रेमकथा है, जिसका एक-एक अंक लेखक-द्वय ने क्रमानुसार लिखा है। हिंदी साहित्य का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'महाभोज' नौकरशाही और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच आम आदमी की पीड़ा को उद्घाटित करता है। इस उपन्यास पर आधारित नाटक भी अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था। इसी प्रकार 'यही सच है' कहानी पर आधारित 'रजनीगंधा' नामक फिल्म अत्यंत लोकप्रिय हुई थी और उसको 1974 की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।उन्होंने कुछ महत्त्वपूर्ण पटकथाएँ भी लिखीं—रजनी, निर्मला, स्वामी, दर्पण।

'बिना दीवारों का घर' उनका प्रसिद्ध नाटक रहा। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' बहुत प्रसिद्ध हुई, जो वर्ष 2007 में प्रकाशित की गई थी। मन्नू भंडारी ने हिंदी में लिखा, लेकिन उनके काम का कन्नड़, मराठी, बंगाली, मणिपुरी, फ्रेंच, जर्मन, हंगेरियन और अंग्रेजी सहित भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

उनके साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें हिंदी अकादमी, दिल्ली का शिखर सम्मान, बिहार सरकार, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, व्यास सम्मान और उत्तर-प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत किया गया।

मन्नू भंडारी की मृत्यु 15 नवंबर, 2021 को 90 वर्ष की आयु में गुड़गाँव, हरियाणा में हुई थी।उनका संपूर्ण जीवन लेखन व अध्यापन के प्रति समर्पित रहा।

गंगा प्रसाद विमल

(3 जून, 1939-23 दिसंबर, 2019)

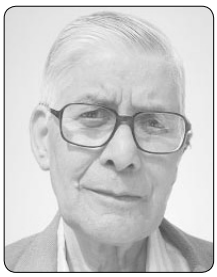

डॉ. गंगा प्रसाद विमल हिंदी साहित्य में अकहानी आंदोलन के जनक के रूप में जाने जाते हैं।कवि, कथाकार, उपन्यासकार, अनुवादक के रूप में दुनिया भर में इन्हें ख्याति प्राप्त है। कई सरकारी सेवाओं से जुड़े रहकर, बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न इनका व्यक्तित्व बेहद विशाल था। इनकी शिक्षा गढ़वाल, ऋषिकेश, इलाहाबाद, यमुनानगर एवं पंजाब विश्वविद्यालय जैसी अनेक जगहों पर हुई। जीवन के आरंभिक दौर से ही प्रतिभाशाली और रचनात्मक होने के कारण इनके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास तमाम साहित्यिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में हुआ। 1963 में ही इन्होंने 'समर स्कूल ऑफ लिंगुइस्टिक्स', उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में अध्ययन आरंभ किया। सन् 1965 में इन्हें डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की डिग्री से सम्मानित किया। दक्षिण श्रीलंका में 23 दिसंबर, 2019 में एक सड़क दुर्घटना में गंगाप्रसाद विमलजी का निधन हो गया।

डॉ. विमल का जन्म 3 जून, 1939 को एक छोटे से कस्बे उत्तरकाशी, उत्तराखंड में हुआ। हिमालय की सादगी, विस्तार, ऊँचाई एवं निर्मलता विमलजी के व्यक्तित्व की भी आधारभूत विशेषता है। हिमालय की अनूठी सामाजिक सांस्कृतिक परंपरा, सनातनता के संस्कार के कारण ही इनके साहित्य में इनकी तमाम

रचनाओं में हिमनदों को बचाने और वनों की कटाई पर रोक लगाने पर जोर दिया गया। हिमालय, पहाड़ की संस्कृति, पहाड़ के देव स्थल, पर्यटन स्थल सहित कई चोटियों का जिक्र उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। पहाड़ से उनका गहरा जुड़ाव रहा। डॉ. विमल ने 1961 से 1964 तक तीन वर्ष रिसर्च फेलो के रूप में तथा दो वर्ष हिंदी भाषा और साहित्य में पंजाब विश्वविद्यालय में रहकर अध्यापन किया। 1964 से 1969 तक जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में शोध निर्देशक के तौर पर कार्यरत रहे। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली में केंद्रीय हिंदी निदेशालय (शिक्षा विभाग) में निर्देशक के पद पर भी रहे। इसके अतिरिक्त शब्दकोशों से संबंधित योजनाओं, भाषा ज्ञान संबंधी सामग्री तथा भारतीय भाषा संबंधी नीतियों को जारी करनेवाली सरकारी संस्थाओं एवं समितियों में कार्य किया। 1999 से लेकर 2004 तक भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर तथा 2000 तक विभागाध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। इनके अनेक कविता संग्रह, कहानी संग्रह, उपन्यास, अंग्रेजी में अनुवाद की पुस्तकें, गद्य में हिंदी अनुवाद की पुस्तकें, संपादित पुस्तकें, अन्य भाषाओं से अनूदित किताबें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें काव्य, कथा और उपन्यास शामिल हैं—

बोधि वृक्ष, द्वंद्व पाठ, सन्नाटे से मुठभेड़, मैं वहाँ हूँ, कुछ तो है, खबरें और अन्य कविताएँ, तावीज कविता और कहानियाँ, डुअल टेक्स्ट, लंदन आदि प्रसिद्ध कविता-संग्रह हैं। कोई शुरुआत, अतीत में कुछ, इधर-उधर, बहार न भीतर, चर्चित कहानियाँ तथा मैं भी आऊँगा (2015) आदि कहानी संग्रह भी आए। अपने से अलग, कहीं कुछ और, मारीचिका, मृगांतक, मानुषखोर उनके उपन्यास रहे।

डॉ. विमल को साहित्य और संस्कृति के लिए किए गए कार्यों पर उन्हें पोएट्री पीपुल्स प्राइज, रोम में आर्ट यूनीवर्सिटी द्वारा पुरस्कृत, नेशनल म्यूजियम ऑफ लिटरेचर, बिहार सरकार द्वारा दिनकर पुरस्कार, भारतीय भाषा पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद तथा महात्मा गांधी सम्मान, उत्तर प्रदेश से भी पुरस्कृत किया गया। इन्हें अनेक सरकारी, गैर-सरकारी, देशी-विदेशी संस्थाओं एवं संस्थानों की सदस्यता भी प्राप्त रही।

गिरिराज किशोर

(8 जुलाई, 1937-9 फरवरी, 2020)

हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक सशक्त कथाकार, नाटककार और आलोचक रहे। एक कहानीकार के रूप में भी इन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। उनके समसामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहे। बालकों के लिए भी अनेक लेख लिखे हैं। इनका उपन्यास 'ढाई घर' अत्यंत लोकप्रिय हुआ था। वर्ष 1991 में प्रकाशित इस कृति को 1992 में ही 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। गिरिराज किशोर द्वारा लिखा गया 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास महात्मा गांधी के अफ्रीका प्रवास पर आधारित था, जिसने इन्हें विशेष पहचान दिलाई।

गिरिराज किशोर का जन्म 8 जुलाई, 1937 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में हुआ था। अपनी शिक्षा के अंतर्गत उन्होंने 'मास्टर ऑफ सोशल वर्क' की डिग्री 1960 में 'समाज विज्ञान संस्थान', आगरा से प्राप्त

की थी। गिरिराज किशोर 1960 से 1964 तक उत्तर प्रदेश सरकार में सेवायोजन अधिकारी व प्रोबेशन अधिकारी भी रहे थे। 1964 से 1966 तक इलाहाबाद में रहकर स्वतंत्र लेखन किया। फिर जुलाई 1966 से 1975 तक 'कानपुर विश्वविद्यालय' में सहायक और उप-कुलसचिव के पद पर सेवारत रहे। आई.आई.टी. कानपुर में 1975 से 1983 तक रजिस्ट्रार के पद पर रहे और वहाँ से कुलसचिव के पद से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। वर्ष 1983 से 1997 तक 'रचनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केंद्र' के अध्यक्ष रहे। गिरिराज किशोर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के भी सदस्य रहे। रचनात्मक लेखन केंद्र उनके द्वारा ही स्थापित किया गया था। वे हिंदी सलाहकार समिति, रेलवे बोर्ड के सदस्य भी रहे।

उनके नीम के फूल, चार मोती बेआब, पेपरवेट, रिश्ता और अन्य कहानियाँ, शहर-दर-शहर, हम प्यार कर लें, जगत्तारनी एवं अन्य कहानियाँ, वल्द रोजी, यह देह किसकी है? आदि कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए। लोग, चिड़ियाघर, दो, इंद्र सुनें, दावेदार, तीसरी सत्ता, यथा प्रस्तावित, परिशिष्ट, असलाह, अंध्वंस, ढाई घर, यातनाघर, आठ लघु उपन्यास अष्टाचक्र शीर्षक से प्रकाशित। नरमेध, प्रजा ही रहने दो, चेहरे-चेहरे किसके चेहरे, केवल मेरा नाम लो, काठ की तोप, देहांत, गुलाम बादशाह आदि के अतिरिक्त बच्चों के लिए एक लघुनाटक 'मोहन का दु:ख' भी लिखा।

उनका उपन्यास 'ढाई घर' अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसे 1992 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी के अफ्रीका प्रवास पर आधारित 'पहला गिरमिटिया' भी काफी लोकप्रिय हुआ। राष्ट्रपति द्वारा उन्हें 23 मार्च, 2007 को 'साहित्य और शिक्षा' के लिए 'पद्मश्री' पुरस्कार से विभूषित किया गया था। उत्तर प्रदेश के 'भारतेंदु पुरस्कार' नाटक पर, 'परिशिष्ट' उपन्यास पर 'मध्य प्रदेश साहित्य परिषद्' के 'वीरसिंह देव पुरस्कार', 'उत्तर प्रदेश हिंदी सम्मेलन' के 'वासुदेव सिंह स्वर्ण पदक' तथा 'ढाई घर' के लिए उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'साहित्य भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किए गए। 'भारतीय भाषा परिषद्' का 'शतदल सम्मान' मिला। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास पर के.के. बिरला फाउंडेशन द्वारा 'व्यास सम्मान' और जे.एन.यू. में आयोजित 'सत्याग्रह शताब्दी विश्व सम्मेलन' में सम्मानित किया गया।

पद्मश्री से सम्मानित वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार गिरिराज किशोर का निधन रविवार, 9 फरवरी, 2020 को कानपुर में उनके आवास पर हुआ। वह 83 वर्ष के थे।

विष्णु चंद्र शर्मा

(1 अप्रैल, 1933-2 नवंबर, 2020)

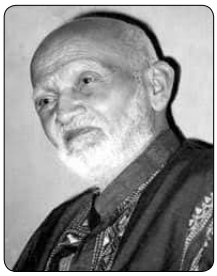

काशी में 1 अप्रैल, 1933 को जनमे वरिष्ठ साहित्यकार विष्णुचंद्र शर्मा राजनीतिज्ञ व साहित्यकार के साथ ही घुमक्कड़ प्रवृत्ति के भी थे। विष्णुजी ने काशी विद्यापीठ से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद 1957 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया था। उसी वर्ष उन्होंने 'कवि' पत्रिका निकालनी शुरू की, जो एक उम्दा साहित्यिक लघु पत्रिका थी। उसमें नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, जगत शंखधर जैसे लेखक योगदान करते थे। बाद में उन्होंने 'सर्वनाम' पत्रिका भी निकाली, जिसे बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थितियों में लंबे समय तक

निकालते रहे। कुछ समय के लिए उन्होंने सी.पी.आई. के दैनिक 'जनयुग' में भी काम किया। लेखन में वे कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी और आलोचना जैसी विधाओं में सक्रिय रहे। उनकी लिखी कबीर, मुक्तिबोध, नजरुल इस्लाम और राहुल सांकृत्यायन की जीवनियाँ बहुचर्चित रहीं। पहला कविता-संग्रह 'मौन सैंदूर शांत जल का' 1957 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद से नौ और कविता-संग्रह प्रकाश में आए।

उनका स्वभाव बिल्कुल पारदर्शी था। वे जबरदस्त घुमक्कड़ थे। देश-विदेश की यात्राएँ करना उनका शगल था। हिंदी में वे अपने यात्रा-संस्मरणों के लिए भी याद रखे जाएँगे।

विष्णुचंद्र शर्मा दिल्ली में सरकारी नौकरी लेने आए थे, नौकरी तो उन्हें नहीं मिली, लेकिन यहाँ के साहित्यिक वातावरण ने खूब आकर्षित किया। उन्होंने दिल्ली आकर 'सर्वनाम' का संपादन भी किया। वहीं बंगाल के विद्रोही कवि काजी नजरुल इस्लाम, मुक्तिबोध व राहुल की जीवनी लिखी। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, जीवनी, संस्मरण व आलोचना की करीब 50 पुस्तकें लिखी हैं।

1972 में पत्नी के साथ वह यमुनापार के सादतपुर क्षेत्र में आ गए। वहाँ उनके पास बाबा नागार्जुन आया करते थे। नागार्जुन भी यहीं सादतपुर में रहते थे। वह कहते थे कि विष्णुचंद्र शर्मा ने बताया था कि उन्हें दिल्ली की सड़क पर जब भी लाल बहादुर शास्त्री देखते थे तो तुरंत गाड़ी रोककर पूछते थे, तुम्हारा सामान कहाँ है? चलो मेरे साथ, लेकिन वह कभी उनके साथ नहीं गए।

जे.एन.यू. के नए लेखक केदारनाथ सिंह व नामवर सिंह उनकी हर रचना खरीदकर पढ़ते थे। 1975 में जब इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाया था, तब उन्होंने 'तत्काल' नाम से एक कविता-संग्रह लिखा था। उस समय नामवर सिंह जे.एन.यू. में हिंदी विभाग और भाषा विभाग के प्रमुख थे। वह उन्हें अपनी कविताएँ पढ़ाने गए थे, उनकी कविताएँ सुनने से पहले उन्होंने दो कप कॉफी मँगवाई और 32 पेज पढ़ने के बाद कहा कि विष्णु इस समय जेल में बड़ा दबाव चल रहा है। न जाने तुम्हारी ये कविताएँ छपने से क्या बवाल हो जाए। वास्तव में विरोध का स्वर उनके साहित्य का केंद्रबिंदु रहा।

विष्णु खरे

(9 फरवरी, 1940–19 सितंबर, 2018)

भारतीय कवि, अनुवादक, साहित्यकार, पत्रकार, पठकथा लेखक के रूप में प्रसिद्ध विष्णु खरे हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे। उन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा में जीवन समर्पित किया।

एक विचारक के रूप में लोकप्रिय इस हिंदी साहित्यकार का जन्म सन् 9 फरवरी, 1940 को छिंदवाड़ा जिले के एक छोटे से गाँव में हुआ था। विष्णु खरे एक मध्यम वर्गीय परिवार के सदस्य थे। इन्हें बाल्यकाल में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। खरेजी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा छिंदवाड़ा मध्य प्रदेश में ही पूरी की। 1963 ई. में इन्होंने इंदौर के क्रिश्चियन कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में पर-स्नातक की उपाधि प्राप्त की। एम.ए. करने के बाद विष्णु खरे ने दैनिक समाचार, इंदौर समाचार में 1962-1963 के

मध्य उप संपादक के रूप में अपनी सेवा दी और यहीं से उन्होंने पत्रकारिता की दुनिया में अपना कदम रखा।

पत्रकारिता के साथ-साथ विष्णु खरे ने अपनी 1963 के मध्य दिल्ली एवं मध्य प्रदेश के विभिन्न महाविद्यालय में अध्यापन का कार्य प्रारंभ कर दिया। अध्यापन कौशल के माध्यम से वे छात्रों को उचित मार्गदर्शन प्रदान करने लगे। इसी के चलते खरेजी ने 1966-1967 ई. में अपनी लघु पत्रिका 'व्यास' का संपादन किया। हिंदी साहित्य के प्रति खरेजी का ज्ञान देखकर हिंदी साहित्य अकादमी मंडल ने इन्हें उप सचिव के पद पर नियुक्त किया।

संपादन के कार्य के साथ-साथ ही विष्णु खरे ने दुनिया के प्रमुख कवियों की कविताओं का चयन किया और अपनी विशिष्ट शैली में उन सब कविताओं का अनुवाद किया, जिससे अंतरराष्ट्रीय कवियों की रचनाओं का स्वर सरलतापूर्वक एवं एक सरल भाषा शैली के माध्यम से भारतीय साहित्य प्रेमियों के बीच पहुँच सके। सहज, भावपूर्ण, गंभीर और प्रभावमयी सौंदर्य से युक्त इनकी मुक्त छंद की कविताएँ शब्दों के सटीक चयन द्वारा व्यंजना शब्द शक्ति के प्रभावी प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति का अपूर्व वैभव रचती हैं। विष्णु खरेजी हिंदी साहित्य के विश्व प्रसिद्ध रचनाओं के अनुवादन के रूप में याद किए जाते हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं में काल और अवधि के दरमियान, खुद अपनी आँख से, पिछला बाकी, लालटेन जलना, सबकी आवाज के पर्दे में, आलोचना की पहली किताब आदि रचनाएँ शामिल हैं। एक गैर-रूमानी समय में, खुद अपनी आँखों से, सबकी आवाज के पर्दे में, काल और अवधि के दरमियान, एक कम आदि रचनाएँ भी प्रसिद्ध रहीं।

उन्हें हिंदी साहित्य के 'ऑर्डर ऑफ द व्हाइट रोज ऑफ फिनलैंड' सम्मान, हिंदी अकादमी साहित्य सम्मान, शिखर सम्मान, रघुवीर सहाय सम्मान, मैथलीशरण गुप्त सम्मान आदि सम्मानों से सम्मानित किया गया।

बाबा योगेंद्र

(7 जनवरी, 1924-10 जून, 2022)

7 जनवरी, 1924 को उत्तर प्रदेश के जिला बस्ती में जन्म लेनेवाले बाबा योगेंद्र को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के महत्त्वपूर्ण प्रकल्प 'संस्कार भारती' के संस्थापक के रूप में जाना जाता है। बाबा योगेंद्र का जुड़ाव बाल्यावस्था से ही संघ की शाखा से था। शाखा और गोरखपुर में विद्याध्ययन के दौरान उनका संपर्क संघ के प्रचारक नानाजी देशमुख से हुआ। बाबा योगेंद्र ने 1942 में लखनऊ में 'संघ शिक्षा वर्ग' का प्रशिक्षण लिया था। 1945 में वे प्रचारक बने। उत्तर प्रदेश के कई शहरों गोरखपुर, प्रयाग, बरेली, सीतापुर, काशी समेत एक दर्जन से अधिक स्थानों पर संघ के लिए कार्य किया। बाबा योगेंद्र कला प्रेमी थे। उनको बचपन से ही चित्रकला में रुचि थी। कला संबंधी अपने सपने को साकार करने के लिए उन्होंने संस्कार भारती की स्थापना की। इस प्रकल्प का एक मात्र उद्देश्य हजारों नवोदित कलाकारों को एक मंच पर लाना था। उनके मन में एक सुप्त कलाकार अनवरत मचलता रहता था। देश विभाजन के समय उन्होंने एक ऐसी प्रदर्शनी लगाई, जिसको देखनेवालों की आँखों में अश्रुधारा उमड़ आती थी। फिर ऐसी प्रदर्शनियों का सिलसिला चल पड़ा। एक के बाद एक करुणामयी प्रदर्शनी शिवाजी,

धर्मगंगा, जनता की पुकार, जलता कश्मीर, संकट में गोमाता, 1857 के स्वाधीनता संग्राम की अमरगाथा, विदेशी षड्यंत्र, माँ की पुकार आदि ने संवेदनशील मनों को झकझोर दिया। 'भारत की विश्व को देन' जैसी प्रदर्शनी को विदेशी सरजमीं पर भूरि-भूरि प्रशंसा मिली।

संघ नेतृत्व ने बाबा योगेंद्र की इस अतुलनीय प्रतिभा को निरखकर 1981 में संस्कार भारती जैसे प्रकल्प का निर्माण कर उसका कार्यभार उनके कर्मठ हाथों में सौंप दिया। बाबा योगेंद्र के अथक परिश्रम से संस्कार भारती आज कलाकारों की अग्रणी संस्था बन गई है। इसकी प्रसिद्धि का एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य यह है कि विदेशी कलाकार भी इस संस्था से गहराई से जुड़े। जिसके चलते आज संस्कार भारती की कई शाखाएँ विश्व के कई देशों में स्थापित हो चुकी हैं। इस प्रकार उन्होंने कलाकारों की एक नई पौध तैयार कर दी।

सहज व्यक्तिव के धनी बाबा के कार्यों को रेखांकित करते हुए उन्हें कई बड़े पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया। 2005-06 में भाऊराव देवरस पुरस्कार, 2008 में अहिल्याबाई राष्ट्रीय पुरस्कार तथा भारत सरकार द्वारा 2018 में पद्मश्री से पुरस्कृत किया गया।

अत्यंत विनम्र, फक्कड़पन, अहंकार रहित, एक आदर्श स्वयंसेवक के तौर पर बाबा प्राचीन एवं नवीन के समन्वयी पुरोधा थे। कला पारखी, साधक, कला मर्मज्ञ, माँ भारती के दिव्य पुत्र का शरीर 10 जून, 2022 को सदा-सदा के लिए शांत हो गया।

पद्मा सचदेव

(17 अप्रैल, 1940-4 अगस्त, 2021)

डोगरी भाषा की पहली आधुनिक महिला कवयित्री पद्मा सचदेव का जन्म 17 अप्रैल, 1940 को पुरमंडल जम्मू में हुआ था। पद्मा सचदेव ने डोगरी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी खूब लेखनी चलाई और हिंदी को समृद्ध किया। पद्माजी ने कविता कहानी, उपन्यास, साक्षात्कार, आत्मकथा समेत हिंदी की तमाम विधाओं पर मजबूती से लिखा। वे जहाँ होती थीं, वहाँ जैसे उजाला बिखरा होता था। छोटे कद की अपनी ही प्रतिष्ठा और आत्मीयता के दुकूल में सिमटी रहनेवाली पद्मा सचदेव का जीवन कोई बहुत 'फूलों की कहानी है तितली की जबानी है' जैसा नहीं रहा बल्कि जीवन में बहुतेरे संघर्ष रहे, जिनसे उबरने में उन्हें काफी वक्त लगा। वे अरसे तक माइग्रेन से ग्रस्त रहीं, जिसमें उनकी जीवन-नियति की अपनी भूमिका रही और जिसका ब्योरा उन्होंने अपनी आत्मकथा 'बूँद बावड़ी' में दिया है। 'बूँद बावड़ी' से गुजरनेवाला पाठक उसे बिना रोए या अश्रुस्नात हुए उनकी आत्मकथा नहीं पढ़ सकता। यह एक सफल लेखिका होने की निशानी है। उनमें जीवन और गृहस्थी पर पड़नेवाली ऐसी खरोंचो का सिलसिलेवार वर्णन है, जो एक संवेदनशील कवयित्री को भीतर तक लहूलुहान कर देता है।

पद्मा सचदेव मूलतः डोगरी भाषा की कथाकार व कवयित्री रहीं पर धीरे-धीरे हिंदी की दुनिया में रमती गईं। डोगरी में उनके आठ कविता-संग्रह और तीन गद्य कृतियाँ छपीं तो हिंदी में कुल उन्नीस पुस्तकें तथा उर्दू में एक पुस्तक प्रकाशित हुई। तमाम भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद भी हुए।

प्रकाशित कृतियाँ : (कविता संग्रह) मेरी कविता मेरे गीत, तवी ते चन्हाँ, नेहरियाँ गलियाँ, पोटा-पोटा निंबल, उत्तर बैहनी, तैथियाँ, अक्खंर कुंड व सबद मिलावा; (कहानी संग्रह) गोदभरी, बुहुरा; (साक्षात्कार) मितवाघर, दीवान खाना, अमराई, बारहदरी; उपन्यास अब न बनेगी देहरी, नौशीन, भटकों नहीं धनंजय, इनबिन, जम्मू जो कभी शहर था; (यात्रा वृतांत) मैं कहती हूँ आँखिन देखी; (आत्मकथा) बूँद&बावड़ी

पद्मा सचदेव के कविता-संग्रह 'मेरी कविता मेरे गीत' (भूमिका : रामधारी सिंह 'दिनकर') को 1971 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसके अतिरिक्त सरस्वती सम्मान, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, हिंदी अकादमी पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान सौहार्द सम्मान, केंद्रीय हिंदी संस्थान-गंगा शरण सिंह पुरस्कार, राजा राममोहन राय पुरस्कार, कबीर सम्मान आदि से सम्मानित हुईं। भारत सरकार ने 'पद्मश्री' सम्मान से सम्मानित किया।

हिंदी जगत की सशक्त हस्ताक्षर पद्मा सचदेव चिरनिद्रा में लीन हो गईं। 4 अगस्त 2021 को

स्वयं प्रकाश

(20 जनवरी, 1947-7 दिसंबर, 2019)

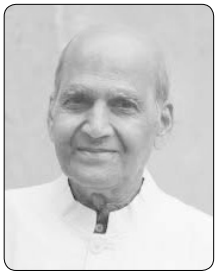

हिंदी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर स्वयं प्रकाश का जन्म 20 जनवरी, 1947 को मध्य प्रदेश के इंदौर में हुआ था। वे लेखन के आरंभिक दौर में कविताएँ लिखते थे और मंचों पर सस्वर काव्य पाठ भी किया करते थे। उनके पिता अजमेर में रहते थे। वहीं प्रसिद्ध कथाकार रमेश उपाध्याय की संगति में उन्होंने कहानी लिखना प्रारंभ किया। सन् 1969 में स्वयं प्रकाश ने पहली कहानी लिखी। राजस्थान में रहते हुए स्वयं प्रकाश ने भीनमाल से अपने मित्र मोहन श्रोत्रिय के साथ लघु पत्रिका 'क्यों' का संपादन-प्रकाशन किया तथा 'फीनिक्स', 'चौबोली' और 'सबका दुश्मन' जैसे नाटक भी लिखे। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'बीच मे विनय' भीनमाल के परिवेश पर ही लिखा गया है। इसके पहले स्वयं प्रकाश ने सैन्य जीवन के अनुभवों पर एक उपन्यास लिखा, जिसका नाम 'जलते जहाज पर' है। इधर के वर्षों में उनकी रचनाशीलता में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ और बदल रहे भारतीय समाज को अपने लेखन में देखने-समझने की रचनात्मक कोशिश की। उनका उपन्यास 'ईंधन' भूमंडलीकरण की वृहद परिघटना का भारतीय समाज पर पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन करनेवाला पहला हिंदी उपन्यास है। अपनी नौकरी के दौरान वे कुछ वर्षों तक चित्तौड़गढ़ में रहे थे। तब वे हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड में अधिकारी थे। एक तरफ देश भर में निजीकरण और उदारीकरण का शोर था, वहीं खुद उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के अपने उपक्रम 'हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड' का निजीकरण देखा। ऐसा कहा जाता रहा है कि 'जो बचा रहा' का चित्तौड़गढ़ अध्याय इस निजीकरण की घटना का हिंदी साहित्य में किया गया पहला और एक मात्र अंकन है।

स्वयं प्रकाश ने हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं पर अधिकारपूर्वक लिखा है। उनके कहानी-संग्रहों में मात्रा और भार, सूरज कब निकलेगा, आसमां कैसे- कैसे, अगली किताब, आएँगे अच्छे दिन भी, आदमी जात का आदमी, अगले जनम, संधान, छोटे उस्ताद है। उपन्यासों की बात करें तो जलते जहाज, ज्योति

रथ के सारथी, उत्तरजीवन कथा, बीच में विनय और ईंधन हैं। निबंधों में स्वांत: दु:खाय, दूसरा पहलू, रंगशाला में एक दोपहर, एक कहानीकार की नोटबुक और क्या आप सांप्रदायिक हैं? नाटकों में जहाँ उन्होंने फीनिक्स लिखा, वहीं पर हमसफरनामा जैसा रेखाचित्र लिखकर साहित्य की वृद्धि की।

स्वयं प्रकाश ने राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, विशिष्ट साहित्यकार सम्मान, वनमाली स्मृति पुरस्कार, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार के साथ-साथ बाल साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त किया।

ऐसे महत्त्वपूर्ण कथाकार का लंबी बीमारी के बाद 7 दिसंबर, 2019 को हुआ।

पंडित सत्यव्रत शास्त्री

(29 सितंबर, 1930-14 नवंबर, 2021)

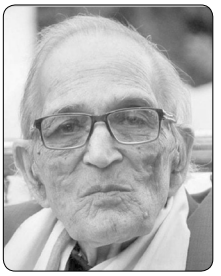

संस्कृत के व्रती सेवक पं. सत्यव्रत शास्त्री का जन्म 29 सितंबर, 1930 को संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री चारुदेव शास्त्री के घर में हुआ था। वे एक भारतीय संस्कृत विद्वान्, लेखक, व्याकरणविद् और कवि हृदय थे। एकमात्र संस्कृत भाषा के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित विद्वान डॉ. सत्यव्रत शास्त्री पंजाब विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय में दिक्काल मीमांसा विषय पर पी-एच.डी. हैं। शालीनता, सौम्यता और विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ने 1955 में दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य आरंभ किया। अपने चालीस वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने विभागाध्यक्ष तथा कला संकायाध्यक्ष का पदभार सँभाला।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री जगन्नाथ विश्वविद्यालय, पुरी के कुलपति रहे है। इन्हीं के प्रयास से सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, थाईलैंड में संस्कृत अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई। सत्यव्रत शास्त्री ने एक साक्षात्कार में बताया कि विदेशों में, विशेषकर थाई भाषा में संस्कृत की विपुल शब्दावली मिलती है। उन्होंने अनेक शब्दों का थाई भाषा में और संस्कृत में उच्चारण करके बताया तो सचमुच बड़ा आश्चर्य हुआ कि थाई भाषा का अधिकांश शब्द भंडार संस्कृत शब्दावली से ही पूर्ण हुआ है। 'डिस्कवरी ऑफ संस्कृत ट्रेंजर्स' के सात कांडों में उन्होंने संस्कृत वाङ्मय के विविध पक्षों पर प्रकाश डालकर अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन किया है, जिसे पढ़कर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि लेखक का प्रयास सचमुच स्तुत्य बन गया है। सत्यव्रत शास्त्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब वह थाईलैंड गए तो वहाँ की राजकुमारी को उन्होंने संस्कृत पढ़ाई। 'थाई देशविलासम' और श्री रामकीर्ति महाकाव्यम् उनकी प्रसिद्ध रचना हैं। उन्हें 'गुरु गोविन्द चरितम्' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। पंडित सत्यव्रत शास्त्री ने संस्कृत में आलोचनात्मक लेखन में तीन महाकाव्य, तीन खंड काव्य, एक प्रबंध काव्य लिखा है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ रामकीर्ति महाकाव्यम, श्री बोधिसत्त्व चरितम्, वैदिक व्याकरण और सात खंडों में संस्कृत खजाने की खोज है।

ख्यातिलब्ध पंडित सत्यव्रत शास्त्री को अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से विभूषित किया

गया है, जिसमें राष्ट्रपति सम्मान भारत सरकार, पद्म श्री सम्मान, ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादमी सम्मान शामिल है। 14 नवंबर, 2021 को पंडित सत्यव्रत शास्त्री के निधन से संस्कृत के एक युग का अवसान हो गया।

नंदकिशोर नवल

(2 सितंबर, 1937-2 मई, 2020)

हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी चेतना सम्पन्न शीर्षस्थ आलोचकों में से एक नंदकिशोर नवल का जन्म 2 सितंबर, 1937 को बिहार राज्य स्थित वैशाली में हुआ था। शुरू से ही तीक्ष्ण बुद्धि के नंदकिशोर नवल का अध्ययन और लेखन क्षेत्र अत्यंत गंभीर और व्यापक रहा है। छायावाद के प्रमुख स्तंभ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और तारसप्तक के कवियों में से एक गजानन माधव मुक्तिबोध नंदकिशोर नवल के अध्ययन के केंद्र में रहे तथा इन दोनों पर उनका लेखन मानक महत्त्व रखनेवाला सिद्ध हुआ। नवल की लेखनी यही नहीं रुकी बल्कि वे अपने समकालीन लेखकों में नए से नए कवियों पर भी लिखा। गोस्वामी तुलसीदास एवं सूरदास से लेकर रीति काव्य पर दृढ़तापूर्वक कलम चलाई है।

नंदकिशोर नवल ने सन् 1970 में हिंदी विषय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की है। तत्पश्चात् पटना विश्वविद्यालय से 'निराला का काव्य विकास' शीर्षक विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद पटना विश्वविद्यालय के ही हिंदी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ से रीडर एवं विश्वविद्यालय आचार्य होकर 31 अक्तूबर, 1998 को उन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

नवलजी की साहित्यिक समझ कई साहित्यिक पीढ़ियों के संसर्ग से समृद्ध हुआ। वैशाली के एक छोटे से गाँव में अपने मास्टर साहब और पुस्तकालय से उन्होंने साहित्यिक यात्रा आरंभ की। नंदकिशोर नवल को एक आलोचक के रूप में प्रतिष्ठा अवश्य मिली, परंतु वे एक अच्छे कवि भी थे। हिंदी की सभी पत्र- पत्रिकाओं के सान्निध्य में रहने के कारण नवलजी ने कई पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी कुशलतापूर्वक किया। उनकी प्रकाशित कृतियों की सूची बड़ी है।

जहाँ उनकी कविता-संग्रह—मंजीर, वहाँ मिलेगी पीली चिड़ियाँ, जनपद : विशिष्ट कवि, द्वाभा, नील जल, कुछ और भी खुल गया है, वहीं आलोचना की पुस्तकों में कविता की मुक्ति, हिंदी आलोचना का विकास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद का सौंदर्य शास्त्र, शब्द जहाँ सक्रिय हैं, मायाप्रसंग, निराला और मुक्तिबोध, मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना, समकालीन काव्य-यात्रा, उधेड़बुन, दृश्यालेख, मुक्तिबोध, निराला, रचना का पक्ष, शताब्दी की कविता, पार्श्वच्छवि, मैथिली शरण, तुलसीदास, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, सूरदास, रीति काव्य, कवि अज्ञेय के इतर कई अन्य आलोचनात्मक कृतियों के लेखक के तौर पर नवलजी ने अपनी विशेष पहचान बनाई। पत्रिकाओं में जहाँ सिर्फ, धरातल, उत्तरशती, आलोचना, कसौटी का संपादन किया, वहीं मूरतें : माटी और सोने की जैसे लोकप्रिय संस्मरण भी लिखे।

अपना संपूर्ण जीवन हिंदी साहित्य को समर्पित कर देनेवाले नंदकिशोर नवलजी का देहावसान 2 मई, 2020 को पटना में हुआ।

अमीरचंद

(स्मृतिशेष : 17 अक्तूबर, 2021)

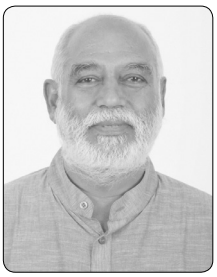

अमीरचंदजी मूलतः उत्तर प्रदेश के बलिया स्थित हनुमानगंज के रहनेवाले थे। वे संवेदनशील, भारतीय कला, साहित्य और दर्शन के लिए एक समर्पित व्यक्तित्व थे, जो पूर्वोत्तर की कलाओं को लेकर उत्तर, पश्चिम और दक्षिण के बीच त्रिकोणीय सेतु की भूमिका निभाते थे।

श्री अमीरचंदजी का जीवन कला के संगठन के लिए ही बना था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक निकलने के बाद उन्होंने जिस तन्मयता के साथ भारत माता की सेवा करते हुए अनेक राष्ट्र जागरण के कार्यों को सफलता प्रदान की। उनका इस तरह की कलाओं में तन्मयता और लगन को देखते हुए संघ ने उन्हें संस्कार भारती में कार्य करने के लिए भेजा। समकालीन समय का ऐसा संगठन, जो अभी कुछ ही दिन पहले अस्तित्व में आया, अमीरचंदजी का नेतृत्व पाकर खिल उठा।

अमीरचंदजी 1981 ई. संघ के स्वयंसेवक बने। 1985 में आजमगढ़ में संघ के तहसील प्रचारक बने। 1987 में संस्कार भारती में पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र की जिम्मेदारी दी गई। वर्ष 1990 में राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री के दायित्व को ग्रहण किया। तत्पश्चात् उन्हें पूर्वोत्तर भारत की विविध कलाओं के स्वरूप से भारत को परिचित कराने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी मिली। वे इस कार्य में तन-मन-धन से लग गए और अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा में विशेष तौर पर असमिया, मिसिंग, बोडो, दिमासा, गारो, नेपाली, कार्बी, खासी, कुकी, मणिपुरी, मिजों, नागा, राभा, राजबोंगरी, तिवा, त्रिपुरी, बंगाली, विष्णुप्रिया, इत्यादि समुदायों की लोककलाओं को सफलतापूर्वक संस्कार भारती मंच के माध्यम से देश में यत्र-तत्र-सर्वत्र स्थापित किया। जो उनके व्यक्तित्व के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

अमीरचंद को 'अपना पूर्वोत्तर' कार्यक्रम के लिए भी जाना जाता है। अपना पूर्वोत्तर के अंतर्गत आठ राज्यों की कलाओं के कलाकारों के माध्यम से वे देश के कोने-कोने में लेकर गए और सभी को भारत के इस अप्रतिम हिस्से की कलाओं से परिचित कराया। खासकर भारत की नाट्य परंपरा को लेकर अमीरचंदजी ने जो कार्य किया है, वह अद्वितीय है। अपना पूर्वोत्तर की तर्ज पर ही 'हमारी संस्कृति- हमारी पहचान' कार्यक्रम पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों में आरंभ किया, जिसमें बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक जुड़ते चले गए। अमीरचंदजी के द्वारा आदिवासी बहुल इलाकों में जो सेवा भाव का उदाहरण प्रस्तुत किया गया, उससे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और संस्कार भारती की अपनी अलग श्रेष्ठ सेवा पथ की पहचान पूर्वोत्तर के एक बड़े हिस्से में सफलता से सिद्ध हुई।

भारतीय कला और संस्कृति के उत्थान के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देनेवाले असाधारण साधक अमीरचंदजी का निधन अरुणाचल प्रदेश की यात्रा के दौरान 17 अक्तूबर, 2021 को हुआ।

बदरीनाथ कपूर

(16 सितंबर, 1932–21 जनवरी, 2021)

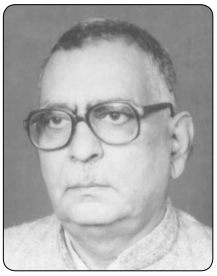

शब्दलोक के अथक यात्री, हिंदी भाषा और साहित्य के अप्रतिम गौरव स्तंभ, सादगी की मूर्ति, स्वभाव से विनम्र व भौतिकता के प्रति उदासीन डॉ. बदरीनाथ कपूर का जन्म वर्तमान पाकिस्तान में जिला गुजराँवाला स्थित अकालगढ़ में 16 सितंबर, 1932 को हुआ था। श्री कपूर के पिता नंदगोपाल वहाँ के जमींदार थे। माता अन्नपूर्णा देवी काशी के एक सनातनी परिवार से संबंधित थीं। अगस्त 1947 में जब देश आजाद हुआ तो हिंसा की आँच उनके घर तक पहुँच गई। विभाजित पाकिस्तान में उनके माँ–बाप की हत्या कर दी गई, उस समय कपूरजी महज 15 वर्ष के थे।

अक्तूबर 1947 में वे सेना के ट्रक में भारत आए। फिर वह अपने मामा रामचंद्र वर्मा के घर काशी चले आए। आचार्य रामचंद्र वर्मा हिंदी के विख्यात साहित्यकार व कोशकार थे। हरिश्चंद्र कॉलेज से हाईस्कूल, इंटर व बी.ए. की शिक्षा ग्रहण की। पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. व पी–एच.डी. की डिग्री ली।

डॉ. बदरीनाथ कपूर पिछले पाँच दशकों से भाषा, व्याकरण और कोश प्रणयन के क्षेत्र में एक बड़ा नाम था। डॉ. कपूर ने 1956 से 1965 तक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'मानक हिंदी कोश' पर सहायक संपादक के तौर पर कार्य किया। बाद में जापान सरकार के आमंत्रण पर टोक्यो विश्वविद्यालय में 1983 से 1986 तक अतिथि प्रोफेसर के रूप में सेवा प्रदान की।

वाक्य संरचना और विश्लेषण, नए प्रतिमान, हिंदी की प्रकृति और प्रवृत्ति को जानना–समझना डॉ. कपूर का व्यसन रहा है। बेसिक हिंदी, परिष्कृत हिंदी व्याकरण, हिंदी व्याकरण की सरल पद्धति, नवशती हिंदी व्याकरण, लोकभारती मुहावरा कोश, शब्द–परिवार कोश, सहज हिंदी व्याकरण, नूतन पर्यायवाची कोश, लिपि वर्तनी और भाषा, आधुनिक हिंदी प्रयोग कोश, व्यावहारिक अंग्रेजी हिंदी कोश, मुहावरा तथा लोकोक्ति कोश, व्याकरण मंजूषा जैसी तमाम रचनाएँ इसी व्यसन का सूचक है। 'नवशती हिंदी व्याकरण' में कुछ नई प्रस्थापनाएँ भी की गई थीं, जो परंपरा से हटकर थीं। प्रस्तुत पुस्तक क्रियाओं के संबंध में दो वर्षों में किए गए उनके चिंतन का सुफल परिणाम है। कुल सूत्र चालीस हैं और पाँच–पाँच सूत्रों के इनके आठ सर्ग हैं। इन्हीं के आधार पर इस पुस्तक में हिंदी वाक्यों की संरचना करने का प्रयास किया गया।

ऐसे कुशल भाषा मनीषी को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जिनमें श्री अन्नपूर्णानंद वर्मा अलंकरण सम्मान, सौहार्द सम्मान, काशी रत्न, महामना मदन मोहन मालवीय सम्मान, विद्या भूषण सम्मान उल्लेखनीय हैं।

प्रोफेसर देवेंद्र स्वरूप

(30 मार्च, 1926-14 जनवरी, 2019)

जाने-माने इतिहासकार, वरिष्ठ पत्रकार तथा 'पाञ्चजन्य' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के संपादक प्रो. देवेंद्र स्वरूप का जन्म 30 मार्च, 1926 को उत्तर प्रदेश स्थित मुरादाबाद जिले के काँठ शहर में हुआ था। देवेंद्र स्वरूपजी की आरंभिक शिक्षा-दीक्षा उनके पैतृक गाँव काँठ में हुई। शुरू से ही उनका क्रांतिधर्मी व्यक्तित्व था, 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भाग लेने की वजह से उनको दो बार विद्यालय से निष्कासित हुए। प्रो. देवेंद्र स्वरूप उच्च शिक्षा के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय गए, जहाँ उनका दाखिला बी.एस.सी. में हुआ। उन्हीं दिनों देवेंद्र स्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से पूर्ण रूप से जड़ गए। 1947 से 1960 तक उन्होंने संघ के प्रचारक के रूप में काम किया। इस दरमियान गांधी की हत्या और इमरजेंसी के दौरान वे कई बार जेल गए। प्रो. देवेंद्र स्वरूप लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास में स्नातकोत्तर किया और प्राचीन भारत में राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया पर शोध कार्य किया। बाद में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतर्गत पी.जी. डी.ए.वी. कॉलेज के इतिहास विभाग में प्रोफेसर बने, जहाँ से वे 1991 में सेवानिवृत हुए।

देवेंद्र स्वरूपजी संघ प्रचारक होने के साथ-साथ संघ के बड़े जानकार भी थे। इसीलिए उनको इनसाइक्लोपीडिया के तौर पर जाना जाता था। आर.एस.एस. के सरसंघचालकों में श्रीगुरुजी, के.एस. सुदर्शन और भाऊराव देवरस से उनके नजदीकी और आत्मीय संबंध थे।

प्रो. देवेंद्र स्वरूपजी ने कई ऐसी पुस्तकें लिखी हैं, जिनसे भारत और भारतीयता के अंतरर्संबंध को जाना जा सकता है, जैसे—संघ : राजनीति और मीडिया, अयोध्या का सच, जाति-विहीन समाज का सपना, हमारे रज्जू भैया, सभ्यताओं के संघर्ष में भारत कहाँ? ये महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। इसके इतर प्रो. देवेंद्र स्वरूप लंबे समय तक पत्रकारिता जगत् से जुड़े रहे। पाञ्चजन्य, चेतना, राष्ट्रधर्म जैसी पत्रिकाओं में बराबर स्तंभ लिखना उनकी दिनचर्या में शामिल था। आर.एस.एस. को जानने-समझनेवालों में देवेंद्र स्वरूप एक ऐसे शख्स थे, जो इसके इतिहास और वर्तमान दोनों को गहराई से जानते थे। उनकी जीवन-यात्रा एक कर्मठ एवं अध्ययनशील स्वयंसेवक की रही। अपने सारगर्भित लेखन और अध्ययन तथा मूलभूत चिंतन से परिपूर्ण नियमित और सातत्यपूर्ण लेखन से उन्होंने राष्ट्रीय विमर्श को हमेशा पुष्ट किया। ऐसे इतिहासकार, पत्रकार, लेखक प्रो. देवेंद्र स्वरूप का निधन 14 जनवरी, 2019 को हो गया, जिससे विचारों की दुनिया के एक युग का अंत हो गया।

अटल बिहारी वाजपेयी

(25 दिसंबर, 1925-16 अगस्त, 2018)

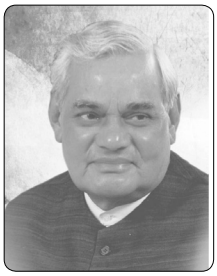

जिक्र राजनीति का हो या कविताओं का अटल बिहारी वाजपेयी का, नाम इन दोनों में प्रथम स्थान रखता है। एक राजनीतिज्ञ के लिए जितना व्यावहारिक होना जरूरी है, एक कवि होने के लिए उतना ही भावनात्मक होना भी जरूरी है। अटलजी दोनों के ही संयोग से बने एक विरले व्यक्ति रहे। अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसंबर, 1925 को हुआ। उनके पिता का नाम पंडित कृष्ण बाजपेयी था, जो अध्यापन का कार्य करते थे। उनकी माता का नाम कृष्णा देवी था, जो कि गृहणी थी।

वाजपेयीजी आजीवन अविवाहित रहे। उन्होंने अपनी पुरानी दोस्त राजकुमारी कौल और बी.एन. कौल की बेटी नमिता भट्टाचार्य को दत्तक पुत्री के रूप में स्वीकार किया। राजकुमारी कौल की मृत्यु वर्ष 2014 में हुई थी। अटलजी के साथ नमिता और उनके पति रंजन भट्टाचार्य रहते थे।

उन्हें साहित्य विरासत में मिला था। रामचरितमानस का उनके जीवन पर बहुत प्रभाव रहा। बचपन से ही उन्होंने कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं। स्वदेश-प्रेम, जीवन-दर्शन, प्रकृति तथा मधुर भाव की कविताएँ उन्हें बाल्यावस्था से ही आकर्षित करती रहीं। उनकी कविताओं में प्रेम है, करुणा है, वेदना है। एक पत्रकार, संपादक और राजनेता के रूप में वे बहुत गंभीर दिखाई देते हैं। अटलजी भारत को विश्व शक्ति के रूप में देखना चाहते थे। वे कहते थे, मैं चाहता हूँ, भारत एक महान् राष्ट्र बने, शक्तिशाली बने, संसार के राष्ट्रों में प्रथम पंक्ति में आए। अटल बिहारी वाजपेयी एक असाधारण कवि होने के साथ-साथ एक समर्थ पत्रकार भी रहे। उनके पिता स्वर्गीय कृष्ण बिहारी वाजपेयी भी एक समर्थ रचनाकार थे और ग्वालियर रियासत के जाने-माने कवि थे। अपने पिता के समकालीन मंचीय रचनाकारों में माननीय अटल बिहारी वाजपेयीजी की भी बहुत ख्याति रही। उनकी प्रथम कविता 'ताजमहल' बहुत चर्चित रही।इसमें शोषण के विरुद्ध उनकी आवाज मुखर हुई है। उनकी रचनाओं में उनके संघर्षमय जीवन, स्वतंत्र्योत्तर विषम परिस्थितियाँ, भ्रष्टाचार, अन्याय और अत्याचार, राष्ट्रव्यापी आंदोलन आदि सामाजिक एवं राष्ट्रीय पक्षों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

उनकी कुछ प्रमुख प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं—'रग-रग हिंदू मेरा परिचय', 'मृत्यु या हत्या', 'अमर बलिदान' (लोकसभा में अटलजी के वक्तव्यों का संग्रह), 'कैदी कविराय की कुंडलियाँ', 'संसद् में तीन दशक', 'अमर आग है', 'कुछ लेख-कुछ भाषण', 'सेक्युलरवाद', 'राजनीति की रपटीली राहें', 'बिंदु-बिंदु विचार' व 'मेरी इक्यावन कविताएँ' आदि।

अपने राजनैतिक, सामाजिक व साहित्यिक जीवन में अटलजी को कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जो इस प्रकार है—पद्म विभूषण (1992), डी.लिट. कानपुर विश्वविद्यालय (1993), लोकमान्य तिलक पुरस्कार (1994), श्रेष्ठ सासंद पुरस्कार (1994), पंडित गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार (1994), डी.लिट. (मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय) जिया लाल बैरवा (देवली) (2015), 'फ्रेंड्स ऑफ बांग्लादेश लिबरेशन वार अवॉर्ड', बांग्लादेश सरकार द्वारा प्रदत्त (2015) तथा भारत के

सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारतरत्न (2015) से सम्मानित किया गया।

16 अगस्त, 2018 को उनकी मृत्यु हो गई। यह अटलजी की मात्र भौतिक अनुपस्थिति ही है, वे एक चेतना व आदर्श के रूप में सदैव भारतीय जनमानस में व्याप्त हैं।

डॉ. नरेंद्र कोहली

(6 जनवरी, 1940-17 अप्रैल, 2021)

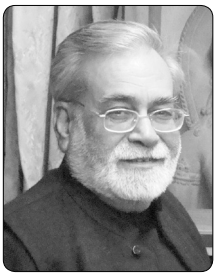

डॉ. नरेंद्र कोहली प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य के सभी प्रमुख एवं गौण विधाओं में रचनाएँ की हैं। नरेंद्र कोहली ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक समाज की समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। डॉ. नरेंद्र कोहली का जन्म 6 जनवरी, 1940 ई. को सियालकोट (पंजाब) में हुआ था। एक प्रकार से कोहली का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था। डॉ. नरेंद्र कोहली के पिता परमानंद कोहली तथा माता विद्यावती थीं। पिता की शिक्षा आठवीं कक्षा तक ही हो पाई थी, लेकिन उन्होंने पुत्र नरेंद्र कोहली को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता दी थी।

नरेंद्र कोहली के परिवार में उनकी पत्नी डॉ. मधुरिमा कोहली तथा उनके दो पुत्र कार्तिकेय एवं अगस्त्य हैं। कोहली की पत्नी डॉ. मधुरिमा कोहली हिंदी साहित्य में एम.ए. एवं पी-एच.डी. हैं तथा कमला नेहरू कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में शिक्षिका रह चुकी हैं। नरेंद्र कोहली का परिवार भारत-पाक विभाजन के बाद जमशेदपुर आ गया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा जमशेदपुर में ही हुई। जमशेदपुर को ऑपरेटिव कॉलेज से कोहली ने बी.ए. ऑनर्स (हिंदी) विषय में अपनी शिक्षा (1961 ई.) पूर्ण की। स्नातक के पश्चात् कोहली दिल्ली चले आए एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज से 1963 ई. में परास्नातक की पढ़ाई पूरी की। कोहली ने दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रहे प्रोफेसर एवं बड़े आलोचक डॉ. नरेंद्र के शोध निर्देशन में हिंदी उपन्यास : सृजन एवं सिद्धांत विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

कोहली रामकथा एवं कृष्ण कथा पर लिखे अपने उपन्यास के द्वारा भारतीय समाज के सामने अमर बन गए हैं। उन्हें हिंदी साहित्य में आधुनिक तुलसी की भी संज्ञा दी जाती है। यही नहीं, कोहली को हिंदी साहित्य में 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' विधा को प्रारंभ करने का श्रेय भी दिया जाता है। उनके हिंदी साहित्य में लेखनी से लोकप्रियता के कारण 1975 के बाद के समकालीन समय को हिंदी साहित्य में 'कोहली युग' भी कहा जाता है।

ऐसे विद्वान् और साहित्यकार की मृत्यु कोरोना संक्रमण के कारण 17 अप्रैल, 2021 को दिल्ली में हो गई।

डॉ. नरेंद्र कोहली के द्वारा रचित साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है, जिसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, संस्मरण, व्यंग्य, पत्र के साथ-साथ आलोचना भी है। उनके उपन्यास में क्षमा करना साथ सहा गया दुःख, अभिशान, तोड़ो काश तोड़ो, महासमर, प्रीतिकथा, पुनरारंभ, मेरा अपना संसार, जंगल

की कहानी इत्यादि हैं। कोहली ने कहानी के रूप में परिणति, नामक का कैदी, संचित भूख, निचले फ्लैट में, कहानी का अभाव आदि की रचना की। उन्होंने नाटक शंबूक की हत्या, गारे की दीवार, हत्यारे, निर्णय रुका हुआ तथा अन्य विधाओं में नेपथ्य, जहाँ है धर्म वहीं है जय, बाबा नागार्जुन, माजरा क्या है इत्यादि जेसी रचनाएँ कीं।

डॉ. नरेंद्र कोहली के साहित्यिक योगदान पर अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें राज्य साहित्य पुरस्कार (1975-16), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार (1977-78), इलाहाबाद नाट्य संघ पुरस्कार (1978), मानस संगम साहित्य पुरस्कार (1978), श्री हनुमान मंदिर साहित्य अनुसंधान संस्थान विद्यावृत्ति (1982), साहित्य सम्मान (1989), साहित्यिक कृति पुरस्कार (1987), डॉ. कॉमिल बुल्के पुरस्कार (1989), चकल्लस पुरस्कार (1991), अट्टहास शिखर सम्मान (1994), शलाका सम्मान (1995), साहित्यभूषण (1998), व्यास सम्मान (2012) और पद्मश्री (1917) भी प्राप्त हुआ।

गिरीश कर्नाड

(19 मई, 1938-10 जून, 2019)

गिरीश कर्नाड कन्नड़ लेखक, अभिनेता एवं फिल्म निर्देशक रहे हैं। वे लगातार चार दशकों तक इतिहास, पौराणिक कथाओं एक समसामयिक समस्याओं पर नाटकों की रचना करते रहे। फिल्मों में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए कर्नाड एक अभिनेता थे, जबकि उनकी प्रतिभा बहुगुणी थी। उन्होंने दक्षिण भारतीय सिनेमा एवं बॉलीवुड दोनों में ही काम किया। कन्नड़ साहित्य में आधुनिक भारतीय नाटककार के रूप में उन्हें प्रसिद्धि मिली। ऐसे प्रतिभा के धनी गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, 1938 ई. को बंबई प्रसिडेंसी (आज का महाराष्ट्र) के 'मारेथन' नामक स्थान पर हुआ था। इनका पूरा नाम गिरीश रघुनाथ कर्नाड था। उनका परिवार सारस्वत ब्राह्मण था। उनके पिता श्री रघुनाथ कर्नाड तथा माता कृष्णा बाई कर्नाड थीं। कर्नाड की प्रारंभिक शिक्षा उनकी मातृभाषा 'मराठी' में हुई। कर्नाड के जन्म के चौदह वर्ष पश्चात् उनका परिवार महाराष्ट्र से कर्नाटक के 'धारावाड़' नामक स्थान पर रहने लगा। उन्होंने कर्नाटक में रहते हुए कन्नड़ भाषा सीखी।

कर्नाड ने विद्यालयी शिक्षा के पश्चात् 1958 ई. में कर्नाटक आर्ट्स कॉलेज से गणित विषय में स्नातक किया। उन्होंने आगे की शिक्षा के लिए 1960-63 ई. में इंग्लैंड की तरफ रुख किया। कर्नाड ने इंग्लैंड में अर्थशास्त्र, दर्शन शास्त्र एवं राजनीति विज्ञान में शिक्षा ग्रहण की। कर्नाड के परिवार में पत्नी सरावथी, बेटा रघु और बेटी राधा कर्नाड हैं। अति महत्त्वपूर्ण माने-जानेवाले साहित्यक्रम एवं अभिनेता रहे गिरीश रघुनाथ कर्नाड का निधन 10 जून, 2019 को 81 वर्ष की उम्र में कर्नाटक के बेंगलुरु में हो गया।

गिरीश कर्नाड का बचपन से ही नाटकों से लगाव था। स्कूली शिक्षा से ही उन्होंने नाटकों की तरफ झुकना प्रारंभ कर दिया था। कर्नाड ने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (चेन्नई) एवं शिकागो के विश्वविद्यालय में अध्यपान कार्य किया। नाटकों में उनकी लोकप्रियता के कारण अनेक पसिद्धि निर्देशकों, आलोक

पहासी, सत्यदेव दुबे, विजय मेहता, अरविंद गौड़, इब्राहिम अलकजी, श्यामानंद जालान इत्यादि ने कर्नाड के नाटकों का निर्देशन किया। कर्नाड ने अनेक नाटकों की रचना की, जिनमें 'ययाति' (1961), 'तुगलक' (1964), 'हेयवदन' (1971), 'अंजु मल्लिगे', 'अग्निमतु माले', 'नागमंडल', अग्नि और बरखा' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनके नाटकों का आनुवाद अनेक भारतीय भाषाओं में भी हुआ है।

गिरीश कर्नाड ने अपने कैरियर की शुरुआत कन्नड़ फिल्म 'संस्क्रम' (1970) से की। उन्होंने कन्नड़ के अतिरिक्त 'मंथन', 'पुकार', 'गोधुली', 'उत्सव' और 'निशांत' जैसे प्रमुख हिंदी फिल्मों में भी कार्य किया। इस प्रकार कर्नाड ने लगभग नब्बे से अधिक फिल्मों में कार्य किया है। उन्होंने 'सुराजनामा' नामक महत्त्व-पूर्ण सीरियल में भी अपनी भूमिका निभाई है।

कर्नाड को भारत का सर्वोच्च संहिता सम्मान एवं कन्नड़ भाषा और साहित्य का सम्मान भी प्राप्त हुआ। कर्नाड ने 'संगीत नाटक अकादमी' के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। कर्नाड को राज्योत्सव पुरस्कार (1970), संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1972), पद्मश्री (1974), पद्म भूषण (1992), कन्नड़ साहित्य अकादमी पुरस्कार (1992), साहित्य अकादमी पुरस्कार (1994), ज्ञानपीठ पुरस्कार (1998), कालिदास सम्मान (1998), एवं आकाश दीप सम्मान (2018) से सम्मनित किया गया है। इसके अतिरिक्त कर्नाड को अनके बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार भी मिले।

प्रो. मैनेजर पांडेय

(23 सितंबर, 1941-6 नवंबर, 2022)

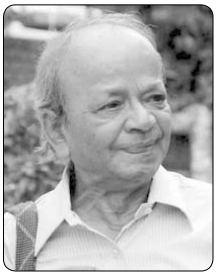

मैनेजर पांडेय हिंदी के उन प्रमुख समालोचकों में हैं, जिन्होंने अपने सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं किया। मैनेजर पांडेय का जन्म 23 सितंबर, 1941 को बिहार राज्य के वर्तमान गोपालगंज जनपद के गाँव 'लोहटी' में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा गाँव में तथा उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई, जहाँ से उन्होंने एम.ए. और पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आजीविका के लिए अध्यापन का मार्ग चुननेवाले मैनेजर पांडेय जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भाषा संस्थान के भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्रोफेसर रहे। वे जे.एन.यू. में भारतीय भाषा केंद्र के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। इसके पूर्व पांडेयजी बरेली कॉलेज, बरेली और जोधपुर विश्वविद्यालय में भी प्राध्यापक रहे। जोधपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाने के बाद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आ गए, जहाँ से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन कर रहे।

मैनेजर पांडेय ने साहित्य के समाजशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन-अनुशीलन किया तथा उनकी पहली ही किताब 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' का हिंदी आलोचना में एक नवाचार की तरह स्वागत हुआ। तब से 'शब्द और कर्म', 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका', 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य', 'हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान', 'आलोचना में सहमति असहमति', 'भारतीय समाज में प्रतिरोध की भूमिका', 'अनभै सांचा', 'आलोचना की सामाजिकता', 'उपन्यास और लोकतंत्र, 'साहित्य

और दलित दृष्टि', 'शब्द और साधना', 'संगीत रागकल्पद्रुम', संकट के बावजूद उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं। वे हिंदी अकादेमी के शलाका सम्मान, राष्ट्रीय दिनकर सम्मान, गोकुलचंद्र शुक्ल पुरस्कार एवं सुब्रहमण्य भारती सम्मान सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित रहे।

पांडेयजी गत साढ़े तीन दशकों से हिंदी आचोलना में सक्रिय रहे। उन्होंने कई पुस्तकों का संपादन भी किया, जो इस प्रकार हैं—**संपादित पुस्तकें—**'देश की बात' (सखाराम गणेश देउस्कर की प्रसिद्ध बांग्ला पुस्तक 'देशेर कथा' के हिंदी अनुवाद की लंबी भूमिका के साथ प्रस्तुति), मुक्ति की पुकार', 'सीवान की कविता', 'नागार्जुन-चयनित कविताएँ', 'सूर संचयिता', 'पराधीनों की विजय यात्रा' (छत्तीस पराधीन देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का इतिहास)-2014, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव की पुस्तक का संपादन एवं प्रस्तुतीकरण, आचार्य द्विवेदी की स्मृति में (द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ)-2015, मुगल बादशाहों की हिंदी कविता-2016, लोकगीतों और गीतों में 1857, मैनेजर पांडेय के आलोचना कर्म पर केंद्रित कृतियाँ, आलोचना का आत्मसंघर्ष-2011, स. : रवि रंजन, दूसरी परंपरा का शुक्ल पक्ष-2016, कमलेश वर्मा, सुचिता वर्मा, मैनेजर पांडेय—एक शिनाख्त-2021, संपादक : डॉ. अर्चना त्रिपाठी और डॉ. मिथिलेश कुमार शुक्ल साहित्य में योगदान के लिए प्रो. मैनेजर पांडेय को दिनकर राष्ट्रीय सम्मान, गोकुल चंद आलोचना पुरस्कार, सुब्रमण्यन भारती पुरस्कार और साहित्य सम्मान से सम्मानित किया गया था। हिंदी साहित्य का यह प्रखर आलोचक 6 नवंबर, 2022 को 81 वर्ष की उम्र में इस दुनिया से विदा हो गया।

प्रो. नामवर सिंह

(5 मई, 1927-19 फरवरी, 2019)

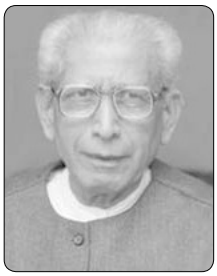

प्रो. नामवर सिंह हिंदी भाषा एवं साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् थे। वे अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील आलोचक, संपादक, निबंधकार एवं वक्ता रहे। वे हिंदी साहित्य में अपभ्रंश से प्रारंभ कर समसामयिक विषय की प्रगतिशील आलोचना तक जुड़े रहे। वे मार्क्सवादी विचारधारा के वाहक थे। नामवर सिंह का जन्म 5 मई, 1927 ई. को उत्तर प्रदेश के बनारस (वर्तमान चंदौली जिला) के जीयनपुर गाँव में हुआ था। नामवर सिंह की प्रारंभिक शिक्षा अपने क्षेत्र में ही हुई।

नामवर सिंह काशी हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा पूर्ण की। बनारस से ही परास्नातक एवं पी-एच.डी. हिंदी विषय की पढ़ाई पूरी की तथा वहीं से अध्यापन का कार्य भी प्रारंभ किया। वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय (1953-59) के पश्चात् जोधपुर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (1970-74) रहे। वे आगरा विश्वविद्यालय में हिंदी विद्यापीठ के प्रोफेसर एवं निदेशक (1974) रहे। नामवर सिंह के अध्यापन का उत्तरोत्तर समय देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में बीता। उन्होंने वहाँ भारतीय भाषा केंद्र के अध्यक्ष एवं हिंदी के प्रोफेसर के रूप में सेवानिवृत्त तक कार्य किया। नामवर सिंह को हिंदी विद्वत्ता के कारण ही महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय

हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) का कुलाधिपति भी नियुक्त किया गया। अपनी प्रखर प्रतिभा से हिंदी आलोचना को स्थापित करनेवाले विद्वान् का 19 फरवरी, 2019 को दिल्ली में निधन हो गया।

नामवर सिंह का साहित्य विपुल मात्रा में हिंदी पाठकों के सामने उपलब्ध है। उन्होंने आलोचना, निबंध, पत्र-संग्रह, साक्षात्कार एवं अनेक पुस्तकों का संपादन किया। नामवर सिंह ने निबंध और आलोचना से संबंधित, 'बकलम खुद' (1951) हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग (1952), छायावाद (1955), इतिहास और आलोचना (1957), आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (1962), कहानी : नई कहानी (1965), कविता के नए प्रतिमान (1968), दूसरी परंपरा की खोज (1982), वाद-विवाद-संवाद (1989), आलोचक के मुख से (2005) नामक रचनाएँ लिखीं। साक्षात्कार के रूप में कहना न होगा (1994), बात-बात में बात (2006), सम्मुख (2012) और साथ-साथ (2012) प्रमुख हैं। पत्र-संग्रह के रूप में काशी के नाम पत्र (2006) एवं तुम्हारा नामवर भी हमारे सामने उपलब्ध है।

नामवर सिंह ने अनेक पुस्तकों का संपादन भी किया है, जिनमें पृथ्वीराज रासो (1952), चिंतामणि भाग-3 (1983), कार्लमार्क्स : कला और साहित्य चिंतन, नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, मलयज की डायरी, रामचंद्र शुक्ल रचनावली इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने जनयुग (साप्ताहिक) एवं आलोचना (त्रैमासिक) हिंदी पत्रिकाओं का भी संपादन किया।

हिंदी भाषा एवं साहित्य में विशेष योगदान के लिए नामवर सिंह को अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें साहित्य अकादमी पुरस्कार (1971) शलाका सम्मान, हिंदी अकादमी दिल्ली (1991), साहित्य भूषण सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान (1993), महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान (2010) एवं शब्दसाधक शिखर सम्मान (2010) प्रमुख हैं।

राजनाथ सिंह 'सूर्य'

(3 मई, 1937-13 जून, 2019)

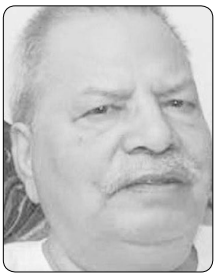

राजनाथ सिंह 'सूर्य' एक सफल पत्रकार तथा राजनीतिज्ञ थे। राजनाथ सिंह 'सूर्य' का जन्म 3 मई, 1937 ई. को रामनगरी अयोध्या जनपद के घनौरा मुहल्ले में एक किसान परिवार में हुआ था। राजपूत परिवार से ताल्लुक रखते थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा आर्य समाज के विद्यालय से हुई। 'सूर्य' बाल्यावस्था से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए। उन्होंने अपनी एम.ए. की पढ़ाई गोरखपुर विश्वविद्यालय से पूरी की। तत्पश्चात् उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक का दायित्व संभाला। उन्होंने जिस समय संघ के प्रचारक निकले, उस समय प्रांत प्रचारक भाउराव देवरस थे, जिनकी प्रेरणा 'सूर्य' जी को मिली।

राजनाथ सिंह 'सूर्य' स्वतंत्रता संघर्ष के समय संघ के दायित्व का निर्वहन कर रहे थे। वे भारतीय जनता पार्टी के महत्त्वपूर्ण नेता रहे। 'सूर्य' ने भारतीय जनता पार्टी की तरह से राज्यसभा के सदस्य (1996-

2002 ई. तक) का भी पदभार ग्रहण किया तथा भारतीय जनता पार्टी के प्रदेश महामंत्री पद का भी दायित्व सँभाला। उन्होंने समाज की सेवा के लिए जीवनपर्यंत कार्य किया। 13 जून, 2019 को 82 वर्ष की उम्र में अपना शरीर त्याग दिया। राजनाथ सिंह 'सूर्य' ने पहले ही मेडिकल कॉलेज को अपनी देहदान की घोषणा कर दी थी इसलिए उनके आवास से उनका पार्थिव शरीर किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी (KGMU) लखनऊ ले जाया गया।

राजनाथ सिंह 'सूर्य' एक निर्भीक पत्रकार भी थे। उन्होंने जीवन भर मीडिया के पक्ष में जोरदार समर्थन दिया। 'सूर्य' ने प्रत्येक विषय पर मीडिया को झूठा सिद्ध करने के प्रयास का विरोध किया।

वे समाचार-पत्र 'आज' के संपादक भी रहे। राजनाथ सिंह 'सूर्य' ने हिंदुस्तान समाचार, बहुभाषी न्यूज एजेंसी लखनऊ से पत्रकारिता की शुरुआत की। वे 1988 में 'दैनिक जागरण' समाचार-पत्र के सहायक संपादक भी रहे। उन्होंने 'स्वतंत्र भारत' नामक समाचार-पत्र का भी संपादन किया।

राजनाथ सिंह 'सूर्य' की पुस्तक 'अपना भारत' पाठकों के बीच लोकप्रिय रही। इस पुस्तक में उनहोंने 'मजहबी उन्माद में वोट देना या आत्मघात', 'राममंदिर बनाम रामजन्मभूमि मंदिर 'मुस्लिम मददाता किधर और क्यों', 'चुनाव आस्था बनाम मोल भाव के बीच', 'डॉ. लोहिया ने कहा था गोली चलानेवाली सरकार इस्तीफा दे' जैसे मुद्दों पर बेबाकी से अपनी बात रखी है। राजनाथ सिंह 'सूर्य' 25 सितंबर, 1998 से अगस्त 2004 तक केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के उपाध्यक्ष रहे। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने राजनाथ सिंह 'सूर्य' को 'पत्रकारिता भूषण सम्मान' से पुरस्कृत किया। इसके अतिरिक्त उन्हें अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

कपिला वात्स्यायन

(25 दिसंबर, 1928-16 सितंबर, 2020)

कपिला वात्स्यायन एक महान् विदुषी और विलक्षण प्रतिभा की धनी साहित्यकार थीं। कपिला भारतीय शास्त्रीय नृत्य, कला, वास्तुकला और इतिहास की एक प्रमुख विद्वान् थीं। उन्होंने साहित्य, कला और संस्कृति के संवर्धन तथा विकास के लिए ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने कला से जुड़ी हुई कई संस्थाओं का निर्माण किया तथा कलाकारों के बीच संवाद कार्य करने में एक सेतु का कार्य किया। इन्होंने भारत में संसद् सदस्य और नौकरशाह के रूप में कार्य किया और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के संस्थापक निदेशक भी रहीं।

25 दिसंबर, 1928 को जनमी कपिला वात्स्यायन राष्ट्रीय आंदोलन की प्रसिद्ध लेखिका सत्यवती मलिक की पुत्री थीं। इनके पिता रामलाल जाने-माने वकील थे। प्रसिद्ध हिंदी कवि सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' से इनका विवाह हुआ था। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा मिशिगन विश्वविद्यालय से शिक्षा-दीक्षा ली।

कपिला वात्स्यायन प्रख्यात नर्तक शंभू महाराज और प्रसिद्ध इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल की शिष्या थीं। उन्होंने नृत्य, शिल्प में नृत्य छवियों, नाट्शास्त्र और प्रकृति पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने हिंदी में जयदेव के 'गीत गोविंद' का सुंदर अनुवाद भी किया है। उन्हें हिंदी साहित्य में गहरी रुचि थी और हिंदी का अद्भुत ज्ञान था। उन्होंने भारतीय नृत्य कला को जितना पसंद किया, उतना ही पश्चिमी नृत्य कला को भी महत्त्व दिया।

राष्ट्र के प्रति अपनी सेवाओं तथा संस्कृति, कला तथा शिक्षा के क्षेत्र में कपिला वात्स्यायन एक असा-धारण व्यक्तित्व थीं। आदिवासी कला के क्षेत्र में विशेष रूप से योगदान और समर्पण में कारण ही वे अपने आप में एक संस्था बन गई थीं। उन्होंने जीवनपर्यंत तक भारतीय संस्कृति को जीवंत रखा और अपनी सभ्यता को मजबूती प्रदान की।

सन् 1970 में कपिला वात्स्यायन को संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप मिली, जो संगीत, नृत्य और नाटक के लिए भारत की संगीत नाट्य अकादमी द्वारा प्रदन किया जानेवाला सर्वोच्च सम्मान है तथा इन्हें ललित कला अकादमी फेलोशिप, 1995 में ललित कला अकादमी से भी सर्वोच्च सम्मान दिया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें सन् 1975 में प्रतिष्ठित जवाहर लाल नेहरू फैलोशिप से सम्मानित किया। सन् 1992 में एशियाई सांस्कृतिक परिषद् ने उन्हें उत्कृष्ट पेशेवर उपलब्धि और अंतरराष्ट्रीय समझ, अभ्यास और नृत्य कला तथा अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान देने के लिए जॉन डी. रॉकफेलर तीसरे पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हें भारत में कला इतिहास में सन् 1998 में 'कांग्रेस ऑन रिसर्च डांस' द्वारा 'आउटस्टैंडिंग कंट्रीब्यूशन टू डांस रिसर्च पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। सन् 2000 में 'राजीव गांधी राष्ट्रीय सद्भावना' पुरस्कार दिया गया। सन् 2011 में भारत सरकार ने इन्हें भारत के दूसरे सर्वोच्च नागरिक पद्म विभूषण से सम्मानित किया। महत्त्वपूर्ण संस्था 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र' की स्थापना का श्रेय भी इन्हीं को जाता है।

कपिला वात्स्यायन की मृत्यु 16 सितंबर, 2020 को दिल्ली में हुई।

गोपीचंद नारंग

(11 फरवरी, 1931–15 जून, 2022)

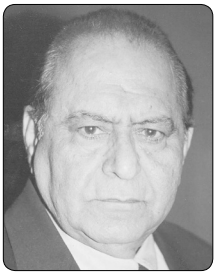

हिंदी-उर्दू से साहित्यिक रिश्ता रखने वाले गोपीचंद नारंग का जन्म 11 फरवरी, 1931 को बलूचिस्तान के टुक्की शहर में हुआ था। इनके पिता का नाम धर्म नारंग था, ये स्वयं फारसी एवं संस्कृत भाषा में रुचि रखते थे। अतः कहा जा सकता है कि गोपीचंद नारंग को साहित्यिक रुचि विरासत में ही मिली। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्याल के सेंट स्टीफन महाविद्यालय से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। इनकी पत्नी का नाम मनोरमा नारंग है। इनके बेटे अरुण नारंग और तरुण नारंग हैं। सन् 1954 में नारंग ने दिल्ली विश्वविद्यालय से उर्दू विषय में एम.ए. किया। शिक्षा मंत्रालय की फैलोशिप को आर्थिक आधार बनाकर सन् 1958 में पी-एच.डी. की। कुछ समय पश्चात् वे दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफन महाविद्यालय में उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। फिर उर्दू विभाग में बतौर लेक्चरर जुड़े। सन्

1961 में वह रीडर हो गए। इसी क्रम में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में विश्व के अन्य विश्वविद्यालयों जैसे विस्कॉनसिन यूनिवर्सिटी, मिनिएपोलिस की मिनेसोटा यूनिवर्सिटी और नार्वे की ओस्लो यूनिवर्सिटी में काम किया। कुछ समय तक जामिया मिल्लिया इस्लामिया में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष का पद भी सँभाला। 1986 में पुनः दूसरी बार दिल्ली विश्वविद्यालय में बतौर प्रोफेसर जुड़े। 15 जून, 2022 को अमेरिका के उत्तरी कैरोलिना में अंतिम साँस ली।

नारंग जी उर्दू भाषा के साहित्यकार थे। नारंग जी की भाषा, साहित्य एवं कविता तथा सांस्कृतिक पहलुओं पर कई पुस्तकें हैं। वह हिंदी और उर्दू के अतिरिक्त 6 अन्य भारतीय भाषाओं का भी ज्ञान रखते थे। इनकी पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है, इसलिए यहाँ पर कुछ का ही जिक्र है—उनकी उर्दू भाषा की पुस्तकें प्रमुख रूप से 'हिंदुस्तानी किस्सों से मखज उर्दू मसनविया', 'पुराणों की कहानियाँ', 'अमीर खुसरों का हिंदवी कलाम', 'हिंदुस्तान की तहरीक-ए-आजादी और उर्दू शायरी', 'उर्दू अफसाना, रिवायत और मसाईल', 'फिराक गोरखपुरी : शायर, नक्काद, दानीश्वर', 'आज की कहानियाँ' आदि हैं। हिंदी भाषा और साहित्य की पुस्तकें प्रमुख रूप से 'भारतीय लोक कथाओं पर आधारित उर्दू मसनवियाँ', 'पाठकवादी आलोचना', 'उर्दू कैसे लिखें', 'उर्दू गजल और भारतीय मानस संस्कृति', 'अमीर खुसरो : हिंदवी का लोक काव्य संकलन', 'उर्दू पर खुलता दरीचा', 'संरचनावाद', 'उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र' हैं।

इनके साहित्यिक अवदान के लिए सन् 1995 में इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार (1995), गालिब पुरस्कार (1985), तीसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'पद्म भूषण' (2004), दिल्ली विश्वविद्यालय की सेवाओं के लिए प्रोफेसर एमेरिट्स दिल्ली विश्वविद्यालय तथा विशिष्ट सेवाओं के लिए प्रोफेसर एमेरिट्स जामिया मिल्लिया इस्लामिया (2013-22) से सम्मानित किया गया। साहित्य कला के क्षेत्र में उत्कृष्टता एवं सृजनात्मकता के लिए इकबाल सम्मान (2011); साहित्य सेवा के लिए मूर्ति देवी पुरस्कार (2012) मिला। पाकिस्तान सरकार द्वारा भी इन्हें साहित्य एवं कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु 'सितारा-ए-इम्तियाज' (2012) सम्मान, सन् 2012 में सर सैयद उत्कृष्टता पुरस्कार दिया गया।

गोपालदास 'नीरज'

(4 जनवरी, 1925-19 जुलाई, 2018)

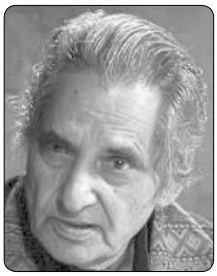

गोपालदास 'नीरज' हिंदी साहित्यकार, शिक्षक, कवि एवं हिंदी फिल्मों के गीत लेखक थे। ये पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार से दो बार सम्मानित किया गया था, इन्हें पहले पद्मश्री से और दूसरी बार पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। इन्हें फिल्म जगत् में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए भी तीन बार फिल्म फेयर अवार्ड दिया गया।

गोपालदास 'नीरज' का जन्म आजादी से पूर्व 4 जनवरी, 1925 को उत्तर प्रदेश के 'इटावा' जिले के गाँव पुरावली में ब्रजकिशोर सक्सेना (पिता) के घर पर हुआ

था। इनकी आयु 6 वर्ष थी, तब इनके पिता का देहांत हो गया। इन्होंने सन् 1942 में हाई स्कूल की शिक्षा एटा से प्राप्त की। शुरुआत में इटावा की कचहरी में कुछ समय तक टाइपिस्ट की नौकरी की, सिनेमा घर की दुकान पर नौकरी की। दिल्ली में भी सफाई विभाग में टाइपिस्ट की नौकरी की। नौकरी छूट जाने के बाद कानपुर के डी.ए.वी. कॉलेज में क्लर्क की भी नौकरी की। इन्होंने बाल्कर ब्रदर्स नाम की एक प्राइवेट कम्पनी में पाँच वर्ष तक टाइपिस्ट का काम किया। नौकरी के साथ-साथ इन्होंने अपनी शिक्षा प्राइवेट परीक्षा देकर इंटरमीडिएट 1949 में, 1951 में बी.ए. और 1953 में एम.ए. हिंदी साहित्य से किया।

गोपालदास 'नीरज' ने हिंदी प्रवक्ता के रूप में मेरठ में अध्यापन कार्य किया किंतु कॉलेज प्रशासन द्वारा उन पर कक्षाएँ न लेने व रोमांस करने के आरोप में, स्वयं 'नीरज' ने हिंदी प्रवक्ता की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और अलीगढ़ के धर्म समाज कॉलेज में हिंदी विभाग के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए।

गोपालदास 'नीरज' बाल्यकाल से ही कविता के प्रति अत्यन्त रुचि रखते थे। सन् 1944 में उनकी प्रथम पुस्तक 'संघर्ष' प्रकाशित हुई। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'नीरज' को 'हिंदी की वीणा' कहकर संबोधित किया है।

गोपालदास 'नीरज' ने कवि सम्मेलन में अपार लोकप्रियता हासिल की और इसी के कारण उन्हें फिल्म जगत् से गीत लेखन का निमंत्रण मिला। उन्हें 'नई उमर की फसल' गीत लिखने का पहली बार निमंत्रण मिला, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने भारतीय सिनेमा के लिए बहुत गीत लिखे, जैसे 'कारवाँ गुजर गया', गुबार देखते रहे और देखते ही रहो, 'आज दर्पण न तुम, प्यार का यह मुहरत निकल जाएगा' बेहद लोकप्रिय हुए, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे बंबई रहकर ही फिल्मों के गीत लिखने लगे। उन्होंने कई चर्चित फिल्मों 'जोकर', 'शर्मीला' और 'प्रेम पुजारी' के लिए गीत लिखे। लेकिन कुछ समय बाद बंबई नगरी को भी अलविदा कह अलीगढ़ वापस आकर रहने लगे।

गोपालदास 'नीरज' ने हिंदी साहित्य में कई कृतियाँ लिखी हैं, जिसमें सर्वप्रथम सन् 1944 में 'संघर्ष', 'अंतर्ध्वनि (1946), विभावरी (1948), प्राणगीत (1951), दर्द दिया है (1956), बादर बरस गयो (1957), मुक्तकी (1958), दो गीत (1958), नीरज की पाती (1958), गीत भी अगीत भी (1959), आसावरी (1963), नदी किनारे (1963), लहर पुकारे (1963), कारवाँ गुजर गया (1964), फिर दीप जलेगा (1970), तुम्हारे लिए (1972), नीरज की गीतिकाएँ (1987)।

गोपालदास 'नीरज' को कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए, जिनमें उन्हें विश्व उर्दू परिषद् पुरस्कार, पद्मश्री सम्मान (1991), भारत सरकार का यश भारती पुरस्कार (1994), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्था का पद्मभूषण सम्मान (2007), भारत सरकार और हिंदी फिल्म जगत से 3 बार फिल्म फेयर पुरस्कार प्राप्त हुए।

गोपालदास 'नीरज' को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भाषा संस्थान का अध्यक्ष नामित कर कैबिनेट मंत्री का दर्जा दिया गया था। इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रभाव यह रहा कि वह जहाँ हिंदी के माध्यम से साधारण स्तर के पाठक के मन की गहराई में उतरे हैं, वहाँ उन्होंने गंभीर-से-गंभीर अध्येताओं के मन को भी गुदगुदाया है। श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने वाले 'नीरज' ने अंतिम साँस 19 जुलाई, 2018 को दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) में ली।

त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी

(18 जनवरी, 1929–5 जनवरी, 2020)

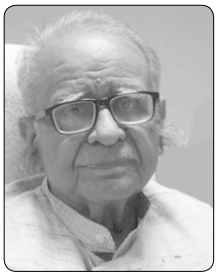

5 जनवरी को जाने-माने प्रशासक एवं 'साहित्य अमृत' के संपादक श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी का निधन हो गया। उनका जन्म 18 जनवरी, 1929 को उ.प्र. के औरैया जनपद के तिरवा नामक कसबे में हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त कर 1950 में वे भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित हुए और राजस्थान कैडर के उच्चाधिकारी बने। वे पुस्तकें खरीदने और पढ़ने के बेहद शौकीन थे। पहले राजस्थान के मुख्यमंत्री के सचिव, फिर मुख्य सतर्कता आयुक्त रहे। जिलाधिकारी के रूप में उन्होंने जनता के बीच अपार लोकप्रियता प्राप्त की। उन्होंने मुख्य सचिव, दिल्ली प्रशासन; संयुक्त निदेशक, राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी मसूरी; निदेशक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन; चीफ कमिश्नर चंडीगढ़, भारत के गृह सचिव तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक बने। सेवानिवृत्ति के बाद वे राज्यसभा के सांसद बने। वे कर्नाटक तथा केरल के राज्यपाल भी रहे। उनके योगदान के लिए भारत सरकार ने सन् १९९१ में उन्हें 'पद्म विभूषण' सम्मान से अलंकृत किया। 'साहित्य अमृत' के संपादक के रूप में उनकी टिप्पणियों को पाठक हमेशा याद करेंगे।

प्रदीप चौबे

(26 अगस्त, 1949–11 अप्रैल, 2019)

11 अप्रैल को प्रसिद्ध हास्य कवि श्री प्रदीप चौबे का ग्वालियर में निधन हो गया। वे 70 वर्ष के थे। वे अपनी रचनाओं के जरिए लोगों को गुदगुदाते तो थे ही, साथ ही व्यवस्था पर भी गंभीर चोट करते थे। अपनी रचनाएँ पढ़ने का उनका अंदाज निराला था। चौबेजी ने हमेशा देश, काल, वातावरण और समाज को ध्यान में रखकर अपना हास्य अंदाज सबके सामने रखा है। उनकी कुछ चर्चित कृतियाँ—'बेस्ट ऑफ प्रदीप चौबे', 'बहुत प्यासा है पानी', 'खुदा गायब है' (गजल-संग्रह), 'बाप रे बाप' (हास्य-व्यंग्य कविताएँ), 'ऑलपिन' (छोटी कविताएँ), 'चले जा रहे हैं' (हास्य-व्यंग्य गजलें)। कुछेक गद्य-व्यंग्य रचनाओं का कन्नड़ व गुजराती भाषाओं में प्रकाशन हुआ। 'आरंभ-1' (वार्षिकी), 'आरंभ-2' (गजल विश्वांक-1), 'आरंभ-3' (गजल विशेषांक), 'आरंभ-4 (गजल विश्वांक-2) का संपादन किया। वे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा लोकप्रिय हास्य-कवि के रूप में सम्मानित, 'काका हाथरसी पुरस्कार', 'अट्टहास शिखर पुरस्कार' एवं अन्य कई सम्मानों से सम्मानित किए गए।

बलवंत मोरेश्वर पुरंदरे

(29 जुलाई, 1922–15 नवंबर, 2021)

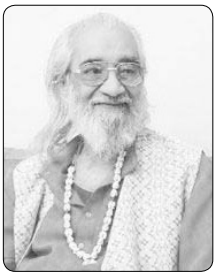

15 नवंबर को प्रसिद्ध इतिहासकार श्री बलवंत मोरेश्वर पुरंदरे का निधन हो गया। उनकी आयु 99 वर्ष थी। 29 जुलाई, 1922 को जनमे पुरंदरे की अधिकतर कृतियाँ छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन से संबंधित हैं। उनको 'शिवा शाहीर' के नाम से भी जाना जाता था। दो भागों में लिखी गई 900 पृष्ठों की मराठी पुस्तक 'राजा शिवछत्रपति' उनकी प्रसिद्ध कृति है। वर्ष 2019 में उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया; 2015 में उन्हें महाराष्ट्र भूषण पुरस्कार दिया गया। युवा अवस्था में ही उन्हें देशभक्ति की परंपरा का पाठ संघ की शाखा से प्राप्त हो गया था। उन्होंने 'जाणता राजा' जैसे एक भव्य व प्रेरक महानाट्य शिल्प को साकार करके शिवाजी महाराज की कथा को घर-घर तक पहुँचाया।

राजनारायण बिसारिया

(स्मृतिशेष : 18 फरवरी, 2022)

18 फरवरी को बी.बी.सी. हिंदी के लोकप्रिय प्रसारक और हिंदी के वरिष्ठ कवि, गीतकार, मीडिया और नाट्यकर्मी श्री राजनारायण बिसारिया का 93 वर्ष की आयु में दिल्ली में निधन हो गया। वे 'परंपरा' नामक साहित्यिक संस्था के माध्यम से हिंदी की साहित्यिक प्रतिभाओं का सम्मान कर प्रोत्साहित किया करते थे। वे प्रसार भारती बोर्ड के मानद सदस्य भी रहे। उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल

(1 जनवरी, 1938–12 सितंबर, 2019)

प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल (जन्म 1938) एक प्रसिद्ध इतिहासकार तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय इतिहास के वरिष्ठ प्रोफेसर रहे। वे तीन दर्जन से अधिक पुस्तकों के लेखक तथा विभिन्न विख्यात पत्र-पत्रिकाओं में उनके लगभग 500 लेख प्रकाशित हुए। अंग्रेजी भाषा में कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं—फ्रीडम मूवमेंट इन पंजाब (1905–1929); सोर्सेज ऑन नेशनल मूवमेंट इन इंडिया (1919–1920); हरियाणा : ए हिस्टॉरिकल पर्सपैक्टिव (1761–1966); ए सिलेक्टेड अनोटेटेड बिब्लियोग्राफी ऑन फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया : पंजाब ऐंड हरियाणा

(1858-1947) व इंडिया डिस्टॉर्टेड : ए स्टडी ऑफ ब्रिटिश हिस्टॉरियंस ऑन इंडिया (तीन भाग)। कुछ प्रसिद्ध हिंदी पुस्तकें हैं—भारत में राष्ट्रीयता का स्वरूप (प्रारंभ से मुसलिम काल तक); भारत का स्वाधीनता संग्राम, ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत, 1857 की महान् क्रांति का विश्व पर प्रभाव; स्वामी विवेकानंद की इतिहास दृष्टि, साम्यवाद का सच, भारतीय नारी : अतीत से वर्तमान तक, विश्व में साम्यवादी साम्राज्यवाद का उत्थान एवं पतन, मुसलिम शासन और भारतीय जनसमाज; कांग्रेस : अंग्रेज भक्ति से राजसत्ता तक एवं हिंदुत्व से प्रेरित विदेशी महिलाएँ। 12 सितंबर, 2019 को उनका निधन हो गया।

आचार्य सोहनलाल रामरंग

(स्मृतिशेष : 28 दिसंबर, 2022)

आचार्य सोहनलाल रामरंग स्वांतः सुखाय कृतिकार, ओजस्वी वक्ता, सरस प्रवचनकर्ता, इतिहास तथा ज्योतिष के गंभीर अध्येता थे। काव्य-क्षेत्र में विविध विधाओं के आविष्कर्ता के साथ गद्य-क्षेत्र में भी उनकी गहरी पैठ रही।

अनेक देशों की यात्रा कर चुके थे। देश की अनेक धार्मिक-सामाजिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंधित होने के अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय तुलसी संगम के संस्थापक प्रधानमंत्री भी रहे। अनेक कृतियों पर पी-एच.डी. हेतु शोध प्रबंध स्वीकृत हुए। दो विद्वान् डी.लिट्. में भी कार्यरत हुए।

प्रकाशित कृतियाँ हैं उत्तर साकेत (महाकाव्य) दो खंड, युगपुरुष तुलसी (बृहद् उपन्यास) दो खंड, श्रीराम कथा की कथा (शोध कृति) दो खंड, स्वातंत्र्य समर सत्र (1857-1947), श्रीहरि कीर्ति प्रभा (श्रीमद्भागवत संक्षिप्त रूप), दिल्ली की रामलीलाएँ (शोधकृति) के अतिरिक्त ग्यारह कृतियाँ प्रकाशित। कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से विभूषित।

प्रस्तुति : डॉ. रामाकांत कुशवाहा • डॉ. अंशु यादव
डॉ. पीयूष द्विवेदी • डॉ. प्रशांत सिंह चौहान

□□□

१२ वां

विश्व हिंदी सम्मेलन

फ़िजी, 2023

क्रम

प्रथम सम्मेलन	10-12 जनवरी, 1975	नागपुर, भारत
द्वितीय सम्मेलन	28-30 अगस्त, 1976	पोर्ट लुई, मॉरीशस
तृतीय सम्मेलन	28-30 अक्तूबर, 1983	नई दिल्ली, भारत
चतुर्थ सम्मेलन	02-04 दिसंबर, 1993	पोर्ट लुई, मॉरीशस
पंचम सम्मेलन	04-08 अप्रैल, 1996	पोर्ट ऑफ स्पेन, त्रिनिनाद एंड टोबेगो
षष्ठ सम्मेलन	14-18 सितंबर, 1999	लंदन, यू.के.
सप्तम सम्मेलन	06-09 जून, 2003	पारामारिबो, सूरीनाम
अष्टम सम्मेलन	13-15 जुलाई, 2007	न्यूयॉर्क, यू.एस.ए.
नवम सम्मेलन	22-24 सितंबर, 2012	जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका
दशम सम्मेलन	10-12 सितंबर, 2015	भोपाल, भारत
एकादश सम्मेलन	18-20 अगस्त, 2018	पाई, मॉरीशस
द्वादश सम्मेलन	15-17 फरवरी, 2023	नादी, फ़िजी

सत्यमेव जयते

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार